सेवीवर्गीय प्रशासन

PUBLIC PERSONNEL ADMINISTRATION

दो शब्द

राज्य के कल्याणकारी स्वरूप और लोकतन्त्र के प्रसार के साथ सेवीवर्गीय प्रशासन का महत्त्व बढना स्वाभाविक है। सफल सेवीवर्गीय प्रशासन लोक-कल्याण की अभिवृद्धि और प्रशासन की सफलता का आधारस्तम्भ है। सेवीवर्गीय प्रशासन वह केन्द्र-बिन्दु है जिसके इर्द-गिर्द प्रशासन की विभिन्न समस्याएँ छाई रहती हैं। प्रशासन यन्त्र को सचालित करने वाले लोगों की उपेक्षा का दूसरा अर्थ है सम्पूर्ण प्रशासकीय ढाँचे का चरमरा जाना और प्रशासकीय प्रक्रिया का अस्त-व्यस्त हो जाना। आज विश्व के सभ्य समाज ने समझ लिया है कि प्रशासन के मानवीय पहलू की उपेक्षा कितनी घातक हो सकती है। सेवीवर्गीय प्रशासन को आज लोक-प्रशासन मे सर्वोच्च तत्त्व माना जाता है। विश्व के हर देश मे राष्ट्रीय, राज्यीय और स्थानीय शासन-स्तर पर लोकसेवकों की सख्या मे लगातार वृद्धि होती जा रही है।

'सेवीवर्गीय प्रशासन' पर इस रचना मे विश्व के प्रमुख देशो के सेवीवर्गीय प्रशासन का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। लोक-कर्मचारियो की भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, वर्गीकरण, अनुशासन आदि विभिन्न पहलुओं पर अद्यतन जानकारी दी गई है। स्वस्थ सेवीवर्गीय नीति की विवेचना के साथ सेवीवर्गीय प्रशासन से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं और उनके समाधान की दिशा मे बहुत कुछ लिखा गया है। सयुक्तराज्य अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, भारत, आदि प्रमुख देशो म लोक-सेवाओ के विकास का रोचक इतिहास दिया गया है और इन देशो के सेवीवर्गीय प्रशासन का मूल्यांकन किया गया है। वेतन-प्रशासन पर समुचित प्रकाश डालने के साथ ही स्वस्थ वेतन-सरचना का दिशाबोध भी है। सक्षेप मे, सेवीवर्गीय प्रशासन के सभी प्रमुख पक्षो के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पहलुओं पर विश्वसनीय जानकारी दी गई है।

विश्वास है कि सेवीवर्गीय प्रशासन पर हिन्दी में प्रकाशित पुस्तको मे यह रचना अपना सम्मानजनक स्थान पा सकेगी। जिन विद्वानो के मानक-ग्रन्थों और स्रोतों से पुस्तक की रचना मे सहायता ली गई है, लेखकद्वय उनके प्रति हृदय से आभारी हैं।

—लेखकद्वय

सेवीवर्गीय प्रशासन

PUBLIC PERSONNEL ADMINISTRATION

(A Comparative Study of Personnel Administration in India, Britain, U S A and France)

डॉ. सी. एम. जैन

अधिष्ठाता, पत्राचार अध्ययन संस्थान
उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर

एवं

डॉ हरिश्चन्द्र शर्मा

राजनीति एव प्रशासन की अनेक पुस्तकों के रचयिता

रिसर्च पब्लिकेशन्स

नयी दिल्ली • जयपुर

Topics for Study

Bureaucracy its nature and concept, recent trends, types of bureaucracy with special reference to Morstein Marx Development and significance of Public Services, Nature of Personnel Administration A Comparative study of Personnel Administration in India, Britain U S A and France Recruitment, Classification, Salary, Promotion and Training of Public Services with reference to India, Great Britain, U S A and France Conduct rules and disciplinary action, removal and appeals, Retirement Benefits, Employees organisation and representation, Staff Council, Service disputes, Whitleyism in England, Right to Strike and Political Rights of civil servants

Published by Research Publications, New Delhi-2 and Jaipur-2
Printed at Hema Printers, Jaipur

अनुक्रमणिका

Appendix

1

नौकरशाही : इसकी प्रकृति और अवधारणा, आधुनिक प्रवृत्तियाँ, मार्सटीन मार्क्स के विशेष सन्दर्भ में नौकरशाही के रूप

(Bureaucracy Its Nature and Concept, Recent Trends, Types of Bureaucracy with Special Reference to Marstein Marx)

ब्यूरोक्रेसी अथवा नौकरशाही का शाब्दिक अर्थ डेस्क सरकार (Desk Government) अथवा ब्यूरो द्वारा सरकार है। यह शब्द लोक-प्रशासन में काफी बदनाम हो चुका है और प्रायः स्वेच्छाचारिता, अपव्यय, कार्यालय की कार्यवाही और तानाशाही के लिए प्रयुक्त किया जाता है। व्यापक अर्थ में नौकरशाही को कोई भी ऐसी सेवीवर्ग व्यवस्था कहा जा सकता है जहाँ कर्मचारियों को प्रशासन की ऐसी व्यवस्था में वर्गीकृत किया जाए, जिसमें सम्भागों, विभागों तथा ब्यूरो आदि के पद-सोपान होते हैं। यदि हम इस शब्द को मर्यादित अर्थ में प्रयुक्त करें तो कहना होगा कि यह सार्वजनिक सेवकों का एक ऐसा निकाय है जो एक पद-सोपान की व्यवस्था में संगठित होता है और प्रभावशाली सार्वजनिक नियन्त्रण के क्षेत्र से बाहर रहता है।

बदनाम होते हुए भी यह शब्द कभी-कभी उचित अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है तथा नौकरशाही का अधिकारी ऐसा व्यक्ति माना जाता है जो अनुभव, ज्ञान और उत्तरदायित्व की भावना से युक्त है। *नौकरशाही प्रत्येक शासन का एक* अपर्याप्त अंग होती है। सरकार द्वारा अपने उद्देश्यों की पूर्ति जितनी राजनीति द्वारा की जाती है, प्रायः उतनी ही प्रशासन द्वारा भी की जाती है। यह माना जा सकता है कि प्रजातन्त्र में जहाँ प्रशासकों को राजनीतिज्ञों का निर्देश मिलता है तथा जहाँ राजनीतिज्ञ अपनी शक्ति जनता से प्राप्त करते हैं वहाँ प्रशासक को जनता के प्रति उत्तरदायी माना जाता है। यह बात हो सकती है कि किसी समय यह सच रही हो किन्तु आज नहीं।

इस नौकरशाही को संस्थागत रूप-रचना तथा संगठनात्मक एवं संरचनात्मक पहलू सेवीवर्ग प्रशासन के रूप में जाना जाता है। इसके अन्तर्गत लोकसेवकों की

भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, पद वर्गीकरण, वेतन, सेवा की आयु, अधिकार आदि विषय शामिल किए जाते हैं। सेवीवर्ग प्रशासन के इन सभी पहलुओं की सन्तोषप्रद व्यवस्था होने पर ही यह आशा की जा सकती है कि नौकरशाही सुचारु रूप से कार्य करते हुए अपने निर्धारित लक्ष्यों की उपलब्धि की दिशा में निश्चयात्मक रूप से अग्रसर हो सकेगी। प्रस्तुत अध्याय में हम नौकरशाही के शाब्दिक एवं व्यावहारिक अर्थ एवं प्रकृति का विवेचन करते हुए मैक्स वेबर द्वारा प्रस्तुत नौकरशाही अवधारणा के मूल बिन्दुओं पर आलोचनात्मक रूप से दृष्टिपात करेंगे। नौकरशाही सगठनों का विकास कुछ विशेष आन्तरिक एवं बाह्य परिस्थितियाँ तथा पर्यावरणात्मक प्रभावों का परिणाम है। इसके लिए उत्तरदायी कतिपय परिस्थितियों का उल्लेख मार्शल ई डिमाक एवं ब्लाऊ तथा मेयर द्वारा किया गया है। इन परिस्थितियों तथा नौकरशाही के निवेश (Input) में आए परिवर्तनों के कारण नौकरशाही का रूप तथा व्यवहार उल्लेखनीय रूप से परिवर्तित हुए हैं। इस परिवर्तन का विश्लेषण हम 'नौकरशाही की आधुनिक प्रवृत्तियाँ' शीर्षक के अन्तर्गत करेंगे। नौकरशाही का रूप प्रारम्भ से अब तक प्रत्येक देश में एक जैसा नहीं रहा है। देश और काल की परिस्थितियों ने इसके रूप निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। एफ एम मार्क्स द्वारा विभिन्न देशों में समय-समय पर उपलब्ध नौकरशाही के प्रमुख रूपों तथा उनकी सामान्य विशेषताओं का वर्णन किया गया है। नौकरशाही के इन सभी पहलुओं का सैद्धान्तिक विवेचन करने के बाद हमारे अध्ययन का केन्द्रबिन्दु सेवीवर्ग प्रशासन बन जाएगा। यह सेवीवर्ग प्रशासन नौकरशाही के सम्पूर्ण ढाँचे की एक महत्त्वपूर्ण इकाई है जो इसके स्वरूप तथा लक्ष्य निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हम सेवीवर्ग प्रशासन के अर्थ, मूल तत्त्व, उद्देश्य, स्वस्थ सेवीवर्ग नीति के लक्षण, विकसित तथा विकासशील देशों में सेवीवर्ग प्रशासन का स्वरूप आदि बिन्दुओं का विवेचन एक अलग अध्याय में करेंगे। पुस्तक के अग्रिम अध्यायों में सेवीवर्ग प्रशासन के सभी प्रमुख निर्माणक तत्त्वों का भारत, ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्तराज्य अमेरिका तथा फ्रांस के सन्दर्भ में क्रमिक रूप से अध्ययन किया जाएगा।

नौकरशाही : अर्थ एवं प्रकृति
(Meaning and Nature of Bureaucracy)

'नौकरशाही' शब्द का प्रयोग देश और काल के अनुसार बदलता रहता है। यूरोपीय देशों में यह शब्द साधारणतः नियमित सरकारी कर्मचारियों के समूह के लिए प्रयुक्त किया जाता है। जॉन ए वीका के शब्दों में, "नौकरशाही उन व्यक्तियों के लिए सामूहिक पद के रूप में प्रयुक्त होता है जो सरकार की सेवाओं में होते हैं।" मैक्स वेबर (Max Weber) ने नौकरशाही को प्रशासन की एक ऐसी व्यवस्था माना है जिसकी विशेषता है विशेषज्ञता, निष्पक्षता और मानवता का अभाव। फिफ्नर के कथनानुसार नौकरशाही कार्यों और व्यक्तियों का एक ऐसे रूप में व्यवस्थित सगठन है जो अधिकतम प्रभावशाली रूप से सामूहिक प्रयासों के लक्ष्यों को प्राप्त कर सकें।

मूल रूप में अंग्रेजी शब्द ब्यूरोक्रेसी (Bureaucracy) नौकरशाही फ्रांसीसी भाषा के शब्द 'ब्यूरो' (Bureau) से बना है। इसका अर्थ लिखने की मेज या डेस्क है। अतः इस शब्द का सीधा अर्थ हुआ 'डेस्क सरकार'। प्रजातन्त्र की जिस तरह परिभाषा की गई है यदि उसी प्रकार इस शब्द की परिभाषा की जाए तो ब्यूरोक्रेसी को हम ब्यूरो की, ब्यूरो के द्वारा, ब्यूरो के लिए सरकार कहेंगे। इस अर्थ में प्रयोग किए जाने पर इस शब्द के प्रति सहज ही घृणा उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। 'ब्यूरोक्रेसी' शब्द में कुछ न कुछ बदनामी प्राय. चिपकी ही रहती है। ऐनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका (Encyclopaedia Britannica) जैसे तटस्थ ग्रन्थ के अनुसार भी यह शब्द "ब्यूरो या विभागों में प्रशासकीय शक्ति के केन्द्रित होने तथा राज्य के क्षेत्राधिकार से बाहर के विषयों में भी अधिकारियों के अनुचित हस्तक्षेप को व्यक्त करता है।" जॉन ए व्हिग (John A Vieg) के शब्दों में, "विकृति एवं परिहास के कारण ब्यूरोक्रेसी शब्द का अर्थ काम में घपला, मनमानी, अतिव्यय, हस्तक्षेप तथा वर्गीकरण माना जाने लगा है।"[1] फिर भी, कभी-कभी इस शब्द का प्रयोग समानुमोदन के साथ किया जाता है और नौकरशाही के अधिकारी को ऐसे व्यक्ति का प्रतीक माना जाता है जो अनुभव, ज्ञान तथा उत्तरदायित्व के लिए विख्यात हो।[2]

'नौकरशाही' शब्द का प्रयोग कई अर्थों में किया जाता है। मार्क्स के अनुसार यह शब्द मुख्य रूप से चार अर्थों में प्रयुक्त होता है।[3] ये निम्नवत् हैं—

(1) एक विशेष प्रकार के संगठन के रूप में—फिफनर ने नौकरशाही की जो परिभाषा की है वह उसे संगठन के रूप में स्पष्ट करती है। इस अर्थ में नौकरशाही को लोक प्रशासन के संचालन के लिए सामान्य रूपरेखा माना जाता है। ग्लैडन ने भी नौकरशाही को इसी रूप में परिभाषित किया है। उन्हीं के वचनानुसार "यह एक ऐसा विनियमित प्रशासक या तन्त्र है जो अन्तर्सम्बन्धीय पदों की शृंखला के रूप में संगठित होता है।" जर्मनी के प्रसिद्ध समाजशास्त्री मैक्स वेबर ने नौकरशाही का विस्तृत विश्लेषण किया है। उन्होंने नौकरशाही संगठन की कुछ विशेषताएँ मानी हैं—

(i) संगठन के प्रत्येक सदस्य को कुछ विशेष कर्त्तव्य सौंपे जाते हैं।
(ii) सत्ता का विभाजन कर लिया जाता है ताकि प्रत्येक सदस्य उसे सौंपे गए कार्यों को पूरा कर सके।
(iii) इन कार्यों का नियमित रूप से पालन करने के लिए उचित प्रबन्ध किया जाता है।
(iv) संगठन की रचना पद-सोपान के सिद्धान्त के आधार पर की जाती है।

1 *Marx, F M (ed)* Elements of Public Administration
2 बसरवी एवं महेश्वरी, लोक प्रशासन, पृ 273
3 *Marx, F M*, The Administrative State, p. 16

(v) लिखित अभिलेखों और दस्तावेजों को अधिक महत्व दिया जाता है।

(vi) संगठन के आदान-प्रदान पर नियन्त्रण रखने के लिए नियमों की रचना की जाती है।

(vii) कर्मचारियों की भर्ती और प्रशिक्षण विशेष प्रकार से किया जाता है।

2. **अच्छे प्रबन्ध में बाधक एक व्याधि के रूप में**—'नौकरशाही' शब्द अनेक दुर्गुणों और समस्याओं का प्रतीक है। नौकरशाही में व्यवहार का रूप कठोर यन्त्रवद्ध, कष्टमय, अमानुषिक, औपचारिक तथा आत्मारहित होता है। प्रो. लास्की के मतानुसार "नौकरशाही में ऐसी विशेषताएँ होती हैं जिनके अनुसार प्रशासन में नियमित कार्यों पर जोर दिया जाता है, निर्णय लेने में पर्याप्त विलम्ब किया जाता है और प्रयोगों को हाथ में लेने से इन्कार कर दिया जाता है।" ये सब बातें संगठन के अच्छे प्रबन्ध में बाधक मानी जा सकती हैं।

3. **बड़ी सरकार के रूप में**—राज्य के कर्त्तव्य और दायित्व आज इतने विस्तृत हो गए हैं कि इनको सम्पन्न करने के लिए विभिन्न बड़ी संस्थाएँ अनिवार्य हैं। विभिन्न आर्थिक राजनीतिक एवं व्यापारिक संस्थाएँ अपने बड़े आकार के साथ ही उद्देश्यों की पूर्ति का प्रयास करती हैं, यह बड़ा आकार नौकरशाही का मूलभूत कारण है। फिफनर तथा प्रीस्थस के कथनानुसार जहाँ भी बड़े पैमाने का उद्यम होता है वहाँ नौकरशाही अवश्य मिलती है। वर्तमान समय में सरकार को हर प्रकार के कार्यों को इतने विस्तृत रूप में सम्पन्न करना पड़ता है कि वह सभी को प्रत्यक्ष रूप से नहीं कर सकती। यही कारण है कि नागरिकों और मन्त्रियों के बीच एक नई प्रकार की मध्यस्थ शक्ति उदित हो गई है। यह शक्ति उन लिपिकों की है जो राज्य के लिए पूर्णतः अज्ञात होती है। ये लोग मन्त्रियों के नाम पर बोलते और लिखते हैं तथा उन्हीं की तरह पूर्ण और निरपेक्ष शक्ति रखते हैं। यह अज्ञात रहने के कारण प्रत्येक प्रकार की जाँच से बचे रहते हैं।

4. **स्वतन्त्रता विरोधी के रूप में**—नौकरशाही का उद्देश्य स्वयं की उन्नति समझा जाता है। लास्की के कथनानुसार "यह सरकार की एक ऐसी प्रणाली है जिसका नियन्त्रण अधिकारियों के हाथ में इतने पूर्ण रूप से रहता है कि उनकी शक्ति को सकट में डाल देती है।"

नौकरशाही के उपर्युक्त विभिन्न प्रयोग उसके अर्थ को स्पष्ट करने में पर्याप्त सहायता करते हैं। अमेरिकी एनसाइक्लोपीडिया के अनुसार 'नौकरशाही' संगठन का वह रूप है जिसके द्वारा सरकार ब्यूरो के माध्यम से संचालित होती है। प्रत्येक ब्यूरो कार्य की एक विशेष शाखा का प्रबन्ध करता है। प्रत्येक ब्यूरो का संगठन पद-सोपान से युक्त होता है। इसके शीर्ष पर अध्यक्ष होता है जिसके हाथ में सारी शक्तियाँ रहती हैं। नौकरशाही प्रायः प्रशिक्षित और अनुभवी प्रशासक होते हैं। वे बाहर वालों से बहुत कम प्रभावित होते हैं। उनमें एक जातिगत भावना होती है तथा वे लाल फीताशाही एवं औपचारिकताओं पर अधिक जोर देते हैं।

माइकेल क्रोज़ीयर ने ठीक ही लिखा है कि नौकरशाही शब्द अस्पष्ट, अनेकार्थक और भ्रमोत्पादक है।[1] 18वीं सदी के फ्रांस में शब्दकोषीय अर्थ की दृष्टि से नौकरशाही शब्द सरकारी ब्यूरो के कर्मचारी वर्ग तथा अध्यक्षों के प्रभाव और शक्तियों का परिचायक था। इसी शताब्दी के एक फ्रांसीसी वाणिज्य मन्त्री वी. डी. गोर्ने ने लिखा है कि, "फ्रांस में विधि के शासन के स्थान पर नौकरशाही का शासन (Rule of Bureaucracy) है।" यहाँ कार्यालय और उसके लिपिक, निरीक्षक, सचिव आदि की नियुक्ति जनहित के लिए नहीं की जाती वरन् जनहित की व्यवस्था इसलिए की जाती है कि कार्यालय बने रहें। कालान्तर में नौकरशाही शब्द का प्रयोग ऐसे कार्यालय के लिए होने लगा जिसमें लाल फीताशाही, अनिर्णय, कार्य स्थगन, अकार्यकुशलता आदि दोष परिलक्षित होते हैं। जर्मनी में नौकरशाही को 'ब्यूरोक्रेटी' (Bureaucratie) कहा जाता है। इसका अर्थ विभिन्न सरकारी विभागों तथा उनकी शाखाओं की नागरिकों पर लागू होने वाली शक्ति अथवा सत्ता है। इटली में इस शब्द का शब्दकोषीय अर्थ 'नियोलॉजिज्म' (Neologizm) है जो लोक प्रशासन में अधिकारियों की शक्ति पर जोर डालता है।

डूबिन (Dubin) के मतानुसार "नौकरशाही तब अस्तित्व में आती है जबकि निर्देशन के लिए बहुत सारे लोग होते हैं। ज्यों-ज्यों संगठन का आकार बढ़ता है त्यों-त्यों यह जरूरी बन जाता है कि निर्देश के कुछ कार्य हस्तान्तरित कर दिए जाएँ। यह नौकरशाही के उदय के लिए पहली शर्त है।'

अन संक्षेप में, नौकरशाही का प्रयोग एक प्रकार के प्रशासकीय संगठन या लोक सेवकों की ऐसी सरकार के अर्थ में, जिसका उद्देश्य स्वयं की उन्नति करना हो, या बिल्कुल स्पष्ट व्यावसायिक लोक सेवा के अर्थ में किया जा सकता है। अन्तिम अर्थ में नौकरशाही आधुनिक सरकार के लिए अपरिहार्य है, और वह सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत दोनों ही प्रकार के सम्बन्धों के अन्तर्गत काम करती है। विनोबी के लिए नौकरशाही तीन प्रमुख कार्मिक प्रणालियों में से एक है—(i) नौकरशाही (जो प्रशा में है), (ii) कुलीनतन्त्रीय (जैसा 1914 से पूर्व ब्रिटेन में था), और (iii) प्रजातन्त्रीय (जैसा संयुक्तराज्य अमेरिका में है)। प्रशा की लोक सेवा का स्वरूप सेना व नौसेना के अनुरूप था, अर्थात् उसकी पदावधि सुनिश्चित होती थी, उसके प्रशिक्षण का समुचित प्रबन्ध था, उसमें कठोर अनुशासन था और वह समाज में पृथक तथा विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग माना जाता था। 19वीं शताब्दी की ब्रिटिश लोक सेवा इस अर्थ में कुलीनतन्त्रीय थी कि वहाँ कर्मचारियों की विभिन्न श्रेणियों में तीव्र विभेद थे और निम्न श्रेणी से उच्च श्रेणी तक पहुँचना आसान नहीं था। प्रत्येक श्रेणी एक विशेष आयु वर्ग तथा शैक्षणिक योग्यता पर आधारित थी। लोक सेवा में पृथकता का उक्त भाव आज भी पाया जाता है, यद्यपि उसका रूप उतना कठोर नहीं है। अमरीकी लोक सेवाओं को

1 *Michel Crozier* The Bureaucratic Phenomenon, p 3

परम्परा से ही पेशा नहीं माना जाता है। इसमें अधिक सदस्य होते हैं और आयु-सीमा सम्बन्धी कोई कठोर नियम नहीं होते, न ही किसी सख्या विशेष के ग्रेजुएटों को कोई प्राथमिकता दी जाती है। लेकिन अब स्थिति बदल रही है और संयुक्त राज्य अमेरिका में भी लोक सेवा तीव्र गति से पेशे का रूप धारण करती जा रही है। फिर भी, उच्चतम स्तर के पदों के कुछ भाग आज भी लोक सेवा के क्षेत्र के बाहर हैं।

नौकरशाही की आधुनिक अवधारणाएँ
(The Modern Concepts of Bureaucracy)

नौकरशाही की आधुनिक अवधारणा का प्रस्तुतीकरण मुख्यतः सरचनात्मक (Structural) तथा कार्यात्मक (Functional) दो दृष्टियों से किया गया है। सरचनात्मक दृष्टि से नौकरशाही को एक ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था माना गया है जिसमें पदसोपान विशेषीकरण, योग्य कार्यकर्त्ता आदि विशेषताएँ पाई जाती हैं। कतिपय विद्वानों के कथन इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। कार्ल फ्रेडरिक (Carl Friedrich) ने लिखा है कि "नौकरशाही उन लोगों के पदसोपान, कार्यों के विशेषीकरण तथा उच्चस्तरीय क्षमता से युक्त सगठन है जिन्हें इन पदों पर कार्य करने के लिए प्रशिक्षित किया गया है।"[1] विक्टर थॉमसन (Victor Thompson) के मतानुसार "नौकरशाही सगठन में अत्यधिक स्पष्ट श्रम विभाजन द्वारा पर्याप्त स्पष्ट सत्ता का पदसोपान होता है।"[2] फ्रेडरिग्स के शब्दों में "नौकरशाही एक राजनीतिक अध्यक्ष की सत्ता के अधीन कार्यालयों का पदसोपान है।"[3] फेरेल हेडी का विचार है कि नौकरशाही को देखने का सर्वाधिक उपयोगी तरीका यह है कि उसे कुछ सरचनात्मक विशेषताओं के रूप में देखा जाए। आज विश्व के प्राय सभी देशों की लोकसेवा में नौकरशाही के सभी मापदण्ड प्राप्त करने की चेष्टा की जाती है।

कार्यात्मक दृष्टि से नौकरशाही का अध्ययन सामान्य सामाजिक व्यवस्था की अन्य उप व्यवस्थाओं पर पड़ने वाले नौकरशाही व्यवहार के प्रभाव का अध्ययन है। स्वय नौकरशाही भी इस सामान्य सामाजिक व्यवस्था का एक भाग होती है। माइकेल क्रोजियर (Michel Crozier) के मतानुसार नौकरशाही व्यवहार में धीमापन, प्रक्रिया की जटिलता, रूढ़ीन प्रकृति और प्रशासनिक सगठन के सदस्यों अथवा सेविन व्यक्तियों के लिए कुण्ठाजनक वातावरण आदि बातें शामिल की जाती

1 Bureaucracy is a form of organisation marked by hierarchy, specialisation of roles and a high level of competence displayed by incumbents trained to fill these roles
—*Carl J Friedrich* Man and His Government, 1963, pp 469-70

2 *Victor Thompson* Modern Organisation 1961, pp 3-4

3 "Bureaucracy is the hierarchy of offices under the authority of a (Polit cal) head —*Fridriggs* ' Bureaucratic Politics in Comparative Perspect ve ' Journal of Comparative Administration, I, 1969, p 10

हैं। प्रोफेसर हैरल्ड लॉस्की ने नौकरशाही एक ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था को माना है जिसमें यन्त्रवत् कार्य के लिए उत्कण्ठा, नियमों के लिए लोचशीलता का बलिदान, निर्णय लेने में देरी और नवीन प्रयोगों का अवरोध, रूढ़िवादी दृष्टिकोण आदि बातें प्रभावशाली रहती हैं।[1] ब्लाऊ तथा मेयर की मान्यता है कि नौकरशाही संगठन में विशेषीकरण, सत्ता का पदसोपान, नियमों की व्यवस्था और निर्वैयक्तिकता की विशेषताएँ पाई जाती हैं।[2] एफ एम मार्क्स ने पदसोपान, क्षेत्राधिकार विशेषीकरण, व्यावसायिक प्रशिक्षण, निश्चित वेतन एवं स्थायित्व को नौकरशाही संगठन की विशेषताएँ स्वीकार किया है।[3] ✓

नौकरशाही की आधुनिक अवधारणा का समग्र रूप से हृदयगम करने के लिए यह वांछनीय है कि हम अर्वाचीन लेखकों द्वारा किए गए इस शब्द के विभिन्न अर्थों में प्रयोग पर दृष्टिपात करें। मार्टिन एल्ब्रो (Martin Albro) ने इन विभिन्न अर्थों को मोटे रूप से सात श्रेणियों में विभक्त किया है, जो निम्नलिखित हैं—

(1) नौकरशाही एक तर्कपूर्ण संगठन के रूप में (Bureaucracy as a Rational Organization)

(2) नौकरशाही एक अकार्यकुशल संगठन के रूप में (Bureaucracy as an Organization of Inefficiency)

(3) नौकरशाही अधिकारियों द्वारा शासन के रूप में (Bureaucracy as Rule by Officials)

(4) लोक प्रशासन के रूप में नौकरशाही (Bureaucracy as Public Administration)

(5) अधिकारियों द्वारा प्रशासन के रूप में नौकरशाही (Bureaucracy as Administration by Officials)

(6) संगठन के रूप में नौकरशाही (Bureaucracy as an Organization)

(7) आधुनिक समाजों के रूप में नौकरशाही (Bureaucracy as Modern Societies)

1 "...Passion for routine, the sacrifice of flexibility to rule, delay in decision making and conservative outlook inhibiting experimentations
—*H J Laski*: Bureaucracy, Encyclopaedia of Social Sciences, III, p 70

2 "These four factors—specialization, a hierarchy of a authority, a system of *rules and impersonality are the basic characteristic of bureaucratic* organisation" —*Blau and Meyer* op cit, p 9

3 "The type of organisation called bureaucratic in this now widely used sense has several unmistakable characteristics They include as principal factors hierarchy, jurisdiction, specialisation, professional training, fixed *compensation and permanence* —*Fritz Morstein Marx*: *op cit*, p 22

नौकरशाही शब्द के उक्त सभी प्रयोगों में मैक्स वेबर, पीटर ल्यूनार्ड, फ्रांसिस तथा स्टोन, मार्शल डिमॉक, माइकेल क्रोजियर, जे ग्रो वान्ड, आरनोल्ड ब्रेक्ट, वी. एफ हूजेलिज, हैनीमेन, फेरेल तथा हैडी, कार्ल मॉनहीम जैसे विद्वानों ने अपना योगदान किया है। नौकरशाही शब्द के विभिन्न प्रयोगों और अर्थों को देख कर यह कहा जा सकता है कि निश्चय ही यह शब्द पर्याप्त अस्पष्ट और अनेकार्थक है। आश्चर्य और भ्रम की बात यह है कि कभी-कभी इस शब्द का प्रयोग ऐसे अर्थ में भी किया जाता है जिसका पहले से कोई संकेत नहीं दिया गया हो। इस प्रसंग में एफ एम. मार्क्स का यह मत पूर्णत सही प्रतीत होता है कि "करोड़ों लोगों ने नौकरशाही शब्द नहीं सुना है किन्तु जिस किसी ने भी सुना है वह या तो इसके प्रति शंकालु है अथवा यह समझता है कि नौकरशाही शब्द किसी न किसी बुरी बात से सम्बन्धित है। यद्यपि पूछे जाने पर वह इसका सही अर्थ बताने से कतराएगा किन्तु यह अवश्य कह देगा कि इसका मतलब कोई बुरी बात है।"[1]

मैक्स वेबर के विचार (Ideas of Max Weber)

नौकरशाही की आधुनिक अवधारणा के जनक जर्मन समाजशास्त्री मैक्स वेबर (1864–1920) ने इसे प्रशासन की तर्कपूर्ण (Rational) व्यवस्था माना है। उनके मतानुसार संस्थागत मानव व्यवहार में तर्कपूर्णता लाने का सर्वोत्तम साधन नौकरशाही है। नौकरशाही के आदर्श रूप (Ideal Type) की कतिपय विशेषताओं का वर्णन मैक्स वेबर ने किया है। साथ ही यह धारणा भी प्रकट की है कि यदि वास्तविक जगत् के किसी संगठन में ये विशेषताएँ उपलब्ध न हों तो यह आदर्श रूप का दोष नहीं है वरन् यह इस बात का प्रतीक है कि उस संगठन का उतने ही अंशों तक नौकरशाही नहीं हो सका है। अपनी आदर्श विशुद्धता में यह आदर्श रूप यथार्थ जगत् में कभी उपलब्ध नहीं होता।[2] मैक्स वेबर द्वारा वर्णित ये विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) स्पष्ट श्रम विभाजन (**Clearcut Division of Labour**)—नौकरशाही संगठन के सभी कर्मचारियों के बीच कार्य का सुनिश्चित तरीके से स्पष्ट वितरण किया जाता है तथा प्रत्येक कर्मचारी को अपना कार्य प्रभावशाली रूप से सम्पन्न करने के लिए उत्तरदायी बनाया जाता है।

(ii) आदेश तथा दायित्वों के मर्यादित क्षेत्रों से युक्त पदसोपानीय सत्ता संरचना (**Hierarchial Authority Structure with Limited Areas of Command and Responsibility**)—नौकरशाही संगठन पदसोपान के सिद्धान्त का अनुशीलन करता है। तदनुसार प्रत्येक अधीनस्थ कार्यालय एवं कर्मचारी उच्चतर कार्यालय एवं कर्मचारी के नियन्त्रण में रहता है। अधीनस्थ कर्मचारी के दायित्वों का समुचित निर्वाह कराने हेतु प्रत्येक उच्च अधिकारी को वांछनीय सत्ता

1 *Fritz Morstein Marx* The Administrative State, 1957 pp 16-17
2 *Max Weber*: On the Methodology of Social Sciences, Glencoe, III, 1949, pp 90-93

प्रदान की जाती है जिसका प्रयोग करते हुए वह अपने अधीनस्थों को आवश्यक निर्देश तथा आदेश जारी कर सकता है।

(iii) अमूर्त नियमों की संगत व्यवस्था (Consistent System of Abstract Rules)—नौकरशाही संगठन में तकनीकी नियमों अथवा नॉर्म्स के आधार पर कार्यालय की समूची कार्यवाही का नियमन किया जाता है। कार्यालय के सभी कर्मचारियों को इन नियमों तथा नॉर्म्स का समुचित प्रशिक्षण दिया जाता है। *ऐसा प्रशिक्षण नौकरशाही संगठन में प्रवेश की पूर्व शर्त भी बना दिया जाता है।* संगठन में अमूर्त नियमों की एक संगत व्यवस्था होने के कारण कार्यों में एकरूपता बनी रहती है तथा विभिन्न कार्यों के बीच समन्वय करना सरल हो जाता है।

(iv) प्रत्येक कार्यालय के स्पष्टतः परिभाषित कार्य (Clearly Defined Functions of Each Office)—कानूनी रूप से प्रत्येक पद के कार्यों को परिभाषित एवं मर्यादित कर दिया जाता है ताकि कोई किसी के कार्यों में हस्तक्षेप न करे।

(v) स्वतन्त्रता संविदा के आधार पर अधिकारियों की नियुक्ति (Officials Appointed on the Basis of Free Contract)—नौकरशाही संगठन में प्रत्येक *कर्मचारी के साथ स्वतन्त्र समझौता किया जाता है। कोई व्यक्ति किसी के दबाव या* बाध्यता के कारण पद ग्रहण नहीं करता।

(vi) तकनीकी योग्यताओं के आधार पर प्रत्याशियों का चयन (Candidates are Selected on the Basis of Technical Qualifications)—नौकरशाही संगठन के कर्मचारी निर्वाचित नहीं होते वरन् योग्यता परीक्षाओं द्वारा उनकी तकनीकी योग्यता जाँचने तथा आवश्यक प्रशिक्षण सम्बन्धी प्रमाण-पत्र देखने के बाद उनकी नियुक्ति की जाती है।[1]

संगठन के कर्मचारियों को मनमाने रूप में हटाने के विरुद्ध सुरक्षाएँ प्रदान की जाती हैं। नौकरशाही सेवा एक आजीवन व्यवसाय बन जाती है। इसमें वरिष्ठता एवं योग्यता के आधार पर पदोन्नति की व्यवस्था की जाती है, तथा कर्मचारीगण संगठन के साथ एकरूपता स्थापित करके उसके लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में अधिक प्रयत्नशील रहते हैं।

(vii) वेतन एवं पेंशन अधिकार (Monthly Salary and Pension Rights)—नौकरशाही संगठन में संगठन की आय के आधार पर कर्मचारी का वेतन तय नहीं किया जाता वरन् पदसोपान में उसका स्तर, पद के दायित्व, सामाजिक स्थिति आदि बातों का ध्यान रख कर तय किया जाता है।

(viii) पूर्वकालीन पदाधिकारी (Official Post is the Sole Occupation)—*नौकरशाही संगठन का प्रत्येक कर्मचारी अपने कार्यालय को अपना पूरा*

[1] Max Weber in 'Reader in Bureaucracy', ed by Robert K. Merton and Other, 1952, p 22

समय प्रदान करता है। अवैतनिक रूप से अथवा आंशिक समय में काम करने वाले कर्मचारी द्वितीय स्तर के माने जाते हैं।

(ix) आजीवन व्यवसाय (Career Service)—ऐसे सगठन में प्रत्येक कर्मचारी अपने पद को आजीवन बना लेता है। वरिष्ठता या कार्य-सम्पन्नता के आधार पर उसकी पदोन्नति होती रहती है।

(x) अधिकारीगण प्रशासन के साधनों का स्वामित्व नहीं करते (Officials are Separated from Ownership of Means of Administration)—नौकरशाही सगठन का प्रत्येक पदाधिकारी प्रशासन के साधनों के स्वामित्व से अलग रहता है। वह अपनी पद स्थिति का विनियोग नहीं कर सकता।

(xi) औपचारिक निर्वैयक्तिकता की भावना (A Spirit of Formalistic Impersonality)—वेबर के मतानुसार नौकरशाही सगठन का एक आदर्श अधिकारी अपने कार्यालय का सचालन औपचारिक निर्वैयक्तिकता की भावना से करता है। तदनुसार वह न तो किसी के प्रति घृणा या दुर्भाव रखता है और न ही किसी के प्रति लगाव या उत्साह प्रकट करता है। यह दृष्टिकोण अधिकारियों को सभी व्यक्तियों के प्रति समान आचरण करने को प्रोत्साहित करता है। फलत सगठन के कार्य निष्पक्ष एव न्यायपूर्ण बन पाते हैं।

(xii) कठोर एव व्यवस्थित अनुशासन तथा नियन्त्रण (Strict and Systematic Discipline and Control)—नौकरशाही सगठन के किसी भी पदाधिकारी को अनियन्त्रित अथवा स्वच्छन्द नहीं होने दिया जाता। यहाँ नियन्त्रण तथा अनुशासन की उपयुक्त व्यवस्था की जाती है। यहाँ शक्ति वितरण किया जाता है तथा उत्तरदायित्व एक से अधिक निकायों के बीच बाँट दिए जाते हैं। नौकरशाही पर कार्यपालिका, व्यवस्थापिका एव न्यायपालिका के समुचित नियन्त्रण की व्यवस्था की जाती है।

(xiii) अधिकतम कार्यकुशलता (Highest Degree of Efficiency)—मैक्स वेबर के कथनानुसार अनुभव से ज्ञात होता है कि विशुद्ध नौकरशाही प्रकार का सगठन तकनीकी दृष्टि से अधिकतम कुशलता प्राप्त करने में समर्थ है।[1] कार्यकुशलता एव कार्य की गति की दृष्टि से एक नौकरशाही सगठन तथा गैर-नौकरशाही सगठन में वही अन्तर है जो मशीनी उत्पादन तथा हाथ से किए जाने वाले उत्पादन के बीच होता है। यह कार्यकुशलता कई कारणों का परिणाम है, जैसे—प्रत्येक कर्मचारी अपने कार्य का विशेषज्ञ होता है, वह पक्षपातहीन रूप से कार्य करता है, उनके कार्यों में उचित समन्वय तथा नियन्त्रण रहता है, कार्यों में यान्त्रिकता एव पहल का अभाव होने के कारण ये द्रुतगामी बन जाते हैं आदि।

1 *Max Weber* : The Theory of Social and Economic Organisation, translated by A. M. Handerson and Talcott Parsons, 1947, p. 337.

मैक्स वेबर के विचारों की आलोचना
(Criticism of the Ideas of Max Weber)

नौकरशाही के अध्ययन तथा विवेचन में मैक्स वेबर का योगदान एक पथ-प्रदर्शक का रहा है। उसके द्वारा प्रस्तुत विश्लेषण की प्रतिक्रिया स्वरूप समाजशास्त्रियों तथा लोक प्रशासन के विद्वानों द्वारा भारी आलोचनाएँ प्रस्तुत की गई हैं। आलोचकों के मतानुसार वेबर ने अपनी सैद्धान्तिक अवधारणा में अनेक सामान्यीकरण किए हैं किन्तु अनुभववादी तथ्यों के आधार पर इनका औचित्य सिद्ध करने के प्रति वह नितान्त उदासीन तथा अरुचिपूर्ण रहा है। वेबर की मान्यताओं के विरुद्ध प्रमुख आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं—

1. वेबर द्वारा प्रस्तुत अवधारणा में अनेक विरोधाभास एवं तनाव हैं। उदाहरण के लिए, तकनीकी दृष्टि से विशेषज्ञ एक नवागन्तुक कर्मचारी केवल वरिष्ठता के कारण पदसोपान में उच्च पदाधिकारी के आदेश का पालन नहीं कर सकेगा। जो तत्त्व एक दृष्टि में संगठन की कार्यकुशलता को बढ़ाते हैं वे ही अन्य दृष्टि से उसकी कार्यकुशलता को चुनौती भी देते हैं।

2. वेबर के विचार उपकल्पना के रूप में हैं, उनका कोई गवेषणात्मक आधार नहीं है। वह मानव मनोविज्ञान, व्यक्ति के अनौपचारिक सम्बन्ध तथा औपचारिक प्रभावों पर विशेष ध्यान नहीं देता।

3. उसके चिन्तन में ऐसी विश्लेषणात्मक श्रेणियों का अभाव है जो *नौकरशाही के विभिन्न संगठनात्मक अंगों के बीच क्रिया-प्रतिक्रियाओं को प्रदर्शित कर सकें।*

4. वेबर द्वारा प्रयुक्त आदर्श रूप (Ideal Type) शब्द ही दुर्भाग्यपूर्ण है। नौकरशाही में कुछ भी आदर्श नहीं है।[1]

5. यदि नौकरशाही के 'आदर्श रूप' की समस्त विशेषताएँ भी किसी संगठन में एक साथ अपना ली जाएँ तो भी वे अनिवार्यतः अधिकतम कार्यकुशलता पैदा नहीं कर पातीं क्योंकि यथार्थ में संगठन की कार्यकुशलता का निर्धारण कुछ विशेष संगठनात्मक स्थितियों द्वारा होता है, जैसे—कार्यकर्त्ताओं का तकनीकी स्तर, संगठन के लक्ष्य तथा संगठन का सामाजिक वातावरण, आदि।[2]

6. मैक्स वेबर ने अपने 'आदर्श रूप' का प्रयोग एक अवधारणात्मक औजार के रूप में किया है जिसकी सहायता से हम सामाजिक परिवेश को भली प्रकार समझ सकें तथा आदर्श रूप एवं मूर्त स्थिति का विश्लेषण कर सकें। आलोचकों का कहना है कि नौकरशाही के क्षेत्र में वास्तविकता को समझने के लिए आदर्श

1 *C J Friedrich* : 'Some Observations of Weber's Analysis of Bureaucracy' in Robert K. Merton op cit, p 33

2 *Nicos P Mouzelis* Organisation & Bureaucracy An Analysis of Modern Theory, 1967, p 48

रूप की आवश्यकता नहीं है वरन् आदर्श मॉडल बनाने के लिए वास्तविकता का कुछ ज्ञान आवश्यक है।

7. वेबर ने नौकरशाही के पूर्णत औपचारिक रूप का अध्ययन किया है तथा सामयिक घटनाओं या अनौपचारिक सम्बन्धों को केवल प्रसंगवश मान कर छोड़ दिया है जबकि तथ्य यह है कि अनौपचारिक कार्य एवं सम्बन्ध औपचारिक संगठन के सुचारु कार्य संचालन के लिए अति आवश्यक हैं।

8. वेबर ने माना है कि उसके द्वारा वर्णित आदर्श रूप या औपचारिक संगठन ही पूर्णत संगठन है। यह मत वास्तविक तथ्यों के आधार पर असत्य साबित होता है।

इस प्रकार वेबर द्वारा प्रस्तुत नौकरशाही के आदर्श रूप की अवधारणा आलोचकों के तीखे प्रहारों का शिकार बनी है। आलोचकों ने वेबर की प्रणाली, उसके लक्ष्य तथा उसके 'आदर्श रूप' की अवधारणा का अनेक कसौटियों पर मूल्यांकन किया है। इतने पर भी नौकरशाही के अध्ययन में वेबर का अद्वितीय स्थान है। इनके कटु आलोचक फ्रेडरिक ने उनकी प्रतिभा को स्वीकार करते हुए उसे *अध्ययन की महत्वपूर्ण दिशाएँ खोलने वाला बताया है।*[1]

नौकरशाही का स्वरूप प्रत्येक राष्ट्र में भिन्न होता है क्योंकि यह वहाँ के समाज की संस्थाओं तथा मूल्यों की अभिव्यक्ति करती है। नौकरशाही की एक सामान्य विशेषता यह है कि यह परिवर्तन का विरोध और शक्ति की कामना करती है। मैक्स वेबर ने बड़े आकार के संगठन का एक आदर्श रूप प्रस्तुत किया है। यह आदर्श (माडल) अनुसन्धान का एक प्रभावशाली साधन है तथा नौकरशाही का विश्लेषण प्रारम्भ करने का स्थल है।

नौकरशाही के विकास के स्रोत
(Sources of the Growth of Bureaucracy)

नौकरशाही के विकास के लिए उत्तरदायी अनेक स्रोत अथवा परिस्थितियाँ हैं। इनमें से कुछ निम्न हैं—

(i) संगठनात्मक एवं कानूनी स्रोत (Organizational and Legal Sources)—संगठन के आकार की वृद्धि के कारण नौकरशाही का विकास स्वाभाविक बन गया है। बड़ी सेनाएँ और बड़े आकार के सरकारी संगठनों में पद-सोपान का होना बहुत जरूरी होता है। पद सोपान बनने के बाद धीरे-धीरे उसमें विशेषीकरण एवं औपचारिकताओं का विकास होने लगता है और यही मिलकर नौकरशाही का निर्माण करती हैं।

(ii) बौद्धिकता एवं विशेषीकरण (Rationalization and Specialization)—जब संगठन में श्रम विभाजन किया जाता है और प्रशासकीय यन्त्र का विकास होता है तो इसके फलस्वरूप संगठन में सत्ता की अव्यक्तिगत धारा और

1 *Carl J Friedrick* op cit, p 33.

सचार का अव्यक्तिगत मार्ग बनने लगता है। तकनीकी विशेषज्ञो द्वारा जो प्रक्रियाएँ एव व्यवस्थाएँ निर्मित की जाती हैं वे कुछ समय बाद अपने आप मे लक्ष्य बन जाती हैं। यह नौकरशाही के विकास के लिए एक अन्य परिस्थिति है।

(iv) मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक (Psychological and Cultural)—लोगो मे सुरक्षा और व्यवस्थित जीवन की इच्छा होती है जो नौकरशाही प्रवृत्तिया क विकास का कारण बनती है। जीनिंग्स ने बताया है कि अधिकारीगण नियमो एव प्रक्रियाओ द्वारा अपने वातावरण को नियन्त्रित करके सुरक्षा की खोज करते है। इस सम्बन्ध मे अनेक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त निरूपित किए जा सकते हैं तथा अनेक सांस्कृतिक व्याख्याएँ सम्भव हैं। यदि हम प्राचीन समाजो एव नवीन वैज्ञानिक समाजो म नागरिक सेवा के विकास का तुलनात्मक अध्ययन करें तो यह बात स्पष्ट हो जाएगी। जिस समाज मे परम्पराओ और रीति-रिवाजो को आदर दिया जाता है उसमे नौकरशाही का विकास सुगमतापूर्वक होता है। यह आदर धार्मिक, सैनिक, राजनीतिक अथवा दार्शनिक किसी भी प्रकार की परम्परा के लिए हो सकता है।

(v) तकनीकी आवश्यकताएँ (Technical Requirements)—यह कहा जाता है कि केवल मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक अथवा जैविक आवश्यकताएँ कितनी ही क्यो न हो, नौकरशाही का विकास उस समय तक नही हो सकता जब तक उसकी कुछ पूर्व आवश्यकताएँ पूरी न हो जाएँ। पूर्व आवश्यकताएँ क्या होनी चाहिए, इस सम्बन्ध म निश्चित रूप स कुछ नही कहा जा सकता, फिर भी कुछ ऐसी सामान्य बातो का उल्लेख किया जा सकता है जो न्यायोचित प्रतीत होती हैं। नौकरशाही के विकास के लिए एक स्थायी कर व्यवस्था होनी चाहिए ताकि नौकरशाही क सचालन के लिए आवश्यक धन प्राप्त हो सके। इसके अतिरिक्त समाज म कानून के पालन की आदत हो तथा पूर्णतया शान्ति-व्यवस्था हो। लोग नौकरशाही के नियमो का पालन उस समय तक नही करेंगे जब तक कि वे कानून एव व्यवस्था का सम्मान न करें।

(vi) उपयुक्त कार्यों का होना (Existence of Suitable Tasks)—नौकरशाही का विकास वहाँ होता है जहाँ करने के लिए ऐसे कार्य हो जिनमे विशेषज्ञो, प्रशासको के साधनो तथा सेवाओ की पुनरावृत्ति की आवश्यकता हो। जहाँ ये विशेषताएँ प्राप्त नही होती वहाँ प्रशासन मे नौकरशाही का समावेश नही हो पाता।

स्पष्ट है कि नौकरशाही विभिन्न स्रोतो से विकास की प्रेरणा लेती है। सक्षेप मे हम कह सकते हैं कि 'नौकरशाही' बडे रूप के प्रशासन की आवश्यकता है, यह एक बौद्धिक व्यवस्था है जो अधिकतम परिणाम उत्पन्न कर सकती है, इसके द्वारा तकनीकी शासन स्थापित करने की चेष्टा की जाती है, वह समाजवाद, पूँजीवाद, राज्य राजनीतिक व्यवस्था म उपयुक्त है। व्यावहारिक सरकार का मूलमन्त्र नौकरशाहीपूर्ण प्रशासन है।

नौकरशाही की विशेषताएँ
(Characteristics of Bureaucracy)

किसी भी समाज में नौकरशाही पूर्ण होने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें थोड़ा बहुत विशेषीकरण (Specialization) तथा बौद्धिकीकरण होना चाहिए। नौकरशाही के विकास के स्रोतों का अध्ययन करने के अतिरिक्त उसकी कुछ सामान्य विशेषताओं का अध्ययन करके इसका अर्थ स्पष्टत समझा जा सकता है। ये निम्नवत् हैं—

कार्यों का बौद्धिकतापूर्ण विभाजन—मैक्स वेबर द्वारा प्रतिपादित मॉडल में नौकरशाही की एक मुख्य विशेषता यह है कि इसमें बौद्धिकता प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है अर्थात् यह प्रयत्न होता है कि नियोजित एवं बौद्धिकतापूर्ण कार्य की व्यवस्था की जाए। ऐसे संगठन में बौद्धिकतापूर्ण श्रम-विभाजन होता है तथा प्रत्येक पद को कानूनी सत्ता प्रदान की जाती है ताकि वह अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर सके। फिफनर ने नौकरशाही को परिभाषित करते हुए बताया है कि यह कार्यों एवं व्यक्तियों का एक विशेष रूप में व्यवस्थित संगठन है जो समूह के लक्ष्यों को प्रभावी रूप से प्राप्त कर सके। व्यक्ति के व्यवहार को नियमों, दशाओं और व्यवहारों द्वारा एक विशेष रूप दिया जाता है। प्रत्येक स्थान पर अधिकतम की प्राप्ति का नियम अपनाया जाता है। भविष्यवाणी करने की योग्यता, स्तरीकरण एवं निश्चितता को पर्याप्त मूल्य दिया जाता है। उदाहरण के लिए, सैनिक अनुशासन को लिया जा सकता है। फ्रेडरिक डायर तथा जॉन डायर के कथनानुसार "नौकरशाही में कार्य अथवा उत्तरदायित्व के क्षेत्र कठोरता के साथ परिभाषित, विशेषीकृत और उपविशेषीकृत कर दिए जाते हैं।"

तकनीकी विशेषज्ञता—नौकरशाही की अन्य महत्वपूर्ण व्यवस्था विशेषीकरण है। नौकरशाही के जन्म का एक कारण तकनीकी कुशलता की आवश्यकता भी है। एक विशेष कुशलता में प्रशिक्षित, उसे बार-बार दोहराने वाला तथा अपने पद को आजीवन मानने वाला अधिकारी एक विशेष कार्य में योग्य बन जाता है। यह विशेषीकरण इस तथ्य द्वारा और भी अधिक बढ़ा दिया जाता है जब सेवा में प्रवेश और प्रगति के लिए एक विशेष कार्य में तकनीकी योग्यता एवं अनुभव आवश्यक माने जाते हैं। इस प्रकार नौकरशाही विशेषीकरण का कार्य एवं परिणाम दोनों है।

कानूनी सत्ता—नौकरशाही संगठन में अधिकारियों की सत्ता कानून पर आधारित होती है। कानून के अनुसार प्रत्येक अधिकारी उन कार्यों को सम्पन्न करने के लिए उत्तरदायी होता है। अधिकारी को कुछ बाध्यकारी साधन प्रदान किए जाते हैं।

पद-सोपान का सिद्धान्त—नौकरशाही संगठन में कुछ स्तर होते हैं। स्तरों में शीर्ष का नेतृत्व, मध्यवर्ती प्रबन्ध, पर्यवेक्षक एवं कार्यकर्ता आदि के पद-सोपान बना दिए जाते हैं।

कानूनी रूप से कार्य-संचालन—नौकरशाही में सरकारी अधिकारी कानूनी

रूप से कार्य करते हैं, इसलिए संगठन में लोचहीनता बढ़ जाती है। सरकारी अधिकारियों का व्यवहार कानून के शासन (Rule of Law) से सम्बंधित रहता है, अत व्यक्तिगत अधिकारों को प्रभावित करने वाले प्रशासनिक कार्य स्वेच्छा अथवा व्यक्तिगत निर्देश पर आधारित रहने की अपेक्षा परम्पराओं पर आधारित रहते हैं। विल्नर तथा प्रीस्थम के कथनानुसार "सरकारी अधिकारियों को अपने प्रत्येक कार्य का औचित्य कानून या प्रशासनिक नियमों एवं कानूनी आदेशों के आधार पर सिद्ध करना चाहिए। जिस क्षेत्र में प्रशासकों को स्वेच्छा दी जाती है उसमें भी नागरिक को कुछ अधिकार सौंपे जाते हैं। नागरिकों को प्रशासनिक निर्णय की सूचना दी जाती है उनकी सुनवाई की जाती है और न्यायालय में निर्णयों के विरुद्ध अपील करने का अवसर दिया जाता है। अधिकारियों के व्यवहार को सचालित करने वाले नियम तकनीकी आदर्श भी हो सकते हैं।"

प्रशासनिक कानून, नियम, निर्णय आदि लिखित रूप में निरूपित और अभिलेखित किए जाते हैं। विभिन्न अधिकारियों द्वारा शक्ति का प्रयोग भिन्न-भिन्न रूपों में किया जा सकता है तो भी उनके बीच समन्वय रहता है।

स्टॉफ की प्रकृति—नौकरशाही व्यवस्था के अन्तर्गत स्टॉफ का एक परिभाषित क्षेत्र एवं स्थिति होनी है। ये अधिकारी तकनीकी योग्यताओं के आधार पर नियुक्त किए जाते हैं। इनका पारस्परिक सम्बन्ध स्वतन्त्र और समझौतापूर्ण होता है। सभी अधिकारी अपने पद को आजीवन सेवा के रूप में ग्रहण करते हैं। इनके बीच एक कठोर तथा व्यवस्थित अनुशासन रहता है। संगठन के समस्त कर्मचारी, अधिकारी और कार्यकर्त्ता अपनी स्थिति या पद के स्वामी नहीं होते। वे मूल रूप में वेतन भोगी लोग होते हैं। संगठन में व्यक्ति को नहीं वरन् कार्य को नियन्त्रित किया जाता है और उसी का भुगतान किया जाता है। यह जरूरी है कि व्यक्ति कार्य के अनुरूप अपने आपको ढाले।

मूल्य व्यवस्था—प्रशासक अपने साथियों के प्रभावपूर्ण मतों एव सांस्कृतिक मूल्यों से मर्यादित होते हैं। सामान्यत वे ऐसी मूल्य-व्यवस्था विकसित कर लेते है जो संगठन में उनके कार्यों के अनुरूप होती है। इस प्रकार अधिकारियों का जो दृष्टिकोण बनता है, वह उनके कार्यों को प्रभावित करता है। वे अपनी व्यावसायिक योग्यताओं पर विशेष जोर देकर नैतिक बल को ऊँचा उठाने का प्रयास करते हैं। नौकरशाही का अस्तित्व उनके विशेषज्ञ होने तथा उस रूप में कार्य करने पर निर्भर करता है। नौकरशाही में स्वामिभक्ति किसी व्यक्ति के प्रति नहीं वरन् अव्यक्तिगत कार्यों के प्रति होती है। सिद्धान्त रूप से नौकरशाही को निरपेक्ष माना जाता है, किन्तु व्यवहार में उस पर राजनीतिक दल आदि किसी भी सस्था का प्रभाव हो सकता है। दूसरे लोगों की तरह नौकरशाहों की भी राजनीतिक विचारधारा होती है जो उनके निर्णयों को प्रभावित करती है। सामान्य रूप में यह कहा जा सकता है कि सरकारी अधिकारी व्यावसायिक विशेषता एव योग्यता को सुरक्षा एव निश्चित आय से बदल लेते हैं।

अन्त मे नौकरशाही-स्थिति मे एक कार्यालय होता है जिसे एक आजीवन व्यवसाय के रूप मे देखा जाता है। इस कार्यालय की कुछ शक्तियाँ होती हैं। एक व्यक्ति के रूप मे नौकरशाही की सत्ता तथा उसके द्वारा वास्तव मे प्रयुक्त की जाने वाली शक्तियो के बीच प्राय अन्तर रहता है। कार्य से अलग होने पर नौकरशाह के पास साधारण व्यक्ति से अधिक शक्तियाँ नही होतीं। उसकी सत्ता उस प्रबंधकिक कार्यालय की सत्ता है जिसमे वह कार्य करता है।

लालफीताशाही—नौकरशाही की एक विशेषता इसमे लालफीताशाही अथवा अनावश्यक औपचारिकता अपनाया जाना है। लालफीताशाही को हम नियमो-विनियमो के पालन मे आवश्यकता से अधिक बारीकी की प्रवृत्ति कह सकते हैं। जब लालफीताशाही बहुत बढ जाती है तो प्रशासन मे लचीलापन समाप्त हो जाता है। फलस्वरूप प्रशासकीय निर्णयो म देरी होती है और प्रशासकीय कार्यों के सचालन मे सहानुभूति सहयोग आदि का महत्त्व गौण हो जाता है। लालफीताशाही नौकरशाही को कठोर, यन्त्रवत् और अत्यन्त अनौपचारिक कार्यविधि बना देती है।

प्रो फ्रेडरिक ने नौकरशाही के 6 लक्षण अथवा सिद्धान्त बतलाए हैं जो इस प्रकार हैं—(1) कार्यों का विभिन्नीकरण, (2) पद-योग्यताएँ, (3) पद-सोपान-क्रम सगठन एव अनुशासन, (4) कार्यविधि की वस्तुनिष्ठता, (5) लालफीताशाही एव (6) प्रशासकीय कार्यों की गोपनीयता।

नौकरशाही मे आधुनिक प्रवृत्तियाँ

(Recent Trends in Bureaucracy)

भौतिक एव वैचारिक वातावरण मे आए अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तनो ने नौकरशाही सगठन के रूप और प्रक्रिया पर गम्भीर प्रभाव डाला है। नौकरशाही सगठन एक गत्यात्मक सस्था है। इसकी विशेषताएँ सदैव एक जैसी नही रहती वरन् राजनीतिक परिवर्तनो, वैज्ञानिक एव तकनीकी आविष्कारो, मानव मूल्य के नए सन्दर्भों और परिवर्तित समस्याओ की चुनौती द्वारा इसके लक्ष्य, सगठन, प्रक्रिया, औचित्य आदि को पर्याप्त बदला जाता है। वर्तमान नौकरशाही मे जो नवीन प्रवृत्तियाँ दिखाई देती है, वे सक्षेप मे निम्नलिखित हैं—

1. अधिकाधिक विशेषीकरण (Greater Specialisation)—नवीन प्रश्नो और समस्याओ का समाधान करने के लिए सम्पूर्ण नौकरशाही सगठन को छोटी इकाइयो में विभाजित कर दिया जाता है। प्रत्येक इकाई का दायित्व एक विशेषज्ञ अधिकारी को सौंपा जाता है। कालान्तर मे प्रत्येक विशेष इकाई व्यापकता ग्रहण कर लेती है। उसमे ज्ञान की नई दिशाएँ खुलती है और जिज्ञासा का क्षेत्र व्यापक बनता है। व्यक्तिगत अध्ययन के साथ ही नौकरशाही में विशेषीकरण की प्रवृत्तियाँ बढती चली जाती हैं।

2. सदस्यों के बीच अन्तर्सम्बन्ध एव पारस्परिक निर्भरता (Inter-relationship and Mutual Dependence Between Incumbants)—प्रत्यधिक विशेषीकरण के फलस्वरूप सगठन के कर्मचारियो के बीच पारस्परिक निर्भरता

रही है। प्रत्येक कर्मचारी के दायित्वों का सफल संचालन दूसरे कर्मचारियों के सन्तोषजनक कार्यों पर आधारित हो गया है। किसी एक कर्मचारी के कार्य में रुकावट आने पर पूरे संगठन की कार्य-प्रक्रिया अस्त व्यस्त हो सकती है।

3. समुन्नत सेवीवर्ग नीतियाँ (**Advanced Personnel Policies**)—संगठन के कार्यों और प्रकृति के परिवेश में अन्तर आने पर कर्मचारियों की भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, सेवा की शर्तें आदि की दृष्टि से नई प्रभावशाली नीतियाँ अपनाई गई हैं। कर्मचारियों की भर्ती के समय प्रवेशार्थियों की योग्यताओं की समुचित जाँच की जाती है। प्रवेश पूर्व प्रशिक्षण के साथ-साथ प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण भी दिया जाता है। कर्मचारियों को कार्य करने के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ प्रदान की जाती है ताकि कार्य में उनकी रुचि और ऊँचा मनोबल बना रहे।

4. नौकरशाही की संरचना और कार्यों में प्रजातान्त्रिक तत्त्व (**Democratic Elements in the Structure and Functions of Bureaucracy**)—राजनीतिक और सामाजिक जीवन में प्रजातान्त्रिक मूल्यों तथा आदर्शों में पला हुआ व्यक्ति जब नौकरशाही संगठन में अपनी भूमिका निभाता है तो इन्हीं मूल्यों से प्रभावित होता है। आज नौकरशाही का झुकाव अधिक से अधिक इस बात की ओर है कि निर्णय-प्रक्रिया में विचार-विमर्श को महत्त्व दिया जाए अन्तिम निर्णय सामूहिक रूप से बहुमत के आधार पर लिए जाएँ, प्रत्येक वर्ग तथा व्यक्ति का उत्तरदायित्व स्पष्ट हो, प्रत्येक को उसके दायित्वों के अनुपात में सत्ता प्रदान की जाए, प्रत्येक सत्ता नियन्त्रित एवं उत्तरदायी हो और पूरा संगठन व्यक्ति के गौरव और महत्त्व को ध्यान में रखते हुए कार्य करे। संगठन की आन्तरिक रूप रचना के साथ-साथ उसके बाह्य सम्बन्ध भी प्रजातान्त्रिक आदर्शों पर आधारित रहते हैं। प्रत्येक नौकरशाही संगठन का मूल लक्ष्य जनहित के लिए कार्य करना है।

5. अनौपचारिकता की ओर झुकाव (**Bend Towards Informality**)—आधुनिक नौकरशाही संगठनों में अनौपचारिक सम्बन्ध निरन्तर बढ़ रहे हैं। कर्मचारियों के सामाजिक स्तर आर्थिक स्थिति वैचारिक दृष्टिकोण मूल्यात्मक संरचना और मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों के परिणामस्वरूप अनौपचारिक सम्बन्धों का प्रसार हुआ है। इनके कारण संगठन का कार्य शीघ्र तथा उचित समय पर सम्पन्न हो पाता है।

6. विचारधारागत प्राथमिकताएँ और संगठित व्यवहार पर उनका प्रभाव (**Ideological Preferences and their Impact on Organisational Behaviour**)—आज नौकरशाही संगठन में कार्य करने वाला कोई भी कर्मचारी पहले की भाँति सीधा-सादा और तटस्थ नहीं है। वह किसी न किसी विचारधारा के अनुकूल और अन्य विचारधाराओं के प्रतिकूल दृष्टिकोण रखता है। संगठन के सदस्यों की विचारधारागत प्राथमिकताएँ उनके आपसी सम्बन्धों को कटु अथवा मधुर बनाने में उल्लेखनीय भूमिका निभाती हैं।

7. एक सुनियोजित और व्यवस्थित मानवीय सम्बन्ध दृष्टिकोण (A Well Planned and Systematic Human Relations Approach)—नौकरशाही सगठन की उपयोगिता एव कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए मानव-सम्बन्धो को सही बनाने की ओर पर्याप्त ध्यान दिया गया है। इसके लिए अनेक शोध किए गए हैं और *उन तरीको एव प्रक्रियाओ को खोजने की चेष्टा की गई है जिन्हे अपनाकर* सभी स्तर के कर्मचारियो के बीच और कर्मचारियो तथा सेवित व्यक्तियो के बीच सम्भावित कटुताएँ मिटाई जा सकें।

एफ. एम. मार्क्स के मतानुसार नौकरशाही के रूप
(Types of Bureaucracy According to F M Marx)

नौकरशाही सगठन का स्वरूप, प्रक्रिया, दृष्टिकोण आदि पर सम्बन्धित देश और काल का उल्लेखनीय प्रभाव पड़ता है। उस देश की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, धार्मिक और वैज्ञानिक परिस्थितियाँ उसके रूप-सधान मे सहयोग देती हैं। यही कारण है कि विभिन्न देशो मे प्रचलित नौकरशाही व्यवस्थाओ का रूप परस्पर भिन्न होता है। एफ एम मार्क्स ने नौकरशाही के इन रूपो को मूलत चार श्रेणियो मे वर्गीकृत किया है—अभिभावक नौकरशाही, जातीय नौकरशाही, सरक्षण नौकरशाही तथा योग्यता नौकरशाही। मार्क्स की मान्यता है कि इन रूपो मे से एक भी किसी देश मे पूरी तरह से उपलब्ध नही होता। *नौकरशाही का 'रूप' एक अमूर्त एव सामान्यीकृत धारणा है। एक जैसी लगने वाली* अनेक चीजों को एक रूप के अन्तर्गत श्रेणीबद्ध कर दिया जाता है।[1] यहाँ हम मार्क्स द्वारा वर्णित नौकरशाही के रूपो की विशेषताओ का सक्षेप मे विवेचन करेंगे।

(1) अभिभावक नौकरशाही
(Guardian Bureaucracy)

नौकरशाही के इस रूप मे नौकरशाही द्वारा एक अभिभावक जैसे दायित्व सम्पन्न किए जाते हैं। वह जन-सामान्य के हितो के लिए सदैव चिन्तित रहती है। यूनानी विचारक प्लेटो की आदर्श राज्य की योजना अभिभावक नौकरशाही का प्राचीन उदाहरण है तथा इसके आधुनिक उदाहरण चीन (960 ई तक) तथा प्रशा (1640 से 1650 तक) की नौकरशाही है। चीन की अभिभावक नौकरशाही की कतिपय विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) प्रशासको के चयन मे प्राचीन ग्रन्थो का प्रभाव,
(ii) प्रशासनिक आचरण का स्रोत एव आधार प्राचीन ग्रन्थ,
(iii) शक्ति सम्पन्न नौकरशाही,
(iv) परम्परावादी एव रूढ़िवादी प्रकृति,
(v) जनहित की समस्याओ से उदासीन।

1 "Type is at once an abstraction and a generalisation a magic box into which we can throw things that look alike and have them come out again as a single composite" —*F M Marx* : op cit, p 54

चीन की अभिभावक नौकरशाही सामान्य हित की रक्षा के लिए समर्पित थी, किन्तु प्रशा मे इसका प्रमुख उद्देश्य राज्य की एकता एव शक्ति की वृद्धि करना था। प्रशा की इस नौकरशाही की कतिपय विशेषताएँ निम्नलिखित थीं—

(i) राज्य के हित मे समर्पित,
(ii) एकीकृत एवं सन्तुलित प्रशासनिक व्यवस्था,
(iii) शिक्षित एव योग्य प्रशासक,
(iv) राजतन्त्र के साथ-साथ मध्यमवर्गीय गुणो का समन्वय,
(v) सजग राजतन्त्र (Enlightened Monarchy) के मूल्यो के अनुरूप,
(vi) जन-भावावेशो के प्रति अनुत्तरदायी।

उपरोक्त विशेषताओं से युक्त प्रशा की अभिभावक नौकरशाही मे एक श्रेष्ठ नौकरशाही के प्रायः सभी गुण विद्यमान थे। मार्क्स के शब्दों मे, "राजा की पक्षपाती एव उसी के माध्यम से जनता की सेवा करने वाली प्रशा की प्रारम्भिक नौकरशाही इस बात पर गर्व कर सकती है कि यह अपने उद्देश्य मे प्रलोचशील तथा ईमानदार, जनता के साथ सम्बन्धो मे सत्तावादी एव सद्भावनापूर्ण तथा बाहरी आलोचनाओ से अप्रभावित बनी रही।"

(2) जातीय नौकरशाही
(Caste Bureaucracy)

नौकरशाही के इस रूप मे सारी सत्ता एक वर्ग या जाति मे केन्द्रित हो जाती है तथा उसके बाहर के लोगो को नौकरशाही मे प्रवेश भी प्राप्त नही हो पाता। किसी जाति विशेष के साथ नौकरशाही का यह गठबन्धन अभिप्रायपूर्ण भी हो सकता है और एक आकस्मिक घटना भी। कुलीनतन्त्रीय प्रशासन प्रणाली मे नौकरशाही का जातिगत रूप नियोजित एव अभिप्रायपूर्ण होता है किन्तु जनतान्त्रिक व्यवस्थाओ में योग्यता पर आधारित होने के कारण यदि नौकरशाही म कुछ जातिगत गुण आ जाएँ तो यह एक अवसरगत स्थिति है। जातीय नौकरशाही की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) शैक्षणिक योग्यता की अनिवार्यता,
(ii) पद एव जाति मे अन्तर्सम्बन्ध,
(iii) सेवा अथवा पद का एक परिवार से जुड जाना,
(iv) दोषपूर्ण समाज व्यवस्था का प्रतीक।

मार्क्स ने जातीय नौकरशाही के पुरातन उदाहरणो मे रोमन साम्राज्य तथा अर्वाचीन उदाहरणो मे जापान के मेजी संविधान का उल्लेख किया है।

(3) संरक्षण नौकरशाही
(Patronage Bureaucracy)

यह नौकरशाही का वह रूप है जिसमे लोक सेवकों की नियुक्ति उनकी तुलनात्मक योग्यता के आधार पर नहीं की जाती वरन् नियोक्ता और प्रत्याशियों के

राजनीतिक सम्बन्धों के आधार पर की जाती है। संयुक्तराज्य अमेरिका में काफी समय तक संरक्षण नौकरशाही का प्रभाव रहा। तदनुसार प्रत्येक नवनिर्वाचित राष्ट्रपति के साथ अनेक कार्य कर रहे उच्च प्रशासनिक पदाधिकारी पदमुक्त कर दिए जाते थे और उनके स्थान पर ऐसे व्यक्तियों की भर्ती की जाती थी जिन्होंने राष्ट्रपति का चुनाव में भारी समर्थन किया हो, जो उसके दल का प्रमुख व्यक्ति हो अथवा अन्य किसी भी कारण से वह राष्ट्रपति को पसन्द हो। अमेरिका में इस नौकरशाही का श्रीगणेश राष्ट्रपति जैक्सन द्वारा किया गया था। संरक्षण नौकरशाही की कुछ मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(1) इसमें कर्मचारियों की भर्ती के समय उनकी शैक्षणिक अथवा व्यावसायिक योग्यता को विशेष महत्त्व नहीं दिया जाता।

(2) लोक सेवाओं से सत्ताधारी दल के कार्यक्रमों एवं नीतियों के साथ प्रतिबद्धता की अपेक्षा की जाती है।

(3) लोकसेवकों का कार्यकाल सुरक्षित नहीं होता। वे अपने पद पर तभी तक कार्य कर सकते हैं जब तक कि उन्हें सत्ताधारी दल का संरक्षण प्राप्त है। यदि दल सत्ता से हट जाए अथवा उसका संरक्षण समाप्त हो जाए तो पदाधिकारी को भी पद से हटा दिया जाता है।

(4) लोकसेवकों का मुख्य कार्य राजनीतिक नेतृत्व को प्रसन्न रखना होता है। वे जनहित के लिए स्वयं पहल नहीं करते और न ही उसे प्राथमिकता देते हैं।

(5) प्रशासन राजनीतिक दृष्टि से तटस्थ नहीं रह पाता। इसके अतिरिक्त अनुशासन, पक्षपात, भ्रष्टाचार, भाई भतीजावाद आदि की समस्याएँ व्यापक बन जाती हैं।

(4) योग्यता नौकरशाही
(Merit Bureaucracy)

नौकरशाही के इस रूप में लोकसेवकों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर की जाती है। योग्यता की जाँच के लिए निष्पक्ष तथा वस्तुगत परीक्षाएँ आयोजित की जाती हैं। इस व्यवस्था में लोकसेवक किसी के अनुग्रह भार से दबा हुआ नहीं रहता तथा सदैव सामान्य हित की अभिवृद्धि में रुचि ले सकता है। यह संरक्षण नौकरशाही के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया है। इसकी कुछ मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(1) योग्यता के आधार पर नियुक्तियों तथा नियुक्तियों की जाँच के लिए लिखित परीक्षाएँ,

(2) कार्यकाल की सुरक्षा,

(3) नियमानुसार निर्धारित वेतन,

(4) निष्पक्ष एवं निर्भयतापूर्ण कार्य संचालन,

(v) राजनीतिक विचारधारा या नीतियों के प्रति प्रतिबद्धता के स्थान पर देश के संविधान एवं अपने कर्त्तव्यों के प्रति सजग,

(vi) कालान्तर में मध्यम वर्ग के हितों की रक्षक।

नौकरशाही को समझने की आवश्यकता
(Need for Understanding)

प्रजातन्त्र में नागरिक और उसकी सरकार के बीच पारस्परिक सहयोग रहना आवश्यक है। राजनीतिक नेताओं और नागरिकों के बीच स्थिर सम्बन्ध के साथ-साथ नागरिक सेवकों तथा नागरिकों के बीच भी सम्बन्ध रहना चाहिए। नौकरशाही को चाहिए कि वह नागरिक को समझे और नागरिकों को चाहिए कि वे नौकरशाही को समझें। समय की माँग है कि नागरिक प्रशासनिक क्रिया को अधिक से अधिक समझें। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें महत्त्वपूर्ण हैं—

नौकरशाही की सीमाएँ—नौकरशाही पर व्यक्तिगत क्षमताओं परिवार, कार्यालय एवं कानून आदि की सीमाएँ रहती है। भर्ती से पहले नागरिक सेवक एक साधारण व्यक्ति होता है और उस कार्यकुशलता में वृद्धि के लिए निरन्तर अपनी योग्यताओं में वृद्धि करनी होती है।

एक अन्य सीमा उन नियमों एवं विनियमों की होती है जिन्हें नागरिक सेवा में वर्षों के इतिहास ने विकसित किया है। नागरिक सेवक अपने स्वयं के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए आर्थिक तथा सामाजिक वातावरण से बहुत कम सहायता ले सकता है। उसके बड़े से बड़े काम को प्रचार यन्त्र द्वारा दबाया जा सकता है।

सरकारी सेवा की नैतिकता—सरकारी सेवा का एक उद्देश्य सरकार के माध्यम से समाज की सेवा है। इस उद्देश्य की पूर्ति गैर-सरकारी क्षेत्र में जाने पर अधिक अच्छी तरह नहीं हो सकती। लोकसेवकों द्वारा स्वामिभक्ति की शपथ नैतिक आचरण संहिता का कानूनी पहलू है जिसके द्वारा सरकारी कर्मचारी अपने कार्य के बारे में निर्देशित होता है। कोई भी प्रशासनिक अधिकारी मनमानी करने के लिए स्वतन्त्र नहीं है। लोकसेवा के उद्देश्य की पूर्ति तभी हो सकती है जब सरकारी कर्मचारी का व्यवहार ईमानदारी पूर्ण हो। वास्तव में नौकरशाही में गोपनीयता अथवा रहस्य की आवश्यकता कम है क्योंकि प्रशासनिक अधिकारी भी गलतियों के शिकार होते है। इन गलतियों की पुनरावृत्ति न हो—इसके लिए तथ्यों का प्रकाशन आवश्यक है।

अधिकारी अनामिता का पर्दा—नागरिक सेवा के बारे में व्याप्त भ्रामक धारणाओं को दूर करने के लिए अधिकारी अनामिता के कारण समझना उपयुक्त है। इस सम्बन्ध में दो पहलू हैं—प्रथम यह कि नौकरशाह अपने स्वामियों को परामर्श देते समय अनाम रहते हैं और दूसरी, वे सरकारी प्रशासन के कार्यों से अपने आप को जनता के साथ एकरूप नहीं करते। कानूनी सरकार के अधीन कार्य में भी प्रशासनिक व्यवस्था के लिए अनामिता' का पर्दा आवश्यक है। यह उस मूल सिद्धान्त

का विरोधी है जिसके अनुसार प्रशासनिक अभिकरण मूल रूप से निष्पक्ष और अव्यक्तिगत साधन होते है जिनके द्वारा सरकार अपने कार्य सम्पन्न करती है। इन अभिकरणो के अधिकारी अपने कार्यों पर अपने व्यक्तित्व की मोहर नहीं लगाते। इसके विपरीत कार्य इतने कुशल होने चाहिए जिनके माध्यम से जनता की इच्छा अभिव्यक्त हो सके।

गलती का भय—अपनी गलतियो की आशका से एक नागरिक अधिकारी जनता से दूर रहने का प्रयत्न करता है। वह अपनी औपचारिकताओ की दीवार बना लेता है। नागरिक भी उस दीवार से परिचित होने लगते हैं। अनाम रहने के कारण अधिकारी अनुचित आलोचनाओ से बच जाते हैं तथा राज्य को वर्षों के अनुभव एव स्वामिभक्तिपूर्ण सेवाओ की प्राप्ति होती रहती है। यदि नौकरशाही अपने कर्त्तव्यो से विमुख होती है तो ऐसी स्थिति मे अभिकरण को जनता का समर्थन प्राप्त होना रुक जाएगा तथा इसकी कीमत लोकसेवक को चुकानी होगी। ऐसे कुछ लोग हमेशा होते हैं जो अपने उद्देश्यो के लिए सरकारी कर्मचारियो पर दोषारोपण करते रहते हैं। यही कारण है कि नौकरशाह जनता को जगली जानवर की तरह देखता है जिससे यथासम्भव बचा जाना चाहिए।

टीम तथा दाँते की मान्यता—नागरिक सेवक और नागरिको के बीच *अनामिता का सम्बन्ध होना चाहिए, किन्तु सगठन के अन्तर्गत* अधिकारियो का पारस्परिक सम्बन्ध टीम तथा दाँते की मान्यता (Concept of Team and Dante) के अनुसार रहना चाहिए। कोई भी प्रशासनिक अभिकरण अपने कार्यों को सम्पन्न करने मे उस समय तक सफल नही हो सकता जब तक उसका स्टाफ एक टीम की तरह काम न करे।

प्रत्येक कर्मचारी का कुछ व्यक्तिगत दायित्व होता है जिसके लिए वह स्वय उत्तरदायी होता है। इतने पर भी उसका व्यक्तिगत दायित्व सरकारी आवश्यकताओ का अधीनस्थ होना चाहिए ताकि परिणाम अभिकरण की सफलता के रूप मे सामने आए। स्टाफ के प्रत्येक सदस्य को यह अनुभव करना चाहिए कि वह जो कुछ भी करता है एक सीमा तक अभिकरण के एक भाग के रूप मे करता है। सगठन के अध्यक्ष की यह एक मुख्य समस्या है कि उसके अधीन कर्मचारियो मे अनुशासन की स्थापना कैसे की जाए ताकि उनका पहल करने का उत्साह न मर जाए।

कई अधिकारी अपने इस दायित्व को सन्तोषजनक रूप से नहीं निभा पाते। वे अपने स्टाफ मे गलती न करने के लिए इतना भय पैदा कर देते हैं कि स्टाफ के सदस्यो की सकारात्मक सहयोग तथा प्रभावशीलता नष्ट हो जाती है। कुछ अधिकारी अपने सेवीवर्ग को इतनी सकीर्ण और कठोर परम्परा मे डाल देते हैं कि उनका व्यवहार सरकारी चक्र मे एक दाँते जैसा बन जाता है। योग्य अधिकारी हमेशा अपने अधीनस्थो को उस सार्वजनिक उद्देश्य को स्पष्ट करने की पहल करते है जिसके लिए यह अभिकरण बनाया गया है। कर्मचारियों के कल्याण और आत्म विकास के

लिए सक्रिय योगदान करके ये अधिकारी स्टाफ के दूसरे सदस्यों में सहयोग की भावना जाग्रत कर देते हैं।

राजनीतिक विचार-विमर्श का दायित्व—नौकरशाह अपने राजनीतिक अध्यक्ष को अधिकारी अनामिता की दृष्टि से परामर्श देता है। प्रत्येक प्रशासनिक अधिकारी-अनामिता का यह मूलभूत दायित्व है कि वह अपनी योग्यता के अनुसार *राजनीतिक प्रमुख को परामर्श दे और इस परामर्श म चाहे कितना ही स्वीकार* किया गया हो वह इसे स्वामिभक्ति और कुशलता के साथ सम्पन्न करे। नागरिक सेवकों में सार्वजनिक नीति-निर्धारण करने की शक्ति नहीं होती और इसलिए उन्हें इसे बनाने का दायित्व नहीं लेना चाहिए। अनामिता के सरक्षण म रहकर नैतिक आचरण की संहिता यह माँग करती है कि वह अपने राजनीतिक प्रमुख की नीति और सामान्य कल्याण के अतिरिक्त और सब कुछ भुला दे।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि नागरिक और नौकरशाही का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। नौकरशाही पूरे राष्ट्र की साकार मूर्ति है और पूरे राष्ट्र को दोषी बनाए बिना इसे दोष नहीं दिया जा सकता।

नौकरशाही और सामाजिक परिवर्तन
(Bureaucracy and Social Change)

नौकरशाही को सामाजिक परिवर्तन के लिए एक असगति माना जाता है। प्रो. लुडविग (Ludwig) के मतानुसार, "एक ही समय में कोई एक सही नौकरशाह तथा नवीन प्रयोगकर्त्ता नहीं हो सकता। प्रगति एक ऐसा तत्त्व है जिसे नियम और विनियम पहले से नहीं देख पाते। यह आवश्यक रूप से नौकरशाही क्रियाओं के क्षेत्र से बाहर है।" स्पष्ट है कि नौकरशाही का एक सदस्य अपनी तरफ से प्राय किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं चाहता, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि नौकरशाही के कार्य सामाजिक परिवर्तन के साधन नहीं हो सकते। नौकरशाही ढाँचे को समय के अनुसार बदला जा सकता है।

नौकरशाही परिस्थितियाँ कई प्रकार से परिवर्तन के प्रति अनुकूल दृष्टिकोण बनाती हैं—

1. उत्तेजनात्मक कठिनाइयों का अस्तित्व नए प्रयोगों के लिए सकारात्मक दृष्टिकोण प्रकट करता है ताकि उत्तेजनाओं को दूर किया जा सके।
2. नागरिक सेवकों का हित उन नई नीतियों के समर्थक हो जाना है जो सगठन का प्रसार चाहती हैं।
3. अधिकांश अधिकारियों की प्रगतिशील विचारधारा उद्देश्यों में नया विश्वास उत्पन्न करती है। ज्यों-ज्यों अभिकरण के मूल उद्देश्य प्राप्त होते जाते हैं त्यों-त्यों इसके सदस्यों की रुचि नवीनता की ओर बढ़ती जाती है।
4. *नौकरशाही उत्तरदायित्व की कठोर सीमाएँ होती हैं* और इसलिए नई नीतियों को अपनाने पर नागरिक सेवकों का काम नहीं बढ़ता। वे बिना किसी भय के इन नीतियों का समर्थन कर सकते हैं।

5 लम्बे समय तक कार्य करने के बाद अधिकारी अपने काम में कुशल हो जाते हैं, इसलिए वे भी कार्यों में परिवर्तन से उत्पन्न हुई समस्याओं का स्वागत करते हैं ताकि उनका कार्य अधिक दिलचस्प बन सके। कम योग्य अधिकारी स्थित प्रक्रिया के उस भाग का कठोरता के साथ पालन करते हैं जिसके साथ वे परिचित है। यही कारण है कि वे प्रक्रिया सम्बन्धी परिवर्तनों का विरोध करते हैं, यद्यपि नीति में परिवर्तनों का वे भी समर्थन करते हैं। नागरिक-सेवकों का पद सुरक्षित रहता है और इसलिए वे परिवर्तन के प्रति अनुकूल दृष्टिकोण अपना सकते हैं।

सामाजिक असुरक्षा में कठोरता आती है और यह कठोरता कई प्रकार से प्रकट होती है। जिस अधिकारी का पद कम सुरक्षित रहता है वह परिवर्तन के प्रति कम रुचि लेता है। पद असुरक्षित रहने पर प्रत्येक प्रकार के जोखिम को हर कीमत पर दूर किया जाता है। निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए श्रेष्ठ साधनों की खोज में हमेशा जोखिम बना रहता है, अतः इस प्रयोग का बहिष्कार किया जाता है। इसके विपरीत नौकरशाही ढांचे में सुरक्षित स्थिति और उसके नैतिक मापदण्डों में समरूपता लक्ष्यों को विस्थापित करने का कार्य नहीं करती। जब कार्य पूर्ण करना दैनिक व्यवहार बन जाता है तो अधिकारी अपने को पुनः व्यापक बनाने के लिए नए क्षेत्र खोजते हैं और इसलिए पुराने लक्ष्यों के स्थान पर नए लक्ष्य निर्धारित होते हैं।

नौकरशाही संगठन के सदस्यों का आर्थिक व मनोवैज्ञानिक हित इस बात में है कि वे नए उत्तरदायित्व ग्रहण करें। इससे उनके कार्यों में सन्तोष बढ़ेगा तथा पदोन्नति होगी। उच्च स्तर की समस्याओं को सुलझाना अत्यन्त रुचिकर होता है। जब प्रभिकरण का प्रसार होता है तो काम छूटने के अवसर कम हो जाते हैं और पदोन्नति के अवसर बढ़ जाते हैं। कार्य ज्यों-ज्यों प्रचलित होता जाता है त्यों-त्यों वह अरुचिकर बनता जाता है और उसे छोटे से स्टाफ द्वारा पूरा किया जा सकता है।

सामाजिक ढांचे में परिवर्तन होने के साथ-साथ प्रशासनिक ढांचे में भी तदनुरूप समायोजन करने होंगे। अनुकूल परिस्थितियों में भी गैर अधिकारी समायोजन उस समय तक नहीं हो सकता जब तक कि कार्य करने वाले अधिकारियों द्वारा सघटनात्मक आवश्यकता का अनुभव न किया जाए। उत्तरदायित्व और सत्ता का पद सोपानयुक्त वितरण कार्यालय में समायोजन की आवश्यकता का सूत्रपात करता है। उच्चस्तरीय अधिकारियों के व्यापक उत्तरदायित्व उन समस्याओं के समाधान के लिए प्रणालियाँ निर्धारित करने के लिए प्रेरित करते है जिनका कार्यों में आवश्यक हस्तक्षेप होता है।

नौकरशाही के विकास की प्रक्रिया कार्यकुशलता के लिए उपयुक्त है। यह समाज या उसके विभिन्न अंगों पर अनुकूल प्रभाव डालती है। कुछ प्रक्रियाएँ ऐसी होती है जिनके लिए संगठन सम्बन्धी आवश्यकता नहीं होती, किन्तु संगठन से बाहर के समूहों के कार्य को बदलना होता है। कार्य करने वाले अधिकारियों द्वारा

संगठन की आवश्यकता उस समय तक पूरी नहीं की जाएगी जब तक कि वे यह अनुभव न करें कि उनका कार्य वांछित परिवर्तन किए बिना अरुचिकर बन जाएगा। जब बाहरी संगठनों के परिवर्तन संगठन की आन्तरिक आवश्यकता बन जाते हैं तो उनका प्रभाव कम हो जाता है। इसके लिए प्रजातन्त्रात्मक तकनीक विकसित करने की समस्या उत्पन्न होती है ताकि प्रतिनिधियों द्वारा अधिकारियों को नौकरशाही कार्यों के विभिन्न परिणामों के लिए उत्तरदायी बनाया जा सके।

नौकरशाही की विशेषताएँ
(Characteristics of Bureaucrats)

नौकरशाही एक सामूहिक पद है जिसके भाग विभिन्न नौकरशाह होते हैं। डॉ. जोनिग्स ने नौकरशाह की विशेषताओं का वर्णन किया है। उनके कथनानुसार "तानाशाही एक व्यक्ति का शासन है जबकि नौकरशाही नियमों का शासन है। पहले का उद्देश्य कार्य को करना है जबकि दूसरे का उद्देश्य कार्य को व्यवस्थित करना है।"

नौकरशाह एक प्रणालीयुक्त व्यक्ति होता है। इसका उद्देश्य व्यवस्था स्थापित करना तथा उसे पूर्णता प्रदान करना होता है। अपने संकीर्ण उद्देश्य में वह अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को जोड़ देता है। सामान्यतः नौकरशाह अस्वच्छता से घृणा करता है। वह अपने डेस्क को यथासम्भव साफ रखने का प्रयास करता है। उसके कार्यालय को देखकर लगेगा कि सब कुछ एक नियोजित रूप से चल रहा है। वह प्रक्रिया सम्बन्धी स्वच्छता पर भी जोर देता है ताकि वह स्वयं अथवा कोई अन्य व्यर्थ कार्य न करे। एक बड़े और जटिल कार्यालय की परिस्थितियों में उसे स्थायित्व का तत्त्व माना जा सकता है।

नौकरशाह निर्धारित समय का कठोरता से पालन करता है। वह अपने व्यवहार को निर्देशित करने के लिए अपने पूरे दिन का समय विभाजन कर लेता है। नौकरशाही में संकट का आना कोई छोटी बात नहीं है। वास्तव में प्रत्येक छोटी अनियोजित घटना एक सम्भावित संकट बन जाती है। इस संकट में आवश्यक रूप से कार्यपालिका भी उलझती है। नौकरशाह अपने कार्य के तरीके को बदलकर इसका स्थायी रूप से निराकरण करता है।

एक तानाशाह के लिए नियम केवल उसके अधीनस्थों के लिए ही बाध्यकारी होते हैं, किन्तु नौकरशाह की दृष्टि से नियम सभी के लिए बाध्यकारी होते हैं जिसमें वह स्वयं भी सम्मिलित है। नौकरशाह अपनी क्षमता और आत्म सम्मान दोनों को नियमों के कठोर अनुपालन के साथ समरूप बना लेता है। इस प्रकार का नियम बनाना अथवा निर्देश देना अधिक आनन्ददायक समझा जाता है जिसे याद रखना अथवा उसका अनुशीलन करना कोई मूर्ख नहीं सकता है।

प्रो. एरिक स्ट्रॉस (Prof Erich Strauss) ने अपनी पुस्तक (The Ruling Servants) में नौकरशाह की विशेषताओं का विश्लेषण किया है। उनके कथनानुसार "एक प्रशासनिक व्यवसाय में सफलता को पूर्ण पदसोपान में प्राप्त

अधिकारी स्थिति द्वारा मापा जाता है। इसके साथ ही पदोन्नति के अवसर, अधिक शक्तियां और अधिक आय भी इस दृष्टि से अपना उल्लेखनीय महत्त्व रखते हैं।" पदोन्नति के अवसर और प्रभाव व्यक्तिगत अधिकारी के लिए पर्याप्त महत्त्वपूर्ण होते है और वे उसके दृष्टिकोण को एक सीमा तक प्रभावित करते है। नौकरशाह बाहरी दुनिया से बहुत कुछ अलग हट जाता है और अपनी उस अधिकारी दुनिया मे स्वय को आत्मसात कर लेता है।

शीर्ष के नौकरशाह सगठन और अपने अधीनस्थो के स्वामी होते हैं। प्रत्येक अधिकारी यह जानता है कि उसकी उन्नति पूर्णत उसके उच्चस्तरीय अधिकारी के न्याय अथवा दुराग्रह पर निर्भर करती है। ऐसी स्थिति मे वह अपने अधीनस्थो पर निर्भर रहने की जोखिम नहीं उठाता और अपने उच्चस्तरीय अधिकारियो की चाटुकारिता करता है। नौकरशाही का प्रत्येक सदस्य अपने उच्चस्तर तथा अपने ही विभाग के नेताओं पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निर्भर रहता है। विभागीय एव सम्भागीय अध्यक्ष अपना साम्राज्य बनाने मे लगे रहते हैं। यह बात पदसोपान मे नीचे तक चलती है।

प्रशासनिक नौकरशाही का सर्वोच्च लक्ष्य शक्ति प्राप्त करना होता है तथा इस शक्ति को कायम रखना और बढाना उसकी नीति का मुख्य उद्देश्य होता है। *नौकरशाही के प्रमुख अपनी प्रकृति से अथवा अनुभव से यथार्थवादी और व्यावहारिक* व्यक्ति होते हैं। वे तकनीकी रूप से अपने क्षेत्र मे कुशल होते है; किन्तु इसके साथ ही वे अल्पदर्शी, सकीर्ण विचारो वाले और सन्देहशील होते है। वे नौकरशाही का खेल अपने प्रतियोगियों की अपेक्षा अच्छी तरह खेलकर शीर्ष तक पहुँचते हैं, इसलिए वे इस कार्य के नियमो से अच्छी तरह परिचित हो जाते हैं।

प्रशासनिक नौकरशाही के प्रमुख शक्ति की राजनीति के विशेषज्ञ होते हैं, किन्तु उन्हे इसके सम्बन्ध मे विश्वसनीय सूचना नही मिल पाती। वे अपनी स्थिति मे बन्दी रहते हैं तथा अपने कार्यालय की कृत्रिम दुनिया से इतर शक्ति के बारे मे कुछ नही जानते। यह हो सकता है कि काम बिना किसी परेशानी के सुगमतापूर्वक चलता रहे जबकि बाहरी दुनिया में इसके प्रति ऐसा असन्तोष हो जिसे दूर किया जा सकता है।

नौकरशाही के कार्य
(The Role of Bureaucracy)

मुख्य कार्यपालिका अर्थात् सरकार की निर्वाचित राजनीतिक शाखा और स्थायी नौकरशाही में अन्तर इतना नहीं है जितना बताया जाता है। यही कारण है कि कई विचारकों ने नौकरशाही को सरकार की चौथी शाखा (Fourth Branch of Government) कहा है। सरकार की इस चौथी शाखा द्वारा निम्नांकित कार्य किए जाते हैं—

सामाजिक परिवर्तन को क्रियान्वित करना (Implementing Social Change)—प्रजातन्त्रात्मक सरकार का सच्चा मापदण्ड बदलती हुई सामाजिक

आवश्यकताओं को पहचानना और उनके अनुसार कार्य करना है। वर्तमान समय में सरकार के कार्य पर्याप्त विस्तृत हो गए हैं क्योंकि जनता की माँग है कि सामान्य कल्याण को प्रोत्साहन देने के लिए आवश्यक प्रत्येक कार्य सरकार द्वारा किया जाना चाहिए। आज समाज के प्रत्येक वर्ग में विभिन्न कार्य सरकार ने अपने ऊपर ले लिए हैं। उद्योगों में कार्य करने वाले मजदूर अपनी सुरक्षा के लिए सरकार की ओर देखते हैं।

स्वय उद्योग भी बहुत कुछ सरकारी ठेकों पर निर्भर हैं। इस प्रक्रिया में सरकार विरोधी पक्षों के बीच मध्यस्थ से अधिक बन गई है। इसने सभी नागरिकों के लिए सुरक्षा और सद्जीवन प्राप्त करने का उत्तरदायित्व स्वीकार कर लिया है। *यह परिवर्तन जनता की स्वीकृति से हुआ है, किन्तु परिवर्तन स्वय अपने आप* क्रियान्वित नहीं करता। राष्ट्रपति विल्सन का कहना था कि संविधान को क्रियान्वित करना उसे बनाने से अधिक कठिन है। संस्थाओं में नवीन प्रयोगों के लिए आवश्यक कुशलता और अनुभव लोकसेवा द्वारा प्रदान किया जाना चाहिए। फिफनर तथा प्रीस्थस के कथनानुसार "इस अर्थ में नौकरशाही एक सामाजिक साधन है जो व्यवस्थापिका के अभिप्राय और उसकी पूर्ति के मध्य स्थित दूरी को भरती है।"

जब एक बार व्यवस्थापिका निर्णय ले लेती है तो नौकरशाही उसे क्रियान्वित करने के लिए कदम उठाती है। विभिन्न सरकारी विभागों की नीतियों एवं कार्यों पर विभिन्न हित-समूहों का प्रभाव पड़ता है। क्रियान्विति की प्रक्रिया को नौकरशाही पर विभिन्न समूह प्रभावित करते हैं। जब नौकरशाही व्यवस्थित तकनीकों का विकास कर लेती है तो यह विशेष हितों के दावों का विरोध करने की शक्ति प्राप्त कर लेती है।

2. नीति की सिफारिश करना (Recommending Policy)—नौकरशाही का नीति-निर्धारण में भी योगदान होता है। व्यवस्थापिका बहुत कुछ प्रशासनिक विशेषज्ञों पर आधारित रहती है क्योंकि सार्वजनिक नीति में प्रायः ऐसी तकनीकी जटिलताएँ आ जाती हैं जिनमें विशेष ज्ञान और सोच-विचार की आवश्यकता होती है। व्यवस्थापिका के अधिकतर सदस्य अनुभवहीन होते हैं जिन्हें बहुत कुछ विशेषज्ञों के निर्णयों पर निर्भर रहना होता है। उदाहरण के लिए, व्यवस्थापिका सेना सम्बन्धी निर्णय लेना चाहे तो इसके लिए उसे सम्बन्धित विशेषज्ञों से पूछताछ करनी होगी।

वेबर का कहना था कि आधुनिक राज्य पूर्ण रूप से नौकरशाही पर निर्भर है। नीति-निर्माण पर नौकरशाही का प्रभाव व्यवस्थापिका की प्रक्रिया के दो सोपानों में रहता है। प्रथम, नौकरशाही को प्रायः व्यवस्थापन की पहल करने तथा प्रस्तावित विषयों पर व्यवस्थापिका को सिफारिश करने के लिए आमन्त्रित किया जाता है। दूसरे, व्यवस्थापिका द्वारा पारित व्यवस्थापन को क्रियान्वित करने में नौकरशाही कुछ स्वायत्तता का व्यवहार करती है। नौकरशाही का परामर्श महत्त्व

रखता है क्योंकि वह जानती है कि नीति को किस प्रकार क्रियान्वित किया जाएगा। यदि नीति के लक्ष्य उपलब्ध न किए जा सकें तो इसकी जानकारी भी नौकरशाही द्वारा ही प्रदान की जा सकती है। वह उपयुक्त विकल्प प्रस्तुत करने में भी समर्थ है।

3. व्यवस्थापन करना (Framing Legislation)—प्रशासनिक शाखा द्वारा पर्याप्त मात्रा मे व्यवस्थापन की पहल की जाती है। कहा जाता है कि अमेरिकी कांग्रेस मे आधे से अधिक व्यवस्थापन कार्यपालिका-विभागों और अभिकरणों मे जन्म लेता है तथा राष्ट्रपति द्वारा बजट-ब्यूरो के माध्यम से समन्वित किया जाता है। लोक-प्रशासन का एक प्रतिनिधित्वपूर्ण कार्य यह है कि इसकी नीति समूह के हितों को अभिव्यक्त करती है। कांग्रेस द्वारा किया जाने वाला व्यवस्थापन प्रशासनिक अधिकारियों की सिफारिशों पर आधारित होता है।

उच्चस्तर के अधिकांश नौकरशाहों का समय व्यवस्थापन से सम्बन्धित कार्यों मे व्यतीत होता है ताकि प्रशासन कार्य सरल बनाया जा सके। प्रशासनिक शाखा प्रस्तावित विषय के बारे मे देश भर के सम्बन्धित समूहों से पूछताछ करती है। प्रशासक व्यवस्थापिका मे स्थित अपने मित्रों से विचार-विमर्श करते है। अधिकांश अभिकरणों मे व्यवस्थापिका म अपने हितैषी होते हैं जो बदले मे अभिकरण से कुछ लाभ उठा लेते है। इस प्रकार का सम्पर्क व्यवस्थापिका में प्रशासनिक प्रस्तावों की स्वीकृति को सफल बना देता है।

4 व्यवस्थापिका को प्रभावित करना (Influencing Legislature)—नौकरशाही का प्रभाव नीति पर उस समय पड़ता है जब व्यवस्थापिका द्वारा व्यवस्थापन पर विचार-विमर्श किया जा रहा हो। विशेषज्ञों की आवश्यकता नौकरशाही के योगदान को महत्त्वपूर्ण बना देती है। मुख्य विषयों पर व्यवस्थापिका की समितियाँ प्रशासनिक विभागों से लिखित वक्तव्य मँगा लेती हैं। प्रशासक कार्यपालिका की उन गुप्त बैठकों मे भाग लेते हैं जिनमे प्रमुख निर्णय लिए जाते हैं। विभागों एव अभिकरणों द्वारा समितियों को आँकड़े प्रस्तुत किए जाते हैं ताकि व्यवस्थापन के समर्थन मे बोलते समय वे उनका प्रयोग कर सके। प्रशासक सम्मेलन-समितियों म बैठते हैं ताकि उनके विभागों को प्रभावित करने वाले विषयों पर परामर्श दे सकें।

नौकरशाही प्रतिद्वन्द्वितापूर्ण वातावरण मे कार्य करती है। शक्ति, सम्मान और अस्तित्व के लिए लगातार संघर्ष चलता रहता है। अधिक कार्यक्रमों का अर्थ है कि उनके लिए अधिक धन एकत्रित किया जाए और साथ ही कार्यक्रम मे लाभान्वित होने वाले समूह का समर्थन भी प्राप्त किया जाए। प्रशासन को न केवल नीति निर्माण मे अधिक भाग लेना पड़ता है वरन् उसे नीति को क्रियान्वित करने के लिए आवश्यक राजनीतिक शक्ति का सगठन भी करना होता है। जिन सेवाओं को प्रमुख हित-समूहों का अनुगामित सहयोग नहीं मिलता वे सन्तोषजनक रूप से कार्य नहीं करते। सरकारी अभिकरण और जनता के बीच पारस्परिक लाभ के

कारण ही सम्बन्ध स्थापित होता है। जनता को आवश्यक सेवाएँ प्राप्त होती हैं जबकि नौकरशाही स्तर और शक्ति प्राप्त करती है।

5 प्रतिद्वन्द्वी हितों के बीच समायोजन (Weighing Competing Interest)—नौकरशाही व्यवस्थापन कार्य में कुछ विवेक से काम लेती है और इस प्रकार उसकी शक्तियों में पर्याप्त वृद्धि हो जाती है। प्रशासक कभी-कभी सार्वजनिक हित को अपने कार्यों का आधार बनाकर अधिक विवेक का प्रयोग करने लगते हैं। इस सामान्य हित के पीछे विशेष हितों को गौण बना दिया जाता है। यह कार्य प्रशासनिक प्रभाव का विषय है। नौकरशाही का सामान्य हित का अपना व्यक्तिगत मापदण्ड होता है और इसलिए वह विशेष हितों के दबाव को भुला सकती है। यह व्यवहार कुछ राजनीतिक वास्तविकताओं में सीमित हो जाता है। अधिकारी अपने अभिकरण को एक विशेष हित का प्रतिनिधि मानता है और इसलिए वह अन्य अभिकरणों के हितों का प्रतियोगी बन जाता है। उच्चस्तरीय प्रशासक प्राय अपने विवेक का प्रयोग अपने अभिकरण द्वारा सेवित सर्वाधिक शक्तिशाली समूह को प्रोत्साहित करने के लिए करते हैं। व्यवहार में नौकरशाह अनेक राजनीतिक बातों को ध्यान में रखता है। वह लोकहित के विरोधी दावों, लेकिन व्यक्तियों की माँगों सगठनात्मक आवश्यकताओं और व्यक्तिगत मूल्य की प्राथमिकताओं में सन्तुलन स्थापित करता है।

इस प्रकार प्रशासनिक अभिकरण आत्म-निर्भर होते हैं। उनकी प्रमुख स्वामिभक्ति प्राय सामन्तवादी प्रार्थिक हितों के प्रति होती है। यदि अभिकरण को जीवित रहना है तो उसे लगातार अपनी स्थिति का मूल्यांकन राजनीतिक वास्तविकताओं के सन्दर्भ में करना चाहिए और उसी के अनुसार व्यवहार करना चाहिए।

6. व्यवस्थापन को क्रियान्वित करना (To Implement Legislation)—नीति की क्रियान्विति पर भी नौकरशाही का प्रभाव पर्याप्त महत्त्व रखता है। प्रशासनिक विवेक के कारण कई बार कुछ ऐसे कानूनों को लागू होने से रोक दिया जाता है जिनका जनमत विरोधी होता है। व्यवस्थापिका द्वारा निर्धारित नीति को व्यावहारिक रूप देने में प्रशासक पर्याप्त विवेक से काम लेते हैं। प्रशासनिक अधिकारी मूल कानून के परिवर्द्धन या व्याख्या के लिए नियम और विनियम निर्धारित करते हैं। औद्योगीकरण तथा नियामकीय कार्यों के विकास के कारण अनेक सरकारी विभाग और अभिकरण नियम निर्माण की शक्ति का प्रयोग करते हैं, यद्यपि शक्ति का यह प्रयोग हमेशा निदेशना, विधायी-मापदण्डों के साथ अनुरूपता, कानून के शासन, आदि से सम्बन्धित होता है।

7 व्यावसायिक और नैतिक बातों के बीच सन्तुलन स्थापित करना (Balancing Professional and Ethical Consideration)—नौकरशाही के कार्यों में व्यावसायिक मूल्य और नैतिक मूल्यों के बीच कई बार विरोध उत्पन्न हो

जाता है। निर्णय लेते समय प्रशासनिक अधिकारियों को व्यक्तिगत नैतिकता एवं व्यावसायिक मापदण्ड दोनों का ध्यान रखना होता है। किसी भी कम महत्त्वपूर्ण विषय पर नौकरशाह अपने व्यक्तिगत विचारों के कारण विरोध का सामना नहीं करना चाहता।

8 सरकार के कार्यों को सम्पन्न करना (**To Carry out the Work of Government**)—नौकरशाही द्वारा नीति-रचना पर डाले गए प्रभाव का अर्थ यह नहीं है कि उसे क्रियान्वित करने में उनका कम योगदान होता है। सरकार के साधारण कार्यों को सम्पन्न करना नौकरशाही के हाथ में रहता है। नागरिकों के दिन-प्रतिदिन के जीवन को प्रभावित करने वाले अनेक कार्य नौकरशाही द्वारा सम्पादित किए जाते हैं।

नौकरशाही की आलोचना
(Criticism of Bureaucracy)

'नौकरशाही' एक बुरा शब्द माना जाता है और इसकी कई प्रकार से आलोचनाएँ की जाती हैं। नौकरशाही ढाँचा तथा इसमें कार्य करने वाले लोग प्रक्रिया की कठोरता को प्रोत्साहन देते हैं और इसलिए संगठन के बाहर के लोगों के विरोध के कारण बनते हैं। यह कहा जाता है कि नौकरशाही एक ऐसी शक्ति है जो साधारण नागरिकों की स्वतन्त्रता को खतरे में डाल देती है। इसके कारण लाल-फीताशाही और तानाशाही आदि की प्रवृत्तियाँ विकसित होती हैं।

नौकरशाही के आलोचकों में रमजेम्योर तथा लॉर्ड हीवर्ट का नाम विशेष उल्लेखनीय है। रेमजेम्योर के मतानुसार नौकरशाही की शक्तियाँ प्रजातन्त्र के आवरण के नीचे फलती फूलती हैं। लॉर्ड हीवर्ट ने नौकरशाही को नवीन निरंकुशता का नाम दिया है। उनके कथनानुसार नागरिक सेवा उस शक्ति को प्राप्त करने का प्रयास कर रही है जिसका उत्तरदायित्व व्यवस्थापिका और न्यायपालिका पर है। रेमजेम्योर ने नौकरशाही की तुलना अग्नि से की है जो सेवक के रूप में तो बहुमूल्य सिद्ध होती है किन्तु मालिक या स्वामी बन जाने पर घातक बन जाती है।

अमेरिकी राष्ट्रपति हूवर (Hoover) का मत था कि नौकरशाही में प्राप्त स्वस्थिरता, स्वविस्तार और अधिक शक्ति की माँग तीन ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जो कभी सन्तुष्ट नहीं हो सकती। कहा जाता है कि नौकरशाही लोकप्रिय माँगों के प्रति अनुत्तरदायी होती है। नौकरशाही में शक्ति की भूख होती है और यह धीरे-धीरे नीति निर्माण के कार्य पर हावी होती जा रही है। नौकरशाही की आलोचना करते समय जिन दोषों का उल्लेख किया जाता है उनमें से मुख्य निम्नवत् हैं—

1 जन साधारण की माँगों की उपेक्षा (**Unresponsiveness to Popular Demands**)—नौकरशाही यह मानकर चलती है कि वह लोकहित की मरक्षक है और उसी के द्वारा जनहित की सही व्याख्या की जा सकती है। यदि लोकमत जनहित के विरुद्ध है तो नौकरशाही उसकी उपेक्षा करने में आगा-पीछा नहीं देखती। इस

तर्क के आधार पर नौकरशाही जनमत की किसी भी मांग का विरोध कर देती है। वह राजनीतिक वातावरण के परिवर्तन के अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं करती।

यह आलोचना बहुत कुछ तथ्यपूर्ण है। नौकरशाही का आधार प्रक्रिया के कुछ मापदण्ड निर्धारित कर देना है जिसके कारण परिवर्तन कठिन हो जाता है। सीधा सम्पर्क प्रयत्न मात्र रह जाता है और रहता भी है तो अधिकारी अत्यधिक निरपेक्ष दिखाई देते हैं। नियमित प्रक्रियाएँ (Routine Procedures) लोचहीनता लाती हैं। अधिकारी विशेषज्ञ बन जाते हैं। वे लोगों की अपेक्षा तकनीकों पर अधिक ध्यान देते हैं और बौद्धिक पार्थक्य की स्थिति में आ जाते हैं।

नौकरशाही अपने आप में एक आत्म-निर्भर संस्था है। इसके मूल्यों का पद-सोपान, स्तर और शक्ति की महत्त्वाकांक्षाएँ इसकी अपनी होती हैं। दूसरी संस्थाओं की भांति यह उन परिवर्तनों का विरोध करती है जो इसके हितों को चुनौती देते हैं। प्रक्रियाएँ और परम्पराएँ कार्यालय की गोपनीयता, व्यक्तिगत अधिकारियों के सामाजिक मूल्य तथा बड़े सगठनों की लोचहीनता आदि सब नौकरशाही की जनमत के प्रति प्रतिक्रिया को मन्द बना देते हैं। यही कारण है कि नागरिक सेवा प्रायः रूढ़िवादी होती है। इसके उदाहरण विभिन्न देशों के प्रशासनिक इतिहास में देखे जा सकते हैं।

उपर्युक्त आलोचना में तथ्य होते हुए भी यह सच है कि वर्तमान प्रजातन्त्रात्मक नागरिक सेवा जनता की भावनाओं के परिवर्तनों के साथ अपने आपको बदलती रही है। इस व्यापक अर्थ में देखने पर अनुत्तरदायित्व के कारण की जाने वाली आलोचना अधिक महत्त्व नहीं रखती। नौकरशाही का नियन्त्रण अन्तिम रूप में निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता है। ऐसी स्थिति में वह जनमत की पूर्ण अवहेलना नहीं कर सकती तो भी यदि हम प्रतिक्रिया की चाल को तेज करना चाहें तो इसके लिए सकारात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

2 लालफीताशाही (Redtapism)—नौकरशाही का एक दोष यह बताया जाता है कि इसके कार्यों में पर्याप्त विलम्ब होता है। नौकरशाही के कार्य नियत प्रकृति के होते हैं। अधिकारी प्रक्रिया की औपचारिकताओं में विश्वास करते हुए कठोरता के साथ नियमों और विनियमों का पालन करते हैं जिसके परिणामस्वरूप कार्य की सम्पन्नता में बाधा पहुँचती है। नौकरशाही प्रक्रिया की औपचारिकताओं को अपना उद्देश्य बना लेती है जबकि वे जनता की सेवा के लिए माध्यम मात्र हैं।

लालफीताशाही का विकास कई परिस्थितियों का परिणाम है। एक बड़ा कारण यह है कि कार्यकुशलता की दृष्टि से प्रशासन कार्य के कुछ सोपान स्वीकार कर लेता है। प्रगति का क्रम, निश्चित व्यवस्था, कार्य की निर्धारित गति तथा नियम, कार्य सम्पादन आदि कुछ चीजें हैं जिनसे लालफीताशाही जन्म लेती है। अधिकाधिक उत्पादन करने की दृष्टि से सरकारी सगठन कार्यों की नियमितता पर काफी जोर देते हैं।

लालफीताशाही का विकास इस कारण भी प्रोत्साहित होता है कि लोक-प्रशासन मे कानूनो का अधिक महत्त्व है। प्रजातन्त्रात्मक सरकार किसी सरकारी अधिकारी की अन्तरात्मा से सचालित न होकर वस्तुगत नियमो से सचालित होती है। लालफीताशाही वह साधन है जिसके माध्यम से यह निश्चित किया जा सकता है कि सरकार सभी के साथ एक जैसा व्यवहार करेगी। प्रशासको का प्रत्येक कार्य जनता की आलोचना और निरीक्षण के लिए खुला रहता है, इसलिए वह कानून के अनुसार कार्य करना उचित समझती है।

3 **शक्ति प्रेम (The Lust of Power)**—इसमे कोई सन्देह नही कि नौकरशाह शक्ति के भूखे होते हैं। विभिन्न विभागो के नौकरशाह शक्ति के सघर्ष मे रत रहने के कारण लोकहित को भुला देते हैं। स्थाई नागरिक सेवा के सदस्य प्रजातन्त्र के नाम पर विभागो की शक्ति मे निरन्तर वृद्धि करते जा रहे हैं और मन्त्रियो के उत्तरदायित्वो के सिद्धान्त के नाम पर उन्होने सारी शक्तियाँ स्वय के हाथो मे केन्द्रित कर ली हैं।

4 **विभागीकरण या साम्राज्य-रचना (Departmentalism or Empire-Building)**—नौकरशाही मे समाज से पृथक् रहकर कार्य करने की प्रवृत्ति होती है। उसका एक पृथक् वर्ग बन जाता है। इस वर्ग के लोग अपने आपको दूसरे लोगो से श्रेष्ठ समझने लगते हैं। वे सामान्य जनता के साथ घुल मिल नही पाते। नौकरशाही के कारण सरकार के कार्य पृथक् खण्डो मे विभाजित हो जाते हैं, क्योकि प्रत्येक नागरिक-सेवा अपनी सत्ता एव महत्त्व का प्रदर्शन करना चाहती है। प्रत्येक विभाग अपने आपको स्वतन्त्र और पृथक इकाई मानकर भूल जाता है कि यह किसी बडे समग्र का एक भाग है। वह अपने अधिकार-क्षेत्र को ही अपनी अन्तिम सीमा मानने लगता है।

5. **प्राचीनता के समर्थक (Supporters of Conservatism)**—नौकरशाही के सदस्य प्राचीन परम्परा एव रीति-रिवाजो के समर्थक होते है। वे नवीनता और विकास के प्रति प्राय विरोधी भावना रखते हैं। जो व्यवहार प्रचलित परम्पराओ के अनुकूल है तथा जिसका पालन करने की उन्हे आदत पड गई है, उसे नौकरशाही के सदस्य उचित मानते हैं।

6. **तानाशाही प्रवृत्तियाँ (Despotic Tendencies)**—लॉर्ड हीवर्ट ने नौकरशाही को तानाशाही का नया रूप बतलाया है। उनका कहना है कि प्रशासनिक तानाशाही के बढने के कारण नागरिको की स्वतन्त्रता धीरे-धीरे समाप्त हो जाएगी। ब्रिटिश नौकरशाही का मूल्यांकन करते हुए हीवर्ट ने यह तर्क दिया है कि इस समय व्यक्तिगत अधिकार व स्वतन्त्रताएँ खतरे मे हैं क्योकि उग्र नौकरशाही प्रवृत्ति के अधिकारी कुछ ऐसे ही विश्वासो के साथ कार्य करते हैं। ये विश्वास निम्नलिखित हैं–

(i) कार्यपालिका का कार्य प्रशासन करना है।

(ii) शासन करने के लिए उपयुक्त व्यक्ति केवल विशेषज्ञ हैं।

(iii) प्रशासन कला मे विशेषज्ञ स्थाई अधिकारी होते हैं जो प्राचीन और

निषेधात्मक सद्गुणों का प्रदर्शन करते हैं। वे अपने आपको महान् कार्यों मे योग्य मानते हैं।

(iv) ये विशेषज्ञ वस्तु-स्थिति के अनुसार व्यवहार करते हैं और जिन परिस्थितियों मे रहते हैं उन्ही के अनुसार स्वय को ढाल लेते हैं।

(v) विशेषज्ञो के लाभदायक कार्यों के दो प्रमुख अवरोध हैं—एक ससद् की सम्प्रभुता और दूसरा कानून का शासन।

(vi) अबोध जनता की अन्ध-भक्ति इन अवरोधो को दूर करने मे बाधक बन जाती है। विशेषज्ञो को ससद् के प्रभुत्व को प्रभावहीन बनाने के लिए कानून के शासन को अपनाना चाहिए।

(vii) इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए नौकरशाही को ससदीय रूप ग्रहण कर पहले अपने हाथ मे मनमानी शक्तियाँ ले लेनी चाहिए और उसके बाद कानूनी अदालतो का विरोध करना चाहिए।

(viii) नौकरशाही का यह कार्य उस समय अत्यन्त सरल सिद्ध होगा जबकि वह—(a) एक मोटी रूपरेखा के रूप म पारित विधान प्राप्त कर सके, (b) अपने नियमो, आदेशो और विनियमो से उस विधान की रिक्तता की पूर्ति कर सके, (c) ससद के लिए अपने नियमो, आदेशो एव विनियमो पर रोक लगाना कठिन या असम्भव बना दे, (d) उनके लिए कानूनी शक्ति प्राप्त कर सके, (e) अपने स्वय के निर्णय को अन्तिम बना सके, (f) ऐसा प्रबन्ध कर सके कि उसके निर्णय के तथ्य ही वैधता के प्रमाण बन सकें, (g) कानूनी प्रावधानो म परिवर्तन करने की शक्ति प्राप्त कर सकें और कानूनी न्यायालय मे किसी प्रकार की अपील को रोक सकें या उपेक्षा कर सकें।

(ix) यदि विशेषज्ञ लॉर्ड चॉसलर से मुक्ति पा सकें न्यायाधीशो के पद को नागरिक-सेवा की एक शाखा के रूप म सीमित कर सकें, मुकदमों म पहले से ही अपनी राय प्रकट करने के लिए न्यायाधीशो को बाध्य कर सकें तथा न्याय मन्त्री कहे जाने वाले एक अधिकारी के माध्यम से स्वय ही उसकी नियुक्ति करें तो सारी बाधाएँ दूर की जा सकती हैं।

लॉर्ड हीवर्ट द्वारा की गई उपर्युक्त आलोचनाओ का आधार हस्तान्तरित विधान (Delegated Legislation) है। व्यवस्थापिका द्वारा मोटी रूपरेखा से युक्त कानून पारित कर दिया जाता है और इस कानून की छोटी मोटी बातो को नागरिक सेवक पूरा कर सकते हैं। इस प्रकार नागरिक सेवको को व्यवस्थापन के क्षेत्र मे शक्ति प्राप्त होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नौकरशाही अनेक दोषों से पीडित रहती है। प्रो रॉब्सन (Prof Robson) के अनुसार "नौकरशाही जिन दोषो से दूषित रहती है वे हैं-"अधिकारियों के आत्म-गौरव की अतिशयपूर्ण भावना अथवा अपने कार्यालय

को अनावश्यक महत्त्व देना, व्यक्तिगत नागरिकों की सुविधाओं या भावनाओं के प्रति उदासीनता दिखाना, विभागीय निर्णयों की सत्ता की लोचहीनता एवं बाध्यकारिता (चाहे वे व्यक्तिगत मामलों में कितने ही अन्यायपूर्ण क्यों न हों), विनियमों और औपचारिक प्रक्रियाओं के प्रति झुकाव, प्रशासन की विशेष इकाइयों की क्रियाओं को अधिक महत्त्व देना और सरकार को एक सम्पूर्ण के रूप में न देखना, यह न पहचानना कि प्रशासक और प्रशासितों के बीच स्थित सम्बन्ध प्रजातन्त्रात्मक प्रक्रिया का एक मूलभूत भाग है।" नौकरशाही के अन्तर्गत साधनों को साध्य और साध्यों को साधन बना दिया जाता है तथा उसमें कल्पना और दूरदर्शिता की कमी रहती है। नौकरशाही के सदस्य सत्ता का दुरुपयोग करना चाहते हैं। उनमें वर्गीय या जातीय भावना का विकास होने लगता है। नौकरशाही के सम्बन्ध में प्रो लॉस्की ने लिखा है कि "इसमें नियत कार्य के प्रति भावना रहती है, नियमों की लोचशीलता का बलिदान किया जाता है, निर्णय लेने में देरी की जाती है तथा प्रयोग करने से इन्कार किया जाता है।"

कुछ सुझाव
(Some Suggestions)

नौकरशाही के दोषों को दूर किया जाना आवश्यक है। लोक-प्रशासन में इसका योगदान महत्त्वपूर्ण है। नौकरशाही आज के युग की एक अपरिहार्यता है। इसे संसदीय प्रजातन्त्र का मूल कहा जाता है। यथार्थ में नौकरशाही अपने आप में बुरी नहीं होती। इसमें जो बुराइयाँ पैदा होती हैं उन्हें दूर किया जा सकता है। यह माना कि नौकरशाही एक आग की तरह है और यह स्वामी के रूप में विध्वंस भी कर सकती है, किन्तु हम क्यों न इसे एक सेवक के रूप में रखें ताकि यह हमारे लिए अमूल्य बन सके।

नौकरशाही के दोषों को दूर करने तथा उसे अधिक उपयोगी बनाने के लिए विचारकों ने कुछ सुझाव प्रस्तुत किए हैं—

1 सत्ता का विकेन्द्रीकरण (Decentralisation of Authority)—नौकरशाही की शक्तियों को विकेन्द्रित कर दिया जाना चाहिए ताकि उनको सीमा के भीतर रखा जा सके। विकेन्द्रीकरण न होने पर नौकरशाही सत्ता के तानाशाही बनने की सम्भावना बढ़ जाती है। अत्यधिक केन्द्रीकरण नौकरशाही को अनेक दोषों से युक्त बना देता है जैसे पृथकता, भावहीनता, लोचहीनता, स्थानीय स्थिति के विषय में अज्ञानता, कार्य में विलम्ब, कार्य का बेढंगापन, आत्मसंतोष आदि।

2. नियन्त्रण (Control)—नौकरशाही पर संसद् और मन्त्रिमण्डल का प्रभावपूर्ण राजनीतिक नियन्त्रण रहना चाहिए ताकि उसके द्वारा सम्भावित शक्ति के दुरुपयोग पर रोक लगाई जा सके।

3. सामान्य जनता के प्रति उत्तरदायित्व (Accountable Towards General Public)—लोक-प्रशासन में नौकरशाही के दोषों को दूर करने के लिए उसे न केवल संसद् और कार्यपालिका के प्रति उत्तरदायी ही बनाया जाए वरन् उसे

सामान्य नागरिकों के प्रति भी उत्तरदायी बनाया जाए। ऐसा होने पर नौकरशाही अपने आपको एक पृथक् वर्ग या जाति के रूप में सगठित नहीं करेगी।

4 प्रशासनिक न्यायाधिकरण (Administrative Tribunals)—ऐसे प्रशासनिक न्यायाधिकरण स्थापित होने चाहिए जहाँ सामान्य नागरिक लोक-सेवकों के विरुद्ध अपनी शिकायतें रख सकें और उनको दूर करा सकें। यह सुविधा प्रदान करते समय किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए।

5 विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व (Representation of Various Classes)—नागरिक सेवकों को समाज के विभिन्न आर्थिक तथा सामाजिक वर्गों का प्रतिनिधित्व करना चाहिए जिससे सभी को समान रूप से न्याय प्राप्त हो सके और किसी के साथ अनुचित पक्षपात न किया जाए।

6 प्रभावशाली सचार व्यवस्था (Effective Communication)—प्रशासनिक सगठन की सचार-व्यवस्था का प्रभावशाली होना ही पर्याप्त नहीं है, प्रशासकों और प्रशासितों के बीच भी सचार व्यवस्था का प्रभावशाली होना जरूरी है। पत्र-व्यवहार, सन्देशों का आदान-प्रदान एवं अन्य माध्यमों से दोनों को एक दूसरे की बातें कहने-सुनने की पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध होनी चाहिए।

7. बाहर के लोगों का योगदान (Contribution of Outsiders)—प्रशासन को अधिक उपयोगी और सार्थक बनाने के लिए उसे सामान्य जनता का सहयोग प्रदान किया जाना चाहिए। गैर-सरकारी लोगों का प्रशासन में योगदान *प्राप्त करने से उसे सच्चे अर्थों में प्रजातन्त्रात्मक बनाया जा सकता है। लोक-प्रशासन* को जनता की आकांक्षाओं एवं आवश्यकताओं के अनुरूप बनाया जा सकता है। अतिरिक्त नौकरशाही में सुधार की प्रवृत्ति जाग्रत होती है जो उसे उत्तरदायी, समर्थ एवं योग्य बनाती है।

प्रतिबद्ध प्रशासन-तन्त्र
(Committed Bureaucracy)

प्रशासन के सन्दर्भ में हाल ही में यह माँग उभर कर आई है कि हमारा प्रशासन-तन्त्र प्रतिबद्ध होना चाहिए। जब यह बात कही गई तो इसके पक्ष और *विपक्ष में बहुत कुछ वाद-विवाद हुआ। पहली बात तो यही उठी कि यदि प्रशासन-*तन्त्र प्रतिबद्ध हो तो किसके प्रति? ससदीय ढग के लोकतन्त्र में तो जहाँ दलीय सरकार बनती है, प्रतिबद्धता की यह शर्त और भी कठिन होगी। यदि प्रशासन-तन्त्र उस दल विशेष के प्रति प्रतिबद्ध होना है, जो आज सत्तारूढ़ है, तो क्या उस दल का शासन बदलने पर प्रशासन को भी नए शासन से असहयोग अथवा विद्रोह कर लेना चाहिए? क्या प्रतिबद्धता का अर्थ यह होगा कि प्रशासन अपनी निष्पक्ष प्रवृत्ति को त्याग कर सत्तारूढ़ दल अथवा उसके सदस्यों के आदेश या हित की ओर उन्मुख हो? इस प्रकार के बहुत से प्रश्न इस सन्दर्भ में उठाए गए हैं। इसमें शक नहीं कि यदि *प्रतिबद्धता की माँग का यह अर्थ है कि प्रशासन अपनी ऐतिहासिक निष्पक्षता का* त्याग कर दे और वर्तमान शासन और इसको स्थापित करने वाले दल की ओर इस

दर्जे तक स्वामिभक्त बन जाए कि परिवर्तन की समदीय प्रणालियों को भी अवरुद्ध कर दे और आँख मूँदकर वर्तमान शासन का समर्थन करे तो निश्चय ही ऐसी प्रतिबद्धता न तो लोकतन्त्र के लिए ही हितकारी हो सकती है, न समाज के स्वस्थ विकास के लिए।

पर प्रश्न यह है कि क्या प्रतिबद्धता की माँग इस रूप मे की जा रही है। वास्तव मे प्रशासन-तन्त्र से प्रतिबद्धता की जो माँग की जा रही है वह व्यक्ति अथवा दल के प्रति नहीं, बल्कि उन सिद्धान्तो के प्रति है जो हमारे सविधान मे प्रस्थापित है और जिनके क्रियान्वयन के लिए हमारी योजनाएँ बनाई जा रही हैं।

उदाहरणार्थ, विधान कहता है कि सारे नागरिक कानून की दृष्टि मे बराबर होंगे और किसी के साथ धर्म जाति, जन्म-स्थान आदि के अन्तर के आधार पर भेदभाव नही किया जाएगा। विधान यह भी कहता है कि देश म छुआछूत को सहन नही किया जाएगा और इसे अपराध समझा जाएगा। नागरिको को बोलने, एकत्र होने एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने, किसी भी प्रकार का पेशा करने आदि की स्वतन्त्रता होगी। विधान यह भी कहता है कि राज्य का यह कर्त्तव्य होगा कि सब नागरिको के लिए जीवन-यापन के पर्याप्त साधनो की व्यवस्था करे और देश मे उत्पादन साधनो का इस तरह केन्द्रीकरण न होने दे कि देश का धन सार्वजनिक हितो के विरुद्ध थोडे से कोनो मे इकट्ठा हो जाए। यदि प्रशासन मे, जिसके हाथ मे आज बहुत बडे अधिकार हैं इन सिद्धान्तो के प्रति प्रतिबद्धता न हो तो इनका क्रियान्वयन प्राय असम्भव हो जाएगा। वस्तुस्थिति यह है कि आज प्रशासन के कई क्षेत्रो मे इस प्रकार की प्रतिबद्धता नहीं है जिसके फलस्वरूप सविधान के लागू होने के 31 वर्ष बाद भी छुआछूत, असमानता, शोषण, साधनो का कुछ कोनो मे केन्द्रीकरण, कानून की दृष्टि मे भेदभाव और पैसे या ताकत के बल पर आपाधापी बहुत-सी जगह अब भी कायम है।

सिद्धान्तों के प्रति प्रतिबद्धता की कमी केवल प्रशासन मे ही हो, ऐसी बात नही है। शासन और सार्वजनिक सस्थानो मे अनगिनत लोग ऐसे मौजूद हैं जिनको अपने स्वार्थ के सामने सविधान का ध्यान नही रहता और जो सविधान के क्रियान्वयन की आड मे शिकार खेलते हैं और उनका हनन करते हैं। इन लोगो का जितना विश्वास अपने स्वार्थ मे है, उतना सामाजिक न्याय मे नहीं। अत कहना पडेगा कि सिद्धान्तो के प्रति यह प्रतिबद्धता न केवल प्रशासन तन्त्र के कुछ अगो से बल्कि शासन और समाज के और भी बहुत से अगो से गैरहाजिर है। अत प्रतिबद्धता का तकाजा न केवल प्रशासन-तन्त्र से होना चाहिए, बल्कि सामाजिक सेवा और विकास से सम्बद्ध प्रत्येक व्यक्ति और सस्था से होना चाहिए।

कर्म के साथ अपने अन्त करण अथवा हृदय की भावना को सयुक्त कर देने की प्रक्रिया को भगवद्गीता के शब्दो मे कर्म से विकर्म का मेल कहा जा सकता है। कर्म से विकर्म का यह सयोजन किए बिना कर्म की तलवार मे धार नही आती, प्रयत्न मे प्रेरणा और स्फूर्ति नही आती, अमल के साथ दिल का मेल नही होता। जिस प्रयत्न म हृदय न लगा हुआ हो अर्थात् जो आस्थाहीन, विश्वासरहित और

पगु हो, वह स्फूर्तिहीन और मृत होगा। यह शर्त जिस तरह व्यक्ति के प्रयत्नों पर लागू है उसी तरह प्रशासन और समाज के प्रयत्नों पर भी। देश और समाज के विकास के लिए हम जो योजनाएँ बना रहे हैं उनके क्रियान्वयन में भी मानसिक आस्था और हार्दिक उत्साह का मेल होना जरूरी है। इसी मानसिक आस्था और हार्दिक उत्साह का नाम 'प्रतिबद्धता' है। यदि यह प्रतिबद्धता प्रयत्नों के साथ जुड़ी रहे तो जिन लोगों के हाथ में गरीब खेतिहरों को जमीन बाँटने का काम है, वे फर्जी नामों से जमीन को खुद नहीं हड़पेंगे या अपने ऐसे रिश्तेदारों को नहीं बाँटेंगे जिनका खेती से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। वे लघु उद्योगों के लिए वितरित की जाने वाली सप्लाई को काले बाजार में नहीं बेचेंगे और उत्पादन के साधनों का माल ऐसे लोगों के पास संग्रह होने देने में मदद नहीं देंगे जिनके पास पहले से ही आवश्यकता से अधिक है। हमारे सामाजिक विकास में स्थान स्थान पर ये कमियाँ देखी जाती हैं। इसका प्रधान कारण यही है कि हमारे कार्यकर्ताओं में, चाहे वे प्रशासन के सदस्य हों, चाहे किसी राजनीतिक दल के, सिद्धान्तों के प्रति सच्ची आस्था और हार्दिक प्रतिबद्धता की कमी है।

आर्थिक योजना क्या है? समाज की सब प्रकार की वाजिब जरूरतों को पूरा करने के लिए उत्पादन और उसके न्यायपूर्ण वितरण की व्यवस्था करना। यह पर्याप्त उत्पादन और न्यायपूर्ण वितरण उस समय तक नहीं हो सकता जब तक वे लोग, जिनके हाथ में उत्पादन और वितरण का काम है, समाज निर्माण के साथ उन उद्देश्यों के प्रति प्रतिबद्ध न हों जो प्रशासन के काम को केवल रोजगार का साधन न समझ कर समाज के प्रति कर्तव्य रूप में करते हैं।

प्रतिबद्धता की माँग के विरुद्ध यह कहा जाता है कि यदि आज शासन करने वाला दल बदल जाए और उसके स्थान पर सरकार में दूसरा दल आ जाए तो इस प्रकार की प्रतिबद्धता का क्या होगा? यह भय बहुत हद तक काल्पनिक ही है। वास्तव में प्रतिबद्धता व्यक्ति अथवा दल के प्रति नहीं, आदर्शों और सिद्धान्तों के प्रति होनी चाहिए। शासन कोई भी दल सम्भाले, यह सम्भावना नहीं है कि वह नया दल जनहित के सर्वमान्य सिद्धान्तों को बिल्कुल उलट दगा। मात्र उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जो साधन या प्रक्रिया आज काम में ली जा रही है उनमें नए दल द्वारा कुछ परिवर्तन किए जाने की चेष्टा की जा सकती है, पर सिद्धान्तों को बिल्कुल नकार दिया जाए, यह कल्पनातीत है। इसलिए जनहित के उद्देश्यों के प्रति प्रतिबद्धता से यह भय नहीं है कि लोकतन्त्रीय प्रक्रिया से ऊपर की हुकूमत बदल जाने पर क्या होगा। थोड़ी देर के लिए यह मान भी लिया जाए कि आने वाला नया शासन जनहित के मौलिक उद्देश्यों में भी भारी उलट-फेर कर देगा तो यदि ऐसा उलट-फेर जन-प्रतिनिधियों की सांविधानिक सहमति से ही होता है तो हमको अपनी प्रतिबद्धता में आवश्यक परिवर्तन कर लेने में संकोच नहीं होना चाहिए। यह निश्चय है कि प्रशासन कल्याणकारी राज्य का समर्थक उसी समय हो सकता है जब देश के कल्याणकारी संविधान और उसकी उपलब्धि के लिए बनने वाली योजना में हमारा हार्दिक और सक्रिय सहयोग हो। सहयोग की इस भावना को ही प्रतिबद्धता समझा जाना चाहिए।[1]

1 राजस्थान समीक्षा, जनवरी, 1973

नौकरशाही और वर्तमान सरकार : प्रजातन्त्र में नौसिखियों और विशेषज्ञों की भूमिका तथा उनका पारस्परिक सम्बन्ध
(Bureaucracy and Modern Government : The Role of Amateurs and Experts in Democracy and their Inter-relationship)

ससदात्मक प्रजातन्त्र मे मन्त्रियो और लोकसेवको के मध्य परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध रहते हैं। इन दोनो को एक प्रकार से प्रशासनिक यान के दो पहिए कहा जा सकता है। मन्त्रियो द्वारा निर्मित प्रशासनिक नीतियो के कार्यान्वयन का उत्तरदायित्व लोकसेवको के कन्धो पर रहता है। लोकसेवको का कार्य नीति के क्रियान्वयन तक ही सीमित नही है वरन् वह उनको बनाने मे भी (मन्त्रियो को) अपनी विशिष्ट सलाह देते हैं। इस तरह ससदीय शासन-व्यवस्था, उदाहरणार्थ ब्रिटिश शासन-व्यवस्था, भारतीय शासन-व्यवस्था, अविशेषज्ञो (Amateurs) और विशेषज्ञो (Experts) के समन्वय पर आधारित है, अर्थात् ससदीय शासन-सूत्र का सचालन करने वाले लोग दो प्रकार के होते हैं—मन्त्रिगण और लोकसेवक। मन्त्रियो मे प्रशासनिक अनभिज्ञता होती है जबकि लोकसेवको मे प्रशासनिक ज्ञान की विशिष्टता होती है। मन्त्रिगण किस प्रकार प्रशासनिक दृष्टि से अनभिज्ञ अथवा अविशेषज्ञ हैं और लोकसेवक किस प्रकार विशेषज्ञ हैं, निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट है—

मन्त्रियो की प्रशासनिक अनभिज्ञता

मन्त्री यद्यपि अपने विभाग के अध्यक्ष होते हैं, तथापि विभाग के वास्तविक अनुभवो और प्रशासनिक बारीकियो का उन्हे प्राय ज्ञान नही होता। मन्त्रिगण तकनीकी विषयो अथवा प्रशासन की गहराइयो मे पहुँचने की सामर्थ्य नही रखते। यद्यपि मन्त्रियो को भी जनता की समस्याएँ पृथक रूप से जानने का अवसर प्राप्त होता है, तथापि वे उनका सर्वेक्षण उतना तीक्ष्ण तथा विश्लेषणात्मक रूप मे नही कर पाते जितना कि असैनिक कर्मचारी करते या कर सकते हैं। मन्त्रियो के लिए ऐसा होना स्वाभाविक भी है।

प्रथम मन्त्रि-पद पर उनकी नियुक्ति राजनीतिक आधार पर होती है। राजनीतिक दल मे उनकी स्थिति, उनके व्यक्तित्व, उनकी व्यावहारिक एव सामान्य योग्यता, प्रधानमन्त्री की दृष्टि म उनका महत्त्व आदि बातो के आधार पर उन्हे मन्त्रि-पद दिया जाता है, न कि उन्होने कोई विशिष्ट प्रतियोगी परीक्षा उत्तीर्ण की है।

दूसरे मन्त्रिगण अस्थाई रूप मे अपने पद पर रहते हैं। उनका कार्यकाल अनिश्चित होता है और वे किसी विभाग के स्थाई अध्यक्ष नही होते। वे आते हैं और चले जाते हैं। अत अपना सारा समय और श्रम लगाकर उनसे विभाग की बारीकियो को जानने की आशा नही की जा सकती। एक समय मे उनके लिए प्रशासन का पूरा-पूरा ज्ञान कर सकना असम्भव होता है।

तीसरे, मन्त्रिगण राजनीतिक प्रपचों और गतिविधियों में इतने फँसे रहते हैं कि प्रशासन के वास्तविक कार्य को सचालित करने का उन्हें बहुत कम अनुभव हो पाता है। मन्त्रियों को ससद् में जनता में एव अन्य स्थानों पर अनेक उत्तरदायित्वों को पूर्ण करना पड़ता है। इन सबके बाद उसके पास इतना अधिक समय नहीं बच पाता कि वे प्रशासनिक मामलों में अधिक रुचि ले सके अथवा गहराई से जाँच कर सकें।

उक्त सभी कारणों से मन्त्रियों को नौसिखिए या अविशेषज्ञ कहा जाता है। दूसरे शब्दों में वे ऐसे व्यक्ति हैं जो पेशेवर प्रशासक नहीं होते, जिन्हें प्रशासन सम्बन्धी कोई प्रशिक्षण प्राप्त नहीं होता है और जिन्हें प्रायः प्रशासन का पर्याप्त अनुभव नहीं होता। वे केवल राजनीतिक प्रशासक होते हैं।

मन्त्रियों की इस प्रशासनिक अनभिज्ञता के सम्बन्ध में विद्वानों ने अनेक रोचक बातें बताई हैं। मनरो ने लिखा है--"कई अवसरों पर ब्रिटेन युद्ध मन्त्री कोई दार्शनिक या प्रान्त का नौसेना मन्त्री कोई व्यापारी या बैरिस्टर और व्यापार मन्त्री विद्यालय का कोई प्रोफेसर रहा है। वित्त मन्त्री के सम्बन्ध में तो यह आशा की ही जानी चाहिए कि इस पद पर कोई ऐसा व्यक्ति ही नियुक्त किया जाए जो अर्थ (Finance) की बारीकियों से परिचित हो, पर नहीं, अनेक बार अर्थ मन्त्रियों के पद पर ऐसे व्यक्ति भी रह चुके हैं जो पेशेवर राजनीतिज्ञ या वकील थे।"

मन्त्रि-पद के लिए कोई प्रशासनिक ज्ञान या प्रतियोगी परीक्षा में उत्तीर्णता आदि का आधार नहीं होता, इस बात पर प्रकाश डालते हुए सिडनी लो ने कहा है कि—"वित्त मन्त्रालय में द्वितीय श्रेणी के क्लर्क का पद प्राप्त करने के लिए नवयुवक को अकगणित की परीक्षा में उत्तीर्ण होना पड़ेगा, पर वित्त मन्त्री अधेड़ उम्र का एक ऐसा व्यक्ति भी हो सकता है जो अको के अपने थोड़े बहुत ज्ञान को भी भूल चुका हो जो उसने ईटन अथवा ऑक्सफोर्ड में प्राप्त किया हो और जब दशमलव अको में लेखा उसके सामने पहली बार रखा जाए तो वह उन छोटे छोटे बिन्दुओं का अर्थ जानने के लिए उत्सुक हो।"

उक्त प्रसग में यह स्मरण है कि इस बात को अब लोकतान्त्रिक सिद्धान्त माना जाने लगा है कि मन्त्रिगण प्रशासन के विशेषज्ञ नहीं होते।

लोकसेवकों की प्रशासनिक विशिष्टता

शासन-सूत्र सचालित करने वाला दूसरा वर्ग लोकसेवकों (Civil Servants) का है जो प्रशासनिक मामलों के विशेषज्ञ (Experts) होते हैं। लोकसेवक मन्त्रियों द्वारा निर्धारित नीति को क्रियान्वित ही नहीं करते वरन् इसके बनाने में भी मन्त्रियों को तकनीकी सलाह देते हैं। सलाह देने का यह कार्य भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं होता क्योंकि इसी सलाह पर अनेक बार प्रशासन की सफलता और असफलता निर्भर रहती है। लोकसेवकों द्वारा दिया गया परामर्श कई कारणों से प्रभावशाली बन जाता है। लोकसेवक प्रशासन से सम्बन्धित छोटी-से-छोटी बात से परिचित रहते हैं। उनका प्रशासन सम्बन्धी प्रशिक्षण और अनुभव उन्हें शासन कार्य का विशेषज्ञ

और यदि सचमुच देखा जाए तो वे इसलिए और भी अधिक उपयोगी होते हैं कि उन्हे प्रशासनिक ज्ञान की विशिष्टता नही होती। निम्नलिखित विवरण से यह मत स्पष्ट हो जाएगा—

1 मन्त्रियो का पहला मुख्य कार्य है कि वे प्रशासन की नीतियो का निर्धारण इस प्रकार करें कि जिनसे अधिकाधिक सार्वजनिक हित हो सके और लोकमत को समुचित आदर प्राप्त हो। मन्त्रियो को जिनका भावी निर्वाचन जनता की कृपा पर निर्भर होता है निरन्तर इस बात का ध्यान रखना पडता है कि उनकी नीतियों और प्रशासन के कार्यों की जनता पर अनुकूल प्रतिक्रिया हो, अत वे नीति-निर्माण मे एक व्यापक दृष्टिकोण अपनाते हैं। उनका दृष्टिकोण समझौतावादी और प्रगतिशील विचारो वाला होता है। इसके विपरीत विशेषज्ञों का दृष्टिकोण सकुचित होता है। वे छोटी छोटी पारिभाषिक बातों को विशेष महत्व देते हैं और किसी बात पर प्राय: एकमत नही होते, अत यह बात परमावश्यक है कि मन्त्री लोकसेवको की तरह प्रशासनिक विशेषज्ञ न हो, क्योकि तभी वे उत्तरदायी दृष्टिकोण अपना सकेंगे और पूरे विभाग पर इस दृष्टि से आवश्यक नजर रख सकेंगे। यदि मन्त्री भी लोकसेवा सदस्यो की तरह ही प्रशासन-विशेषज्ञ होने लगेंगे तो उन्ही के समान वे भी कार्यालय की फाइलो के कीडे बन कर रह जाएँगे। वे लोकसेवको की भाँति विशेषज्ञ होने पर और सदैव प्रशासनिक एव विभागीय कार्यो मे व्यस्त रहने पर मन्त्रिमण्डल, प्रशासन का सचालन, निर्देशन और जनता के साथ अपना निकट सम्पर्क स्थापित नही कर सकेंगे और जनता के कष्टो को अपना कष्ट नही बना सकेंगे। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि प्रशासनिक और सार्वजनिक कार्यों में तालमेल नही बैठ सकेगा। जबकि ऐसा होना लोकतन्त्रात्मक शासन की सफलता के लिए अनिवार्य है। वास्तव मे मन्त्री ही राष्ट्र की नाडी की गति को पहचान कर प्रशासकीय नीतियो को उदारवादी जामा पहनाते हैं और प्रशासन को लोकप्रिय बनाते हैं। रैमजे मैक्डोनाल्ड (Ramsay MacDonald) ने ठीक ही कहा है कि "मन्त्रिमण्डल जनता और विशेषज्ञ तथा सिद्धान्त व व्यवहार को जोडने वाला पुल है।" ऑग (Ogg) के शब्दों मे, "मन्त्री को विभाग और लोकसभा के बीच एक मध्यस्थ के रूप मे कार्य करना चाहिए ताकि विभाग का सम्बन्ध लोकमत से बना रहे और लोकसभा को प्रशासन की आवश्यकता तथा समस्याओ का ज्ञान रहे।"

2 मन्त्रिमण्डलीय शासन का सार है मन्त्रियो का उत्तरदायित्व। मन्त्री व्यक्तिगत रूप से अपने अपने विभाग के प्रशासन के प्रति उत्तरदायी होते हैं लेकिन मन्त्रिमण्डल के सदस्य होने के नाते वे सम्पूर्ण प्रशासन के सुसचालन के सामूहिक रूप से भी उत्तरदायी होते हैं। दूसरे शब्दो मे, वे विभागीय हितो के साथ साथ सम्पूर्ण प्रशासन के हितों को भी ध्यान मे रखते हैं, और चूँकि उन्हे सम्पूर्ण प्रशासन का ध्यान सर्वोपरि रखना होता है, वे मात्र विभागीय हितों की सीमा से ऊपर उठे हुए होते हैं। एक मन्त्री सिर्फ अपने विभाग से ही सम्बन्ध नही रखता, उसे दूसरे

विभागों की जरूरतों का भी ध्यान रखना पड़ता है। वह इस तथ्य को कभी नहीं भूल सकता कि मन्त्रियों के सामूहिक उत्तरदायित्व के कारण किसी दूसरे मन्त्री की हार का नतीजा सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल का पतन हो सकता है अतः इस अनुभूति के कारण उसका दृष्टिकोण इतना व्यापक होता है कि वह अपने विभागों के कार्यों का अन्य विभागों के कार्यों के साथ इस प्रकार सामंजस्य बैठाता है कि समूची सरकार के लिए एक सामूहिक इकाई के रूप में कार्य करना सम्भव होता है। सम्पूर्ण प्रशासन के सर्वोपरि हितों को अविशेषज्ञ मन्त्री ही सोच सकता है न कि विशेष लोकसेवक। प्रशासन के हितों का समष्टि रूप से ध्यान रखना मन्त्री के लिए आवश्यक है। ऑग (Ogg) ने कहा है कि "उसे (मन्त्री को) इस योग्य होना चाहिए कि वह अपने विभाग को समष्टि रूप से भी देख सके। उसे औचित्य और मान्यताओं का ऐसा ध्यान होना चाहिए कि विभाग को अपने उचित कार्यक्षेत्र तक सीमित रखने में वह मार्ग-प्रदर्शक बन सके।"

समस्त प्रशासन के सर्वोपरि हितों का विचार एक उदार और व्यापक दृष्टिकोण वाला सुलझा हुआ व्यक्ति ही कर सकता है, प्रशासन की बारीकियों में फँसा हुआ संकुचित दृष्टिकोण वाला व्यक्ति नहीं। विशेषज्ञ विभागीय प्रशासनिक पचड़ों में फंसा रहता है। उसका विभागवाद उसे विशाल दृष्टिकोण नहीं अपनाने देता। इसके अतिरिक्त विशेषज्ञ लोकसेवक ज्ञान की एक शाखा का विशेषज्ञ होता है और यह सम्भव है कि दूसरे विषयों में उसका ज्ञान शून्य हो। इसके विपरीत मन्त्री का महत्त्व एक सामान्य शासक के रूप में होता है जो सभी विभागों के हित की दृष्टि से सोचता है और कार्य करता है। लॉस्की (Laski) ने ठीक ही लिखा है कि "हम व्यक्तियों को अर्थ विभाग में इस कारण नहीं भेजते कि वे सुदक्ष अर्थशास्त्री हैं, इसी प्रकार हम उन्हें कृषि विभाग अथवा शिक्षा मन्त्रालय में इसलिए नहीं भेजते कि वे कृषि विशेषज्ञ या शिक्षाशास्त्री हैं। वे शासकों के रूप में महत्त्व रखते हैं किन्तु इस कारण नहीं कि किसी विषय विशेष की विशिष्ट जानकारी रखते हैं बल्कि इस कारण कि हमको उनकी प्रशासनिक योग्यता पर विश्वास है शिक्षा के कारण उनमें वे गुण विद्यमान हैं जिनके कारण वे पहल व निर्णय कार्य कर सकेंगे। ये ही वे गुण हैं जिनके बिना शासन चलाया नहीं जा सकता और ये गुण राजनीतिक अध्यक्ष में होने भी चाहिए यदि वह अपने पद का सफलतापूर्वक निर्वहन करना चाहता है।"

3 मन्त्री लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं और उनके लिए आवश्यक है कि अपने हृदय में लोकसभा और उसके सदस्यों के प्रति आदर-भावना रखें। मन्त्री यदि विशेषज्ञ होंगे तो इसका मनोवैज्ञानिक कुप्रभाव यह हो सकता है कि वे स्वयं को इतना ज्ञानवान् और महान् समझने लगेंगे कि सम्भव है वे साधारण विधायकों के प्रति स्वयं को उत्तरदायी मानने में अपमान अनुभव करने लगें। वे ज्ञान को अज्ञान के समक्ष समझने लगें और इस बात को पसन्द न करें कि सामान्य ज्ञान वाले विधायक संसद् में उनसे इस प्रकार के प्रश्न करें जैसे स्वामी सेवकों से प्रश्न करते हों। इस प्रकार की भावना का संचार होने से मन्त्री स्वतः लोकसभा के प्रति अपने वास्तविक उत्तरदायित्व का निर्वाह नहीं कर सकेंगे और

उनसे उत्तरदायित्व के स्थान पर निरकुशता के विचारो को प्रोत्साहन मिलेगा। यह स्थिति समदीय शासन-व्यवस्था के लिए घातक होगी।

निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि मन्त्रियो के विशेषज्ञ न होने से *प्रशासन मे अथवा राजनीतिक क्षेत्र मे उनकी उपयोगिता और महत्त्व को कोई* आघात नही पहुँचता, प्रत्युत खास दृष्टियो से यह लाभदायक ही है। एक विभागीय अध्यक्ष को जो कि राजनेता होता है, अपने विभाग के कार्य की पूरी जानकारी होनी चाहिए लेकिन उसे उस विषय का विशेषज्ञ होना आवश्यक नही है। प्रत्येक *विभाग म काम बँटे होते हैं और अनेक समस्याएँ आती हैं जिनमे ऊँची योग्यता* तथा जानकारी की आवश्यकता होती है। ऐसे विभागीय अध्यक्ष भी जो वर्षों से स्थायी रूप से उस विभाग मे कार्य कर चुके हैं, उन सब समस्याओ पर एक-सी अधिकारपूर्ण जानकारी नही रख सकते तो फिर मन्त्रियो के लिए जिनका कार्यकाल *अल्प और सकटमय होता है यह सम्भव नही है कि वे अपने विभाग मे आने वाली* समस्याओ के सम्बन्ध मे अधिकारपूर्ण विशिष्टता प्राप्त कर सकें। मन्त्रियों को उस दुनिया म नहीं रहना होता जिसमे सर्वसाधारण प्रवेश न पा सकें।

मन्त्रियो और लोकसेवको का पारस्परिक सम्बन्ध
(Relationship between the Ministers and Civil Servants)

मन्त्रियो और लोकसेवको के पारस्परिक सम्बन्ध मे मतभेद हैं। कुछ विद्वानो की मान्यता है कि लोकसेवकों का ब्रिटिश प्रशासन मे इतना प्रभाव है कि मन्त्रीगण उनके सकेतों पर चलते है तथा वे उनके हाथ का खिलौना बन कर कार्य करते हैं। उनका आरोप है कि ब्रिटेन मे वस्तुतः नौकरशाही का आधिपत्य स्थापित हो गया है। इस मत के विपरीत विद्वानो के एक दूसरे वर्ग का कहना है कि ब्रिटेन मे नौकरशाही के आधिपत्य की बात करना भ्रामक है। यह सही है कि ब्रिटिश प्रशासन के सूत्र मे लोकसेवको का काफी प्रभाव है और मन्त्रियो के कार्य उनसे प्रभावित होते हैं, परन्तु फिर भी वास्तविक निर्णय शक्ति मन्त्रियो मे ही निहित है। मन्त्रियो मे, अपने विभाग के लिए नए होते हुए भी, नीति निर्धारण और निर्णय करने की क्षमता होती है और वे ऐसा करते भी हैं। लास्की (Laski) का कहना है कि दोनो के सम्बन्ध वस्तुत उनके व्यक्तित्व पर आधारित होते हैं। यदि मन्त्री का व्यक्तित्व प्रभावी है तो वह लोकसेवको पर हावी रहता है, यदि मन्त्री एक *कमजोर ढीला-ढाला व्यक्ति है तो उसे लोकसेवको के इशारो पर चलना पडता है,* अत यह कहना अनुचित है कि प्रत्येक मन्त्री लोकसेवको के हाथो का खिलौना होता है।

मतो की ऐसी विभिन्नता मे यह निर्णय करना कठिन है कि दोनो मे कौन किसके द्वारा अधिक प्रभावित होता है तथापि वैधानिक स्थिति के अनुसार प्रशासन का अन्तिम उत्तरदायित्व मन्त्रियो पर ही है अत लोकसेवको को उन्ही की इच्छा के अनुरूप चलना पडता है। मन्त्री मन्त्रिमण्डल द्वारा किए गए निर्णयो की सीमा के अन्तर्गत अपने अपने विभाग की नीति निर्धारित करते हैं और लोकसेवको के माध्यम से उनको क्रियान्वित करते हैं। स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति मे लोकसेवको का

मन्त्रियों पर हावी रहने का तब तक कोई प्रश्न नहीं उठता जब तक कि मन्त्री स्वेच्छा से अथवा अनजाने में उन्हें ऐसा अवसर न दे।

इस संक्षिप्त भूमिका के बाद अब हम कुछ विस्तार से यह देखने का प्रयास करेंगे कि नौकरशाही की शक्ति क्या है अर्थात् मन्त्रियों पर लोकसेवकों का क्या प्रभाव होता है और क्या मन्त्री लोकसेवकों के हाथों की कठपुतली होते हैं ?

मन्त्रियों पर लोकसेवकों का प्रभाव

यह सभी मानते हैं कि प्रशासन के क्षेत्र में लोकसेवकों का स्थान बड़े महत्त्व का है। मन्त्रियों के कार्यों पर उनका बहुत प्रभाव रहता है। मन्त्रियों को उनके सहयोग की आवश्यकता बनी रहती है—नीति-निर्धारण और योजनाओं के प्रारूप बनाने से लेकर उनकी अन्तिम सफलता तक लोकसेवकों के सहयोग का निश्चित मूल्य है। शासन-सूत्र में उनके इस प्रभाव के कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

प्रथम, मन्त्रिगण प्रशासन के विशेषज्ञ नहीं होते जबकि लोकसेवक उसके विशेषज्ञ होते हैं अतः मन्त्रियों को विभिन्न मामलों में उनसे परामर्श लेना पड़ता है। लोकसेवक अपने वृहत् प्रशासकीय ज्ञान और दीर्घकालीन अनुभव के कारण प्रशासन का तकनीकी पक्ष और उनकी बारीकियाँ मन्त्रियों के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं ताकि वे (मन्त्री) अपने निर्णय करने में यथासम्भव कोई भूल न कर पाएँ। चूँकि मन्त्रिगण प्रशासनिक मामलों में इतना अनुभव नहीं रखते अतः उन्हें स्वभावतः दक्ष एवं विशेषज्ञ लोकसेवकों के प्रभाव में रहना पड़ता है।

दूसरे, मन्त्रियों की यह विशेष प्रवृत्ति होती है कि वे प्रशासन की किसी बात को प्रयोग पर नहीं छोड़ते क्योंकि ऐसा करने से उनकी त्रुटियाँ प्रकाश में आती हैं, जिसका न केवल उनके स्वयं के भविष्य पर अपितु उस राजनीतिक दल पर भी, जिसके वे सदस्य हैं, विपरीत प्रभाव पड़ता है। स्वयं पर और अपने राजनीतिक दल पर दोषारोपण की स्थिति से बचे रहने के लिए मन्त्रिगण प्राय प्रत्येक प्रशासन सम्बन्धी कार्य लोकसेवा के विशेषज्ञों से परामर्श लेकर करना ही अधिक अच्छा समझते हैं। लोकसेवक अनेक अवसरों पर मन्त्रियों के सम्मुख बहुमत से ऐसे मामले रखते हैं जिनके बारे में मन्त्रियों को ज्ञान नहीं होता। उन मामलों में लोकसेवक उन्हें सलाह देते हैं और अनेक तथ्यों द्वारा उन मामलों या समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हैं, फलतः मन्त्री उन पर हस्ताक्षर कर देता है। रेमजेम्योर (Ramsay Muir) का मत है कि नीति-निर्माण, निर्णय और उनके क्रियान्वयन में मन्त्रियों पर लोकसेवकों का प्रभाव इतना अधिक रहता है कि मन्त्रियों को लोकसेवकों के हाथ की कठपुतली मात्र समझा जाना चाहिए। उनके शब्दों में, "जब तक मन्त्री कोई स्वाभिमानी तथा न हो या असाधारण विवेक, शक्ति और साहस से परिपूर्ण व्यक्ति न हो (और सफल राजनीतिज्ञों में इन दोनों ही प्रकारों के लोग प्राय. नहीं होते), सौ में से निन्यानवे मामलों में वह राज कर्मचारियों के विचार को स्वीकार कर लेता है और अंकित पंक्ति पर हस्ताक्षर

लास्की ने मन्त्रियों और लोकसेवकों के सम्बन्ध को वस्तुत उनके व्यक्तित्व पर आधारित माना है। इस दृष्टि से उसने मन्त्रियों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है—शक्तिशाली अस्तित्व वाले लोकप्रिय व्यक्तित्व वाले एव भाग्य के सहारे चलने वाले। शक्तिशाली एव प्रतिभासम्पन्न व्यक्तित्व वाले मन्त्री लगभग सभी प्रशासनिक समस्याओं को अपने सामान्य विवेक से समझ लेते हैं और उनके समाधान के लिए लोकसेवकों पर आश्रित नही रहते, अपितु अवसरानुकूल निर्णय करके लोकसेवको को उस निर्णय को लागू करने का आदेश दे देते हैं। वे इस बात के प्रति पूर्ण सजग रहते हैं कि लोकसेवक कोई गलती न कर बैठे और लोकसेवक स्वय इस भय से आशकित रहते हैं कि कहीं उनसे असावधानी न हो जाए। वे ऐसे मन्त्रियों के निर्णय के मुखापेक्षी रहते हैं। श्री विंसटन चर्चिल ऐसे सशक्त अद्वितीय प्रतिभाशाली मन्त्री थे कि किसी भी विभाग मे उनकी उपस्थिति मात्र से वहाँ के कर्मचारियों की भावनाएँ बदल जाती थी।

कुछ मन्त्री यद्यपि शक्तिशाली व्यक्तित्व के धनी होते हैं, किन्तु अपनी लोकप्रियता के बल पर लोकसेवकों पर हावी रहते हैं। उन्हे लोकसेवकों द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली प्रशासकीय बारीकियों की परवाह नहीं होती। वे तो प्रत्येक निर्णय और नीति को जनता की पसन्द की तराजू म तोलते हैं। लोकसेवकों के प्रत्येक परामर्श पर वे उसकी लोकप्रियता की दृष्टि से विचार करते हैं। वे लोकसेवकों को बता देते हैं कि जनता क्या पसन्द करेगी और लोकसेवक उन्हें ऐसा कोई सुझाव या परामर्श देने का साहस नहीं करते जो जनता को नाराज करने वाला हो। उन्हें अपनी नौकरशाही या कर्मचारीतन्त्र को मन्त्री की इच्छानुरूप लोकतन्त्रीकरण का जामा पहनाना पड़ना है।

कुछ मन्त्री न तो प्रतिभा सम्पन्न ही होते हैं और न लोकप्रिय ही, वे तो भाग्य के भरोसे चलने वाले होते हैं। उन्हें अपने प्रभाव व व्यक्तित्व की ही नहीं, प्रत्युत् अपने पद की चिन्ता भी बनी रहती है। वे प्राय स्व-निर्णय की अपेक्षा लोकसेवक-विशेषज्ञों के परामर्श पर अधिक आश्रित रहते हैं। तथापि उन्हें यह अवश्य ध्यान रखना पड़ता है कि उनका विभाग दलीय-कार्यक्रम और मन्त्रिमण्डल द्वारा लिए गए निर्णय के अनुरूप चलता रहे, क्योंकि ऐसा न करने पर उनका मन्त्री पद ही खतरे में पड़ सकता है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट है कि मन्त्रियों के क्रियाकलापों पर लोकसेवकों का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है और लोकसेवकों का सहयोग प्रशासनतन्त्र को सुगमतापूर्वक चलाने के लिए वांछनीय भी है। परन्तु मन्त्रिगण की स्थिति लोकसेवकों के हाथों की कठपुतली जैसी नहीं है। नीति के निर्माता मन्त्री ही हैं और लोकसेवकों को व्यवहार में उनकी इच्छा का पालन करना पड़ता है। वस्तुत ब्रिटेन में अविशेषज्ञों और विशेषज्ञों में एक विशेष प्रकार का मेल है। सरकारी कर्मचारी मन्त्रियों को आवश्यक जानकारी एव तथ्य प्रदान करते हैं और सरकारी नीतियों को क्रियान्वित करते हैं। वे शासन पर छाने का प्रयास नहीं करते, प्रत्युत्

शासन की प्रकृति व स्वरूप को बनाने मे सहायक होते हैं। मन्त्रियो और उनके अधीनस्थ कर्मचारियो या लोकसेवको के सम्बन्ध की व्याख्या लॉर्ड मिलनर ने निम्नलिखित शब्दो मे की है—

"प्राय: नियुक्त होते समय मन्त्री विभागीय कार्य-सचालन के बारे मे कुछ नही जानते। उनके पास नीति होती है, अपने विचार होते हैं, लेकिन जब उनका ससर्ग उन व्यावहारिक कठिनाइयो, नए सकटो, विस्तृत सचित ज्ञान तथा अनुभव मे होता है जो स्थायी अधिकारी विषय के बारे मे रखते हैं तब उन विचारो मे बहुत परिवर्तन हो जाता है। वस्तुत उच्च श्रेणी के प्रशासनिक अधिकारियो का मुख्य कर्त्तव्य राजनीतिज्ञो की अस्पष्ट आकांक्षाओ तथा उनके धुन्धले विचारो को मूर्तरूप देना है। जब मन्त्री की नीति को असफल न बनाने की निष्कपट भावना से कर्त्तव्य का सच्चाई के साथ पालन किया जाता है और कुछ उपयोगी वस्तु का निर्माण करने की सद्भावना रहती है तब प्रशासकीय अधिकारी राज्य की नीति को पर्याप्त प्रभावित करते हैं।"

फिशर के अनुसार, "मन्त्रियो का कार्य नीति का निर्धारण करना है और जब यह नीति एक बार निश्चित हो जाए, तब प्रशासकीय अधिकारियो का यह नि सदिग्ध कार्य हो जाता है कि उस नीति को कार्यान्वित करने के लिए सद्भावना से ठीक ठीक प्रयत्न करें चाहे वे उससे सहमत हो या असहमत। यह तथ्य स्वत सिद्ध और निर्विवाद है। इसके साथ ही प्रशासकीय अधिकारियो का परम्परागत कर्त्तव्य है कि जब निर्णय लिए जाएँ तब अपने राजनीतिक अध्यक्षो को अपनी सम्पूर्ण जानकारी तथा अनुभव निर्भीकता तथा निष्पक्षतापूर्वक बता दें, चाहे उनका परामर्श मन्त्री के दृष्टिकोण से उपयुक्त हो या न हो। मन्त्री के सामने सम्बन्धित *तथ्य पेश करते हुए जिनका पता लगाने म स्वय सारे विभाग को बडा परिश्रम* करना पडता हो प्रशासकीय अधिकारी को अत्यधिक सावधान रहने की जरूरत है, क्योकि उसके लिए प्राय विभाग को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, ऐसे तथ्यों पर प्रभाव डालने के लिए उसे अपनी योग्यता और निष्पक्षता को प्रयोग मे लाना होता है।"

लास्की के कथनानुसार, 'प्रशासकीय सेवा परिणामो की द्योतक है, आदेश देने की नहीं। यह मन्त्री का निर्णय होता है। प्रशासकीय सेवा का कार्य वह सब मसाला इकट्ठा करना होता है जिसके आधार पर इसकी समझ से एक उचित निर्णय लिया जा सकता हो।"

रेमजे मैकडोनाल्ड ने लिखा है, "मन्त्रिमण्डल जनता और विशेषज्ञो के बीच का पुल है जो सिद्धान्त और व्यवहार को मिलाता है। इसका कार्य अनुभव करने वाली स्नायुओ द्वारा प्राप्त खबरो को कार्य करने वाली स्नायुओ (Mother nerves) द्वारा आदेश मे बदलना होता है। यह विभाग के सचालन मे नहीं लगा रहता, प्रत्युत् विभाग को एक विशेष दिशा प्रदान करने का कार्य करता है।"

निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि मन्त्रिगण लोकतन्त्र के माध्यम हैं जिनसे यह आशा की जाती है कि वे लोकसेवा द्वारा दिए हुए परामर्श पर आधारित प्रशासन का लोकतन्त्रीकरण करते हो। नौकरशाही अथवा कर्मचारीतन्त्र शक्तिशाली अवश्य हैं, किन्तु इतना नही कि लोकतन्त्र उनके हाथो बिक जाए। दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ है और ब्रिटेन मे बडे आदर्श रूप मे दोनो ही अन्योन्याश्रित हैं। मुनरो ने लिखा है कि "प्रथम (अर्थात् मन्त्रिगण) प्रशासन मे लोकतन्त्रीय तत्त्व की और द्वितीय (अर्थात् लोकसेवक) कर्मचारीतन्त्र के तत्त्व की व्यवस्था करता है। दोनो ही आवश्यक हैं—एक सरकार को लोकप्रिय बनाने के लिए और दूसरा उसे कार्यकुशल बनाने के लिए। एक सुन्दर प्रशासन की परख यही है कि लोकतन्त्र और कार्यक्षमता का सफल सयोजन हो जाए।"

अन्त मे, न्यूमैन (Newman) के शब्दो मे यह कहना उचित होगा कि "अधिनायकवाद या तानाशाह (कर्मचारीतन्त्र की) कहे जाने का कोई तथ्युक्त कारण नही है।" यहाँ यह याद रखना चाहिए कि ब्रिटिश लोकसेवा राज्य के अन्तर्गत राज्य नही है जैसी कि जर्मन लोकसेवा थी, प्रत्युत् यह एक प्रजातान्त्रिक तथा उत्तरदायी सरकार का पद है जिसके अन्तर्गत यदि बडे पैमाने पर शक्ति का दुरुपयोग किया गया तो इसकी तुरन्त ही सार्वजनिक प्रतिक्रिया होगी जिसके फलस्वरूप अनेक सिर लुढकते नजर आएँगे। लोकसेवकों के सिर पर उत्तरदायी मन्त्री हैं जिनका काम लोकसेवकों को यह बताना है कि जनता क्या नहीं चाहती है?

2 लोक सेवाओं का विकास एवं महत्त्व

(Development and Significance of Public Services)

राज्य के सभी दायित्वों एवं कार्यों को सम्पन्न करने का भार उस राज्य के जिन कर्मचारियों पर होता है उन्हें लोक-सेवक कहा जाता है। ये लोक-सेवक किसी भी देश के लोक प्रशासन की जीवित या गतिशील ग्रात्मा कही जा सकती है। *लोक-सेवाएँ ग्राधुनिक राज्य की स्थाई कार्यपालिकाएँ हैं।* संसद, मन्त्रिमण्डल तथा दूसरे उच्च राजनीतिक कार्यकर्त्ता समय-समय पर बदलते रहते हैं किन्तु लोक-सेवाएँ स्थाई रूप से शासन सचालन में भाग लेती हैं। एक राज्य द्वारा प्रदान की जाने वाली समस्त सेवाएँ लोक-सेवकों के माध्यम से ही जन-साधारण तक पहुँचती हैं। जिस देश की लोक सेवा उदासीन और ग्रक्षम होती है वह देश विकास की ग्रपेक्षा पतन के गर्त मे चला जाता है। डॉ. एल डी ह्वाइट के मतानुसार "लोक-सेवाएँ प्रशासकीय सगठन का एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा सरकार ग्रपने लक्ष्यों को प्राप्त करती है।" डॉ हरमन फाइनर ने लोक-सेवाओं को प्रशासन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना है।

लोक-सेवाओं को मुख्यत दो श्रेणियों मे विभाजित किया जा सकता है—सैनिक तथा ग्रसैनिक। लोक प्रशासन का सम्बन्ध ग्रसैनिक सेवाओं से है। इनके ग्रर्थ तथा विशेषताओं का वर्णन करते हुए डॉ हरमन फाइनर ने लिखा है कि यह स्थाई वैतनिक तथा कार्यकुशल ग्रधिकारियों का समूह होती है।

लोक-सेवाओं का स्वरूप

(The Nature of Public Services)

लोक-सेवाओं के ग्रर्थ एवं स्वरूप को भली प्रकार समझने के लिए यहाँ हम सगठनात्मक एवं कार्यात्मक दृष्टि से उनकी कतिपय विशेषताओं का विवेचन करेंगे। ये मुख्यतः निम्नलिखित हैं—

(i) कुशल कार्यकर्त्ता (Skilled Workers)—लोक-सेवक केवल ग्रपने कार्य में ही नहीं वरन् सगठन के ग्रन्य कार्यकर्त्ताओं के कार्यों मे भी पर्याप्त रुचि तथा

निपुणता रखते हैं। इन्हें अपने कार्य के लिए विशेष प्रशिक्षण तथा अनुभव प्राप्त होता है तथा वे व्यावसायिक प्रतिभा से सम्पन्न हो जाते हैं।

(ii) राज्य व्यवस्था का अनिवार्य अंग (Necessary Organ of the State System)—किसी देश का राजनीतिक स्वरूप, आकार, सगठन, प्राकृतिक स्रोत, सरकार का रूप आदि चाहे किसी प्रकार अथवा अनुपात के हो, किन्तु उसे लोक सेवा की आवश्यकता अवश्य होगी। इसका कारण यह है कि लोक-सेवाएँ राज्य की नीति रचना एवं कार्यान्विति जैसे मूलभूत कार्यों में सहयोग देती हैं। इस सम्बन्ध में जोसेफ बेन्समैन तथा बर्नार्ड रोजेनबर्ग ने लिखा है कि "नौकरशाही साम्यवाद समाजवाद अथवा पूँजीवाद किसी भी व्यवस्था का मौलिक तत्त्व नहीं है। यह किसी तरह के समाज में रह सकती है, भले ही उसमें निजी सम्पत्ति हो अथवा न हो और आधारभूत रूप में वह भले ही तानाशाही अथवा प्रजातान्त्रिक वातावरण लिए हुए हो।"[1]

(iii) वेतनभोगी कार्यकर्त्ता (Paid Workers)—लोक-सेवाएँ अवैतनिक कार्य करने वाले लोगों का सगठन नहीं होती वरन् इनके सभी सदस्यों को नियमानुसार निर्धारित वेतन प्राप्त होता है। वेतन की मात्रा पद के दायित्व, योग्यता, जोखिम, श्रम आदि के आधार पर निश्चित की जाती है।

(iv) स्थाई कार्यकाल (Permanent Tenure)—लोक-सेवक निश्चित समय एवं उम्र तक अपने पद पर कार्य करते हैं। यही कारण है कि लोक-सेवाएँ जीवन-वृत्ति के रूप में अपना ली जाती हैं। राजनीतिक दलों के दाँव-पेंचों तथा राजनीतिक नेतृत्व बदलने का इनके ऊपर कम असर होता है।

(v) प्रशिक्षित कार्यकर्त्ता (Trained Workers)—लोक-सेवकों को उनके कार्यों तथा दायित्वों का समुचित प्रशिक्षण दिया जाता है वे गैर-अनुभवी नहीं होते। उन्हें दिए गए प्रशिक्षण का सम्बन्ध केवल उनके पद के दायित्वों से ही नहीं रहता वरन् उनके दृष्टिकोण को व्यापक बनाने तथा उन्हें सम्पूर्ण प्रशासनिक सगठन के लक्ष्य और आदर्शों को समझाने में भी रहता है।

(vi) पद सोपान का सिद्धान्त (The Principle of Hierarchy)—लोक-सेवाओं के कर्मचारी कार्य, दायित्व और सत्ता के आधार पर विभिन्न सोपानों के रूप में सगठित किए जाते हैं। उच्च सोपानों पर आसीन कर्मचारी अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को आदेश देते हैं तथा उनके कार्यकलापों के सम्बन्ध में प्रतिवेदन प्राप्त करते हैं। अधीनस्थ कर्मचारी अपने उच्च अधिकारी के निरीक्षण और नियन्त्रण में रहकर कार्य करते हैं।

(vii) अनामता का सिद्धान्त (Principle of Anonymity)—लोक सेवा के सदस्य जो कार्य करते हैं उसकी निन्दा अथवा श्रेय के भागीदार वे स्वयं नहीं

1 *Joseph Bensman and Bernard Rosenberg*: Mass, Class and Bureaucracy, p 548

बनते । वे पर्दे के पीछे रहकर बिना अपना नाम सामने लाए ही सारे कार्य सम्पन्न करते हैं। कार्यों का सारा श्रेय जन-प्रतिनिधियों को प्राप्त होता है।

(viii) तटस्थ दृष्टिकोण (Neutral Attitude)—लोक सेवा के सदस्य स्थाई कर्मचारी होते हैं जबकि राजनीतिक नेतृत्व समय समय पर बदलता रहता है। ऐसी स्थिति में व्यावहारिक सुविधा के लिए वे राजनीतिक तटस्थता का दृष्टिकोण अपनाते हैं। यदि सत्ताधारी दल की नीतियों के साथ उनमें समर्पण की भावना रहती है तो यह भी उनके व्यापक तटस्थ दृष्टिकोण की ही प्रतीक है। कल यदि दूसरे दल की सरकार आ जाए तो नौकरशाही का समर्पण भाव उनके लिए मुड़ जाता है।

(ix) भावुकता का अभाव (Non-Emotional)—लोक-सेवाएँ अपने दायित्वों का निर्वाह करते समय प्राय भावनाओं ही से प्रभावित नहीं होती वरन् यह नियमों के परिदायरे में भी रुचिशील रहती हैं। लोक-सेवक किसी विशेष दृष्टिकोण से प्रभावित होकर किसी बात का समर्थन अथवा विरोध नहीं करते। देश के सभी वर्गों, विचारधाराओं, क्षेत्रों और स्तरों के लोगों के लिए लोक-सेवक का व्यवहार तथा दृष्टिकोण एक समान रहता है। सार्वजनिक हित का ध्यान रखते हुए ही वे इस प्रकार का दृष्टिकोण अपनाते हैं।

(x) उत्तरदायित्व की भावना (Responsiveness)—प्रत्येक लोक-सेवक कुछ सीमाओं और मर्यादाओं में रहकर अपने दायित्व पूरे करता है। वह देश की व्यवस्थापिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका के नियन्त्रण तथा निर्देशन में उसे सौंपे गए कार्य सम्पन्न करता है। स्वयं जनता और जनता के प्रतिनिधि लोक सेवक के व्यवहार पर अपनी निरीक्षणात्मक दृष्टि रखते हैं।

(xi) जीवनवृत्ति के रूप में (As a Career Service)—लोक सेवक अपने पद पर जीवन-पर्यन्त अर्थात् कार्य करने की उम्र तक कार्य करते हैं। लोक-सेवाओं को यथासम्भव आकर्षक बनाने की चेष्टा की जाती है ताकि चरित्रवान, निष्ठावान, योग्य और अनुभवी व्यक्ति इनकी ओर आकर्षित हो सकें। लोक-सेवाओं में योग्यता के आधार पर भर्ती की जाती है। योग्य व्यक्तियों को वांछनीय प्रशिक्षण और अनुभव द्वारा कार्यकुशल बनाने के बाद यह आशा की जाती है कि वे जीवन-पर्यन्त अपनी सेवाएँ प्रदान करते रहेंगे। लोक सेवाओं को जीवनवृत्ति का रूप प्रदान करने का उद्देश्य इनके क्षेत्र को व्यापक बनाना और अयोग्य व्यक्तियों को अलग रखकर प्रतिभाशाली लोगों को लोक-सेवाओं की ओर आकर्षित करना है।

लोक सेवाओं का महत्त्व
(The Significance of the Public Services)

प्रशासन किसी भी देश के समाज तथा उसकी राजनीति का एक अविभाज्य भाग होता है। समाज का स्वरूप तथा राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति प्रशासन के दर्पण में प्रतिबिम्बित होती है और इसका सबसे सजीव प्रमाण उस देश की लोक-सेवाओं में आने वाला अधिकारी वर्ग होता है। ब्यूरोक्रेसी अथवा प्रशासनतन्त्र जिस जन-

साधारण प्रशासन का पर्यायवाची समझना है, किसी भी प्रशासन की रीति-नीतियों एव पद्धतियो के चयन मे निर्णायक भूमिका निभाता है। ये प्रशासक जो विभिन्न प्रकार की लोक-सेवाओ के सगठन मे अनुशासित रहते हैं, एक पद्धति विशेष मे भर्ती किए जाते हैं। योग्यता के आधार पर चयनित किए जाने के कारण ये स्थाई होते हैं और इन्हे वेतन, पदोन्नति तथा अन्य सेवा सुविधाओ के प्रलोभनो से समाज के अन्य व्यवसायो से खींच कर लोक-सेवाओ मे प्रविष्ट किया जाता है, जिसमे सरकार अपनी नीतियों के निर्माण और अनुपालना मे श्रेष्ठतम एव योग्यतम व्यक्तियो का अधिकतम योगदान प्राप्त कर सके। जनतन्त्रात्मक शासन-व्यवस्थाओ के लिए भी यह आवश्यक माना गया है कि उनकी लोक सेवाएँ बौद्धिक योग्यता के आधार पर (Merit Oriented) गठित की जाएँ और उनमे आने वाले अधिकारी प्रशासन को एक जीवनवृत्ति (Career) मान कर उसमे आएँ। यह इसलिए और भी अधिक आवश्यक है चूंकि जनतन्त्र मे राजनीतिक नेता छोटे समय के लिए सत्तारूढ होते हैं और चुनाव की पद्धति मे उनकी बौद्धिक योग्यता अधिक महत्वपूर्ण नहीं होती। सभी जनतन्त्र राजनीति और प्रशासन को एक दूसरे का पूरक मानकर एक-दूसरे को सन्तुलित एव उन्नत बनाने की भूमिका मे प्रस्तुत करते हैं। फिर भी राजनीति की तुलना मे प्रशासन और अधीनस्थ स्थिति है, यद्यपि राजनीतिज्ञो की तुलना मे प्रशासकों का बौद्धिक स्तर एव प्रशासकीय अनुभव अधिक समृद्ध होता है और होना भी चाहिए।[1]

आधुनिक ससार मे लोक सेवा (Civil Service) के महत्त्व को बताते हुए ऑग (Ogg) ने सक्षेप मे कहा है कि "सरकार का कार्य केवल राज्य सचिव तथा विभागो के अन्य प्रधानो, मण्डलो के सभापति, ससदीय अवर सचिवो, कनिष्ठ अधिपति तथा शिष्ट अधिपति—दूसरे शब्दो मे मन्त्रिगण द्वारा ही पूर्ण नहीं किया जा सकता। इन लोगो से यह आशा कभी नहीं की जाती कि वे कर एकत्र करें एव लेखा परीक्षण, कारखानों का निरीक्षण, जनगणना आदि कार्य करें, हिसाब रखने, डाक के वितरण और समाचार ले जाने की तो बात ही दूर है। ऐसे बहुमुखी कार्य तो उन अधिकारियो तथा कर्मचारियो द्वारा किए जाते हैं जिन्हे स्थाई लोक सेवक कहा जाता है। स्त्री पुरुषो का यह विशाल समूह ही देश के एक छोर से दूसरे छोर तक विधि का पालन करता है और इन्ही के द्वारा जन-साधारण नित्यप्रति राष्ट्रीय सरकार के निकट सम्पर्क मे आता है। जनता की दृष्टि मे इस निकाय का महत्त्व भले ही कम हो किन्तु मन्त्रालयो के लिए काम करने वालो की यह सेना सरकार के उन उद्देश्यो को, जिनके लिए सरकार विद्यमान है, पूर्ण करने के लिए कम आवश्यक नहीं है।"[2]

लोक सेवाएँ देश के सामाजिक जीवन को व्यवस्था और सुरक्षा प्रदान करती हैं। देश के विकास तथा शान्ति व्यवस्था की दृष्टि से राजनीतिक स्तर पर जो

1 पी० डी० शर्मा, बी० एम० शर्मा एव नीलम ग्रोवर : भारत में लोक प्रशासन, पृष्ठ 219.
2 *Ogg* · English Government and Politics, p 302

निर्णय लिए जाते है उनको कार्य रूप देकर लोक सेवाएँ देश की शान्ति व्यवस्था को सुदृढ आधार प्रदान करती हैं। सरकार द्वारा व्यवस्थापिका के मंच पर तथा उसके बाहर जनता को अनेक प्रकार के आश्वासन दिए जाते हैं। इन आश्वासनो को पूरा करने के लिए लोकसेवाओं द्वारा योजनाबद्ध रूप से प्रयास किए जाते हैं। लोकसेवाएँ नीति-रचना मे सहयोगी की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। वे अपने व्यापक प्रशासकीय ज्ञान तथा दीर्घकालीन अनुभव के आधार पर प्रशासन के तकनीकी पक्ष तथा अन्य बारीकियो को मन्त्रियो के सामने प्रस्तुत करती हैं। आज लोकसेवाओं का महत्त्वपूर्ण कार्य राजनीतिक निर्णय को कार्यान्वित करना नहीं वरन् राजनीतिज्ञो को यह परामर्श देना है कि उनको क्या निर्णय लेना चाहिए। फिशर के कथनानुसार प्रशासनिक अधिकारियो का परम्परागत कर्त्तव्य यह है कि जब निर्णय लिए जा रहे हो तो वे अपने राजनीतिक अध्यक्षो को बिना किसी भय तथा पक्षपात के अपना सारा अनुभव तथा जानकारी बता दें चाहे उनका परामर्श मन्त्री के प्रारम्भिक दृष्टिकोण के अनुकूल हो अथवा न हो।

लोकसेवाएँ जन-सेवा के लिए समर्पित होती हैं। वी० सुब्रह्मण्यम ने लिखा है कि "महाभारत के व्यास जैसे सन्त' वुडरो विल्सन जैसे प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ तथा चाणक्य जैसे राजनीतिशास्त्री या एपलबी जैसे प्रशासनिक सुधारको ने नागरिक कल्याण के लिए समर्पित लोकसेवा पर जोर दिया है।"[1] लोकसेवाएँ जनतान्त्रिक व्यवस्था के सफल सचालन मे अनेक दृष्टियो से सहयोग करती हैं। संसदीय देशो मे मन्त्रीगण अपने कार्यों के लिए सदन् के प्रति उत्तरदायी होते है। इस उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिए प्रत्येक कदम पर लोकसेवको का सहारा लेना पडता है। सांसदो के प्रश्नो का उत्तर लोकसेवको द्वारा तैयार किया जाता है। मन्त्री महोदय अपने अनेक दोषो को लोकसेवको पर डालकर अपना तात्कालिक बचाव कर लेते हैं। उदाहरण के लिए, भारत मे छठे लोकसभाई निर्वाचनों के समय (मार्च, 1977) जब विरोधी दलो द्वारा कांग्रेस सरकार की परिवार नियोजन के लिए की गई ज्यादतियो का उल्लेख किया गया तो कांग्रेस ने स्वयं को निर्दोष साबित करने के लिए नौकरशाही को ढाल बनाते हुए कहा कि हो सकता है नौकरशाही ने ज्यादतियाँ की होंगी और ऐसे दोषी कर्मचारियो को दण्ड दिया जाएगा। नारमन जे पावेल (Norman J. Powell) का कहना है कि उत्तरदायित्व की सांविधानिक व्यवस्था मे नौकरशाही का कार्य निश्चय ही बढ जाता है।

लोकसेवाएँ सरकार की प्रतिनिधि प्रकृति को वास्तविक बनाती हैं, वे जनहित की साधना मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं तथा विकास कार्यों को बुद्धिपूर्वक सचालित करती हैं। लोकसेवाओं के बिना उत्तरदायी सरकार का कार्य-सचालन कठिन बन जाता है। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री चैम्बरलेन ने लोक सेवकों को

1 *V Subramaniam* "Role of Civil Services in Indian Political System", IIPA, Vol. XVII, No 2, p. 238

सम्बोधित करते हुए इस कठिनाई को स्वीकार किया और कहा—"मुझे विश्वास है कि आप लोग हम लोगों के बिना भी विभाग का प्रशासन कर सकते हैं किन्तु मुझे आशंका है कि हम लोग आपके बिना विभागीय कार्य नहीं कर सकेंगे।" लोक सेवाएँ सरकारी नीति की रचना और कार्यान्विति के प्राय सभी स्तरों पर कार्य करती हैं। सर जोसुआ स्टेम्प ने लिखा है कि 'मैं अपने मस्तिष्क मे पूर्णत स्पष्ट हूँ कि अधिकारी को नवीन समाज का मूल स्रोत होना चाहिए। इसे प्रत्येक सोपान पर सुझाव देना चाहिए, बढावा देना चाहिए तथा परामर्श देना चाहिए।"

राज्य के बढते हुए कार्यों के साथ ही साथ कार्मिक-वर्ग का योग एव महत्त्व भी बढ़ता जा रहा है। पहले जबकि सरकारें प्रबन्ध-नीति (Laissez Faire) मे विश्वास करती थीं और अपने कार्यों को केवल समाज मे कानून व्यवस्था बनाए रखने तक ही सीमित रखती थी, उस समय तो कर्मचारी वर्ग के कार्य भी इन थोडे से उद्देश्यो की पूर्ति तक ही सीमित थे। परन्तु विज्ञान तथा शिल्पकला की प्रगति के वर्तमान युग मे राज्य की क्रियाओं मे असाधारण रूप मे वृद्धि हुई है। आजकल तो राज्य जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यन्त मानवीय कल्याण मे वृद्धि करता है। राज्य की क्रियाएँ अत्य त विस्तृत तथा विविध प्रकार की हो गई हैं। प्रत्येक स्थान पर राज्य वर्तमान रहता है और कोई भी नागरिक राज्य के प्रभाव और उसकी शक्तियो से बच कर नही रह पाता। राज्य उन पर सिविल सेवकों (Civil Servants) के माध्यम से नागरिको तक पहुँचता है जो कि प्रशिक्षण-प्राप्त (Trained) निपुण, स्थायी तथा व्यवसायिक रूप से कार्य करने वाले वैतनिक अधिकारी (Officials) होते हैं।[1]

अपनी व्यापक शक्तियों तथा कार्यक्षेत्र के कारण लोकसेवक वास्तविक सत्ताधारी बन जाते हैं। रेमजेम्योर की मान्यता है कि नीति-रचना, निर्णय-प्रक्रिया एव निर्णयों की कार्यान्विति मे लोकसेवकों का इतना प्रभाव रहता है कि मत्रीगण उनकी कठपुतली मात्र बनकर रह जाते हैं। इन्होंने बडे मनोरजक शब्दो मे वस्तुस्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है कि "जब तक एक मत्री कोई स्वाभिमानी गधा अथवा असाधारण विवेक शक्ति और साहस से युक्त व्यक्ति न हो तब तक 99 प्रतिशत मामलो मे लोकसेवकों की राय मान लेता है तथा उनके द्वारा लिखित पक्तियों पर हस्ताक्षर कर देता है।" इसी बात को जार्ज बनार्ड शा ने इन शब्दो मे स्वीकार किया है—"यदि हमारी राजनीतिक व्यवस्था मे कठपुतली नाम की कोई चीज है तो वह है एक सार्वजनिक विभाग का अध्यक्ष-कैबिनेट मत्री।" यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण होते हुए भी लोकसेवाओं के महत्त्व एव समर्थकता का परिचायक है। लोकसेवाओं के प्रभावपूर्ण योगदान के सम्बन्ध मे लास्की ने लिखा है कि "यह सरकार को सचालित करती है, आम चुनाव के परिणामो के जोखिम को सन्तुलित करती है तथा निष्पक्ष रूप से व्यावहारिक है उसमे जन-इच्छा को जोडकर राजनीतिक यत्र मे तेल देने का कार्य करती है।"

1 Introductory Memorandum to the Civil Service (1930), p 2.

आधुनिक समाज की जटिल एवं पेचीदा समस्याओं को ऐसे अधिकारियों की देखरेख में नहीं छोड़ा जा सकता जो कि अप्रशिक्षित (Untrained) अवैतनिक, अशिक्षित (Illiterate) तथा अनिच्छुक हों। 17वीं तथा 18वीं शताब्दी की वह कार्मिक व्यवस्था (Personnel System), जिसमें कि अप्रशिक्षित तथा अवैतनिक वर्ग से सिविल कर्मचारी हुआ करते थे वर्तमान समय के लिए अनुपयुक्त है। आधुनिक समय में तो कुशल, प्रशिक्षण-प्राप्त तथा सुशिक्षित व्यक्तियों के एक ऐसे वर्ग की आवश्यकता है जो कि राज्य की सेवा कर सके तथा योजनाओं एवं कार्यक्रमों को लागू कर सके। कार्यों का विशिष्टीकरण तथा श्रम-विभाजन (Division of Labour) वर्तमान वैज्ञानिक युग की विशेषता है। एक ही आदमी सभी कार्यों व उत्तरदायित्वों को पूरा नहीं कर सकता। अतः प्रशासन के विभिन्न कार्यों को पूरा करने के लिए तकनीकी योग्यता प्राप्त कर्मचारी नियुक्त किए जाते हैं। आजकल तो हम देखते हैं कि सिविल सेवकों के एक व्यावसायिक वर्ग (Professional Class) के द्वारा शासन-कार्य चलाया जाता है। ये कुशल प्रशासक तथ्य एवं आँकड़े एकत्र करते हैं, अनुसन्धान (Research) करते हैं और जनता की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के लिए योजनाएँ बनाते हैं। यह कहना ठीक है कि "लोक प्रशासन में कार्मिक वर्ग को ही सर्वोच्च तत्त्व माना जाता है।"[1]

भारत में लोक सेवाओं का विकास
(Development of Public Services in India)

स्वतन्त्रता से पूर्व का विकास

भारत में लोक सेवाओं के विकास का प्रारम्भिक बिन्दु प्राचीन काल से शुरू होता है। प्राचीन भारतीय साहित्य में सरकार और शासन के साथ साथ अच्छी सेवीवर्ग व्यवस्था के लिए भी उपयोगी सुझाव प्रस्तुत किए गए हैं। रामायण तथा महाभारत महाकाव्यों में सेवीवर्ग प्रशासन विषयक महत्त्वपूर्ण उद्धरण हैं। 300 वर्ष ईसा पूर्व लिखे गए कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कहा गया है कि यदि व्यावहारिक राजनीति से अनुभवशून्य केवल सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त व्यक्ति को राजकार्य सौंपा गया तो वह गम्भीर त्रुटियाँ करेगा। अतः राजा को मन्त्री के रूप में ऐसा व्यक्ति नियुक्त करना चाहिए जो उच्च परिवार में जन्मा, बुद्धिमान पवित्र आत्मा बहादुर तथा स्वामिभक्त हो। मन्त्रियों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर होनी चाहिए।[2] अर्थशास्त्र में सरकारी कर्मचारियों की परीक्षा के तरीकों उनके वेतन स्तर तथा अन्य सेवीवर्ग सम्बन्धी विषयों का उल्लेख स्पष्ट है। प्राचीन भारतीय प्रशासन के संगठन तथा व्यवहार पर अर्थशास्त्र, महाकाव्यों एवं स्मृतियों के सुझावों तथा निर्देशों का काफी प्रभाव था। यह प्रभाव मध्यकाल तक व्याप्त रहा। बाद में मुगलों ने इस व्यवस्था में गम्भीर परिवर्तन किए।

1 डॉ० चन्द्र प्रकाश भाम्भरी : लोक प्रशासन : सिद्धान्त तथा व्यवहार, पृष्ठ 416.
2 कौटिल्य : अर्थशास्त्र, अनुवादक शाम शास्त्री, 1951, पृष्ठ 494.

मुगल काल में विभिन्न प्रशासनिक विषयों में लोक सेवाओं का सगठन किया गया। स्थानीय स्तर पर मुगल सूबेदारों ने कई प्रकार की लोक-सेवाएँ गठित की तथा उनके कार्यों, शक्तियों एव दायित्वों का निर्धारण किया। मुगलकालीन भारतीय प्रशासन अरब परम्पराओं तथा प्राचीन भारतीय परम्पराओं से प्रभावित था।[1] तत्कालीन सैनिक और पुलिस अधिकारी 'अमीर' तथा राजकोष अधिकारी 'अमील' अरब परम्पराओं के प्रतीक थे। उस समय की भू-राजस्व व्यवस्था बहुत कुछ देश की प्राचीन परम्पराओं के अनुरूप थी।

18वीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य का सूरज ढला और देश की राजसत्ता पर क्रमश ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अधिकार होना चला गया। कम्पनी की वाणिज्यिक प्रकृति ने तत्कालीन लोक सेवाओं को योग्यता की अपेक्षा लूट प्रथा पर आधारित कर दिया। कम्पनी शासन के अधीन कुछ गवर्नर जनरलों ने प्रशसनीय कार्य किया। इनमें वारेन हेस्टिंग्स तथा लॉर्ड कार्नवालिस का नाम उल्लेखनीय है।[2] लॉर्ड वैलेजली ने लोक सेवकों के चयन तथा प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान दिया। जब कम्पनी के राजनीतिक कार्य बढ गए तो ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने कवेनेन्टेड तथा अनकवेनेन्टेड के रूप में सेवाओं के दो विभाग कर दिए। प्रारम्भ में कवेनेन्टड सेवाओं की भर्ती बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स द्वारा किए गए मनोनयन से होती थी किन्तु इस प्रक्रिया में भ्रष्टाचार पनपने लगा। अत 1854 में सर चार्ल्सवुड द्वारा लॉर्ड मैकाले की अध्यक्षता में एक समिति बनाई गई। जब 1858 में कम्पनी के शासन के स्थान पर भारत में ब्रिटिश क्राउन का शासन स्थापित हुआ तो सारी सरकारी शक्तियाँ प्रशासकों के हाथों में केन्द्रित हो गई। सर एडमण्ड ब्लण्ट के कथनानुसार, "उच्च भारतीय प्रशासनिक अधिकारी असल में भारत के स्वामी बन बैठे। वे किसी अन्य सत्ता के प्रति उत्तरदायी होने की अपेक्षा परस्पर एक दूसरे के प्रति उत्तरदायी बन गए।" 1858 के भारत सरकार अधिनियम ने सपरिषद भारत सचिव को भारतीय नागरिक सेवा में प्रवेश के लिए नियम बनाने का अधिकार सौंपा। भारत सचिव लोक सेवकों की परीक्षा, प्रमाणीकरण तथा ऐसे ही अन्य मामलों के बारे में भी नियम-विनियम निर्धारित कर सकता था। लोक-सेवाओं के भारतीयकरण की माँग हमारे राष्ट्रीय आन्दोलनकारी नेताओं द्वारा पुरजोर रूप से की जा रही थी। इस हेतु 1833, 1861 और 1870 में भारतीय लोक सेवा अधिनियम पारित किए गए किन्तु बहुत समय तक इनको व्यवहार में नहीं उतारा जा सका। 1876 में तत्कालीन वायसराय लार्ड लिटन ने भारत सचिव की सहमति से इस सम्बन्ध में कुछ नियम निर्धारित किए। तदनुसार कवेनेन्टेड लोक सेवा के लिए सुरक्षित कुल पदों में से 1/6 पर भारतीयों को नियुक्त करने की व्यवस्था की गई। ये नियुक्तियाँ प्रान्तीय सरकारों द्वारा चयन के माध्यम से की जाती थीं। इन नियमों द्वारा भारतवासियों की उच्च पदों तक पहुँचने की आकांक्षाएँ पूरी न हो सकीं तथा भारत का शिक्षित वर्ग

1 *Jadunath Sarkar* Mughal Administration, 1952, pp 5-8
2 *R B Jain* Contemporary Issues in Indian Administration, 1976, p 32

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के मंच से सेवाओं के भारतीयकरण की निरन्तर मांग करता रहा। इसे ध्यान में रखकर भारत सचिव लॉर्ड किम्बरले (Lord Kimberley) ने सर चार्ल्स एचीसन की अध्यक्षता में एक आयोग नियुक्त किया।

एचीसन आयोग, 1886 (Aitchison Commission)—इस आयोग ने शिक्षित भारतीयों से सम्पर्क स्थापित करने के बाद मुख्यतः ये सिफारिशें प्रस्तुत कीं—(i) कवेनेन्टेड तथा अनकवेनेन्टेड सेवाओं के अन्तर को मिटा कर इसके स्थान पर सामान्य सेवा तीन श्रेणियों में वर्गीकृत की जाए—भारतीय नागरिक सेवा, प्रान्तीय सेवा एवं अधीनस्थ सेवा। प्रथम श्रेणी की सेवाओं में भर्ती के लिए इंग्लैण्ड में प्रतियोगी परीक्षाएँ आयोजित की जाएँ जिनमें भारतीय एवं यूरोपीय प्रत्याशी खुले रूप में बैठ सकें। अन्य दो प्रकार की सेवाओं में प्रान्तीय स्तर पर भर्तियाँ की जाएँ तथा इनमें समग्र रूप से भारतीय ही लिए जाएँ। प्रान्तीय नागरिक सेवाओं में अधिकांश पदों पर भर्तियाँ मुख्यतः प्रत्यक्ष रूप से की जाती थीं किन्तु विशेष मामलों में अधीनस्थ सेवाओं में पदोन्नतियाँ भी की जा सकती थीं। (ii) आयोग ने भारत तथा इंग्लैण्ड में एक साथ परीक्षाएँ आयोजित करने के विचार को स्वीकार नहीं किया। उच्च सेवाओं के लिए भारतीय प्रत्याशियों की आयु 19 वर्ष से 23 वर्ष तक रखने का सुझाव दिया गया।

इस्लिंगटन आयोग, 1912 (Islington Commission, 1912)—लोक-सेवाओं का भारतीयकरण 1909 तक बड़ी धीमी गति से चलता रहा। इस वर्ष मार्ले-मिण्टो सुधार किए गए। इनके द्वारा भारतीय जनमत को घोर निराशा प्राप्त हुई। अतः 1912 में भारतीय लोक-सेवाओं पर एक शाही आयोग लॉर्ड इस्लिंगटन की अध्यक्षता में नियुक्त किया गया। इसका प्रतिवेदन 1917 में प्रकाशित किया गया किन्तु परिवर्तित परिस्थितियों के कारण इसकी सिफारिशें महत्त्वहीन बन चुकी थीं। आयोग की प्रमुख सिफारिशें ये थीं—(i) लोक-सेवाओं में भर्ती के लिए इंग्लैण्ड तथा भारत में एक साथ प्रतियोगी परीक्षाएँ ली जाएँ। (ii) उच्चतर लोक-सेवाओं के 25% पद भारतीयों के लिए रखे जाएँ। इन पर अंशतः सीधे तथा अंशतः पदोन्नति द्वारा भर्ती की जाएँ।

1919 का भारत सरकार अधिनियम—यह अधिनियम भारतीय लोकसेवा आयोग की स्थापना की दिशा में प्रथम कदम माना जा सकता है। अधिनियम में लोक-सेवकों की भर्ती एवं नियन्त्रण सम्बन्धी कार्य सम्पन्न करने के लिए एक लोकसेवा आयोग की स्थापना का स्पष्ट प्रावधान था। इस आयोग में सभापति सहित अधिक से अधिक पाँच सदस्य हो सकते थे। प्रत्येक सदस्य पाँच वर्ष के लिए नियुक्त किया जाता था। उनकी पुन नियुक्ति भी की जा सकती थी। इन सदस्यों की योग्यताएँ, वेतन तथा अन्य आवश्यक सेवा की शर्तें तय करने का अधिकार सपरिषद् भारत सचिव को दिया गया। वह इस हेतु नियम भी बना सकता था। अधिनियम में व्यवस्था होते हुए भी भारत सचिव ने लोकसेवा आयोग के सम्बन्ध में कोई नियम नहीं बनाया।

स्टाफ चयन मण्डल, 1922-26 (The Staff Selection Board, 1922-26)—इसकी स्थापना भारत सरकार द्वारा निम्नतर सेवाओं में भर्ती के लिए की गई। एम ए मुत्तालिब ने इस मण्डल को निम्नस्तरीय सेवाओं के लिए लोकसेवा आयोग की संज्ञा दी है।[1] इसमें एक सभापति, तीन सदस्य तथा एक सचिव रखा गया। तीन सदस्यों में दो भारतीय थे। सदस्यों की नियुक्ति दो वर्ष के लिए की जाती थी। इन्हें पुनर्नियुक्त भी किया जा सकता था। मण्डल के संविधान में यह व्यवस्था की गई थी कि अधिनियम के अनुसार लोकसेवा आयोग की स्थापना हो जाए तो उसका अध्यक्ष ही मण्डल का भी सभापतित्व करेगा। आयोग का गठन न होने के कारण गवर्नर जनरल ने अन्तरिम सभापति नियुक्त किया।

मण्डल का क्षेत्राधिकार अत्यन्त सीमित रखा गया। यह सहायक सचिवों, सहायकों लिपिकों, स्टेनोग्राफरों तथा टंकणकर्त्ताओं की भर्ती एवं पदोन्नति करने वाला अभिकरण था। मण्डल की स्वीकृति के बिना इन पदों पर किसी को नियुक्त नहीं किया जा सकता था और न किसी को स्थायी किया जा सकता था। गृह-मन्त्रालय के माध्यम से इसका सभी विभागों से सम्बन्ध था। मण्डल ने लोकसेवा आयोग द्वारा इसके कार्य सम्भालने तक (1926) कार्य किया।

ली आयोग, 1923 (The Lee Commission, 1923)—लोक सेवाओं के गठन, सेवा की सामान्य शर्त एवं यूरोपीय तथा भारतीय कर्मचारियों की नियुक्ति के तरीकों पर विचार करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने 1923 में लॉर्ड ली की अध्यक्षता में एक आयोग स्थापित किया। इस आयोग का सम्बन्ध केवल उच्चतर लोक सेवाओं से था। आयोग ने यह सुझाव दिया कि लोक सेवा आयोग की स्थापना यथासम्भव शीघ्र की जाए। इस आयोग में उच्चतर जन सम्मान प्राप्त पाँच सदस्य हों। लोक सेवा आयोग के कार्य दो प्रकार के हों—(क) लोक सेवाओं के लिए भर्ती करना तथा भर्ती के लिए उपयुक्त योग्यताओं का स्तर निर्धारित करना। (ख) लोक सेवाओं की सुरक्षा एवं अनुशासनात्मक नियन्त्रण। इन दोनों कार्यों के अतिरिक्त लोक सेवा आयोग वे कार्य भी सम्पन्न करेगा जो उसे गवर्नर जनरल अथवा प्रान्तीय सरकारों द्वारा सौंपे जाएँगे।

ली आयोग ने विकेन्द्रीकरण की दृष्टि से लोक सेवाओं को तीन वर्गों में विभाजित किया—(क) प्रशासन के सुरक्षित भाग से सम्बन्धित सेवाएँ जैसे—आई सी एस, आई पी एस, भारतीय वन सेवा, भारतीय इन्जीनियर्स सेवा आदि। आयोग की राय थी कि अखिल भारतीय सेवाओं की नियुक्ति एवं नियन्त्रण की शक्तियाँ भारत सचिव के पास ही रहें। (ख) हस्तान्तरित क्षेत्र की सेवाएँ जैसे—भारतीय शिक्षा सेवा, भारतीय कृषि सेवा, भारतीय पशु चिकित्सा सेवा आदि। इन सेवाओं के सम्बन्ध में आयोग का सुझाव था कि अखिल भारतीय आधार पर इन पदों के लिए नियुक्तियाँ न की जाएँ तथा भविष्य में रिक्त स्थानों की पूर्ति

1 *M A Muttalib* Union Public Service Commission New Delhi, 1967, p 31.

स्थानीय सरकारों द्वारा भर्ती करके की जाए। (ग) भारत सरकार के अधीन केन्द्रीय सेवाएँ जैसे—राजनीति विभाग इंजीनियरिंग प्रावकारी विभाग तथा धार्मिक विभाग की लोक सेवाएँ। इन सभी सेवाओं पर नियुक्तियाँ भारत सचिव द्वारा की जाएँ।

लोक सेवा आयोग की स्थापना, 1926 (Establishment of Public Service Commission)—फरवरी, 1926 में भारत सचिव द्वारा चार सदस्य तथा एक सभापति से युक्त लोक सेवा आयोग की स्थापना की गई। सर रॉस बार्कर (Sir Ross Barker) इसके प्रथम सभापति नियुक्त किए गए। आयोग को एक स्वतन्त्र निकाय बनाने की अपेक्षा गृह विभाग के साथ संलग्न किया गया। इसने 1 अक्टूबर, 1926 से अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। यह आयोग ब्रिटिश लोक सेवा आयोग द्वारा स्थापित पगडंडियों को अपनाने लगा। 22 सितम्बर, 1926 को भारत सचिव ने आयोग की शक्ति एवं कार्यों के सम्बन्ध में नियम बनाए। इन नियमों के अनुसार लोक सेवा आयोग अखिल भारतीय सेवाओं के सम्बन्ध में सपरिषद् गवर्नर जनरल को परामर्श दे सकता था। यद्यपि ली कमीशन यह चाहता था कि लोक सेवा आयोग भारतीय लोक सेवाओं में भर्ती की दृष्टि से अन्तिम निर्णायक होना चाहिए किन्तु सरकार ने इस सिफारिश की ओर ध्यान न देकर आयोग को केवल परामर्शदाता के कार्य ही सौंपे। आयोग की कम शक्तियों के बारे में शिकायत करते हुए इसके सभापति सर बार्कर ने साइमन कमीशन को एक ज्ञापन प्रस्तुत किया। साइमन कमीशन ने लोक सेवा आयोग की शक्तियों को बढ़ाने सम्बन्धी विषय का अपने प्रतिवेदन में उल्लेख भी नहीं किया। इसने लोक सेवा आयोग के कार्यों की प्रशंसा अवश्य की तथा कार्यकुशल एवं स्वामिभक्त लोक सेवाओं की स्थापना के लिए ऐसे ही आयोग प्रान्तों में भी गठित करने की सिफारिश की।

1930 के प्रथम गोलमेज सम्मेलन में भारतीय लोक सेवाओं की समस्याओं पर विचार करने के लिए एक उपसमिति नियुक्त की गई। इसमें एक प्रस्ताव द्वारा यह स्वीकार किया गया कि केन्द्र सरकार तथा प्रत्येक प्रान्त के लिए एक सविधीय लोक सेवा आयोग का गठन किया जाना चाहिए। 15 मार्च 1933 को ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रकाशित सांविधानिक प्रस्तावों में तथा प्रशासनिक सुधारों पर संयुक्त समिति (1933–49) ने भी यही मत प्रकट किया।

1935 के अधिनियम में लोक सेवा आयोग (Federal Public Service Commission under the Act of 1935)—1930 से लेकर 1936 तक संघीय लोक सेवा आयोग के कार्यों का विवेचन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि यह संस्था शक्तिशाली नहीं थी। संघीय सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण निर्णय गृह विभाग में लिए जाते थे तथा आयोग का कार्य उनको स्वीकार करना मात्र होता था। 1935 के अधिनियम की व्यवस्था के अनुसार प्रान्तों को भी लोक सेवा आयोग का गठन करना था। किसी प्रान्तीय गवर्नर के निवेदन पर संघीय लोक सेवा आयोग भी

उस प्रान्त सम्बन्धी सेवीवर्ग प्रशासन का सचालन कर सकता था। सघीय लोक सेवा आयोग के कार्य सचालन के लिए भारत सचिव तथा गवर्नर जनरल द्वारा नियम बनाए जा सकते थे। गवर्नर जनरल किसी भी मामले को आयोग के क्षेत्राधिकार से बाहर रख सकता था। 1935 के अधिनियम ने लोक सेवा आयोग के कार्यों तथा शक्तियों का भी उल्लेख किया था। तदनुसार आयोग द्वारा सेवाओं म भर्ती के लिए परीक्षाएँ आयोजित की जाती थीं तथा लोक सेवाओं मे भर्ती के तरीको, पदोन्नति एव स्थानान्तरण तथा अनुशासन सम्बन्धी मामलो मे गवर्नर जनरल को परामर्श दिया जा सकता था।

द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व आयोग द्वारा किसी भी विभाग मे एक रिक्त पद के लिए तीन नामो की सूची प्रेषित की जाती थी किन्तु 1945 म केवल एक ही नाम भेजने की परम्परा अपनाई गई। युद्ध के बाद आयोग ने लोक सेवाओ की पदोन्नति सम्बन्धी विषयो मे अधिक रुचि ली। इसने विभागीय पदोन्नति समितियों म भी अपने सदस्य के माध्यम से प्रतिनिधित्व किया।

द्वितीय विश्व युद्ध समाप्त होने पर सरकार द्वारा मन्त्रालयों के रूप, कार्य एव सरचना का पुनर्गठन करने के लिए उपाय सुझाने हेतु सर रिचार्ड टोटेन्हम को नियुक्त किया गया। इन्होंने 1944 मे प्रस्तुत अपने प्रतिवेदन मे यह सिफारिश की कि सरकार अपने तत्कालीन विभागीय नीति निर्माता एव कर एकत्रित करने वाले यन्त्र के स्वरूप को छोड कर कल्याणकारी राज्य एव सौविधानिक सरकार की आवश्यकताओं के अनुसार स्वय को पुनर्गठित कर ले। उसने आयोग के कार्य बढाने का भी समर्थन किया।

सघीय लोक सेवा आयोग, 1950 (Union Public Service Commission)—स्वतन्त्रता प्राप्ति (1947) से नए सविधान की स्थापना (1950) तक ब्रिटिश कालीन सघीय लोक सेवा आयोग (FPSC) कार्य करता रहा। भारतीय नागरिक सेवा (ICS) का स्थान भारतीय प्रशासनिक सेवा ने ग्रहण कर लिया तथा नवीन भारतीय विदेश सेवा (IFS) की स्थापना की गई। इस काल मे आयोग को गृह विभाग की अपेक्षा गवर्नर जनरल से सलग्न कर दिया गया। इसकी बैठकें प्रति सप्ताह होती रही किन्तु इसने प्रत्याशियो की आयु एव योग्यता जैसे साधारण विषयो पर ही विचार किया। 26 जनवरी 1950 को अपनाए गए नए सविधान के अनुसार गठित सघीय लोक सेवा आयोग ने इस पूर्ववर्ती आयोग का स्थान ग्रहण किया। नया लोक सेवा आयोग सगठन एव शक्तियों की दृष्टि से कतिपय नवीनताएँ रखता है। इसके सदस्यों की योग्यताएँ तथा कार्यकाल गवर्नर जनरल की स्वेच्छा पर छोडने की अपेक्षा सविधान द्वारा ही निर्धारित कर दिए गए हैं। भारतीय सविधान की धारा 16 के द्वारा स्थापित खुली प्रतियोगिता के सिद्धान्त ने सघीय लोक सेवा का महत्त्व अपेक्षाकृत बढा दिया है। सविधान निर्माताओं ने न्यायपालिका एव नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक की भाँति ही इसे

भी प्रजातन्त्र का आधार स्तम्भ माना है। यही कारण है कि लोक सेवाओं में योग्यता के सिद्धान्त को बनाए रखने के लिए इसकी स्वतन्त्रता एवं निष्पक्षता के लिए सुरक्षाएँ स्थापित की गई हैं। आयोग के सभापति तथा सदस्यों का कार्यकाल एवं शर्तें निश्चित हैं तथा उनके कार्यकाल में वे बदली नहीं जा सकती। इन्हें अपने कार्यकाल के बाद किसी भी सरकारी रोजगार के लिए अयोग्य माना गया है।

स्वतन्त्र भारत में सेवीवर्ग प्रशासन के प्रबन्ध का दायित्व तीन के कन्धों पर डाला गया है—संघीय लोक सेवा आयोग, गृह मन्त्रालय तथा वित्त मन्त्रालय। सेवीवर्ग प्रशासन की किसी भी कमजोरी अथवा दोष का दायित्व इन तीनों पर ही बराबर-बराबर आता है। लोक सेवा आयोग के संगठन, कार्य एवं क्षेत्राधिकार का वर्णन अधिक विस्तार के साथ हम यथा स्थान आगे करेंगे।

स्वतन्त्र भारत में लोक-सेवाएँ

स्वतन्त्रता के बाद आई सी एस को आई ए एस के नाम से रूपान्तरित कर दिया गया। सितम्बर, 1946 में आई सी एस के लिए जिन 53 प्रत्याशियों का चयन किया गया था उन्हें नई दिल्ली स्थित आई ए एस. के प्रशिक्षण स्कूल में एक वर्ष का प्रशिक्षण दिया गया। उच्चतर सेवाओं की माँग बढ़ने पर सकटकालीन भर्तियाँ की गई। मन्त्रिमण्डलीय निर्णय के आधार पर 1948 में विशेष भर्ती बोर्ड स्थापित किया गया। इस बोर्ड ने तत्कालीन लोक सेवा आयोग (FPSC) के एक एजेण्ट के रूप में कार्य किया। आई ए एस तथा आई पी एस के लिए पदोन्नति एवं सीधी भर्ती दोनों ही तरीकों से नियुक्तियाँ होने लगी। जब देशी रियासतों का भारत संघ में विलय हो गया तो उनके लिए भी उच्च प्रशासनिक अधिकारियों की व्यवस्था की जाने लगी। नए संविधान के लागू होने पर संघीय एवं राज्य स्तरों पर लोक सेवा आयोग गठित किए गए।[1]

भारतीय लोक-सेवाओं तथा सेवीवर्ग प्रशासन के संगठन और कार्यों की दृष्टि से समय समय पर विशेषज्ञों द्वारा अध्ययन किए गए हैं। 1951 से योजना आयोग के अनुरोध पर ए डी गोरवाला ने भारतीय प्रशासन के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया जिनमें सेवीवर्ग प्रशासन भी शामिल था। 1953 तथा 1956 में पाल एच एपलबी ने भारतीय लोक-प्रशासन पर संघीय मन्त्रिमण्डल को अपने दो प्रतिवेदन प्रस्तुत किए। एपलबी ने सरकारी समस्याओं के सम्बन्ध में निरन्तर शोध करने की सिफारिश की थी। तदनुसार 1954 में भारतीय लोक प्रशासन संस्थान की स्थापना की गई। इन वर्षों में सरकारी कार्यों का विस्तार तीव्र गति से हुआ तथा साथ ही सरकारी कर्मचारियों की संख्या में भी वृद्धि हुई। केवल केन्द्रीय सरकार के कर्मचारी ही 1948 से 1952 तक 14 45 लाख से 20 51 लाख हो गए अर्थात् 48% बढ़ गए। लोक-सेवाओं के कार्यों में होने वाली अनियमितताओं को रोकने के लिए 1956 में गृह मन्त्रालय ने एक प्रशासनिक सतर्कता सम्भाग की

1 भारतीय संविधान, भाग IV, धारा 315-323 तक।

स्थापना की। इसी वर्ष केन्द्रीय तथा अखिल भारतीय सेवाओं के वेतन स्तर एवं सेवा की शर्तों की पुनरीक्षा के लिए एक वेतन आयोग की नियुक्ति की गई। इस वेतन आयोग ने 1959 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया।[1] लोक-सेवाओं में प्रशिक्षण की दृष्टि से पाँचवें दशक में नेशनल एकेडेमी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन तथा विशेषीकृत प्रशिक्षण अभिकरण स्थापित किए गए। राज्यों में भी इसी प्रकार की प्रशिक्षण संस्थाएँ कायम की गईं। छठे दशक में संघीय गृह मन्त्रालय में एक प्रशिक्षण सम्भाग की स्थापना हुई ताकि यह देश में लोक-सेवाओं के प्रशिक्षण एवं विकास की आवश्यकताओं एवं गतिविधियों का मूल्यांकन तथा समन्वय कर सके।[2] 1966 में लोक-सेवाओं के संगठन तथा कार्य प्रक्रिया में वांछनीय सुधार सुझाने की दृष्टि से एक प्रशासनिक सुधार आयोग की स्थापना की गई। इस आयोग ने सेवीवर्ग प्रशासन के सम्बन्ध में विस्तार से अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया है।

सेवीवर्ग विभाग, 1970 (The Department of Personnel)—1970 से पूर्व सेवीवर्ग प्रशासन का दायित्व संघीय लोक-सेवा आयोग, गृह मन्त्रालय, वित्त मन्त्रालय तथा मन्त्रिमण्डलीय सचिव के बीच बँटा हुआ था। इस प्रकार सेवीवर्ग प्रशासन का प्रबन्ध करने वाले अभिकरणों की बहुलता थी।[3] इस सम्बन्ध में तृतीय लोकसभा की प्राक्कलन समिति ने अपने 93वें प्रतिवेदन (1966) में यह सुझाव दिया कि लोक-कल्याणकारी राज्य में स्वाभाविक रूप से बढ़ती हुई लोक-सेवाओं पर नियन्त्रण के लिए एक केन्द्रीय अभिकरण होना आवश्यक है। इस स्थिति का अध्ययन प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दलों द्वारा 1968 में किया गया। आयोग ने प्राक्कलन समिति की राय को स्वीकारते हुए यह मत प्रकट किया कि एक प्रभावशाली केन्द्रीय सेवीवर्ग अभिकरण की स्थापना करके इसे सेवीवर्ग प्रशासन के क्षेत्र सम्बन्धी सभी कार्य आवंटित कर देना भारतीय सरकारी यन्त्र में महत्त्वपूर्ण वांछनीय सुधार होगा।[4]

प्रशासनिक सुधार आयोग का प्रतिवेदन स्वीकार करते हुए भारत सरकार ने 27 जून, 1970 को केबिनेट सचिवालय में सेवीवर्ग विभाग की स्थापना की। अगस्त, 1972 को प्रसारित एक अन्य अधिसूचना द्वारा सेवीवर्ग विभाग को वे सभी कार्य सौंप दिए गए जिनकी सिफारिश प्रशासनिक सुधार आयोग ने की थी। इसके मुख्य कार्य हैं—(1) केन्द्रीय तथा अखिल भारतीय सेवाओं के लिए सामान्य सभी

1 India, Ministry of Finance, Commission of Enquiry on emoluments and conditions of service of Central Government Employees, 1957-59, Report, New Delhi, 1959, p 640

2 India, Ministry of Home Affairs, Annual Report, New Delhi, p 68–69

3 "There was therefore, a multiplicity of agencies performing the personnel management functions" —*R B Jain*, op cit, p 58

4 Administrative Reforms Commission, Report on the Machinery of the Govt of India and its Procedures of Work, New Delhi, 1968, p 70

मामलों पर सेवीवर्ग सम्बन्धी नीति की रचना करना तथा उनकी कार्यान्विति का निरीक्षण एवं पुनरीक्षा करना। (ii) प्रतिभाओं की खोज वरिष्ठ प्रबन्ध के लिए सेवीवर्ग का विकास तथा वरिष्ठ पदों पर नियुक्ति की कार्यवाही। (iii) मानव-शक्ति नियोजन, प्रशिक्षण एवं आजीवन सेवा का विकास। (iv) सेवीवर्ग प्रशासन में विदेशी सहयोग कार्यक्रम। (v) सेवीवर्ग प्रशासन में शोधकार्य। (vi) कर्मचारी-वर्ग में अनुशासन तथा उनका कल्याण तथा कर्मचारियों की परिवेदनाओं के निवारण हेतु उपयुक्त यन्त्र की व्यवस्था करना। (vii) संघीय लोक-सेवा आयोग, राज्य सरकारों, व्यावसायिक संस्थाओं इत्यादि के बीच कड़ी का कार्य करना। (viii) स्थापना मण्डल के परामर्श एवं सहयोग से केन्द्रीय सचिवालय में मध्यस्तरीय पदों पर नियुक्तियाँ करना आदि।

वर्तमान में सेवीवर्ग विभाग गृह मन्त्रालय में स्वतन्त्र एक अलग ही इकाई है। मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय में स्थित यह प्रधान मन्त्री के अधीन रहकर कार्य करता है। प्रधान मन्त्री की सहायता सेवीवर्ग विभाग में राज्य मन्त्री द्वारा की जाती है। इस विभाग में छः स्कन्ध (Wings) हैं।[1] ये सभी स्कन्ध सेवीवर्ग प्रशासन सम्बन्धी जो विभिन्न कार्य सम्पादित करते हैं वे मूल रूप से पहले गृह मन्त्रालय द्वारा सम्पन्न किए जाते थे।

सेवीवर्ग प्रशासन पर परामर्शदाता परिषद् (Advisory Council on Personnel Administration)—सेवीवर्ग विभाग अपने कार्यों एवं दायित्वों का निर्वाह समुचित रूप से कर सके इस हेतु यह आवश्यक समझा गया कि इसे सेवीवर्गीय प्रबन्ध सम्बन्धी विभिन्न विषयों पर परामर्श देने के लिए कोई स्थाई संस्था होनी चाहिए। यह संस्था सोचने-विचारने वाले लोगों के व्यावसायिक समूह के रूप में होनी चाहिए ताकि सेवीवर्ग प्रशासन सम्बन्धी भावी नीतियों एवं कार्यक्रमों के सम्बन्ध में अपनी विशेषज्ञतापूर्ण राय प्रस्तुत कर सके। प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी अपने प्रतिवेदन में इसकी सिफारिश की थी।[2] इस सिफारिश को ध्यान में रखते हुए गृह मन्त्रालय में राज्य मन्त्री के अधीन सेवीवर्ग प्रशासन पर एक उच्चस्तरीय परामर्शदात्री समिति 15 सितम्बर, 1972 को स्थापित की गई। इस परिषद् का उद्देश्य तथा मुख्य कार्य सेवीवर्ग प्रशासन में नीति सम्बन्धी विषयों पर सरकार को परामर्श देना है। इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा इसे अन्य कार्य भी सौंपा जा सकता

1 Policy and Planning Wing Training Wing All India Service Wing, Establishment Wing Vigilance Wing, E O S Wing

2 A R. C recommended that—"An Advisory Council on Personnel Administration may be set up to act as a feeder line of new ideas and thinking on personnel administration It should be composed of official and non official expert in different aspects of personnel management drawn from all over the country" —A R C Report on the Machinery of the Govt of India and its Procedure of Work New Delhi, 1968, p 70

है। इसका कार्यकाल दो वर्ष है। सेवीवर्ग विभाग का सचिव इस परिषद् का उपसभापति होता है। परिषद् म आई ए एस तथा आई पी एस से तीन-तीन सदस्य लिए जाते हैं। प्रशासन तथा प्रबन्ध मे विशेषज्ञ एव वैज्ञानिको को भी पर्याप्त प्रतिनिधित्व दिया जाता है। लोक प्रशासन के भारतीय संस्थान (IIPA) का निदेशक भी इस परिषद् का सदस्य होता है।

विभिन्न विभागो एव मन्त्रालयो का योगदान (Contribution of Various Ministries and Departments)—सेवीवर्ग सम्बन्धी सभी कार्यों को किसी भी एक केन्द्रीय सवीवर्गीय विभाग के स्तर पर केन्द्रित नही किया जा सकता। इसके लिए विभिन्न मन्त्रालयो एव विभागो को भी वांछनीय शक्तियाँ प्रदान करने का समर्थन किया जाता है ताकि वे विभिन्न सेवीवर्ग सम्बन्धी कार्य सम्पन्न कर सकें। विभिन्न मन्त्रालयों को अधीनस्थ सेवाओ के सम्बन्ध म नियुक्ति, पदोन्नति, वेतन तथा भत्ता के बिल बनाने, कार्यकुशलता का मूल्यांकन करने तथा सेवीवर्ग सम्बन्धी अन्य दिन-प्रतिदिन के मामलो का निपटारा करने की शक्ति प्रदान करने की चेष्टा की गई है। इस हेतु बड़े मन्त्रालयो म पृथक् से सस्थापना विभाग अथवा सेवीवर्ग अधिकारियो की व्यवस्था की जाती है।

लोकसेवाओं का वर्तमान वर्गीकरण—भारत मे लोकसेवाओ का वर्गीकरण मुख्यत उन नियमो के अन्तर्गत होता रहा है जो मूल रूप से 1930 मे बनाए गए थे और जिनका सशोधन समय-समय पर किया जाता रहा है। वर्तमान काल मे यह वर्गीकरण इस प्रकार है—

1 अखिल भारतीय सेवाएँ (All India Services)
2 केन्द्रीय (सघीय) सेवाएँ प्रथम श्रेणी (Class I)
3 केन्द्रीय (सघीय) सेवाएँ, द्वितीय श्रेणी (Class II)
4 प्रान्तीय (राज्य) सेवाएँ
5 विशिष्ट सेवाएँ (Specialist Services)
6 केन्द्रीय सेवाएँ, तृतीय श्रेणी
7 केन्द्रीय सेवाएँ, चतुर्थ श्रेणी
8 केन्द्रीय सचिवालय सेवा (Central Secretariat Services)—प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ श्रेणी।

भारतीय प्रशासन सेवा (I. A S), भारतीय सेवा पुलिस (I P S), भारतीय विदेशसेवा (I F S) भारतीय अर्थ सेवा/भारतीय सांख्यिकी सेवा (Indian Economic/Statistical Services) आदि अखिल भारतीय सेवाएँ हैं। भारतीय सविधान मे केन्द्रीय सूची की सातवीं अनुसूची म अखिल भारतीय सेवाओ का उल्लेख किया गया है तथा राज्य सभा को यह अधिकार दिया गया है कि आवश्यकतानुसार 2/3 बहुमत से प्रस्ताव पारित करके यह नई अखिल भारतीय सेवाओ की स्थापना कर ले।

आपात्काल में लोकसेवाओं की प्रकृति—26 जून 1975 से मार्च, 1977 तक चलने वाले आन्तरिक आपात्काल में भारत में राष्ट्रीय जीवन के अन्य पहलुओं की भाँति लोकसेवाओं के संगठन, कार्य एवं प्रकृति पर भी गम्भीर प्रभाव पड़ा। देश में सम्भावित अराजकता एवं उपद्रवों की रोकथाम के लिए लोकसेवाओं को यथासम्भव कसा गया। इस काल में अनुशासन, ईमानदारी शुद्धिकरण, कार्यकुशलता आदि के नाम पर लोकसेवाओं की संरचना, कार्यप्रणाली, व्यवहार तथा सेवा की शर्तों में उल्लेखनीय परिवर्तन किए गए। सेवाओं में अनुशासन की स्थापना के लिए हड़तालों, बन्दों तथा प्रदर्शनों पर रोक लगा दी गई। समय पर कार्यालय आने तथा निर्धारित समय पर कार्यालय छोड़ने पर जोर दिया गया। इसके लिए विभिन्न राज्यों में मुख्य मन्त्रियों ने सचिवालय तथा अन्य कार्यालयों का अचानक निरीक्षण किया तथा समय की पाबन्दी न बरतने वाले कर्मचारियों को दण्ड दिया गया। कार्य के शीघ्र निपटारे के लिए सभी स्तरों पर फाइल को रोकने का अधिकतम समय निर्धारित कर दिया गया तथा पूरे परिश्रम और समय में काम करके इस सीमा में फाइल निकालने पर जोर दिया गया। निरीक्षण के समय जिन कर्मचारियों के पास पुराना काम रुका हुआ पाया गया उनके विरुद्ध कार्यवाही की गई। पदोन्नति की दृष्टि से वरिष्ठता सिद्धान्त की अपेक्षा योग्यता सिद्धान्त को महत्त्व दिया गया तथा इस प्रकार वरिष्ठता सूची में आने वाले पुराने कर्मचारियों को पीछे धकेल कर युवा तथा कम अनुभवी कर्मचारियों को पदोन्नत किया गया।

आपात्काल में लोकसेवाओं की संरचना एवं कार्यों की दृष्टि से की जाने वाली कार्यवाहियाँ ऊपरी तौर पर अनुशासन, कार्यकुशलता एवं प्रतिबद्धता के आधार पर औचित्यपूर्ण ठहराई जाती हैं किन्तु पर्यवेक्षकों तथा मुक्तभोगियों की मान्यता इसके विपरीत है। उनका कहना है कि इन सभी कार्यवाहियों के पीछे राजनीतिक लक्ष्य कार्य कर रहे थे।

विभिन्न निर्णयों के कारण आपात्काल में सभी वर्गों के असन्तोष में वृद्धि हुई। तत्कालीन प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी सम्भवत बहुत कुछ 'अन्धकार' में रही और अनेक बातों का उन्हें पता नहीं चला। जनता का असन्तोष 23 मार्च 1977 को छठे लोकसभाई चुनावों के परिणामों में काँग्रेस की अप्रत्याशित पराजय के रूप में प्रतिफलित हुआ। इन चुनावों में काँग्रेस के चोटी के नेता और मन्त्री स्तर के प्रत्याशी साधारण स्तरीय विरोधी उम्मीदवारों से परास्त हो गए। यहाँ तक कि देश के राजनीतिक इतिहास में पहली बार प्रधान मन्त्री को भी पराजित होना पड़ा। आपात्काल में लोकसेवकों की असमानता के सिद्धान्त का दुरुपयोग किया गया। जनता पार्टी के शासन के दौरान यद्यपि आपात्कालीन ज्यादतियों को समाप्त करने का प्रयास किया गया, लेकिन अनेक दृष्टियों से लोकसेवाओं की स्थिति में निखार नहीं हुआ। आपसी फूट के कारण जनता सरकार का पतन हो गया और मध्यावधि चुनावों में विजयी होकर श्रीमती इन्दिरा गाँधी जनवरी, 1980 में पुन

मनारूढ़ हुई। अपने पुनर्जीवित शासनकाल में वे लोक सेवा को रचनात्मक दिशा देने की प्रयत्नशील रहीं और देश सेवा करते हुए 31 अक्तूबर, 1984 को हत्यारों की गोलियों से शहीद हो गईं। श्री राजीव गाँधी ने उसी दिन नए प्रधान मन्त्री के रूप में अपने पद की शपथ ली।

वर्तमान भारतीय लोक सेवा का स्वरूप और विशेषताएँ
(Nature and Salient Features of Present day Indian Civil Service)

भारतीय संविधिक आयोग ने (जिसे साइमन आयोग भी कहा जाता है, क्योंकि आयोग के सभापति का नाम साइमन था) 1930 में भारतीय संविधानिक सुधारों सम्बन्धी अपने प्रतिवेदन में कहा था—"प्रशासन ही सरकार है।" यह बात अन्य किसी भी देश की तुलना में भारत के लिए अधिक सही है। भारतीय लोक सेवा के महत्त्व और उसकी विशेषता पर आयोग की टीका थी—

"छोटे-छोटे धनहीन काश्तकारों, जिन्हें संगठन का कोई अनुभव नहीं है""के देश में निजी क्षेत्र नवीन तथा महत्त्वपूर्ण प्रयोग हाथ में नहीं ले सकता। ऐसे समाज के लिए पश्चिमी प्रशासकीय अनुभव एवं व्यावहारिक विज्ञान की उपलब्धियाँ सुगम बनाना केवल एक अभिकरण के लिए सम्भव है, वह है शासन। अन्य किसी के पास न तो आवश्यक ज्ञान ही है और न आवश्यक साधन ही। इस प्रकार भारत की लोक सेवा ने, जो आरम्भ में राजस्व एकत्रित करने वाले अभिकरण से अधिक नहीं थी, धीरे धीरे अपने ऊपर कर्त्तव्यों का एक बहुत बड़ा भार वहन कर लिया है। जैसे-जैसे कार्यों में विशिष्टता आती गई है, कई नई सेवाओं की रचना करनी पड़ी है"""" भारत में ऐसे बहुत से कार्य सरकार द्वारा किए जाने की जनता आशा करती है जिन्हें पश्चिमी देशों में निजी क्षेत्रों द्वारा किया जाता है।'[1]

प्रतिवेदन की इस टीका से भारतीय लोक सेवा की मूल प्रकृति और प्रयोजन का संकेत मिलता है। प्रतिवेदन के बाद के दशकों में—विशेषकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त—प्रशासनिक कार्यों में अति तीव्र गति से वृद्धि हुई है। राष्ट्रीय सरकार एक लोक कल्याणकारी राज्य और समतावादी समाज की स्थापना के लिए कटिबद्ध है अतः स्वाभाविक है कि प्रशासनतन्त्र नए और बढ़ते हुए उत्तरदायित्वों को वहन करे तथा स्वयं को जनता का सेवक मानकर अपने कर्त्तव्यों को निभाए। भारत एक संघात्मक राज्य है जिसमें प्रशासनतन्त्र केन्द्रीय, राज्यीय और स्थानीय स्तर पर विभाजित है तथापि इस तरह संगठित है कि एक कड़ी दूसरी कड़ी से जुड़ी रहे। एक अध्ययन के अनुसार कुछ समय पूर्व भारतीय लोक सेवा में लगभग 21 5 लाख कर्मचारी थे।

भारतीय लोक सेवा के विभिन्न पक्षों के विवेचन से पूर्व यह उपयुक्त होगा कि हम इसकी कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताओं को प्रस्तुत करें जो इसकी प्रकृति को स्पष्ट करती हैं—

1 अवस्थी एवं माहेश्वरी से उद्धृत : वही, पृष्ठ 487-88.

(1) भारतीय लोक सेवा 'राजनीतिक संरक्षण' (Political Patronage) अथवा 'लूट-खसोट प्रणाली' (Spoil System) के दोषों से मुक्त है। इस प्रकार यह अमेरिकी लोक सेवा से कहीं अधिक श्रेष्ठ स्थिति में है। भारतीय लोक सेवा में भर्ती योग्यता (Merit) के आधार पर की जाती है। योग्यता की जाँच खुली प्रतियोगिता (Open Competition) द्वारा होती है जिसकी व्यवस्था के लिए एक स्वतन्त्र, निष्पक्ष तथा अर्द्ध-न्यायिक (Quasi judicial) लोक सेवा आयोग स्थापित किया गया है।

(2) उच्च लोक सेवा में भर्ती की आयु 21 से 24 वर्ष है। कला अथवा विज्ञान अथवा वाणिज्य की विश्वविद्यालयीय डिग्री को उच्च लोक सेवा में भर्ती के लिए एक आवश्यक योग्यता माना गया है। यह भी आवश्यक है कि उच्च लोक सेवा के उम्मीदवार अपने विचारों में परिपक्व हों, बौद्धिक दृष्टि से धनी हों और अच्छा सामान्य ज्ञान रखते हों। इन गुणों की जाँच के लिए लोक सेवा आयोग प्रतिवर्ष एक प्रतियोगी परीक्षा आयोजित करता है। परीक्षा की दोनों प्रकार की व्यवस्थाएँ हैं—लिखित परीक्षा व्यवस्था एवं साक्षात्कार व्यवस्था। लिखित परीक्षा का उद्देश्य होता है—प्रत्याशियों की विचार शक्ति, निर्णय-शक्ति, स्पष्ट व्याख्या शक्ति और सामान्य ज्ञान की जाँच करना। साक्षात्कार व्यवस्था का उद्देश्य होता है—प्रत्याशियों के वैयक्तिक गुणों की जाँच करना जिनमें कुछ ऐसे मानसिक गुण भी सम्मिलित हैं जिनकी जाँच लिखित परीक्षा में करना सम्भव नहीं होता।

(3) परीक्षाओं के द्वारा लोक सेवा के लिए चुने गए स्नातकों को समुचित प्रशिक्षण दिए जाने की व्यवस्था है।

(4) पदोन्नति के न्यायोचित अवसरों, नौकरी की सुरक्षा और अच्छे वेतन की व्यवस्था करके लोक सेवकों के मनोबल (Morale) और उनकी कार्यक्षमता के स्तर को ऊँचा बनाए रखने के प्रति जागरूकता बरती गई है।

(5) भारतीय लोक सेवा ने 'बहुद्देशीय स्वरूप' ग्रहण किए हैं। यह 'सामान्यवादी प्रशासकों' की जनक है अर्थात् इसमें प्रशासक समय-समय पर ऐसे पद ग्रहण करने वाले व्यक्ति होते हैं जिनमें विभिन्न प्रकार के कर्त्तव्य और कार्य अन्तर्निहित हैं। उदाहरणार्थ, भारतीय लोक सेवा में आई. ए. एस. (भारतीय प्रशासनिक सेवा) एक प्रकार की बहुपदीय सेवा है जिसके अधिकारी प्रशासन की किसी भी शाखा में कोई भी पद सम्भाल सकते हैं। निम्न स्तरों पर भी अब सामान्यतः यह प्रवृत्ति बल पकड़ने लगी है कि कर्मचारी विभाग की विभिन्न शाखाओं में काम करके सम्पूर्ण विभाग की कार्य-प्रणाली का सामान्य ज्ञान अवश्य ही प्राप्त कर लें।

(6) केन्द्रीय और राज्यीय लोक सेवाओं में अधिकारियों का एक चतुर्वर्गीय विभाजन मिलता है जिसे 'फर्स्ट, सैकिण्ड, थर्ड और फोर्थ क्लास पब्लिक सर्वेन्ट' कहा जाता है। प्रत्येक श्रेणी की प्रत्येक सेवा में सम्बन्धित जो नियम एवं उपनियम बनाए गए हैं वे सविस्तार यह बतलाते हैं कि अमुक वर्ग के अधिकारी क्या कुछ कर सकते हैं और वे दूसरी श्रेणी अथवा अन्य वर्गीय अधिकारियों से किस प्रकार भिन्न हैं

अखिल भारतवर्षीय सेवाओं के सदस्य केवल 'राजपत्रित अधिकारी' होते हैं जिसमें अभिप्राय यह है कि इन सेवाओं के सदस्य प्रशासनिक निर्णय प्रक्रिया में उत्तरदायित्व के पदों पर ही कार्य करेंगे। भारत में इस समय चार अखिल भारतीय सेवाएँ, दस केन्द्रीय 'वर्ग I' सेवाएँ (भारतीय विदेश सेवा को छोड़कर) तथा अनेक प्रकार की प्रान्तीय लोक सेवाएँ हैं।

(7) लोक सेवाओं के पद प्रत्यक्ष भर्ती और पदोन्नति दोनों ही पद्धतियों द्वारा भरे जाते हैं। भर्ती के सम्बन्ध में योग्यता का सिद्धान्त (Merit Principle) भारत में 1853 से ही चला आ रहा है।

(8) अन्य संघात्मक संविधानों की भाँति भारतीय संविधान के अन्तर्गत भी केन्द्रीय सरकार और इकाई राज्यों के प्रशासन के लिए अपनी पृथक् लोक सेवाएँ हैं, अतः प्रतिरक्षा, आयकर, सीमा शुल्क, डाक तथा तार, रेलवे इत्यादि संघीय विषयों के प्रशासन का कार्य करती हैं। संघीय सेवाओं के पदाधिकारी पृथक् रूप से संघीय सरकार के कर्मचारी होते हैं। इसी प्रकार राज्यों की अपनी पृथक् तथा स्वतन्त्र सेवाएँ हैं जो भू राजस्व, कृषि, वन, शिक्षा, स्वास्थ्य इत्यादि राज्य सम्बन्धी विषयों का प्रशासन करती हैं। राज्य सेवाओं के अधिकारी एवं कर्मचारी पृथक् रूप से विभिन्न राज्य सरकारों की सेवा में कार्य करते हैं। भारतीय प्रशासकीय प्रणाली की एक अन्य विशेषता यह है कि कुछ सेवाएँ संघ तथा राज्य दोनों के लिए सामान्य रूप में संगठित की गई हैं, जैसे कि अखिल भारतीय सेवाएँ। इस प्रकार का सेवीवर्ग संगठन कदाचित् पाकिस्तान को छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं है। ये अधिकारी पूर्णत केन्द्रीय अथवा राज्यों की सेवा में नहीं होते अपितु दोनों में से किसी एक के अन्तर्गत विभिन्न समयों पर कार्य करते हैं। इन सेवाओं की भर्ती समान अर्हताओं तथा वेतनमान और अखिल भारतीय आधार पर ही की जाती है। यद्यपि राज्यों में उनको विभाजित किया जाता है लेकिन हर सेवा में एक सेवा होती है। इनकी एक समान प्रतिष्ठा होती है और अधिकार तथा पारिश्रमिक स्तर भी एक समान होता है।

(9) भारत की संघीय तथा राजकीय लोक सेवाओं के संगठनों में सेवाओं के अन्दर तथा सेवाओं में आपस में प्रत्येक स्तर पर भारी असमानताएँ हैं जिन्हें विषमताएँ भी कहा जा सकता है। प्रशासकीय सुधार आयोग द्वारा नियुक्त एक अध्ययन दल ने लिखा है कि "केन्द्र और राज्यों में एक से तथा तुलनात्मक दृष्टि से समान कार्यों और उत्तरदायित्वों को वहन करने वाले पदों के वेतनमानों में इस सीमा तक अन्तर एवं असमानता देखने को मिलती है कि उसे प्रशासन में एक विरूपता का विषय कहा जा सकता है। इसी प्रकार अलग-अलग राज्यों में एक ही तथा एक से कार्य करने वाले पदाधिकारियों की वेतन-शृंखलाओं का वैषम्य निश्चय ही अनुचित लगता है।" तीन प्रकार की सेवाएँ व्यवहार में ऐसी लगती हैं मानो उनमें आपस में कोई पदसोपान हो और आई. ए. एस. सामान्यज्ञ सेवा का वर्चस्व ऐसी स्थिति उत्पन्न करता है जैसे केन्द्रीय और राजकीय लोक सेवाएँ इस सेवा के अधीनस्थ सेवाएँ हों, यद्यपि कार्यों की दृष्टि से ऐसा सम्बन्ध सचमुच हो यह आवश्यक नहीं है।

अखिल भारतीय सेवाओं की अपनी श्रेणीमें ही आई ए एस. की स्थिति आई पी एस. तथा इण्डियन फॉरेस्ट सर्विस की तुलना में तथा राजकीय सेवाओं में डॉक्टरों, इन्जीनियरों और कृषि वैज्ञानिकों की तुलना में तथा राजकीय सेवाओं में ऑडिटर्स एण्ड अकाउन्टेंट्स अथवा एम्पलायमेंट आफीसर्स आदि की तुलना में इतनी अधिक शक्तिशाली एवं केन्द्रीय है कि गैर आई ए एस. सेवाओं के साथ समानता सिद्धान्त के अनुसार न्याय नहीं हो सका है।[1]

स्वतन्त्रता के प्रारम्भिक दिनों में नवीन प्रशासकीय ढाँचे में अधिकारियों के विचार कुछ अजीबोगरीब थे, उन्हें शासन के नवीन राजनीतिक तत्त्व—मन्त्रियों—के साथ सद्भावना और सहयोग से काम करने में कठिनाई अनुभव होती थी। उच्च पदासीन आई ए एस अधिकारी यह सोचते थे कि सरकार उन्हीं की इच्छानुसार चलनी चाहिए। मन्त्रियों की तो बात ही अलग है स्वयं प्रधान मन्त्री को इन अधिकारियों को नियन्त्रण में रखने और अपनी नीतियों को उनसे क्रियान्वित कराने में कठिनाई का सामना करना पड़ा था, लेकिन धीरे धीरे प्रशासकीय अधिकारियों का यह रवैया बदलता गया, प्रशासन का लोकतन्त्रीकरण होता गया और आज अधिकारी वर्ग 'लोक सेवक' बनने जा रहे हैं। प्रशासकीय अधिकारियों के कर्त्तव्यों और कार्यों में इस प्रकार के परिवर्तन लाए गए हैं कि जनता और उनके बीच की दूरी निरन्तर कम होती जाए।

ब्रिटेन में लोक सेवाओं का विकास एवं महत्त्व
(Development & Importance of Civil Services in Britain)

किसी भी देश की शासन व्यवस्था की सफलता अथवा विफलता उसके लोक सेवकों के ऊपर निर्भर करती है क्योंकि देश का वास्तविक प्रशासन इन लोक सेवकों के ही हाथ में होता है। मन्त्रिगण तो केवल नीति-निर्धारण मात्र ही करते हैं, उस नीति का क्रियान्वयन इन लोक सेवकों के द्वारा ही किया जाता है। यदि ये कर्मचारी योग्य और कुशल होते हैं तो प्रशासन अच्छा होता है अन्यथा प्रशासन अच्छा नहीं होता। ब्रिटेन में लोक सेवाओं का संगठन अत्यन्त उच्च कोटि का है और स्थायी कर्मचारी बड़े योग्य, प्रतिभाशाली और निष्ठावान हैं। प्रशासकों का वास्तविक कार्यभार लोक सेवक (Civil Servants) ही वहन करते हैं। लोक सेवकों का विशाल समूह ही सम्पूर्ण देश में संसद द्वारा पारित विधियों को लागू करता है और प्रशासक विभाग की सामान्य नीति को क्रियान्वित करता है। देश के प्रशासन के विषय में लोक सेवा का इतना महत्त्व है कि इस सम्बन्ध में जोसफ चेम्बरलेन (Joseph Chamberlain) ने यहाँ तक कहा है कि "आप लोग (अर्थात् लोक सेवा के सदस्यगण) हमारे (अर्थात् मन्त्रिमण्डल के) बिना काम चला सकते हैं, इस सम्बन्ध में मेरा सन्देह पक्का नहीं पर हम (अर्थात् मन्त्रिगण)

1 प्रभुदत्त शर्मा : भारतीय लोक सेवा सरचना की विसंगतियाँ, पृष्ठ 22 (राजस्थान समीक्षा, जुलाई, 1975)।

आपके (अर्थात् लोक सेवा के सदस्यों के) बिना काम नहीं चला सकते, यह मेरा पक्का विश्वास है।"

लोक सेवा का सदस्य अथवा लोक सेवक (Civil Servant) इगलैण्ड मे राजमुकुट (Crown) का कर्मचारी होता है जिसका पद न तो न्यायिक ही होता है और न राजनीतिक ही। उसको राजकोष से वेतन प्राप्त होता है। राज्य के पूर्वोक्त सभी अन्य प्रशासन विभागो के सभी स्थायी कर्मचारी लोक सेवा (Civil Service) के सदस्य होते हैं।

लोक सेवा के सदस्यो को ससद् का सदस्य होना आवश्यक नहीं है। 1937 से यह बात भी निश्चित हो गई है कि उनके राजनीतिक विचार उनके व्यक्तिगत मामले हैं और वे चाहे जैसे राजनीतिक विचार रख सकते है, बशर्ते कि उनके वे विचार उनके कार्यों पर विपरीत प्रभाव डालने वाले अथवा राज्य के लिए सकट पैदा करने वाले न हो। लोक सेवा के सदस्य अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए किसी भी सरकारी रहस्य अथवा सूचना का दुरुपयोग नहीं कर सकते। यद्यपि लोक सेवक वैधानिक रूप से राजमुकुट के सेवक होते हैं, परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से उन्हे अपने विभागीय मन्त्री के अधीन रहना पड़ता है। वे मन्त्रियो को नीति निर्माण मे परामर्श देते हैं और उनके निर्णयो को कार्यान्वित करने मे सहायक होते हैं।

लोक सेवा की शर्तें भी अच्छी है। यदि लोक सेवक ईमानदारी और कुशलता से अपना कार्य करते हैं तो उनकी पदोन्नति भी होती रहती और 60 वर्ष की आयु तक काम करने के बाद उन्हे पेंशन मिल जाती है। लोक सेवक अपना सघ (Civil Service Association) भी बना सकते हैं, बशर्ते कि इन सघो का कोई राजनीतिक उद्देश्य या सम्बन्ध न हो।

समय-समय पर मन्त्रिगण बदल जाते हैं पर लोक सेवक स्थाई रूप से बने रहते हैं। ब्रिटेन मे सरकार के परिवर्तन के कारण लोक सेवा के लोगो मे परिवर्तन नहीं होता। वे स्थाई रूप से सभी सरकारो के अन्तर्गत कार्य करते रहते हैं।

लोक सेवा की सदस्यता के लिए निम्नलिखित योग्यताओ का होना आवश्यक है—

(1) उम्मीदवार ब्रिटेन का जन्मजात नागरिक हो और उसका पिता भी ब्रिटेन का जन्म से नागरिक हो।
(2) उसकी आयु लोक सेवा के लिए निर्धारित आयु-सीमा के भीतर आती हो।
(3) उसमे कोई शारीरिक विरूपता न हो जो उसके कार्य मे बाधा डाले।
(4) उसने सम्बन्धित परीक्षा मे बैठने के लिए निर्धारित शिक्षा प्राप्त की हो।

ब्रिटेन मे लोक सेवाओ का विकास

ग्रेट ब्रिटेन मे लोक सेवा का आधुनिक रूप विगत 100 वर्षों के क्रमिक [वि]कास का परिणाम है। केन्द्रीकृत प्रशासन के प्रारम्भिक युग मे मन्त्रि, सचिव

तथा राजा के परामर्शदाता अपने कर्मचारी-वर्ग की भर्ती एव नियुक्ति स्वेच्छा से कर लेते थे और उनके हटने के साथ ही कर्मचारीगण भी हट जाते थे। 16वीं शताब्दी मे लोक सेवाओ मे कुछ स्थायित्व आना प्रारम्भ हुआ किन्तु अभी भी एकरूपता का अभाव था। 18वी शताब्दी के अन्त मे स्थिति यह थी कि अनेक विभाग बने हुए थे, इनमे से अधिकांश काफी छोटे-छोटे थे तथा सभी पृथक इकाइयो के रूप मे सगठित थे और इनका प्रबन्ध अनेक प्रकार से दूषित था।[1] 19वी शताब्दी के प्रारम्भ मे मुख्यत मितव्ययता के लिए सचालित विभिन्न ससदीय अभियानों के फलस्वरूप शताब्दी के मध्य तक विभागीय कर्मचारियो मे कुछ एकरूपता एव कार्यकुशलता आने लगी। पुरानी व्यवस्था की अनेक बुराइयाँ धीरे-धीरे मिटने लगी। सामान्य मान्यता के अनुसार आधुनिक ब्रिटिश लोक सेवा का प्रारम्भ 1853 से हुआ है।[2]

ग्रेट ब्रिटेन मे एक शताब्दी पूर्व तक अनुग्रह व्यवस्था का व्यापक प्रभाव था। उच्च पदों पर नियुक्ति के समय प्रत्याशी की व्यावसायिक योग्यता न देखकर उसका व्यक्तिगत प्रभाव, सम्बन्ध, परिचय, समर्थक आदि देखे जाते थे। यही कारण है कि 18वीं तथा 19वीं शताब्दी की ब्रिटिश लोक सेवा कुलीनतन्त्र व 'Outdoor Relief System' के नाम से जानी जाती है। लोक सेवा मे अनुग्रह का प्रभाव तो था किन्तु रोटेशन (Rotation) की व्यवस्था नही थी। एक बार नियुक्त होने के बाद व्यक्ति अपने पद पर बना ही रहता था जब तक कि मृत्यु अथवा स्वेच्छापूर्ण त्यागपत्र के कारण वह पद त्याग न कर। कार्लाइल तथा एडमण्ड बर्क आदि विचारकों ने अनुग्रह व्यवस्था की आलोचना की तथा लोक सेवा मे सुधार पर जोर दिया। सुधारो का श्रीगणेश भारत भेजे जाने वाले प्रशासकों की नियुक्ति से किया गया। 1853 मे जब कम्पनी का चार्टर ससद के सम्मुख नवीनीकरण के लिए आया तो इसमे भारतीय लोक सेवाओ के लिए प्रतियोगी परीक्षाओ का प्रावधान था। इसके साथ ही राष्ट्रीय स्तर पर भी लोक सेवा मे सुधार आन्दोलन ने जोर पकडा। सेवीवर्ग सम्बन्धी विभिन्न समस्याओ के अध्ययन हेतु अनेक समितियाँ तथा आयोग नियुक्त किए गए। इनकी कहानी ही ब्रिटिश लोक सेवा के विकास की कहानी है।

(1) **ट्रेवील्यान नार्थकोट प्रस्ताव (The Trevelyan Northcote Proposals)**—19वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे जिन सिद्धान्तो के आधार पर ब्रिटिश लोक सेवा मे सुधार एव पुनर्गठन किया गया उनका आज भी महत्त्व है। इस काल की महत्त्वपूर्ण घटना 1853-54 मे प्रकाशित स्थायी लोक सेवा के सगठन पर प्रतिवेदन (The Report on the Organisation of the Permanent Civil Service) है। यह सर चार्ल्स ट्रेवील्यान तथा सर स्टेफर्ड नार्थकोट

1 *Lord Bridges* The Treasury, Chapter XI

2 "… the year 1853, which has as good a claim as any to be designated the birth date of the Modern Civil Service" —*E M Gladden* Civil Service of the United Kingdom 1855 1970, p 19

& "The British Civil Service in its present form dates from reform between 1855 and 1870" —*Encyclopaedia Britanica*, Vol. 5, 1972, p 847

द्वारा विभागीय जांचों की शृंखला का परिणाम था। मुख्य सिफारिशें ये थीं—(i) एक उपयुक्त परीक्षा व्यवस्था द्वारा लोक सेवाओं में पर्याप्त कार्यकुशल कर्मचारी भेजे जाएँ (ii) सभी लोक सेवकों के प्रशिक्षण द्वारा उनकी योग्यता बढ़ाई जाए तथा उद्यम को प्रोत्साहित किया जाए। इसी योग्यता को उनकी पदोन्नति का आधार बनाया जाए। योग्यता प्राप्त कर्मचारी सेवा में श्रेष्ठ पद पाने की आशा कर सकें, (iii) सेवा की बिखरी हुई प्रकृति से उत्पन्न बुराइयों को कम किया *जाए तथा सेवा में एकता के तत्वों का श्रीगणेश किया जाए।* इस हेतु नियुक्तियाँ समान आधारों पर की जाएँ, दूसरे विभागों में भी पदोन्नति के अवसर दिए जाएँ तथा नीचे के स्तर पर ऐसे पद पर स्थापित किए जाएँ जिनकी सेवाएँ किसी भी *कार्यालय में कभी भी उपलब्ध की जा सकें।*

(2) लोक सेवा आयोग तथा 1914 तक के विकास (The Civil Service Commission and Developments upto 1914)—ट्रेवीलयान नार्थकोट प्रस्तावों को स्वीकार करते हुए पहला महत्त्वपूर्ण सुधार 21 मई, 1855 के सपरिषद् आदेश द्वारा तीन सदस्यीय लोक सेवा आयोग की नियुक्ति के रूप से हुआ। *इस समय तक विभागों के राजनीतिक प्रमुखों को यह निर्णय करने का अधिकार* था कि वे किसी खाली पद पर एक प्रत्याशी को मनोनीत करना चाहते थे अथवा कुछ प्रत्याशियों के बीच सीमित प्रतियोगिता चाहते थे। आयोग को कनिष्ठ पदों पर नियुक्त किए जाने वाले युवा प्रत्याशियों की योग्यता जांचने का कार्य सौंपा गया। इस आधार-पर यह अगले दस वर्षों में सीमित प्रतियोगिता की प्रभावशाली व्यवस्था स्थापित कर सका। 1870 के सपरिषद् आदेश द्वारा कुछ विभागों तथा पदों पर प्रतियोगी परीक्षाएँ बाध्यकारी बना दी गई। अब लोक सेवा आयोग सामान्य शिक्षा के प्रकार की खुली प्रतियोगिताएँ प्रारम्भ कर सकता था तथा राजकोष के निर्देशन में अखिल सेवा आधार पर स्टॉफ का स्तरीकरण कर सकता था। इसी आदेश द्वारा राजकोष को स्टॉफ नियंत्रण की शक्तियाँ दी गईं। आयोग तथा विभागों द्वारा प्रत्येक परीक्षा के लिए आयु, स्वास्थ्य, चरित्र, ज्ञान एवं योग्यता के सम्बन्ध में बनाए जाने वाले नियमों को स्वीकार करने की शक्ति राजकोष को दी गई।

इस काल में लोक सेवा परीक्षाओं की दृष्टि से लोक सेवाओं को दो भागों में विभाजित किया गया—Class I तथा Class II, इनमें प्रथम वर्ग में अपेक्षाकृत उच्चतर तथा श्रेष्ठतर कर्मचारी थे। इसके सदस्य सेवा की बौद्धिक माँग को पूरा करते थे। दूसरे वर्ग में दिन-प्रतिदिन के नियमित कार्यों को सचालित करने वाले कर्मचारी थे। ये किसी भी विभाग में नियुक्त किए जा सकते थे। ये प्रस्ताव विभागों ने तुरन्त स्वीकार नहीं किए वरन् राजकोष तथा लोक सेवा आयोग ने इन पर निरन्तर जोर दिया तथा समय-समय पर नियुक्त होने वाले आयोगों के सुझावों

मे इसका समर्थन किया गया।[1] जब समद् ने प्रशासन को अनेक नए कार्य तथा दायित्व सौंपे तो केन्द्रीय प्रशासन तंत्र का विस्तार हुआ। 1914 तक प्रशासकीय-लिपिकीय क्षेत्र में सम्पूर्ण लोक सेवा के सामान्य वर्ग नागरिक सेवा सरचना के महत्त्वपूर्ण भाग बन गए। इनके साथ-साथ अनेक विभागीय वर्ग भी कायम रहे। कर्मचारियों के वेतन, कार्य के घंटे, बीमारी अवकाश तथा छुट्टियों की दृष्टि से एकरूपता की स्थापना की गई।

(3) पुनर्गठन का काल (The Period of Reorganisation, 1920-39)—1914 से 1918 के महायुद्ध मे लोक सेवाओं के दायित्व भारी मात्रा मे बढ गए। फलत लोक सेवकों की सख्या में पर्याप्त वृद्धि हो गई। इनमें से अनेक तो केवल युद्धकाल के लिए अस्थायी आधार पर ही नियुक्त किए गए थे। युद्ध के बाद लोक सेवा घटकर यथावत् हो गई किन्तु परिवर्तित प्रशासनिक परिस्थितियों के अनुकूल इसे बनाने की आवश्यकता बनी रही। यह कार्य दो समितियों को सौंपा गया। राजकोष द्वारा 1917 मे सर जॉन ब्रेडबरी (Sir John Bradbury) की अध्यक्षता मे तथा 1918 मे ग्लेडस्टन (Gladstone) की अध्यक्षता मे ये समितियाँ नियुक्त की गईं। लोक सेवा के विभिन्न वर्गों के सगठन पर विचार करने का कार्य राष्ट्रीय व्हिटले परिषद् की समिति को सौंपा गया जो पुनर्गठन समिति के नाम से जानी जाती है।

पुनर्गठन समिति द्वारा प्रस्तावित सरचना इस मान्यता पर आधारित थी कि लोक सेवा के प्रशासनिक तथा लिपिकीय कार्य दो श्रेणियों मे बाँटे जा सकते हैं—(क) नीति रचना सम्बन्धी कार्य तथा विद्यमान नियमों, निर्णयों एव व्यवहारों का परिवर्तन और सरकारी कार्य व्यापार का सगठन एव निर्देशन, (ख) नवीन प्रकृति का अथवा विशुद्ध रूप म यांत्रिक प्रकृति का कार्य। इन दोनों प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करने के लिए सगठन समिति ने लोक सेवाओं के चार वर्गों का उल्लेख किया। प्रथम श्रेणी के कार्य सम्पादित करने के लिए प्रशासनिक (Administrative) तथा कार्यपालिका (Executive) वर्ग तथा द्वितीय श्रेणी के कार्यों के लिए दो प्रकार की लिपिकीय सेवाएँ। समिति का एक सुझाव यह भी था कि Shorthand Typist तथा Typist वर्ग भी होना चाहिए। पुनर्गठन की यह योजना सामान्यत स्वीकार की गई तथा 1920 मे इसे स्वीकार करते हुए सरकार ने पहले से विद्यमान वर्गों के कुछ सदस्यों का क्रमश नए वर्गों मे विलय किया। यह पुनर्गठन सम्पूर्ण लोक सेवा पर लागू नहीं हुआ था। कुछ विभागीय वर्ग इसके प्रभाव क्षेत्र से बाहर रहे, जैसे—रोजगार मत्रालय, अन्तर्देशीय राजस्व विभाग, नटकर एव

1 These included 'A Commission of Inquiry under the Chairmanship of Mr Lyon Playfair which reported in 1875, a Royal Commission under the Chairmanship of Sir Mathew Ridley, which published its final report in 182 , and a Royal Commission (Chairman Lord Mac Donnell), which published its final report in 1914

आबकारी विभाग आदि। वैज्ञानिक तथा व्यावसायिक स्टॉफ भी इस योजना से अप्रभावित रहा। ट्रैवेल्यान-नायकोट प्रतिवेदन के समय से ही विभिन्न समितियों तथा आयोगों द्वारा इस बात पर जोर दिया जा रहा था कि परीक्षा की कोई भी प्रणाली व्यावसायिक पदों के लिए सुयोग्य पदाधिकारी नहीं दे सकती। उचित यह है कि उन व्यक्तियों को नियुक्त किया जाए जो अपने व्यवसाय में कुछ प्रतिष्ठा और अनुभव प्राप्त कर चुके हैं। 1937 में कुछ विभागों में कुछ स्तरों के लिए सामान्य वेतन शृंखलाएँ प्रारम्भ की गईं किन्तु महायुद्धों के मध्यकाल में व्यावसायिक पदाधिकारियों की भर्ती, वेतन तथा सेवा की शर्तें बहुत कुछ विभागीय निर्णय के विषय बने रहे। 1931 में कारपन्टर समिति की सिफारिश पर सरकार ने वैज्ञानिक अधिकारियों तथा वैज्ञानिक सहायकों के दो मुख्य वर्ग स्थापित किए। इनके लिए सामान्य वेतन शृंखला एवं सेवा की शर्तें लागू की गईं किन्तु भर्ती का कार्य अभी भी विभागों के हाथों में छोड़ा गया।

(4) -द्वितीय विश्वयुद्ध और उसके बाद का विकास (Development of Second Word War and Aftermath)—प्रथम महायुद्ध की भांति द्वितीय महायुद्ध ने भी लोक सेवाओं के सामने अनेक नई उलझनें तथा चुनौतियाँ ला दीं। अन्तर यह था कि प्रथम महायुद्ध के बाद लोक सेवकों की युद्धकालीन संख्या घट गई थी किन्तु यह द्वितीय महायुद्ध के बाद नहीं घटी। कारण यह था कि युद्ध के बाद राज्य के कार्यों में कमी नहीं हुई, देश में आर्थिक पुनर्रचना के लिए अधिक सजग नियोजन तथा द्रुतगामी कार्यक्रम आवश्यक बन गए राज्य ने लोक कल्याणकारी भूमिका अपना ली शीतयुद्ध प्रारम्भ होने के कारण रक्षा-कार्यों में कमी नहीं आई तथा वैज्ञानिक एवं तकनीकी आविष्कारों ने प्रशासनिक कार्यों को प्रभावित किया और व्यापक बनाया। इन सभी कारणों से लोक सेवा युद्ध-पूर्व की स्थिति में नहीं आ सकी, इसके विपरीत सरकारी यंत्र का निरन्तर प्रसार हुआ।

युद्ध के तुरन्त बाद लोक सेवा की संरचना में कुछ परिवर्तन किए गए। 1946 में सामान्य व्यावसायिक वर्गों की शृंखलाएँ प्रारम्भ की गईं। इनकी भर्ती को केन्द्रीकृत किया गया तथा वेतन और सेवा की शर्तों को यथावत् रखा गया। इन्जीनियरिंग तथा इससे मिलती-जुलती सेवाओं को सामान्य संरचना प्रदान की गई। जब कुछ विशेषज्ञों का कार्य व्यापक हो जाता था तो सामान्य वर्गों की स्थापना कर दी जाती थी। इतने पर भी विभागीय विशेषज्ञों की व्यापक भिन्नरूपता बनी रही।

लोक सेवाओं में किए गए परिवर्तन केवल संरचना तक ही सीमित नहीं थे। इनमें कुछ अन्य महत्वपूर्ण विकास भी हुए जो मुख्यतः ये हैं—(i) राल्फ एश्टन (Ralph Asshetion) की अध्यक्षता में 1943 में नियुक्त समिति के प्रतिवेदन के अनुसार प्रशिक्षण के लिए नियोजित कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। (ii) संगठन एवं प्रविधि (Organisation and Met od) कार्य का विकास हुआ। यह प्रथम विश्व युद्ध के बाद छोटे स्तर पर प्रारम्भ हुआ था किन्तु इसे पूर्ण मान्यता द्वितीय

विश्व युद्ध के समय तथा उसके बाद प्राप्त हुई। (iii) वेतन तथा सेवा की अन्य शर्तों की पुनरीक्षा के लिए स्वतन्त्र निकायों की स्थापना की गई। (iv) कर्मचारियों की संख्या के सम्बन्ध में राजकोष द्वारा विभागों को सत्ता का अधिक प्रत्यायोजन किया गया।

(5) फुल्टन समिति का प्रतिवेदन (The Fulton Committee Report)—1966 में ससेक्स विश्वविद्यालय के उपकुलपति लॉर्ड फुल्टन की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गई। इसे देश की लोक सेवा की संरचना, भर्ती, प्रबन्ध तथा प्रशिक्षण की परीक्षा करने का कार्य सौंपा गया। इसने 1968 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया तथा लोक सेवा में परिवर्तन के सुझाव दिए। इसके कुछ उल्लेखनीय सुझाव ये हैं—(i) एक लोक सेवा विभाग की स्थापना की जाए जो लोक सेवा आयोग से भर्ती और चयन के कार्य ले ले तथा राजकोष से सेवाओं के केन्द्रीय प्रबन्ध को ग्रहण कर ले। (ii) लोक सेवाओं की विद्यमान वर्ग व्यवस्था को समाप्त करके एक एकीकृत स्तरीकृत संरचना अपनाई जाए जिसमें ऊपर से नीचे तक सभी लोक सेवक शामिल किए जाएँ। इन पदों पर चयन के समय व्यक्ति के कार्य का मूल्यांकन किया जाए। (iii) प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों को पूरा करने के लिए लोक सेवा महाविद्यालय की स्थापना की जाए। (iv) विभागों में प्रबन्ध सेवा इकाइयाँ तथा नियोजन शोध इकाइयाँ बनाई जाएँ। (v) भर्ती प्रक्रिया में विभागों को अधिक शक्तियाँ प्रत्यायोजित की जाएँ। (vi) सभी लोक सेवकों के जीविका के प्रबन्ध में अधिक साधन लगाए जाएँ। (vii) लोक सेवाओं तथा अन्य रोजगारों के बीच अधिक गतिशीलता को प्रोत्साहित किया जाए। फुल्टन कमेटी की मान्यता यह थी कि भर्ती का कार्य उन्हीं के हाथों में रहना चाहिए जो व्यक्ति के प्रशिक्षण, प्रसार एवं प्रशिक्षण के लिए प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी हों।[1] कमेटी का कहना था कि लोक सेवा आयोग को एक पृथक् तथा स्वतन्त्र निकाय के रूप में न रखा जाए वरन् इसे नवगठित लोक सेवा विभाग का एक अंग बना दिया जाए। कमेटी का विश्वास था कि योग्यता के आधार पर नियुक्ति की परम्पराएँ अब इतनी दृढ़ हो चुकी हैं कि लोक सेवा आयोग को एक पृथक् संगठन रखे बिना भी वे बनी रहेंगी।

सरकार द्वारा फुल्टन कमेटी की रिपोर्ट का व्यापक रूप से समर्थन किया गया। इसके तीन प्रमुख सुझाव तुरन्त ही स्वीकार कर लिए गए थे—लोक सेवा विभाग, लोक सेवा महाविद्यालय तथा एकीकृत ग्रेडिंग संरचना। लोक सेवा विभाग की स्थापना 1 नवम्बर, 1968 को की गई तथा इसे वेतन तथा लोक सेवा प्रबन्ध सम्बन्धी कार्य सौंप गए। इसे सम्पूर्ण सरकारी क्षेत्र में वेतन और सेवा निवृत्ति के बारे में सरकारी नीति के समन्वय का काम दिया गया। लोक सेवा आयोग अब इस विभाग का अंग बन गया, किन्तु वह लोक सेवाओं में नियुक्ति के लिए

1 U K. Report of the Fulton Commission on the Civil Service 1968, p 24

स्वतन्त्र रूप से चयन कर सके इसके लिए समुचित व्यवस्थाएँ की गईं। प्रधानमन्त्री लोक सेवा मन्त्री के रूप में इस नए विभाग के कार्यों के लिए उत्तरदायी है। इन कार्यों के दिन-प्रतिदिन के दायित्व एक वरिष्ठ गैर-विभागीय मन्त्री को हस्तांतरित कर दिए जाते हैं। यह मन्त्री केबिनेट का सदस्य भी होता है। फुल्टन कमेटी के सुझावों के अनुरूप लोक सेवा महाविद्यालय की स्थापना जून, 1970 में हो चुकी है तथा सभी सेवाओं के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम किए जा चुके हैं। 1 जनवरी, 1971 से सहायक सचिव स्तर तक के सभी प्रशासकीय निष्पादन एवं लिपिकीय (Administrative, Executive and Clerical) वर्गों का एकीकरण घोषित कर दिया गया है।

वर्तमान में ब्रिटिश लोक सेवाओं का वर्गीकरण

प्रशासन के प्रत्येक क्षेत्र में लोक सेवाओं की व्यवस्था है। वर्तमान ब्रिटिश लोक सेवाओं को छः वर्गों (Classes) में विभक्त किया जा सकता है। ये मुख्य वर्ग इस प्रकार हैं—

1 प्रशासनिक वर्ग (Administrative Class)—यह 'भारतीय प्रशासनिक सेवा' (I.A S) के समान है और सम्पूर्ण ब्रिटिश लोक सेवा का आधार है। इस वर्ग में स्थाई सचिव से लेकर सहायक प्रधान तक सभी अधिकारी आते हैं। नीति-*निर्धारण और विभाग-सचालन का मुख्य उत्तरदायित्व इसी वर्ग पर है। वर्तमान में* इस वर्ग के लोक सेवकों की संख्या 4,000 से भी अधिक है। प्रशासनिक वर्ग में नियुक्ति के लिए प्रतिवर्ष कठिन प्रतियोगिता परीक्षा का आयोजन किया जाता है और 21 से 24 वर्ष तक की आयु के परीक्षोत्तीर्ण स्नातकों का सेवा के लिए चयन होता है। 25 प्रतिशत पदों की भर्ती 'पदोन्नति' (Promotion) द्वारा होती है।

2 अधिशासी वर्ग (Executive Class)—इस वर्ग के सदस्यों की संख्या *वर्तमान में 75,000 से भी अधिक है। इस वर्ग के लोक सेवकों का मुख्य कार्य* दिन-प्रतिदिन के सरकारी काम-काज को निपटाना है। ऊँचे दर्जे का हिसाब-किताब, राजस्व सग्रह, क्षेत्रीय और स्थानीय कार्यालयों के प्रबन्ध आदि का दायित्व मुख्यतः अधिशासी वर्ग पर ही है। इस वर्ग के कुछ कार्य प्रशासनिक वर्ग के कार्यों से मिलते-जुलते हैं, अतः दोनों वर्गों के कार्यों के बीच कोई निश्चित विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती। जिस प्रकार सरकारी कार्यक्षेत्र का विस्तार हो रहा है, उसे देखते हुए *प्रशासनिक और अधिशासी दोनों ही वर्गों के कार्यों में न केवल विस्तार हुआ है बल्कि जटिलता भी बढ़ी है। ब्रिटेन के अधिशासी वर्ग की समता भारत की* 'अधीनस्थ सेवाओं' *(Subordinate Services) से की जा सकती है।*

3. विशिष्ट वर्ग (Specialist Class)—इस वर्ग में व्यावसायिक, वैज्ञानिक और तकनीकी स्टॉफ (Professional, Scientific and Technical Staff) समाविष्ट होता है। वर्तमान में इस वर्ग में लगभग 1,14,000 लोक सेवक हैं। विशिष्ट वर्ग में बैरिस्टर, सोलिसिटर, इन्जीनियर, डॉक्टर, लाइब्रेरियन, वैज्ञानिक, सहायक, शिल्पी आदि सम्मिलित हैं। इस वर्ग के पदों पर नियुक्ति

प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा नहीं होती बल्कि प्रतियोगियों को मान्य योग्यता, विशिष्ट प्रशिक्षण अथवा अनुभव के आधार पर साक्षात्कार-पद्धति द्वारा चुना जाता है।

4 लिपिक वर्ग (Clerical Class)—इस वर्ग के सेवकों की संख्या वर्तमान में लगभग 1,90,000 है। इस वर्ग में प्रतियोगिता परीक्षा के आधार पर 16-17 वर्ष के युवक-युवतियों को चुना जाता है। लिपिक वर्ग का काम सामान्य प्रकृति का है यथा, रिकार्ड रखना, नियमों के अनुसार कागजों, दावों आदि की जाँच-पड़ताल करना—अधिकारी वर्ग के आदेशानुसार नित्यप्रति के सरकारी काम निपटाना, आवश्यक तथ्य एवं आँकड़े एकत्र करना, आदि।

5. लेखक सहायक वर्ग (Writing Assistant Class)—इस वर्ग में सहायक लिपिक, टाइपिस्ट, डुप्लीकेटर आदि मशीनें चलाने वाले होते है। वर्तमान में इनकी संख्या लगभग 1 लाख 6 हजार है।

6 संदेशवाहक व निम्न वर्ग (Messengerial and Menial Class)—इस वर्ग के सदस्यों की संख्या वर्तमान में लगभग 35,000 के निकट जा पहुँची है। इस वर्ग में संदेशवाहकों (Messengers) के अतिरिक्त कागज रखने वाले (Paper Keepers), कार्यालय की सफाई करने वाले (Office Cleaners) और इसी प्रकार के अन्य कर्मचारी सम्मिलित हैं।

इन सबके अतिरिक्त डाक विभाग, टेलीफोन विभाग, शिक्षा विभाग आदि में 'विभागीय वर्ग' (Departmental Class) भी होते हैं जिनकी नियुक्ति सम्बन्धित विभागों द्वारा की जाती है। ब्रिटेन में समस्त लोक सेवकों की संख्या 1972-73 में लगभग 5 लाख थी जो वर्तमान में लगभग सात लाख तक जा पहुँची है।

संयुक्तराज्य अमेरिका में लोक सेवाओं का विकास
(Development of Public Services in U S A)

संयुक्तराज्य अमेरिका में लोक सेवाओं का इतिहास वास्तव में लूट प्रणाली (Spoils System) के जन्म, व्यवहार तथा पतन का इतिहास है। अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति जॉर्ज वाशिंगटन ने ईमानदारी, निष्पक्षता, कार्यकाल का स्थायित्व आदि अनेक उच्च मानकों की प्रतिष्ठापना की थी। ये मानक संयुक्तराज्य की संघीय सेवाओं में 1929 तक बहुत कुछ प्रभावशाली भूमिका निभाते रहे किन्तु बाद में राजनीतिक दलों के विकास तथा शक्ति के लिए उनके संघर्ष ने शीघ्र ही यह स्पष्ट कर दिया कि लोकसेवाओं को दलीय राजनीति के क्षेत्र से बाहर नहीं रखा जा सकता। वाशिंगटन के बाद आने वाले पाँच राष्ट्रपतियों के कार्यकाल तक राजनीतिक मित्रों को लाभ पहुँचाने तथा शत्रुओं को हानि पहुँचाने की नीति अपनाई जाती रही किन्तु 'लूट का माल विजेताओं को ही मिलना चाहिए', यह विचार 1929 में राष्ट्रपति जैक्सन के पद ग्रहण करने तक प्रभावशाली नहीं बन सका था।

लूट प्रथा का प्रारम्भ (Beginning of Spoils System)—अमेरिकी काँग्रेस ने 1820 में चार वर्ष के कार्यकाल का अधिनियम पारित करके यह निश्चित

कर दिया कि कुछ पदाधिकारी चार वर्ष तक अपने पद पर कार्य करेंगे न कि राष्ट्रपति की इच्छापर्यन्त । राष्ट्रपति जैक्सन ने इस अधिनियम का सहारा लेकर लोकसेवा से अपने विरोधियों को निकाल दिया तथा उनके स्थान पर अपने समर्थकों को नियुक्त कर लिया । इस प्रकार लोकसेवाओं में लूट प्रणाली का प्रारम्भ हुआ जो अमेरिकी प्रशासन पर लगभग पचास वर्ष तक छाई रही ।[1]

दिसम्बर 1829 में काँग्रेस को भेजे गए अपने प्रथम वार्षिक सन्देश में राष्ट्रपति जैक्सन ने लूट प्रथा का औपचारिक औचित्य प्रस्तुत करते हुए मुख्यतः ये तर्क दिए—(i) अधिक समय तक पद पर रहने से व्यक्ति के अनुभव का जो लाभ मिलता है उससे अधिक वह हानिप्रद साबित होता है। (ii) सीमित कार्यकाल के कारण प्रशासनिक कार्यकुशलता बढ़ेगी और कर्मचारी उद्यमी तथा ईमानदार बना रहेगा। (iii) जनहित के लिए बनाए गए सरकारी पदों पर स्थाई रहने का अधिकार किसी व्यक्ति का नहीं है, अतः उसे हटाया जा सकता है तथा उसके स्थान पर अन्य को नियुक्त किया जा सकता है। (iv) कार्यालय जनता की कीमत पर किन्हीं विशेष व्यक्तियों को लाभ पहुँचाने के लिए नहीं बनाए गए हैं, अतः किसी को स्थाई नहीं रखा जा सकता। (v) व्यक्ति को जनसेवा के लिए पद सौंपा जाता है और यदि जनता के प्रतिनिधि चाहे तो उसे कभी भी हटा सकते हैं। (vi) पद से हटा व्यक्ति भी अपने गुणों के अनुसार नई जीविका ढूंढने के उतने ही अवसर रखता है जो सरकारी पद प्राप्त न करने वाले करोड़ों लोगों को उपलब्ध हैं। (vii) पद पर स्थाई होने के कारण अधिकारी जनसेवक न रहकर स्वार्थी और अनुत्तरदायी बन जाता है।

लूट प्रथा के परिणाम एवं प्रतिक्रिया Results and Reaction of the Spoils System)—लूट प्रथा के अन्तर्गत प्रत्येक नए राष्ट्रपति के साथ पूर्वस्थित उच्च प्रशासनिक अधिकारियों को पदमुक्त कर दिया जाता था और उनके स्थान पर नई नियुक्तियाँ की जाती थीं। नियुक्ति का आधार प्रत्याशी की योग्यता, कुशलता, गुण आदि न होकर उसका राजनीतिक दृष्टिकोण, राष्ट्रपति से परिचय, मित्रता, चुनाव में की गई मदद आदि बातें होती थीं। बार-बार अनुभवी कार्यकर्ताओं को हटाकर नए गैर-अनुभवी लोगों की भर्ती करने से सरकार की कार्यकुशलता तीव्र गति से घट गई। प्रशासन में न केवल अयोग्यता और अक्षमता का दोष आया वरन् भ्रष्टाचार, चोरी, हिंसा और गबन की घटनाएँ भी सामान्य बन गईं। नैतिक आचार संहिताहीन वातावरण में अनेक ईमानदार लोग बेईमान बन गए।

1 "For half a century, from the 1830's to the 1880's the overwhelming majority of appointments in American Administration-national, state and local-were made on the basis of party patronage."—*John A. Vieg* in Elements of Public Administration, ed by F. M. Marx, 2nd ed 1964, p 19

लूट व्यवस्था की बुराइयों के कारण उसकी देशव्यापी प्रतिक्रिया हुई। प्रशासनिक पदों पर तकनीकी योग्यता की आवश्यकता बढ़ने पर यह स्पष्ट हो गया कि प्रत्येक व्यक्ति किसी भी पद के लिए उपयुक्त नहीं होता। 1871 में अमेरिकी कांग्रेस ने राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया कि लोकसेवाओं में कार्यकुशल कर्मचारियों की भर्ती के लिए नियम और विनियम बना सके तथा प्रत्याशी की आयु, स्वास्थ्य, चरित्र ज्ञान तथा योग्यता तय करने के लिए उपयुक्त व्यवस्था कर सके। इस व्यवस्थापन के आधार पर राष्ट्रपति ग्रान्ट (Grant) ने एक सुयोग्य लोकसेवा आयोग की स्थापना की किन्तु कांग्रेस का समर्थन तथा उपयुक्त विनियोग न होने के कारण 1875 में इसे अपना कार्य रोक देना पड़ा। 1877 में न्यूयॉर्क लोकसेवा सुधार संगठन की स्थापना हुई 1881 में राष्ट्रीय लोकसेवा सुधार लीग का संगठन हुआ, जॉर्ज विलियम कर्टिस (Curtis) जैसे आदर्शवादियों ने निरन्तर प्रशासनिक सुधारों पर जोर दिया तथा 1881 में एक पद-खोजी निराश व्यक्ति ने राष्ट्रपति गारफील्ड की हत्या कर दी। इन सभी कारणों से लोक सेवाओं में सुधार की माँग बलवती हो गई।

1882 के आम चुनावों का प्रमुख मुद्दा प्रशासनिक सुधारों को बना दिया गया। लोकसेवा सुधारों का पक्ष लेने वाले अधिकांश प्रत्याशी विजयी हो गए। जब कांग्रेस का अधिवेशन शुरू हुआ तो लोकसेवा सुधारों की ओर प्रथम दिन से ही ध्यान दिया जाने लगा। अन्त में 16 जनवरी 1883 में लोकसेवा अधिनियम पारित हो गया।

पेन्डलेटन अधिनियम, 1883 (The Pendelton Act of 1883)

1883 में अमेरिकी कांग्रेस ने एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिविल सेवा अधिनियम पारित किया जो सामान्यतः 'पेण्डलेटन अधिनियम' (The Pendelton Act) के नाम से विख्यात हुआ। यह कानून अपने लागू होने के दिन से ही अमेरिकी राष्ट्रीय सिविल सेवा में प्रवेश का नियमन करने वाला एक मूलभूत कानून है, यद्यपि समय-समय पर उसमें अनेक संशोधन होते रहे हैं। इस कानून के फलस्वरूप लगभग 95 प्रतिशत सिविल सेवा अब प्रदर्शित योग्यता के आधार पर ही अपने पदों पर आसीन है। यद्यपि लूट खसोट प्रथा अभी तक पूर्ण रूप से समाप्त नहीं हुई है, तथापि यह अवश्य है कि पेण्डलेटन कानून के अनुसार अमेरिका की कार्मिक व्यवस्था में योग्यता प्रणाली ने गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। इस अधिनियम के मुख्य लक्षणों को डॉ. सी. पी. भाँभरी ने निम्नानुसार प्रकट किया है—

(1) इस अधिनियम में राष्ट्रपति को यह अधिकार मिल गया है कि वह संयुक्तराज्य सिविल सेवा आयोग (United States Civil Service Commission) का निर्माण करने के लिए, सीनेट के द्वारा और उसकी सलाह तथा सहमति से तीन व्यक्तियों को सिविल सेवा आयुक्त (Civil Service Commissioner) नियुक्त कर सकें, परन्तु उनमें दो से अधिक व्यक्ति किसी एक ही दल से सम्बद्ध न हों। ये आयुक्त केवल राष्ट्रपति (President) द्वारा ही हटाए जा सकते हैं।

(2) इनका कार्य यह है कि राष्ट्रपति के कथनानुसार ऐसे उपयुक्त नियमों के निर्माण में राष्ट्रपति की सहायता करें जो कि अधिनियम को कार्यरूप देने के लिए आवश्यक हो। एक बार जब इन नियमों की घोषणा कर दी जाए तो संयुक्तराज्य के अधिकारियों का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे उन्हें क्रियान्वित करने में सहायता दें।

(3) "अच्छे प्रशासन की दृष्टि से जहाँ तक भी सम्भव होगा" इन नियमों के द्वारा निम्नलिखित व्यवस्थाएँ की जाएँगी—(क) वर्तमान में वर्गीकृत अथवा भविष्य में वर्गीकृत की जाने वाली लोक-सेवाओं में प्रत्येक के इच्छुक प्रार्थियों की उपयुक्तता एवं पात्रता की जाँच करने के लिए खुली प्रतियोगिता परीक्षाओं की व्यवस्था, (ख) परीक्षाएँ व्यावहारिक प्रकृति की होंगी और उनके द्वारा यह देखा जाएगा कि प्रार्थी उस सेवा के कर्त्तव्यों को पूरा करने के लिए उपयुक्त पात्र है या नहीं जिसमें कि वह अपनी नियुक्ति चाहता है, (ग) प्रत्येक श्रेणी के पद उन व्यक्तियों द्वारा भरे जाएँगे जो कि परीक्षाओं में सर्वोच्च क्रम से स्थान प्राप्त करेंगे, (घ) वाशिंगटन में स्थित पद विभिन्न राज्यों एवं प्रदेशों में उनकी जनसंख्या के आधार पर बाँट दिए जाएँगे, (ङ) अन्तिम रूप से पुष्टिकृत (Confirmed) नियुक्ति से पूर्व परिवीक्षा (Probation) की अवधि की व्यवस्था की जाएगी, (च) इन नियमों (Rules) के आवश्यक अपवादों (Necessary Exceptions) का उल्लेख नियमों में ही किया जाएगा और आयोग के वार्षिक प्रतिवेदनों में उसके कारण (Reasons) दिए जाएँगे, (छ) आयोग परीक्षाओं का संचालन करेगा एवं कांग्रेस को प्रेषित करने के लिए वार्षिक प्रतिवेदन राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करेगा जिसमें अन्य बातों के साथ ही अधिनियम के प्रभावपूर्ण कार्यान्वयन के लिए सुझाव दिए जाएँगे।

(4) श्रमिक व कारीगर तथा सीनेट द्वारा पुष्टिकरण (Confirmation) के लिए मनोनीत (Nominated) व्यक्ति अधिनियम के अधिकार क्षेत्र के बाहर रखे गए हैं। इस प्रकार 'वर्गीकृत' (Classified) पदों पर योग्यता सिद्धान्त (Merit Principle) लागू होता है। कर्मचारी अब दलीय कार्यों की दृष्टि से किए जाने वाले मूल्यांकनों से मुक्त हैं और उन्हें यह अधिकार नहीं है कि वे राजनीति में सक्रिय रूप से भाग ले सकें। संयुक्तराज्य अमेरिका में सिविल सेवा सुधार का मुख्य रुझान, जो 'पेण्डलेटन अधिनियम' के साथ आरम्भ हुआ था और अब इस उद्देश्य की ओर है कि प्रदर्शित योग्यता के आधार पर ही नियुक्तियाँ की जाएँ और नियुक्तार्थियों को यह आश्वासन दिया जाए कि कुशल कार्य सम्पादन तथा श्रेष्ठ व्यवहार की स्थिति में उन्हें पदावधि की सुरक्षा प्रदान की जाएगी तथा आज यह सब सरकार के प्राय सभी क्षेत्रों पर लागू हो गया है।

लोक सेवाओं का प्रशासन (The Administration of Civil Services)—अमेरिकी लोकसेवा आयोग में तीन आयुक्त होते हैं तथा इनमें दो से अधिक एक ही

दल के नहीं हो सकते । आयुक्तों की नियुक्ति सीनेट के परामर्श तथा सहमति पर राष्ट्रपति द्वारा की जाती है । ये छः वर्ष तक अपने पद पर कार्य करते हैं । 1949 से एक सदस्य को इसका सभापति नियुक्त कर दिया जाता है । छठी दशाब्दी के अन्तिम दिनों में आयोग का स्टॉफ लगभग 5,300 था जिसमें से लगभग 2,000 इसके केन्द्रीय कार्यालय वाशिंगटन में तथा शेष प्रमुख नगरों में स्थित 10 क्षेत्रीय कार्यालयों में काम कर रहे थे । देश भर में इसके करीब 65 परीक्षक मण्डल कार्यरत हैं । लगभग 90% सघीय कर्मचारी वाशिंगटन से बाहर क्षेत्रीय कार्यालयों में कार्य करते हैं अतः लोकसेवा आयोग के कर्मचारी भी क्षेत्रीय स्तर पर कार्य करते हैं ।

लोकसेवा आयोग का मुख्य कार्य सघीय विभागों को निर्देशित करने के लिए नीति एवं निर्देश प्रदान करना, भर्ती एवं परीक्षा तथा स्थिति वर्गीकरण के मापदण्ड तय करना, सेवीवर्ग की जाँच करना, सेवानिवृत्ति, जीवन एवं स्वास्थ्य बीमा, गृह व्यवस्था, अभिकरण का निरीक्षण सेवीवर्ग कार्यक्रम तथा कार्यपालिका सम्बन्धी कार्य सम्पन्न करना आदि है । 1938 से प्रत्येक सघीय विभाग तथा अभिकरण में सेवीवर्ग कार्यक्रमों के सचालन के लिए एक सेवीवर्ग निदेशक (Personnel Director) होता है । ये निदेशक मिलकर एक अन्त अभिकरण परामर्शदाता समूह की स्थापना करते हैं जो लोकसेवा आयोग को नीति रचना में सहायता देता है ।

प्रारम्भ में लोकसेवा आयोग ने लूट प्रणाली के विरुद्ध लड़ाई में अपनी शक्तियों को केन्द्रित किया तथा बाद में जब योग्यता व्यवस्था का प्रभाव बढ़ा और अनुग्रह के आधार पर होने वाली नियुक्तियों की सख्या घट गई तो आयोग उन्नतिशील सेवीवर्ग व्यवस्था के विकास तथा सही कॅरियर व्यवस्था की रचना में सलग्न हो गया । योग्यता व्यवस्था के प्रसार में काँग्रेस के व्यवस्थापन तथा राष्ट्रपति के कार्यपालिका आदेश महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे । इस हेतु 1940 में राम्सपीक अधिनियम (Ramspeck Act) पारित हुआ । लोक-सेवाओं के विकास की दृष्टि से 1883 के पेण्डलेटन अधिनियम के बाद उठाए गए कुछ महत्त्वपूर्ण कदम ये हैं—कार्यों तथा व्यवस्थापूर्ण वेतन योजना के आधार पर पदस्थिति का वर्गीकरण (1923), सेवानिवृत्ति अधिनियम (1920), कानून द्वारा राज्य के उन कार्यक्रमों में योग्यता व्यवस्था का प्रसार जिनमें सघ सरकार द्वारा सहायता दी जा रही है (1936), 1939 तथा 1940 के हेच अधिनियम (Hatch Acts) द्वारा राजनीतिक हस्तक्षेप के विरुद्ध सुरक्षा 1919 तथा 1944 में युद्ध सेवियों को प्राथमिकता के लिए सविधीय प्रबन्ध आदि । इसके अतिरिक्त लोकसेवा के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित करने वाले अधिनियमों द्वारा ये व्यवस्थाएँ की गई—लाभदायक कर्मचारी सुझावों के लिए नकद एव प्रवर्तनिक पुरस्कार (1954), सहायता देने वाली बीमा योजना (1954), स्वास्थ्य बीमा (1959), नियोजन तथा कर्मचारियों का प्रशिक्षण (1958) आदि । ये सभी विकास व्यवस्थापन के द्वारा हुए ।

कार्यपालिका द्वारा किए गए कुछ महत्त्वपूर्ण विकासों के उदाहरण ये हैं—कर्मचारी प्रबन्ध सहकारिता पर एक सरकार व्यापी नीति का निर्धारण (1962), समान रोजगार के अवसरों की व्यवस्था (1965-67), व्यापारिक एवं मजदूरी कार्यों के भुगतान के लिए सामान्य मापदण्ड एवं व्यवहार (1968), वेतन सुधार अधिनियम (1962), ह्वाइट कालर कर्मचारियों के वेतन में क्रमिक वृद्धि का प्रावधान ताकि उसी स्तर के वैसे ही कार्य करने वाले निजी क्षेत्र के कर्मचारियों के बराबर उनका वेतन हो सके।

आज संयुक्तराज्य अमेरिका की संघीय स्तरीय लोकसेवा के अधिकांश पद योग्यता व्यवस्था के अधीन आ चुके हैं। कुछ अभिकरण या समूह ऐसे भी हैं जो लोकसेवा अधिनियम द्वारा नियन्त्रित नहीं होते हैं—जैसे, विदेश सेवा, अमेरिकी जन-स्वास्थ्य सेवा की कमीशण्ड कोर्प्स टीनेसी वैली ऑथॉरिटी, अणुशक्ति आयोग, संघीय जाँच ब्यूरो आदि। इकाइयों की अपनी पृथक योग्यता व्यवस्थाएँ हैं जो उनकी आवश्यकताओं एवं प्रकृति के अनुरूप हैं। वैसे इनमें भी वेतन, प्रशिक्षण, जीवन बीमा, स्वास्थ्य बीमा एवं सेवानिवृत्ति सम्बन्धी वे ही नियम अपनाए जा सकते हैं जो नियमित लोकसेवा में अपनाए जाते हैं।

अमेरिकी सिविल सेवा के मुख्य दोष तथा सुधार के उपाय

अमेरिकी सिविल सेवा, बावजूद अपने गौरवपूर्ण इतिहास के, मुख्यत: निम्नलिखित दोषों की शिकार है—

1 यह उत्तरदायी प्रशासकीय पदों पर उच्च योग्यता सम्पन्न व्यक्तियों को आकर्षित करने और बनाए रखने में असफल रही है। लोक सेवाओं के लिए श्रेष्ठतम, योग्यतम और गहन अध्ययन वाले व्यक्तियों को आकर्षित करने के ठोस प्रयत्न किए गए हैं।

2 लोकसेवा में लूट-खसोट प्रथा (Spoils System) के अवशेष अभी तक विद्यमान हैं।

3 गैर-सरकारी व्यवसाय की तुलना में अमेरिकी लोकसेवा में वेतन कम मिलता है, फलस्वरूप योग्य और गुणी व्यक्ति कम आकर्षित होते हैं और यदि आते भी हैं तो निम्न वेतन तथा उन्नति के अवसरों की कमी के कारण त्याग-पत्र देकर चल जाते हैं।

4 अमेरिकी सिविल सेवा में 18 से 35 वर्ष की आयु का कोई भी व्यक्ति प्रवेश कर सकता है। आयु की यह सीमा दोषपूर्ण है।

प्रो हरमन फाइनर ने अमेरिकी सिविल सेवा के प्रमुख दोषों को इस प्रकार गिनाया है—"(1) प्रशासनिक विज्ञ मण्डल (Administrative Brain Trust) के सिद्धांत को अभी तक मान्यता नहीं दी गई है। परीक्षा प्रणाली द्वारा भर्ती किए गए अधिकांश व्यक्तियों द्वारा प्रशासन का सामान्य कार्य सम्भाला गया है। (2) परीक्षाओं में तुच्छता (Triviality) का भी प्रदर्शन है। (3) लूट खसोट

प्रणाली के अवशेष अभी तक विद्यमान हैं और सिविल सेवा के प्रयत्न सर्वश्रेष्ठ प्रत्याशियों की प्राप्ति की दिशा में उतने नहीं रहे हैं जितने केवल दुष्ट जनों' को सेवा से बाहर निकालने की दिशा में रहे हैं।''

अमेरिकी सिविल सेवा को विशाल अमेरिकी राष्ट्र की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव अपेक्षित हैं—

1. सिविल सेवा में भर्ती के समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए कि समाज की श्रेष्ठ बौद्धिक क्षमता वाले व्यक्तियों को लिया जा सके।

2. लोकसेवा की भर्ती के लिए आयु सीमा 18 से 25 वर्ष तक रखी जानी चाहिए ताकि वे सिविल सेवा को अपनी स्थायी जीवन वृत्ति (Permanent Career) बना लें। यदि लोकसेवा की भर्ती 35 से 40 वर्ष की आयु के लोगों के लिए खुली रहती है तो ऊँची आयु के ऐसे लोग भी सरकारी सेवा में प्रवेश कर सकते हैं जो व्यक्तिगत या निजी क्षेत्र में असफल सिद्ध हुए हों।

3. सिविल सेवकों के वेतन में वृद्धि की जानी चाहिए। उच्च प्रशासनिक पदों के वेतन आकर्षक होने चाहिए।

4. सिविल सेवकों की उन्नति के लिए पर्याप्त अवसर प्रस्तुत होने चाहिए।

5. परीक्षाओं द्वारा प्रत्याशियों की सामान्य बौद्धिक क्षमता की ठोस जाँच की जानी चाहिए।

6. अमेरिकी सिविल सेवा में ब्रिटिश नमूने के प्रशासकीय वर्ग या प्रशासकीय विज्ञ मण्डल का निर्माण किया जाना चाहिए।

7. लूट-खसोट प्रणाली के अवशेषों को समाप्त किया जाना चाहिए।

डॉ. भाम्भरी ने विलियम सील कारपेंटर द्वारा प्रस्तुत उन तीन मौलिक सुधार सुझावों का उल्लेख किया है जो कि सिविल सेवा पद्धतियों को आजकल की सरकारों में कुशलता के साथ कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हैं—

1. अव्यवसायी द्विदलीय सिविल सेवा आयोगों (Amateur Bipartisan Civil Service Commission) का स्थान कार्मिक वर्ग विभागों को दिया जाना चाहिए। ये विभाग एक आयुक्त (Commissioner) के निर्देशन में कार्य करें जो कि मुख्य कार्यपालिका के प्रति उत्तरदायी हो।

2. मालिक कर्मचारियों के सम्बन्धों की समस्या को हल करने के लिए कानून द्वारा पर्याप्त मशीनरी का निर्माण किया जाना चाहिए। यदि सरकारी सेवाओं को कुशलता के साथ सचालित करना है तो यह आवश्यक है कि सरकारी अधिकारी वर्ग तथा कर्मचारी वर्ग में उचित सहयोग तथा साझेदारी होनी चाहिए।

3. योग्यता प्रणाली के विकास एवं विस्तार में रुचि रखने वाले नागरिक सगठनों को मजबूत बनाया जाना चाहिए।

फ्रांस मे लोक-सेवाम्रो का विकास
(Development of Public Services in France)

फ्रांस मे लोकसेवाम्रो की प्रमुख विशेषताएँ क्रान्ति के बाद ही विकसित हुई। क्रान्तिकारी व्यवस्थापिकाम्रो ने पुराने समय के परम्परावादी एव जटिल सगठन को समाप्त करके एक नई रूपरचना की स्थापना की। यह दो सिद्धान्तो पर म्राधारित थी—एक रूप पदसोपान तथा केन्द्रीयकरण। बाद की सरकारो द्वारा इस प्रशासनिक सरचना को बनाए रखने किन्तु इसे प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तो के म्रनुकूल ढालने की चेष्टा की गई। 19वी शताब्दी के म्रन्त मे होने वाले क्रमिक सुधारो ने कम्यूनो तथा विभागो मे स्थानीय सरकार का विकास किया। म्रब स्थानीय सभाम्रों के निर्वाचन के रूप में लोग सार्वजनिक कार्यों के प्रबन्ध मे म्रधिक सक्रिय भाग लेने लगे। सरकार द्वारा नियुक्त म्रौर प्रीफेक्ट तथा कम्यून की परिषद् द्वारा निर्वाचित मेयर के रूप मे केन्द्रीय सेवाम्रो तथा स्थानीय म्रधिकारियो के बीच स्थाई कड़ियाँ स्थापित की गई। प्रत्येक विभाग मे प्रीफेक्ट द्वारा सभी स्थानीय निर्णयों पर नियन्त्रण रखा गया। 20वी शताब्दी मे प्रशासनिक कार्यों का विकास हुम्रा तथा इसके परिणामस्वरूप लोकसेवको की सख्या मे भारी वृद्धि हुई। स्वास्थ्य, म्रर्थव्यवस्था एव म्रावास म्रादि कार्यों के लिए मत्रालय गठित किए गए। इन नए विकासो के परिणामस्वरूप फ्रांस की लोकसेवा इतनी उलझनपूर्ण हो गई कि कोई एक रूप नियमन करना म्रत्यावश्यक बन गया।

लोक सेवाम्रों मे भिन्नता (Diversity in Civil Services)—फ्रांस की लोकसेवा परम्परागत रूप से भिन्नतापूर्ण रही है। यहाँ के स्कूल तथा कॉर्प्स (Corps) भिन्नरूपता को जन्म देते हैं। इनमे ऐसा प्रशिक्षण दिया जाता है जो एकरूप नहीं होता। फलत सभी मत्रालय प्राय एक-दूसरे के विरुद्ध बँटे रहते हैं। यहाँ तक कि एक ही मत्रालय मे म्रापसी गुटबन्दियाँ होती हैं। इस म्रनेकरूपता एव भिन्नता की व्यवस्था के लिए बहुत कुछ नेपोलियन उत्तरदायी है। उसने इम्पीरियल विश्वविद्यालय की नींव रखते हुए कहा था कि "मैं कॉर्प्स (Corps) बनाना चाहता हूँ क्योकि कॉर्प्स मरती नही है। यह म्रावश्यक है कि ऐसी कॉर्प्स को विशेषाधिकार सौंपा जाए तथा ये मन्त्रियो म्रौर बादशाह पर म्राश्रित न रहे।"[1] नेपोलियन द्वारा स्थापित स्वतन्त्र लोकसेवा कॉर्प्स ने सरकारी विभागो की सरचना को सघात्मक बना दिया।

नेपोलियन की केन्द्रीकृत लोकसेवा (Centralized Public Service of Napolean)—नेपोलियन की प्रकृति, सामाजिक कार्यक्रम, निरन्तर युद्ध मे व्यस्तता एव कार्यकुशलता के मूल्य मे म्रास्था म्रादि बातो ने मिलकर उसके समय की लोक-सेवाम्रो को म्रत्यधिक केन्द्रीकृत बना दिया। हरमन फाइनर (Herman Finer)

1 Quoted by *F. Ridley and J Blondel*, Public Administration in France

के कथनानुसार "नेपोलियन ने स्वयं कुछ अपवादों के साथ उच्च प्रशासनिक अधिकारियों विशेषत कौंसिल डी एटा की व्यक्तिगत रूप से नियुक्ति, पदोन्नति, पदावनति एवं पदमुक्ति आदि कार्य सम्पन्न किए।"[1] तत्कालीन स्थिति यह थी कि एक मन्त्री बिना सम्राट् को पूछे किसी अधिकारी को पदमुक्त नहीं कर सकता था किन्तु सारे मन्त्री व्यवस्था में अन्य कोई परिवर्तन किए बिना बदले जा सकते थे। यदि कोई मन्त्री एक छोटे से लिपिक की भी नियुक्ति करता हो तो उसे सम्राट् के सामने प्रत्याशियों तथा उनका समर्थन करने वाली जनता का नाम प्रस्तुत करना होता था। कोम्टे चेपटल के मतानुसार छोटी से छोटी बात का प्रशासन भी वह स्वयं करता था। उसके चारों ओर भयभीत एवं निष्क्रिय लोग रहते थे जो उसकी इच्छा को पढ़ने और बिना अपनी सम्मति की छाप डाले, उसे कार्यान्वित करते थे।[2] तत्कालीन कर्मचारियों के मानस पर नेपोलियन का इतना आतंक रहता था कि वे सदैव कार्य करते समय नेपोलियन की उपस्थिति अनुभव करते थे। उनको ऐसा लगता था कि नेपोलियन की हज़ार आँखें उनके सभी कार्यों एवं व्यवहारों का सदैव निरीक्षण करती रहती हैं।

नेपोलियन से तृतीय गणराज्य तक (From Napolean to Third Republic)—नेपोलियन के बाद राजा, चर्च और सदनों के बीच सत्ता के लिए संघर्ष छिड़ा। इसके फलस्वरूप कर्मचारियों की भर्ती में कार्यकुशलता के स्थान पर लूट प्रथा एवं अनुग्रह का प्रभाव बढ़ गया। बालज़क (Balzac) ने उस समय की स्थिति का चित्रण करते हुए स्पष्ट लिखा है कि क्षमता उद्योग तथा सार्वजनिक हित की भावना का स्थान अक्षमता, निष्क्रियता एवं स्वार्थपरता ने ले लिया। तीस हज़ार सरकारी अधिकारियों की नियुक्ति एवं पदोन्नति प्रत्याशी के राजनीतिक प्रभाव के आधार पर होने लगी तथा इस प्रभाव का कर्मचारी की प्रशासनिक कार्य करने की योग्यता से कोई सम्बन्ध नहीं था।[3]

सुधार के प्रयास (Attempts at Reform)—नौकरशाही में व्याप्त दोषों का निराकरण करने के लिए तृतीय गणराज्य से पूर्व की व्यवस्थापिका ने सुधार के लिए अनेक प्रयास किए। ये प्रयास यद्यपि उच्चकोटि के सांसदों द्वारा किए गए थे, किन्तु असफल रहे तथा जैसाकि डॉ हरमन फाइनर ने लिखा है—"1930 तक फ्रांस की लोकसेवा अनेक असमन्वयपूर्ण सविधीय प्रावधानों द्वारा नियमित होती थी। यह उत्तरोत्तर सरकारों द्वारा प्रसारित बहुसंख्यक डिक्रीज तथा कौंसिल डी

1 "He, therefore, with a few exceptions, personally appointed, promoted, delegated or dismissed the higher administrative officials, especially the Conseil d' Etat" —*Herman Finer*

2 *Cf Comte de Chaptal*: Mes Souvenirs sur Napolean, 1893 p 228

3 "Today, the state is everyone Now, every is not concerned in anybody To serve everyone is to serve no one None is interested in anyone" —*Balzac in Les Employees*, July, 1836

एटा के न्यायशास्त्र द्वारा नियमित होती थी।"[1] सुधार के इन प्रयासों को वांछनीय सफलता प्राप्त न होने का मूल कारण यह था कि फ्रांस के राजनीतिज्ञ कार्यकुशल प्रशासन की अपेक्षा अन्य चीजों में अधिक रुचि लेते थे।

1848 में यहाँ एक डिक्री द्वारा प्रशासन विद्यालय की स्थापना की गई। इसमें प्रशासन की उन विभिन्न शाखाओं में भर्ती होने वालों को तैयार किया जाता था जिन्हें अन्य विद्यालयों में शिक्षा नहीं मिलती थी। संसदीय स्वीकृति न मिलने के कारण यह विद्यालय केवल 18 माह तक ही जीवित रहा। इस विद्यालय के लिए पर्याप्त धन नहीं मिल सका, इसके निरन्तर कार्य के लिए कोई स्पष्ट नीति नहीं अपनाई जा सकी, प्रमुख राजनीतिज्ञों ने यहाँ पाठ्यक्रम प्रारम्भ तो किए किन्तु समयाभाव के कारण उनको पूरा नहीं कर सके। इसके अतिरिक्त विधि सकाय ने इस विद्यालय का कड़ा विरोध किया तथा विभागों ने भी विरोध किया क्योंकि वे अपने विभागीय सेवीवर्ग की नियुक्ति पर पूरा एकाधिकार चाहते थे।

तृतीय गणतन्त्र लोकसेवा (Public Service in Third Republic)—फ्रांस की लोकसेवा के सम्बन्ध में सामान्य धारणा यह थी कि सरकार के सभी विभागों को समान सिद्धान्तों के आधार पर चलाना असम्भव है। इसी कारण प्रत्येक मन्त्रालय में भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति आदि विषयों पर अलग अलग नियमों का विकास हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध तक फ्रांस की लोकसेवा का संचालन मुख्य रूप से दो सिद्धान्तों के आधार पर होता रहा—(i) लोकसेवाएँ असाधारण प्रतिभा के लिए खुली हुई हैं तथा (ii) प्रतिभाओं को विशेष शिक्षा द्वारा प्रशिक्षित किया जाए तथा विशेष परीक्षा द्वारा प्रत्येक विभाग के लिए उनका चयन किया जाए। प्रशिक्षण एवं परीक्षा की प्रकृति प्रत्येक विभाग के लिए अलग से तय की जाए।

तृतीय गणतन्त्र में फ्रांस के लोक सेवकों की भर्ती आदि का नियमन अनेक नियमों द्वारा किया जा रहा था। तदनुसार प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा भर्ती, प्रशासनिक ग्रेड के लिए लिखित एवं मौखिक दोनों प्रकार की परीक्षाओं द्वारा भर्ती, *परीक्षाओं की तकनीकी प्रकृति, पहले की सफल शिक्षा का प्रमाण-पत्र,* सेवा में प्रवेश के लिए व्यापक आयु-सीमाएँ तथा परीक्षाओं का विभागीकरण आदि बातें व्यवहार में अपनाई जाती थीं। तत्कालीन लोकसेवा में पक्षपात के सम्बन्ध में डॉ हरमन फाइनर का विचार है कि पक्षपात तो था किन्तु यह भर्ती की अपेक्षा पदोन्नति में अधिक था।[2]

तृतीय गणतन्त्र के अधीन फ्रांस की लोकसेवा के प्रबन्ध में मुख्यतः ये अच्छाइयाँ थीं—(i) इसमें प्रत्याशी को उसी विभाग के लिए लिया जाता था जिसमें वह सेवा करना चाहता था, (ii) इसमें आधुनिक राज्य की गतिविधियों की

1 *Dr. Herman Finer*, op cit., p. 814

2 "There was favouritism but more in promotions than in recruitment"
—*Dr. Herman Finer*: op cit., p 817.

आर्थिक तथा सामाजिक पृष्ठभूमि के अध्ययन पर जोर दिया जाता था, (iii) इसमे विभाग के सभी सदस्यो तथा पदसोपान के विभिन्न स्तरो का आमना-सामना करा दिया जाता था, ताकि लोकसेवा मे अधिक सहयोग एवं कार्यकुशलता स्थापित की जा सके। इन लाभो के अतिरिक्त इस व्यवस्था मे कुछ हानिकारक क्षमताएँ भी थी—(i) प्रत्याशियों के साथ विभागाध्यक्ष का व्यक्तिगत सम्पर्क रहने के कारण पक्षपात की आशका रहती थी, (ii) अपेक्षित विशेष ज्ञान प्राय सकीर्ण तथा ऊपरी हो सकता था। तत्कालीन लोकसेवा की अनेक बुराइयाँ सामान्यत स्वीकृत एव निन्दा की पात्र थी किन्तु फिर भी मन्त्रिमण्डल की अस्थिरता एव भावात्मक सामाजिक सघर्षों के परिणामस्वरूप इनको सुधारा नही जा सका। तत्कालीन लोकसेवा की व्यावहारिक स्थिति के सम्बन्ध मे कुछ मुख्य बातें निम्नलिखित हैं—

(i) विभिन्न विभागीय सेवाएँ न केवल उनके कार्यों के कारण ही विशेषीकृत थी वरन् अपनी शैक्षणिक तैयारी के कारण भी वे विशेषज्ञतापूर्ण थी।

(ii) परिवीक्षा एव सीखने का कार्य वास्तविक न होकर औपचारिक मात्र था। प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण के लिए कोई प्रयास नही किया जाता था। अनुपयुक्तता के आधार पर कदाचित ही किसी प्रविष्ठ कर्मचारी को निकाला जाता था।

(iii) लोकसेवाओ मे भर्ती होने वाले प्रत्याशी जिन विद्यालयो मे तैयार किए जाते थे उनकी शिक्षा का स्तर विश्व मे सबसे ऊँचा था।

(iv) विभिन्न विभागो तथा ब्यूरोज मे स्वायत्तता की भावना का जन्म हुआ जिसके परिणामस्वरूप उनके बीच असहयोग तथा विरोधपूर्ण सम्बन्धो का विकास हुआ।

(v) सेवाओं का वर्गीकरण स्पष्ट तथा व्यापक नही था। प्रशासनिक श्रेणी तथा निष्पादक श्रेणी के बीच कार्यों का स्पष्ट विभाजन न होने के कारण पर्याप्त भ्रमपूर्ण स्थिति थी। एक पदाधिकारी द्वारा अलग अलग विभागो मे अलग-अलग कार्य सम्पन्न किए जाते थे।

(vi) विभिन्न विभागो मे आजीवन सेवा की सम्भावनाओ से पूर्ण कोई सामान्य श्रेणी नही थी। इसके फलस्वरूप कुछ विभागो ने तो अनावश्यक प्रतिभाशाली लोगो को आकर्षित किया जबकि अन्य विभागो के अनेक पद रिक्त ही पड़े रहे।

(vii) पदोन्नति की दृष्टि से प्रत्येक कर्मचारी को उच्चतर पद तक पहुँचने का कानूनी अधिकार था। तुलनात्मक योग्यता का विशेष ध्यान नहीं रखा जाता था। किसी कर्मचारी को पदोन्नत करना है इस कारण आवश्यकता न रहते हुए भी नए पद सृजित कर दिए जाते थे।

(viii) उच्च अधिकारी असगठित एव सिद्धान्तवादी होने के कारण समन्वयपूर्ण नही थे तथा सार्वजनिक हित के लिए अपनाई गई राष्ट्रीय नीति के लक्ष्यो को प्राप्त करने के लिए कदम से कदम नही मिलाते थे।

(ix) गृह मन्त्रालय, राजकोष, शिक्षा मन्त्रालय एव कौंसिल डी एटा आदि केन्द्रीय मन्त्रालयों द्वारा फ्रांस की समस्त स्थानीय सरकार की इकाइयों मे एकरूपता एव एकीकरण लाने का प्रयास किया जाता था।

लोक सेवाओ मे युद्धोत्तर सुधार (Post war Reforms in Public Services)—द्वितीय विश्व-युद्ध से पूर्व फ्रांस म लोकसेवाओ की कोई एक सामान्य आचार-सहिता नही थी। 19वी शताब्दी मे कुछ कॉर्प्स मे सेवा की शर्तों का नियमन किया गया था। तृतीय गणतन्त्र के समय भी लोकसेवाओ की कतिपय समस्याओं के समाधान के लिए प्रयास हुए। 1905 मे लोकसेवाओं मे अनुशासन की समस्या तथा 1923 और 1924 मे पेंशन की समस्या पर विचार किया गया। ससद ने अभी तक कोई सामान्य आचार-सहिता नही बनाई थी। कर्मचारियो की सेवा की शर्तों को स्वय प्रशासन अथवा विभागो द्वारा नियन्त्रित किया जाता था। प्रशासन की स्वेच्छाचारी शक्तियो को नियन्त्रित करने मे कौसिल डी एटा द्वारा भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई गई थी।

लोकसेवा सम्बन्धी नियमों का पहला सहिताकरण विची (Vichy) सरकार द्वारा 1941 मे किया गया, किन्तु यह बाद मे रद्द कर दिया गया। इसके स्थान पर एक नया प्रारूप बनाया गया। 1946 मे ससद् ने 'Staut General des Functionnaires' स्वीकार किया, जो लोकसेवा के लिए अधिकार-पत्र माना जाता है। नए सविधान ने सरकार को सहिता के नियमन की शक्ति प्रदान की थी। तदनुसार सरकार ने 1959 मे एक अध्यादेश जारी किया तथा 1946 की सहिता मे से कुछ विस्तृत विनियमो को हटा दिया गया। अब फ्रांस की लोकसेवा मुख्यत कानूनो द्वारा नियमित है।

नई सविधि के बन जाने के बाद भी लोकसेवा की कोई व्यापक तथा स्पष्ट परिभाषा नही की गई है। 1946 का कानून इसकी कोई स्पष्ट परिभाषा नही देता। *इसके द्वारा दी गई परिभाषा पर्याप्त अस्पष्ट है।* इसमे सरकारी उद्यमो के कर्मचारियों को लोकसेवा के स्तर से बाहर रखा गया है। अधिनियम की प्रथम धारा मे ही औद्योगिक तथा व्यापारिक निगमो के बीच अन्तर बताया गया है किन्तु यह अन्तर क्या है इसे स्पष्ट नही किया गया है।

एकरूपता के प्रयास (Measures of Unification)—द्वितीय विश्व-युद्ध से पूर्व फ्रांस की लोकसेवा एकरूप (Unified) नहीं थी। अनेक बार तो वास्तविक कार्यकर्ता इकाई विभाग नही वरन् कॉर्प्स होती थी। इनमे से कुछ कॉर्प्स पर्याप्त प्रतिष्ठित थे। उन्हें अपने सगठन तथा प्रबन्ध की दृष्टि से बहुत कुछ स्वायत्तता प्राप्त थी। युद्ध के तुरन्त बाद यहाँ ब्रिटिश मॉडल पर अधिक एकता प्राप्त करने के लिए तीन सुधार किए गए। प्रथम, 1945 मे एक लोकसेवा सम्भाग (Public Service Division) बनाया गया तथा इसे सीधा प्रधान मन्त्री के अधीन रखा गया। प्रधान मन्त्री को इसके कार्यों का पर्यवेक्षण करने का दायित्व सौंपा गया।

द्वितीय, 1945 मे ही एक प्रशासनिक विद्यालय (The Ecole Nationale d' Administration) की स्थापना की गई। इस सुधार का लक्ष्य गैर-तकनीकी उच्च लोक सेवकों की भर्ती मे एकरूपता लाना था। यह स्कूल केवल प्रशासनिक वर्ग के लोकसेवकों की नियुक्ति करता है। निष्पादकीय एव लिपिक-स्तरीय कर्मचारियों की नियुक्तियाँ अभी भी विभागो के हाथो मे छोड दी गई हैं। यह स्कूल लोकसेवकों की भर्ती के साथ-साथ प्रशिक्षण का कार्य भी सम्पन्न करता है। तृतीय, 1946 के कानून द्वारा सेवा की सरचना को भी सुधारा गया है। तदनुसार सरकारी विभागो की सभी तकनीकी और गैर-तकनीकी लोकसेवाओं को A, B, C, D—चार भागो मे विभाजित किया गया है। इनकी तुलना ग्रेट ब्रिटेन के प्रशासकीय, निष्पादकीय, लिपिकीय तथा टकणकर्त्ता वर्गों से की जा सकती है।

' उक्त तीनो ही सुधार महत्त्वपूर्ण थे किन्तु विभागो की परम्पराओं तथा ग्राण्ड कॉर्प्स की प्रतिष्ठा ने वास्तविक एकता को यथार्थ बनाने की अपेक्षा आशा ही बना कर छोड दिया।

सेवीवर्ग प्रशासन की प्रकृति

(Nature of Personnel Administration)

प्रशासनिक कार्यों का आज अधिकाधिक विस्तार होता जा रहा है। फलस्वरूप कर्मचारियो की सख्या मे लगातार वृद्धि हो रही है तथा सरकार (केन्द्रीय, राज्य एव स्थानीय सरकार सयुक्त रूप मे) सबसे बडी नियोक्ता (Employer) बन गई है। हम सभी पार्किन्सन के नियम (Parkinson's Law) या 'नौकरशाही के उठते हुए पिरामिड' से परिचित है। पार्किन्सन-अनुसन्धानो ने प्रतिवर्ष 5 75 प्रतिशत औसत वृद्धि का उल्लेख किया है।[1] विभिन्न देशो की लोकसेवा मे वृद्धि से सम्बन्धित आंकडे इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं। सयुक्तराज्य अमेरिका मे 1817 मे सघीय कर्मचारियो की सख्या 6,500 से अधिक नही थी जबकि 1857 मे, जब राष्ट्रपति आइजनहावर ने दूसरी बार राष्ट्रपति पद की शपथ ली, सघीय कर्मचारियों की सख्या बढकर 23 लाख तक पहुंच गई थी। भारत मे, द्वितीय वेतन आयोग के अनुसार केन्द्रीय कर्मचारियो की सख्या 1 अप्रेल, 1948 को 14,45,050 थी जो बढकर 30 जून, 1957 तक 17,73,570 हो गई। मार्च, 1970 मे यह सख्या बढकर 28 लाख तक पहुंच गई थी। तृतीय वेतन आयोग (1970–73) के अनुसार केन्द्रीय सरकार मे कर्मचारियो की सख्या 1971 मे 29·82 लाख हो गई थी, इनमे प्रथम श्रेणी के कर्मचारियो की सख्या 0·34 लाख, द्वितीय श्रेणी की 0 46 लाख, तृतीय श्रेणी की 15 45 लाख, चतुर्थ श्रेणी की 13 37 लाख और अवर्गीकृत कर्मचारियो की सख्या 0 20 लाख थी। इन 29 82 लाख कर्मचारियो मे 25 प्रतिशत प्रशासकीय, प्राविधिक, व्यावसायिक, कार्यपालक और लिपिक वर्ग के कर्मचारी थे तथा शेष 75 प्रतिशत मे उत्पादन श्रमिक और अदक्ष कर्मचारी थे। अब तक तो केन्द्रीय कर्मचारियो की सख्या अनुमानत: 34 लाख तक जा पहुंची है। राज्य सरकारो मे सेवारत लोकसेवकों की सख्या तो और भी विशाल है। जो सेवीवर्ग या कार्मिक वर्ग इतनी बडी सख्या मे कार्यरत है, उसकी प्रत्येक बात महत्त्वपूर्ण है और इसीलिए हरमन फाइनर के अनुसार, "लोक प्रशासन मे सेवीवर्ग

1 *Parkinson, C N* · Parkinson's Law, p 14

को ही सर्वोच्च तत्त्व माना जाता है।" इसीलिए जब हम सेवीवर्ग प्रशासन की चर्चा करते हैं तो हमारा ध्यान कर्मचारियों की भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, वर्गीकरण, अनुशासन, मनोबल आदि कितनी ही बातों पर जाता है।

सेवीवर्ग प्रशासन का अर्थ
(The Meaning of Personnel Administration)

मार्शल ई डिमाक की मान्यता है कि सेवीवर्ग प्रशासन ऐसी प्रशासनिक प्रक्रियाएँ हैं जिनके द्वारा कर्मचारियों की नियुक्ति एवं रोजगार सम्बन्धों का नियमन तथा परिवर्तन किया जाता है।[1] एडविन फ्लिप्पो के मतानुसार सेवीवर्ग प्रबन्ध कार्य करने वाले लोगों की कार्य-सम्पन्नता को नियोजित, सगठित, निर्देशित एवं नियन्त्रित करना है।[2] सेवीवर्ग प्रशासन का सम्बन्ध सगठन के कार्यकर्त्ताओं के बीच हार्दिक सहयोग की स्थापना हो तथा सगठन को लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में आगे बढ़ाए। 'लोकसेवा' शब्द का प्रचलित अर्थ राज्य की प्रशासकीय सेवा की असैनिक शाखाएँ हैं। सामान्यत लोकसेवा में राजनीतिक एवं न्यायिक पद तथा सरकार के लिए अवैतनिक रूप में कार्य करने वाले और सार्वजनिक राजस्व से वेतन प्राप्त करने वाले अधिकारियों को सम्मिलित नहीं किया जाता। अत लोकसेवा, हरमन फाइनर के शब्दों में 'अधिकारियों का एक ऐसा पेशेवर निकाय है जो स्थाई वेतन भोगी तथा कार्यकुशल या दक्ष होता है।" हाल ही में लोकसेवा में एक नया प्रवर्ग-औद्योगिक कर्मचारी-जोड़ा गया है और सार्वजनिक उपक्रमों के विस्तार के साथ-साथ औद्योगिक कर्मचारियों की संख्या बढ़ती जा रही है।

सगठन में मानवीय तत्त्व की दृष्टि से दो बातें आवश्यक हैं—प्रथम, सगठन में कुशल तथा अनुभवी कार्यकर्त्ता नियुक्त किए जाएँ और दूसरे, उन्हें कार्य की सन्तोषजनक शर्तें प्रदान की जाएँ। ये दोनों समस्याएँ सेवीवर्ग प्रशासन का विषय हैं। कर्मचारियों की कार्यकुशलता की दृष्टि से इन बातों का ध्यान रखा जाता है—कर्मचारियों की वैज्ञानिक तरीके से भर्ती, कार्य का समुचित प्रशिक्षण, कार्यकर्त्ताओं की रुचि, योग्यता एवं कार्यक्षमता के अनुरूप ही काम सौंपना, वेतन भुगतान की वैज्ञानिक पद्धति, उनके कल्याण हेतु की गई समुचित व्यवस्था और उनके अधिकतम सन्तोष के लिए आवश्यक कार्यवाही, प्रभावशाली जनसम्पर्क की व्यवस्था तथा सेवीवर्गीय कार्यक्रमों की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करते हुए आवश्यक अनुसन्धान को प्रोत्साहित करना आदि।

सेवीवर्ग प्रशासन के मूल तत्त्व
(Basic Elements)

सेवीवर्ग प्रशासन के मूल तत्त्वों में हम उन सभी कार्यों को शामिल करते हैं जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सगठन की कार्यकुशलता एवं सार्थकता को प्रभावित करते हैं। इनमें से उल्लेखनीय निम्नांकित हैं—

1 *Dimock & Others* op cit., p 277
2 *Edwin B Flippo* Principles of Personnel Management, p. 4

(ii) सही स्थान पर सही व्यक्ति रखना (To keep right man at right place)—सेवीवर्ग प्रशासन द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि जो कर्मचारी जिस कार्य को करने के लिए उपयुक्त है उसे उसी कार्य में लगाया जाए। जहाँ एक डॉक्टर की आवश्यकता हो वहाँ इन्जीनियर को नियुक्त नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार जो कर्मचारी क्षेत्रीय कार्यालयों में अच्छा कार्य करने में सक्षम हो उसे मुख्य कार्यालय में रख दिया गया तो वह घुटन का अनुभव करेगा। इसके विपरीत होने पर भी वह असुविधा अनुभव करेगा। सेवीवर्ग प्रशासन ऐसी नीतियों का अनुशीलन करता है ताकि प्रत्येक कर्मचारी अपनी रुचि एवं योग्यता के अनुकूल पद प्राप्त कर सके।

(iii) योग्य तथा कुशल कर्मचारी (Qualified and Efficient Personnel)—सेवीवर्ग प्रशासन द्वारा निरन्तर यह प्रयास किया जाता है कि विभिन्न प्रशासनिक पदों पर योग्य कर्मचारी कार्य करें। इस हेतु भर्ती की वैज्ञानिक विधियाँ अपनाई जाती हैं। नियुक्ति से पूर्व प्रत्याशियों की योग्यता एवं क्षमता को वस्तुगत रूप से मापने की चेष्टा की जाती है, उनके प्रवेश-पूर्व तथा प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण का प्रबन्ध किया जाता है। यदि इतने पर भी कोई अयोग्य तथा अक्षम कर्मचारी भर्ती हो जाए तो उसे पदमुक्त करने की व्यवस्था की जाती है। इसके अतिरिक्त विभिन्न पदाधिकारियों की अपेक्षित योग्यताओं का समय-समय पर मूल्यांकन किया जाता है। वर्तमान भारत में सेवीवर्ग प्रशासन योग्यता पर विशेष ध्यान देता है। बहुत समय कार्यरत होने पर भी अयोग्य तथा अक्षम कर्मचारियों को अनिवार्य सेवा-निवृत्ति दे दी जाती है जबकि योग्य कर्मचारी अपेक्षाकृत नए होने पर भी पदोन्नत कर दिए जाते हैं।

(iv) सेवा की सन्तोषजनक शर्तें (Satisfactory Working Conditions)—सेवीवर्ग प्रशासन द्वारा सभी लोक-सेवकों के लिए कार्य की उपयुक्त शर्तों की व्यवस्था की जाती है ताकि वे सन्तोष का अनुभव करते हुए अपने पद के दायित्वों को पूरा कर सकें। उन्हें पर्याप्त वेतन, कार्य के उपयुक्त घण्टे, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सुविधाएँ आकस्मिक सकट के समय सहायता, पदोन्नति की समुचित व्यवस्था तथा सेवानिवृत्ति का समुचित प्रबन्ध किया जाता है। इन प्रयासों के माध्यम से प्रत्येक कर्मचारी की योग्यता और क्षमता का मगठन के लिए पूरा लाभ प्राप्त करने की चेष्टा की जाती है।

(v) अच्छे कार्य के लिए प्रोत्साहन (Encouragement for Good Work)—सेवीवर्ग प्रशासन का एक उद्देश्य अच्छे कार्य की प्रशसा करके उसे प्रोत्साहित करना है ताकि सम्बन्धित कर्मचारी सन्तोष अनुभव करें तथा अन्य कर्मचारियों को अच्छे कार्य की प्रेरणा प्राप्त हो सके। इस उद्देश्य से कर्मचारियों के कार्यों पर एक सजग दृष्टि रखी जाती है, सामयिक रूप से उनके कार्यों का मूल्यांकन किया जाता है और विशेष योग्य तथा कार्यकुशल पाए जाने वाले कर्मचारियों को अतिरिक्त वेतन वृद्धि, पदोन्नति, विशेष सम्मान तथा कार्यकुशलता के प्रमाण-पत्र आदि के रूप में पुरस्कृत किया जाता है।

(vi) **अनुशासन की स्थापना (To Maintain Discipline)**—प्रशासनिक सगठन के कर्मचारियो मे पर्याप्त अनुशासन का होना वांछनीय है । इसके बिना कोई कर्मचारी अपने अपेक्षित कार्यों को सम्पन्न नही करेगा तथा सगठन अपने लक्ष्यो की प्राप्ति मे असफल हो जाएगा । अत. सेवीवर्ग प्रशासन द्वारा यह व्यवस्था की जाती है कि प्रत्येक कर्मचारी अनुशासित रह कर अपना दायित्व पूरा करता रहे तथा दूसरा के कार्यों मे अनावश्यक रूप से दखलन्दाजी न करे, सगठन के लक्ष्यो के विरुद्ध कोई कार्य न करे तथा साथी कर्मचारियो के साथ वांछनीय मानव-सम्बन्ध बनाए रखे । यदि कोई कर्मचारी इन अपेक्षाओ की अवहेलना करके सगठन के अनुशासन को तोडता है तो सेवीवर्ग प्रशासन उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करेगा और उसके लिए यथोचित दण्ड की व्यवस्था करेगा । यह दण्ड व्यवस्था प्रतिरोधात्मक और सुधारात्मक दोनो प्रकार की होती है ।

(vii) **जन-सन्तोष एव जनहित की उपलब्धि (To Achieve People's Satisfaction and Public Interest)**—सेवीवर्ग प्रशासन जनहित की उपलब्धि के लिए उन साधनो तथा मार्गों का अनुगमन करता है जो उस देश की सरकार द्वारा निर्धारित किए गए हैं । यह ऐसा वातावरण प्रस्तुत करता है जिसमे सभी सरकारी कर्मचारी जनहित के कार्यों मे लगे रहें तथा अपने आचरण से जन-असन्तोष पैदा न होने दें । यहाँ इन कर्मचारियो को सदैव इस बात का ध्यान रखना होगा कि केवल अच्छे व्यक्ति या कार्यकर्त्ता होना ही पर्याप्त नही है अपितु दूसरो को अच्छा लगना भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है । प्रजातान्त्रिक शासन-प्रणाली मे वांछनीय जन-सहयोग तभी प्राप्त हो सकता है जबकि जनता प्रशासनिक कार्यों के प्रति सन्तोष का अनुभव करती हो ।

(viii) **उत्तरदायित्व की भावना (Responsiveness)**—जनतान्त्रिक प्रशासन 'जन-सेवक' की भूमिका निभाता है और इसलिए वह ऐसे कार्य करता है ताकि जनता के प्रति उत्तरदायित्व की भावना स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हो सके । इसके लिए सेवीवर्ग प्रशासन द्वारा समुचित व्यवस्था की जाती है । भर्ती के समय यह ध्यान रखा जाता है कि जन सेवा की ओर उन्मुख प्रत्याशियो का चयन किया जाए । जो कर्मचारी अनुत्तरदायी रूप मे अपनी शक्तियो का उपयोग करता है उसके विरुद्ध कार्यवाही करने की व्यवस्था की जाती है । कर्मचारी की आचरण सहिता मे उन बातो का उल्लेख किया जाता है जो कर्मचारी को उत्तरदायित्वपूर्ण आचरण के लिए प्रेरित कर सकें । देश की व्यवस्थापिका एव न्यायपालिका द्वारा लोक सेवको के कार्यों पर समुचित नियन्त्रण रखा जाता है ।

(ix) **गतिशील एव परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल सामजस्य की क्षमता (Capacity to Adjust According to Dynamic and Changing Conditions)**—एक नदी की धारा की भाँति प्रत्येक देश की परिस्थितियाँ बदलती रहती है तथा उन बदली हुई परिस्थितियो के साथ ही प्रशासन के दायित्वो तथा चुनौतियो मे भी अन्तर आ जाता है । सेवीवर्ग प्रशासन इस तथ्य के प्रति सजग रह कर ऐसी व्यवस्था

करता है ताकि बदली हुई परिस्थितियों का सामना करने मे प्रशासनिक सगठन सक्षम रह सके तथा असामयिक न बन जाए। भारत मे सेवीवर्ग प्रशासन का स्वरूप स्वतन्त्रता से पूर्व, स्वतन्त्रता के बाद तथा आपात्‌काल की घोषणा से पूर्व आपात्‌काल की घोषणा के बाद यदि तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो ज्ञात होगा कि इसके मूल्यों, प्रक्रियाओं तथा दृष्टिकोणों मे गम्भीर परिवर्तन आए हैं।

(x) सगठन के सिद्धान्तो का अनुशीलन (**To Adopt the Principles of Organisation**)—सेवीवर्ग प्रशासन द्वारा सगठन के आधारभूत सिद्धान्त, जैसे—पदसोपान, आदेश की एकता, नियन्त्रण का क्षेत्र, सचार व्यवस्था, प्रत्यायोजन आदि का समुचित ध्यान रखा जाता है और इन सिद्धान्तो के समुचित निर्वाह की दृष्टि से ही विभिन्न नीतियाँ अपनाई जाती हैं।

(xi) कुछ अन्य उद्देश्य (**Some Other Objects**)—सेवीवर्ग प्रशासन अपने उपरोक्त प्रमुख उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए जो तौर-तरीके अपनाता है वे उसके तात्कालिक लक्ष्य बन जाते हैं। इनमे से कुछ उल्लेखनीय ये हैं—सगठन के लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए मानवीय साधनो का प्रभावशाली उपयोग, सन्तोषजनक सगठनात्मक सरचना की स्थापना एव अनुरक्षण, प्रशासनिक सगठन के साथ गैर-सरकारी तथा अनौपचारिक समूहों का एकीकरण, कर्मचारियो मे सगठन के मूल लक्ष्यो के प्रति रुचि, अपनत्व एव स्वामिभक्ति जाग्रत करना, सगठन म उच्च मनोबल का अनुरक्षण तथा मानवीय साधन स्रोतो का निरन्तर मूल्यांकन आदि।

स्वस्थ सेवीवर्ग नीति के लक्षण
(Characteristics of a Healthy Personnel Policy)

मैक्स वेबर के मतानुसार एक स्वस्थ सेवीवर्ग नीति वह होती है जिसमे सभी कर्मचारियो के कर्त्तव्य निर्धारित कर दिए जाएँ, इन कर्त्तव्यो की पूर्ति के लिए उन्हे पर्याप्त सत्ता सौंपी जाए तथा कार्य की एक उचित पद्धति एव व्यवस्था निर्धारित की जाए। उपयुक्त सेवीवर्ग नीति प्रत्येक सगठन की एक वांछनीय विशेषता है। सरकारी सगठनो मे इसकी उपयोगिता एव प्रभाव कुछ अधिक होता है। इसकी सहायता से एक देश के प्रशासन को सार्थक, उपयोगी, कार्यकुशल, प्रभावशाली, मितव्ययी तथा उत्तरदायी बनाया जा सकता है। सेवीवर्ग नीति के सम्बन्ध मे कोई सामान्यीकरण नहीं किए जा सकते। यदि एक सेवीवर्ग नीति किसी देश विशेष मे सफल तथा प्रभावशाली सिद्ध होती है तो आवश्यक नहीं है कि अन्य देशो मे भी वह उतनी ही प्रभावशाली प्रमाणित होगी। प्रत्येक देश की परिस्थितियाँ वातावरण, समस्याएँ तथा अपेक्षाएँ भिन्न होती हैं। इनको ध्यान मे रखकर ही सेवीवर्ग नीति निर्धारित की जानी चाहिए।

प्रत्येक देश की सेवीवर्ग नीति की उपयुक्तता वहाँ की इकॉलाजी के सन्दर्भ मे ही जानी जा सकती है। यही कारण है कि इकॉलाजी भिन्न होने के कारण प्रत्येक देश मे लोकसेवको की भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, वेतन व्यवस्था, सेवानिवृत्ति, अनुशासन आदि के लिए भिन्न व्यवस्थाएँ की जाती हैं। एक देश के लिए स्वस्थ

सेवीवर्ग नीति अपनाते समय मुख्यतः इन बातो का ध्यान रखना चाहिए—संगठन में कार्य करने वाले व्यक्ति कौनसे हैं, इन व्यक्तियों की समस्याएँ क्या हैं, ये लोग किस अभिप्रेरणा से कार्य करते हैं, इन व्यक्तियों को ईमानदार तथा कार्यकुशल कैसे बनाया जा सकता है, ये लोग राजनीतिज्ञ होने चाहिए अथवा नहीं, इनको हड़ताल करने का अधिकार दिया जाए अथवा नहीं, आदि। इन सभी का समुचित ध्यान रखने के बाद जो नीति अपनाई जाती है वह संगठन के कर्मचारियों के लिए अधिकतम सन्तोषजनक तथा संगठन के लक्ष्यों की दृष्टि से अधिकतम सार्थक हो सकेगी। लोक प्रशासन के विद्वानों ने स्वस्थ सेवीवर्ग नीति के आवश्यक लक्षणों के बारे में चिन्तन करने के बाद मुख्यतः निम्नलिखित को महत्त्वपूर्ण माना है—

(i) यह नीति संगठन के लक्ष्य तथा उद्देश्यों की दृष्टि से उपयोगी एवं सार्थक होनी चाहिए।

(ii) यह नीति गत्यात्मक होनी चाहिए ताकि समय की परिस्थितियों एवं नई चुनौतियों के साथ स्वयं को ढाल सके। इसमें सेवीवर्ग के सभी सदस्य उत्साही हों तथा वे नवाचार के लिए सदैव तत्पर रहें।

(iii) इसमें कर्मचारियों की भर्ती का आधार प्रत्याशियों की सापेक्षिक योग्यता होनी चाहिए तथा यह लूट प्रणाली से प्रभावित नहीं होनी चाहिए।

(iv) इसमें आजीवन सेवाओं की व्यवस्था की जाती है। संगठन के सभी कर्मचारियों को भविष्य के प्रति आशाएँ रहती हैं तथा पदोन्नति के पर्याप्त अवसर प्रदान किए जाते हैं।

(v) एक स्वस्थ सेवीवर्ग नीति के लिए स्पष्ट पदसोपान की व्यवस्था की जानी चाहिए। सभी कर्मचारियों को उनके कर्त्तव्य तथा दायित्व बता दिए जाने चाहिए तथा प्रत्येक का उसके उच्च अधिकारी तथा अधीनस्थ अधिकारियों के साथ सम्बन्ध स्पष्ट कर देना चाहिए।

(vi) स्वस्थ सेवीवर्ग नीति कर्मचारियों को राजनीतिक गतिविधियों से अलग रखने का प्रयास करती है। यह राजनीतिक तटस्थता इसलिए वांछनीय है क्योंकि राजनीतिक दल सत्ता में आते और जाते रहते हैं किन्तु लोकसेवकों को इन परिवर्तनों से अप्रभावित रह कर तटस्थ भाव से अपना कार्य करते रहना चाहिए।

(vii) ऐसी सेवीवर्ग नीति में कर्मचारी अनाम रहकर कार्य करते हैं। उनके द्वारा सम्पन्न की जाने वाली सेवाओं में कर्त्ता का भाव नहीं रहता वरन् सेवक का भाव रहता है। कर्त्ता के रूप में नाम राजनीतिज्ञ का होता है।

(viii) स्वस्थ सेवीवर्ग नीति कर्मचारियों में ऐसे मूल्य स्थापित करती है ताकि वे विभिन्न व्यक्तियों के साथ एक जैसा व्यवहार कर सकें तथा किसी के भी साथ भेदभावपूर्ण नीति न अपनाएँ।

सेवीवर्ग प्रशासन सम्बन्धी नीति
(Policy Relating to Personnel Administration)

सेवीवर्ग के सम्बन्ध मे अपनाई जाने वाली नीति ही बहुत कुछ इस बात का निर्धारण करती है कि सगठन को अपने लक्ष्य की प्राप्ति मे कितनी सफलता मिलेगी। स्वस्थ सेवीवर्ग सम्बन्धी नीति की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित होती हैं—

प्रथम, यह नीति कुछ लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए निर्धारित की जाती है, अत. इसकी सार्थकता भी इस बात पर निर्भर है कि यह लक्ष्यो को प्राप्त करने मे कितनी सफल रही।

दूसरे, यह नीति पर्याप्त गत्यात्मक होती है। इसके सदस्य उत्साही एव नए वर्ग बनाने के उत्सुक होते हैं।

तीसरे, यह नौकरशाहीपूर्ण नहीं होती।

चौथे, इसमे योग्यता व्यवस्था को अपनाया जाता है। लूट प्रणाली (Spoils System) को इसमे स्थान नही दिया जाता।

पाँचवें, ये सेवाएँ आजीवन होती हैं और सेवाकाल मे आशाओ तथा पदोन्नति के अवसरो की पर्याप्त मात्रा रहती है।

छठे, एक अच्छी सेवीवर्ग नीति पदसोपान की उपयुक्त व्यवस्था करती है।

सातवें, यह तटस्थ होती है अर्थात् यह राजनीतिक गतिविधियो से अप्रभावित रहकर कार्य करती है। राजनीतिक दल आते और जाते हैं, सरकारें बदली रहती हैं, किन्तु सेवीवर्ग तटस्थ (Neutral) भाव से अपना कार्य सम्पादित करता रहता है।

आठवें, इसके कार्यों में अनामता (Anonymity) होती है। जो भी कार्य सम्पन्न किए जाते हैं वे स्वय के नाम से नही, बल्कि किसी और के नाम से किए जाते हैं।

नवें, यह नीति सेवीवर्ग के कार्यों मे निष्पक्षता को प्रोत्साहन देती है। स्वस्थ लोक-प्रशासन वही है जिसम सभी के साथ एक जैसा व्यवहार किया जाए, किसी के साथ पक्षपात न हो।

मैक्स वेबर (Max Weber) ने लिखा है कि "एक स्वस्थ सेवीवर्ग सम्बन्धी नीति वह है जिसमे सभी कर्मचारियो के कर्त्तव्य निर्धारित कर दिए जाएँ, उन्हे पूरा करने के लिए कर्मचारियो को पर्याप्त सत्ता दी जाए तथा कार्य-सम्पन्नता व्यवस्थित और प्रणालीबद्ध हो।"

वास्तव मे सेवीवर्ग अथवा कार्मिक-प्रशासन के लिए स्वस्थ नीति की दिशा से किसी भी सरकार की निम्नलिखित चार सरकारी एजेंसियो का विशेष उत्तरदायित्व होता है—(1) विधान-मण्डल, (2) प्रमुख कार्यपालक, (3) सेवीवर्ग अथवा कार्मिक विभाग, एव (4) सरकारी विभाग जहाँ कर्मचारी काम करता है।

विधान-मण्डल का दायित्व सेवीवर्ग प्रशासन सम्बन्धी आधारभूत नीतियाँ निर्धारित करना है। भारत मे सविधान मे ही कुछ आधारभूत तथ्य सम्मिलित कर दिए गए हैं। उदाहरणार्थ, लोकसेवा आयोग, उसके सदस्यो तथा अध्यक्ष की नियुक्ति,

आयोग के कर्त्तव्य आदि का संविधान में उल्लेख कर दिया गया है। संविधान में लोकसेवा के सदस्यों के लिए कुछ नियमों का भी प्रावधान है। प्रमुख कार्यपाल का दायित्व नियमों को उचित रूप से क्रियान्वित कराना है। वह विधान-मण्डल को सिफारिश भी कर सकता है कि परिस्थितियों और आवश्यकता की दृष्टि से नई नीतियाँ निर्धारित की जाएँ अथवा वर्तमान नीतियों में परिवर्तन किया जाए। भारत में लोकसेवा आयोग के सदस्यों तथा चेयरमैन की नियुक्ति और सेवीवर्ग या कार्मिक विभाग (Personnel Department) के उच्च अधिकारियों की नियुक्ति मुख्य कार्यपाल द्वारा ही की जाती है। सेवीवर्ग से सम्बन्धित नियुक्ति पदोन्नति, सेवा की शर्तें आदि आदेश मुख्य कार्यपाल द्वारा ही प्रचलित किए जाते हैं। यद्यपि सेवीवर्ग प्रशासन का उत्तरदायित्व मुख्य कार्यपाल पर है, तथापि व्यवहार में जिम्मेदारी कार्मिक या सेवीवर्ग विभाग (Personnel Department) की होती है। भारत में जहाँ सेवीवर्ग-विभाग नहीं होता वहाँ गृह-विभाग, नियुक्ति-विभाग आदि इन उत्तरदायित्वों को निभाते हैं। सेवीवर्ग-विभाग सामान्यतः कर्मचारी-वर्ग की सभी समस्याओं, जैसे—भर्ती, चुनाव, प्रशिक्षण, वेतनमान आदि के लिए उत्तरदायी होते हैं। भारत में सेवीवर्ग या कार्मिक समस्याओं के लिए नियुक्ति एवं गृह-विभाग उत्तरदायी है। अन्त में, सरकारी विभाग में सेवीवर्ग प्रशासन का उत्तरदायित्व विभागाध्यक्ष (Head of the Deptt.) पर होता है। वह संस्थापन अधिकारी (Establishment Officer) की सहायता से अपने कार्यों का निर्वहन करता है।

उपर्युक्त चारों सरकारी एजेंसियों के कुशल उत्तरदायित्व पर ही स्वस्थ कार्मिक या सेवीवर्ग प्रशासन की नींव निर्भर है। विशेषतः किसी भी कार्य को सम्पन्न करने के लिए मशीन, धन, जन और प्रणाली की आवश्यकता होती है और इनमें मशीन, जनशक्ति का धन तथा प्रणाली से अधिक महत्त्व है। लोक प्रशासन के व्यवहारवादी सम्प्रदाय के संगठन ने व्यक्ति के महत्त्व को विशेष रूप से प्रकट किया है।

यह भी ध्यान में रखने योग्य बात है कि सेवीवर्ग का व्यवहार अनेक तत्त्वों से प्रभावित होता है, अतः वांछनीय तत्त्वों को प्रोत्साहन देना तथा अवांछनीय तत्त्वों को हतोत्साहित करना लोक-प्रशासन के व्यवहार का बड़ा महत्त्वपूर्ण अंग है। सामाजिक व्यवस्था, राजनीतिक ढाँचे, रोजगार की आवश्यकताएँ, शैक्षणिक व्यवस्था, ऐतिहासिक परम्पराएँ, आदि का सेवीवर्ग की स्थिति पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है।

सेवीवर्ग प्रशासन से सम्बन्धित कुछ समस्याएँ
(Personnel Administration : Some Problems)

सेवीवर्ग अथवा कार्मिक प्रशासन से सम्बन्धित समस्याओं को भारत जैसे विकासशील देश के सन्दर्भ में समझना अधिक उपयोगी होगा। भारत में सेवीवर्ग आज अपनी स्थिति से प्रसन्न नहीं है। सबसे बड़ी समस्या आर्थिक है। सेवीवर्ग को सरकार की निष्पक्षता में विश्वास नहीं रह गया है। भारतीय न्यायालयों में कर्मचारी

वर्ग द्वारा भारी संख्या में दायर किए जाने वाले मुकदमे इस बात के प्रमाण हैं कि कर्मचारी वर्ग के मन में कुछ ऐसी धारणा बैठ गई है कि सरकार उनके साथ न्यायोचित व्यवहार नहीं कर रही है। प्रजातन्त्र शासन में यह सम्भव नहीं है कि असन्तुष्ट कर्मचारियों को बल-प्रयोग द्वारा मनचाहे रास्ते पर लाया जाए। डण्डे का जोर अधिनायकवादी व्यवस्था में ही काम कर सकता है। यही कारण है कि लगभग सभी प्रजातान्त्रिक देशों में और विशेषकर भारत में कर्मचारी-वर्ग नियमानुसार काम करने का आन्दोलन, धीरे धीरे काम करने का आन्दोलन, घेराव, हड़ताल, उग्र-प्रदर्शन आदि का सहारा लेता रहता है।

प्रथम समस्या से ही सम्बन्धित दूसरी गम्भीर समस्या यह है कि कर्मचारी-वर्ग सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों को सफल बनाने का पूरा प्रयास नहीं करते। इसका उपाय यह सुझाया जाता है कि यदि वर्तमान कर्मचारियों के स्थान पर सरकारी नीतियों और कार्यक्रमों से प्रतिश्रुत (Committed) कर्मचारी हों तो सरकारी कार्यक्रम अधिक सफल न हो सकेंगे। पर इस सुझाव पर विचार करते समय हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भारत में कर्मचारी वर्ग पर राजनीतिक तटस्थता (Political Neutrality) का सिद्धान्त लागू होता है। अतः नागरिक सेवा के प्रत्येक कर्मचारी का यह कर्त्तव्य है कि वह सरकारी सेवाकाल में सरकार के सभी कानूनों, आदेशों और निर्देशों का पालन करे चाहे उसके राजनीतिक विश्वास और विचार कुछ भी हों। श्री पी॰ वी॰ आर॰ राव के शब्दों में, "कर्मचारी-वर्ग का यह कर्त्तव्य है कि वह सरकारी नीतियों को स्वामिभक्ति से क्रियान्वित करे। किन्तु सम्भवतः यह नहीं कहा जा सकता कि वेतनभोगी कर्मचारी वर्ग का उन नीतियों में सन्निहित शब्दों पर भी विश्वास होना चाहिए।" वास्तव में भारत की राजनीतिक व्यवस्था के सन्दर्भ में प्रतिश्रुत कर्मचारी-वर्ग (Committed Bureaucracy) का मॉडल फिट नहीं बैठता। यह मॉडल तो अधिकांशतः उन्हीं देशों में उपयोगी सिद्ध हो सकता है जहाँ राजनीतिक सत्ता स्थायी रूप से एक दल के हाथ में हो। बहुदलीय व्यवस्था में प्रतिश्रुत कर्मचारी वर्ग से तो नई समस्याएँ खड़ी हो जाएँगी।

तीसरी समस्या नीति निर्धारित करने वाले पदों पर सामान्य प्रशासकों के एकछत्र अधिकारों की है। इस प्रवृत्ति के विरोध में अनेक देशों में कटु प्रतिक्रियाएँ हुई हैं। यह आलोचना की गई है कि आर्थिक और औद्योगिक क्षेत्र में सरकार की असफलता के मूल में एक मुख्य कारण यही रहता है कि सामान्य प्रशासन ही सरकारी नीति-निर्माण के लिए उत्तरदायी होता है। फुल्टन समिति (1968) के प्रतिवेदन के अनुसार, "वैज्ञानिकों, इंजीनियरों और अन्य विशेषज्ञ वर्ग के सदस्यों को न तो पूरा उत्तरदायित्व और अवसर ही दिया जाता है और न ही उन्हें अपने उत्तरदायित्वों को निभाने के लिए अधिकार ही दिया जाता है।" भारत में प्रशासकीय सुधार समिति का यह भी सुझाव है कि भारतीय प्रशासकीय सेवा के सदस्यों द्वारा एकछत्र नीति-निर्माण के एकछत्राधिकार पर रोक लगाई जाए। इस सन्दर्भ में एक भारी विवाद सामान्य प्रशासकों और विशेषज्ञों के बीच है। सामान्य प्रशासक नीति-निर्माण का

अधिकार नहीं छोडना चाहते जबकि दूसरी ओर विशेषज्ञ नीति-निर्माणकारी पदों पर अधिकार जमाना चाहते हैं। दोनों के बीच विवाद की समाप्ति के लिए एक समन्वयकारी मार्ग यह है कि दोनों का कार्य समान कर दिया जाए और उनके वेतनमानों में कोई अन्तर न रखा जाए। चौथी समस्या लोकसेवा कर्मचारियों और राजनीतिज्ञों में अच्छे सम्बन्धों के विकास की है। हाल ही के कुछ वर्षों में भारत में लोकसेवकों और राजनीतिज्ञों में कुछ अधिक खींचातानी होने लगी है। राजनीतिज्ञों में लोकसेवा के सदस्यों को बदनाम करने की प्रवृत्ति विकसित हुई और राजनीतिक हस्तक्षेप तथा अखाड़ेबाजी में फलस्वरूप लोकसेवकों की प्रेरणा-शक्ति को आघात पहुँचा है। वास्तव में ऐसा वातावरण विकसित किया जाना चाहिए जिसमें दोनों पक्षों में सहयोग और सद्भावना का विकास हो। ससदात्मक शासन वाले देशों में राजनीतिज्ञ और लोकसेवक गाड़ी के दो पहियों के समान हैं जिनके बिना प्रशासन-रूपी गाड़ी आगे नहीं बढ़ सकती।

पाँचवीं बड़ी समस्या यह है कि आज कर्मचारी वर्ग को यह भय बना रहता है कि यदि कानून और विभागीय आदेशों के अनुसार काम करते हुए भी अनजाने में उससे कोई भूल-चूक हो जाएगी तो विभाग के पदाधिकारी दण्डात्मक कदम उठाएँगे और उनके कामों का समर्थन नहीं करेंगे। दूसरी ओर ब्रिटिश शासनकाल में प्रत्येक छोटे-बड़े पदाधिकारी को यह आश्वासन था कि यदि जान बूझकर कोई गड़बड़ी नहीं की गई है तो विभाग कर्मचारी को अपना समर्थन देगा। आज की भारतीय राजनीतिक और प्रशासकीय परिस्थिति में यह आवश्यक है कि ऐसी व्यवस्था हो जिसमें कर्मचारी वर्ग निर्भय होकर निर्णय ले सके। आज परिस्थिति यह है कि राजनीतिज्ञ और लोकसेवक दोनों ही प्रशासकीय दूरी को दूर करने के प्रति उदासीन हैं क्योंकि किसी एक मामले पर अविलम्ब निर्णय लेने का मतलब यह होगा कि मित्र तो शायद एक भी बने अथवा नहीं, किन्तु पाँच शत्रु अवश्य बन जाएँगे। दोनों ही पक्ष मामले को यथासाध्य घसीटते रहने के अभ्यस्त हो गए हैं।

इस स्थिति को समाप्त किया जाना चाहिए, अन्यथा जनसाधारण हानि उठाता रहेगा क्योंकि उनके मामले वर्षों तक अटके पड़े रहेंगे जबकि समाज का सुविधा-सम्पन्न वर्ग अपना काम किसी न किसी तरह करा ही लेगा।

विकसित देशों में सेवीवर्ग प्रशासन : तकनीकी प्रभाव के विशेष सन्दर्भ सहित

(Personnel Administration in Developed Countries with Special Reference to Technological Impact)

सेवीवर्ग प्रशासन की प्रकृति पर सम्बन्धित देश की परिस्थितियों का भारी प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि विकसित देशों के सेवीवर्ग प्रशासन की प्रकृति विकासशील देशों से पर्याप्त भिन्न होती है। यह भिन्नता सूचना एवं प्रसार के साधनों का विकास होने से काफी कम हो गई है, तथापि आर्थिक एवं तकनीकी

स्तरो का अन्तर होने के कारण सेवीवर्ग प्रशासन की परम्पराओ के बीच अन्तर रहना स्वाभाविक है। यहाँ हम विकसित देशो के सेवीवर्ग प्रशासन की कुछ सामान्य विशेषताओ का अवलोकन करेंगे तथा इसके बाद विकासशील देशो मे इसके स्वरूप पर प्रकाश डालेंगे।

विकसित देशो की श्रेणी मे संयुक्तराज्य अमरिका तथा यूरोप के देशो को शामिल किया जाता है। इनमे से अधिकाँश देश राजतन्त्र से प्रजातन्त्र अथवा संसदीय व्यवस्था की ओर उन्मुख हुए हैं। इन देशो की नौकरशाही व्यवस्थाओ मे कुछ सामान्य विशेषताएँ पाई जाती हैं तथा कुछ आधारभूत अन्तर भी है।

सामान्य विशेषताएँ
(Common Characteristics)

(i) समाज मे उपलब्ध वर्गों के समरूप ही लोकसेवाओ को प्रमुख श्रेणियो मे विभाजित किया जाता है।

(ii) समाज मे प्रजातान्त्रिक परम्पराओ के प्रसार के साथ-साथ इन श्रेणियो की सीमाएँ टूटती रहती हैं।

(iii) उच्च स्तरीय लोकसेवाओ म प्राय विशिष्ट वर्ग के लोग आते हैं जिनका समाज मे भारी सम्मान होता है।

(iv) लोकसेवाएँ राजनीतिक जोड-तोड से पृथक् रखी जाती हैं तथा उन्हें कार्यकाल की सुरक्षा दी जाती है।

(v) कर्मचारियो की पदोन्नति मे वरिष्ठता को महत्त्व दिया जाता है।

(vi) कर्मचारियो को संघ बनाने तथा संघो के माध्यम से अपने हितो की रक्षा करने की सुविधा दी जाती है।

(vii) कर्मचारियो का वेतन निजी क्षेत्र के कर्मचारियो की तुलना मे कम होता है।

उक्त सभी विशेषताएँ समान रूप से नही वरन् किसी न किसी मात्रा मे प्राय सभी विकसित देशो म पाई जाती हैं। इन समानताओ के साथ साथ इन देशो के सेवीवर्ग प्रशासन में असमानताएँ भी दर्शनीय हैं।

मूलभूत अन्तर
(The Basic Differences)

(i) सभी विकसित देशो में कर्मचारियों की भर्ती योग्यता के आधार पर की जाती है तथा योग्यता की जाँच हेतु प्रतियोगी परीक्षाएँ आयोजित की जाती हैं। इन परीक्षाओ के आयोजन तथा दृष्टिकोण मे पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। संयुक्तराज्य अमेरिका में वस्तुनिष्ठ प्रकार की छोटे उत्तरो वाली परीक्षाएँ जितनी प्रचलित हैं उतनी और कहीं नहीं हैं।

(ii) योग्यता व्यवस्था के प्रभाव का पर्यवेक्षण करने के लिए प्रायः सभी विकसित देशों मे एक सेवीवर्ग अभिकरण की व्यवस्था की जाती है किन्तु कुछ देशो मे इनके द्वारा सेवीवर्ग प्रशासन के समस्त कार्य का निरीक्षण नहीं किया जाता।

(iii) कार्यपालिका के नेतृत्व से सेवीवर्ग प्रशासन को प्राप्त होने वाली स्वतन्त्रता का अनुपात सभी विकसित देशो मे एक जैसा नही है।

(iv) कुछ विकसित देशो मे मुख्य कार्यपालिका से जुडा हुआ एक विशेष अभिकरण रहता है। यह कुछ नीति सम्बन्धी पहल करता है तथा निर्देश सम्बन्धी सत्ता रखता है जो केन्द्रीय भर्ती अभिकरण को प्राप्त नही होती।

सेवीवर्ग प्रशासन पर तकनीकी का प्रभाव
(Impact of Technology on Personnel Administration)

सेवीवर्ग प्रशासन की सरचना एव कार्यों पर तकनीकी विकास तथा मशीनीकरण का उल्लेखनीय प्रभाव पडा है। इसे देखते हुए विवेचको द्वारा यह कहा जाता है कि पाश्चात्य देशो की सेवीवर्ग व्यवस्था का वर्तमान स्वरूप बहुत कुछ तकनीकी एव यांत्रिक सभ्यता की उपज है। मशीनो के आविष्कार ने कार्यालय मे व्यय होने वाली मानव शक्ति की बचत की है। मशीनें शारीरिक शक्ति की अपेक्षा मस्तिष्क से चलती है। एक ही मशीन जितने कम समय मे जितना अधिक काम लेती है उतना अनेक व्यक्ति काफी समय लगाने के बाद भी नही कर पाते। बडे स्तर का सगठन आज एक बटन दबाने मात्र से सक्रिय हो जाता है। प्रयास है कि मानवीय मानव की अपेक्षा यांत्रिक मानव ही सारे कार्य कर लिया करेगा। इस मशीनीकरण एव तकनीकी विकास का सेवीवर्ग प्रशासन पर बहुआयामी प्रभाव पडा है। इनमे से कुछ का वर्णन निम्न प्रकार किया जा सकता है—

(i) कार्य की सन्तोषजनक शर्तें (Satisfactory Working Conditions)—वैज्ञानिक तथा तकनीकी प्रगति के परिणामस्वरूप यह सम्भव हुआ है कि कार्यालय मे काम करने वाले कर्मचारियो को स्वास्थ्यप्रद वातावरण मे रखा जा सके। अब काम करते समय उनको सर्दी, गर्मी तथा बरसात से रक्षा का समुचित प्रयास किया जा सकता है। काम की जगह रोशनी की व्यवस्था की जाती है तथा बैठने का ऐसा प्रबन्ध किया जाता है ताकि कार्य की सम्पन्नता मे किसी प्रकार की बाधा न आए। कार्य की इन वाह्य परिस्थितियो के सन्तोषजनक तथा आरामदेह होने के कारण कर्मचारी को अपने कार्य मे आत्मगौरव की अनुभूति होती है तथा वह अपने दायित्वो को अधिक रुचि के साथ सम्पन्न करता है।

(ii) यातायात के द्रुतगामी साधन (Rapid Means of Communication)—वैज्ञानिक आविष्कारो के परिणामस्वरूप स्थान की दूरियाँ घट गई हैं। इसके फलस्वरूप प्रशासनिक शक्तियो का विकेन्द्रीकरण सम्भव हो सका है, क्षेत्रीय कार्यालय अधिक स्थापित करने तथा उन कार्यालयो को अधिक शक्तियाँ सौंपने मे सुविधा हुई है, क्षेत्रीय कार्यालयो पर मुख्य कार्यालय के अधिकारियो के अधिक दौरे होने लगे हैं तथा उनका नियन्त्रण अधिक वास्तविक बन गया है। क्षेत्रीय कार्यालय के कर्मचारी भी आवश्यकतानुसार तुरन्त मुख्य कार्यालय पहुँच जाते हैं।

(iii) द्रुतगामी सचार साधन (Rapid Means of Communication)—डाक, तार, टेलीफोन आदि सचार साधनो के विकास के परिणामस्वरूप प्रशासनिक

संगठनों की आन्तरिक एवं बाह्य संचार व्यवस्था पर उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा है, उच्च अधिकारी के नियन्त्रण का क्षेत्र बढ़ा है। वह समय पर अधीनस्थ कर्मचारियों को आवश्यक निर्देश दे पाता है, संगठन की समस्याओं एवं गतिविधियों का परिचय अल्पकाल में ही प्राप्त हो जाता है। अधीनस्थ कर्मचारी को भी मुख्य कार्यालय से आवश्यक निर्देश या स्पष्टीकरण प्राप्त करने में विशेष समय नहीं लगता, अतः कार्य शीघ्र सम्पन्न हो जाते हैं। कोई भी प्रशासनिक समस्या अथवा भ्रम उत्पन्न होने पर मुख्य कार्यालय से शीघ्र सम्पर्क स्थापित करके उसे दूर किया जा सकता है।

(iv) कार्य प्रक्रिया में सहयोगी यन्त्र (Mechanical Aids in Working Procedure)—सेवीवर्ग प्रशासन के कार्य, दायित्व एवं समस्याएँ उन विभिन्न वैज्ञानिक तथा तकनीकी आविष्कारों से भी काफी प्रभावित हुए हैं जिनकी सहायता से कार्यालय में कार्य की गति में वृद्धि हुई है। प्रेस, टाइप, टेपरिकार्डर तथा ऐसे ही अन्य उपकरण प्रशासनिक गतिविधियों को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं।

(v) सामाजिक मूल्यों तथा प्रशासनिक अपेक्षाओं में परिवर्तन (Change in Social Values and Administrative Expectations)—वैज्ञानिक तथा तकनीकी आविष्कारों के कारण सामाजिक मूल्यों में असाधारण परिवर्तन आया है। सिनेमा, रेडियो, टेलीविजन तथा भौतिक सम्पन्नता के क्षेत्र में हुए परिवर्तनों ने समाज के पुराने मूल्यों तथा आस्थाओं को धराशायी कर दिया है तथा उनके स्थान पर एक नई सभ्यता और संस्कृति ने जन्म लिया है। 'इस नई सभ्यता के मूल्य, आकांक्षाएँ तथा इनके द्वारा प्रशासन से की गई अपेक्षाएँ पहले की अपेक्षा काफी बदल गए हैं। इस परिवर्तन ने प्रशासनिक संगठन के स्वरूप तथा सेवीवर्ग प्रशासन के कार्यों और दायित्वों को भी प्रभावित किया है।

(vi) स्वचालितों का प्रभाव (Impact of Automation)—व्यावहारिक शोध में हो रही निरन्तर प्रगति ने 'बटन दबाओ' संस्कृति का विकास किया है। इस नई दुनिया में व्यक्ति का अधिकांश मानसिक तथा शारीरिक कार्य यान्त्रिक मानव (Robot) ने ले लिया है। स्वचालितों के आविष्कार के फलस्वरूप असाधारण रूप से प्रशासनिक क्रियाएँ प्रारम्भ हुई हैं। कम्प्यूटर ने मानव श्रम को बचाने में बहुत कुछ योगदान किया है। इसके कारण विभिन्न उद्यमों की कार्य प्रक्रिया तथा संरचना में परिवर्तन आया है। कार्य सम्पन्नता में गति एवं निश्चितता दोनों बातें आई हैं। फलतः बड़े संगठन बनने लगे हैं, निजी एवं सरकारी संगठनों का आकार पूर्वापेक्षा बढ़ गया है। स्वचालितों के आविष्कार का एक आशाजनक सम्भावित प्रभाव यह समझा जाता है कि बड़े स्तर के संगठन में आन्तरिक नियत्रण के बिन्दुओं को न्यूनतम संख्या में घटाकर नौकरशाही के दोष कम किए जा सकेंगे। इस विकास का एक अन्य प्रभाव यह हुआ है कि आन्तरिक नियन्त्रणों के विस्तार के कारण विधायी पर्यवेक्षण अधिकतम सीमा तक बढ़ गया है तथा संगठन की व्यावसायिक भावना पर कुठाराघात हुआ है। स्वचालितों की सहायता से इस

बुराई को नियन्त्रित किया जा सकेगा तथा इसके फलस्वरूप सरकारी कार्यों के प्रशासन मे नई तकनीकी अपनाकर गतिशीलता लाई जा सकेगी। कार्यकुशलता एव मितव्ययता बढ़ाने के लिए प्रशासन की अनेक नई तकनीकें अपनाई जा सकेंगी।

विकासशील देशो मे सेवीवर्ग प्रशासन
(Personnel Administration in Developing Countries)

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद एशिया, अफ्रीका तथा लेटिन अमेरिका के देश विकासशील देशों की श्रेणी मे आ गए हैं। इन देशो के सक्रमणकालीन समाज मे सेवीवर्ग प्रशासन की भूमिका पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है। इनमे से जिन देशो मे पहले नौकरशाही का सगठन प्रभावहीन तथा प्राथमिक था वहाँ अब इसका निरन्तर विकास हो रहा है। विकासशील देशो के सेवीवर्ग प्रशासन की सामान्य विशेषताओं का विवेचन करने से पूर्व हम यहाँ ऐसी कुछ सामान्य समस्याओं का अवलोकन करेंगे।

कतिपय सामान्य समस्याएँ
(Some Common Problems)

(i) बाह्य आक्रमण के विरुद्ध सुरक्षा तथा आन्तरिक व्यवस्था की स्थापना,
(ii) शासन के औचित्य के प्रति सहमति बनाए रखना,
(iii) विभिन्नतापूर्ण धार्मिक, साम्प्रदायिक तथा क्षेत्रीय तत्त्वो को राष्ट्रीय राजनीतिक समुदाय म एकीकृत करना,
(iv) केन्द्रीय, क्षेत्रीय और स्थानीय सरकारो के बीच तथा सरकारी सत्ता और निजी क्षेत्र के बीच औपचारिक शक्तियो तथा कार्यों का सगठित एव वितरित करना,
(v) परम्परागत सामाजिक तथा आर्थिक निहित स्वार्थों को हटाना,
(vi) आधुनिक एकीकृत ज्ञान एव सस्थाओ का विकास, •
(vii) मनोवैज्ञानिक तथा भौतिक सुरक्षा को प्रोत्साहित करना,
(viii) राष्ट्रीय बचत एव अन्य वित्तीय स्रोतो को गतिशील बनाना,
(ix) विनियोग का बुद्धिपूर्ण आवटन तथा सुविधाओ एव सेवाओ का कुशल प्रबन्ध,
(x) आधुनिकीकरण की प्रक्रिया मे सहभागिता को सक्रिय बनाना,
(xi) अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय मे एक सुरक्षित स्थिति प्राप्त करना आदि।

उक्त सभी समस्याओ के निवारण के लिए अनुभवी राजनीतिज्ञो के कुशल सरकारी नेतृत्व के साथ साथ सेवीवर्ग प्रशासन की दक्षता भी वाछनीय है।

कतिपय सामान्य विशेषताएँ
(Some Common Characteristics)

विकासशील देशों के सक्रमणकालीन सेवीवर्ग प्रशासन की कुछ सामान्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) यहाँ का सेवीवर्ग प्रशासन धर्म, जाति, जन-जाति, वर्ग एव सस्कृति आदि

के प्रभावों तथा दबावों से पीडित रहता है। स्थानीय राजनीतिज्ञ एव नौकरशाह अपनी शक्ति स्थिति के साथ किसी प्रकार का समझौता नही करना चाहते, अतः यह दबाव एक गम्भीर समस्या बन जाता है।

(ii) प्राय सभी विकासशील देश कभी यूरोपीय साम्राज्य का अग थे। यहाँ की नौकरशाही के सगठन तथा कार्यों का स्वरूप साम्राज्यवादी देशो द्वारा निर्धारित किया गया था और तभी की परम्पराएँ यहाँ अब तक चली आ रही हैं। इन परम्पराओं की आज की परिवर्तित परिस्थितियो चुनौतियो तथा वातावरण मे उपयोगिता नही रही है फिर भी स्वदेश के नाम पर इनकी रक्षा की जाती है तथा निहित स्वार्थों द्वारा इनमे प्रस्तावित प्रत्येक परिवर्तन का विरोध किया जाता है।

(iii) विकासशील देशो की नौकरशाही मे निहित स्वार्थों की समस्या रहती है इसी कारण पुराने लोकसेवक सत्ता और महत्व के पदो पर पजा जमाए रहते हैं अथवा उच्च वर्ग के लोग उच्च पदो को घेर लेते हैं। ये निहित स्वार्थ सेवीवर्ग प्रशासन मे वांछनीय परिवर्तन नही होने देते। इन देशो की नौकरशाही कभी कभी समाज के उन वर्गों का प्रतिनिधित्व करने लगती है जिनके विचारो को नई पीढी त्याग चुकी है। जब नौकरशाही पदो पर प्रशिक्षित सैनिक अथवा उद्योगपति आ जाते हैं तो उसके विकास की गति अवरुद्ध हो जाती है। विकासशील देशो में अधीनस्थ पदो पर प्रवेश की परम्परा, वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति, कार्यक्रम पूर्ण उत्साह की अपेक्षा निष्क्रिय निरपेक्षता पर जोर तथा कार्यकाल की सुरक्षा आदि बातें पाई जाती हैं। इनके परिणामस्वरूप यथास्थिति को बनाए रखने का वातावरण बनता है और परिवर्तन तथा सामजस्य कठिन बन जाता है। इन देशो का अभिजात्य वर्ग अपनी शक्तियाँ तथा विशेषाधिकार त्यागने को राजी नहीं है।

(iv) इन देशो मे व्यावसायिक तथा तकनीकी सेवीवर्ग के लिए सतोषजनक अभिप्रेरणा नही रहती। इसके विपरीत इन देशो के तकनीकी विकास के लिए विशेषज्ञ अधिकारियो की भारी आवश्यकता रहती है। सेवीवर्ग व्यवस्था पर गैर-विशेषज्ञो तथा निहित स्वार्थों का प्रभाव रहने के कारण डॉक्टर, इजीनियर, वैज्ञानिक आदि विशेष अधिकारियों को उपयुक्त पद प्राप्त नही हो पाता और वे सरकारी सेवा मे अधिक समय नही रह पाते अथवा असन्तुष्ट बने रहकर अपने निजी व्यवसायों की ओर अधिक ध्यान देते हैं। इन देशो मे मुख्य पदो पर गैर-विशेषज्ञ अधिकारी व्यावसायिक तथा विशेषज्ञ अधिकारियो को प्रवेश नही पाने देते, फलत नीति-निर्माता राजनीतिज्ञ प्राय विशेषज्ञ अधिकारियो से विचार-विमर्श नही कर पाते।

सेवीवर्ग प्रशासन पर विकास कार्यों का प्रभाव
(Impact of Development Activities on Personnel Administration)

विकासशील देशो मे सेवीवर्ग प्रशासन को अनेक परिवेशात्मक चुनौतियो का सामना करना पडता है। इसे आर्थिक विकास, सामाजिक सुधार, राजनीतिक स्थिरता, शिक्षा का प्रसार, समाज सुरक्षा आदि कार्यों की दिशा मे उल्लेखनीय

दायित्वों का निर्वाह करना पड़ता है। देश का नियोजित आर्थिक विकास भी अनेक नए दायित्व सौंपता है। विकासशील देशों का एक दुखद तथ्य यह है कि यहाँ वांछनीय परिवर्तन लाने वाला मुख्य यंत्र सरकार होती है तथा गैर-सरकारी संस्थाएँ सरकार के नियन्त्रण और निर्देशन के अधीन ही कुछ कार्य कर पाती हैं, अतः नौकरशाही का कार्यक्षेत्र एवं प्रभाव-क्षेत्र बढ़ जाता है। अपने परिवर्तित दायित्वों का निर्वाह करने के लिए नौकरशाही के संगठन तथा दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना वांछनीय है। इस सम्बन्ध में कोठारी एवं रॉय का कहना सही है कि 'यदि एक प्रमुख सामाजिक परिवर्तनकर्त्ता के रूप में सरकारी नौकरशाही को सफल होना है तो इसे अपने कुछ परम्परागत दृष्टिकोण एवं कार्य के तरीकों को छोड़ना होगा। जिस जनता पर इसे शासन करने की आदत थी उसके प्रति दृष्टिकोण बदल कर एक सहभागिता निर्मित करनी होगी।" विकासवादी नीतियों के कारण मेवीवर्ग प्रशासन की रूप-रचना पर मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रभाव पड़े हैं—

(i) जन आकांक्षाओं के प्रति सजग दृष्टिकोण (Conscious Attitude towards Public Expectations)—विकासशील देशों की नौकरशाही काफी संवेदनशील होती है। यह सदैव सजग तथा सतर्क रहकर प्रतीक्षा और शंका की दृष्टि से नौकरशाही के कार्यों का मूल्यांकन करते हुए यह जानने की चेष्टा करती है कि नौकरशाही उनकी समस्याओं के समाधान तथा विकास की दृष्टि से क्या कर रही है। साधनहीन, क्षमताहीन जनसाधारण अपनी समस्याएँ स्वयं नहीं सुलझा पाता अतः नौकरशाही से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी नीति एवं कार्यक्रम तय करते समय जन आकांक्षाओं का समुचित ध्यान रखे।

(ii) साधारण जन के साथ घनिष्ठ सहयोग (Close Co-operation with Masses)—स्वर्गीय प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू का कहना था कि प्रशासनिक अधिकारी चाहे वह किसी भी स्तर का हो, करोड़ों-करोड़ों साधारण जनों से सम्बन्ध रखता है। इन लोगों की समस्याएँ कार्यालय में बैठे-बैठे आदेश प्रसारित करने मात्र से दूर नहीं हो जाती वरन् इनके समाधान के लिए उनके करोड़ों हाथों का सहयोग आवश्यक है। ऐसी स्थिति में आम जनता को कार्य के लिए प्रेरित करने की आवश्यकता है। नौकरशाही को जनता के शासक की भाँति नहीं वरन् सेवक तथा सहयोगी की भाँति व्यवहार करना चाहिए।

(iii) उत्तरदायित्वपूर्ण दृष्टिकोण (Responsive Attitude)—विकासशील देशों की नौकरशाही व्यवस्थापिका एवं न्यायपालिका के प्रति उत्तरदायी रहकर कार्य करती है। यहाँ की कार्यपालिका राजनीतिक अस्थिरता की समस्या से ग्रस्त रहकर जन-आकांक्षाओं की पूर्ति का प्रयास करती है। विकास कार्यों के क्षेत्र में की गई उपलब्धियाँ उनके जन समर्थन तथा राजनीतिक स्थिरता का आधार बनती हैं। अतः यह आवश्यक है कि नौकरशाही निरन्तर मन्त्रियों के निर्देशन तथा नियन्त्रण में रहकर कार्य करे और विकास कार्यों में सफलता का सेहरा स्वयं के सर बाँधने की अपेक्षा सारा श्रेय मन्त्रियों को ही लेने दे।

4

भारत, ब्रिटेन, अमेरिका और फ्राँस में सेवीवर्ग प्रशासन का तुलनात्मक अध्ययन

(A Comparative Study of Personnel Administration in India, Britain, U S. A. and France)

सेवीवर्ग प्रशासन सम्बन्धी कुछ सैद्धान्तिक पहलुओं तथा सामान्य बातों का विवेचन करने के बाद अब इस अध्याय में हम भारत, ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्तराज्य और फ्रांस के विशेष सन्दर्भ में सेवीवर्ग प्रशासन के व्यावहारिक रूप की कतिपय विशेषताओं का अध्ययन करेंगे। इन विशेषताओं का अवलोकन अग्रिम अध्यायों में प्रस्तुत लोक सेवकों की भर्ती, पदोन्नति, प्रशिक्षण, सेवा की शर्तों आदि की पृष्ठभूमि के रूप में भी सार्थक रहेगा।

भारत में सेवीवर्ग प्रशासन
(Personnel Administration in India)

स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय प्रशासन के विकास का अध्ययन आकर्षक है क्योंकि भारत पहला स्वतन्त्र देश है जिसने प्रशासन के जरिए आर्थिक विकास करते हुए, प्रशासनिक ढाँचे में विस्तार और विविधता लाकर भी उस ढाँचे को बनाए रखने और इस प्रकार विस्तृत होने वाले प्रशासन का संसदीय लोकतन्त्र तथा आर्थिक विकास के साथ तालमेल बनाए रखने का अन्य नव स्वतन्त्र देशों की तुलना में विशेष सफल प्रयास किया है। इन तीनों कसौटियों पर आधारित भारतीय प्रशासन की सफलता एशिया और अफ्रीका के नए स्वतन्त्र देशों के लिए अनुकरणीय है। अनेक कमियों के बावजूद भारतीय प्रशासन में सन्तुलन, लचीलेपन, कार्य-क्षमता आदि के विशिष्ट गुण विद्यमान हैं और संकटकाल में तथा विशिष्ट अवसरों पर भारतीय प्रशासन ने अपने इन गुणों का परिचय दिया है। 1982 में एशियाड और 1983 में निर्गुट शिखर सम्मेलन और फिर राष्ट्रकुल सम्मेलन के अवसरों पर भारतीय प्रशासन ने अपनी कार्य-क्षमता का जो परिचय दिया उसे विश्व के अग्रणी देशों ने भी सराहा है। समयानुसार सभी स्तरों पर प्रशासन को पुनर्गठित

करने और सजाने-सवारने की प्रक्रिया चलती रहती है और ऐसे उपाय किए जाते हैं कि उसकी कार्य-क्षमता और कार्य-दक्षता में ठोस विकास हो। भारतीय सेवीवर्ग प्रशासन की प्रकृति अथवा स्वरूप को हम निम्नलिखित रूप में स्पष्ट कर सकते हैं—

(1) अतीत की विरासत
(The Legacy of Past)

वर्तमान भारत का सेवीवर्ग प्रशासन स्वतन्त्रता-पूर्व के ब्रिटिश-भारतीय प्रशासन का प्रतिरूप है। अंग्रेज शासकों ने पूरे भारत का राजनीतिक एकीकरण किया, कुशल प्रशासन यन्त्र की स्थापना की तथा प्रजातान्त्रिक शासन-व्यवस्था की कुछ परम्पराओं का बीजारोपण किया। इसे वे भारत को स्वतन्त्रता देने के बाद अपनी यादगार के रूप में छोड़ गए। यह यादगार भारतवासियों को पर्याप्त महँगी पड़ी क्योंकि स्वतन्त्रता पूर्व की दफ्तरशाही में विकसित सेवीवर्ग व्यवस्था का मुख्य कार्य शान्ति-व्यवस्था की स्थापना करना तथा राजस्व संग्रह करना मात्र था। आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में इसके दायित्व नगण्य थे। स्वतन्त्रता के बाद निर्मित नए परिवेश में यह व्यवस्था अप्रासंगिक बन गई।

ब्रिटिश भारतीय नागरिक सेवा केवल अंग्रेजों के लिए खुली थी। इसमें भारतीयों का प्रवेश केवल प्रथम विश्वयुद्ध के बाद ही हो सका।[1] अंग्रेज अधिकारी शासक होने के अहं तथा श्रेष्ठ गोरी नस्ल की उच्चता की भावना से पीड़ित थे। प्लेटो के संरक्षक-वर्ग की भाँति वे तृष्णा-प्रधान भारतवासियों पर पूरा नियन्त्रण रखने के पक्ष में थे। आम जनता भेड़-बकरियों की भाँति विवेकहीन-निर्णयहीन रहकर अंग्रेज अधिकारियों को माई-बाप कहने तथा समझने के लिए बाध्य थी। ऐसी नौकरशाही पूर्णत सत्तावादी, एकीकृत, असंगठित, अनुत्तरदायी, स्वेच्छाचारी तथा अप्रजातान्त्रिक बन गई। इसका लक्ष्य देश का आर्थिक विकास, सामाजिक प्रगति, जनहित की उपलब्धि तथा जन-सुविधाएँ जुटाना कदापि नहीं था। यह अपनी कार्य-प्रक्रिया में सैनिक तौर-तरीके अपनाती थी। यहाँ नागरिक सेवक अपने अधिकांश कार्यों के लिए किसी अन्य के प्रति नहीं वरन् स्वयं के प्रति उत्तरदायी रहता था।[2] ऐसी नौकरशाही स्वतन्त्र भारत के योजनाबद्ध विकास तथा प्रजातान्त्रिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में अपर्याप्त अप्रासंगिक तथा असन्तोषजनक थी। इतने पर भी स्वतन्त्रता के बाद अतीत की इस सामन्तवादी विरासत को बहुत कुछ अंगीकार कर लिया गया।[3] आज भारत के प्रशासनिक व्यवहार में अनेक बातें ऐसी हैं जो एक सम्प्रभु

1 For detailed study of recruitment and training of ICS please consult—*N. C. Roy* Civil Service in India, Calcutta, 1969

2 *David Potter* "Bureaucratic Change in India" In Asian Bureaucratic Systems emergent from the British Imperial Tradition, ed by Ralph Braibanti, *1966, p 143*

3 *Paul H. Appleby* Public Administration in India, Report of a Survey, Govt. of India Publication, Delhi, 1953, pp 8—14

राज्य की नौकरशाही के साथ कोई सगति नहीं रखती किन्तु अतीत को जिन्दा रखने मात्र के लिए इनको अपनाया गया है। ये अतीत के पराधीन उपनिवेशी व्यक्तित्व की याद दिलाती हैं।[1] स्वतन्त्र भारत की नवीन आवश्यकताओं के सन्दर्भ मे प्रशासन की नई दिशाओं मे नई परम्पराओं का विकास करना चाहिए था, किन्तु यह नहीं हुआ तथा भारतीय नागरिक सेवा (I C S) की परम्पराएँ कायम रही।[2]

देश के आर्थिक विकास के लिए देश के सेवीवर्ग प्रशासन का नवीनीकरण किया जाना परम आवश्यक था। ला पालाम्बरा (La Palambara) की मान्यता है कि यदि सार्वजनिक क्षेत्र के सक्रिय योगदान के साथ देश का आर्थिक विकास करना है तो एक नए प्रकार की नौकरशाही वांछनीय है जो औपचारिक व्यवहार, पदसोपान, वरिष्ठता आदि पर विशेष जोर न दे।[3] स्वतन्त्र भारत मे आर्थिक विकास, जनतान्त्रिक परम्परा, जन-सहयोग की अनिवार्यता, सामुदायिक विकास कार्यक्रम, पचवर्षीय योजनाओं की कार्यान्विति आदि की पृष्ठभूमि मे ब्रिटिश राज की सेवीवर्गीय परम्पराएँ असामयिक बन गई हैं। एकीकृत, पदसोपनीय, औपचारिक, सत्तावादी, अनुत्तरदायी तथा स्वेच्छाचारी सेवीवर्ग व्यवस्था की विरासत स्वतन्त्र भारत के दायित्वों के निर्वाह मे केवल प्रभावहीन ही नहीं है वरन् अनेक प्रकार से हानिप्रद और अवरोधक भी है। स्वतन्त्रता के बाद देश के सामाजिक वातावरण मे गम्भीर गुणात्मक परिवर्तन आ गए हैं। राजनीतिक रगमच पर निर्वाचन, राजनीतिक दल, प्रतिनिधि सस्थाएँ, उत्तरदायी सरकार, प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण, जनमत की प्रमुता आदि उभर कर आए किन्तु नौकरशाही अभी भी पीछे की ओर देख रही थी।[4] जवाहरलाल नेहरू ने 1953 मे ही स्वीकार कर लिया था कि 'आई सी एस की भावना का प्रभाव रहते हुए हमारा प्रशासन एव लोक-सेवाएँ नई व्यवस्था का निर्माण नही कर सकती। नई व्यवस्था का श्रीगणेश होने से पूर्व आई सी एस तथा ऐसी ही अन्य सेवाओं को पूर्णत. समाप्त कर देना चाहिए।''[5]

परिवर्तित वातावरण मे यह अपेक्षा की जाती है कि सरकारी अधिकारियो के लोकप्रिय नेता जैसे सभी गुण होने चाहिए। आज के प्रशासनिक अधिकारी से यह आशा नही की जाती कि वह देहाती जनता का माई-बाप बनकर व्यवहार करे। उसे देहाती जीवन के साथ मिल जाना होगा। गाँव के गोबर-कीचड से दूर हटकर नहीं वरन् उन्हे बदलकर ही नए समाज की रचना सम्भव है। भारतीय 'नौकरशाही

1 *Bert F Hoselitz* "Tradition and Economic Growth" in Tradition, Values and Socio-economic Development, ed by Braibanti and Spengler, 1961
2 *Leo M Snowiss* The Education & Role of Superior Civil Service in India, EPA, VII, I, 1961, p 24
3 *Joseph La Palombara* "An Overview", in Bureaucracy and Political Development, p. 12.
4 A R C Report on Personnel Administration April, 1969, p 56
5 *Jawahar Lal Nehru* Autobiography, London, 1953, p 282.

की प्रकृति में परिवर्तन की आवश्यकता स्वतन्त्रता की रजत-जयन्ती मनाने के बाद भी कम नहीं हो सकी है। अतीत की विरासत इसकी रग-रग में इतनी भर चुकी है कि इससे मुक्त होकर नए परिवेश के दायित्वों को सम्हालने में यह स्वयं को अक्षम पाती है। आपातकाल में नौकरशाही पर अंकुश लगाकर उसे लोकसेवक बनाने की चेष्टा की गई थी किन्तु यह थोपा गया सेवा-भाव सेवक तथा सेवित दोनों के व्यापक असंतोष का कारण बना।

(2) नई चुनौतियाँ और नए दायित्व

(New Challenges and New Responsibilities)

15 अगस्त 1947 को भारत में शक्ति का हस्तान्तरण होते ही सरकारी यन्त्र पूर्णतः बदल गया। अनुत्तरदायी गवर्नर जनरल की अनुत्तरदायित्वहीन कार्यकारिणी के स्थान पर उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल की स्थापना हुई। 26 जनवरी, 1950 को नया संविधान लागू होने पर प्रशासन को एक नया दर्शन तथा अपूर्व विषयवस्तु प्राप्त हुई। नए वातावरण में भारतीय सेवीवर्ग के सामने अनेक नई चुनौतियाँ पैदा हुईं। इनमें कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं—

(i) स्वतन्त्रता के बाद अनेक देशी रियासतें भारत संघ में शामिल हुई थीं। इन सभी रियासतों की विशेष समस्याओं को ध्यान में रखते हुए प्रशासन को ऐसी व्यवस्था करनी थी ताकि शीघ्र ही ये अपनी अलगावपूर्ण तथा पृथक् स्थिति को छोड़कर देश की सामान्य धारा में एकाकार हो जाएँ।

(ii) संसदीय प्रजातन्त्र की स्थापना से प्रशासनिक संरचना का कार्यभार बढ़ गया। नए सरकारी संस्थान स्थापित हुए, फलतः सेवीवर्ग प्रशासन के दायित्वों का क्षेत्र व्यापक हो गया।

(iii) द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद आर्थिक अव्यवस्था, मुद्रास्फीति, खाद्यान्न का अभाव, आवश्यक वस्तुओं की महँगाई आदि की जो समस्याएँ पैदा हुईं उनकी काली छाया देश को घेरे हुए थी। सेवीवर्ग प्रशासन को इनसे लोहा लेना था।

(iv) स्वतन्त्रता के बाद सरकारी कार्यों की प्रकृति बदल गई। देश में सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन के लिए नियोजन की पद्धति स्वीकार की गई। फलतः प्रशासनिक अधिकारियों का अधिकाधिक विशेषज्ञ, वैज्ञानिक एवं तकनीकी जानकार होना आवश्यक बन गया। इस परिवर्तित वातावरण में जनरलिस्ट प्रशासक की भूमिका को अप्रासंगिक तथा दोषपूर्ण माना जाने लगा।[1]

(v) सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) के प्रसार के साथ ही प्रशासनिक अधिकारियों से यह आशा की जाने लगी है कि वे विभिन्न विभागों एवं मन्त्रालयों में तकनीकी प्रकृति की नीति-रचना में सहयोगी बनें।

1 *C. P Bhambhri* · Public Administration in India, 1973, p 250

कर्मचारियो की इस विशाल सख्या (29 82 लाख) के कारण करदाताओ को 1971-72 मे 1,000 करोड रुपयो की विशाल धनराशि का भार वहन करना पडा था। 1971-72 के बाद से केन्द्रीय कर्मचारियो के वेतन की राशि मे और भी वृद्धि हुई है। इस धनराशि मे कर्मचारियो को उत्कोच के रूप मे विभिन्न कार्य कराने के लिए दिए जाने वाली धनराशि एव विभिन्न वस्तुएँ शामिल नही है। क्या समाज को बदले मे लोक–कर्मचारियो पर व्यय किए जाने वाली धनराशि का उचित प्रतिफल प्राप्त होता है ?

राज्यो मे सेवारत लोक सेवको की सख्या निम्नवत् है–

राज्य	कर्मचारियों की सख्या (लाखो मे)
आन्ध्र प्रदेश	1·71
असम	0 89
बिहार	2 44
गुजरात	1 24
जम्मू-कश्मीर	आँकडे उपलब्ध नहीं हैं
हरियाणा	1 06
हिमाचल प्रदेश	1 23
केरल	1·51
मध्य प्रदेश	3 86
कर्नाटक	1 74
महाराष्ट्र	2 88
उडीसा	आँकडे उपलब्ध नही हैं
पजाब	1 51
राजस्थान	1·79
तमिलनाडु	2 04
उत्तरप्रदेश	4 43
पश्चिम बगाल	2 64

भारत मे लोकसेवाओ का बडा आकार अनेक कारणो का परिणाम है जैसे (i) स्वतन्त्रता के बाद से देश मे अनेक नए मन्त्रालयो की स्थापना हुई तथा प्राय: सभी मन्त्रालयो ने अपने व्यापक कार्यों एव दायित्वो के निर्वाह के लिए अधिक कर्मचारियो की नियुक्ति की है, (ii) जवाहर लाल नेहरू ने लोकसेवाओ के वातावरण मे होने वाले परिवर्तनो को इसके लिए उत्तरदायी माना है,[1] (iii) लोकसेवको के कार्यों का समुचित मूल्यांकन नहीं हुआ है तथा कार्य के न्यूनतम मापदण्ड तय नही किए जा सके हैं, अतः कर्मचारियो की सख्या अनियन्त्रित एव असगठित रूप से बढती रही है, (iv) लोकसेवको की ओर जनता का विशेष

1 *Jawahar Lal Nehru* · 'A Word of Service', Indian Journal of Public Administration, Vol I, No 4, 1955, p 301.

आकर्षण है क्योंकि भारत एक पिछड़ा हुआ तथा विकासशील देश है। यहाँ बेरोजगारी और अर्द्ध बेरोजगारी की समस्या काफी गम्भीर है, (v) राष्ट्रीय आवश्यकताओं को देखते हुए निजी औद्योगिक क्षेत्रों का समुचित विकास नहीं हो सका है, (vi) सरकारी नौकरी में सेवा की सुरक्षा और निश्चितता रहती है, अत जीविका के साधन के रूप में इसे अधिक पसन्द किया जाता है, (vii) समाज में सरकारी नौकरी का बड़ा सम्मान है। लोकसेवाओं का उच्च शैक्षणिक स्तर एवं उनके व्यावसायिक संगठन उन्हें सर्वश्रेष्ठ संगठित व्यावसायिक समूह के रूप में उभार देते हैं। लोकसेवक भारत का सर्वाधिक शक्तिशाली अभिजन-वर्ग है।

(4) लोकसेवाओं का स्तर

(The Status of Public Services)

भारत में लोकसेवाओं की शक्ति, प्रभाव एवं नियन्त्रण के कारण इनका पर्याप्त सम्मान है। आज भी प्रशासनिक अधिकारी के पास जनता को दण्डित एवं पुरस्कृत करने की पर्याप्त शक्तियाँ हैं। समाज में लोकसेवाओं का उच्च स्तर आर्थिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक आदि अनेक कारणों का परिणाम है। आर्थिक कारण यह है कि देश में रोजगार के अवसर अतिअल्प हैं जबकि लोकसेवकों को विशेष शक्तियों के साथ-साथ मोटी तनख्वाह भी प्राप्त होती है। निर्धन या मध्यम श्रेणी के परिवार में जन्म लेने वाले महत्वाकांक्षी युवकों को सम्पन्नता की उच्च श्रेणी तक पहुँचाने वाला सुगम मार्ग यही है। साधनहीन होने के कारण ये लोग व्यापारी नहीं बन पाते किन्तु परिश्रम करके सरकारी अधिकारी अवश्य बन जाते हैं। भारतीय जनमानस अधिक जोखिम उठाने में रुचि नहीं लेता। उसकी हार्दिक अभिलाषा यही रहती है कि जीवन यथासम्भव सुरक्षित हो, निश्चित धाराओं में बहे तथा किसी प्रकार की बाधाएँ न आएँ। धार्मिक विश्वास तथा ईश्वर-भक्ति की प्रेरणा का आधार यही मनोवृत्ति है। विघ्न, बाधाएँ, असुरक्षा, जोखिम, अनिश्चितता के स्थान पर निश्चितता, एकरूपता, सुरक्षा, समरसता आदि से युक्त होने के कारण सरकारी नौकरी की ओर ललचायी नजर से देखा जाता है। सिद्धान्तत कोई व्यक्ति प्रशासनिक अधिकारी बनने का औचित्य चाहे कुछ भी कह कर सिद्ध करना चाहे किन्तु यथार्थवादी धरातल पर खड़े होकर यह देखा जा सकता है कि कम परिश्रम में प्रचुर धन, सत्ता और सम्मान सम्भवत लोकसेवा के अतिरिक्त अन्य किसी व्यवसाय में नहीं मिलता और दास मलूका के शब्दों को दोहराने वाले हम भारतीयों के लिए इतना ही काफी है।

लोकसेवाओं में प्रवेशार्थ खुली प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती हैं, अत प्राय योग्य और प्रतिभाशाली लोग इन पदों पर प्रतिष्ठित होते हैं। उनकी विद्वता अपना प्रभाव छोड़कर पद को सम्मानजनक बना देती है। यह सम्मान पुन देश के योग्य तथा प्रतिभाशाली युवकों को लोकसेवा की ओर आकर्षित करता है। पनान्डिकर का कहना है कि "ऐतिहासिक दृष्टि से शक्ति की मात्रा, आर्थिक पुरस्कार,

बौद्धिक परम्पराएँ तथा वैकल्पिक आकर्षक व्यवसाय का अभाव सरकारी रोजगार के सम्मान की निरन्तर वृद्धि के अनुरक्षक तथा समर्थक बने हैं।"[1]

कुछ समाजशास्त्रीय कारणों ने भी लोकसेवाओं को सम्माननीय बनाने मे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इन पदो की ओर पिछडी जाति के वे प्रतिभाशाली लोग अधिक आकर्षित हुए जो जन्म के कारण अन्यथा उपयुक्त सम्मान नही पा रहे थे। भारतीय सविधान द्वारा अनुसूचित जातियो एव जनजातियो को विशेष सुविधाएँ दिए जाने के कारण इन वर्गों के साधारण प्रतिमा के लोग भी इन सेवाओ मे प्रवेश पा लेते हैं। जब उच्च पदों पर प्रतिष्ठित होकर ये ऊँची जाति वालो पर शासन करते हैं तो सदियो से कुचला हुआ उनका अहभाव फडक उठता है। उनकी हीनता की भावना मिट जाती है, वे समाज मे अपना उपयुक्त स्थान बना लेते हैं। इस व्यवस्था ने परम्परागत जाति व्यवस्था की कडी को उखाड फेंका है, सारी सामाजिक रूपरचना मे एक गम्भीर परिवर्तन आ गया है।

यह तस्वीर का एक पक्ष है जो लोकसेवकों के स्तर को ऊँचा उठा देता है तस्वीर का दूसरा पक्ष वह है जिसमे लोकसेवको की प्रतिष्ठा पतनोन्मुख दिखाई देती है। आज सत्ता का मापदण्ड जन प्रतिनिधियो के हाथ मे है। प्रशासन के जनतन्त्रीकरण के साथ-साथ प्रशासनिक अधिकारियो की शक्तियाँ क्रमश घटी हैं। उनका वेतन अब इतना आकर्षक नही रहा है। तीव्र औद्योगीकरण ने देश मे योग्य तथा प्रतिभाशाली व्यक्तियो के लिए वैकल्पिक व्यवसाय के अवसर खोल दिए हैं। निजी उद्यमो के आकर्षक वेतन और सेवाओ की शर्तों में सरकारी पदो के आकर्षण को घटा दिया है। आज सरकारी पदो पर प्राय मध्यम प्रतिभा के लोग आते हैं। ऐसे लोग जिन्हे और अच्छा पद प्राप्त नहीं हो सका है ऐसी अनेक प्रतिभाएँ तकनीकी एव व्यावसायिक प्रशिक्षण की ओर उन्मुख हो जाती हैं। प्रशासनिक अधिकारी बनने की अपेक्षा वे चिकित्सा, अभियान्त्रिकी, विज्ञान, विश्वविद्यालय अध्यापन आदि व्यवसायों को प्राथमिकता देते हैं। इन कारणो से लोकसेवाओ का सम्मान थोडा घटा है किन्तु जनमानस अभी तक उनके गौरवपूर्ण अतीत को भुला नहीं सका है। सरकारी नियमन, आर्थिक नियन्त्रण और सरकारी उद्यमो के प्रसार के कारण अभी भी उनका महत्त्व है। राजनीतिक नेताओ के अधीन रहते हुए भी वास्तविक व्यवहार में वे निर्णायक भूमिका निभाते हैं।

(5) सांविधानिक प्रशासन

(The Constitutional Provisions)

भारतीय सविधान के दसवें भाग के प्रथम अध्याय मे लोकसेवाओ का वर्णन है। यहाँ उनकी भर्ती, सेवा की दशाएँ, कार्यकाल, पृथक्करण, अनुशासनात्मक कार्यवाही तथा अन्य सम्बन्धित विषयो के मोटे सिद्धान्त निर्धारित किए गए हैं।

1 *V A Pai Panandikar*, Personnel System for Development Administration, 1966 p 50

संविधान ने लोकसेवाओं की भर्ती तथा सेवा की शर्तें नियमित करने की शक्तियाँ व्यवस्थापिका को सौंपी हैं। जब तक वह ऐसा न करे तब तक संघ का राष्ट्रपति इस कार्य को सम्पन्न करेगा। संविधान में अखिल भारतीय सेवाओं के लिए विशेष प्रावधान है। अखिल भारतीय सेवाएँ वे होती हैं जिनके सदस्य प्राय राज्यों की सेवा में रहते हैं किन्तु इनकी नियुक्ति संघीय लोकसेवा आयोग द्वारा की जाती है। इन्हें एक राज्य से दूसरे राज्य में या राज्य से केन्द्र में कार्य करने के लिए रखा जा सकता है। संविधान ने भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा भारतीय पुलिस सेवा को अखिल भारतीय सेवा स्वीकार कर लिया[1] तथा राज्य सभा को यह अधिकार दिया कि वह उपस्थित और मतदान करने वाले कम से कम दो-तिहाई सदस्यों की सहमति से नई अखिल भारतीय सेवा की स्थापना के लिए संसद से कानून पारित करने का आग्रह करे, तब ही संसदीय कानून द्वारा ऐसी नई सेवा की स्थापना की जा सकेगी।[2]

संसद् द्वारा अखिल भारतीय सेवा अधिनियम 1951 को 1963 में संशोधित किया गया ताकि तीन और अखिल भारतीय सेवाओं अर्थात् भारतीय इंजीनियर सेवा, भारतीय वन सेवा और भारतीय चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवा के गठन की व्यवस्था की जा सके। भारतीय वन सेवा 1 जुलाई, 1966 को गठित कर दी गई थी। उक्त सेवाओं की अन्य दो सेवाओं/संवर्गों को गठित करने का प्रस्ताव, जिसे पहले छोड़ दिया गया था, सरकार के विचाराधीन है। भारतीय प्रशासनिक सेवा इस विभाग द्वारा नियन्त्रित की जाती है जबकि भारतीय पुलिस सेवा गृह मन्त्रालय द्वारा नियन्त्रित की जाती है। भारतीय वन सेवा कृषि मंत्रालय (कृषि तथा सहकारिता विभाग) द्वारा नियन्त्रित की जाती है। फिर भी, भारत सरकार (कारोबार का आवंटन) नियमावली 1961 के उपबन्धों के अनुसार अखिल भारतीय सेवाओं को शामिल करने वाले नियमों और विनियमों को तैयार करने और उनमें संशोधन करने से सम्बन्धित कार्य इसी विभाग के पास हैं।[3]

संविधान के इसी भाग के दूसरे अध्याय में संघीय लोकसेवा आयोग का उल्लेख है जो इन सेवाओं की भर्ती करे तथा भारत सरकार को सेवा सम्बन्धी विषयों में परामर्श दे।

(6) सेवाकाल की सुरक्षा
(Security of Service Tenure)

भारतीय संविधान की धारा 309 केन्द्रीय संसद् तथा राज्यों की व्यवस्थापिकाओं को उनके क्षेत्र में लोकसेवाओं की नियुक्ति तथा सेवा की शर्तों

1 The Indian Constitution, Article-312 (ii)
2 The Indian Constitution, Article-312 (i)
3 भारत सरकार कार्मिक और प्रशासनिक सुधार विभाग, गृह मन्त्रालय की वार्षिक रिपोर्ट 1983-84, पृ 10

के नियमन का अधिकार देती है। धारा 310 में उल्लेख है कि लोकसेवा के कर्मचारी केन्द्र में राष्ट्रपति और राज्यों में राज्यपालों के प्रसाद-पर्यन्त ही अपने पद पर कार्य करेंगे। इस प्रावधान का यह अर्थ कदापि नहीं है कि राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल स्वेच्छापूर्वक कभी भी किसी अधिकारी को उसके पद से हटा देंगे। संविधान में लोकसेवकों की सेवा-सुरक्षा के लिए उपयुक्त व्यवस्था की गयी है। धारा 311 के अनुसार लोकसेवा के किसी भी सदस्य को उसे नियुक्त करने वाले अधिकारी से नीचे के अधिकारी द्वारा नहीं हटाया जा सकता। किसी कर्मचारी को हटाने अथवा पदावनत करने से पूर्व उसे अपने पक्ष में सफाई देने का पूरा अवसर दिया जाएगा।[1] इस सम्बन्ध में आलोचकों की आपत्ति है कि संविधान द्वारा लोक-कर्मचारियों को इतनी सुरक्षा प्रदान करना कार्यकुशलता और अनुशासन के हित में नहीं है। संविधान के 15वें संशोधन द्वारा इस स्थिति को कुछ नरम बनाते हुए लोकसेवकों के विरुद्ध की जाने वाली अनुशासनात्मक कार्यवाही को शीघ्रतर बनाया गया है। तदनुसार दोषारोपित सरकारी कर्मचारी को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर केवल उस समय दिया जाता है जबकि उपयुक्त जाँच में प्राप्त प्रमाणों के आधार पर उसके विरुद्ध प्रस्तावित दण्ड को अन्तिम रूप दिया जाना होता है।

(7 रोजगार के समान अवसर

(Equal Opportunities of Employment)

भारतीय संविधान की धारा 15 (1) के अनुसार राज्य किसी नागरिक के साथ धर्म, जाति, लिंग, नस्ल, जन्म-स्थान या इनमें से किसी एक के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा। सरकार द्वारा प्रस्तुत रोजगार के अवसरों के सम्बन्ध में भी यह बात लागू होती है, किन्तु संविधान इतने से ही सन्तुष्ट नहीं होता। इसकी धारा 16 (1) में स्पष्ट उल्लेख है कि राज्य के अधीन नौकरी और पदों के बारे में सभी नागरिकों को समान अवसर प्राप्त होंगे।[2] व्यवहार में यह व्यवस्था काफी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि जब से सरकार ने सामाजिक और आर्थिक विकास के कार्यों में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेना प्रारम्भ किया है तब से सरकार में रोजगार के अवसर बढ़ गए हैं। शिक्षित वर्ग को रोजगार देने वालों में सरकार सबसे आगे है। रोजगार की समानता के साथ-साथ संविधान ने शोषित समुदायों की सुरक्षा के लिए विशेष प्रावधान रखे हैं। तदनुसार एक निश्चित अनुपात में विभिन्न महत्त्वपूर्ण सरकारी पद अनुसूचित जाति और जनजाति के सदस्यों के लिए सुरक्षित रख लिए जाते हैं।

लोकसेवाओं में अवसर की समानता के सन्दर्भ में प्रशासनिक सुधार आयोग ने एक अन्य प्रश्न की ओर ध्यान आकर्षित किया है। आयोग ने पति और पत्नी दोनों के सरकारी कर्मचारी बनने पर एतराज उठाते हुए इसे सामाजिक न्याय के

1 आपातकाल के समय संविधान का यह प्रावधान निलम्बित था।

2 "There shall be equality of opportunity for all citizens in matters relating to employment or appointment to any office under the state "

—Article 16(i)

प्रतिकूल बताया है। देश में रोजगार के सीमित अवसर हैं। यदि एक ही परिवार के पास दो पद चले गए तो दूसरा परिवार एक सम्भावित पद से वंचित रह जाएगा। इस प्रकार बेरोजगारी की समस्या गम्भीर बनेगी। आयोग ने सुझाव दिया कि सरकार में रोजगार के अवसर पति और पत्नी में से एक को ही दिए जाएँ। अवसर की समानता पति और पत्नी के बीच न होकर परिवारों के बीच स्थापित की जाए। यह व्यवस्था प्रशासनिक दृष्टि से भी उपयोगी है क्योंकि पति-पत्नी दोनों के सरकारी कर्मचारी होने पर उन्हें एक ही स्थान पर रखने की समस्या गम्भीर हो जाएगी।

भारतीय लोकसेवाओं में प्रवेश के लिए अवसर की समानता हेतु सांविधानिक, संस्थागत, व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक सभी दृष्टियों से विभिन्न उपाय किए गए हैं किन्तु स्वतन्त्रता के बाद के इतिहास और वर्तमान वस्तुस्थिति से स्पष्ट है कि "जितना किया इलाज मर्ज बढ़ता ही गया।" योग्यता, कुशलता और प्रतिभा को यथोचित स्थान देने के लिए अनेक प्रयास किए गए हैं किन्तु सभी असफल हुए और योग्यता को चौराहे पर नीलाम होने से नहीं बचा सके। लोकसेवकों की भर्ती के समय भाई भतीजावाद रिश्वत के रूप में चाँदी का जूता, राजनीतिक पदाधिकारियों का पक्षपातपूर्ण दबाव जातिवाद, धर्मवाद, सम्प्रदायवाद, क्षेत्रवाद पर आधारित संकीर्ण मनोवृत्तियाँ दादागीरी और गुण्डागर्दी, खुशामद और चमचागीरी आदि विभिन्न राहु-केतुओं के बीच प्रतिभा और योग्यता का चन्द्रमा प्रायः उभर ही नहीं पाता। अनेक बार तो उसकी भ्रूण-हत्या हो जाती है और अवसर की समानता की घोषणा केवल मृग-मरीचिका बनकर रह जाती है।

(8) दोषपूर्ण सेवीवर्ग व्यवस्था
(A Defective Personnel System)

विदेशी चिन्तन, साहित्य और विशेषज्ञों की राय से प्रभावित स्वतन्त्रता के बाद की भारतीय सेवीवर्ग व्यवस्था अनेक दृष्टियों से दोषपूर्ण है। यह एक ओर तो कर्मचारियों के लिए असन्तोषजनक है तथा दूसरी ओर जनहित की सिद्धि में असमर्थ है। स्वतन्त्रता की रजत-जयन्ती मनाने के बाद भी यह जनता का विश्वास प्राप्त नहीं कर सकी है। इसने यहाँ की जनता और नेता दोनों की अवहेलना की है। प्रशासकों के प्रति जन असन्तोष के कारण अनेक सरकारी योजनाएँ कार्यान्वित नहीं हो पातीं अथवा असफल हो जाती हैं। अनेक अनुभवात्मक (Empirical) अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि प्रशासन और जनता के बीच का सम्बन्ध अविश्वास, विरोध, पृथकता, संघर्ष और अवहेलना पर आधारित है। जनता सोचती है कि प्रशासन उनकी सहायता करने की अपेक्षा त्रुटियाँ तलाश करने में अधिक रुचि लेता है और प्रशासक बिना रिश्वत लिए कोई काम नहीं करते। प्रशासन में देरी, भ्रष्टाचार, उचित संचार का अभाव तथा उत्तरदायित्व की अवहेलना जैसे दोष भरे पड़े हैं। दूसरी ओर प्रशासक सोचते हैं कि जनता जानबूझकर सरकारी

योजनाओं में टांग अड़ाती है। वे राजनीतिक हस्तक्षेप को सारी बुराइयों की जड़ मानते हैं।

भारतीय नौकरशाही के विरुद्ध की गई सारी बुराइयों की वास्तविक जड़ें सेवीवर्ग प्रशासन की दोषपूर्ण तकनीकों में निहित हैं। अधिकारियों का असहायतापूर्ण दृष्टिकोण, कार्यसम्पन्नता में अनावश्यक देरी, भ्रष्टाचार, आवश्यक वस्तुओं की अनुपलब्धि, जन-साधारण को सेवाएँ प्रदान करने वाले अभिकरणों की अवहेलना, भाई-भतीजेवाद और पक्षपात का प्रभाव, जनता की शिकायतें सुनने और उनका निवारण करने की अपर्याप्त व्यवस्था आदि दोष किसी न किसी रूप में सेवीवर्ग प्रबन्ध की दोषपूर्ण व्यवस्था के परिचायक हैं। शहरों से निकले शिक्षित वर्ग के प्रशासनिक अधिकारी अपने व्यावसायिक हितों में अधिक रुचि लेते हैं। जनता की सेवा उनके आदर्शों की कार्यसूची में कोई स्थान नहीं रखती।

(9) सेवीवर्ग में राजनीतिक हस्तक्षेप

(Political Interference in Personnel Management)

भारत में सेवीवर्ग प्रशासन राजनीति के शिकंजे में ग्रस्त है। मन्त्रियों और सांसदों तथा विधायकों के टेलीफोन तथा निजी पत्र सेवीवर्ग की भर्ती, पदोन्नति, वेतन, अनुशासन आदि पर अनुचित दबाव डालते हैं। योग्य और प्रतिभाशाली प्रत्याशी ताकते रह जाते हैं तथा मध्यस्तरीय अथवा साधारण योग्यता वाले लोग सरकारी पदों को हड़प लेते हैं। अयोग्य अथवा कम योग्य कार्यकर्त्ताओं के कारण प्रशासनिक कार्यकुशलता घट जाती है। पदोन्नति के मामलों में राजनीतिक हस्तक्षेप कर्मचारियों के मनोबल को गिरा देता है। वे अपने कार्य की ओर विशेष ध्यान देने की अपेक्षा राजनीतिक जोड़-तोड़ में लग जाते हैं क्योंकि उन्नति का यही सरल और सफल मार्ग शेष रह जाता है। प्रशासनिक अधिकारियों के दिन-प्रतिदिन के कार्यों में काफी राजनीतिक हस्तक्षेप किया जाता है। राजस्थान के प्रशासनिक समुदाय में एक रोचक वार्ता प्रचलित है। तदनुसार एक मन्त्री की पक्षपातपूर्ण सिफारिश को जब उसके सचिव ने कई दिन तक कार्यान्वित नहीं किया तो मन्त्री महोदय ने उसे बुला भेजा और अपने जूते की ओर इशारा करते हुए प्रश्न किया कि यदि पाँव में जूता न आए तो पाँव कटाया जाता है अथवा जूता बदला जाता है। मन्त्री ने सजग किया कि सचिव इतने में ही सारी बात समझ ले। कहने का तात्पर्य यह है कि अवांछनीय राजनीतिक नियन्त्रण द्वारा प्रशासकों को नियम विरोधी, अनियमित, अवांछनीय, पक्षपातपूर्ण जनहित विरोधी और अनुत्तरदायी कार्य करने के लिए मजबूर किया जाता है। फलतः नौकरशाही प्रजातान्त्रिक आदर्शों और विकासवादी लक्ष्यों को पूरा नहीं कर पाती। भूतपूर्व सुरक्षा सचिव श्री पी वी आर राव ने इसका एक रोचक उदाहरण प्रस्तुत किया है। एक मन्त्री ने एक गाँव में अपना दौरा करते समय कुछ लोगों को भूमि देने के आदेश प्रसारित किए। बाद में जब दूसरे मन्त्री इस गाँव के दौरे पर आए तो उन्होंने अपनी सार्वजनिक घोषणा में पूर्व आदेशों को रद्द कर दिया। आश्चर्य यह है कि यथार्थ में

इन दोनों ही मन्त्रियों को भूमि देने और न देने की सत्ता नहीं थी, यह किसी तीसरे मन्त्री के क्षेत्राधिकार का विषय था।[1] श्री राव का मत है कि मन्त्रियों द्वारा सरकारी अधिकारियों की नियुक्ति पदोन्नति, स्थानान्तरण अनुशासनात्मक कार्यवाही आदि के रूप में जो कुछ भी कहा या किया जाता है उसका प्रशासनिक कार्यकुशलता पर गम्भीर प्रभाव पड़ता है। राजनीतिक स्वार्थ प्रशासनिक नियमों को बदल देते हैं। वे ऐसे अनेक पदों का आविष्कार करते हैं जिनकी आवश्यकता एवं उपयोगिता नगण्य है किन्तु केवल अपने समर्थकों एवं स्वजनों के भरण-पोषण की व्यवस्था के लिए करदाताओं पर यह अनावश्यक भार डाला जाता है। इसी प्रकार नए विभाग खोले जाते हैं तथा पुराने विभागों का विस्तार किया जाता है।

राजनीतिक हस्तक्षेप और पक्षपात संगठन के कुछ सदस्यों को लापरवाह बना देता है और अन्य को असन्तुष्ट तथा विद्रोही बना देता है। फलतः संगठन में प्रशासन की गम्भीर समस्या उठ खड़ी होती है। ऐसे वातावरण में प्रशासनिक कर्मचारियों को दिया गया प्रशिक्षण भी केवल औपचारिक और कागजी बनकर रह जाता है। कर्मचारी यह जानता है कि राजनीतिक पृष्ठपोषण के होने पर प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं है और न होने पर प्रशिक्षण अनुपयोगी है। राजनीतिक हस्तक्षेप के कारण पदोन्नति में काफी अनियमितताएँ होती हैं। वरिष्ठ तथा योग्य कर्मचारी देखते रह जाते हैं और नीचे वालों को सर पर बैठा दिया जाता है। इस सारी स्थिति का सजीव चित्रण करते हुए एन. बी. बनर्जी ने लिखा है कि "प्रशासन का राजनीतिक दलों के क्रीड़ा-स्थल के रूप में प्रत्यावर्तन तथा निजी स्वार्थों की ओर झुकाव चाहे वह समाजवाद या सामाजिक प्रजातन्त्र के आवरण में ही क्यों न हो, देश के सच्चे हित में नहीं है। इससे केवल भ्रष्टाचार, भाई भतीजावाद, अकार्यकुशलता एवं क्षेत्रवाद को ही बढ़ावा मिलता है जो स्वतन्त्रता के बाद सभी दलों द्वारा खुलकर प्रोत्साहित किए जा रहे हैं।"[2]

(10) सेवीवर्ग की प्रकृति एवं चरित्र

(The Nature and Character of Personnel)

भारतीय सेवीवर्ग प्रशासन के पूर्ववर्णित दोषों का गम्भीर तथा तात्कालिक परिणाम प्रशासनिक पदों पर अयोग्य, भ्रष्ट, अकार्यकुशल तथा बेईमान पदाधिकारियों की नियुक्ति की है। यहाँ प्रतिभाशाली प्रत्याशी भी पूरे विश्वास के साथ यह नहीं कह सकता कि उसका चयन हो जाएगा क्योंकि चयन के समय सिफारिश, रिश्वत, भाई-भतीजेवाद और भ्रष्टाचार जैसे अवांछनीय तत्वों का बोलबाला रहता है। इस दौड़ में अधिकांश योग्य प्रत्याशी पिछड़ जाते हैं तथा साधारण बुद्धि के लोग पदों पर प्रतिष्ठित हो जाते हैं। सामाजिक संरचना में

1 *P. V. R. Rao*, Red Tap and White Cap, Delhi, Orient Longmans, 1970, p 109
2 *N. B. Banerjee*, Under Two Masters, 1970, p. 234

निम्न अथवा मध्यम वर्ग के होने के कारण ये अधिकतर महत्त्वाकांक्षी होते हैं। इनकी महत्त्वाकांक्षाएँ इन्हें कार्यकुशलता की ओर प्रेरित करने की अपेक्षा उन्नति के भ्रष्ट तरीके अपनाने को प्रेरित करती हैं। ये धन-दौलत, प्रतिष्ठा और शक्ति की दौड़ मे शामिल हो जाते हैं। इनके द्वारा 'रम, रमणी और रमी' (Wine, Woman and Wealth) के द्वारा कार्य किए और कराए जाते हैं। उनका पूरा दृष्टिकोण बदल जाता है। वे स्वय को जनसेवक मानने की अपेक्षा जनता को अपना सेवक मानने लगते हैं।

भारतीय लोक-सेवा के अधिकांश सदस्य धनिक वर्ग के होने के कारण अथवा धनी बनने की अभिलाषा से प्राय धनवानो के एजेण्ट के रूप मे कार्य करते हैं। इनकी सारी नीतियाँ और रीतियाँ सम्पन्न वर्ग के हितो की रक्षा का कार्य करती है। जन-साधारण तथा निर्धन वर्ग के लिए इनका व्यवहार अहकार और मद से पूर्ण होता है। ये उपयुक्त मानव सम्बन्धो की स्थापना मे अरुचिकर, अक्षम और सदैव कुर्सी की प्राप्ति एव अनुरक्षण मे प्रयत्नशील रहते हैं। वे किसी भी प्रशासनिक समस्या पर विचार करते समय मानवता के आधार पर नही वरन् बौद्धिक या तार्किक रूप मे सोचते हैं क्योंकि उनका चयन जिन प्रतियोगी परीक्षाओ द्वारा किया जाता है उनमे आत्मिक गुणो का कोई महत्त्व नही होता वरन् बौद्धिक उपलब्धियों की स्पर्द्धा रहती है। कुल मिलाकर लोक-सेवाओ मे कार्य का वातावरण इस प्रकार का बन जाता है कि लोक-सेवक बिना कष्ट उठाए अधिक फल की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। वे नेहरूजी के आदर्श वाक्य आराम-हराम है' को 'काम हराम है' के रूप मे परिणत कर लेते हैं।

भारत मे विशिष्ट वर्गीय संरचना पर एक दृष्टि
(A Glimpse of Elite Structure in India)

प्रत्येक समाज मे शक्ति, प्रभाव सत्ता, प्रतिनिधित्व के गुण, स्वातन्त्र्य समता, व्यवहार कौशल आदि की दृष्टि से लोगो मे अन्तरो का रहना स्वाभाविक है और ये अन्तर ही समाज मे विशिष्ट अथवा अभिजन-वर्ग, साधारण वर्ग आदि की रचना करते हैं। विशिष्ट-वर्ग या अभिजन-वर्ग सिद्धान्त (Theory of Elite Class) के अनुसार जन-साधारण के बीच कुछ लोग निश्चय ही अन्य की अपेक्षा श्रेष्ठ होते हैं और उनके विचारो तथा दृष्टिकोणो का अधिकतर आदर किया जाता है। ये श्रेष्ठतर व्यक्ति ही अभिजन-वर्ग अथवा विशिष्ट-वर्ग का निर्माण करते हैं। समाज के कौन-कौन से व्यक्ति अभिजन-वर्ग मे आते हैं, यह बात अलग-अलग समाजो मे अलग अलग पाई जाती है। सामाजिक क्षेत्र मे भी विशिष्ट-वर्ग का अपना महत्त्व होता है और राजनीतिक एवं प्रशासनिक क्षेत्र मे भी विशिष्ट या अभिजन-वर्ग अपनी विशिष्ट भूमिका निभाता है। राजनीतिक और प्रशासनिक कार्य-क्षेत्र के विस्तार के साथ-साथ राजनीतिक एव प्रशासनिक अभिजन-वर्ग या विशिष्ट-वर्ग का महत्त्व बढ़ता जा रहा है।

किसी भी राजनीतिक व्यवस्था में लोग अपनी विशिष्ट योग्यताओं, कार्य-क्षमता, नेतृत्व आदि गुणों के कारण देश की राजनीति और समाज में प्रभाव जमा लेते हैं उन्हें राज्य विज्ञान की भाषा में राजनीतिक अभिजन-वर्ग (Political Elite) कहा जाता है। राज्य संस्था के उदय से ही प्रशासनिक, राजनीतिक कार्यों के लिए ऐसे विशेषज्ञ लोगों की आवश्यकता रही है जिनमें विशेष क्षमताएँ, विवेक गुण हो। राजनीतिक अभिजन-वर्ग की व्याख्या करते हुए कार्ल जे फ्रेडरिक ने लिखा है कि—यह उन लोगों का एक समूह होता है जो राजनीति में अद्वितीय कार्य-सम्पन्नता के द्वारा विशिष्ट होते हैं जो एक विशेष समाज के शासन को अपने हाथों प्रभावशाली रूप में एकाधिकृत कर लेते हैं और जिनमें समूह की एकता की भावना होती है जो समय-समय पर सहयोग के रूप में अभिव्यक्त होती है। एक राजनीतिक विशिष्ट वर्ग शक्ति और शासन प्राप्त करने की योग्यता में काफी आगे बढ जाता है।

यद्यपि राजनीतिक अभिजन-वर्ग और प्रशासकीय अभिजन-वर्ग (Ruling or Governing Elite) में भिन्नता है, तथापि यह भिन्नता ऐसी नहीं है कि राजनीतिक अभिजन-वर्ग प्रशासकीय अभिजन-वर्ग से सम्बन्धित न हो या उस श्रेणी में आ न सकें और इसी प्रकार प्रशासकीय अभिजन-वर्ग की श्रेणी में न आ सकें। अनेक विचारकों का मत है कि दोनों को परस्पर भिन्न किया जाना चाहिए लेकिन फ्रेडरिक आदि का मत है कि ऐसा करना भ्रमोत्पादक होगा। जो व्यक्ति राज्य में विशेषज्ञ है वह प्रशासन से सम्बन्ध नहीं रखेगा, यह सन्देह की बात है।

संरचना और संगठन
(Structure and Organisation)

नौकरशाही के प्रसंग में जब हम विशिष्ट वर्ग (Elite) की बात करते हैं तो हमारा आशय प्रशासन के उच्च पदों पर आसीन उन अधिकारियों से होता है जो सामान्यतः अपनी प्रकृति स्तर, विचार, पृष्ठभूमि आदि की दृष्टि से आम लोगों से भिन्नता लिए होते हैं, उनमें आम लोगों में अपने आपको श्रेष्ठतर मानने की भावना (Superiority Complex) विद्यमान होती है, वे प्रायः आम जनता के साथ घुलना-मिलना पसन्द नहीं करते, वे लोकतन्त्र की बात तो करते हैं पर उनका व्यावहारिक आचरण लोकतन्त्रीय नहीं होता। परतन्त्र भारत में इंडियन सिविल सर्विस (I C S) के अधिकारी इस नौकरशाही विशिष्ट-वर्ग की साकार मूर्ति थे, तो स्वतन्त्र भारत में भारतीय प्रशासनिक सेवा (I A S) के बहुत से अधिकारी नए परिवेश में न्यूनाधिक उसी परम्परा को निभा रहे हैं।

नौकरशाही के प्रसंग से वर्ग की अवधारणा को हम उदाहरण रूप में अधिक अच्छी तरह समझ सकेंगे और इसके लिए आज़ादी से पहले के तथा आज़ादी के बाद के भारतीय उदाहरण अधिक उपयुक्त होंगे। स्वतन्त्रता से पूर्व तक इंडियन सिविल सर्विस (I.C S), इंडियन पुलिस सर्विस (I P S), इंडियन फोरेस्ट सर्विस

सरचना का तथ्यात्मक विश्लेषण दिया है और आई ए एस अधिकारियो की ग्रामीण एव शहरी, शैक्षणिक, व्यावसायिक, पैतृक आदि पृष्ठभूमियो को स्पष्ट किया है। उनके द्वारा सकलित सारणियाँ प्रकट करती हैं कि अपनी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि मे वर्तमान आई ए एस अधिकारी समाज मे एक 'विशिष्ट-वर्ग समूह' (Elite Groups) माने जाते हैं।

वास्तव मे जब तक नौकरशाही मे एक 'विशिष्ट-वर्गवाद' (Elitism) विद्यमान है तब तक व्यवहार मे यह अपेक्षित सीमा तक लोकतन्त्रात्मक नहीं हो सकती। निष्पक्षता की परम्परा का निर्वाह भी तभी सम्भव है जब अधिकारी तन्त्र भी उन व्यापक उद्देश्यो के लिए प्रतिबद्ध हो जो राजनीतिक सरकार अपने चुनाव घोषणा पत्रो के माध्यम से जनता के सम्मुख घोषित कर चुकी है। विभिन्न देश समाजवाद अथवा सामाजिक ढाँचे वाली शासन-व्यवस्था की बातें करते हैं, लेकिन यह ढाँचा उन अधिकारियो के माध्यम से सम्भव है जो अपने आपको विशिष्ट वर्ग समूह (Elite Group) मानकर चलते हैं, जिनकी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एव शैक्षणिक पृष्ठभूमि आम लोगो से भिन्न रही है और जिनमे सामान्य जनता के दुख-सुख या उनकी भावनाओ को समझने की कोई क्षमता नही है।

भूमिका या कार्य और सुझाव
(Role and Suggestions)

अब यह देखना आवश्यक है कि भारत जैसे एक लोकतान्त्रिक देश में नौकरशाही की क्या भूमिका अपेक्षित है और तथाकथित विशिष्ट-वर्ग के विचार और व्यवहार मे क्या परिवर्तन होने चाहिए।

शीर्ष के नौकरशाह सगठन और अपने अधीनस्थो के मालिक होते हैं। राजनीतिक सरकार न केवल नीति-निर्माण मे उनसे सहायता एव परामर्श लेती है बल्कि नीतियो के क्रियान्वयन के लिए भी उन पर निर्भर करती है। यही कारण है कि अनेक विचारको ने नौकरशाही को सरकार की चौथी शाखा (Fourth Branch of Government) तक कह दिया है। ये नौकरशाही जिनकी गणना प्रशासकीय विशिष्ट वर्ग मे की जाती है, जो कार्य करते हैं और जो भूमिका इन्हे निभानी चाहिए उसे हम निम्नवत् रख सकते हैं—

1. किसी भी लोकतान्त्रिक सरकार का सच्चा मापदण्ड बदलती हुई सामाजिक आवश्यकताओं को पहचानना और उनके अनुसार कार्य करना है। सस्थाओ मे नवीन प्रयोग लाने के लिए नौकरशाही अथवा लोक-सेवा द्वारा आवश्यक कुशलता और अनुभव प्रदान किया जाना चाहिए। इस अर्थ मे नौकरशाही एक सामाजिक साधन है जो व्यवस्थापिका के अभिप्राय और उसकी पूर्ति के मध्य स्थित दूरी को भरती है। व्यवस्थापिका के निर्णयो को क्रियान्वित करने का भार नौकरशाही पर होता है लेकिन समुचित रूप से इस भार का वहन

तब तक नहीं किया जा सकता जब तक नौकरशाही सामाजिक परिवर्तनों को समुचित रूप से न पहचाने और अपने रूढ़िगत दृष्टिकोण को लचीला न बनाए नौकरशाही विशिष्ट वर्ग प्राय विचारों, कठोरताओं और भिन्नताओं के ऐसे घेरे मे फँसा रहता है कि वह जन-साधारण की आकांक्षाओं को समझने की परवाह नहीं करता और जब तक ऐसा नहीं करता और जब तक ऐसा नहीं होता तब तक बदलती हुई सामाजिक माँगो के अनुरूप समुचित कार्य नहीं किया जा सकता।

2 नौकरशाही म विशिष्ट वर्गवाद की सबसे बड़ी अभिव्यक्ति इस रूप मे है कि वे ऊँची कुर्सी पर बैठते ही स्वय को जनता से ऊपर अथवा जनता का स्वामी समझने लगते हैं और इस हैसियत से किसी वर्ग अथवा व्यक्ति विशेष के साथ पक्षपात करने मे सकोच नहीं करते। एक लोकतान्त्रिक समाज मे लोक प्रशासकों को स्वय को जनता का सेवक मानना चाहिए। उनसे अपेक्षित है कि वे जनता की कठिनाइयों को दूर करें और जनता के प्रश्नों का समाधान करने को सदैव तैयार रहे। उनके प्रशासन की अन्तिम कसौटी यही है कि वह जन-आकांक्षाओं के कितना अनुरूप है अत स्वाभाविक है कि नौकरशाही लोक-सम्पर्क के महत्त्व को समझे। लोक-सम्पर्क का मूल उद्देश्य जनता की आवश्यकताओं को समझना, उनके साथ प्रशासकीय अनुभवों का समन्वय करना और व्यवहार मे लोकप्रिय बनना है। लोक-सम्पर्क के माध्यम से कठिनाइयों को खोजकर उनके उचित निदान की व्यवस्था करना सम्भव है। समुचित लोक-सम्पर्क प्रशासकों म यह अनुभूति पैदा करने मे होगा कि वे सामान्य जनता के अग हैं जो कर्त्तव्यों का दायित्व निभाने के लिए कुर्सी पर बैठे हैं, अत उन्हे अपने आपको कोई विशिष्ट वर्ग समूह (Elite Group), नहीं समझना चाहिए।

3. नौकरशाही विशिष्ट वर्ग का नीति-निर्धारण मे योगदान होता है, व्यवस्थापिका बहुत कुछ प्रशासनिक विशेषज्ञों पर आधारित रही है, क्योंकि सार्वजनिक नीति मे प्राय ऐसी तकनीकी जटिलताएँ आ जाती हैं जिनमे विशेष ज्ञान की आवश्यकता होती है। नीति-निर्माण पर नौकरशाही का प्रभाव व्यवस्थापिका की प्रक्रिया के दो सोपानों पर पड़ता है। प्रथम, व्यवस्थापन की पहल करने के लिए तथा प्रस्तावित विषयो पर व्यवस्थापिका को सिफारिश करने के लिए प्राय नौकरशाही को आमन्त्रित किया जाता है। दूसरे, व्यवस्थापिका द्वारा पारित विधियो को क्रियान्वित करने मे नौकरशाही कुछ स्वायत्तता का प्रयोग करती है। नौकरशाही का परामर्श महत्त्व रखता है क्योंकि यह जानती है कि नीति को व्यवहार मे किस प्रकार क्रियान्वित किया जाएगा। यदि नीति के लक्ष्य उपलब्ध नहीं हो पाते तो इसकी जानकारी भी नौकरशाही द्वारा ही प्रदान की जा सकती है।

प्रशासनिक अधिकारी अपने राजनीतिक प्रमुखों के साथ चार प्रकार से सहयोग करते हैं। प्रथम, आवश्यक डेटा प्रदान करके नीति-निर्माण मे सहायता करते हैं, निर्मित नीति के व्यवहार की समस्याओं का उल्लेख करते हैं और उन

नीतियों पर एक विशेषज्ञ की हैसियत से स्वतन्त्र आलोचना प्रस्तुत करते हैं। दूसरे, अपनी प्रशासकीय स्वेच्छा शक्ति क्षेत्र में वे नवीन नीतियों की रचना कर सकते हैं। तीसरे, राजनीतिक प्रमुख द्वारा निर्धारित नीति को क्रियान्वित करने के सन्दर्भ में अपने अधीनस्थों को आवश्यक निर्देश देकर उनके कार्यों का निरीक्षण करके और अन्य उपायों से सम्पूर्ण कार्यक्रम को पूरी गति दे सकते हैं। चौथे, वे अपने राजनीतिक वरिष्ठों को किसी भी प्रस्ताव से सम्बन्धित अपने विचारों से परिचित करा सकते हैं जिन पर कि परामर्श देने का अधिकार उनको मिला हुआ है।

जब नीति की सिफारिश और नीति के क्रियान्वयन में नौकरशाही की इतनी प्रभावशाली भूमिका होती है तो उनसे अपेक्षित है कि वे संकुचित और विशिष्टवादी विचारधारा के जाल में न फंसे रहें। जन-साधारण की आशाओं, आकांक्षाओं के प्रति सहानुभूतिपूर्ण रुख रखें, लोगों की अपेक्षाओं को समझें और नीति सम्बन्धी सिफारिश के समय इस बात का ध्यान रखें। नीति-क्रियान्वयन के समय के आवश्यक अड़ंगेबाजी का रुख न अपनाएँ। राजनीतिक प्रमुख प्राय जनता के निकट सम्पर्क में रहते हैं अतः नौकरशाही समुचित परामर्श देते हुए उनसे पूर्ण सहयोग करें। भारत जैसे देश में नौकरशाही के आदर्श और रूढ़िवादी रुख के कारण ही बहुत सी नीतियाँ समुचित रूप से क्रियान्वित नहीं हो पाती और इसलिए प्रधान मन्त्री सहित अनेक दूसरे मन्त्रियों को आई. सी. एस. के नेतृत्व से प्रभावित प्रशासनिक मशीनरी को नया दृष्टिकोण देना होगा, उसको नई गति देनी होगी और ऐसा ढाँचा प्रदान करना होगा जो समाजवादी समाज के उद्देश्यों को तेजी से पूरा करने में सहायक हो सके तथा जो जन-साधारण की आशाओं आकांक्षाओं के साथ तादात्म्य बैठा कर कार्य कर सके।

4 नौकरशाही से अपेक्षित है कि वे प्रतिद्वन्द्वी हितों के बीच कुशल समायोजन करें। वे लोक-हित विरोधी दावों, सेविन व्यक्तियों की माँगों, संगठनात्मक आवश्यकताओं और व्यक्तिगत मूल्य की प्राथमिकताओं के बीच सन्तुलन स्थापित करें। नौकरशाही के कार्यों में व्यावसायिक मूल्यों के बीच कई बार विरोध उत्पन्न हो जाता है अतः यह आवश्यक है कि निर्णय लेते समय प्रशासनिक अधिकारी व्यक्तिगत नैतिकता और व्यावसायिक मापदण्ड दोनों का ध्यान रखें।

हाल ही कुछ लोगों ने यह विचार प्रकट किया कि चूँकि प्रशासक वर्ग या कर्मचारी वर्ग सरकार की नीतियों एवं कार्यक्रमों से प्रतिश्रुत (Committed) नहीं हैं अतः वे उन कार्यक्रमों को सफल बनाने का पूरा-पूरा प्रयास नहीं करते। यदि प्रतिश्रुत प्रशासक वर्ग हो तो कार्यक्रमों के सफल होने की सम्भावना बढ़ जाएगी। वास्तव में प्रतिश्रुत प्रशासक वर्ग का मॉडल उन देशों में उपयोगी सिद्ध हो सकता है, जहाँ राजनीतिक सत्ता स्थायी रूप से एक दल के हाथ में रहती हो, जैसे—सोवियत रूस में। जहाँ इस प्रकार की परिस्थिति नहीं है और दलों के सत्तारूढ़ होने और सत्ता से हटाने का क्रम बना रहता है, वहाँ पर प्रतिश्रुत प्रशासक या कर्मचारी वर्ग से अनेक प्रकार की समस्याएँ खड़ी हो जाएँगी।

हाल ही के वर्षों में सामान्य प्रशासकों (Generalists) के कार्यों की कटु आलोचना हुई है। प्रायः कहा जाता है कि आर्थिक एवं औद्योगिक क्षेत्रों में सरकार की असफलता का एक बड़ा कारण यह है कि सामान्य प्रशासकीय सरकारी नीतियों को बनाने के लिए उत्तरदायी होनी हैं। नीति निर्धारित करने वाले पदों पर सामान्य प्रशासकों के एक छत्र अधिकार के प्रति अनेक देशों में कटु-प्रतिक्रियाएँ हुई हैं। 1968 में फुल्टन समिति की रिपोर्ट में कहा गया था—वैज्ञानिकों, इन्जीनियरों और अन्य विशेषज्ञ वर्गों के सदस्यों को न तो पूरा उत्तरदायित्व एवं अवसर दिया जाता है और न ही उस उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए अधिकार ही दिए जाते हैं। प्रशासकीय सुधार समिति ने भी आई ए एस अधिकारियों के उच्च नीति निर्माणकारी पदों पर उनके एकछत्र अधिकार पर अंकुश लगाने का परामर्श दिया था। उसका कहना था कि इन अधिकारियों को भूमि लगान, न्यायिक कार्य आदि दिए जाने चाहिए। नीति-निर्माणकारी पदों पर इनके एकछत्र अधिकार रोकने के लिए यह सुझाव भी दिया जाना था कि इन पदों को भी प्रथम श्रेणी के अधिकारियों में से, जिनकी वरिष्ठता 8 से 12 साल के बीच हो चुना जाना चाहिए। सामान्य प्रशासकों और विशेषज्ञों के बीच विवाद का अन्त करने के लिए आवश्यक है कि दोनों का दर्जा समान कर दिया जाए और उनके वेतनमानों में कोई भेदभाव न हो।

वास्तव में भारत में प्रशासनिक वर्ग या नौकरशाही वर्ग अनेक दोषों से पीड़ित है। अधिकारियों में आत्म-श्लाघा का अतिशय भाव भरा है, वे अपने कार्यालय को आवश्यकता से अधिक महत्त्व देते हैं व्यक्तिगत नागरिकों की सुविधाओं या भावनाओं के प्रति उदासीन रहते हैं, विभागीय निर्णयों की सत्ता की लोचहीनता और बाध्यकारिता के घेरे में फँसे रहते हैं तथा विनियमों और औपचारिक प्रक्रियाओं के प्रति पूरा झुकाव रखते हैं। वे प्रशासन की विशेष इकाइयों की प्रक्रियाओं को अधिक महत्त्व देते हैं तथा सरकार को एक सम्पूर्ण रूप में देखकर यह जानने का प्रयास नहीं करते हैं कि प्रशासकों और प्रशासितों के बीच का सम्बन्ध लोकतान्त्रिक प्रक्रिया का एक मूलभूत भाग होता है। नौकरशाही के इन दोषों को दूर किया जाना अनिवार्य है। इसके लिए आवश्यक है कि—(1) भर्ती प्रक्रिया को पूर्णतः लोकतान्त्रिक बनाया जाए, उसमें राजनीतिक अनुग्रह के लिए कोई स्थान न हो, (2) नियुक्ति के सम्बन्ध में कुछ ऐसी व्यवस्था हो कि समाज के सभी वर्गों को समुचित अनुपात में स्थान मिल सके, (3) नौकरशाही को उसकी सीमा के अन्दर रखने के लिए उसकी शक्तियों को विकेन्द्रित कर दिया जाए, (4) नौकरशाही पर संसद् और मन्त्रिमण्डल का प्रभावशाली राजनीतिक नियन्त्रण रहे ताकि उनके द्वारा शक्ति के सम्भावित दुरुपयोग पर रोक लगाई जा सके (5) नौकरशाही को सामान्य नागरिकों के प्रति उत्तरदायी बनाया जाए ताकि वे अपने आपको एक पृथक् वर्ग या जाति के रूप में न समझें, (6) ऐसे प्रशासनिक न्यायाधिकरण स्थापित किए जाएँ जहाँ सामान्य नागरिक नौकरशाही के विरुद्ध अपनी शिकायतें

प्रस्तुत कर सकें और दूर करा सकें, (7) प्रशासकों और प्रशासितों के बीच सम्पर्क को प्रभावशाली बनाया जाए, तथा (8) सामान्य जनता का सहयोग प्राप्त किया जाए गैर-सरकारी लोगों को भी प्रशासन में योगदान के लिए आमन्त्रित किया जाए। नौकरशाही की आलोचना के सन्दर्भ में हम यह भी ध्यान रखना होगा कि वे वर्तमान ढांचे में व्यक्तिगत क्षमताओं, कार्यालय नियमों, विनियमों आदि की सीमाओं से बंधे रहते हैं और अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिए आर्थिक तथा सामाजिक वातावरण से बहुत कुछ सहायता ले पाते हैं। सारा राजनीतिक ढांचा इस प्रकार का है कि उनके बड़े से बड़े काम को प्रचार-यन्त्र द्वारा दबाया जा सकता है। गलतियों की आशंका से भी अधिकारी जनता से दूर रहने का प्रयत्न करते हैं। अतः आवश्यक है कि कानूनी ढांचे में भी समुचित परिवर्तन किए जाएँ और नौकरशाही के मन में बैठी आशंकाओं को दूर करने का वातावरण तैयार किया जाए तथा उन्हें औपचारिकता की दीवार लांघने को उत्साहित किया जाए।

ग्रेट-ब्रिटेन में सेवीवर्ग प्रशासन
(Personnel Administration in Great Britain)

ग्रेट-ब्रिटेन की शासन-व्यवस्था में नागरिक सेवाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सिडनी तथा बेट्रिस वेब ने लिखा है कि "ग्रेट-ब्रिटेन में सरकार का सचालन न तो मन्त्रिमण्डल द्वारा किया जाता है और न व्यक्तिगत मन्त्रियों द्वारा, वरन् यह नागरिक सेवा द्वारा किया जाता है।"[1] यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण होते हुए भी *ब्रिटिश राजनीति में लोक-सेवाओं के महत्त्व को स्पष्ट प्रदर्शित करता है।* जिन विभागों के मन्त्री प्रभावशाली एवं शक्ति सम्पन्न नहीं होते अथवा विभागीय कर्तव्यों पर विशेष ध्यान नहीं दे पाते उनके सम्बन्ध में यह पर्याप्त सही है। सरकार के कार्य दिन-प्रतिदिन जितने अधिक जटिल और तकनीकी होते जा रहे हैं, प्रशासनिक अधिकारियों का प्रभाव भी उतना ही अधिक बढ़ता जा रहा है। जनता के प्रतिनिधि प्रशासनिक जटिलताओं एवं तकनीकियों की विशेष जानकारी नहीं रखते किन्तु लोक प्रशासकों का इनसे निकट सम्बन्ध रहता है। अतः इनकी पूरी तस्वीर उनके मस्तिष्क में स्पष्ट रहती है। वे ब्रिटिश प्रशासन के वास्तविक नियन्त्रणकर्त्ता बन जाते हैं। रेमजेम्योर ने आलोचनात्मक शैली में यह माना है कि ब्रिटिश शासन-प्रणाली में नौकरशाही की शक्तियां प्रशासन, व्यवस्थापन और वित्त इन तीनों ही क्षेत्रों में व्याप्त हैं। वह मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व के आवरण में फ्रेंकेंस्टीन (Frankenstein) के दैत्य की भाँति पनपी तथा विकसित हुई है और वह अपने सृष्टा का ही भक्षण करना चाहती है।[2] यह सच है कि *नौकरशाही अपनी विशेषज्ञता,* सलग्नता, अवकाश, समस्याओं की जटिलता, तकनीकी एवं व्यापकता के कारण मन्त्रिमण्डल पर विशेष प्रभाव रखती है। इस पृष्ठभूमि में यह अनिवार्य हो जाता

1 *Sidney and Beatrice Webb* : Constitution for a Socialist Commonwealth of Great Britain, 1920, p 67
2 *Ramsay Muir* : How Britain is Governed, p 51

है कि गुण की दृष्टि से लोक सेवाओं का उच्च स्तर हो तथा वे अपने दायित्वों को सफलता एव कुशलता के साथ निभा सकें।

लोक सेवाओं के उच्च स्तर की माँग अनेक प्रश्न उठाती है, जैसे–क्या लोक सेवाओं के विभिन्न पद देश के प्रतिभाशाली लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर पाते हैं, क्या उनके चयन की व्यवस्था योग्यतम व्यक्तियों को लेने का प्रबन्ध करती है, क्या नियुक्त पदाधिकारी अपने कर्त्तव्यों के प्रति निष्ठावान रहते हैं क्या वे किसी भी दल के मन्त्रियों के साथ निष्पक्ष तथा अनाम दृष्टि से कार्य कर सकते हैं, आदि-आदि। इन प्रश्नों का सकारात्मक उत्तर सेवीवर्ग प्रबन्ध की उपयुक्त व्यवस्था की माँग करता है। दूसरे शब्दों में लोक सेवकों की भर्ती, प्रशिक्षण, वेतन व्यवस्था, अनुशासनात्मक कार्यवाही, पदोन्नति, सेवा-निवृत्ति आदि के लिए सन्तोषजनक व्यवस्था की जानी चाहिए। ग्रेट-ब्रिटेन में वहाँ की अन्य सस्थाओं की भाँति सेवीवर्ग व्यवस्था भी ऐतिहासिक विकास का परिणाम है।

1 लोक सेवा इतिहास की उपज (Civil Service is the Product of History)—ग्रेट ब्रिटेन म लोक सेवाओं का वर्तमान स्वरूप अधिक पुराना नहीं है। 19वीं शताब्दी तक यहाँ लोक सेवकों की नियुक्ति अनुग्रह (Patronage) व्यवस्था के आधार पर होती थी। एच एम स्टॉउट (H M Stout) के कथनानुसार अधिकारियों की नियुक्ति राजनीतिक एव व्यक्तिगत प्रभाव के आधार पर की जाती थी तथा व्यावसायिक योग्यताओं पर कम ध्यान दिया जाता था।[1] एक बार नियुक्त होने के बाद व्यक्ति अपने पद पर आजीवन बना रहता था। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में सेवीवर्ग व्यवस्था की इन बुराइयों के विरुद्ध शीघ्र आलोचनाएँ हुई। थॉमस कार्लाइल की तीखी कलम ने इन पर गम्भीर आघात किया, फलत इसमे सुधार के लिए प्रयास किए जाने लगे। 1854 मे ट्रेविलयन नॉर्थकोट रिपोर्ट (Trevelyan Northcote Report) ससद् के सम्मुख प्रस्तुत हुई। इसके आधार पर प्रशासनिक एव लिपिक पदों पर खुली प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा नियुक्तियाँ की जाने लगी। अन्य दृष्टियों से भी ब्रिटिश लोक सेवा मे अनेक सुधार किए गए। ग्लेडस्टन (Gladstone) के अनुरोध पर एक तीन सदस्यीय नागरिक सेवा आयोग स्थापित किया गया। 1870 म नागरिक सेवाओं म प्रवेश के लिए प्रतियोगी परीक्षाओं का शुभारम्भ हुआ। इसके बाद देश के राजनीतिक और सामाजिक वातावरण मे आए परिवर्तनों के साथ-साथ लोक सेवाओं म सुधार के लिए भी अनेक समितियाँ और आयोग नियुक्त होते रहे। सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र मे राज्य के कार्यों का विस्तार होने पर लोक सेवकों की सख्या बढ गई।

2. वर्तमान रूपरेखा (Present Framework)—ब्रिटिश लोक सेवा पद-सोपानीय रूप मे कार्य एव दायित्वों के आधार पर कुछ वर्गों म प्रबन्धित है। स्टॉउट ने ब्रिटिश नागरिक सेवा के पाँच वर्गों का उल्लेख किया है।[2] ये हैं—

1-2 *H M Stout* : British Government, 1953, p 257

प्रशासनिक वर्ग (Administrative Class), अधिशासी वर्ग (Executive Class), लिपिक वर्ग (Clerical Class), लिपिक सहायक (Clerical Assistant), और टंकणकर्त्ता वर्ग (Typist Class)। ये सभी नागरिक सेवा के राजकोषीय वर्ग हैं जो प्रशासनिक एवं लिपिकीय कार्य सम्पन्न करते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक विभागीय और व्यावसायिक वर्ग भी होते हैं जो किसी एक विभाग या कुछ विभागों से सम्बन्ध रखते हैं। विभागीय वर्ग में विशेष कुशलता और यान्त्रिक योग्यता वाले पदाधिकारी आते हैं। इनकी नियुक्ति खुली प्रतियोगिताओं द्वारा की जाती है। व्यावसायिक वर्ग में किसी मान्य व्यवसाय से सम्बन्धित पदाधिकारी होते हैं जैसे—बैरिस्टर, डॉक्टर, शिल्पी, इंजीनियर, वैज्ञानिक आदि। इन पदों पर नियुक्ति प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा नहीं होती वरन् मान्य योग्यता, विशेष प्रशिक्षण या अनुभव के आधार पर प्रत्याशी के साक्षात्कार द्वारा होती है। ब्रिटिश लोक सेवा में लगभग 7,50,000 कर्मचारी कार्य करते हैं।[1] इनमें प्रशासनिक वर्ग के लोग लगभग 5,000 हैं। ये नीति, रचना, सरकारी यन्त्र के समन्वय और सुधार तथा लोक सेवा विभागों के सामान्य प्रशासन और नियन्त्रण से सम्बन्ध रखते हैं। प्रशासनिक निर्णय उच्च पदाधिकारी लेते हैं और विस्तार की बातें छोटे पदाधिकारियों द्वारा सम्पन्न की जाती हैं।

3 **ब्रिटिश ताज के सेवक (Servants of the Crown)**—कानूनी रूप से ब्रिटिश लोक सेवा के सभी सदस्य ताज के सेवक होते हैं। इस अर्थ में वे मन्त्रियों के समान हैं। अनेक बार न्यायालय में आने वाले विवादों में यह स्पष्ट किया गया है कि उच्च पदाधिकारी और निम्न पदाधिकारी समान रूप से क्राउन के सेवक हैं। ये सभी राजा के नाम से अपना कार्य सम्पन्न करते हैं किन्तु अपने सही और गलत कार्यों के लिए स्वयं उत्तरदायी रहते हैं।

4. **न्यायालय के नियन्त्रण क्षेत्र से बाहर (Outside the Jurisdiction of Courts)**—न्यायपालिकाएँ लोक सेवकों से सम्बन्ध नहीं रखतीं। कानूनी रूप से सभी लोक सेवक ताज के सेवक होते हैं, अतः ये न्यायालय के क्षेत्राधिकार से बाहर रहते हैं। महारानी या महाराजा द्वारा इनको बिना मुआवजा, पेंशन या भत्ता दिए, बिना किसी पूर्व सूचना के पदमुक्त किया जा सकता है। कानूनी आधार पर उनकी सुरक्षा के लिए न्यायपालिका सामने नहीं आ सकती। इतने पर भी यह एक ज्ञात तथ्य है कि ब्रिटिश लोक सेवा के सदस्यों का कार्यकाल काफी सुरक्षित है। सम्भवतः निजी रोजगार में लगे किसी भी कर्मचारी से अधिक सुरक्षित है। उनको सेवा निवृत्ति सम्बन्धी काफी अधिकार प्राप्त होते हैं जिन्हें वे न्यायालय द्वारा नहीं वरन् उपयुक्त प्रक्रिया द्वारा लागू करा सकते हैं। न्यायपालिका लोक सेवा के सम्पूर्ण संगठन को प्रशासकीय विवेक (Administrative Decision) का विषय मानती है। ब्रिटिश लोक सेवा की रचना और अस्तित्व प्रशासकीय निर्णय पर आधारित है।

17वीं शताब्दी से क्राउन के कर्मचारियों को नियमित करने के लिए सरकारी आदेश प्रसारित होने लगे हैं। उस समय सरकार की सारी शक्तियाँ राजा के हाथों में

1 *Sir Ivor Jennings*: The Law and the Constitution, 5th ed., 1967, p. 200

केन्द्रित थी तथा उनको कार्यान्वित करने के लिए वह कोई भी तरीका अपना सकता था। वह अपनी इच्छानुसार किसी पदाधिकारी को नियुक्त अथवा पदमुक्त कर सकता था। जब संसद् राजा के व्यय पर नियन्त्रण रखने लगी तो उसने कर्मचारियों की कुल संख्या का ही नियमन किया, व्यक्तियों का नहीं। 18वीं शताब्दी में विरोधी दल ने लोक सेवकों की संख्या घटाने पर जोर दिया क्योंकि लोक सेवाएँ राजा का अनुग्रह (Patronage) की शक्ति देती थी जिनके माध्यम से वह चुनावों तथा संसद् के बहुमत को प्रभावित कर सकता था। संसद् के जो सदस्य क्राउन के अधीन किसी पद पर रहते थे वे राजा या सरकार के प्रभाव में रहते थे।

5. प्रशासनिक आदेशों द्वारा नियमन (Regulation by Administrative Orders)—ब्रिटिश नागरिक सेवा का नियमन प्रशासनिक आदेशों द्वारा किया जाता है। 1855 में लोक सेवाओं का पुनर्गठन सपरिषद् आदेश के आधार पर ही किया गया था। उसके बाद समय-समय पर प्रशासनिक आदेश प्रसारित होते रहे हैं। प्रशासनिक आदेशों द्वारा नागरिक सेवा आयोग की स्थापना की गई है। यह आयोग लोक सेवाओं की भर्ती, स्तरीकरण, वेतन, पदोन्नति, छुट्टी, काम के घण्टे, सेवा निवृत्ति की आयु आदि का नियमन करता है।

प्रत्येक विभाग के कार्य एवं संगठन का नियमन मन्त्री द्वारा किया जाता है। मन्त्री के नियन्त्रण में रहकर ही विभाग का मुख्य नागरिक सेवक अनुशासन की स्थापना करता है। यद्यपि मन्त्रिगण पानी की तरह आते और हवा की तरह जाते रहते हैं किन्तु लोक सेवाओं के नियम पर्याप्त स्थिर रहते हैं। इस प्रकार प्रत्येक विभाग में कुछ आन्तरिक नियम होते हैं। इनकी व्याख्या विभागीय मन्त्री द्वारा की जाती है। जीनिंग्स के शब्दों में, "समग्र सेवा के ऊपर आदेश, नियमन तथा राजकोष के कार्य संक्षिप्त रहते हैं जो सभी लोक सेवकों की नियुक्ति एवं सेवा की शर्तें निर्धारित करते हैं।"

6. सेवा सुरक्षा (Security of Service)—विभागों के आन्तरिक कानून नागरिक सेवाओं को कुछ अधिकार सौंपते हैं। यह एक सुस्थापित नियम है कि विभाग द्वारा की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही के विरुद्ध कार्यवाही करने का अधिकार प्रत्येक लोक सेवक को है। लोक सेवाओं की सुरक्षा के लिए राजकोष द्वारा कुछ सिद्धान्त निर्धारित किए गए हैं। तदनुसार कोई लोक सेवक तब तक अपने पद से नहीं हटाया जा सकता जब तक कि वह लोक सेवा के अहित कोई कार्यवाही न करे अथवा सेवा निवृत्ति की आयु तक न पहुँच जाए। व्यवस्था यह है कि यदि किसी लोक सेवक को विभागीय अध्यक्ष द्वारा पदमुक्ति अथवा अन्य अनुशासनात्मक कार्यवाही का शिकार बनाया गया है तो अन्तिम निर्णय लेने से पूर्व सारे आरोप सम्बन्धित कर्मचारी को बता दिए जाते हैं। विभागाध्यक्ष ही यह निर्धारित करता है कि तथ्यों की आगे जाँच की जाए अथवा नहीं और की जाए तो किस प्रकार की जाए। बड़े विभागों के नागरिक सेवक को किसी निष्पक्ष अधिकारी के सम्मुख अपील करने

का अधिकार दिया जाता है। छोटे विभागो मे यह व्यवस्था नहीं होती क्योंकि यहाँ स्वय विभागाध्यक्ष ही निर्णायक होता है। हर हालत मे ससद् के सम्मुख अपील करने की व्यवस्था है।

7. राजनीतिक तटस्थता (Political Neutrality)—ब्रिटिश नागरिक सेवा राजनीतिक दृष्टि से पूर्णत तटस्थ होती है। सरकार चाहे किसी भी दल की बने, नागरिक सेवक पूरी निष्ठा के साथ पदासीन सरकार की सेवा करते हैं। लोक सेवाओ के लिए 1954 मे निर्मित सहिता के अनुसार लोकसेवा के सदस्य देश की राजनीति मे सक्रिय भाग नही ले सकते। मन्त्रियो के अधीन प्रशासकीय तथा व्यावसायिक वर्ग के लोक सेवक तथा उनके साथ कार्यरत लिपिक व अन्य कर्मचारी राजनीतिक कार्यों से पूर्णत पृथक् रखे गए हैं। अन्य कर्मचारी अपने विभाग से अनुमति तथा अवकाश लेने के बाद स्थानीय अथवा राष्ट्रीय राजनीति मे भाग ले सकते हैं। यदि कोई कर्मचारी चुनाव लडना चाहे तो उसे अपने पद से त्यागपत्र देना होगा। कॉमन्स सभा निर्योग्यता अधिनियम, 1957 के अनुसार लोक सेवक का पद लाभ का पद माना गया है और सरकारी लाभ के पद पर कार्य करने वाला नागरिक निर्वाचन मे प्रत्याशी नही बन सकता। ब्रिटिश नागरिक सेवा की राजनीतिक तटस्थता ने वहाँ की राजनीति और प्रशासन दोनो पर स्वस्थ प्रभाव डाला है। लोक सेवको के राजनीतिक कार्यों के सर्वेक्षण के लिए नियुक्त समिति के मतानुसार लोक सेवाओं की राजनीतिक तटस्थता ब्रिटिश लोकतन्त्र की आधारभूत विशेषता है।

(8) सेवा की अनुकूल शर्तें
(Favourable Conditions of Service)

ग्रेट ब्रिटेन की लोकसेवाएँ प्रत्येक प्रवेशार्थी को उज्ज्वल भविष्य का अवसर प्रदान करती हैं। वे लोकसेवा को छोडकर निजी उद्यम मे जाने की अपेक्षा सेवा मे बने रहकर ही अपने भविष्य को सजाने, सँवारने मे लग जाते हैं। भविष्य की आशाएँ और पदोन्नति के अवसर योग्य प्रत्याशियो को सरकारी सेवाओ की ओर आकर्षित करते हैं। कुछ विशेषज्ञ और शीर्ष स्तर के पदो को छोडकर शेष लोकसेवको का वेतन एक ऐसी वेतन शृ खला के रूप मे दिया जाता है जिसमे तब तक वार्षिक वृद्धि होती है, जब तक कि अधिकतम शृ खला तक वेतन की मात्रा न पहुँच जाए। वेतन शृ खला का प्रारम्भ प्रवेशार्थी की उम्र तथा कार्य के अनुसार होता है। ज्यो-ज्यो कर्मचारी अपने पद का अनुभव और कुशलता प्राप्त करता है, उसके वेतन मे नियमित वृद्धि होती रहती है। बडे स्तर के सगठनो मे यह अभाव भी नहीं होता कि कर्मचारी का कार्य देखकर वेतन वृद्धि की जाए। इसके स्थान पर नियमित वेतन वृद्धि का तरीका सरल और निष्पक्ष प्रतीत होता है। प्रारम्भ में महिला कर्मचारियो को पुरुष कर्मचारियो की अपेक्षा कम वेतन दिया जाता था किन्तु 1955 के समझौते के अनुसार समान वेतन के क्रमिक सिद्धान्त को अपना

लिया गया है। प्रारम्भ मे लन्दन के कर्मचारियो को दूसरे स्थानो के कर्मचारियो की अपेक्षा अधिक वेतन मिलता था। अब इसके स्थान पर सभी क्षेत्रो के लिए एक राष्ट्रीय दर स्थापित कर दी गई है तथा लन्दन क्षेत्र के कर्मचारियों को उनकी अतिरिक्त लागत के लिए मुआवजा दे दिया जाता है।

ब्रिटिश लोकसेवको की पेंशन का निर्धारण 1934 से लेकर अब तक के अनेक अधिनियमो द्वारा हुआ है। ये अधिनियम पेंशन की शर्तें निर्धारित करते हैं। पेंशन देने का कार्य ब्रिटिश राजकोष द्वारा किया जाता है। पेंशन तभी दी जाती है जब कर्मचारी साठ वर्ष का हो चुका हो, उसका स्वास्थ्य गिर गया हो तथा उसकी सेवा सन्तोषजनक रही हो। यदि कोई पद समाप्त कर दिया जाए तो सेवानिवृत्ति भत्ता प्रदान किया जाता है। ब्रिटिश नागरिक सेवा मे पेंशन Non-Contributory है। 1857 से प्रारम्भ इस व्यवस्था के अन्तर्गत पेंशन का दावा एक अधिकार के रूप मे नही किया जा सकता। 1935 के पेंशन अधिनियम मे भी यह स्थिति बनाए रखी गई है। वर्तमान व्यवस्था के अनुसार पेंशन की दर नागरिक सेवक की प्रतिवर्ष की कुल आय का 1/80वां भाग होता है। 1949 के पेंशन अधिनियम के अनुसार Contributory आधार पर विधवा एव आश्रितो के लिए भी पेंशन की रकम देने की व्यवस्था की गई है। एक कर्मचारी 50 वर्ष का होने पर त्यागपत्र देने के बाद पेंशन पाने का अधिकारी है। यह रकम उसे साठ साल का होने पर प्राप्त होती है। 5 जुलाई 1948 से ब्रिटिश नागरिक सेवकों के लिए अनिवार्य बीमा योजना भी लागू की गई है।

ब्रिटेन म नागरिक सेवको के लिए अधिकांश विभागो म 5 दिन का सप्ताह स्वीकार किया गया है। छुट्टी के लिए यह व्यवस्था है कि प्रतिवर्ष प्रत्येक कर्मचारी को 30 कार्य के दिनो की छुट्टियाँ दी जा सकती हैं। 2 जुलाई, 1964 को नागरिक-सेवा मध्यस्थ पच फैसले द्वारा यह निर्धारित किया गया कि लन्दन मे साप्ताहिक कार्य के घण्टे 41 और दूसरे स्थानो पर 42 होगे। स्वल्पाहार का समय भी इसम शामिल है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद नागरिक सेवको के कल्याण की ओर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। प्रारम्भ मे यह कार्य विभागाध्यक्ष एव निरीक्षकों द्वारा सम्पन्न किया जाता था किन्तु कर्मचारियो की व्यक्तिगत कठिनाइयो का समाधान विशेष रूप से चयन किए गए कल्याण अधिकारियो द्वारा किया जाता है। कार्यकुशलता की वृद्धि के लिए कार्य के उपयुक्त स्थान आवश्यक साज सामान अन्य सुविधाएँ आदि की व्यवस्था की जाती है। कर्मचारियो के स्वास्थ्य और अन्य व्यक्तिगत समस्याओ की ओर भी उपयुक्त ध्यान दिया जाता है।

ग्रेट ब्रिटेन मे सेवीवर्ग प्रशासन की एक उल्लेखनीय बात यह है कि यहाँ लोकसेवकों को अनेक सम्मानजनक उपाधियाँ सम्राट् द्वारा प्रदान की जाती हैं। परम्परागत रूप से सम्राट् अपने सेवको को उनकी सेवाओ के बदले पुरस्कृत करते

हैं। ये उपलब्धियाँ लोकसेवकों के पद के अनुसार प्रदान की जाती हैं।[1] कर्मचारियों को इनका कोई आर्थिक या भौतिक लाभ प्राप्त नहीं होता किन्तु उनका स्तर एवं सम्मान समाज की नजरों में उठ जाता है। स्वयं नागरिक सेवक इन उपाधियों की कितनी परवाह करते हैं यह स्पष्टत: नहीं कहा जा सकता। केवल नाइटहुड (Knighthood) की उपाधि ही ऐसी होती है जो उन्हें उपयुक्त सम्मान तथा आर्थिक लाभ पहुँचाती है।

संयुक्तराज्य अमेरिका में सेवीवर्ग प्रशासन
(Personnel Administration in U S A)

संयुक्तराज्य के सेवीवर्ग प्रशासन की प्रकृति, स्वरूप, संगठन एवं विशेषताएँ बहुत कुछ उन समस्याओं से प्रभावित हैं जिनका समाधान अन्तिम रूप से इसका अभीष्ट है। प्रो स्टॉल ने यहाँ के प्रशासन की इन पाँच समस्याओं का उल्लेख किया है—नियोजन, विधायकों तथा नौकरशाहों के बीच उचित संचार व्यवस्था, विशेषज्ञता का अनुरक्षण, कार्यकुशलता का अनुरक्षण और उत्तरदायित्व एवं जवाबदेयता का अनुरक्षण। अमेरिकी सेवीवर्ग व्यवस्था का संगठन इन सभी समस्याओं को ध्यान में रखकर किया जाता है। प्रायः सभी सरकारी अधिकारियों के कार्य इन्हीं समस्याओं की ओर लक्षित रहते हैं। यहाँ प्रशासनिक कार्यकुशलता की वृद्धि के लिए कर्मचारियों की विशेषज्ञता की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। उपयुक्त प्रशिक्षण और पदोन्नति व्यवस्था द्वारा सेवीवर्ग में उत्तरदायित्व एवं जन-प्रतिनिधियों के साथ उनके वांछनीय सम्बन्धों का विकास किया जाता है। सेवीवर्ग प्रशासन देश की उत्पादिता एवं लाभ से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखता है। अत उसकी आवश्यकताएँ देखकर ही देश की शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन किए जाते हैं, उसे राष्ट्रीय लक्ष्यों के अनुरूप बनाया जाता है। सेवीवर्ग के कार्यों में गुणात्मक वृद्धि के लिए योग्यता को महत्त्व दिया जाता है। लोकसेवकों के पद की सुरक्षा और उत्तरदायी कार्यों के बीच उपयुक्त सामंजस्य स्थापित किया जाता है। लोकसेवा अन्तिम रूप से जनता के प्रति उत्तरदायी रहती है, यह किसी विशेष समूह अथवा राजनीतिक दल के प्रति उत्तरदायी नहीं रहती।

संयुक्तराज्य के सेवीवर्ग प्रशासन का स्वरूप, संगठन एवं कार्य प्रक्रिया वहाँ के परिवेश से काफी प्रभावित होती है। इस परिवेश की रचना में वहाँ की राजनीतिक संस्थाओं, आर्थिक समस्याओं, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों और धार्मिक विश्वासों एवं आस्थाओं का प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष प्रभाव रहता है। सरकार के कार्यों में निरन्तर वृद्धि होने के कारण सेवीवर्ग प्रशासन पूर्वापेक्षा अधिक जटिल

1 "Awards to the civil service are made on a strictly guarded system, which appears to workout as follows: K C B for permanent Secretary, C.B.E. for Assistant Secretary, O B E for Principal or Chief Executive Officer and M B E for all lower grades"
—*E N, Gladden*: Civil Service of the United Kindom, 1855–1970, Frank Cass & Co Ltd, 1967, p 60

तथा गतिशील बन गया है। दूसरे तत्वों ने भी इसे प्रभावित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। ग्रो स्टॉल ने सेवीवर्ग तथा उसकी इकॉलाजी या परिवेश के पारस्परिक सम्बन्धो की घनिष्ठता के बारे मे लिखा है कि "सेवीवर्ग प्रशासन सगठन के मानवीय साधन-स्रोतो के साथ समग्रता का सम्बन्ध है। यह सगठन एव वातावरण के बीच प्रमुख कडी है। यह अपने वातावरण के मूल्यो, नैतिक मान्यताओ तथा दर्शन से प्रभावित होता है और दूसरी ओर यह वातावरण को भी प्रभावित करता है।"[1] सेवीवर्ग के कार्य अनेक बाहरी और आन्तरिक तत्वों से प्रभावित होते हैं। इन्हे सयुक्त रूप मे सेवीवर्ग प्रशासन की इकॉलाजी का नाम दिया जा सकता है। सयुक्तराज्य मे सेवीवर्ग प्रशासन की इकॉलाजी के उल्लेखनीय प्रभावक तत्त्व निम्नलिखित हैं, इन्हें अमेरिकी सेवीवर्ग प्रशासन की विशेषताएँ भी कहा जा सकता है—

1 सरकार का व्यापक कार्यक्षेत्र और नौकरशाही का बडा आकार (Wide Governmental Functions and Big Size Bureaucracy)—सयुक्तराज्य मे औद्योगीकरण तथा लोक-कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के परिणामस्वरूप सरकार के कार्यों म अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। फलत लोकसेवको की एक विशाल सेना का सगठन किया गया है। 1970 म यहाँ लोकसेवको की सख्या अनुमानत एक करोड तीस लाख थी। आजकल प्राय प्रत्येक मानवीय व्यवसाय लोकसेवा का अग बन गया है। अकेले सघीय स्तर पर ही विभिन्न प्रकार के लगभग 1500 व्यवसाय हैं। सघीय स्तर के उच्च पदाधिकारी प्राय महाविद्यालयी शिक्षा प्राप्त होते हैं। राज्य स्तर के व्यवसायो की प्रकृति प्राय तकनीकी होती है। प्रत्यक्ष रूप से राज्य कर्मचारी के रूप मे कार्य करने वाले कर्मचारियो के अतिरिक्त ठेके के आधार पर सरकारी कार्य करने वाले लोग भी अप्रत्यक्ष रूप से सरकारी कर्मचारी होते है। राज्य का कार्य क्षेत्र तथा आधुनिक जीवन म राज्य से की जाने वाली अपेक्षाओं के बढ जाने के कारण बडे आकार की नौकरशाही अपरिहार्य बन गई है। नार्मन पावेल (Norman J Powell) के कथनानुसार असल मे सयुक्तराज्य अमेरिका की लोकसेवा विशाल, महँगी और शक्तिशाली है। सरकार के कार्यों म हुई वृद्धि एव लोकसेवाओ का बडा आकार अनेक परिणामो का कारण बनता है। इससे नौकरशाही की शक्तियाँ बढ जाती हैं और फलत भ्रष्टाचार जन्म लेता है। जे ओ बाइड (J. O. Boyd) ने लिखा है कि "नौकरशाही मे निरन्तर वृद्धि का अर्थ प्रजातन्त्र के विनाश का प्रतीक है। यह सारी प्रगति का विनाश तथा स्वतन्त्र सरकार का पूर्ण दिवालियापन है। यह फासीवाद या सर्वाधिकारवाद की ओर ले जाती है। सरकार का रूप उतना ही बडा होना चाहिए जिसे सुगमता से समाज के प्रति उत्तरदायी बनाया जा सके। केवल तभी उत्तरदायी सेवीवर्ग प्रशासन के जन्म की आशा की जा सकती है।"

1 *O Glenn Stahl*, Public Personnel Administration, 6th ed, 1971, p 16.

2 मानवीय साधनों की उपलब्धि (Availability of Human Resources)—लोक प्रशासन के सफल सचालन के लिए प्रार्थिक और सामाजिक साधन-स्रोतों की भाँति मानव शक्ति भी एक महत्त्वपूर्ण साधन है। इस हेतु योग्य व्यक्तियों को उन पदों की ओर अभिप्रेरित किया जाना चाहिए जिनकी समाज को आवश्यकता है और जहाँ उनकी योग्यताओं एव क्षमताओं का सर्वश्रेष्ठ उपयोग किया जा सकता है। समाज वैज्ञानिकों का कहना है कि मानवीय साधनों के अनुरक्षण तथा विकास के लिए अधिक शिक्षा, उच्चतर बौद्धिक प्रतिमा की मान्यता और युवक, वृद्ध स्त्री-पुरुषों तथा अल्पसख्यकों का पूरा सदुपयोग होना चाहिए। केवल शिक्षा ही पर्याप्त नहीं है। व्यावसायिक, तकनीकी और प्रतिभावान मानव-शक्ति के विकास के लिए समुचित समर्थन व निर्देशन वांछनीय है। विभिन्न प्रशासनिक पदों के लिए आवश्यक तकनीकी कुशलता बाजार में स्वत ही उपलब्ध नहीं होती; इसके लिए उपयुक्त नियोजन अनिवार्य है। अमेरिकी सेवीवर्ग प्रशासन के कार्य का स्तर एव उपयोगिता इस बात पर निर्भर है कि यहाँ की विभिन्न शिक्षण सस्थाएँ तथा तकनीकी एव व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्र किस स्तर के व्यक्ति उपलब्ध करा पाते हैं।

3 राज्य के कल्याणकारी दायित्व (Welfare Responsibilities of the State)—सेवीवर्ग के चयन में राज्य को योग्य व्यक्तियों के चयन तथा जरूरतमन्द लोगों के लिए रोजगार की आवश्यकता के बीच सामजस्य स्थापित करना होता है। यदि केवल राजनीतिक दल के प्रति स्वामिभक्ति, क्षेत्रीयता, व्यक्ति के लिए रोजगार की आवश्यकता या विशेष हित समूहों की प्राथमिकता को ही ध्यान मे रखा जाए तो सरकारी पदों पर योग्य व्यक्ति नहीं आ सकेंगे। राज्य ने अपने कल्याणकारी दायित्वों का निर्वाह करते हुए जरूरतमन्द लोगों को रोजगार देने के लिए अनेक कानूनी व्यवस्थाएँ की हैं, जैसे—कोई व्यक्ति एक साथ दो पदों पर कार्य नहीं कर सकता, सरकारी सेवा में आने वाले एक परिवार के सदस्यों की सख्या सीमित की गई है, सेवा म प्रवेश के लिए निवास को आवश्यक शर्त बनाया गया है, युद्ध पीड़ितों एव उनके परिवारों को प्राथमिकता दी जाती है तथा पदमुक्ति प्रक्रिया पर अनेक सीमाएँ लगाई जाती हैं। ये सभी व्यवस्थाएँ राज्य के कल्याणकारी दायित्वों के प्रतीक हैं।

सामाजिक और आर्थिक सकट के समय सरकारी सेवा की एक शरण या राहत के रूप मे प्रयुक्त किया जाता है। यह माना जाता है कि सभी को रोजगार मिलने पर सामाजिक बुराइयाँ स्वत ही दूर हो जाएँगी। यदि लोगों को निजी उद्यमों मे पर्याप्त रोजगार नहीं मिल पाते तो राज्य को इनकी व्यवस्था करनी चाहिए। इसी भावना के परिणामस्वरूप अमेरिका मे युद्ध से लौटे हुए, आर्थिक दृष्टि से विपन्न, शारीरिक रूप से अपग तथा मानसिक रूप से असन्तुलित लोगों, अधेड़ महिलाओं, विभिन्न अल्पसख्यक समूहों तथा अशकाल के लिए उपलब्ध विद्यार्थियों को रोजगार देने के प्रयास किए गए हैं। यह उचित है कि इस प्रकार

के लोगों की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए किन्तु इन्हें सरकारी कार्यालयों में रोजगार देने की नीति सेवीवर्ग प्रशासन पर अवांछनीय प्रभाव डालती है। प्रो स्टॉल ने लिखा है कि "इस प्रवृत्ति की प्रत्यक्ष हानि केवल प्रशासनिक कार्यक्षमता की गिरावट नहीं है वरन् इससे लोकसेवाओं की इमेज गिरती है। यह समझा जाता है कि सरकारी पद केवल पुरस्कार होते हैं। ये केवल जरूरतमन्द लोगों की आय का प्रबन्ध करने के लिए कायम हैं। जन-मानस में लोकसेवाओं की प्रतिष्ठा गिर जाती है।"

4 तकनीकी का प्रभाव (The Impact of Technology)—अनेक तकनीकी आविष्कारों के कारण तकनीकी व्यवसायों की संख्या बढ़ गई है। इनमें नियुक्ति के लिए अधिक योग्य तथा उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों की आवश्यकता है। ऐसे उच्च शिक्षा प्राप्त लोग निरन्तर अपनी ज्ञान वृद्धि में प्रयत्नशील रहते हैं। उनके व्यक्तित्व में गतिशीलता रहती है। वे किसी भी सेवा या पद में संलग्न नहीं होते। सरकारी सेवा को वे प्रायः मध्यान्तरकाल के लिए स्वीकार करते हैं, उसे आजीवन व्यवसाय नहीं बनाते। जो लोग ऐसा कर भी लेते हैं वे यहाँ से वहाँ अपना व्यवसाय बदलते रहते हैं। तथ्य यह है कि अमेरिकी सरकारी अभिकरण अभी भी योग्य व्यक्तियों को आकर्षित करने के आदर्श से दूर है।

संयुक्तराज्य के सेवीवर्ग प्रशासन पर तकनीकी का प्रभाव मुख्यतः चार रूपों में हुआ है—(i) इसने ऐसी सेवीवर्ग व्यवस्था को आवश्यक बनाया है जो प्रत्येक स्तर पर नए प्रत्याशियों के प्रवेश को स्वीकार एवं प्रोत्साहित कर सके। ऐसा होने पर नौकरशाही का समाज से निकट सम्बन्ध स्थापित हो सकेगा। नए वातावरण में सेवीवर्ग प्रशासन को भर्ती, वेतन, कार्यकाल एवं सेवा निवृत्ति के प्रावधानों में लोचशीलता रखने के लिए सदैव तैयार रहना चाहिए। (ii) तकनीकी विकास के फलस्वरूप सेवाकालीन प्रशिक्षण का महत्त्व बढ़ा है। आज यह उचित नहीं है कि पूर्वकालीन प्रशिक्षण के लिए कर्मचारी को बहुत समय तक सेवा से पृथक् रखा जाए तथा प्रशिक्षण के व्यय का भार उसके कन्धों पर डाला जाए। इसके अतिरिक्त यह व्यवस्था कर्मचारी को द्रुतगति से होने वाले तकनीकी परिवर्तनों के साथ परिचित रखने में भी सक्षम नहीं है। सरकारी प्रयोगशालाओं तथा कार्यालयों में कार्य करने वाले इंजीनियरों, वैज्ञानिकों, तकनीकी विशेषज्ञों, चिकित्सकों आदि के लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था करना नितान्त आवश्यक है। (iii) तकनीकी विकास का एक परिणाम यह हुआ कि व्यावसायिक कार्यकर्ता तथा विशेषतः वैज्ञानिक स्वयं को एक विशेष जाति का मानने लगे हैं। वे जन-साधारण की अपेक्षा पृथकता एवं विशेषाधिकार की माँग करते हैं। वे अपने कर्त्तव्यों एवं दायित्वों की ओर ध्यान देने की अपेक्षा अपने पदस्तर को ऊँचा उठाने पर अधिक समय तथा शक्ति व्यय करते हैं। (iv) यह सच है कि तकनीकी युग ने वैज्ञानिकों को कुछ सम्मान दिया है किन्तु साथ ही उन पर कुछ दायित्व भी डाले हैं। उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि लोकसेवक होने के नाते उन्हें वैज्ञानिक से कुछ अधिक होना चाहिए।

उनमे वैज्ञानिक कार्यक्रमो, लक्ष्यो तथा अपने सगठन के प्रति निष्ठा होनी चाहिए। उनके कार्यों की सार्थकता एव उपयोगिता सगठन के लक्ष्यो के सन्दर्भ मे ही आंकी जा सकती है।

5 अन्त सरकारी सम्बन्ध (Inter-Governmental Relations)-अमेरिकी सविधान लागू होने के बाद से यहाँ की सघ सरकार निरन्तर शक्तिशाली होती चली गई है। इसके हाथो मे सहायता अनुदान की शक्ति तथा कर लगाने की भारी शक्ति है जिसके परिणामस्वरूप राज्य एव स्थानीय स्तरो की सरकारें निरन्तर कमजोर होती चली गई हैं। अब इनका स्वतन्त्र अस्तित्व भी सदेहास्पद बनता जा रहा है। 1940 से अमेरिका के सभी राज्यो को कल्याण, रोजगार, सुरक्षा, जन-स्वास्थ्य, व्यावसायिक पुनर्वास एव नागरिक सुरक्षा आदि के लिए सघीय अनुदान प्राप्त हो रहे हैं। इसके फलस्वरूप सरकारी क्षेत्राधिकार की अन्त निर्भरता बढी है। सघीय अभिकरणो द्वारा चलाए जा रहे प्रशिक्षण कार्यक्रमो मे राज्य तथा स्थानीय स्तरो के कर्मचारी भी प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं।

6. राजनीति एव अनुग्रह (Politics and Patronage)-आज सयुक्तराज्य मे लोकसेवको की भर्ती के लिए योग्यता का सिद्धान्त पर्याप्त लोकप्रिय बन चुका है तो भी यहाँ उस समय की परम्पराएँ अभी मिटी नहीं हैं जब यह माना जाता था कि विजेता को लूट का माल मिलना ही चाहिए। अमेरिकी काँग्रेस ने 1820 मे अधिकाँश सघीय अधिकारियो का कार्यकाल चार वर्ष निश्चित कर दिया था ताकि सामाजिक नवीनीकरण द्वारा प्रशासन मे सुधार होता रहे। राष्ट्रपति जैक्सन के काल से ही इस प्रावधान का प्रयोग राजनीतिक स्वार्थ पूर्ति के लिए किया जाने लगा। सीनेटर मर्सी (Senator Marcy) ने इसे लूट व्यवस्था (Spoils System) का नाम दिया। इसमे प्रत्येक नए राष्ट्रपति के साथ सभी प्रशासनिक कर्मचारियो को निकाल दिया जाता था और उनके स्थान पर नए 'चमचो' को भर लिया जाता था। इस व्यवस्था की बुराइयाँ शीघ्र ही प्रकट होने लगी। एक बौखलाए पदाशोंी द्वारा 1882 मे राष्ट्रपति गारफील्ड की हत्या कर दी गई। 1883 मे अमेरिकी काँग्रेस ने एक नागरिक सेवा कानून पास किया। तदनुसार सघीय स्तर के निम्न पदो पर नियुक्ति से राजनीति को अलग कर दिया गया। यह व्यवस्था की गई कि राष्ट्रपति तथा सीनेट द्वारा नियुक्त तीन व्यक्तियो का लोक सेवा आयोग प्रवेश परीक्षाएँ आयोजित करेगा और अधिकारियो के माध्यम से राजनीतिक कोष एकत्रित नहीं कराया जाएगा। अमेरिका का वर्तमान सेवीवर्ग प्रशासन बहुत कुछ इसी अधिनियम पर आधारित है।

व्यवहार मे लूट प्रणाली अथवा अनुग्रह सिद्धान्त का प्रभाव आज भी पर्याप्त है। जनता की उदासीनता और निहित स्वार्थों के प्रभाव के कारण अमेरिका मे सघीय, राज्य एव स्थानीय स्तरो पर अनुग्रह व्यवस्था का पर्याप्त प्रभाव है। इससे लोकसेवा गम्भीर रूप से प्रभावित होती है। इसका प्रभाव केवल प्रवेश या भर्ती तक ही सीमित नहीं है वरन् यह सेवीवर्ग प्रशासन के प्रत्येक पहलू को प्रभावित

करती है, जो उच्च अधिकारी योग्यता के आधार पर नियुक्त हुआ है वह राजनीतिक आधार पर नियुक्त अपने अधीनस्थों पर कोई अनुशासन नहीं रख पाता। अनेक विधायक अपनी शक्ति का दुरुपयोग करते हुए लोक सेवाओं की कार्य प्रक्रिया पर अनुचित प्रभाव डालते हैं। वे अपने मतदाताओं की प्रसन्नता या अपने अहंकार की पूर्ति के लिए पदोन्नति, स्थानान्तरण तथा सेवा की शर्तों को प्रभावित करते हैं। वे इसे अपने राजनीतिक प्रभाव की वृद्धि एवं सस्ती लोकप्रियता की प्राप्ति का साधन बना लेते हैं। काँग्रेस अथवा राज्य व्यवस्थापिकाओं की स्थायी समितियाँ नागरिक सेवा को अपने साम्राज्य का अंग मानती हैं।

7. राजनीतिक नेतृत्व (Political Leadership)—राज्य की निर्वाचित या नियुक्त कार्यपालिका देश की नौकरशाही को नेतृत्व प्रदान करती है और इस प्रकार प्रशासन को उत्तरदायी बनाए रखने की व्यवस्था करती है। यह नेतृत्व अपने आप में बुरा नहीं है किन्तु आशंका यह रहती है कि कहीं इसके कारण लोकसेवक अपनी व्यावसायिक ईमानदारी से न फिसल जाएँ। राजनीतिक नेतृत्व के प्रति स्वामिभक्ति और कर्मचारी के स्वतन्त्र विचारों के बीच एक उपयुक्त सन्तुलन की स्थापना की जानी चाहिए। दोनों बातें जरूरी हैं, एक के लिए दूसरी का बलिदान करना अनुचित है। लोक सेवक का अपना राजनीतिक दृष्टिकोण कुछ भी हो सकता है तथा राजनीतिक नेताओं के प्रति उसकी भावनाएँ कैसी भी रह सकती हैं किन्तु उसे अपने कर्त्तव्य निर्वाह में इनको बाधक नहीं बनने देना चाहिए।

संयुक्तराज्य में नौकरशाही का परीक्षाकाल वह होता है जबकि आम चुनावों के बाद नया राजनीतिक नेतृत्व कुर्सी पर आता है। यह संक्रमण अनेक बार नए तथा पुराने दोनों ही अधिकारियों के लिए कष्टदायक बन जाता है। प्रो स्टॉल (Prof Stahl) के मतानुसार एक अच्छी सेवीवर्ग व्यवस्था की पहचान यह है कि वह नए राजनीतिक नेतृत्व को सरल रूप में संक्रमण प्रदान कर दे। राजनीतिक शक्ति और सेवीवर्ग के दृष्टिकोण में उपयुक्त सन्तुलन की स्थापना के लिए सेवीवर्ग प्रशासन को वांछनीय परिस्थितियाँ पैदा करनी होंगी, प्रत्येक लोक सेवक को उसके पद की सुरक्षा देनी होगी तथा अन्य आवश्यक अपेक्षाएँ सन्तुष्ट करनी होंगी। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यह वांछनीय है कि लोक सेवा में उच्च पदों पर काफी लोचशीलता एवं गतिशीलता रखी जाए और निम्न पदों पर निरन्तरता एवं स्थायित्व की व्यवस्था की जाए।

8. विशेष हित समूहों का प्रभाव (Influence of Special Interest Groups)—हित समूह अमरिकी राजनीतिक क्षितिज की महत्त्वपूर्ण यथार्थताएँ हैं। अन्य सरकारी कार्यकलापों की भाँति सेवीवर्ग प्रशासन के क्षेत्र में भी विशेष हित समूह सक्रिय रहते हैं। यहाँ इनकी सक्रियता एवं संगठन इतना सक्षम नहीं होता कि ये श्रेष्ठ प्रशासन के हितों के समर्थन के लिए कोई संयुक्त मोर्चा बना सकें। यहाँ के कुछ मुख्य हित समूह ये हैं—National Civil League, American Society for Public Administration, Public Personnel Association, The Society for

Personnel Administration आदि। ये हित समूह तकनीकी दृष्टि से उचित कार्य सचालन तथा योग्यता व्यवस्था के प्रसार मे उपयुक्त भूमिका निभाते है। इनकी विशेष रुचि प्रशासनिक कार्यकुशलता एव सक्षमता मे इतनी नहीं रहती। ये प्राय अपने सदस्यो के हितो की पूर्ति के लिए प्रयास करते हैं। सेवीवर्ग व्यवस्था मे किए गए सुधारो पर भी इनका प्रभाव रहता है। इतने पर भी तथ्य यह है कि सयुक्त राज्य में कोई ऐसा हित समूह नही है जो निरन्तर व्यवस्थापिका कक्षो मे जाकर अधिक श्रेष्ठ, कल्पनाशील और रचनात्मक सेवीवर्ग प्रबन्ध के लिए सघर्ष करे।

9 लाइन तथा स्टॉफ (Line and Staff)—अमेरिकी सेवीवर्ग व्यवस्था के परिवेशात्मक तत्त्वो मे लाइन तथा स्टॉफ भी उल्लेखनीय हैं। जिस उद्देश्य के लिए संगठन की रचना की गई है उससे सम्बन्धित कार्य लाइन कहलाते हैं तथा सगठन बनने के कारण जो कार्य जरूरी बन जाएँ वे स्टॉफ सेवाएँ कही जाती हैं। स्पष्ट है कि लाइन कार्य प्रमुख तथा मूलभूत होते हैं तथा स्टॉफ को लाइन की सेवा करनी चाहिए। स्टॉफ केवल परामर्शदाता है, नियन्त्रण नही करता। लाइन मुख्य सचालक है तथा स्टॉफ द्वारा उसकी सहायता की जानी चाहिए। वास्तविक व्यवहार मे लाइन तथा स्टॉफ का अन्तर काफी आलोचनापूर्ण बन जाता है। साधारणत यह सच है कि सरकारी सेवीवर्ग का प्रबन्ध सरकार के उद्देश्यो की पूर्ति के लिए है। सरकार का अस्तित्व सेवीवर्ग की भर्ती, पद व्यवस्था, अनुशासन या अभिप्रेरणा के लिए नहीं है, किन्तु कुछ अवसरो पर स्टॉफ की भर्ती, वेतन प्रणाली, अनुशासन की प्रणाली तथा पेंशन व्यवस्था लाइन कार्य से भी अधिक महत्त्वपूर्ण बन जाती है। आजकल लाइन तथा स्टॉफ का यह अन्तर कृत्रिम तथा महत्त्वहीन समझा जाने लगा है। स्टॉल के कथनानुसार, "एक बुद्धिमान मुख्य कार्यपालिका इन दोनो के कृत्रिम अन्तरो के सम्बन्ध मे विशेष चिन्तित नही होती, यहाँ तक कि वह इन दो शब्दो का प्रयोग भी नहीं करती वरन् एक ही शब्द 'सेवीवर्ग प्रशासन' का ही उल्लेख किया जाता है।" सेवीवर्ग व्यवस्था के विभिन्न पहलू जनता की रुचि के केन्द्र होते है। प्रत्येक सजग नागरिक यह जानना चाहता है कि लोकसेवको की नियुक्ति किस प्रकार होती है, उनको कितना वेतन मिलता है तथा उनके कार्य की शर्तें क्या हैं। सयुक्तराज्य मे सघ, राज्य तथा स्थानीय स्तरो की लोक सेवाओ मे लगभग 13 मिलियन लोग कार्य करते हैं। उन सबकी सन्तोषजनक व्यवस्था करना एक महत्त्वपूर्ण सरकारी कार्य है। अन्य सभी सरकारी कार्य इससे परस्पर गुँथे हुए हैं तथा उनकी प्रभावशीलता इस पर आधारित है।

10 लोक सेवाओं का सीमित सम्मान (Limited Prestige of Public Services)—सयुक्तराज्य अमेरिका की लोकसेवा वहाँ के सामाजिक जीवन मे विशेष प्रतिष्ठित नही है। परम्परागत रूप से अमरिकी लोग अपने जीवन के कार्य व्यापार मे सरकारी सहायता की कम अपेक्षा करते हैं। उच्च योग्यता प्राप्त अधिकांश युवक लोकसेवा म आना पसन्द नहीं करते। कुछ लोग केवल परिस्थितिवश या अनहोनी स्थिति के कारण सरकारी सेवा मे प्रवेश पा लेते हैं अन्यथा

जान-बूझकर एवं पूर्व नियोजित तरीके से लोग कदाचित् ही लोकसेवा को अपना व्यवसाय बनाना चाहते हैं। वहाँ की शैक्षणिक संस्थाएँ एवं व्यावसायिक परामर्शदाता लोगों को सरकारी सेवा की ओर प्रेरित करने में कम रुचि लेते हैं। इन सबके बाद भी यहाँ की लोकसेवाएँ योग्य व्यक्तियों को अपनी ओर आकृष्ट करने में सदैव सचेष्ट रहती हैं। कुछ लोग सरकारी कार्य की दृष्टि से इसे अपनी जीविका का साधन बनाते हैं। एक अनुभववादी अध्ययन के अनुसार लोकसेवाओं में अधिकांश लोग इसलिए बने रहते हैं क्योंकि वे इसे मनोरंजक मानते हैं। वैसे आय तथा अन्य सुविधाओं की दृष्टि से गैर-सरकारी सेवाएँ सरकारी सेवाओं की अपेक्षा अधिक आकर्षक हैं। सरकारी पदों की लोचहीनता एवं पदोन्नति के सीमित अवसर योग्य प्रतिभाओं के इनमें प्रवेश के मार्ग को अवरुद्ध कर देते हैं। अधिकांश साहसी एवं सत्यात्मक प्रकृति के लोग निजी व्यवसाय को प्राथमिकता देते हैं तथा सरकारी सेवाओं में शक्ति के अभिलाषी महत्त्वाकांक्षी लोग पसन्द करते हैं। लोकसेवाओं की ओर प्रतिभाशाली लोगों को आकर्षित करने के लिए व्यावसायिक शैक्षणिक एवं राजनीतिक नेता समय-समय पर विचार प्रकट करते हैं। इसके अतिरिक्त नेशनल सिविल सर्विस लीग, रॉकफेलर फाउण्डेशन तथा अन्य जनसेवी संगठन प्रतिवर्ष असाधारण प्रतिभाशाली लोकसेवकों को महत्त्वपूर्ण पुरस्कार देते रहे हैं। लोक सेवाओं का सम्मान बढ़ाने पर समय-समय पर जोर दिया जाता है ताकि उच्च श्रेणी की योग्यता वाले लोगों को आकर्षित किया जा सके। सरकारी सेवा के सम्बन्ध में प्रचलित अफवाहों का खण्डन तथा प्रशंसाओं का समर्थन एवं प्रचार किया जाता है। इस सबके बाद भी तथ्य यह है कि योग्य प्रतिभाएँ निजी सेवा की ओर ही आकर्षित हो पाती हैं। इस दिशा में अभी काफी कुछ करना अपेक्षित है।

फ्रांस में सेवीवर्ग प्रशासन
(Personnel Administration in France)

फ्रांस में सेवीवर्ग का प्रशासन वहाँ के सांस्कृतिक परिवेश से काफी प्रभावित है। वहाँ व्यक्तित्व के गुण, सामाजिक मूल्य, वर्गीय सम्बन्ध, शिक्षा व्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था एवं उपनिवेशीय व्यवस्था सेवीवर्ग प्रशासन के रूप निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। फ्रांस की शिक्षा व्यवस्था नौकरशाहीपूर्ण है[1] तथा यह वर्ग के नौकरशाही संगठन की अनेक आधारभूत व्यवस्थाओं को स्वतः सिद्ध कर देती है। शिक्षा व्यवस्था का संगठनात्मक रूप अत्यधिक केन्द्रीकृत तथा अव्यक्तिगत है अध्यापन की कला में नौकरशाही के जीवाणु हैं तथा अध्ययन की विषयवस्तु नौकरशाहीपूर्ण है। यह लोगों को भावी उत्पादन कार्यों के लिए प्रशिक्षित करने की अपेक्षा उनका निश्चित सामाजिक स्तर में प्रवेश के लिए चयन करती है। शिक्षा व्यवस्था की भाँति फ्रांस में श्रमिक आन्दोलनों तथा औद्योगिक सम्बन्धों का रूप भी नौकरशाहीपूर्ण है। इनकी प्रकृति राजनीतिक है और इसलिए निम्नस्तरीय कर्मचारी

1 "As a matter of fact the French Educational System may be called Bureaucratic." —*Michel Crozier*: The Bureaucratic Phenomenon, p 239

प्रत्यक्ष एव सजग रूप से इनमे भाग नही लेते। फलत नौकरशाही केन्द्रीकरण बढ जाता है।[1] फ्रांस की राजनीतिक व्यवस्था म भी नौकरशाही लक्षणो का अवलोकन किया जा सकता है। इसम पद एव विशेषाधिकारो के बीच सन्तुलन की स्थापना की जाती है, यह नवीन नीतियो क प्रयोग से सदैव कतराती है। फ्रांस ने अपने उपनिवेशो म जो राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक सगठन स्थापित किए वे सभी उसकी राष्ट्रीय व्यवस्था के अनुरूप थे अर्थात् उनम नौकरशाही के गुण उपलब्ध थे। स्पष्ट है कि नौकरशाही की विशेषताएँ फ्रांस क सांस्कृतिक परिवेश मे पूरी तरह रमी हुई हैं। इस परिवेश ने वहाँ की सेवीवर्ग व्यवस्था को काफी प्रभावित किया है।

फ्रांस म प्रशासन और राजनीति के बीच शताब्दियो तक घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। राजनीतिक व्यवस्थाएं तो मिट गई किन्तु प्रशासन व्यवस्था की निरन्तरता एव स्थायित्व के कारण अनेक राजनीतिक सिद्धान्त प्रशासन के प्रांगण मे जीवित रह सके। फ्रांसीसी प्रशासन म एकरूपता और स्थायीपन रहा है। नए विचारों तथा सामाजिक शक्तियो ने प्रचलित सिद्धान्तो पर नई अवधारणाएँ लादी हैं किन्तु इनके परिणामस्वरूप प्राचीन सरचना नष्ट नही हुई वरन् उसकी प्रकृति मे गम्भीर परिवर्तन आ गए हैं। कतिपय विद्वानो न फ्रांस क सेवीवर्ग प्रशासन की विशेषताओ का विवेचन करने की चेष्टा की है। रिडले तथा ब्लोण्डेल (F Ridley and J Blondel) ने इसकी कुछ परम्परागत विशेषताओं का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

1 मिशनरी भावना (Missionary Zeal)—प्रारम्भ से ही फ्रांसीसी नौकरशाही *मिशनरी भावना से कार्य करती रही है। प्रजातन्त्र के उदय से पूर्व गणतन्त्रात्मक* व्यवस्था मे फ्रांस के राजाओ न अपने अधीनस्थ अधिकारियो मे देश के आर्थिक जीवन के विकास की प्रेरणा जाग्रत की। नेपोलियन प्रथम के समय मे भी प्रशासन राज्य के हस्तक्षेप के प्रति पर्याप्त सजग रहा। 19वीं सदी और उसके बाद के पूँजीवादी युग मे राज्य के हस्तक्षेप की नीतियाँ कायम रहीं। चतुर्थ गणतन्त्र के समय नागरिक सेवा ने कृषि और उद्योगा के आधुनिकीकरण के लिए अनेक प्रमुख योजनाएँ प्रारम्भ कीं। आज भी फ्रांस का सेवीवर्ग प्रशासन इसी प्रकार की मिशनरी भावना से चल रहा है।

2. देश के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व (Representation of all classes in the country)—फ्रांस की लोकसेवाओं मे देश के प्राय सभी वर्गों के लोगो का प्रवेश है। बडा आकार होने के कारण यह विभिन्न वर्गों को आने का निमन्त्रण देती है। ब्रिटेन मे वहाँ की जनसख्या के अनुपात मे जितने लोकसेवक हैं उनसे दुगुने फ्रांस मे हैं। ब्रिटेन मे जिन पदो पर स्थानीय सरकार के अधिकारी कार्य करते हैं उन पदों पर फ्रांस मे लोकसेवक रखे जाते हैं।

3. देश के सभी भागों में बिखरे हुए हैं (Spread all over the country)—फ्रांस के लोकसेवक ब्रिटेन की भाँति केवल राजधानी प्रदेश और बडे नगरो मे ही

1 "… It is a powerful reinforcing force for the French bureaucratic model" —Ibid, p 251.

केन्द्रित नहीं हैं वरन् पूरे देश में व्याप्त हैं। केन्द्र सरकार की क्षेत्रीय सेवाएँ काफी व्यापक हैं। सम्भवत प्रत्येक कस्बे में एक सरकारी कार्यालय है। तीन हजार कस्बों तथा गाँवों में सरकारी सडक और इन्जीनियर रखे गए हैं। प्रत्येक पैरिश (Parish) में स्कूल मास्टर होता है जो स्वय एक लोकसेवक है।

4 अच्छे प्रत्याशियों का चयन (Selection of better candidates)—फ्रांस में लोकसेवकों की ओर अच्छे और योग्य व्यक्ति आकर्षित होते हैं। यहाँ स्पर्धा पर्याप्त कडी होती है। सेवाओं में प्रवेश की परीक्षाएँ सामान्य योग्यता की मापक समझी जाती हैं। यद्यपि लोकसेवाओं में वेतन एवं अन्य भौतिक उपलब्धियाँ निजी उद्यमों की अपेक्षा कम होती हैं किन्तु इनकी प्रतिष्ठा और सम्मान इतना अधिक होता है कि लोग अल्पकाल के लिए भी इनमें आना पसन्द करते हैं। यदि एक बार सरकारी सेवा में किसी ने प्रवेश पा लिया तो फिर वह कहीं भी अपने भाग्य की परीक्षा कर सकता है। उसे एक प्रकार से सफलता के लिए प्रमाण-पत्र मिल जाता है।

5 शिक्षा से जुडी हुई है (Linked with the education)—फ्रांस की *नागरिक सेवा तथा शिक्षण संस्थाओं के बीच सम्बन्धों की एक कडी सदैव रहती है।* अनेक स्कूलों में प्रवेश के लिए बडे कठोर नियम हैं। यहाँ प्रवेशार्थियों से एक समझौते पर हस्ताक्षर करा लिए जाते हैं कि वे स्नातक होने के बाद कुछ वर्षों तक सरकारी सेवा में रहेंगे। अध्ययनकाल में विद्यार्थियों को ऐसे विषयों का ज्ञान कराया जाता है जो सरकारी सेवा के दायित्वों एवं आवश्यकताओं के अनुरूप होते हैं। इन स्कूलों की परम्पराएँ लोकसेवाओं की परम्पराओं के समकक्ष होती हैं।

6 विभिन्नताएं (Diversity)—फ्रांस की नागरिक सेवा की एक अन्य विशेषता इसकी भिन्नरूपता (Diversity) है। नागरिक सेवा अलग-अलग कोर्प्स (Corps) बने हुए हैं। अलग अलग स्कूलों में विभिन्न प्रकार की नागरिक सेवाओं को प्रशिक्षण दिया जाता है। स्कूलों तथा कोर्प्स के परिणामस्वरूप विभिन्नताएँ जन्म लेती हैं। यह व्यवस्था नेपोलियन द्वारा स्थापित की गई थी। नेपोलियन एक ऐसी नागरिक सेवा स्थापित करना चाहता था जिसका अपना जीवन हो। वह एसा करने में सफल भी हुआ। नागरिक सेवा कोर्प्स को स्वतन्त्रता प्रदान की गई। इसके फलस्वरूप सरकारी विभागों में सघात्मक सरचना का मार्ग प्रशस्त हुआ।

फ्रांस की नागरिक सेवा की उक्त परम्परागत विशेषताएँ आज भी परिवर्तित रूप में यहाँ की नौकरशाही से जुडी हुई हैं। नागरिक सेवा निदेशक पी चेटनिट (P Chatenet) ने फ्रांस की वर्तमान नागरिक सेवा की निम्नलिखित चार विशेषताओं का उल्लेख किया है—

(A) राज्य की सर्वोच्चता (*Supremacy of the State*)—फ्रांस में रोमन साम्राज्य की प्रेरणा से विभिन्न संस्थाओं का नियामकीय सिद्धान्त कानून की सर्वोच्चता है। यहाँ का प्रशासन राज्य की सत्ता पर निर्भर है। राजसत्ता द्वारा ही प्रशासन और व्यक्ति के सम्बन्धों तथा प्रशासन की आन्तरिक सरचना को निर्धारित किया जाता है। इस व्यवस्था में राज्य और प्रशासन एक ही स्तर पर नहीं रहते।

प्रशासन राज्यसत्ता के अधीन रहता है। राज्य तथा राज्य-कर्मचारियों के बीच कोई समझौता नहीं होता। सेवीवर्ग प्रशासन से सम्बन्धित विभिन्न निर्णय राज्य द्वारा एकपक्षीय रूप से लिए जाते हैं।[1] इस असमानतापूर्ण स्थिति पर ही फ्रांस के सेवीवर्ग प्रशासन की प्रमुख विशेषता आधारित है यह है—केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति।

(B) केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति (Centralizing Spirit)—फ्रांस में स्वेच्छाचारी राजतन्त्र ने दैवीय अधिकारों के सिद्धान्त के आधार पर जिस पूर्ण शक्ति का प्रयोग किया था उसका स्वाभाविक परिणाम सेवीवर्ग प्रशासन में केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति है। यहाँ की सरकारें प्रायः सघात्मक व्यवस्था से सयमीत रहीं और इसलिए यहाँ स्थानीय सरकार का विकास नहीं हो पाया है। इस केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति ने वहाँ की नागरिक सेवा को काफी प्रभावित किया है। 19वीं शताब्दी में ऐसे सामान्य नियमों की रचना की गई जो सम्पूर्ण नागरिक सेवा पर लागू होते थे। नागरिक सेवा में केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति का एक छोटा सा उदाहरण यह है कि फ्रांस के उपनिवेशीय लोकसेवक भिन्न परिस्थितियाँ होते हुए भी उन्हीं सामान्य नियमों के अधीन कार्य करते हैं जो राजधानी प्रदेश में रहने वाले उनके साथियों पर लागू होते हैं।

(C) स्थायित्व (Permanance)—फ्रांसीसी प्रशासन अपने सेवीवर्ग के स्थायित्व के लिए हमेशा से प्रसिद्ध रहा है। यहाँ लूट प्रणाली का प्रचलन कभी नहीं रहा।[2] राजतन्त्र में अधिकारीगण पर्याप्त स्थायी होते थे। फ्रांस का कोई भी लोकसेवक दल अथवा सरकार से बँधा नहीं होता, वह राज्य का सेवक होता है और अपेक्षाकृत अधिक स्थायी रहता है। यहाँ की दोहरी न्याय व्यवस्था नागरिक सेवा के स्थायित्व में सहयोगी बनती है। सेवीवर्ग के स्थायित्व को यहाँ जनमत का समर्थन प्राप्त है। व्यवहार में यहाँ की नागरिक सेवा का शुद्धिकरण कम हुआ है। यह जब भी कभी किया गया है तो इसकी प्रतिक्रियास्वरूप लोकसेवा में अधिक स्थायित्व की व्यवस्था हुई है। एक मजे का तथ्य यह है कि 1847 से 1852 तक अर्थात् 5 वर्षों में ही फ्रांस में चार सरकारें बदल गईं (ये थीं—July Monarchy, The Democratic Republic, The Conservative Republic, The Second Empire) किन्तु उच्चतर और मध्यस्तरीय सेवीवर्ग में से केवल वे ही लोग हटे जिनका हटना उनकी मृत्यु अथवा त्यागपत्र के कारण अनिवार्य हो गया था। यही बात 1869 74 के समय के लिए भी सच है। फ्रांस की लोकसेवा का यह स्थायित्व धीरे-धीरे संस्थागत बन गया है। इसका समर्थन करने वाले अनेक कानून बने हैं जिनके द्वारा लोकसेवकों को कार्यकाल की गारण्टी दी जाती है। यहाँ राज्य को स्थायी बनाने के

1 "......the various aspects of his employment are determined as in the case of a contract for ordinary work, but are decided unilaterally by the state in its role of political sovereign"

—*P Chatenet* - The Civil Service in France, in William A Robson, ed The Civil Service in Britain and France, 1956, p 162

2 "One can say that nothing like the spoils has ever existed in France"

—Ibid, p. 164

लिए जो भी प्रयास किए गए हैं वे सब नागरिक सेवा मे स्थायित्व लाने मे सहयोगी बने । इसके फलस्वरूप लोकसेवाओ मे एकीकरण की स्थापना हुई है और राज्य की सत्ता का प्रभाव कम हुआ है । गारण्टी की व्यवस्था ने फ्रांस के नागरिक सेवक को राज्य की स्वेच्छाचारी शक्तियो के विरुद्ध सर्वाधिक सुरक्षित नागरिक बना दिया है ।

(D) गारण्टीज का विकास (The Development of Guarantees)—फ्रांस की नागरिक सेवा मे हुए अर्वाचीन परिवर्तनो ने कर्मचारियो के अधिकार बढ़ा दिए हैं किन्तु इसके फलस्वरूप आधारभूत सिद्धान्तो मे परिवर्तन नही हुआ है । नागरिक सेवको की सुरक्षा के लिए अनेक नियम बनाए गए हैं । इन नियमो ने राजशक्ति की सीमा बाँधी है । यद्यपि अभी भी राज्य अनेक शक्तियो का प्रयोग करता है किन्तु वह किसी भी परिस्थिति मे कर्मचारियों का दमन नही कर सकता । प्रभावित लोकसेवक को राज्य द्वारा की गई किसी भी कार्यवाही के विरुद्ध अपील करने का अधिकार है । राज्य कभी एकपक्षीय कार्यवाही नहीं करता । किसी कर्मचारी के विरुद्ध कोई कदम उठाने से पूर्व वह व्यावसायिक संघों के साथ संयुक्त विचार-विमर्श करता है । नागरिक सेवाओ के हितो की रक्षा के लिए की गई अनेक व्यवस्थाएँ एक लम्बे विकास का परिणाम हैं । इस कार्य मे व्यावसायिक संघो (Trade Unions) ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है ।

फ्रांस मे व्यावसायिक संघवाद का विचार अनेक उतार चढ़ावा के फलस्वरूप पनपा है । प्रारम्भ म फ्रांस के शासको तथा न्यायाधीशो ने नागरिक सेवकों की संस्थाओ को सन्देह की नजर से देखा । 1901 मे व्यवस्थापन द्वारा प्रत्येक नागरिक को संस्था (Association) बनाने का अधिकार दिया गया किन्तु नागरिक सेवक अभी भी व्यावसायिक संघ नही बना सकते थे । तत्कालीन सरकार को यह भय था कि यदि कर्मचारियों को संघ बनाने का अधिकार दे दिया गया तो वे मजदूरो के साथ मिल कर सामान्य हड़ताल (General Strike) करा देंगे । जब सरकार को यह विश्वास हो गया कि व्यावसायिक संघ राजनीतिक क्रान्ति का साधन नहीं बनेंगे और केवल व्यावसायिक हितो की ही रक्षा करेंगे तो उसका दृष्टिकोण बदला । प्रथम विश्वयुद्ध के बाद कर्मचारियो के अनेक संघ बन गए । यद्यपि सरकारी मान्यता इनको अभी भी प्राप्त नही थी किन्तु फिर भी सरकार द्वारा इनका विरोध नहीं किया गया । 1946 के व्यवस्थापन द्वारा नागरिक सेवकों के संघ बनाने के अधिकार को मान्यता प्राप्त हुई । वास्तविक व्यवहार मे इन व्यावसायिक संघों ने किसी राजनीतिक क्रान्ति में भाग लेने की अपेक्षा कर्मचारियो के हितों की रक्षा के कार्य म ही रुचि ली । चेटनिट ने लिखा है कि "फ्रांस मे नागरिक सेवा संघवाद ने कौन्सिल डी एटा की स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध संघर्ष म प्रभावशाली योगदान दिया है ।"

5 भारत, ब्रिटेन, संयुक्तराज्य अमेरिका तथा फ्रांस में सेवीवर्ग की भर्ती

(Recruitment of Personnel in India, U. K., U. S. A. and France)

भर्ती सेवीवर्ग व्यवस्था का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग है। सम्भवतः समूचे सेवीवर्ग प्रशासन में अन्य कोई समस्या भर्ती के समान प्रभावपूर्ण तथा दूरगामी नहीं होती। कारण यह है कि जब तक आधारभूत सामग्री ही उपयुक्त नहीं होगी तब तक लोकसेवकों के प्रशिक्षण, निरीक्षण, वर्गीकरण, मोद, सेवा की सन्तोषजनक शर्तें, वेतन आदि की समुचित व्यवस्था प्रभावशाली सिद्ध नहीं हो सकती। यदि हम किसी प्रशासनिक संगठन के लक्ष्यों को कम से कम समय, श्रम एवं साधनों का व्यय करके प्राप्त करना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि संगठन के विभिन्न उत्तरदायी पदों पर योग्य तथा सक्षम व्यक्तियों की भर्ती करें अन्यथा संगठन के ऊँचे लक्ष्य तथा सुनियोजित कार्य प्रक्रियाएँ केवल कागजी महत्त्व के रह जाएँगे। प्रो स्टॉल की मान्यता है कि "भर्ती प्रक्रिया सम्पूर्ण सेवीवर्ग संरचना की आधारशिला है। जब तक भर्ती के लिए एक स्वस्थ नीति नहीं अपनाई जाती तब तक प्रथम श्रेणी के कर्मचारी पाने की आशा न्यूनतम रहती है।"[1] यदि संगठन के कार्यकर्त्ता योग्य तथा कार्यकुशल नहीं होंगे तो वे निश्चय ही साधनों का अपव्यय करेंगे, कार्य सही तरीके से नहीं होगा, संगठन के प्रति जन-असन्तोष व्याप्त हो जाएगा, प्राथमिकताओं का क्रम अस्त-व्यस्त हो जाएगा तथा अनेक संगठनात्मक एवं प्रक्रियात्मक दोष जन्म लेने लगेंगे। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि एक स्वस्थ एवं उपयुक्त भर्ती प्रणाली प्रशासनिक संगठन की सफलता पर प्रायः वही प्रभाव डालती है जो बीज,

1 "It is the corner-stone of the whole personnel structure Unless recruitment policy is soundly conceived, there can be little hope of building a first rate staff"

—O Glenn Stahl, Public Personnel Administration, 1962, p 51.

खाद तथा पानी की उपयुक्तता एवं पर्याप्तता फसल की सम्पन्नता पर डालती है। ई. एन. ग्लेडन ने लिखा है—"लोकसेवा का इतिहास एक प्रकार से अधिकारियों की भर्ती की कहानी है। इस प्रथम कदम पर ही प्रशासन यन्त्र की उपयोगिता निर्भर करती है।"[1]

भर्ती : अर्थ एवं महत्त्व
(Recruitment Its Meaning and Importance)

सेवीवर्ग अथवा कार्मिक प्रशासन की एक प्रमुख समस्या 'भर्ती' की है। प्रशासकीय सरचना म भर्ती की प्रक्रिया का सम्पूर्ण कार्य प्रशासनतन्त्र की दृष्टि से केन्द्रीय महत्त्व का है, क्योंकि भर्ती के द्वारा ही लोकसेवाओं का स्तर और योग्यता निश्चित होती है तथा इसी पर शासन की उपयोगिता और समाज एवं शासनतन्त्र के सम्बन्ध का निर्धारण होता है। भर्ती शक्तिशाली लोकसेवा की कुञ्जी है। स्टाल (Stahl) के शब्दो मे—'यह सम्पूर्ण लोक-कर्मचारियो के ढाँचे की आधारशिला है।"[2]

सामान्य अर्थ म 'भर्ती' शब्द को नियुक्ति का समानार्थक माना जाता है लेकिन यह सही नही है। भर्ती से आशय है—लोकसेवा की नियुक्तियो के लिए प्रतियोगिता करने हेतु उपयुक्त प्रत्याशियों को ढूँढने और उन्हे प्रेरित करने के प्रयत्न किए जाएँ। प्रशासन की प्राविधिक शब्दावली में भर्ती का अर्थ है—किसी पद के लिए उम्मीदवारो या प्रत्याशियों को आकर्षित करना। भर्ती का उद्देश्य यह होना है कि किसी विशिष्ट पद के लिए एक उपयुक्त व्यक्ति ढूँढा जाए। मार्शल डिमाक के अनुसार—"भर्ती का अर्थ सही व्यक्ति को एक विशेष कार्य पर लगाना है। हम बहुत सारे कर्मचारी प्राप्त करने के लिए विज्ञापन देना होगा अथवा विशेष कार्य के लिए योग्यता प्राप्त व्यक्तियो को ढूँढना होगा।" भर्ती और नियुक्ति के अर्थ का थोड़ा अन्तर है। जहाँ भर्ती से आशय योग्य व्यक्तियो को सगठन की ओर आकर्षित करना है, वहाँ नियुक्तिकर्त्ता की इच्छाएँ प्रधान होती है। भर्ती व्यवस्था म योग्य व्यक्ति वह होता है जो प्रतियोगिता मे अपने साथियो से ऊँचा सिद्ध हो जबकि नियुक्ति म योग्यता वह है जिसे नियुक्तिकर्त्ता स्वीकार कर ले।

भर्ती क समय यह ध्यान रखा जाता है कि योग्य व्यक्ति को ही पद सौंपा जाए। वास्तव म यह एक जटिल समस्या है। ह्वाइट के शब्दो म भर्ती की प्रक्रिया मे विरोधी तत्त्वो म खींचातानी पाई जाती है—एक ओर तो समानता तथा मानवता और दूसरी ओर विशेष योग्यता। भारत के विशाल प्रशासनिक यन्त्र मे सेवीवर्ग की सख्या बहुत अधिक बढ़ जाने से भर्ती की समस्या अत्यन्त जटिल हो गई है।

1 "Clearly civil service history can be epitomised as the story of the recruitment of officials, since on this first essential step largely rests the nature and degree of usefulness of the administrative machinery to the service of which the human elements are dedicated"
—*E N Gladden* The Civil Service—Its problems and future, 2nd ed., 1968, p 64

2 *Stahl O Glenn* : Public Personnel Administration, p 59

सार्वजनिक भर्ती की व्याख्या करते हुए किंग्सले (Kingsley) का कथन है कि 'यह प्रक्रिया है जिसके द्वारा लोकसेवाओं के लिए उम्मीदवारों को स्पर्धात्मक रूप से आकर्षित किया जा सकता है।" यह एक व्यापक प्रक्रिया चयन का आन्तरिक भाग है जिसमें परीक्षा एवं प्रमाण सम्बन्धी प्रक्रियाएँ भी सम्मिलित हैं। भर्ती करते समय लक्ष्य यही रहता है कि पद पर उचित व्यक्ति आसीन हो, अतः भर्ती की कुछ ऐसी तकनीकें विकसित की जाती हैं जिनके माध्यम से योग्य व्यक्ति उस पद का उम्मीदवार हो सके, योग्यतम को छाँटा जा सके और अनुपयुक्त व्यक्तियों को पदासीन करने के खतरे से प्रशासकीय संगठन को बचाया जा सके।

सही ढंग से भर्ती किया जाना किसी भी कुशल प्रशासन की अनिवार्य शर्त है। हम इस सत्य को कदापि नहीं ठुकरा सकते हैं कि सार्वजनिक हित की अधिकतम उपलब्धि के लिए योग्य व्यक्तियों की सेवाएँ ही प्राप्त की जानी चाहिए तभी एक ऐसा स्वस्थ और आदर्श वातावरण बन सकेगा जिसमें जनता और कर्मचारी वर्ग दोनों को मानसिक सन्तोष प्राप्त होगा और सरकारी नीतियों तथा कार्यक्रमों की सफलता का डंका पीटा जा सकेगा। गलत और अयोग्य व्यक्तियों की भर्ती तो लोक प्रशासन के लिए क्षय रोग के समान है। संयुक्तराज्य अमेरिका सामाजिक अनुसन्धान परिषद् द्वारा नियुक्त एक जाँच आयोग के प्रतिवेदन के अनुसार, "जीवन-मुक्ति सेवा का कोई भी तत्त्व भर्ती की नीति से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है।" राज्य के कल्याणकारी स्वरूप और बदले हुए सामाजिक-आर्थिक ढाँचे और विशाल प्रशासनिक यन्त्र ने भर्ती के प्रश्न को विशेष महत्त्वपूर्ण बना दिया है। भर्ती का प्रश्न पदाधिकारियों की समस्याओं का केन्द्र बिन्दु कहा जा सकता है। प्रो. जिंक (Prof Zink) के अनुसार "भर्ती के अतिरिक्त लोक प्रशासन का अन्य कोई भाग महत्त्वपूर्ण नहीं है क्योंकि जब तक आधारभूत सामग्री ही उपयुक्त नहीं होगी तब तक प्रशिक्षण, निरीक्षण, मेवायापन, वर्गीकरण, खोज आदि के बहुत व्यापक होते हुए भी सार्वजनिक कर्मचारियों की पूर्ति नहीं हो सकेगी।"

आधुनिक समय में समुचित भर्ती प्रणाली के श्रीगणेश का श्रेय प्रशिया को है। भारत में भर्ती के क्षेत्र में योग्यता का सिद्धान्त (Merit Principle) 1853 से प्रचलित है। ब्रिटेन में यह आंशिक रूप में 1857 में और पूर्णत 1870 से प्रचलन में है। वैसे लोक कर्मचारियों की भर्ती के प्रश्न का सर्वप्रथम वैज्ञानिक हल ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में चीन में आरम्भ हो चुका था।

भर्ती की नकारात्मक और सकारात्मक धारणाएँ
(The Negative and Positive Concepts of Recruitment)

भर्ती की समस्या किसी भी देश के ऐतिहासिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षणिक आदि तत्त्वों से प्रभावित होती है। प्रायः इन तत्त्वों के आधार पर भर्ती के रूप अथवा प्रकार भी विकसित हो जाते हैं और देश, काल, सामाजिक और शैक्षणिक वातावरण के अनुकूल प्रत्यक्ष या पदोन्नति द्वारा भर्ती की जाती है अथवा भर्ती का कोई अन्य प्रकार अपनाया जाता है।

आज विश्व के अधिकांश सभ्य देशों में योग्यता के आधार पर भर्ती की जाती है और योग्यता की जाँच के लिए खुली प्रतियोगिता का आश्रय लिया जाता है। लोक प्रशासन में की जाने वाली भर्तियों को हम मोटे रूप में दो भागों में विभाजित करके देख सकते हैं—

(1) सकारात्मक भर्ती (Positive Recruitment)

(2) नकारात्मक या निषेधात्मक भर्ती (Negative Recruitment)

भर्ती की सकारात्मक अवधारणा (The Positive Concept of Recruitment) का आशय यह है कि विभिन्न सरकारी पदों के लिए उचित और योग्य व्यक्तियों की खोज के प्रयास किए जाएँ। आजकल विभिन्न देशों में जो लोकसेवा आयोग (Public Service Commission) पाए जाते हैं उनका यह मौलिक कार्य है कि वे सरकारी पदों पर योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति करने की दिशा में कार्यशील हों। भर्ती की यह पद्धति न्यायपूर्ण है जिसमें लोक कर्मचारियों की योग्यता का उचित मूल्यांकन हो पाता है और उसी के आधार पर उन्हें उपयुक्त पदों पर नियुक्त किया जाता है। सकारात्मक भर्ती के अनेक तरीके हो सकते हैं, जैसे—

प्रथम, सम्भावित उम्मीदवारों को विज्ञापनों, पोस्टरों आदि द्वारा आकर्षित किया जाता है कि वे अपनी योग्यतानुसार पद प्राप्त करने में रुचि लें। यह तरीका मुख्यतः तभी अपनाया जाता है जब बड़ी संख्या में नियुक्ति करनी हो।

दूसरे, प्रदर्शनियों के माध्यम से किसी विशेष पद के लाभों के विज्ञापन द्वारा योग्य व्यक्तियों को उस ओर आकर्षित किया जाता है।

तीसरे, योग्य उम्मीदवारों के स्रोत-स्थलों में प्रत्यक्ष बातचीत की जाती है। उदाहरणार्थ, यदि इंजीनियरों, डॉक्टरों, राजनीतिक सेवकों आदि की भर्ती करनी हो तो भर्तीकर्त्ता शैक्षणिक संस्थाओं से सम्पर्क स्थापित कर सकता है और उनसे योग्य विद्यार्थियों की एक सूची देने की प्रार्थना कर सकता है जिसके आधार पर वह साक्षात्कार कर सके और योग्य विद्यार्थियों का चयन कर सके।

चौथे उच्च पदों पर विशेष योग्यता और अनुभव की आवश्यकता होती है, अतः भर्तीकर्त्ता अधिकारी इसके लिए उपयुक्त व्यक्तियों से प्रत्यक्ष रूप में सम्पर्क कर सकता है और समझौता हो जाने पर उस व्यक्ति को औपचारिक रूप से आवेदन करने के लिए कहा जा सकता है।

भर्ती की सकारात्मक व्यवस्था का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसमें योग्य और उचित व्यक्तियों को ही प्रतियोगिता में शामिल होने की अनुमति दी जाती है। फिफ्नर तथा प्रीस्थस के शब्दों में," इस पद्धति में धूर्तों को बाहर रखने पर इतना बल नहीं दिया जाता जितना इस बात पर कि राज्य के लिए सर्वोत्तम व्यक्तियों को किस तरह प्रोत्साहित किया जाए और उनकी योग्यताओं का कैसे मूल्यांकन किया जाए, ताकि प्रत्येक व्यक्ति उसी पद को प्राप्त करे जिसके लिए वह योग्य है।"

भर्ती की नकारात्मक पद्धति (Negative Method of Recruitment) का उद्देश्य यह होता है कि सरकारी पदों से धूर्त व्यक्तियों को दूर रखा जाए, लोक

सेवाग्रो मे पक्षपात और दलगत राजनीति के प्रभाव को मिटाया जाए तथा प्रशासन को यथासाध्य ईमानदार बनाया जाए। इस प्रक्रिया मे भर्तीकर्त्ता कुछ ऐसे नियम बना देता है और न्यूनतम शर्ते निर्धारित कर देता है जिनके आधार पर केवल योग्य व्यक्तियो को ही उम्मीदवार बनने के अवसर प्राप्त हो सकें और धूर्त लोग सार्वजनिक सेवा के बाहर रखे जा सकें। किन्तु यह प्रणाली सफल नही हो सकती है क्योकि धूर्तो को सेवाग्रो से दूर रखने के प्रयास मे जाने-ग्रनजाने योग्य ग्रौर बुद्धिमान व्यक्ति भी बाहर रह जाते है। यह विश्वास फलीभूत नही हो सकता कि जब धूर्तों को बाहर रख दिया जाएगा तो योग्य व्यक्ति स्वत ही प्राप्त होने लगेंगे, इसीलिए भर्ती के सकारात्मक उपायो को आज लगभग सभी देशों मे अपनाया जाता है।

भारत मे भर्ती का सकारात्मक दृष्टिकोण पक्षपात और भाई-भतीजेवाद को प्रोत्साहन देने मे बहुत सहायक रहा है। अब लोकसेवा आयोग भर्ती के लिए मुख्यत ऐसे नियम तथा आचरण सहिता निर्धारित करता है ताकि धूर्तों को बाहर रखा जा सके और योग्य व्यक्तियो का चयन किया जा सके।

भारत मे सेवाग्रो को मुख्यत चार श्रेणियो मे विभाजित किया गया है— अखिल भारतीय सेवाएँ, केन्द्रीय सेवाएँ, राज्य सेवाएँ तथा केन्द्रीय सचिवालय सेवाएँ। अखिल भारतीय सेवाएँ सघ और राज्यो के लिए सामान्य होती हैं। केन्द्रीय सेवाएँ पूर्ण रूप से सघ सरकार के ग्रधीन कार्य करती हैं और आयकर, आबकारी, सुरक्षा आदि सघीय विषयो से सम्बन्ध रखती हैं। राज्य सेवाएँ शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, सिंचाई, स्थानीय सरकार आदि विषयो से सम्बन्ध रखती हैं और पूर्णत राज्य सरकार के अधीन रहती हैं। केन्द्रीय सचिवालयी सेवाएँ विभिन्न श्रेणियों मे विभाजित हैं। इनमे से कुछ की पूर्ति प्रत्यक्ष भर्ती द्वारा और कुछ की अप्रत्यक्ष भर्ती के द्वारा की जाती है।

भर्ती की प्रक्रिया
(The Process of Recruitment)

लोकसेवाग्रो मे भर्ती की प्रक्रिया पर सम्बन्धित देश की राजनीतिक रूप-रचना का निर्णायक प्रभाव होता है। इस प्रभाव के कारण ही लोकसेवाग्रो मे भर्ती गैर-सरकारी पदों पर भर्ती की अपेक्षा अधिक जटिल बन जाती है।[1] नार्मन जे पावेल के कथनानुसार, "भर्ती सेवीवर्ग कार्यक्रम का एक भाग है। यह सामाजिक तथा सरकारी नीति का एक अग है।"[2] ब्रियाँ चेपमैन ने लिखा है कि भर्ती कुछ सीमा तक देश की नागरिक सेवा के सामान्य सगठन से प्रभावित होती है।"[3] ये सभी तत्त्व परस्पर सम्बन्धित होते है तथा भर्ती की प्रक्रिया एव स्वरूप पर उल्लेखनीय

1 *Simon, Smithbury and Victor A Thompson*: Public Administration, p 313.
2 *Norman J Powell*, op cit, p 208
3 "Recruitment is to some extent affected by the general organisation of the civil service in a country"
—*Brian Chapman*. Profession of Government, 1959, p 75

प्रभाव डालते हैं। देश की अर्थव्यवस्था, सामाजिक मूल्य एवं प्राथमिकताएँ, कानून का स्वरूप, गैर-सरकारी पदों की स्थिति आदि बातें योग्य प्रत्याशियों के सरकारी पदों की ओर आकर्षित होने पर प्रभाव डालती हैं। इन पदों पर प्राप्त होने वाला वेतन तथा सम्मान भी अपनी उल्लेखनीय भूमिका निभाता है। किसी सरकारी पद पर दिए जाने वाले वेतन की मात्रा समाज के विभिन्न दबाव समूहों की क्रिया-प्रतिक्रियाओं द्वारा निर्धारित होती है। ये दबाव समूह सरकारी पदों की प्रतिष्ठा बढ़ाने में भी प्रभाव डालते हैं। जिन पदों द्वारा इन हित समूहों एवं दबाव समूहों के स्वार्थों की पूर्ति सम्भव होती है वे पद इनके आकर्षण के केन्द्र बन जाते हैं तथा ऐसे पदों पर जोड़-तोड़ करके वे अपने आदमियों को नियुक्त कराने की चेष्टा करते हैं। स्पष्ट है कि यदि हम किसी पद के लिए योग्य प्रत्याशियों को आकर्षित करना चाहते हैं तो उस पद को यथासम्भव महत्त्वपूर्ण तथा सम्मानजनक बना दें। इसी अर्थ में डॉ. एल. डी. ह्वाइट ने लिखा है कि "भर्ती का तात्पर्य केवल रिक्त स्थानों की सूचना देना तथा निष्क्रिय रूप में स्वीकार करना मात्र ही नहीं है। लोकसेवाओं की आवश्यकता के निर्वाह हेतु यह सक्रिय, खोजपूर्ण, चयनात्मक आग्रहपूर्ण तथा निरन्तर होनी चाहिए।'[1] अमल में भर्ती का कार्य सकल सेवीवर्ग प्रक्रिया की एक कड़ी है। यह इस प्रक्रिया की अन्य कड़ियों के साथ घनिष्ठ रूप से बुनी रहती है। इसके अनेक सूत्र देश की अर्थव्यवस्था एवं समाज व्यवस्था से जुड़े रहते हैं। यही कारण है कि एक प्रभावशाली भर्ती व्यवस्था की स्थापना तब तक नहीं की जा सकती जब तक कि पूरी सेवीवर्ग व्यवस्था कार्यकुशल न हो। नार्मन जे. पावेल के मतानुसार लोकसेवाओं के अवसरों की सूचनाओं का व्यापक प्रसारण ही पर्याप्त नहीं है। लोगों को उपलब्ध पदों की व्यापक जानकारी देने का अभियान मात्र ही नहीं होना चाहिए किन्तु ये पद आकर्षण तथा पहुँच के अन्तर्गत भी होने चाहिए।[2] यह बात ठीक इसी प्रकार है कि एक वस्तु की यदि हम बिक्री बढ़ाना चाहते हैं तो इसके लिए केवल विज्ञापन और प्रचार एवं प्रसारण ही काफी नहीं होता वरन् बेची जाने वाली उस वस्तु में गुण भी होने चाहिए।

भर्ती की प्रक्रिया के मोटे रूप से दो पग हैं—सर्वप्रथम इसमें प्रार्थियों को आकर्षित करने के प्रयास किए जाते हैं। पद के लिए उपयुक्त योग्यताओं वाले लोगों को आवेदन करने के लिए प्रेरित किया जाता है। उसके बाद सकल आवेदकों में से पद के लिए उपयुक्ततम व्यक्ति का पता लगाया जाता है। जब लूट व्यवस्था के

1 "Recruitment involves more than mere anouncement and passive acceptance, to meet the requirement of the public service it must be active, searching, selective, persistent and continuous."
—Dr L D White op cit p 342

2 "Accent on wide dissemination of information about service opportunities is not enough, not only must there be a vigorous campaign to let people know about the jobs that are available, but the jobs must be attractive and accessible"
—Norman J Powell, op. cit., p 209

स्थान पर योग्यता के आधार पर भर्तियाँ की जाने लगी तो प्रारम्भ मे भर्तीकर्त्ता का यह मुख्य दायित्व माना जाता था कि वह चयन प्रक्रिया मे पक्षपात पर रोक लगाए और प्रतियोगी परीक्षाओ म दर्शायी गई योग्यता एव क्षमता को विशेष महत्त्व प्रदान करे। यह कार्य मूलत निषेधात्मक प्रकृति का था। इसमे विशेष ध्यान धूर्तों को बाहर रखने (To keep the rascals out) की ओर दिया गया था। यह माना जाता था कि यदि चयन प्रक्रिया से राजनीतिक पक्षपात को अलग हटा दिया जाए तो योग्य व्यक्ति स्वत ही लोकसेवाओ मे आने लगेंगे। यह मान्यता भ्रामक सिद्ध हुई तथा धीरे-धीरे यह स्पष्ट हो गया कि निषेधात्मक दृष्टिकोण केवल धूर्तों को ही बाहर नही रखता वरन् इसके फलस्वरूप अनेक योग्य तथा दूरदर्शी व्यक्ति भी बाहर रह जाते हैं। जब अनुभवी तथा योग्य प्रशासको की माँग बढी तो क्रमश -भर्ती की सकारात्मक तकनीकें अपनाई जाने लगी। अब सर्वश्रेष्ठ तथा योग्यतम व्यक्तियों को लोकसेवाओ की ओर आकर्षित करने के विभिन्न तरीके अपनाए जाने लगे हैं। केवल समाचार-पत्रो मे रिक्त पदो की सूचना प्रकाशित कर देना ही पर्याप्त नही माना गया। इस औपचारिक तथा उदासीन व्यवहार से योग्य प्रत्याशी पर्याप्त मात्रा म प्रार्थी नही बन पाते और इसलिए विभिन्न पदो पर योग्य व्यक्तियो की नियुक्ति नही हो पाती। यह स्थिति सेवीवर्ग प्रशासन के लिए अभिशाप बन जाती है। प्रेन ने लिखा है कि "सेवीवर्ग प्रशासन की कोई भी व्यवस्था सुस्त और क्षमताहीन लोगों को प्रतिभाशाली एव कुशल नही बना सकती।" अत यह आवश्यक है कि सेवीवर्ग प्रशासन के इस पहले कदम पर पूरी सावधानी एव सजगता बरती जाए। सयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस तथा भारत की लोकसेवाओ मे यह अनुभव सामान्य रहा है इसलिए इन देशो मे नियुक्ति की सकारात्मक प्रक्रिया अपनाई जाती है।

प्रो स्टॉल की मान्यता है कि चयन के सकारात्मक अथवा विधेयात्मक कार्यक्रम मे ये मूलभूत तत्त्व होने हैं—(i) सम्भावित पदो के लिए सर्वश्रेष्ठ रोजगार बाजार की खोज तथा सवर्द्धन, (ii) भर्ती सम्बन्धी आकर्षक साहित्य का प्रयोग तथा उसका प्रचार, (iii) योग्यता की जाँच के लिए श्रेष्ठ, विश्वसनीय तथा अद्यतन परीक्षणो का प्रयोग, (iv) सेवा के अन्तर्गत ही प्रत्याशियो की पर्याप्त खोज (v) सही कार्य पर सही व्यक्ति को रखने का स्थापन कार्यक्रम तथा (vi) भर्ती प्रक्रिया के अविच्छिन्न अग के रूप मे कोई प्रशिक्षण कार्यक्रम।

सकारात्मक भर्ती प्रक्रिया के अन्तर्गत योग्य तथा सक्षम व्यक्तियो की खोज के लिए अनेक क्रमिक प्रयास किए जाते हैं। इनमे मुख्य ये हैं—(1) सम्भावित प्रत्याशियों को विज्ञापनो, पोस्टरो, पर्चों आदि द्वारा आकर्षित किया जाता है ताकि वे अपनी योग्यता एव रुचि के अनुसार सरकारी पदो के लिए आवेदन कर सकें। जब किन्हीं पदो पर बडी सख्या मे भर्तियाँ की जानी हैं तब यह कार्य विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण बन जाता है। (2) किन्हीं विशेष पदो के महत्त्व तथा कार्यों का विज्ञापन करने के लिए प्रदर्शनियाँ आयोजित की जाती हैं एव उन पदो पर आवेदन करने के लिए योग्य व्यक्तियो का ध्यान आकर्षित किया जाता है। (3) सम्भावित योग्य

प्रत्याशियों के स्रोत स्थलों से सीधा सम्पर्क स्थापित किया जाता है। विभिन्न शैक्षणिक संस्थाओं से योग्य विद्यार्थियों की सूची माँगी जाती है। विशेष योग्यता एवं अनुभव की आवश्यकता वाले उच्च पदों पर नियुक्ति के लिए ऐसे व्यक्तियों से सीधे अनौपचारिक सम्पर्क स्थापित किया जाता है।

भर्ती के रूप
(The Types of Recruitment)

संयुक्तराज्य अमेरिका की संघीय लोकसेवा में भर्ती के चार रूप उपलब्ध हैं—सकारात्मक (Positive), प्रत्यक्ष (Direct), संयुक्त (Joint) तथा अग्रिम (Advance)। सकारात्मक भर्ती के अन्तर्गत योग्य व्यक्तियों को रिक्त पदों की सूचना दी जाती है तथा उनको आवेदन करने के लिए प्रेरित किया जाता है। यह हर सम्भव प्रयास किया जाता है कि उन्हें प्रत्याशी बना कर भर्तीकर्त्ता अभिकरण के सामने पहुँचा दिया जाए। प्रत्यक्ष भर्ती का प्रयोग प्रायः निम्नतर श्रेणी के कार्यों पर नियुक्ति के लिए किया जाता है। इसमें कार्यकारिणी अभिकरण तथा लोकसेवा आयोग के बीच एक समझौता हो जाता है तथा आयोग को भर्ती, परीक्षा एवं योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति की शक्ति प्राप्त हो जाती है। इस तरीके में प्रत्याशियों को मौके पर ही भर्ती किए जाने का भरोसा रहता है। इसमें समय की बचत हो जाती है तथा अनेक प्रत्याशी इधर-उधर भागने से बच जाते हैं। संयुक्त भर्ती व्यवस्था में भी कार्यकारी अभिकरण तथा आयोग के बीच समझौता हो जाता है। इसमें संयुक्त कार्यवाही की योजना बनाई जाती है संयुक्त साक्षात्कार किए जाते हैं तथा नियुक्ति कर दी जाती है। अग्रिम भर्ती प्रायः उन पदों के लिए करली जाती है जिन पर बड़ी मात्रा में रिक्त स्थान होने की आशा रहती है। इस विधि से प्रार्थियों की पूर्ति का एक सुरक्षित भण्डार बना लिया जाता है।

भर्ती के स्रोत की दृष्टि से भर्ती प्रणाली को दो रूपों में विभाजित किया जाता है—अन्दर से भर्ती तथा बाहर से भर्ती। अन्दर से भर्ती को पदोन्नति भी कहा जा सकता है, बाहर से भर्ती नए प्रत्याशियों की भर्ती है। भर्ती के ये दोनों रूप एक-दूसरे के पूरक हैं। एक की कमियाँ तथा दोषों के निराकरण हेतु दूसरे को अपनाया जाता है। सभी राज्यों के प्रायः सभी विभागों में भर्ती के लिए इन दोनों रूपों को अपनाया जाता है। कभी-कभी तो दोनों रूपों के बीच अनुपात निश्चित कर दिया जाता है। औचित्य की दृष्टि से यह माना जाता है कि निम्न तलों पर प्रत्यक्ष भर्ती, मध्य तलों पर प्रत्यक्ष एवं पदोन्नति का मिश्रण तथा उच्च पदों के लिए विशुद्ध पदोन्नति की प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए।

लूट प्रणाली एवं योग्यता प्रणाली
(Spoils System and Merit System)

लोकसेवकों की भर्ती के समय उनकी राजनीतिक सेवाओं, दया, पक्षपात, को महत्त्व दिया जाए अथवा उनकी शैक्षणिक योग्यताओं एवं कार्यकुशलताओं को

प्राथमिकता दी जाए, इस दृष्टि से भर्ती प्रक्रिया दो रूपों में वर्गीकृत की जा सकती है। जिस व्यवस्था में सरकारी पद पर नियुक्ति के समय आवेदक की राजनीतिक सेवाओं तथा दृष्टिकोण को ध्यान में रखा जाता है वह लूट प्रणाली या संरक्षण प्रणाली (Spoils System or Patronage System) के नाम से जानी जाती है। इससे भिन्न जब भर्ती के लिए विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाएँ आयोजित की जाएँ तथा योग्यतम प्रत्याशियों को ही सरकारी पद सौंपे जाएँ तो यह योग्यता व्यवस्था कही जाती है।

लूट प्रणाली
(Spoils System)

भर्ती की इस व्यवस्था के अन्तर्गत परम्परा यह रही है कि ज्यों ही एक राजनीतिक पदाधिकारी सत्ता सम्भालता है वह समस्त उच्च प्रशासनिक पदों पर पहले से कार्यरत अधिकारियों को हटा देता है तथा उनके स्थान पर अपने समर्थकों, मित्रों तथा राजनीतिक दल के प्रमुख व्यक्तियों को नियुक्त कर लेता है। ये नवनियुक्त पदाधिकारी तब तक अपने पद पर कार्य करते हैं जब तक कि उनका नियुक्तिकर्ता राजनीतिज्ञ अपने पद पर आसीन रहता है। उसके हटते ही इनको भी पद से हटा दिया जाता है। इस प्रणाली का औचित्य यह बताया गया कि लूट का माल विजेता को प्राप्त होना चाहिए (To the victor belongs the spoils) तथा प्रशासनिक अधिकारी राजनेताओं की नीतियों में विश्वास करने वाले होने चाहिए। प्रो ओ जी. स्टॉल (Prof O G Stahl) के अनुसार संरक्षण शब्द का अर्थ लोकसेवाओं में योग्यता के अतिरिक्त या भिन्न कारणों से नियुक्ति करना है। यह स्पष्ट है कि संरक्षण की व्यवस्था में मात्र राजनीतिक तत्त्व ही प्रभाव नहीं रखता वरन् इसके अतिरिक्त रक्त सम्बन्ध, मित्रता एवं किसी न किसी प्रकार के अहसान की भावना भी प्रभाव डालती है।[1]

संयुक्तराज्य अमेरिका में लूट प्रणाली का प्रारम्भ राष्ट्रपति एन्ड्र्यू जैक्सन (Andrew Jackson) द्वारा किया गया था। इसके बाद यह अमेरिका के सेवीवर्ग प्रशासन का आवश्यक अंग बन गई। राष्ट्रपति जैक्सन ने अपने प्रथम वार्षिक सन्देश में (1829) इस व्यवस्था का बीजारोपण करते हुए कहा था कि "समस्त सरकारी अधिकारियों के कर्त्तव्य सीधे और सरल होते हैं। इन्हें सम्पन्न करने के लिए कोई भी साधारण बुद्धि का व्यक्ति अपने आपको योग्य बना सकता है। मेरा विश्वास है कि एक व्यक्ति के लम्बे समय तक पद पर रहने से हानि अधिक होती है तथा उसके अनुभव से लाभ कम होता है।" जैक्सन के बाद यह प्रणाली उत्तरोत्तर व्यापक बनती चली गई। इसके चरमोत्कर्ष के दिनों में एमस केन्डल (Amos Kendall)

1 "The term patronage has based implications As here used it denotes the appointment of the persons to the public service for reasons other than or in addition to merit It is obvious that political consideration may not be the only ones involved here Blood ties, friendship and obligations of one sort or another also play their parts"

—*O. G Stahl*: Public Personnel Administration, Fifth ed, 1962, p 26

नामक व्यक्ति से उसके एक पदाकांक्षी मित्र ने कहा—"मुझे स्वय पर शर्म आती है क्योंकि मुझे ऐसा लगता है कि जिस व्यक्ति से भी मैं मिलता हूँ वह यह जानता है कि मैं क्यों आया हूँ।" इस पर केन्डल का जवाब था कि "स्वय को परेशान मत करो क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति जिससे तुम मिलते हो यही काम कर रहा है।" जैक्सन ने विभिन्न सरकारी पदों पर से एडम्स के मित्रों को हटा कर अपने मित्र नियुक्त किए।

यह सच है कि लूट प्रणाली का नाम सयुक्तराज्य अमेरिका के सेवीवर्ग प्रशासन से जुड़ा हुआ है किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि दूसरे देशों में इसका प्रचलन ही न हो। मुनरो तथा अय्यर (Munro and Ayear) के मतानुसार लूट प्रणाली का जन्म सयुक्तराज्य अमेरिका म नहीं हुआ वरन् यह काफी पहले से ग्रेट-ब्रिटेन में प्रचलित थी। उच्च वेतन वाले सरकारी पदों को राजनीतिक पुरस्कार क रूप में देना उचित माना जाता था। 19वीं शताब्दी की प्रथम दशाब्दियों में लॉर्ड सभा के सदस्यों ने अपने इतने सारे सम्बन्धियों को सरकारी पदों पर लगा दिया कि जॉन ब्राइट ने सरकारी नौकरी को 'ब्रिटिश कुलीनतन्त्र का आउटडोर राहत विभाग' (Out-door Relief Department of the British Aristocracy) कह कर सम्बोधित किया है। उस समय ग्रेट ब्रिटेन में नियुक्तियाँ निश्चित कार्यकाल के लिए नहीं होती थीं तथा उनको किसी भी समय हटाया जा सकता था। मुनरो तथा अय्यर का निष्कर्ष है कि "एन्ड्रयू जैक्सन तथा उसके मित्रों ने लूट प्रणाली का आविष्कार नहीं किया था। उन्होंने पुरानी दुनिया की इस सस्था को नए वातावरण में आरोपित किया जहाँ इसका विकास द्रुतगति से हुआ। थोड़े ही समय में यह अमेरिकी राजनीति के बाग में एक हानिकारक घास-पात बन गया।"[1]

लूट प्रणाली का मूल्यांकन (Evaluation of the Spoils System)—सयुक्तराज्य अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन अथवा अन्य किसी भी देश में लूट प्रणाली का विकास कुछ आधारभूत मान्यताओं के आधार पर कुछ लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु किया गया था। इस प्रणाली की उपयोगिता की दृष्टि से ये बातें उल्लेखनीय हैं—(1) लूट प्रणाली के समर्थकों का विचार था कि एक बुद्धिमान व्यक्ति को किसी भी सरकारी पद पर रखा जा सकता है और एक पद पर लम्बे समय तक किसी व्यक्ति को बनाए रखने से हानि अधिक होती है। (2) लोकसेवकों का मुख्य दायित्व राजनीतिज्ञों द्वारा तय की गई नीतियों को कार्यान्वित करना है। इस कार्य की सन्तोषजनक सफलता के लिए प्रशासकों का विधायी कार्यक्रमों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण

1 "So Andrew Jackson and his friends did not invent the spoils system, they merely transplanted an old world institution to a new environment where it grew luxuriantly In time it became one of the most noxious weeds in the garden of American politics"
—*W B Munro and Seearst*, The Governments of Europe, 4th ed, 1963, p 1 8

समर्थन अनिवार्य है। (3) जो लोग तन-मन-धन से राष्ट्रपति पद के प्रत्याशी की सहायता चुनाव के समय करते हैं उनकी सरकारी पद पाने की आकांक्षा तथा निर्वाचित राष्ट्रपति द्वारा इस आकांक्षा की पूर्ति नैतिक एव मानवीय आधार पर औचित्यपूर्ण है। (4) इस प्रणाली मे राजनीति और प्रशासन के बीच उपयुक्त समन्वय बना रहता है। राजनीतिज्ञों का अपने मित्र और दलीय साथी प्रशासकों पर पूरा विश्वास रहता है और दूसरी ओर प्रशासक भी अपने सहृदय राजनीतिज्ञो से प्रत्येक प्रशासनिक सहयोग पाने की आशा रखते हैं। (5) देश के दलीयतन्त्र को सन्तोषजनक रूप से सचालित करने के लिए लूट प्रणाली उपयोगी और सार्थक है। सरकारी पद पाने की इच्छा से अनेक लोग दल के लिए कार्य करते हैं। (6) लूट प्रणाली के अन्तर्गत राजनीतिज्ञ अपने नीति एव कार्यक्रमो को कुशलतापूर्वक सम्पन्न कर पाते हैं। इसलिए वे जनता से किए गए वायदो को निभाने मे अधिक सक्षम हो पाते हैं, प्रशासन अधिक जनतान्त्रिक बन जाता है और नेताओ के आश्वासन केवल मौखिक पाखण्ड मात्र नही रह जाते। (7) सरकारी पदाधिकारियो के परिवर्तन की व्यवस्था (Rotation) सरकारी पद प्राप्त करने मे सभी नागरिको को अवसर की समानता देती है। (8) लूट प्रणाली के अन्तर्गत प्रजातन्त्र-विरोधी व्यावसायिक नौकरशाही का उदय नहीं हो पाता। इसके अभाव मे समाज स्पष्टत दो भागों मे बँट जाता है—सरकारी कर्मचारी और साधारण जन। दोनो के बीच आर्थिक स्थिति, सामाजिक मूल्य रहन सहन के स्तर, भावी आकांक्षा आदि की दृष्टि मे भारी अन्तर पैदा हो जाते हैं।

लूट प्रणाली के पक्ष में कही गई उक्त बातो का अमेरिका के सेवीवर्ग प्रशासन पर एक लम्बे समय तक प्रभाव रहा, किन्तु इसके फलस्वरूप प्रशासनिक भ्रष्टाचार, अनियमितता, लालफीताशाही, कार्यो के प्रति उदासीनता, अक्षमता आदि दोषों का जन्म हुआ।[1] राष्ट्रपति जैक्सन के विचार वास्तविक व्यवहार की कसौटी पर असत्य साबित हुए। अब सामान्य धारणा के अनुसार अधिक सही यह समझा जाने लगा कि लोकसेवकों के परिवर्तन से प्राप्त लाभो की अपेक्षा उनकी अनुभवहीनता के कारण हानियाँ अधिक होती हैं। आलोचको ने लूट प्रणाली के विरुद्ध मुख्यत ये तर्क दिए हैं—(1) लूट प्रणाली के अन्तर्गत विभिन्न सरकारी पदो पर गैर-अनुभवी तथा अक्षम लोग पहुँच जाते हैं जो पद के दायित्वों की अपेक्षा कम योग्य होते हैं। (2) यह प्रणाली सगठन के औपचारिक रूप, पदसोपान, आदेश की एकता आदि के लिए घातक बनती है और राजनीतिक यन्त्र के द्वारा प्रयोग में लाए जाने वाले विभिन्न अनौपचारिक नियन्त्रणो को विकसित कर लेती है। (3) लूट प्रणाली के अन्तर्गत कार्य करने वाले सरकारी अधिकारी अपने स्वय के तथा व्यावसायिक अनुयायियों के विकास, अस्तित्व एव सम्पन्नता मे बहुत रुचि लेते हैं और इसके लिए वे कानूनी

1 "This took the form at one time or another of straight out embezzlement, bribery, payroll padding, contract graft and position graft"

—*O G Stahl* op cit, pp 32-33

तथा गैर-कानूनी सभी तरीके अपनाते हैं। ये मतदाताओं द्वारा समर्थित नीतियों की ओर ध्यान नहीं देते। (4) इस व्यवस्था में प्रशासन पर उपयुक्त राजनीतिक नियन्त्रण लागू नहीं हो पाता और प्रशासकगण राजकोष एवं सत्ता का जी खोलकर दुरुपयोग करते हैं। (5) एक भ्रष्टाचारी संगठन अपने काले कारनामों में अधीनस्थ प्रशासकों को भी सहयोगी कर लेता है। ईमानदारी से काम करने वाले अधिकारी पुरस्कृत होने की अपेक्षा दण्डित किए जाते हैं और चारों ओर भ्रष्टाचार का बोलबाला हो जाता है। (6) जब लोकसेवकों की पद सुरक्षा राजनीतिक दल के भाग्य पर निर्भर हो जाती है तो योग्य व्यक्ति इन पदों की ओर आकर्षित नहीं होते। (7) लूट प्रणाली के आलोचकों ने इसकी मूल मान्यता पर चोट करते हुए यह सिद्ध किया है कि एक राजनीतिक दल द्वारा नियुक्त समस्त सरकारी अधिकारी दल के कार्यक्रमों में पूर्ण विश्वास रख सकें यह आवश्यक नहीं। (8) लूट प्रणाली में लोकसेवक तटस्थ नहीं रह पाते और उनकी तटस्थता अत्यन्त अनिवार्य है ताकि वे स्वयं की भावनाओं को लादे बिना विधायी निकाय की राजनीतिक इच्छा को कार्यान्वित कर सकें। लोकसेवकों को मूल्य सम्बन्धी निर्णय नहीं लेने चाहिए वरन् राजनीतिक रूप से जो राज्य की इच्छा प्रकट की गई है उसे कार्यान्वित करना चाहिए। यह कार्य लूट प्रणाली में सम्भव नहीं है। (9) लूट प्रणाली में लोकसेवकों की नियुक्ति का आधार उनकी योग्यता अथवा कार्य अनुभव नहीं होते इसलिए विभिन्न पदों पर अक्षम और अयोग्य व्यक्ति पदासीन हो जाते हैं। इनके हाथों राजकोष का अपव्यय एवं दुर्व्यय होता है।

योग्यता प्रणाली
(The Merit System)

लूट प्रणाली की बुराइयों को दूर करने तथा लोकसेवकों की योग्यता एवं क्षमता, तटस्थता एवं अवसर की समानता की स्थापना के लिए योग्यता प्रणाली का विकास हुआ। योग्यता प्रणाली के अन्तर्गत विभिन्न सरकारी पदों पर नियुक्ति के समय प्रत्याशियों की राजनीतिक सेवा, दृष्टिकोण अथवा ऐसी ही अन्य बातों का ध्यान नहीं रखा जाता वरन् प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा निर्धारित योग्यता को एकमात्र निर्णायक तत्व माना जाता है।

आजकल योग्यता प्रणाली (Merit System) शब्द का प्रयोग केवल लोकसेवकों के चयन अथवा प्रवेश को सम्बोधित करने के लिए नहीं किया जाता वरन् इसमें सेवीवर्ग व्यवस्था के अन्य पहलू भी शामिल हो जाते हैं—जैसे वेतन व्यवस्था, पदोन्नति और अन्य सेवा की शर्तें। प्रो स्टॉल ने योग्यता प्रणाली के व्यापक अर्थ का उल्लेख करते हुए इसे ऐसी सेवीवर्ग व्यवस्था बताया है जिसमें सेवा में प्रत्येक व्यक्ति के चयन और प्रगति पर सापेक्षिक योग्यता अथवा उपलब्धि का प्रभाव रहता है। जिसमें कार्य सम्पन्नता की दशाएँ तथा पुरस्कार सेवा की कार्यक्षमता के निर्धारण एवं निरन्तरता में योगदान करते हैं।[1]

1 "In its broadest sense a merit system in modern government means a personnel system in which comparative merit or achievement governs each individual's selection and progress in the service and in which the conditions and rewards of performance contribute to the competency and continuity of the service"
—*O. G. Stahl* op cit., p. 28

योग्यता प्रणाली के अन्तर्गत लोकसेवा में प्रवेश और पदोन्नति के लिए साधारणतः खुली और प्रतियोगी परीक्षाएँ आयोजित की जाती हैं। सेवा में प्रवेश के लिए अपनाई गई योग्यता प्रणाली के मुख्य पहलू प्रो स्टॉल के मतानुसार निम्नलिखित हैं—

1 पर्याप्त प्रकाशन—रिक्त पदों तथा उनके लिए आवश्यक योग्यताओं की जानकारी जनता को दी जानी चाहिए ताकि रुचिशील नागरिकों को उनकी जानकारी हो सके।

2 निवेदन का अवसर—रुचिशील नागरिकों को उनकी रुचि बताने का अवसर दिया जाए और उनके निवेदन पर विचार किया जाए।

3 यथार्थवादी मापदण्ड—आवश्यक योग्यता सम्बन्धी मापदण्ड रिक्त स्थानों के अनुरूप होना चाहिए और सभी आवेदकों पर समान रूप से लागू किया जाना चाहिए।

4. भेदभाव का अभाव—प्रवेश के लिए निर्धारित मापदण्ड केवल रोजगार के लिए योग्यता और उपयोगिता से ही सम्बन्धित होने चाहिए।

5 योग्यता के आधार पर श्रेणियाँ—योग्यता और उपयुक्तता के सापेक्षिक मूल्यांकन के आधार पर प्रत्याशियों की श्रेणियाँ बनाई जानी चाहिए।

6 परिणामों की जानकारी—जनता को चयन की प्रक्रिया की जानकारी दी जानी चाहिए और यदि किसी की मान्यता यह हो कि उसके बारे में उपयुक्त प्रक्रिया नहीं अपनाई गई है तो उसे प्रशासनिक पुनरीक्षा का अवसर दिया जाए।

अमेरिका में योग्यता प्रणाली का विकास (Evolution of Merit System in U. S A)—संयुक्तराज्य अमेरिका में लोकसेवा का इतिहास योग्यता प्रणाली के विकास का इतिहास है। इसे प्रो स्टॉल ने मोटे रूप से पाँच भागों में विभाजित किया है—

- (i) सापेक्षिक प्रशासकीय कुशलता का काल (*Period of relative administrative efficiency*), *1789–1829*
- (ii) अविच्छिन्न लूट प्रणाली का काल (Period of unmitigated spoils), 1829–1865
- (iii) लूट प्रणाली के विरुद्ध बढ़ते हुए विरोध तथा सुधारों का काल (Period of agitation and rising resentment against the spoils system), 1865–1883
- (iv) सुधार एवं नौकरशाही के विकास का काल (Period of reform and bureaucratic evolution), *1883–1935*
- (v) *सकारात्मक सेवीवर्ग प्रशासन का काल (Period of positive* personnel administration), 1935–Present day.

प्रथम काल औपनिवेशिक अमेरिका की लूट प्रणाली से युक्त परम्पराओं के साथ प्रारम्भ हुआ। संघ तथा राज्यों के संविधानों में कार्यालय में भ्रमणशीलता

(Rotation) का सिद्धान्त शामिल होने के कारण शीघ्र ही इसके परिणाम सामने आने लगे। 1821 तक उत्तरी और पश्चिमी अमेरिका के प्रायः सभी राज्यों में लूट प्रणाली या तो स्थापित हो चुकी थी अथवा होने वाली थी। 1820 में चार वर्षीय कानून (Four Years Law) पारित हो चुका था जिसके अन्तर्गत चार वर्ष बाद प्रशासनिक अधिकारी स्वतः ही अपने पद से हट जाते थे। लूट प्रथा के सहयोगी व्यवस्थापन के होते हुए भी संघीय लोकसेवा सन्तोषजनक रूप से कार्य करती रही तथा पूरे 40 वर्ष के काल में क्षमता एवं योग्यता को ही नियुक्ति के समय प्राथमिकता दी जाती थी। केन्द्रीय प्रशासन अपेक्षाकृत सुचारु रूप से सचालित होता रहा।

दूसरे काल में राष्ट्रपति जैक्सन ने खुलकर लूट प्रणाली का समर्थन किया। 1829 तक लूट प्रणाली अमेरिकी दल व्यवस्था का अभिन्न भाग बन गई। कॉसमैन ने उल्लेख किया है कि जैक्सन से पूर्व लोकसेवाओं में नियुक्ति के प्रति असन्तोष व्याप्त हो गया था क्योंकि उपयुक्तता के नाम पर धनी एवं उच्च परिवारों की नियुक्ति होने लगी थी। इस प्रकार सरकारी नौकरियों में कुलीनतन्त्रीय तत्त्व प्रभावशाली बन गया था। ऐसी परिस्थितियों में जैक्सन द्वारा लूट प्रणाली के अनुकूल विचार प्रकट करना सहज ही प्रतीत होता है। जैक्सनी पक्षपात से प्रोत्साहित होकर लूट प्रणाली संयुक्तराज्य अमेरिका की प्रत्येक स्तर की सरकारों पर छा गई तथा करीब 30 वर्ष तक चुनौतीहीन रूप से कार्य करती रही।

तीसरे 1860वीं दशाब्दी के अन्तिम दिनों में लोकसेवा को सुधारने के लिए सरकारी कार्यकुशलता एवं सार्वजनिक नैतिकता के नाम पर आन्दोलन चला। इसका नेतृत्व बुद्धिजीवी एवं आदर्शवादी के रूप में जाने गए कुछ बुद्धिमान लोगों द्वारा किया गया। फलतः 1853 तथा 55 में पारित कानूनों द्वारा पाँच बड़े संघीय विभागों के लिपिकों को उनके वेतनों के आधार पर चार समूहों में बाँटा गया, उनकी नियुक्ति बोर्ड द्वारा संचालित परीक्षाओं द्वारा की जाने लगी। इस समय लोकसेवाओं में नियुक्ति का आदर्श पूर्णतः अयोग्यों को दूर रखना था। इसके बाद निरन्तर परीक्षा प्रणाली का प्रसार होता रहा। 1876 में एक अधिनियम (Tenure of Office Act) पारित करके यह व्यवस्था की गई कि जो नियुक्तियाँ सीनेट की स्वीकृति से की जाएँ उनको पदमुक्त करने से पूर्व सीनेट की स्वीकृति लेना अनिवार्य हो।

चौथा काल सुधार का काल था। 1883 में एक नागरिक सेवा अधिनियम पारित हुआ। जॉर्ज विलियम कर्टिस तथा उनके अनुयायी कुछ अन्य आदर्शवादियों ने लोकसेवाओं में सुधार की समस्या पर विशेष ध्यान दिया। इनके सद्प्रयत्नों ने कांग्रेस को इस दिशा में कुछ कार्य करने को प्रेरित किया। 1877 में न्यूयार्क नागरिक सेवा सुधार संघ गठित किया गया तथा 1881 में जब राष्ट्रीय नागरिक सेवा सुधार लीग की स्थापना हुई तो इस प्रकार की कम से कम 13 संस्थाएँ गठित हो चुकी थीं। लीग ने योग्यता व्यवस्था की स्थापना एवं विकास की दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सुधारकों ने शिक्षा, प्रचार तथा प्रसार के माध्यम से लूट प्रणाली पर आघात किए। एक निराश पदान्वेषी द्वारा राष्ट्रपति गारफील्ड की हत्या के बाद लूट

प्रणाली का विरोध व्यापक एवं भावनात्मक तरीके से किया जाने लगा। इस सबके परिणामस्वरूप 1883 का नागरिक सेवा विधेयक पारित हुआ।

1883 का नागरिक सेवा (पेण्डलेटन) अधिनियम (Civil Service Act of 1883)—संयुक्तराज्य अमेरिका की नागरिक सेवा के विकास में यह अधिनियम एक आधारभूत सोपान का काम करता है। इसकी मुख्य धाराओं के प्रकाश में समय समय पर छोटे-मोटे अधिनियम पारित किए जाते रहे। यह अधिनियम सेवीवर्ग की अंग्रेजी व्यवस्था पर आधारित था। प्रो स्टॉल ने इस अधिनियम की सात विशेषताओं का उल्लेख किया है—(i) सेवीवर्ग प्रशासन का कार्य मुख्य कार्यपालिका द्वारा नियुक्त तथा उसी के प्रति उत्तरदायी एक द्विपक्षीय (Bipartisan) आयोग को सौंपा गया, (ii) चयन व्यावहारिक प्रकृति की खुली प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा होना निश्चित हुआ, (iii) चयन प्रक्रिया के एक अंग के रूप में परिवीक्षा काल (Probation period) की व्यवस्था की गई, (iv) युद्ध से लौटे अक्षम लोगों को वे सभी सुविधाएँ मिलती रहेंगी जो उन्हें अब तक दी जाती रही थी, (v) कर्मचारियों को राजनीतिक चन्दा देने से मुक्त रखा गया। अधिकारियों पर प्रतिबन्ध लगाया गया कि वे ऐसे फण्ड्स न तो एकत्रित कर सकते थे और न इनकी माँग कर सकते थे, (vi) आयोग को स्वयं की ओर से जाँच करने का अधिकार दिया गया। उसे राष्ट्रपति को तथा उसके माध्यम से काँग्रेस को अपनी वार्षिक रिपोर्ट पेश करने को कहा गया, (vii) ये नियम वाशिंगटन स्थित सभी विभागों पर तथा अन्य कहीं स्थित डाकघर तथा चुंगीकर कार्यालयों पर लागू होंगे। राष्ट्रपति को यह अधिकार होगा कि वह अपने स्वविवेक के आधार पर इन नियमों के अधिकार क्षेत्र में आने वाली संख्या को कम या अधिक कर सके।

मुख्य कार्यपालिका ने इस अधिनियम के तहत प्राप्त अधिकार का प्रयोग किया तथा कार्यपालिका आदेशों द्वारा इसके क्षेत्र को क्रमशः व्यापक बनाया। इस दृष्टि से व्यवस्थापिका ने विरोधपूर्ण उदासीनता का रुख अपनाया। उसने लोकसेवा आयोग के अधिकार क्षेत्र को बढ़ाने सम्बन्धी सभी संशोधनों का विरोध किया। काँग्रेस का उल्लेखनीय कदम 1940 का राम्सपीक अधिनियम (Ramspeck Act) था जिसने राष्ट्रपति को अनेक सेवाओं को नियमित नागरिक सेवा के अन्तर्गत लाने में सक्षम बनाया।

1935 से प्रारम्भ होने वाला योग्यता प्रणाली के विकास का पाँचवाँ काल सकारात्मक सेवीवर्ग प्रशासन का काल कहा गया है क्योंकि इससे पूर्व सेवीवर्ग नीति का मुख्य ध्यान लूट प्रणाली को सीमित करने की ओर था। आयोग तथा दुष्टजनों को बाहर रखने की नीति मूल रूप से निषेधात्मक थी। अब इसके स्थान पर विधेयात्मक नीति अपनाना आवश्यक समझा गया। इस दृष्टि से चार नए विकास उल्लेखनीय हैं—(i) अपूर्व क्षेत्रों में सरकार के कार्यों का निरन्तर प्रसार हुआ; (ii) लोकसेवाओं के अधिकांश कार्यों की प्रकृति अधिकाधिक तकनीकी बनती चली गई, (iii) सरकारी कार्यों में केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति का विकास हुआ, (iv) सरकार

के सभी स्तरों पर सरकारी संरचना का एकीकरण हो गया। इन सभी नए विकासों के सन्दर्भ में विभिन्न आयोगों तथा समितियों ने अमेरिकी लोकसेवाओं के स्वरूप पर विचार किया। इनमें से अधिकांश कुछ मूलभूत बातों पर एकमत थे, जैसे—कार्यपालिका की शक्ति बढ़ाई जाए, प्रशासनिक अधिकारियों के कार्यकाल में समुचित समन्वय रहे, प्रशासनिक गतिविधियों में कार्यात्मक विभागीकरण किया जाए, उत्तरदायित्व की निश्चित रेखाएँ तय की जाएँ तथा प्रशासनिक अभिकरणों के रूप में कार्य कर रहे अनेक मण्डलों तथा आयोगों को समाप्त किया जाए।

आज के बदले हुए सन्दर्भ में केवल लूट प्रणाली को समाप्त करना ही पर्याप्त नहीं माना जाता वरन् योग्य तथा सक्षम कर्मचारियों को विभिन्न पदों पर लाने के लिए कुछ सकारात्मक कदम उठाना वांछनीय समझा जाता है। प्रो स्टॉल ने लिखा है कि "आधुनिक काल में सरकार केवल योग्य ही नहीं होनी चाहिए वरन् वह विशेषज्ञ, समन्वयपूर्ण, स्थायी तथा जनतान्त्रिक नियन्त्रण के प्रति उत्तरदायी होनी चाहिए।"[1] इस बात को ध्यान में रखते हुए सेवीवर्ग प्रशासन में गहन दृष्टि रखने वाले विचारकों ने योग्यता प्रणाली की स्थापना के लिए विधेयात्मक कदम उठाने पर विशेष जोर दिया तथा सरकारी उद्यमों के लिए ऐसे व्यापक कार्यक्रम सुझाए जिनमें मानव शक्ति के तत्त्व पर निरन्तर एवं विशेष ध्यान दिया जा सके। इस दिशा में अनेक महत्त्वपूर्ण व्यवस्थापन किए गए, सुधार आयोगों को समस्या पर विचार करने एवं सुझाव देने का कार्य सौंपा गया, राष्ट्रपति के कार्यपालिका आदेशों द्वारा स्थिति में वांछनीय परिवर्तन लाने की चेष्टा की गई, लोकसेवा आयोग की शक्तियों तथा अधिकार क्षेत्र को व्यापक बनाया गया। सेवीवर्ग प्रशासन का समग्र दृष्टिकोण ही बदल गया। अब यह स्पष्ट हो गया कि सक्षम नागरिक सेवा की स्थापना के लिए प्रतियोगिता के आधार पर नियुक्ति एवं समान कार्य के लिए समान वेतन ही पर्याप्त नहीं है वरन् सेवीवर्ग प्रबन्ध के व्यापक कार्यक्षेत्र में सुशिक्षित, सन्तुष्ट एवं उत्पादक कार्यकर्त्ताओं की व्यवस्था भी शामिल है। यह सब होने पर ही वांछनीय प्रशासनिक नेतृत्व उभर पाता है, कार्यकर्त्ता सर्वाधिक उत्पादक कार्य कर पाते हैं, कार्यकर्त्ता एवं नियुक्तिकर्त्ता के बीच प्रजातान्त्रिक सम्बन्ध स्थापित होते हैं तथा कार्य सचालन के प्रत्येक बिन्दु पर प्रभावशाली सम्बन्धों का विकास होता है।

योग्यता प्रणाली का मूल्यांकन (Evaluation of the Merit System)—सेवीवर्ग की भर्ती के लिए अपनाई जाने वाली योग्यता व्यवस्था आज विश्व के प्रायः सभी देशों में मूल्यवान समझी जाती है। इस व्यवस्था के मुख्य लाभ ये हैं—

(1) योग्य तथा सक्षम कर्मचारी—इस व्यवस्था में यह प्रावधान रहता है कि विभिन्न प्रशासनिक पदों पर की गई नियुक्तियों में योग्यतर प्रत्याशियों को ही लिया जाएगा। प्रत्येक पद के प्रत्याशियों के लिए कुछ न्यूनतम योग्यताएँ निर्धारित कर दी जाती हैं। ये योग्यताएँ पद के दायित्वों के अनुरूप होती हैं। सेवा में प्रवेश के बाद

1 *O G Stahl: op cit., p 38*

भी कर्मचारी के प्रशिक्षण तथा कार्यकुशलता पर विशेष ध्यान दिया जाता है। फलत: सरकार के कार्यों का संचालन प्रशिक्षित एवं बुद्धिमान व्यक्तियों द्वारा हो पाता है। (ii) अनुभवी कर्मचारी—योग्यता के आधार पर नियुक्त कर्मचारी एक निश्चित कार्यकाल तक अपने पद पर कार्य करते हैं। इनका कार्यकाल राजनीतिज्ञों की अदला-बदली से प्रभावित नहीं होता है। अत: इनको कार्य का पर्याप्त अनुभव प्राप्त हो जाता है तथा ये विभिन्न व्यावहारिक समस्याओं एवं उनके उपयुक्त समाधानों से परिचित हो जाते हैं। ऐसे अनुभवी कार्यकर्ताओं के सहयोग से प्रशासन अपने लक्ष्यों तक पहुँच पाता है। (iii) ईमानदार प्रशासन—योग्यता के आधार पर नियुक्त कर्मचारियों पर किसी का कोई अहसान नहीं रहता जिसके बदले में उन्हें गलत कार्य करने के लिए मजबूर होना पड़े। उन्हें सेवा सुरक्षा प्राप्त रहती है। अत: भय तथा लालच के कारण भी वे अपने कर्तव्य पथ से विचलित नहीं होते। (iv) प्रशासनिक कार्य-कुशलता—योग्य प्रशिक्षित एवं अनुभवी कार्यकर्ताओं की उपस्थिति के कारण प्रशासनिक कार्यकुशलता में असाधारण रूप से लाभ पहुँचता है। (v) मितव्ययता—योग्य कर्मचारी किसी कार्य को सुव्यवस्थित तरीके से करते हैं और इसलिए उनके कार्यों में देरी, गलती, दोहराव, अनावश्यक प्रयोग, अपव्यय आदि की सम्भावनाएँ न्यूनतम रह जाती हैं। वे किसी कार्य में केवल उतना ही धन व्यय करते हैं जितना अनिवार्य हो। (vi) तटस्थता—इस प्रणाली द्वारा नियुक्त कर्मचारी की कोई राजनीतिक विचारधारा, प्राथमिकता एवं स्वार्थ नहीं होते, अत: वह स्वयं की इच्छाओं एवं मूल्यों को आरोपित किए बिना तटस्थ भाव से सत्ताधारियों की राजनीतिक इच्छा को कार्यान्वित करने का प्रयास करता है। (vii) अवसर की समानता—राजनीतिक पक्षपात के बिना योग्यता के आधार पर की जाने वाली नियुक्तियों में प्रत्येक व्यक्ति को अवसर की समानता प्राप्त होती है।

योग्यता प्रणाली के पक्ष में दी जाने वाली उक्त युक्तियों के साथ-साथ आलोचकों द्वारा उल्लिखित इसकी कमियों का उल्लेख भी अप्रासंगिक नहीं होगा। यह प्रणाली जिन अनेक व्यावहारिक समस्याओं को जन्म देती है उनमें से कुछ ये हैं—(i) योग्यता की माप का कोई वस्तुगत, वैज्ञानिक, निष्पक्ष एवं विश्वसनीय तरीका नहीं है। (ii) यह प्रणाली प्रशासकों तथा राजनीतिज्ञों के बीच उपयुक्त तालमेल बैठाने में बाधक बनती है। (iii) इस प्रकार नियुक्त होने वाले प्रशासक जन आकांक्षाओं एवं जन प्रतिक्रियाओं की परवाह नहीं करते। (iv) योग्यता के कल्पना प्रासाद में बैठकर प्रशासकों द्वारा विभिन्न समस्याओं तथा उनके समाधानों का यथार्थ मूल्यांकन नहीं हो पाता। (v) कार्यकाल की सुरक्षा एवं सेवा की निरन्तरता के कारण प्रशासकों में लापरवाही तथा अनुत्तरदायित्व की भावना विकसित होती है। साथ ही लालफीताशाही, अनियमितता, भ्रष्टाचार एवं अन्य प्रशासनिक रोगों का प्रकोप बढ़ जाता है। (vi) योग्यता प्रणाली की कठोरता के साथ पालन मानवीय आधार पर सेवानिवृत्त सैनिक, पिछड़े लोगों, आदिवासियों, महिलाओं आदि के लिए दी जाने वाली प्राथमिकताओं के मार्ग में अवरुद्ध करता है।

योग्यता प्रणाली के उक्त सभी दोष इसके अन्तर्निहित दोष नहीं हैं तथा सजग प्रयास द्वारा इनका निराकरण किया जा सकता है और किया जाता है। अधिकांश देशों की लोकसेवा का इतिहास इसी योग्यता प्रणाली के क्रमिक विकास का इतिहास है। विभिन्न देशों में लोकसेवा आयोग की स्थापना इस विकास का एक महत्त्वपूर्ण सीमा चिह्न है। अमरिका में लोकसेवा आयोग 1883 के नागरिक सेवा अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित किया गया। ग्रेट ब्रिटेन में लोकसेवा आयोग 1855 में स्थापित हुआ किन्तु फिर भी यहाँ कर्मचारियों की भर्ती में संरक्षण व्यवस्था (Patronage System) कार्य करती रही। 1870 में यहाँ खुली प्रतियोगिता द्वारा योग्यता को जाँचने की व्यवस्था स्वीकार की गई। भारत में योग्यता प्रणाली का सिद्धान्त अंग्रेजी राज के समय 1853 में ही स्वीकार कर लिया गया था। फ्रांस में भी अन्य यूरोपीय देशों की भाँति लोकसेवकों की नियुक्तियाँ प्रारम्भ में राजनीतिक पक्षपात के आधार पर होती थी। नियुक्ति एवं पदोन्नति दोनों ही कार्यों के लिए मन्त्री अथवा विभागाध्यक्ष का पक्षपातपूर्ण दबाव आवश्यक था। ऐसी नियुक्तियों में होने वाले भ्रष्टाचार एवं अपव्यय का देश के उदारवादी जनमत ने बड़ा विरोध किया तथा इस प्रकार की पदोन्नति व्यवस्था का स्वयं अधिकारियों ने विरोध किया। इस प्रकार दोहरे दबाव के कारण क्रमशः परिवर्तन आया। विभिन्न पदों के लिए कानून अथवा नियमन द्वारा आवश्यक न्यूनतम योग्यताएँ निर्धारित की गईं। स्वेच्छापूर्ण व्यक्तिगत पसन्द पर रोक लगाने के लिए मन्त्रालयों के अन्तर्गत नियुक्ति एवं पदोन्नति मण्डल स्थापित किए गए।

भर्तीकर्त्ता की नियुक्ति
(Appointment of the Recruitor)

भर्तीकर्त्ता की नियुक्ति भर्ती करने वाली सत्ता की निश्चय ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समस्या है। सेवीवर्ग भर्ती करते समय सबसे बड़ी कठिनाई यह उपस्थित होती है कि भर्ती करने वाला कौन हो जो योग्य प्रत्याशियों को चयन कर सके। विलोबी के अनुसार भर्ती करने वाली सत्ता का प्रावधान केवल सेवीवर्ग प्रणाली का ही नहीं वरन् देश की राजनीतिक व्यवस्था का एक अनिवार्य अंग है। यह समस्या वर्तमान समय में इतनी महत्त्वपूर्ण है कि लगभग सभी सभ्य देशों के संविधानों द्वारा ही भर्ती करने वाली सत्ता का प्रावधान कर दिया जाता है। उदाहरणार्थ, भारतीय संविधान में संघीय और राज्य लोकसेवा आयोग का प्रावधान है।

आज अधिकांश देशों में लोकसेवकों की भर्ती के लिए लोक सेवा आयोगों (Civil Service Commissions) का प्रचलन ही अधिक है क्योंकि नकारात्मक के स्थान पर सकारात्मक भर्ती की नीतियों पर अधिक से अधिक बल दिया जाता है। भर्ती पर सकारात्मक भर्ती की नीतियों पर अधिक से अधिक बल दिया जाता है।

भर्ती करने वाली सत्ता कौन हो, इस सम्बन्ध में विभिन्न देशों में विभिन्न व्यवस्थाएँ की जाती हैं और विद्वानों ने भी अपने विभिन्न मत प्रकट किए हैं—

1. प्रथम मत यह है कि भर्ती करने वाली सत्ता प्रत्यक्षत जनता में निहित होनी चाहिए क्योंकि वास्तविक प्रजातन्त्र यही माँग करता है कि देश के सर्वोच्च अधिकारी प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा चुने जाएँ अर्थात् उनका निर्वाचन हो। इस व्यवस्था में पदाधिकारी अल्प अवधि (Short Term Period) के लिए निर्वाचित होंगे और मतदाताओं को उन्हें 'वापस बुलाने' (Recall) का भी अधिकार होगा। यह व्यवस्था बडी आकर्षक और प्रजातन्त्रीय है तथापि आज के विशाल राज्यों, जटिल समाजों और सुविस्तृत, प्रशासन-यन्त्रों के स दर्भ म व्यावहारिक नहीं लगती। प्रथम, बडी सख्या मे अधिकारियों को चुनते समय निर्वाचकों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे समुचित विवेक बुद्धि से काम लेंगे। साधारण जनता में कुशल अधिकारियों को चुनने की क्षमता नहीं होती। दूसरे, इस बात की अधिक सम्भावना रहती है कि साधारण जनता वैयक्तिक स्वार्थों के प्रवाह मे बह जाएगी। इन सम्भावित प्रबल दोषों को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त यही है कि निर्वाचकों का प्रभाव केवल निमित राज्य पदाधिकारियों पर ही होना चाहिए, प्रशासनिक अधिकारियों पर नहीं।

2 दूसरा मत जो पहले मत के दोषों को ध्यान मे रखते हुए लिया जाता है यह है कि भर्तीकर्त्ता निकाय को राजनीतिक हस्तक्षेप से दूर रखते हुए पर्याप्त स्वतन्त्रता और स्वायत्तता दी जाए। लोकसेवा आयोगों का सगठन भी इस प्रकार का हो कि वे निभय होकर अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा मे अग्रसर हो सकें तभी यह सम्भव होगा कि सरकारी सेवा मे योग्य और कर्त्तव्यपरायण पदाधिकारियों की नियुक्ति की जा सकेगी। फिफनर का कथन है कि मूल रूप मे सरकार द्वारा भर्ती का लक्ष्य कर्मचारियों के रूप मे व्यक्तियों में सरकार के लिए काम करने की रुचि जाग्रत करना है। कुछ विचारकों का मत है कि लोकसेवा आयोग का सगठन सर्वोच्च न्यायालय की भाँति होना चाहिए ताकि वह स्वतन्त्रता-पूर्वक कार्य कर सके। इसके सदस्य भी इतने वरिष्ठ होने चाहिए ताकि वे अनुचित प्रभाव की उपेक्षा कर सकें और योग्यता के सही पारखी हो। कुछ लेखकों का यह सुझाव भी है कि लोकसेवा आयोग का स्वरूप मिश्रित होना चाहिए अर्थात् उसमे विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ सम्मिलित होने चाहिए क्योंकि किसी भी एक विषय के विशेषज्ञ के लिए यह सम्भव नहीं है कि वह प्रत्येक पद के लिए उम्मीदवार की योग्यता का मूल्यांकन कर सके। लोकसेवा आयोग म गतिशीलता होनी चाहिए और तदनुसार विभिन्न पदाधिकारियों की नियुक्ति करते समय आयोग के रूप म भी परिवर्तन होते रहने चाहिए। ऐसे भी विद्वान हैं जो आयोग का निदेशालय (Directorate) के रूप में समर्थन करते हैं जिस तरह व्यापारिक सगठनों मे भर्ती-कर्त्ता अधिकारी स्वयं काम का जानकार होता है उसी तरह सरकारी अधिकारियों की भर्ती भी जानकर भर्तीकर्त्ताओं द्वारा होनी चाहिए। प्रशासनिक अधिकारों की भर्ती मे सैनिक प्रशासन के अनुभव से भी बहुत कुछ लाभ उठाया जा सकता है। सैनिक सगठन मे भर्ती करते समय मनोवैज्ञानिक जाँच (Psychological Test) पर

अधिक बल दिया जाता है। प्रशासनिक अधिकारियों की भर्ती करते समय भी इस जांच को पर्याप्त महत्त्व दिया जाना चाहिए। भर्तीकर्त्ता के रूप में लोकसेवा आयोग को मुख्य रूप से जो कार्य करने चाहिए वे ये हैं—

भर्ती सम्बन्धी नीति के बारे में सरकार को परामर्श देना, अभ्यार्थियों की परीक्षाएँ लेना तथा उनसे साक्षात्कार करना, पदोन्नति एवं स्थानान्तरण की उपयुक्तता का परामर्श देना, अनुशासनात्मक कार्यों पर सलाह देना अस्थायी नियुक्तियों के सम्बन्ध में सलाह देना, नई सेवा की रचना में संशोधन आदि मामलों को सुलझाना, मुख्य कार्यपालिका से सम्बन्धित किसी भी मामले पर विचार करना, संसद् को अपने कार्यों के सम्बन्ध में वार्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत करना आदि।

उपर्युक्त दोनों मतों अथवा पद्धतियों के सम्बन्ध में विलोबी ने लिखा है कि "स्पष्टतः ये दोनों मत वर्ग राजनीतिक विचारधारा के उन दो सम्प्रदायों (Schools) का प्रतिनिधित्व करते हैं जो क्रमशः लोकतन्त्रात्मक एवं प्रतिनिधिस्यात्मक सरकार को अपना आदर्श मानते हैं।" दोनों ही प्रणालियों की तुलना करने पर व्यावहारिक दृष्टि से दूसरी प्रणाली पहली की अपेक्षा श्रेष्ठतर प्रतीत होती है।

भर्तीकर्त्ता की सामान्य विशेषताएँ

भर्तीकर्त्ता का स्वरूप चाहे जो भी हो, उसमें निम्नलिखित सामान्य विशेषताएँ होना अपेक्षित हैं—

1 वह स्वतन्त्र और किसी भी प्रकार के बाह्य दबावों से मुक्त हो ताकि वह अनुचित निर्णय लेने के लिए बाध्य न हो सके।

2 वह ईमानदार और कर्त्तव्यनिष्ठ हो ताकि किसी प्रलोभन में आकर गलत कार्य करने के लिए बाध्य न हो जाए।

3 वह इतना योग्य और सक्षम हो कि भर्ती के प्रत्याशियों की कुशलताओं को भली प्रकार जांच कर सके।

4 वह बहु-सदस्यीय हो क्योंकि एक सदस्य व्यक्तिगत मानवीय कमजोरियों और सीमाओं का शिकार बनकर कर्त्तव्य-च्युत हो सकता है। एक से अधिक सदस्य होने पर 'निरोध' और 'सन्तुलन' तथा 'प्रतिष्ठा' और 'नेतृत्व' बनाए रखने की भावना का सिद्धान्त क्रियाशील होता है।

5 वह अर्द्ध राजनीतिक हो क्योंकि पूर्ण रूप से राजनीतिक रहने पर इससे ईमानदारी और निरपेक्षता की आशा नहीं की जा सकती।

भारत में भर्ती के अभिकरण

(Agencies of Recruitment in India)

भारत में भर्तीकर्त्ता अथवा लोकसेवाओं की भर्ती करने वाले मुख्य अभिकरण ये हैं—संघीय लोकसेवा आयोग, राज्य लोकसेवा आयोग, रेलवे सेवा आयोग तथा समविधिक निगमों के लिए निजी भर्ती मण्डल अथवा आयोग। इस प्रकार के भर्ती आयोगों का अपना महत्त्व है। ये राजनीतिक एवं अन्य प्रभावों को भर्ती की प्रक्रिया से दूर रखते हैं तथा योग्य कर्मचारियों के चयन को सम्भव बनाते हैं। भारतीय

संविधान केन्द्रीय एव राज्य स्तरो पर कार्यपालिका को स्वतन्त्र लोकसेवा आयोग स्थापित करने की व्यवस्था करता है। यह आयोग लोकसेवाओ मे लूट व्यवस्था को पनपने से रोकता है तथा सेवीवर्ग के चयन मे कार्यपालिका के हस्तक्षेप को दूर रखता है। भारतीय नागरिक सेवा (Civil Service) के शाही आयोग ने अपने प्रतिवेदन (1924) मे लिखा था कि—"जहाँ भी प्रजातन्त्रात्मक संस्थाएँ है वहाँ कार्यकुशल नागरिक सेवा प्राप्त करने के लिए उसे राजनीतिक और व्यक्तिगत प्रभाव से बचाए रखना अनिवार्य है। उसे सरकारी नीति का निष्पक्ष और कुशल साधन बनाने के लिए स्थायित्व एव सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए।" यह कथन स्वतन्त्र भारत के सन्दर्भ म नागरिक सेवा पर उतना ही खरा उतरता है।

भर्ती की आदर्श प्रणाली
(An Ideal Method of Recruitment)

विभिन्न कारणो, समस्याओ और अनिवार्यताओ के प्रकाश मे यह निश्चय करना बडा कठिन है कि आज भर्ती की क्या आदर्श प्रणाली निर्धारित की जाए। लोक प्रशासन म श्रेष्ठतम पदाधिकारी नियुक्त करने की दृष्टि से योग्यता-परीक्षा का विशेष महत्त्व है। लेकिन यह भी ध्यान मे रखने योग्य है कि जब तक उम्मीदवारो को सरकारी सेवा की ओर आकर्षित नही किया जाएगा, तब तक भर्ती की प्रणाली अपना लक्ष्य प्राप्त करने मे सफल नही हो सकेगी। डॉ ह्वाइट के शब्दो मे, यदि सरकारी कार्य की शक्ति व्यक्तिगत रोजगार की अपेक्षा बहुत कम सन्तोषजनक होगी तो लोकसेवाओ की ओर आकर्षित होने वाले प्रत्याशियो की कुशलता और योग्यता का स्तर नीचा होगा। भर्ती की आदर्श प्रणाली के लिए यह आवश्यक है कि सार्वजनिक और व्यक्तिगत सेवाओ के आकर्षणो का सुचारु समन्वय किया जाए। वर्तमान युग मे यह प्रवृत्ति जोर पकडती जा रही है कि व्यावहारिक एव सैनिक प्रशासन से महत्त्वपूर्ण गुण ग्रहण करके लोक प्रशासन के भण्डार को अधिक समृद्ध तथा उपयोगी बनाया जाए। फिर भी यह सुनिश्चित है कि दोनो व्यवस्थाओ के मूल अन्तरो को पूरी तरह नही मिटाया जा सकता। डॉ ह्वाइट ने ठीक ही लिखा है कि 'कुछ मामलो म जैसे कि भाग्य निर्माण के अवसर मे सरकार व्यक्तिगत रोजगार से प्रतियोगिता नही कर सकती, किन्तु दूसरे मामलो जैसे सुरक्षा, सम्मान एव सामाजिक उपयोगी कार्य के साथ एकरूपता आदि मे यह बराबर ही नहीं श्रेष्ठ प्रतियोगिता कर सकती है।'

विभिन्न पक्षो ने जो विचार प्रस्तुत किए हैं उनके आधार पर एक आदर्श भर्ती-प्रणाली मे अग्रलिखित विशेषताएँ होनी आवश्यक हैं—

1 गतिशीलता (Dynamism)—भर्ती के पुराने तरीको को नए परिवर्तनो मे बदला जाना चाहिए, क्योकि स्थिरता प्रगति की विरोधी बन जाती है। समय के साथ साथ लोक प्रशासन के उत्तरदायित्वो मे भी परिवर्तन आते रहते हैं और यदि भर्ती के परम्परागत ढग ही रहे तो लोक प्रशासन के विकास की गति अवरुद्ध हो जाएगी। अत आवश्यक है कि भर्ती की आदर्श प्रणाली सतत् गतिशील हो।

2. लोचशीलता (Flexibility)—भर्ती की आदर्श प्रणाली इतनी लोचशील होनी चाहिए कि विभिन्न पदों से सम्बन्धित आवश्यक योग्यताएँ अलग-अलग होनी चाहिए और पदों में यदि अधिक भिन्नता हो तो भर्तीकर्त्ता भी अलग होने चाहिए। भर्तीकर्त्ता संगठन की रूप रचना पृथक् होनी चाहिए तभी भर्ती में आदर्श प्रणाली में वांछित लोचशीलता और वैज्ञानिकता का समावेश हो सकेगा।

3. ईमानदारी (Honesty)—भर्ती का तरीका ईमानदारीपूर्ण और निष्पक्ष होना चाहिए ताकि प्रशासनिक पदों पर योग्य अधिकारी नियुक्त किया जा सके। इसमें प्रशासन में भ्रष्टाचार कम हो जाएगा कार्यकुशलता बढ़ेगी तथा कोई अधिकारी किसी के अनुचित प्रभाव में नहीं आएगा। भर्ती प्रणाली में ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए कि मन्त्री, राजनीतिज्ञ और पदाधिकारी अवांछनीय हस्तक्षेप न कर सकें।

4. नवीन रीतियुक्त (Innovative)—प्रशासनिक अधिकारियों की भर्ती में भी नए-नए प्रयोग किए जाने चाहिए और नई-नई समस्या के समाधान के लिए नए तरीके अपनाए जाने चाहिए। विकसित देशों में भर्ती के क्षेत्र में जो अभिनव प्रयोग हुए हैं उनका पिछड़े हुए देशों को पूरा लाभ उठाना चाहिए। भर्ती परीक्षा के परीक्षक को ऐसे अनेक अवसर और पर्याप्त समय मिलना चाहिए कि वह उम्मीदवार के विभिन्न व्यवहारों का गहन अध्ययन कर उनकी योग्यताओं के सम्बन्ध में वस्तुगत, यथार्थ और वैज्ञानिक राय कायम कर सके। उम्मीदवार की योग्यता को सही रूप में जानने के लिए आजकल अज्ञात साक्षात्कार (Annonymous Interview) लोकप्रिय होता जा रहा है। इसमें उम्मीदवार को यह पता नहीं रहता कि उसकी परीक्षा ली जा रही है। होता यह है कि पद रिक्त होने पर भर्तीकर्त्ता सम्भावित उम्मीदवारों पर दृष्टि रखता है और जब उसके ध्यान में कुछ ऐसे लोग आ जाते हैं तो वह एक विशेष भाषण माला का आयोजन कर देता है। यहाँ सम्भावित उम्मीदवारों को भाषण देने के लिए आमन्त्रित किया जाता है तथा उनका योग्यता और विशेषता का सापेक्ष रूप में मूल्यांकन कर लिया जाता है।

5. विशेषज्ञता (Expertness)—लोक प्रशासन में विशेषज्ञ अधिकारी की नियुक्ति एक भिन्न समस्या है जिसके निराकरण के लिए उन्हीं उपायों का उपयोग नहीं किया जा सकता जो अविशेषज्ञ अधिकारियों की नियुक्ति में काम में लिए जाते हैं। लोकसेवा आयोग की सामान्य संरचना विशेषज्ञ अधिकारियों की नियुक्ति के अनुपयुक्त है। अतः सुझाव दिया जाता है कि जब किसी विशेषज्ञ की भर्ती करनी हो तो उसी प्रकार का विशेषज्ञ आयोग में बैठा दिया जाए। किन्तु यह सुझाव विशेष उपयोगी नहीं है। उदाहरणार्थ, यदि डॉक्टर की भर्ती के समय एक डॉक्टर को आयोग में बैठाया जाएगा तो वह निश्चित समय तथा साक्षात्कार की एक निश्चित प्रक्रिया में उम्मीदवार की योग्यता का पूरा परिचय प्राप्त नहीं कर पाता। इसके अतिरिक्त, आयोग में विशेषज्ञ की नियुक्ति देश को उस विशेषज्ञ की सेवाओं से वंचित कर देगी। उचित यह होगा कि विशेषज्ञ अधिकारियों की नियुक्ति के लिए तदनुरूप विशेषज्ञों का ही एक अलग आयोग गठित कर दिया जाए।

भारत में सेवीवर्ग की भर्ती : मूल सिद्धान्त, अर्हताएँ और प्रणालियाँ
(Recruitment of Public Personnel in India : Basic Principles, Qualifications and Methods)

स्वतन्त्र भारत में लोकसेवकों की भर्ती के लिए अपनाई जाने वाली नीति का लक्ष्य काफी समय तक पक्षपात और भाई-भतीजेवाद को समाप्त करना रहा है। यह भर्ती नीति का नकारात्मक पहलू है। इसमें प्रत्याशियों के चयन हेतु प्रतियोगी परीक्षाएँ आयोजित करने पर जोर दिया जाता है। समय व्यतीत होने के साथ ही सेवीवर्ग की भर्ती के लिए सकारात्मक नीति का अपनाया जाना भी आवश्यक बनता गया। तदनुसार योग्य कर्मचारियों की भर्ती के लिए रिक्त स्थानों का समुचित एवं आकर्षक विज्ञापन दिया जाता है, उच्च श्रेणी की तथा विश्वसनीय प्रतियोगी परीक्षाएँ आयोजित की जाती हैं। विशेष अभिकरणों द्वारा नियोजित भर्ती कार्यक्रमों का विकास किया जाता है चयनकर्त्ता अभिकरण तथा मन्त्रालयों के बीच सक्रिय सहयोग की स्थापना की जाती है। सकारात्मक भर्ती के लिए किए गए इन प्रयासों की गति एवं प्रभाव सन्तोषजनक नहीं रहे। चिन्तनीय तथ्य यह है कि हमारे देश में संघीय तथा राज्य स्तरीय लोकसेवा आयोग मूलतः धूर्तों को बाहर रखने का ही प्रयास करते रहे हैं। उनके प्रयासों का सुझाव उच्च श्रेणी के पदाधिकारी प्राप्त करने की अपेक्षा भर्ती प्रक्रिया में निष्पक्षता बनाए रखने पर अधिक रहता है। यहाँ हम भारत में लोकसेवकों की भर्ती के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करेंगे।

भारत में भर्ती के मूल सिद्धान्त

1. लोकसेवकों की भर्ती योग्यता के आधार पर की जाती है। योग्यता की जानकारी के लिए खुली प्रतियोगी परीक्षाओं के आयोजन की व्यवस्था हो।

2. भर्ती करने वाली संस्था की रचना में इस बात का पूरा ध्यान रखा जाता है कि वह संस्था राजनीतिक प्रभावों से अप्रभावित रह कर निष्पक्ष रूप से अपना कार्य सम्पादित कर सके।

3. प्रत्यक्ष भर्ती भी होती है और पदोन्नति द्वारा भी रिक्त स्थान भरे जाते हैं। पदोन्नति से भरे जाने वाले पदों का अनुपात प्रायः सेवा की प्रकृति पर आधारित रहता है। पदोन्नति की कुछ सीमाएँ हैं। कुछ पद विशुद्ध रूप से प्रशासनिक प्रकृति के होते हैं जिनका दायित्व योग्य और सक्षम व्यक्तियों को ही सौंपा जाता है।

4. कुछ पद केवल पदोन्नति के लिए ही सुरक्षित रखे जाते हैं। उदाहरणार्थ राजस्थान राज्य सचिवालय अनुभाग पदाधिकारियों के पद पदोन्नति द्वारा ही भरे जाते हैं। केन्द्र में अनुभाग अधिकारियों के रिक्त पदों की पूर्ति के लिए प्रत्यक्ष भर्ती की जाती है।

पदाधिकारियों की आवश्यक योग्यताएँ

सभी लोकतान्त्रिक देशों की भांति भारत में भी लोकसेवाओं के लिए दो प्रकार की आवश्यक योग्यताएँ निर्धारित की गई हैं—

(क) सामान्य (General), एवं

(ख) विशिष्ट (Special)।

(क) सामान्य योग्यताएँ या अर्हताएँ (General Qualifications)— भारत में लोकसेवाओं के लिए सामान्य योग्यताएँ या अर्हताएँ इस प्रकार हैं—

1 भारत में लोकसेवा के लिए आवेदन करने वाला के लिए राज्य का नागरिक होना आवश्यक है। विदेशियों को सामान्यतया लोकसेवा में स्थान नहीं दिया जाता, यदि किसी विदेशी को नियुक्त कर भी लिया जाता है तो उसका कार्यकाल थोड़े समय के लिए ही होता है। भारत में नेपाल के प्रजाजन के लिए भी लोकसेवा के पदों पर नियुक्ति की सुविधाएँ हैं।

2 भारत में अधिवास (Domicile) या निवास (Residence) नियम कुछ समय पूर्व तक लागू थे परन्तु लोक सेवा योजना (निवास सम्बन्धी आवश्यकता) अधिनियम, 1957 [Public Employment (Requirement as to Residence) Act 1957] द्वारा लोक नियुक्तियों के अधिवास प्रतिबन्धों का अन्त कर दिया गया है। इस अधिनियम में देश की लोकसेवाओं में प्रवेश के सम्बन्ध में सभी नागरिकों को समान अवसर प्रदान कर देश की प्रशासकीय एकता को सुदृढ़ बनाया गया है तथापि आंध्र प्रदेश के तेलगाना क्षेत्र में कुछ सेवाओं में मुलकियों को ही भर्ती के अधिकार प्राप्त हैं। मुलकी तेलगाना क्षेत्र के स्थाई निवासी हैं।

3 लिंग-भेद की अर्हता के सम्बन्ध में भारत में स्त्री-पुरुष सभी नागरिकों को सरकारी पदों पर नियुक्ति सम्बन्धी मामलों में समान अवसर प्राप्त हैं। संविधान में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि "सभी नागरिकों को राज्य के अधीन पदों पर नियुक्ति अथवा नियुक्ति सम्बन्धी मामलों में समान अवसर प्राप्त होंगे।" भारतीय लोकसेवाओं में स्त्रियाँ अधिकाधिक प्रवेश पाकर अपनी योग्यता का प्रदर्शन कर रही हैं।

4 भारत में 16 से 28 वर्ष की आयु के युवक लोकसेवाओं में प्रवेश करते हैं यद्यपि विशिष्ट कृत्यों सम्बन्धी सेवाओं के लिए अनुभवी व्यक्तियों को भी नियुक्त किया जाता है।

(ख) विशिष्ट योग्यताएँ या अर्हताएँ (Special Qualifications)— भारत में लोकसेवाओं के लिए विशिष्ट योग्यताएँ या अर्हताएँ इस प्रकार है—

1. शिक्षा सम्बन्धी अर्हताओं के बारे में भारतीय प्रणाली पर बहुत कुछ ब्रिटिश छाप है। भारत में मोटे तौर पर प्रशासनिक सेवाओं में प्रवेश के लिए अनिवार्य निम्नतम अर्हता कला या विशुद्ध विज्ञान की विश्वविद्यालयी डिग्री है। *लिपिक सेवाओं (निम्नवर्गीय) में प्रवेश पाने के लिए न्यूनतम अर्हता मैट्रिक (दसवीं कक्षा या माध्यमिक परीक्षा या उसके समकक्ष) है।*

सामान्यतः यह आलोचना की जाती रही है कि भारत में लोकसेवाओं के

लिए प्रचलित भर्ती-प्रणाली बहुत बड़ी संख्या में लोगों को विश्वविद्यालय की डिग्री पाने हेतु अध्ययन के लिए प्रोत्साहित करती है फलस्वरूप विश्वविद्यालयों में न केवल छात्रों की भरमार हो जाती है बल्कि शैक्षणिक स्तर भी गिर जाता है। इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालय की शिक्षा लिपिक या क्लर्की सेवाओं के लिए कोई विशेषता भी नहीं रखती। इस दिशा में जाँच और प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए केन्द्रीय सरकार ने अप्रेल, 1955 में लोकसेवा (भर्ती के लिए अर्हताएँ) समिति की स्थापना की थी। सरकार ने कुछ संशोधन के साथ समिति की सिफारिशें स्वीकार कर ली थीं। सरकार के निर्णयों के अनुसार अब लिपिकों, केन्द्रीय श्रेणी तृतीय एवं राज्य के अधीनस्थ गैर-लिपिकों के पदों के लिए विश्वविद्यालयी डिग्री आवश्यक नहीं रही है। उच्च वर्ग लिपिक और केन्द्रीय तृतीय श्रेणी के गैर-लिपिक पदों के लिए आवेदकों के पास इन्टरमीडिएट सीनियर कैम्ब्रिज या उच्चतर माध्यमिक प्रमाण-पत्र होना अपेक्षित है। विश्वविद्यालय की डिग्री अखिल भारतीय एवं केन्द्रीय श्रेणी प्रथम (Central Class I), केन्द्रीय श्रेणी द्वितीय (Central Class II), राजपत्रित तथा अराजपत्रित, राज्य श्रेणी द्वितीय (State Class II-राजपत्रित) तथा राज्य की अधीनस्थ (State Subordinate–राजपत्रित) सेवाओं के लिए आवश्यक है। केन्द्रीय श्रेणी द्वितीय (अराजपत्रित) और राज्य की अधीनस्थ (राजपत्रित) सेवाओं के लिए आयु सीमा 20 से 26 वर्ष तथा राज्य श्रेणी द्वितीय (राजपत्रित) के लिए आयु-सीमा 21 से 26 वर्ष रखी गई है। 1979 से एक प्रत्याशी को उच्चतर सेवा प्रतियोगी परीक्षा में तीन बार तक बैठने की छूट है और साथ ही इन परीक्षाओं में बैठने की आयु 21 से 28 वर्ष तक रखी गई है।

2. प्राविधिक सेवाओं के लिए अनुभव को एक वांछनीय अर्हता समझा जाता है।

3. व्यक्तिगत अर्हताओं पर काफी ध्यान दिया जाता है, क्योंकि यह समझा जाता है कि एक लोकसेवक में निष्पादक की योग्यता, चतुरता, युक्ति, ईमानदारी, क्षमता और दूसरों के साथ मिल-जुलकर काम करने के गुण अवश्य होने चाहिए।

4. भारत सरकार अब अर्थशास्त्रवेत्ताओं, सांख्यिकों, लेखापालों, कानूनी परामर्शदाताओं, इंजीनियरों वैज्ञानिकों तथा ऐसे ही अन्य प्राविधिक कर्मचारियों की शासकीय सेवा में अधिकाधिक भर्ती कर रही है। भारत जैसे विकासोन्मुख देश में काफी बड़ी संख्या में सामान्य (Generalist) प्रशासकों और प्राविधिक या तकनीकी (Technical) प्रशासकों की भर्ती तथा प्रशिक्षित करना आवश्यक है। प्राविधिज्ञों के महत्त्व को उचित मान्यता देकर सामान्य और विशेषज्ञ–दोनों के ही दावों का समाधान किया जाना उचित है।

योग्यताएँ या अर्हताएँ निश्चित करने की रीतियाँ

प्रशासकीय तथा अनेक निष्पादकीय या कार्यपालक सेवाओं के लिए प्रत्यक्ष भर्ती सामान्यतया संघीय लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित प्रतियोगी परीक्षा के

आधार पर होती है। यह परीक्षा I F S , I A S , I P S , I A A S जैसी कई सेवाओ के लिए संयुक्त रूप से आयोजित की जाती है। परीक्षार्थियो की आयु सीमा 21 से 28 वर्ष तक की है। इसमे केवल विश्वविद्यालय के स्नातक (बी ए या बी एस-सी या इनके समकक्ष डिग्री प्राप्त) ही भाग ले सकते हैं, मेडिकल छात्रो के अन्य स्नातक, इस परीक्षा मे नही बैठ सकते हैं। इस परीक्षा मे उच्च स्तर का परीक्षण तो होता ही है, व्यक्तिगत साक्षात्कार के रूप मे संघीय लोकसेवा आयोग 'व्यक्तित्व का परीक्षण' भी करता है।

प्रतियोगी परीक्षा 1978 तक दो कमियो से ग्रस्त थी—प्रथम, परीक्षा-विषयो की संख्या मे कमी-बेशी थी और द्वितीय, प्रत्येक व्यक्ति को परीक्षा म बैठने की छूट थी—प्रारम्भिक छँटनी की कोई व्यवस्था नही थी। छँटनी की व्यवस्था न होने से अभ्यर्थियो की संख्या बेतहाशा बढ़ती जाती थी। स्थिति यहाँ तक पहुँच गई कि संघीय लोकसेवा आयोग को 40 000 अभ्यर्थियो का सामना करना पडने लगा जबकि रिक्त स्थानो की कुल संख्या 400 से अधिक नहीं होती थी। इस कठिनाई को दूर करने तथा अभ्यर्थियो की संख्या सीमित करने के उद्देश्य से संघीय लोकसेवा आयोग ने 1975 मे डा डी एस कोठारी की अध्यक्षता म एक समिति स्थापित की। इस समिति का काम था—आई ए एस तथा उच्चतर लोकसेवा आयोग के प्रतियोगी परीक्षा के रूप पर अपनी सिफारिश प्रस्तुत कर लें। समिति ने मार्च, 1976 मे अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी। कोठारी बाबू की सिफारिशो को कुछ संशोधनों और परिवर्तनो के साथ केन्द्रीय सरकार ने दिसम्बर, 1978 म मान लिया और फलस्वरूप भर्ती की नई परीक्षा प्रणाली 1979 से लागू हो गई। आई ए एस तथा उच्चतर लोकसेवाओ मे भर्ती की इस नवीन परीक्षा प्रणाली का सारगर्भित वर्णन डॉ अवस्थी एव महेश्वरी ने निम्नानुसार किया है—

उच्चतर लोकसेवाओ म भर्ती की प्रतियोगी परीक्षा म वे सभी भारतीय नागरिक बैठ सकते हैं जो 21–28 वर्ष के हों तथा बी ए या इसके समकक्ष डिग्री लिए हुए हो। अनुसूचित जातियो तथा अनुसूचित जन-जातियो के लिए आयु म कुछ छूट दी गई है।

प्रतियोगी परीक्षा दो भागो मे बँटी है। प्रत्येक अभ्यर्थी एक प्रारम्भिक परीक्षा मे बैठना है और जो इस परीक्षा मे सफल होते हैं वे ही प्रमुख परीक्षा मे बैठ सकते है। प्रारम्भिक परीक्षा केवल अर्हतादायक है, इसके अक प्रमुख परीक्षा मे नही जुडते हैं।

प्रारम्भिक परीक्षा दो विषयो मे होती है तथा प्रत्येक विषय म एक प्रश्नपत्र होता है। प्रश्नपत्र ऑब्जेक्टिव टाइप के होत है जिनम लम्बे उत्तर की आवश्यकता नहीं रहती है। 'सामान्य अध्ययन' (General Studies) सभी के लिए अनिवार्य है, तथा इसके 150 अक का एक प्रश्नपत्र होता है। दूसरा विषय वैकल्पिक है, और एक अभ्यर्थी निम्न विषयो मे से कोई एक विषय ले सकता है। इसके 300 अक है।

कृषिशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, रसायनशास्त्र, वाणिज्यशास्त्र, अर्थशास्त्र; इजीनियरिंग (सिविल इलेक्ट्रिकल या मेकेनिकल), भूगोल, भूतत्त्वशास्त्र, भारतीय इतिहास कानून, गणित, दर्शनशास्त्र, भौतिकशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा जीव विज्ञान।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि वही अभ्यर्थी जो प्रारम्भिक परीक्षा में सफल हो जाता है, आगे की प्रमुख परीक्षा में बैठ सकता है अत प्रारम्भिक परीक्षा छँटनी करने की परीक्षा है। यदि यह छँटनी गलत हुई तो लोकसेवा का हानि होगी। साथ ही, प्रारम्भिक परीक्षा के जितने द्वार विद्यार्थियो के लिए खुल सकें उतना ही अच्छा है। खेद व दुख की बात है कि लोक प्रशासन जैसा लोकप्रिय विषय प्रारम्भिक परीक्षा में नही रखा गया है। लोकसेवा मे जाने के लिए लोक प्रशासन के विद्यार्थी की उपयुक्तता तो स्पष्ट ही है।

जैसा कहा जा चुका है, प्रारम्भिक परीक्षा में सफल अभ्यर्थी ही प्रमुख परीक्षा मे बैठ सकता है। इसमे लिखित परीक्षा तथा साक्षात्कार दोनो आते हैं। लिखित परीक्षा पाँच विषयो में होती है पर सब मिलाकर 3 प्रश्नपत्र होते हैं। प्रत्येक प्रश्नपत्र के 300 अक हैं। इन पाँच विषयो मे एक भारतीय भाषा (हिन्दी, उर्दू गुजराती, मराठी, बगाली, असमी, उड़िया, पजाबी, सस्कृत, तमिल, तेलुगु, कन्नड, सिन्धी, कश्मीरी तथा मलयालम मे से एक) अनिवार्य है। साथ ही, अग्रेजी तथा सामान्य अध्ययन भी अनिवार्य है। भारतीय भाषा तथा अग्रेजी म एक-एक प्रश्नपत्र है, परन्तु सामान्य अध्ययन मे दो प्रश्नपत्र हैं। अभ्यर्थियों को दो वैकल्पिक विषय लेने पड़ते हैं और प्रत्येक मे दो प्रश्नपत्र होते हैं। ये दो विषय निम्न विषयो मे से लिए जा सकते हैं—

(1) कृषिशास्त्र,
(2) वनस्पति विज्ञान;
(3) रसायनशास्त्र;
(4) सिविल इजीनियरिंग;
(5) वाणिज्य तथा लेखाकर्म;
(6) अर्थशास्त्र,
(7) इलैक्ट्रीकल इजीनियरिंग;
(8) भूगोल;
(9) भूतत्त्वशास्त्र;
(10) इतिहास,
(11) कानून,
(12) निम्न भाषाओ मे से एक का साहित्य-हिन्दी, सस्कृत, उर्दू, गुजराती, असमी, बगाली, कन्नड, कश्मीरी, मराठी, मलयालम, उड़िया, पजाबी, सिन्धी, तमिल, तेलुगु, अरबी, फारसी, फ्रेन्च, रूसी या अग्रेजी।
(13) प्रबन्ध व लोक प्रशासन;

(14) गणित,
(15) मिकेनिकल इंजीनियरिंग,
(16) दर्शनशास्त्र,
(17) भौतिक विज्ञान,
(18) समाजशास्त्र,
(19) मनोविज्ञान,
(20) राजनीतिशास्त्र तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध।

अभ्यर्थी अंग्रेजी तथा भाषा विषयों को छोड़कर अन्य विषयों में किसी भी भारतीय भाषा में उत्तर दे सकते हैं। दूसरे शब्दों में, हिन्दी में उत्तर देने की व्यवस्था है।

लिखित परीक्षा में सफल होने वालों को साक्षात्कार (इण्टरव्यू) के लिए बुलाया जाता है। यह इण्टरव्यू संघ लोकसेवा आयोग द्वारा लिया जाता है, जिसमें अभ्यर्थी से 30 मिनट के लगभग विभिन्न विषयों पर वार्तालाप किया जाता है। इण्टरव्यू के 250 अंक होते हैं। इण्टरव्यू बोर्ड में 7–8 सदस्य होते हैं जो अभ्यर्थी की क्षमता, योग्यता, निर्णय लेने की कुशलता आदि बातें आँकने का प्रयत्न करते हैं। लिखित परीक्षा तथा साक्षात्कार के अंक जोड़कर मेरिट-लिस्ट अर्थात् सफल अभ्यर्थियों की सूची तैयार की जाती है। इसी सूची में बता दिया जाता है कि कौन किस किस सेवा में गया है। इसके बाद लाल बहादुर शास्त्री नेशनल अकादमी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, मसूरी में प्रशिक्षण प्रारम्भ हो जाता है।

अभ्यर्थियों को आई. ए. एस. आदि प्रतियोगी परीक्षा में बैठने के अधिकतम तीन अवसर मिलते हैं। अनुसूचित जाति तथा जनजाति के अभ्यर्थी के लिए इन अवसरों की कोई अधिकतम सीमा नहीं रखी गई, इनके लिए उच्चतम निर्धारित आयु के अन्दर ये जितने भी अवसर लेना चाहें ले सकते हैं।

यह आई. ए. एस. तथा उच्चतर सेवाओं में भर्ती की परीक्षा-प्रणाली है। इस प्रणाली में कोठारी कमेटी की अनेक सिफारिशें मान ली गई हैं, परन्तु कुछ सिफारिशों को ठुकराया भी गया है। इस कमेटी के अनुसार, विभिन्न सेवाओं में बाँटने की प्रक्रिया प्रशिक्षण के उपरान्त होनी चाहिए थी, परन्तु केन्द्रीय सरकार ने यह नहीं माना।

भर्ती की रीतियाँ

भारतीय संविधान के अन्तर्गत संघीय लोकसेवा आयोग और राज्य लोकसेवा आयोगों की नियुक्ति का प्रावधान है। ये आयोग सरकारी सेवाओं में भर्ती और सामान्य कार्यों के साथ ही संघीय तथा राज्य सरकार में नियुक्ति के लिए प्रतियोगी परीक्षाओं का आयोजन करते हैं। लोकसेवा आयोगों का कार्य भर्ती के लिए परामर्श देना है, नियुक्ति की अन्तिम शक्ति कार्यकारिणी के हाथ में है। सरकार आयोग के परामर्श को यथोचित महत्त्व दे, इसके लिए संविधान में व्यवस्था है कि जब कभी

कार्यकारिणी आयोग के परामर्श के विपरीत कार्य करे तो इसके लिए वह व्यवस्थापिका के समक्ष अपने कार्य के लिए समुचित कारण बताने को प्रस्तुत रहे।

अखिल भारतीय सेवा केन्द्रीय सेवा और प्रान्तीय सेवा मे भर्ती प्रतिवर्ष खुली लिखित प्रतियोगिता के आधार पर की जाती है। लिखित परीक्षा के बाद व्यक्तित्व की जाँच की परीक्षा होती है जिसमे केवल उन्हीं प्रत्याशियो को आमन्त्रित किया जाता है, जो लिखित परीक्षा मे निर्धारित अक प्राप्त कर लेते हैं। लिखित परीक्षा और व्यक्तित्व जाँच के अक मिलाकर योग्यता निर्धारित की जाती है। अखिल भारतीय सेवा मे भर्ती राज्यीय लोकसेवा और राज्यीय पुलिस सेवा के स्थायी सदस्यो की पदोन्नति करके भी की जाती है। इसी तरह केन्द्रीय सेवाओं मे भी बहुत सी नियुक्तियां पदोन्नति द्वारा होती हैं। केन्द्रीय सचिवालय म सचिव, अतिरिक्त सचिव सयुक्त सचिव और इन पदो के समान स्तर वाले अन्य पदो पर नियुक्तियाँ भारतीय लोकसेवा, भारतीय प्रशासनिक सेवा केन्द्रीय सचिवालयी सेवा के सदस्यो के सीमित अवधि पद्धति के आधार पर की जाती हैं। ये सभी चयन-पद हैं। केन्द्रीय सचिवालय सेवा मे भी पदोन्नतियाँ योग्यता के आधार पर की जाती हैं।

स्पष्ट है कि भारत म शासकीय कर्मचारियो के चयन के लिए भर्ती की दोनो ही रीतियाँ—अन्दर से भर्ती तथा बाहर से भर्ती—प्रचलित हैं। भारत मे प्रत्यक्ष भर्ती प्रत्येक सेवक के निम्नतम पदो और युवक प्रवेशार्थियो तक ही सीमित है। इसके साथ ही स्थानो का एक निश्चित अनुपात पदोन्नति द्वारा भरे जाने के लिए अलग से सुरक्षित कर दिया जाता है। सामान्य स्थिति यह है कि जैसे ही किसी सेवा या श्रेणी का महत्त्व बढता है, प्रत्यक्ष भर्ती भी प्राय उसी अनुपात मे बढ जाती है। प्रत्यक्ष भर्ती और पदोन्नति का अनुपात प्रत्येक सेवा, वर्ग एव विभाग का अलग-अलग होता है। उदाहरणार्थ, आयकर विभाग मे 20 प्रतिशत स्थान पदोन्नति द्वारा और शेष 80 प्रतिशत स्थान प्रत्यक्ष भर्ती द्वारा भरे जाते हैं। केन्द्रीय सरकार मे उच्च श्रेणी के लिपिको (U D C or Clerk Grade I) के लगभग सभी स्थान अब निम्न श्रेणी के लिपिको (L D C. or Clerk Grade II) की पदोन्नति करके भरे जाते हैं। अखिल भारतीय सेवाओ हेतु भर्ती के लिए प्रतियोगी परीक्षा का आयोजन करके प्रत्यक्ष भर्ती की व्यवस्था है, लेकिन कुछ पद पदोन्नति द्वारा ही प्राप्त होते हैं। भारतीय प्रशासनिक सेवा (I A S) मे राज्यो के प्रशासनिक सेवा के सदस्यो म भी पदोन्नति की जाती है। प्रथम श्रेणी की सेवाओ के सम्बन्ध मे प्राय 25 से 30 प्रतिशत तक स्थान निम्न सेवाओ से पदोन्नत व्यक्तियो के लिए सुरक्षित रखे जाते हैं।

अखिल भारतीय और केन्द्रीय सेवा के अतिरिक्त कुछ सेवाओ के रिक्त पदों की भर्ती विज्ञापन के माध्यम से प्रतियोगिता के आधार पर की जाती है। इस भर्ती के लिए लिखित परीक्षाएँ नहीं होती, परन्तु शैक्षणिक योग्यता, अनुभव, व्यक्तिगत वृत्त और मौखिक जाँच के आधार पर प्रत्याशियो को चुन लिया जाता है जिसमे मुख्य तौर पर आयोग का एक सदस्य, एक या दो विशेषज्ञ और सम्बन्धित मन्त्रालय के प्रतिनिधि होते हैं।

परीक्षा योजना—उच्च लोकसेवा के लिए विचारों की परिपक्वता, बौद्धिक प्रशिक्षण और सुदृढ़ ज्ञान आवश्यक है, अतः इन गुणों की जाँच के लिए लोकसेवा आयोग प्रतिवर्ष प्रतियोगी परीक्षा आयोजित करते हैं। परीक्षणों की योजना मुख्यतः इन विचारों पर आधारित है—

(क) एक ऐसी लिखित परीक्षा होनी चाहिए जिसके द्वारा प्रत्याशियों की विचार-शक्ति, निर्णय-शक्ति, स्पष्ट व्याख्या करने की क्षमता और सामान्य ज्ञान की जाँच की जा सके। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु प्रत्याशियों को तीन अनिवार्य प्रश्नपत्रों (Compulsory Papers) में बैठना होता है-(1) निबन्ध (Essay) (2) सामान्य अंग्रेजी (General Enghsh) (3) सामान्य ज्ञान (General Knowledge)।

(ख) एक लिखित परीक्षा द्वारा प्रत्याशी की बौद्धिक क्षमता और स्नातककालीन उपलब्धियों की जाँच होनी चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु प्रत्याशी को वैकल्पिक विषयों (Optional Subjects) में से कुछ में परीक्षा देनी होती है—इतिहास, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र विधि एवं प्राकृतिक विज्ञान के विषय। भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय विदेश सेवा के लिए प्रतियोगी सभी प्रत्याशियों को अतिरिक्त प्रश्नपत्रों के रूप में कोई दो विषय चुनने होते हैं।

(ग) प्रत्याशी के वैयक्तिक गुणों की जाँच के लिए साक्षात्कार (Interview) की व्यवस्था होनी चाहिए, इन वैयक्तिक गुणों में कुछ ऐसे मानसिक गुण सम्मिलित होने चाहिए जिनकी जाँच लिखित परीक्षा द्वारा सम्भव नहीं होती। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु साक्षात्कार परीक्षाएँ ली जाती हैं।

लिखित परीक्षाएँ प्रत्याशी की बौद्धिक साज सज्जा और योग्यता की जाँच करती हैं, उसके अन्य महत्त्वपूर्ण वैयक्तिक और मानसिक गुणों की जाँच तो साक्षात्कार अथवा मौखिक परीक्षा द्वारा ही सम्भव है। डॉ॰ सिद्धान्त के अनुसार "साक्षात्कार का उद्देश्य योग्य एवं निष्पक्ष प्रेक्षकों के बोर्ड द्वारा इस बात की जाँच करना होता है कि क्या प्रत्याशी उस सेवा या उन सेवाओं के लिए व्यक्तिगत रूप से उपयुक्त है जिसके लिए कि उसने प्रार्थना-पत्र दिया है। साक्षात्कार में उसके जिन गुणों की जाँच की जाती है उन्हें मोटे तौर पर प्रत्याशी की मानसिक क्षमता का मूल्यांकन कहा जा सकता है"। उसके जिन गुणों की जाँच की जाती है उनमें से कुछ हैं-मानसिक तत्परता, खपाने अथवा आत्मसात् करने (Assimilation) की आलोचनात्मक शक्तियाँ, स्पष्ट एवं तर्कपूर्ण अभिव्यक्ति (Exposition), सन्तुलित निर्णय, रुचियों की विविधता एवं गहनता, सामाजिक सम्पर्क एवं नेतृत्व की योग्यता, बौद्धिक एवं नैतिक सत्यनिष्ठा। साक्षात्कार की विधि का अर्थ यह नहीं है कि प्रत्याशी से धड़ाधड़ प्रश्न पूछे जाएँ बल्कि एक ऐसी स्वाभाविक एवं उद्देश्यपूर्ण बातचीत हो जिसके द्वारा प्रत्याशी के मानसिक गुणों का पता लग सके।"

विज्ञापन करके प्रतियोगिता के आधार पर भर्ती—अखिल भारतीय और केन्द्रीय सेवा के अतिरिक्त कुछ सेवाओं के रिक्त पदों की भर्ती विज्ञापन करके प्रतियोगिता के आधार पर भी की जाती है। इस भर्ती के लिए लिखित परीक्षाएँ

नही होनीं वरन् शैक्षणिक योग्यता, अनुभव, व्यक्तिगत वृत्त और मौखिक जाँच के आधार पर प्रत्याशियो को चुन लिया जाता है। भर्ती का यह कार्य लोकसेवा आयोग के चयन मण्डल द्वारा किया जाता है जिसमे मुख्य तौर पर आयोग का एक सदस्य, एक या दो विषय विशेषज्ञ और सम्बन्धित मन्त्रालय के प्रतिनिधि होते हैं।

भारत मे भर्ती के अभिकरण : संघीय लोकसेवा आयोग
(Agencies of Recruitment in India Union Public Service Commission)

भारत मे लोकसेवाओ की भर्ती करने वाले मुख्य अभिकरण ये है--सघीय लोकसेवा आयोग राज्य लोकसेवा आयोग, रेलवे सेवा आयोग तथा सांविधानिक नियमो के लिए निजी भर्ती मण्डल अथवा आयोग। इस प्रकार के भर्ती आयोगो का अपना महत्व है। ये राजनीतिक एव अन्य प्रभावो को भर्ती की प्रक्रिया से दूर रखते हैं तथा योग्य कर्मचारियो के चयन को सम्भव बनाते हैं। भारत मे प्रथम लोकसेवा आयोग 1926 मे स्थापित किया गया था और 1976 मे आयोग की 50वी वर्षगांठ मनाई गई थी।

लोकतान्त्रिक राज्यो में सार्वजनिक सेवाओ मे लोकसेवा आयोग के माध्यम से नियुक्तियाँ करना एक सर्वविदित सिद्धान्त है। इसके अनुसार, भारतीय सविधान मे, अनुच्छेद 315 के अन्तर्गत केन्द्र तथा सभी राज्यो के लिए-एक लोकसेवा आयोग की व्यवस्था की गई है, किन्तु इसम दो अथवा दो से अधिक राज्यो के लिए सयुक्त लोकसेवा आयोग की भी अनुमति दी गई है बशर्ते कि तत्सम्बन्धी राज्यो के विधान-मण्डल के सदन अथवा सदनों द्वारा इस आशय का प्रस्ताव स्वीकृत किया गया हो। इस मामले म ससद् एक कानून द्वारा उन राज्यो की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए सयुक्त सेवा आयोग की नियुक्ति की व्यवस्था कर सकती है। राज्य केन्द्रीय लोक-सेवा आयोग से भी अपनी ओर से कार्य करने का अनुरोध कर सकते है और केन्द्रीय लोकसेवा आयोग राष्ट्रपति की स्वीकृति से ऐसा कर सकता है। सविधान मे लोकसेवा आयोग के बारे मे विस्तार से उपबन्ध भाग 14 के अध्याय 2 मे अनुच्छेद 315 से 323 मे दिए गए हैं।

सघीय लोकसेवा आयोग का सगठन

सविधान के अनुच्छेद 313(1) मे व्यवस्था है कि—

"लोकसेवा आयोग के अध्यक्ष और अन्य सदस्यो की नियुक्ति यदि वह सघ आयोग या सयुक्त आयोग है तो राष्ट्रपति द्वारा, तथा यदि वह राज्य आयोग है तो राज्य के राज्यपाल द्वारा की जाएगी।"

भारतीय सविधान मे आयोग के सदस्यो की सख्या निर्धारित नही की गई है। सदस्यो की सख्या तथा सेवा की शर्तें विभिन्न प्रशासकीय प्रधानो द्वारा निर्धारित की जाती हैं। 1983 के अन्त मे सदस्यो (अध्यक्ष सहित) की सख्या 8 थी जबकि स्वीकृत पद-सख्या 9 है।[1]

1 कार्मिक एव प्रशासनिक सुधार विभाग, गृह मन्त्रालय की वार्षिक रिपोर्ट 1983–84, पृ 63

संविधान में व्यवस्था है कि स्थायी अध्यक्ष के छुट्टी पर होने अथवा किसी भी कारण से कार्य न करने की स्थिति में उस रिक्त स्थान पर आयोग के अन्य सदस्यों में से ऐसे एक सदस्य को कार्यवाहक अध्यक्ष नियुक्त किया जा सकता है जिसे राष्ट्रपति (संघीय आयोग या संयुक्त आयोग की अवस्था में) नियुक्त करे। राज्य आयोग की अवस्था में राज्यपाल ऐसे कार्यवाहक अध्यक्ष की नियुक्ति करता है।

लोकसेवा आयोग के सदस्यों का कार्यकाल, पद-भार ग्रहण करने की तारीख से 6 वर्ष तक अथवा 65 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक जो भी पहले हो, होता है। राज्य आयोग या संयुक्त आयोग की सूरत में 65 वर्ष की जगह 60 वर्ष की आयु का प्रावधान है। संघीय लोकसेवा का कोई भी सदस्य अपने कार्यकाल से पूर्व ही राष्ट्रपति को सम्बोधित कर अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा पद त्याग कर सकता है। कदाचार (Misbehaviour) के आधार पर भी आयोग के सदस्य को हटाने या निलम्बित करने या किए जाने का प्रावधान संविधान में है। इस सम्बन्ध में आवश्यक प्रक्रिया का विवरण अनुच्छेद 317 के खण्ड (1), (2), (3), (4) में दिया गया है। संविधान की व्यवस्थाओं का सारांश यह है कि आयोग के सदस्यों को दुराचार के लिए राष्ट्रपति के आदेश द्वारा पदच्युत किया जा सकता है। दुराचार को प्रमाणित करने की प्रक्रिया संविधान द्वारा निश्चित की गई है। राष्ट्रपति द्वारा यह विषय सर्वोच्च न्यायालय के पास विचारार्थ प्रस्तुत किया जाएगा। अनुच्छेद 145 द्वारा निर्धारित प्रक्रियानुसार जाँच करने के बाद न्यायालय राष्ट्रपति के समक्ष अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करेगा। इस जाँच के पूर्ण होने तक के समय में राष्ट्रपति उक्त सदस्यों को आयोग से निलम्बित (Suspend) कर सकता है। अधोलिखित कारणों के उपस्थित होने पर राष्ट्रपति आयोग के किसी भी सदस्य को आदेश द्वारा पद से हटा सकता है—(1) यदि वह व्यक्ति दिवालिया (Insolvent) सिद्ध हो, (2) यदि वह अपने कार्यकाल में अपने पद से भिन्न और कोई सवैतनिक पद स्वीकार कर ले, (3) यदि राष्ट्रपति के विचार में वह व्यक्ति मन अथवा शरीर के अस्वस्थता के कारण अपने पद पर कार्य करने के लिए असक्षम हो गया हो, एवं (4) यदि भारत सरकार अथवा राज्य सरकार द्वारा अथवा इनकी ओर से किए गए किसी ठेके अथवा करार के साथ उसका (एक निगमित कम्पनी के साधारण सदस्य को छोड़) अन्य कोई सम्बन्ध हो अथवा उससे वह कोई लाभ प्राप्त करता हो।"[1]

संघीय आयोग या संयुक्त आयोग के बारे में राष्ट्रपति और राज्य आयोग के बारे में उस राज्य का राज्यपाल विनियमों द्वारा आयोग की सदस्य, उनकी सेवा शर्तों आदि का निर्धारण करता है। आयोग के सदस्य की सेवा-शर्तों में उसकी नियुक्ति के बाद ऐसे परिवर्तन नहीं किए जाते जो उसके लिए लाभकारी हों।

1 एम वी पायली ; भारत का संविधान, पृ 315-16.

पुनर्नियुक्ति, अन्य पद धारण करने आदि के सम्बन्ध मे व्यवस्था

1 अनुच्छेद 316(3) के अनुसार लोकसेवा आयोग के सदस्य को, उसकी पदावधि की समाप्ति पर, उस पद पर पुनर्नियुक्त नही किया जा सकता ।

2 अनुच्छेद 319 के अन्तर्गत लोकसेवा आयोग के सदस्य के अपने पद पर न रहने पर अन्य नौकरी प्राप्त करने के सम्बन्ध मे प्रतिबन्ध लगाए गए हैं, जो निम्न प्रकार हैं—

(क) "सघ लोकसेवा आयोग का अध्यक्ष भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार के अधीन किसी भी और नौकरी के लिए अपात्र होगा।"

(ख) "राज्य के लोकसेवा आयोग का अध्यक्ष सघ लोकसेवा आयोग के अध्यक्ष या अन्य सदस्य के रूप मे अथवा किसी अन्य राज्य के लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष के रूप मे नियुक्त होने का पात्र होगा, किन्तु भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन किसी अन्य नौकरी के लिए पात्र न होगा।"

(ग) "सघ लोकसेवा आयोग के अध्यक्ष के अतिरिक्त कोई अन्य सदस्य सघ लोकसेवा आयोग के रूप मे अथवा राज्य लोकसेवा आयोग के अध्यक्ष के रूप मे नियुक्त होने का पात्र होगा, किन्तु भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार के अधीन किसी अन्य नौकरी के लिए पात्र न होगा।"

(घ) "किसी राज्य के लोकसेवा आयोग के अध्यक्ष के अतिरिक्त अन्य कोई सदस्य सघ लोकसेवा आयोग के अध्यक्ष या किसी अन्य सदस्य के रूप मे अथवा उसी या किसी अन्य राज्य के लोकसेवा आयोग के अध्यक्ष के रूप मे नियुक्ति होने का पात्र होगा, किन्तु भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन किसी अन्य नौकरी के लिए पात्र न होगा।"

सघ लोकसेवा आयोग की शक्तियाँ, कार्य एवं भूमिका
(Powers, Functions & Role of the U P S C)

लोकसेवा आयोग के कार्य सविधान के अनुच्छेद 320 मे तो गिनाए ही गए है, किन्तु सविधान के अनुच्छेद 321 मे यह व्यवस्था भी दे दी गई है कि ससद् और राज्य विधान-मण्डल क्रमश विधि द्वारा सघ तथा राज्य लोकसेवा आयोगों को सघ की या राज्य की सेवाओ के बारे मे तथा किसी स्थानीय प्राधिकारी अथवा किसी सार्वजनिक सस्था की सेवाओं के बारे मे अतिरिक्त कार्य सौंप सकते हैं। वास्तव मे लोकसेवा आयोग के सांविधानातिरिक्त स्रोत मुख्यत. तीन हैं—(क) ससद् द्वारा निर्मित कानून, जैसे टैरीटोरियल अधिनियम, 1956, दिल्ली म्यूनिसिपल कारपोरेशन अधिनियम 1959 आदि, जिनके द्वारा यह व्यवस्था की गई है कि इन सस्थाओं के उच्च पदो पर भर्ती सघीय लोकसेवा आयोग द्वारा

कराई जाएगी; (ख) नियम, रेगुलेशन्स तथा कार्यपालिका के आदेश, (ग) अभिसमय, जैसे संविधान द्वारा सैन्य सेवाओं की भर्ती का कार्य आयोग को यद्यपि नहीं सौंपा गया है किन्तु आयोग 1948 से ही कैडेटों (Cadets) की भर्ती के लिए लिखित परीक्षाओं का आयोजन करता रहा है और विशेष योग्यता वाले वैज्ञानिकों एवं तकनीकी विशेषज्ञों के पूल (Pool) की भर्ती में भी आयोग भाग लेता है।

संघीय लोकसेवा आयोग के प्रमुख कार्यों का विवरण डॉ भाम्भरी ने निम्नानुसार किया है—

1. भर्ती के तरीकों तथा सिविल अथवा असैनिक सेवाओं तथा असैनिक पदों पर सीधी अथवा पदोन्नति (Promotion) द्वारा नियुक्ति करने में अपनाए जाने वाले सिद्धान्तों से सम्बन्धित सभी मामलों पर सरकार को परामर्श देना।

2 नियुक्ति, पदोन्नति तथा स्थानान्तरण आदि के लिए प्रत्याशियों की उपयुक्तता (Suitability) के सम्बन्ध में परामर्श देना।

3 सेवाओं पर नियुक्ति करने के लिए परीक्षाओं का सचालन करना।

4. लोकसेवकों को प्रभावित करने वाले अनुशासनात्मक मामलों के सम्बन्ध में परामर्श देना।

5. लोक सेवा के किसी व्यक्ति द्वारा अपने कर्त्तव्य-पालन के लिए गए कार्यों के सम्बन्ध में उसके विरुद्ध की गई किन्हीं कानूनी कार्यवाहियों में जो खर्चा उसे अपनी प्रतिरक्षा में करना पड़ा है उसके दावे के सम्बन्ध में तथा किसी लोक सेवक द्वारा निवृत्ति-वेतन अथवा पेन्शन के लिए किए जाने वाले उस दावे के सम्बन्ध में परामर्श देना जो कि वह अपने उत्तरदायित्व का पालन करते समय चोट खाने की स्थिति में करता है।

6 अन्य कोई ऐसा मामला जो कि राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा विशेष रूप से उनको सौंपा जाए।

इस बात की व्यवस्था है कि संसद् द्वारा अथवा राज्य विधान मण्डल द्वारा केवल सरकारी सेवाओं के ही सम्बन्ध में नहीं, बल्कि उन सेवाओं के सम्बन्ध में भी जो कि स्थानीय प्राधिकारियों (Local Authorities), निगमों (Corporations) अथवा सार्वजनिक संस्थाओं के अधीन हों, आयोग के कार्यों का विस्तार किया जा सकेगा।

आयोग के कार्यक्षेत्र से कुछ पदों को अलग करके इसका अधिकार-क्षेत्र कम किया जा सकता है। निम्नलिखित नियुक्तियों के चुनाव के सम्बन्ध में आयोग से कोई परामर्श नहीं लिया जाता—

(क) न्यायाधिकरण (Tribunals) अथवा आयोग की सदस्यता अथवा अध्यक्षता।

(ख) उच्च राजनयिक प्रकृति के पद।

(ग) तृतीय व चतुर्थ श्रेणी के अधिकांश कर्मचारी, जिनकी संख्या केन्द्र सरकार के कर्मचारियों की कुल संख्या की 98 प्रतिशत है, आयोग के कार्यक्षेत्र से बाहर हैं।

अग्रलिखित दशाओं के अन्तर्गत किसी भी अनुशासन के मामले के सम्बन्ध मे दिए जाने वाले आदेश के विषय मे आयोग से परामर्श किया जाता है—

(क) निम्नलिखित म से कोई भी दण्ड देने की स्थिति मे राष्ट्रपति द्वारा मूल आदेश जारी करने के सम्बन्ध मे—

1 निन्दा,

2 पदोन्नति अथवा वेतन-वृद्धियाँ रोकना,

3 लापरवाही अथवा आदेशो का उल्लघन करने के कारण सरकार को होने वाली किसी भी आर्थिक हानि का पूर्ण अथवा आंशिक भाग कर्मचारी के वेतन से वसूल करना,

4. किसी बडी सेवा से निम्न सेवा मे निम्न, पदक्रम अथवा पद पर अथवा निम्न समय-मान मे या समय मान मे निम्न स्तर पर लाया जाना,

5 अनिवार्य सेवा-निवृत्ति;

6 सेवा से हटाया जाना,

7 सेवा से पदच्युति (Dismissal)।

उपरोक्त किसी भी दण्ड के सम्बन्ध मे किसी अधीनस्थ सत्ता द्वारा दिए गए आदेश के विरुद्ध की गई याचिका पर राष्ट्रपति द्वारा दिया गया आदेश।

(ख) राष्ट्रपति या अधीनस्थ सत्ता द्वारा उपरोक्त किसी भी दण्ड को लागू करने के लिए दिए गए आदेश मे, याचिका या स्मरण-पत्र के आधार पर पुनर्विचार करने के पश्चात् सशोधन करने के लिए राष्ट्रपति द्वारा दिया गया आदेश। आयोग सरकार को जिन मामलों के सम्बन्ध मे सलाह देता है वे हैं—भर्ती के तरीके, नियुक्ति, पदोन्नति तथा एक सेवा से दूसरी सेवा मे स्थानान्तरण किए जाने के सम्बन्ध मे अपनाए जाने वाले सिद्धान्त और ऐसी नियुक्तियो, पदोन्नतियो तथा बदलियो के सम्बन्ध मे प्रत्याशियो की उपयुक्तता। निम्न मामलो मे भी यह सरकार को परामर्श देता है—

1 अनुशासन सम्बन्धी ऐसे सभी मामले जो भारत सरकार के कार्य करने वाले सिविल सेवकों को प्रभावित करते हैं, जिनमे ऐसे मामलो से सम्बन्धित स्मरण-पत्र अथवा याचिकाएँ भी सम्मिलित हैं,

2 किसी भी अफसर द्वारा किया गया यह दावा है कि पदाधिकारी के रूप से किए गए कार्य के सम्बन्ध मे उसके विरुद्ध जो कानूनी कार्यवाहियाँ की गई हैं उनसे बचाव में लगी लागत को सरकार वहन करे, और

3 सरकारी कार्य करते समय लगी चोटों के सम्बन्ध में पेन्शन के पुरस्कार सम्बन्धी कोई दावे तथा ऐसे पुरस्कार की मात्रा से सम्बन्धित कोई भी प्रश्न।

संघीय लोकसेवा आयोग द्वारा समय समय पर विशेष कार्यों के लिए समितियाँ गठित की जाती हैं। लोकसेवा आयोग यद्यपि परामर्शदात्री संस्थाएँ (Advisory Bodies) हैं, तथापि उनकी सिफारिशें प्रायः ठुकराई नहीं जातीं। वस्तुतः ये सिफारिशें परामर्शात्मक (Mandatory) होतीं तो सम्भवतः कम प्रभावशाली रहतीं, क्योंकि तब सरकार और आयोग के बीच विवाद उठते रहने और ऐसी स्थिति उत्पन्न होने का भय हो जाता है, जिससे दोनों ही एक से अधिक के अन्तर्गत प्रतिद्वन्द्वी संस्थाएँ बनकर एक दूसरे पर अपनी इच्छा लादने का प्रयत्न करतीं। आयोग की सिफारिशों को समुचित महत्त्व दिया जाए और सरकार उपेक्षा-भाव न बरते इसके लिए संविधान में संसदीय नियन्त्रण स्थापित किया है। इसलिए आयोग का प्रतिवेदन सरकारी ज्ञापन सहित संसद के समक्ष प्रतिवर्ष अनिवार्यतः प्रस्तुत किया जाता है।

लोकसेवा आयोग के कार्यकलाप कुल मिलाकर काफी निष्पक्ष और सराहनीय रहे हैं। कुछ क्षेत्रों में इस प्रकार के आरोप लगाए जाते हैं कि आयोग के सदस्यों पर व्यक्तिगत अथवा दलीय हितों के कारण राजनीतिक नेताओं द्वारा दबाव डाला जाता है। यह भी आरोप लगाया जाता है कि आयोग अधिकांशतः उन्हीं प्रत्याशियों का चयन करता है जो अच्छे शिक्षणालयों में पढ़े हुए होते हैं, ऊँचे घरानों से सम्बद्ध होते हैं तथा अंग्रेजी में अपने विचारों को भली प्रकार व्यक्त कर सकते हैं। यह आरोप भी लगाया जाता है कि कई बार आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों के बीच आपसी संघर्ष या तनाव बना रहता है और प्रत्याशी के बारे में आयोग का मूल्यांकन वास्तविक नहीं रह पाता। इस प्रकार की आलोचनाएँ अपवाद रूप में कुछ अवसरों पर सही हो सकती हैं, लेकिन सामान्यतया आयोग ने अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन राजनीतिक दबावों और पक्षपात से परे रहकर किया है।

आयोग के प्रतिवेदन

(1) संघीय आयोग का यह कर्त्तव्य होगा कि राष्ट्रपति को अपने द्वारा किए गए काम के बारे में प्रतिवर्ष प्रतिवेदन दे तथा ऐसे प्रतिवेदन के मिलने पर राष्ट्रपति उन मामलों के बारे में, यदि कोई हो, जिनमें आयोग का परामर्श स्वीकार नहीं किया गया, ऐसी अस्वीकृति के कारणों को स्पष्ट करने वाले ज्ञापन के सहित उस प्रतिवेदन की प्रतिलिपि संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगा।

(2) राज्य आयोग का यह कर्त्तव्य होगा कि राज्य के राज्यपाल को अपने द्वारा किए गए काम के बारे में प्रतिवर्ष प्रतिवेदन दे तथा संयुक्त आयोग (Joint Commission) का कर्त्तव्य होगा कि ऐसे राज्यों में से प्रत्येक के, जिनकी आवश्यकताओं की पूर्ति संयुक्त आयोग द्वारा की जाती है, राज्यपाल को उस राज्य के सम्बन्ध में अपने द्वारा किए गए काम के बारे में प्रतिवर्ष प्रतिवेदन दे तथा इनमें

से प्रत्येक अवस्था में ऐसे प्रतिवेदन के मिलने पर यथास्थिति राज्यपाल उन मामलों के बारे में, यदि कोई हो जिनमे कि आयोग का परामर्श स्वीकार नही किया गया है ऐसी अस्वीकृति के कारणों को स्पष्ट करने वाले ज्ञापन के सहित उस प्रतिवेदन की प्रतिलिपि राज्य के विधान-मण्डल के समक्ष रखवाएगा।

सरकार को इस बात की स्वतन्त्रता होनी है कि वह आयोग द्वारा दी गई सलाह को स्वीकार अथवा अस्वीकार करे, परन्तु एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अनुसार सरकार से यह माँग की जाती है कि वह आयोग का वार्षिक प्रतिवेदन विधान-मण्डल के समक्ष प्रस्तुत करते समय, उन कारणों का भी स्पष्टीकरण करे कि कुछ विशिष्ट मामलों में आयोग की सलाह क्यों स्वीकार नही की जा सकी। आयोग की सलाह की उपेक्षा करके सरकार द्वारा की जाने वाली मनमानी कार्यवाही के विरुद्ध यह एक सुरक्षा है।

आयोग का निर्माण संविधान (Constitution) के द्वारा किया गया था। इस बात के लिए सभी उचित सुरक्षाओं की व्यवस्था की गई थी कि इसको सभी प्रकार के अनुचित प्रभावों से बचाए रखा जा सके और उसको इस योग्य बनाया जा सके कि जिससे यह अपने निर्धारित कर्त्तव्यों को निष्पक्षता, सत्यनिष्ठा (Integrity) तथा बिना भय या पक्षपात के स्वतन्त्रता के साथ पूरा कर सके।[1]

आयोग का मूल्यांकन

संघीय लोकसेवा आयोग भारत में सेवीवर्ग प्रशासन का केन्द्रीय अभिकरण बन चुका है, अतः इसकी कमियाँ तथा दोष लोकसेवाओं के दोष तथा कमियों के रूप में प्रतिफलित होते हैं। आयोग की कार्य प्रक्रिया एवं परिणामों की दृष्टि से मुख्यतः निम्नलिखित आक्षेप किए जाते हैं—

(i) आयोग द्वारा आयोजित मौखिक परीक्षाओं तथा व्यक्तित्व परीक्षाओं में शहरी तथा अंग्रेजी स्कूलों से आए प्रत्याशियों को देहाती प्रत्याशियों की अपेक्षा अधिक प्रश्रय दिया जाता है।

(ii) इसके द्वारा अपनाई गई चयन प्रक्रिया के कारण केवल उच्च परिवारों के धनी प्रत्याशियों को ही उच्च सेवाओं में प्रवेश मिल पाता है। डॉ॰ भाम्भरी ने लोकसेवा आयोग को बन्द नौकरशाही निगम (Closed Bureaucratic Corporation) कहा है जो अपने भर्ती के तरीकों द्वारा स्थापित सामाजिक नौकरशाही व्यवस्था को निरन्तर बनाए रखता है।

(iii) आयोग का कार्यभार अधिक है। वह सदैव अपने नियमित कार्यों में ही व्यस्त रहने के कारण भर्ती नीतियों में अधिक नए प्रयोग नही कर पाता।

(iv) सरकारी कर्मचारियों की भर्ती में आयोग की भूमिका अत्यन्त सीमित है। भारी संख्या में सरकारी पद इसके क्षेत्राधिकार से बाहर रहते हैं। इसके

1 डॉ॰ चन्द्र प्रकाश भाम्भरी : लोक प्रशासन : सिद्धान्त तथा व्यवहार, पृ. 478-480

अतिरिक्त रेल्वे सेवा आयोग, डाक एवं तार सेवा मण्डल, विभागीय भर्ती अभिकरण, स्थापना कार्यालय, केन्द्रीय स्थापना कार्यालय, विभागीय स्थापना कार्यालय आदि भी लोकसेवाओं में भर्ती का कार्य सम्पन्न करते हैं।

(v) राज्यों में लोकसेवा आयोग को अपेक्षित महत्त्व नहीं दिया जाता। राज्य सरकारें जब तब आयोग के क्षेत्राधिकार के पदों को इससे छीनती रहती हैं। कभी कभी आयोग के नियुक्ति सम्बन्धी सुझावों को अस्वीकार भी कर दिया जाता है।

(vi) भारत में लोकसेवा आयोग का दृष्टिकोण एवं कार्य प्रक्रिया अभी तक मूल रूप से नकारात्मक है। यह धूर्तों को दूर रखने का ही प्रयत्न करता है। इसके द्वारा रिक्त पदों के लिए किए जाने वाले विज्ञापन योग्य तथा कुशल प्रत्याशियों को आकर्षित नहीं कर पाते।

(vii) आयोग की परीक्षा प्रणाली अत्यन्त दूषित है। इसके द्वारा प्रत्याशी का वस्तुगत मूल्यांकन नहीं हो पाता वरन् पक्षपात, भाई-भतीजावाद, भ्रष्टाचार एवं योग्यता के विरुद्ध चालबाजों को प्रोत्साहन आदि प्रवृत्तियाँ बढ़ जाती हैं।

(viii) लोकसेवाओं में अनुशासन की स्थापना की दृष्टि से केन्द्रीय सतर्कता आयोग लोकसेवा आयोग के साथ प्रतियोगी की भूमिका निभाता है। यदि किसी एक ही मामले में ये दोनों अभिकरण अलग अलग राय प्रकट करें तो किसकी राय को माना जाएगा यह एक संविधानिक प्रश्न उपस्थित हो जाता है।

कुछ व्यावहारिक सुझाव (Some Practical Suggestions)—उपरोक्त आलोचनाओं की पृष्ठभूमि में लोकसेवा आयोग अपने अपेक्षित कर्त्तव्यों एवं दायित्वों का पालन सन्तोषजनक रूप से नहीं कर पाता। इसे अधिक सक्षम तथा सफल बनाने के लिए समय-समय पर लोक-प्रशासन के विद्वानों द्वारा अनेक सुझाव प्रस्तुत किए गए हैं—

1 ग्रामोन्मुख सेवाएँ—सम्मेलन में तत्कालीन प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने इस बात पर जोर दिया कि रोजगार नीति इस प्रकार की अपनाई जाए कि लोकसेवाओं में अधिक से अधिक ग्रामोन्मुख प्रत्याशी शामिल हो सकें तथा जो लोग गाँवों में काम करना चाहते हैं उन्हें अधिक अवसर मिल सकें। यह नीति किसी आदर्श पर नहीं वरन् वास्तविक यथार्थ पर आधारित है। देश की अधिकांश जनसंख्या गाँवों में रहती है तथा हमारी अर्थव्यवस्था कृषि-प्रधान है, अतः किसी भी लोकसेवा को सामान्य जनता के योग्य बनाने के लिए यह आवश्यक है कि ऐसे अधिकारी नियुक्त किए जाएँ जो गाँवों में पैदा हुए हों तथा गाँवों को अच्छी प्रकार समझते हों। यह कार्य राज्य तथा संघीय स्तर के लोकसेवा आयोग कर सकते हैं।

2 शिक्षा एवं आवश्यकताओं के साथ सामंजस्य—देश की परिस्थितियाँ एवं लोगों की महत्त्वाकांक्षाएँ स्वतन्त्रता के बाद काफी बदल चुकी हैं, अतः केन्द्रीय लोकसेवा आयोग के साथ-साथ राज्यों के लोकसेवा आयोगों को भी अपनी कार्य-

प्रणाली तथा संगठन पर पुनर्विचार करना चाहिए। आयोग को देश की शिक्षा-पद्धति के साथ भी तालमेल रखना होगा। आयोग के तत्कालीन अध्यक्ष डॉ० ए० आर किदवई के कथनानुसार 'शिक्षा की अधिक सुविधाओं के कारण युवकों की आकांक्षाएँ काफी बढ़ गई है। इन्हें देखते हुए आयोग उस सीमित कार्यक्षेत्र में अपनी भूमिका मुश्किल से ही निभा सकेगा जो इसके लिए तीन दशक पूर्व बनाया गया था।" शैक्षणिक संस्थाओं से भारी संख्या में युवक निकल कर आते हैं। इनके कारण लोकसेवा आयोगों का कार्य जटिल हो गया है। वे एक विचित्र भँवर में फँस गए हैं तथा भँवर यह है कि विश्वविद्यालय का प्रमाण पत्र पाते ही व्यक्ति नौकरी की तलाश करने लगता है। इस प्रणाली में सुधार के लिए शिक्षा-प्रणाली का पुनर्गठन करना आवश्यक है।

3 समान मापदण्ड निर्धारित किए जाएँ—लोकसेवा आयोग के क्षेत्राधिकार के बाहर किन पदों को रखा जाए, सरकार द्वारा आयोग के परामर्श के बिना किन पदों पर नियुक्तियाँ की जाएँ नई भर्ती तथा पदोन्नति के सम्बन्ध में एकतरफा कार्यवाही पर रोक लगाई जाए, राज्य सरकारें लोकसेवा आयोग से निरन्तर परामर्श लेती रहें आदि बातों के सम्बन्ध में कुछ सामान्य मापदण्ड तय किए जाने चाहिए जिनका अनुशीलन समान रूप से सभी आयोग करें। राज्य लोकसेवा आयोगों की कुशलता एवं निष्पक्षता के बारे में कई बार शिकायतें की जाती हैं। इसके अतिरिक्त कई राज्यों में आयोगों की सिफारिशों को ताक पर रख कर सरकार मनमाने निर्णय लेती है, अत यह आवश्यक है कि राज्य लोकसेवा आयोग के क्षेत्राधिकार के सम्बन्ध में एक जैसी नीति निर्धारित कर ली जाए।

4 राष्ट्रीय प्रतिभा परीक्षा—लोकसेवाओं में भर्ती के लिए वर्तमान परीक्षा प्रणाली दोषपूर्ण है क्योंकि आज 100 में से लगभग 95 प्रत्याशी संघ लोकसेवा आयोग की परीक्षाओं में अनुत्तीर्ण हो जाते हैं। यदि राष्ट्रीय स्तर पर सभी प्रकार के रोजगार के लिए एक ही परीक्षा का आयोजन किया जाता तो इन अनुत्तीर्ण छात्रों में से एक तिहाई को विभिन्न प्रकार के कार्यों में लगाया जा सकता था। इस प्रकार की परीक्षाओं का औचित्य यह है कि प्रत्याशियों को अलग-अलग नौकरियों के लिए आवेदन करते समय बार-बार एक ही प्रकार की परीक्षा में बैठना पड़ता है। इसमें धन, समय और प्रत्याशियों के समय का अपव्यय होता है। यदि ऐसी योजना बनाई जाए जिसमें प्रतिवर्ष नौकरी चाहने वाले सभी छात्रों को केवल एक बार परीक्षा में बैठने का अवसर दिया जाए और उसी परीक्षा के मूल्यांकन के आधार पर उन्हें योग्यतानुसार अलग-अलग नौकरियों पर भेजा जाए तो आज की अव्यवस्था समाप्त हो सकती है। ये राष्ट्रीय प्रतिभा परीक्षाएँ विदेशों में काम कर रहे युवकों के लिए भी लाभदायक हो सकती हैं जो अपने देश लौटना चाहते हैं।

जहाँ तक प्रतिभा के पलायन का सम्बन्ध है उसके बारे में डॉ किदवई का यह विचार था कि भारत के सामने ऐसी कोई समस्या ही नहीं है। हमारे यहाँ विभिन्न तकनीकी क्षेत्रों में प्रशिक्षित युवकों की पर्याप्त संख्या है तथा हम चाहते हैं

कि वे अधिक से अधिक मात्रा में विकासशील देशों के विकास कार्यों में योगदान करें। विदेशों में भारतीयों के काम करने के एकमात्र स्रोत से ही आज हमारे देश को लगभग 120 करोड़ रु प्रतिवर्ष की विदेशी मुद्रा की आय होती है। यदि प्रयास किया जाए तो यह आय दस गुनी हो सकती है।

राष्ट्रीय प्रतिभा परीक्षा एक प्रगतिशील कदम है। इसके द्वारा उपलब्ध वैज्ञानिक एवं तकनीकी मानव शक्ति का पूरा सदुपयोग किया जा सकेगा। इससे रोजगार के इच्छुक व्यक्तियों को तुरन्त रोजगार मिल सकेगा तथा विभिन्न अनुशासनों एवं व्यवसायों में उपलब्धियों के राष्ट्रीय मानक स्थापित हो सकेंगे। इसके साथ ही यह व्यवस्था पदोन्नति के अधिक अवसर प्रदान कर सकेगी। नियुक्तिकर्त्ताओं को उनके रिक्त पदों के लिए पृथक् से परीक्षाएँ बिना आयोजित किए ही योग्य प्रत्याशी प्राप्त हो जाते हैं। इससे शिक्षा का स्तर ऊँचा उठेगा तथा अध्ययन के प्रति उद्देश्यपूर्णता का भाव जाग्रत होगा।

5 पिछड़े वर्गों का प्रतिनिधित्व—भारतीय संविधान द्वारा अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के प्रत्याशियों को परीक्षाओं तथा नौकरियों में कुछ सुविधाएँ तथा रियायतें देने का फैसला किया गया है। व्यवहार में अनुसूचित जातियों के लिए जो स्थान सुरक्षित रखे जाते हैं वे तो सभी भर जाते हैं किन्तु जनजातियों के स्थानों के लिए पर्याप्त प्रत्याशी ही नहीं मिल पाते।

उपरोक्त स्थिति के कारण यह सुझाव दिया जाता है कि लोकसेवा आयोगों की परीक्षाओं में बैठने से पहले इन जातियों के प्रत्याशियों को पर्याप्त रूप से प्रशिक्षण दिया जाए। तैयारी के प्रशिक्षण की सुविधाएँ देश के बड़े-बड़े नगरों में उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

6 आयोग अपने परम्परागत तरीकों एवं कार्य-प्रक्रियाओं की कमजोरियों के बारे में सदैव सजगता रखे तथा भर्ती एवं चयन के क्षेत्र में नए तरीके, प्रविधि एवं साधन अपनाने के लिए सदैव तत्पर रहे।

7 आयोग को चाहिए कि भर्ती और चयन के बारे में दूसरे देशों में अपनाए गए तरीकों का तुलनात्मक अध्ययन करे तथा उपयोगी बातों को स्वयं अपनाए।

8 रिक्त स्थानों के विज्ञापन के तरीकों तथा तकनीकों में सुधार किया जाए तथा योग्य प्रत्याशी ढूंढने के लिए अन्य आवश्यक तरीके अपनाए जाएँ।

9 आत्मक सेवीवर्ग नीतियाँ अपनाई जानी चाहिए।

10 आयोग अपने परिवर्तित दायित्वों के सन्दर्भ में अपने कर्मचारियों का व्यावसायीकरण करे। आयोग के योग्य, प्रशिक्षित एवं कुशल कर्मचारी ही इसके प्रशासित कार्यों को सन्तोषजनक रूप से पूरा कर सकेंगे। जब तक स्वयं चयनकर्त्ता ही योग्य तथा ईमानदार नहीं होंगे तब तक यह आशा नहीं की जा सकती कि वे ईमानदार, सरीर, कार्यकुशल तथा योग्य प्रत्याशियों का चयन कर सकेंगे।

क्षेत्रीय निदेशकों का 9वाँ सम्मेलन दिसम्बर, 1983 में नई दिल्ली में हुआ था जिसका उद्घाटन केन्द्रीय गृहमन्त्री ने किया था और विदाई भाषण गृह

यहाँ इस बात को ध्यान में रखना संगत होगा कि विभिन्न प्रतियोगिता परीक्षाओं के लिए अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के उम्मीदवारों को तैयार करने के लिए 60 शिक्षण केन्द्र भी खोले गए हैं और जनजातियों के जमाव वाले क्षेत्रों में परीक्षा केन्द्र भी खोले गए हैं जिससे कि ऐसी प्रतियोगिता परीक्षाओं में बैठने में अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के उम्मीदवारों को अधिक सहूलियत हो सके।

समूह 'ग' तथा 'घ' के गैर-तकनीकी पदों और अर्ध-तकनीकी पदों की आरक्षित रिक्तियों को सीधी भर्ती से भरने के लिए मानक स्तर में छूट देने के बावजूद भी यदि अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के उम्मीदवार उपलब्ध न होते हों तो चयन प्राधिकारियों को चाहिए कि वे अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के जो उम्मीदवार विहित न्यूनतम शैक्षिक अर्हता पूरी करते हों, उनमें से सर्वोत्तम उम्मीदवारों को आरक्षित रिक्तियों की सीमा तक चुन लें और परिवीक्षा के आधार पर नियुक्त कर लेवें और उसके बाद उन्हें कार्यालय के भीतर सेवाकालीन प्रशिक्षण दें जिससे कि प्रशासन की कार्यक्षमता बनाए रखने के लिए ऐसे उम्मीदवारों को अपेक्षित न्यूनतम मानक स्तर तक लाया जा सके।

पदोन्नति में आरक्षण—अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के लिए (i) सभी ग्रेडों और सभी समूहों में उपयुक्तता की शर्त पर वरिष्ठता द्वारा, (ii) समूह 'ख', 'ग' तथा 'घ' में सीमित विभागीय परीक्षा द्वारा और (iii) समूह 'क' के निम्नतम स्तर तक चयन द्वारा की जाने वाली पदोन्नति में आरक्षण लागू है। यद्यपि समूह 'क' के भीतर चयन द्वारा पदोन्नति में कोई विशिष्ट आरक्षण नहीं है, फिर भी पदोन्नति के इस क्षेत्र में अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के अधिकारियों को विशेष रियायत प्राप्त है। सरकार ने इस आशय के अनुदेश जारी किए हैं कि रु 2250 – प्रति माह के अधिकतम वेतन वाले समूह 'क' के पदों पर चयन द्वारा पदोन्नति के लिए अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के उन अधिकारियों को, जो पदोन्नति के लिए विचारण क्षेत्र में इतने वरिष्ठ हों और रिक्तियों की उस संख्या के भीतर आते हों जिनके लिए प्रवर सूची तैयार की जा रही हो, उन्हें प्रवर सूची में शामिल कर लिया जाए किन्तु शर्त यह है कि वे पदोन्नति के लिए अनुपयुक्त न समझे जाएँ। इस तरह के भी प्रावधान हैं कि वरण के सामान्य क्षेत्र के भीतर जब अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के उम्मीदवार पर्याप्त संख्या में उपलब्ध न हों तो वरण के क्षेत्र को बढ़ाकर रिक्तियों की संख्या से पाँच गुणा कर दिया जाए और वरण के बढ़ाए गए क्षेत्र के भीतर आने वाले अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के ऐसे उम्मीदवारों पर भी उनके लिए आरक्षित रिक्तियों के लिए विचार किया जाना चाहिए। अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के उम्मीदवारों के हित में अब यह भी प्रावधान किया गया है कि अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के वे अधिकारी जो विचारण के बढ़ाए गए क्षेत्र से भी चुने गए हों, उनकी वरिष्ठता कम नहीं की

जाएगी अपितु विभागीय पदोन्नति समिति द्वारा उनका जो पदक्रम निर्धारित किया गया है, उसके अनुसार प्रवर सूची म अपना उचित स्थान बनाए रखेंगे। समूह 'ग' और 'घ' मे चयन द्वारा पदोन्नति मे अनुसूचित जातियो अनुसूचित जनजातियो के लिए विचारण का क्षेत्र अलग से लागू किया जाता है (हालांकि विचारण के क्षेत्र का आकार वही रहता है) चयन द्वारा पदोन्नति म यदि सामान्य मानदण्डो के अनुसार अनुसूचित जातियो अनुसूचित जनजातियो के उम्मीदवार अपेक्षित सख्या मे उपलब्ध न हो तो इस अन्तर को पाटने के लिए इन समुदायो के ऐसे उम्मीदवारो को, उनके योग्यता क्रम पर विचार किए बिना चुन लिया जाएगा जो विचारण के क्षेत्र मे आते हो और पदोन्नति के लिए उपयुक्त हो।

अधिक्रमण के बारे मे अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियो को प्राप्त सुरक्षा—इस आशय के अनुदेश भी विद्यमान हैं कि यदि अनुसूचित जातियो/अनुसूचित जनजातियो के पात्र उम्मीदवार उपलब्ध हो लेकिन उनके लिए आरक्षित रिक्तियो पर उनकी नियुक्ति न की जाए अथवा उन रिक्तियो के लिए उनका चयन न किया जाए तो अधिक्रमण के ऐसे मामले (समूह 'ख' पदोन्नति के मामले मे) सम्बन्धित मन्त्री को प्रस्तुत किए जाएँ प्रवर सूची (समूह 'ख' की पदोन्नति के मामले म) को अन्तिम रूप दिए जाने के एक महीने की अवधि के भीतर सम्बन्धित मन्त्री को रिपोर्ट दी जाए और समूह 'ग' तथा 'घ' पदो पर अथवा समूह 'ग' तथा 'घ' के भीतर पदोन्नति के मामले म इस विभागाध्यक्ष को बताया जाना चाहिए और जहाँ विभागाध्यक्ष ही नियुक्ति प्राधिकारी हो वहाँ प्रशासनिक मन्त्रालय/विभागाध्यक्ष को बताया जाना चाहिए। इन अनुदेशो को पदोन्नति मे अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियो के अधिक्रमण के बारे म सुरक्षा के रूप मे स्वीकार किया गया है।

विभागीय पदोन्नति समिति/चयन बोर्ड मे अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के सदस्य—सरकार ने इस आशय के आदेश भी जारी किए है कि मन्त्रालय/विभाग अपने अधीन पदो और सेवाओ के लिए भर्ती/पदोन्नति के लिए, विशेष रूप से जहाँ बड़ी सख्या मे रिक्तियाँ अर्थात् एक ही समय मे 30 या अधिक रिक्तियो के लिए भर्ती/पदोन्नति की जानी हो वहाँ विभागीय पदोन्नति समितियो/चयन बोर्डों आदि का गठन करते समय अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के अधिकारियो को नामित करने के लिए अधिकतम सम्भव सीमा तक प्रयास करें। समूह 'ग' तथा 'घ' पदो के लिए विभागीय पदोन्नति समिति के सम्बन्ध मे यह प्रावधान किया गया है कि समिति का एक सदस्य किसी ऐसे विभाग का होना चाहिए जिसका सम्बन्ध उस विभाग से न हो जहाँ पदोन्नति के लिए विचार किया जाता है और इस तरह का बाहरी प्रतिनिधि अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के समुदाय का अधिकारी होना चाहिए और ऐसा न होने पर उसी विभाग के अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के किसी अधिकारी को विभागीय पदोन्नति समिति मे नामित किया जा सकता है। यदि किसी भी कारण से,

विभागीय पदोन्नति समिति मे नामित किए जाने के लिए बाहरी संगठन या उसी विभाग का अनुसूचित जातियो/अनुसूचित जनजातियो का कोई अधिकारी उपलब्ध न हो तो विभागीय पदोन्नति समिति की बैठक आयोजित किए जाने से पूर्व सम्बन्धित मन्त्रालय/विभाग/कार्यालय के सम्पर्क अधिकारी से इस आशय की पुष्टि करा ली जानी चाहिए कि विभागीय पदोन्नति समिति के लिए अनुसूचित जातियो/अनुसूचित जनजातियो के किसी अधिकारी को ढूंढने के लिए सभी प्रयत्न किए गए हैं लेकिन इसमे सफलता नही मिली है।

तदर्थ पदोन्नतियां—यद्यपि सामान्य स्थिति यह है कि लोकहित मे अपरिहार्य स्थितियो मे ही तदर्थ पदोन्नतियो का सहारा लिया जाए फिर भी पहले यह प्रावधान किया गया था कि जहां ऐसी तदर्थ पदोन्नतियां की जाएँ वहां पदोन्नति के क्षेत्र मे आने वाले अन्य पात्र व्यक्तियों के साथ-साथ अनुसूचित जातियो/अनुसूचित जनजातियों के पात्र अधिकारियो के दावो पर भी विधिवत् विचार किया जाना चाहिए, हालांकि ऐसी पदोन्नतियो मे अनुसूचित जातियो/अनुसूचित जनजातियो के लिए कोई औपचारिक आरक्षण नहीं होता था। अनुसूचित जातियो/अनुसूचित जनजातियो के उम्मीदवारो पर विचार करने के लिए अब विस्तृत मार्गदर्शी सिद्धान्त जारी कर दिए गए हैं। इन मार्गदर्शी सिद्धान्तो के अधीन तदर्थ पदोन्नतियो के मामले मे भी अनुसूचित जातियो/अनुसूचित जनजातियो के हितो को पर्याप्त संरक्षण प्रदान किया गया है।

आरक्षण का अग्रेनीत किया जाना—सरकार द्वारा किए गए अधिकाधिक प्रयास के बावजूद भी जब अनुसूचित जातियो/अनुसूचित जनजातियो के उम्मीदवार पर्याप्त संख्या म उपलब्ध नहीं होते हैं तो आरक्षित रिक्तियो को अनारक्षित करने की अनुमति दी जाती है ताकि अनुसूचित जातियो/अनुसूचित जनजातियो के उम्मीदवारो की कमी से अनभरी रह गई रिक्तियो के कारण सरकारी कामकाज मे कमी न आने पाए। ऐसे अनारक्षण के फलस्वरूप सामान्य वर्गों के उम्मीदवारो की नियुक्ति अनुज्ञेय है। साथ ही साथ सभी मामलो मे (समूह 'ग' से समूह 'ख' मे, समूह 'ख' के भीतर और समूह 'ख' से समूह 'क' के निम्नतर स्तर पर चयन द्वारा पदोन्नति को छोडकर) तीन अनुवर्ती भर्ती वर्षों तक* आरक्षण को अग्रेनीत करने की प्रक्रिया द्वारा अनुसूचित जातियो/अनुसूचित जनजातियो के उम्मीदवारो के हितो को संरक्षण भी प्रदान किया जाता है। जब कभी रिक्तियाँ तीन अनुवर्ती भर्ती वर्षों तक अग्रेनीत की जाती हैं तो अग्रेनीत किए जाने के तीसरे और अन्तिम वर्ष मे यह आरक्षण अनुसूचित जातियो और अनुसूचित जनजातियो के उम्मीदवारो के बीच अदला-बदली करने योग्य बन जाती हैं। चयन द्वारा पदोन्नति मे समूह 'ग' से समूह 'ख' मे समूह 'ख' के भीतर तथा समूह 'ख' से समूह 'क' के निम्नतम स्तर में चयन द्वारा पदोन्नति मे अग्रेनीत किए जाने का लाभ उपलब्ध नहीं है और अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियो के बीच एक ही वर्ष मे रिक्तियों की अदला-बदली की जा सकती है।

इस आशय के अनुदेशो को पुन दोहराया गया है कि आरक्षण, छूट तथा अन्य रियायतो के माध्यम से सिविल सेवाओ तथा पदो मे अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियो के हितो की सुरक्षा के लिए विभिन्न नियमो तथा आदेशो का कड़ाई के साथ पालन किया जाना चाहिए। इस बात पर भी जोर दिया गया था कि जानबूझ कर नियमो के उल्लघन, लापरवाही अथवा गलतियाँ किए जाने को गम्भीरता से लिया जाएगा तथा जो अधिकारी आरक्षण आदेशो का उल्लघन करें उनके विरुद्ध कार्रवाई की जानी चाहिए।

सरकारी उद्यम ब्यूरो वित्त मन्त्रालय द्वारा जारी किए राष्ट्रपति के निदेशो के अनुसार आरक्षण की योजना को सरकारी क्षेत्र के उपक्रमो मे भी लागू किया गया है। मन्त्रालयो/विभागो से कहा गया है कि वे उन शर्तों मे आरक्षण के लिए एक उपयुक्त प्रावधान सम्मिलित कर लें जिनके अधीन उनके नियन्त्रणाधीन स्वैच्छिक अभिकरणो को सहायता अनुदान दिया जाता है।

• सरकार ने एक आधारिक सचरना बनाई है जिसमे रोस्टर सम्पर्क अधिकारी विशेष एकक जैसे विभिन्न तत्त्व सम्मिलित हैं जो अनुसूचित जातियो तथा अनुसूचित जनजातियो के लिए किए गए आरक्षणो छूट तथा अन्य रियायतो को सरक्षण प्रदान करते हैं "जो सभी केन्द्रीय सेवाओ म अनुसूचित जातियो तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण सम्बन्धी विवरणिका" छठा सस्करण मे सकलित किए गए हैं। इस विवरणिका को और अधिक सूचनात्मक तथा उपयोगी बनाने के लिए इसे पूर्णत सशोधित कर दिया गया है। अनुसूचित जातियो/अनुसूचित जनजातियो के आयुक्त, अनुसूचित जातियो/अनुसूचित जनजातियो सम्बन्धी आयोग, अनुसूचित जातियो अनुसूचित जनजातियों की कल्याण सम्बन्धी ससदीय समिति जैसे सस्थागत सरक्षण भी विद्यमान हैं जो अनुसूचित जातियो/अनुसूचित जनजातियो के लिए आरक्षण से सम्बन्धित सरकारी नीतियों तथा कार्यक्रमो के कारगर ढग से लागू करने पर लगातार नजर रखते हैं। वे सरकार को नई नीतियाँ बनाने के सम्बन्ध मे भी सलाह देते हैं।

जैसा कि नीचे दिए आँकड़ो से देखा जाएगा 1-1-1965 से 1-1-1982 के दौरान अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियो की सम्पूर्ण सख्या मे तथा केन्द्रीय सेवाओं के सभी वर्गों (श्रेणियो) मे कर्मचारियों की कुल सख्या म उनके प्रतिनिधित्व की प्रतिशतता मे निरन्तर वृद्धि होती रही है—

समूह	कर्मचारियों की कुल संख्या	अनुसूचित जाति	प्रतिशतता	अनुसूचित जनजाति	प्रतिशतता
1	2	3	4	5	6
		1-1-1965 की स्थिति			
क (श्रेणी I)	19,379	318	1 64	52	0 27
ख (श्रेणी II)	30,621	864	2 82	103	0 34
ग (श्रेणी III)	10,82,278	96,114	8 88	12,390	1 14
घ (श्रेणी IV) (सफाई वालों को छोड़कर)	11,32,517	2,01 073	17.75	38,444	3 39
कुल	22,64,795	2 98,369	13.17	50,989	2 25
		1-1-1975 की स्थिति			
क (श्रेणी I)	35,061	1,201	3 43	218	0 62
ख (श्रेणी II)	54,129	2,695	4 98	322	0 59
ग (श्रेणी III)	16,25,826	1,74,119	10 71	36,893	2 27
घ (श्रेणी IV) (सफाई वालों को छोड़कर)	12,38,818	2,30,864	18 64	49,464	3 99
कुल	29,53 834	4 08 879	13 84	86,897	2 94
1	2	3	4	5	6
		1-1-1982 की स्थिति			
क (श्रेणी I)	54,265	2,980	5 49	633	1.17
ख (श्रेणी II)	66,221	5,970	9 02	947	1 43
ग (श्रेणी III)	19,09,805	2,55,730	13 39	66,278	3.47
घ (श्रेणी IV) (सफाई वालों को छोड़कर)	10,94,569	2,56,261	23 41	81,496	7.45
कुल	31,24,860	5,20,941	16 67	1,49,354	4.78

1-1-1982 को समूह 'घ' में उनका प्रतिनिधित्व 23 41% था। समूह 'ग' में भी उनका प्रतिनिधित्व आरक्षण की अखिल भारतीय प्रतिशतता जो 13 39% है, से बहुत नीचे नहीं है। समूह 'क' तथा 'ख' सेवाओं में प्रतिशतता की दृष्टि से अनुसूचित जातियों के घटक अभी वांछित स्तर से नीचे ही हैं, तो भी यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि 1-1-1965 की तुलना में, इन समुदायों की वास्तविक संख्या में 6 से 9 गुणा तक की वृद्धि हो गई है।

वर्ष 1965 से 1982 के दौरान अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के प्रतिनिधित्व में वास्तविक संख्या में और प्रतिशतता में—दोनों ही दृष्टियों में वृद्धि हुई है। अग्रलिखित सारणी से यह तथ्य स्वत: स्पष्ट हो जाता है—

समूह	अनुसूचित जाति		संख्या में वृद्धि		अनुसूचित जनजाति		संख्या में वृद्धि	
	1965 में	1982 में	वास्तविक वृद्धि	प्रतिशतता	1965 में	1982 में	वास्तविक वृद्धि	प्रतिशतता
क	318	2980	2662	837 10	52	633	581	1117 31
ख	864	5970	510	590 97	103	947	844	819 42
ग	96114	255664	159550	166 00	12390	66278	53888	434 93
घ	201073	256261	55188	27 45	38444	81496	43052	111 99
कुल	298369	520875	222500	74 57	50989	149354	98365	192 91

हालांकि समूह 'क' में 1-1-1982 की स्थिति के अनुसार अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों का प्रतिनिधित्व क्रमश: 5 49 प्रतिशत तथा 1 17% है, फिर भी यह ध्यान देने योग्य है कि भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा में उनका प्रतिनिधित्व काफी अच्छा है। भारतीय प्रशासनिक सेवा में अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व 9 5% से और अनुसूचित जनजातियों का प्रतिनिधित्व 4% से अधिक है। भारतीय पुलिस सेवा में अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व 10 प्रतिशत से और अनुसूचित जनजातियों का प्रतिनिधित्व 3 प्रतिशत से भी अधिक रहा है। उनके सम्बन्ध में आंकड़े नीचे दी गई सारणी में दिए गए हैं—

कुल अधिकारियों की संख्या	अनुसूचित जाति	प्रतिशत	अनुसूचित जनजाति	प्रतिशत
	1-1 1983 की स्थिति के अनुसार			
	भारतीय प्रशासनिक सेवा			
4236	404	9 54	181	4 27
	भारतीय पुलिस सेवा			
2198	230	10.46	77	3 50

इन तीनों अखिल भारतीय सेवाओं में भर्ती की वर्तमान प्रवृत्ति यह भी प्रकट करती है कि अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित करीब करीब सभी रिक्तियाँ अब इन समुदायों से सम्बन्धित उम्मीदवारों से भरी जाती हैं—

वर्ष	भरी गई रिक्तियों की संख्या	आरक्षित की जाने वाली अपेक्षित संख्या		वास्तविक रूप से भरी गई संख्या	
		अनुसूचित जाति	अनुसूचित जनजाति	अनुसूचित जाति	अनुसूचित जनजाति
1	2	3	4	5	6
		भारतीय प्रशासनिक सेवा			
1979	122	18	10	18	10
1980	126	19	9	19	9
1981	128	19	10	18	9
1982	145	22	11	22	11
1983	156	24	11	21	11
		भारतीय पुलिस सेवा			
1979	54	8	4	9	4
1980	51	9	4	6	4
1981	64	11	5	10	4
1982	64	11	6	10	6
1983	80	11	6	10	6
		भारतीय वन सेवा			
1979	87	12	7	12	7
1980	91	15	8	15	8
1981	93	15	8	15	8
1982	109	18	9	18	9
1983	120	18	9	17	8

भारत में भर्ती की समस्याएँ और सुधार के सुझाव
(Problems of Recruitment in India and Suggestions for Improvement)

भारत में लोकसेवकों की भर्ती के लिए जो तरीके प्रचलित हैं, विभिन्न क्षेत्रों में उनकी मुख्यत निम्नलिखित आलोचनाएँ की गई हैं—

1 मौखिक साक्षात्कार की जो पद्धति प्रचलित है, उसके तीन प्रधान दोष गिनाए गए हैं—

(क) यह पद्धति मनमानी (Arbitrary) है, क्योंकि मौखिक परीक्षा के अंक (I. A S के लिए 300, I F S के लिए 400, अन्य केन्द्रीय सेवाओं के लिए 200) पूर्णतया आयोग के सदस्यों की इच्छा पर निर्भर होते हैं। इस पद्धति द्वारा प्रत्याशी के व्यक्तित्व की वस्तुनिष्ठ अथवा व्यक्ति निरपेक्ष जाँच (Objective Test) नहीं की जा सकती। 20 या 30 मिनट में समाप्त हो जाने वाले साक्षात्कार में *वैयक्तिक गुणों की जाँच किस प्रकार से हो सकती है ?*

(ख) एक प्रत्याशी को उच्च सिविल सेवा के लिए प्रतियोगिता करने के तीन अवसर प्राप्त होते हैं। प्राय ऐसा होता है कि अपने प्रथम वर्ष के साक्षात्कार में एक प्रत्याशी को 30 अथवा 40 अंक प्राप्त होते हैं, किन्तु दूसरे या तीसरे वर्ष में वही प्रत्याशी 100 या 200 अंक प्राप्त कर लेता है। प्रश्न यह पैदा होता है कि एक या दो वर्ष की संक्षिप्त अवधि में उस प्रत्याशी के व्यक्तित्व में किस प्रकार इतनी तीव्र गति से सुधार हो गया ?

(ग) मौखिक साक्षात्कार के समय चुनाव-मण्डल (Selection Board) के सदस्यों का व्यवहार कुछ ऐसा होता है कि उनमें प्रत्याशी (Candidate) घबरा जाता है। सदस्य प्रत्याशी को जरा भी प्रोत्साहित नहीं करते और प्रत्याशियों के व्यक्तित्व (Personality) की जाँच आयोग के सदस्यों की आत्मनिष्ठा अथवा व्यक्ति सापेक्ष भावनाओं (Subjective feelings) के आधार पर ही की जाती है। भा प्र से (I A S), भा वि से (I F S.), भा पु से (I P S) व *भा ले तथा ले सेवा (I A and A. S)*, आदि उच्च सिविल सेवाओं में भर्ती की इस पद्धति के इस दोष का उल्लेख ए डी गोरवाला ने भी किया था। उन्होंने कहा है कि "यह अत्यन्त आवश्यक है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं की महत्ता अनुभव की जाए और शनै-शनै वे मौखिक परीक्षाओं का स्थान ले लें। अपरिचित प्रत्याशियों के साथ होने वाली पन्द्रह मिनट की बातचीत यद्यपि लोकसेवा आयुक्तों के व्यापक अनुभव से सम्बद्ध होती है तथापि यह उस कुशल मनोवैज्ञानिक परीक्षा का स्थान नहीं ले सकती जिसका उद्देश्य प्रत्याशी के मानसिक गुणों तथा भावनात्मक रूपों पर एक वैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि डालना है"।"

2 परीक्षा के तरीके अद्यतन नहीं हैं। प्रशासनिक योग्यताओं की जानकारी के तरीके पूर्णत सन्तोषजनक नहीं हैं। विषयों द्वारा परीक्षा प्रणाली अकादमिक है, प्रशासनिक नहीं है।

3 भर्ती का विज्ञापनी तरीका अधिक आकर्षक नहीं है। रिक्त स्थानों के विज्ञापन सीधे शब्दो मे केवल सूचना मात्र होते हैं। वे कुशल विज्ञापनबाजो अथवा जन-सम्पर्क के व्यक्तियो द्वारा नही लिखे जाते।

4 सभी पदो पर लोकसेवा आयोग द्वारा नियुक्ति नहीं की जाती। सरकार कुछ पदों को आयोग के क्षेत्राधिकार से बाहर रख सकती है, अत सम्भावना बनी रहती है कि सरकार की शक्ति का दुरुपयोग करते हुए नियुक्ति करने वाला अधिकारी कुछ उम्मीदवारो का अनुचित पक्षपात करे।

5 आयोग द्वारा विभिन्न पदो पर आवश्यक न्यूनतम योग्यताएँ कम रखी जाती हैं। फलस्वरूप हजारो उम्मीदवार प्रार्थी बन जाते हैं। उनके समय और शक्ति का अपव्यय होता है।

6 आयोग की सिफारिशें बाध्यकारी नहीं होतीं। सरकार यद्यपि उनको प्राय· मान्यता देती है तथा कदाचित् ही अस्वीकार करती है, किन्तु ऐसे भी पर्याप्त उदाहरण हैं जबकि सरकार ने आयोग की सिफारिश को ठुकरा दिया।

7 कुछ पद विशेष व्यक्तियो के लिए बनाए जाते हैं। उनके सम्बन्ध मे आयोग पर यह आरोप लगाया जाता है कि वह विशेष पद के लिए योग्य व्यक्ति तलाश करने की अपेक्षा व्यक्ति विशेष के लिए पद तलाश करता है।

8 कुछ पद जिनके लिए तकनीकी योग्यता आवश्यक होती है, रिक्त ही रह जाते हैं क्योंकि योग्य उम्मीदवार नही मिल पाते।

9 लिखित परीक्षण-नीति के गम्भीर दोष की ओर सकेत करते हुए गोरवाला ने लिखा है कि—"ये शिकायतें बहुधा की जाती हैं कि ऐच्छिक विषयो के लिए बनाए गए पत्रो का स्तर नीचा होता है और शिक्षण काल मे उन विषयो का अध्ययन करने वाले उम्मीदवारो को उनका अनुचित लाभ मिलता है।" कभी-कभी ऐसा होना अपरिहार्य है किन्तु जहाँ तक सम्भव हो परीक्षा मे पर्चे ऐसे आने चाहिए कि सभी को यथासम्भव समान अवसर प्राप्त हो।

चुनाव पद्धति की सामान्य अनुपयुक्तता पर टिप्पणी करते हुए पॉल एपलबी ने विशेष रूप से कहा है कि "जिस मानदण्ड को लेकर लोकसेवा आयोग कर्मचारी वर्ग का चयन करते हैं वह उपयुक्त नही है और परीक्षा लेने का ढग तथा मूल्यांकन करने की तकनीकें आधुनिक नहीं हैं। चयन प्राय एक विशेष प्रकार के लोगों द्वारा किया जाता है जो स्वभावतः अपने विशेष प्रकार को यथावत् रखना चाहते हैं। विद्योचित अभिलेखो तथा अनुभवी परीक्षकों के मूल्यांकनों के रूप मे ही चुनाव अधिक होता है और लोक प्रशासन मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बहुत सी अन्य पहलुओ की दृष्टि से तो बहुत ही कम।""अन्य बातो पर तो चयन में नही के बराबर ही ध्यान दिया जाता है, सबसे अधिक ध्यान आरम्पूरक एव आकस्मिक विकास की क्षमता की ओर दिया जाता है।"[1]

1 अवस्थी एवं माहेश्वरी : वही, पृष्ठ 358.

सुधार के सुझाव

1 साक्षात्कार पद्धति को व्यावहारिक रूप से उपयोगी बनाने के लिए प्रो फाइनर द्वारा बनाए गए निम्नलिखित सिद्धान्तों को अपनाया जाना उचित है—

(अ) साक्षात्कार की अवधि आधा घण्टा होनी चाहिए।

(आ) साक्षात्कार के समय पूर्णतया प्रत्याशी की शैक्षणिक रुचि के ऐसे विषयों पर वाद-विवाद होना चाहिए जो कि उसके परीक्षा पाठ्यक्रम में उल्लिखित हो।

(इ) साक्षात्कार को एक अनुपूरक परीक्षा (Supplementary Test) बनाया जाना चाहिए, चुनाव करने की एक निर्णायक (Decisive) परीक्षा नहीं।

(ई) साक्षात्कार मण्डल में एक व्यावसायिक प्रशासक तथा एक विश्वविद्यालय का प्रशासक होना चाहिए।

(उ) साक्षात्कार लिखित परीक्षा से पहले नहीं, बल्कि बाद में होना चाहिए।

(ऊ) जब तक कि साक्षात्कार का निर्णय न हो जाए तथा अंक न दिए जाएँ तब तक विश्वविद्यालय के शिक्षकों की रिपोर्ट पर विचार नहीं किया जाना चाहिए।

(ए) चूँकि साक्षात्कारों में अभी तक स्वेच्छाचारिता पाई जाती है, अतः इसको सीमित करने के लिए साक्षात्कार के अंकों की संख्या 300 से घटाकर 150 कर देनी चाहिए।

2 बुद्धि और कार्यकौशल परीक्षाएँ प्रत्याशियों की क्षमता एवं योग्यता का पता लगाने के लिए की जाती हैं। प्रयत्न यह होना चाहिए कि इन परीक्षाओं में से भावात्मक तत्त्व (Subjective element) को समाप्त किया जा सके। ऐसे प्रत्येक उपाय को अपना लेना चाहिए जो कि व्यक्ति-निरपेक्ष भाव से प्रत्याशियों की योग्यताओं का निर्धारण कर सकें। जब भी कोई दोष प्रकाश में आए तभी इन परीक्षाओं पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए और इसके अतिरिक्त किसी भी परीक्षा को निर्णायक नहीं माना जाना चाहिए, क्योंकि कोई भी परीक्षा पूर्णतया वैज्ञानिक, विश्वस्त, प्रामाणिक तथा मूर्ख-प्रूफ (Fool proof) नहीं होती।[1]

3 गोरवाला के अनुसार, "परीक्षा में ऐसे पर्चे आने चाहिएँ जो उम्मीदवारों के लिए समान होते हों और प्रश्न-पत्रों में वर्तमान की अपेक्षा पाठ्यक्रम के सामान्य भाग में से प्रश्न अधिक अनुपात में आने चाहिएँ जिससे सापेक्ष गुणों का उचित एवं ठीक-ठाक मूल्यांकन किया जा सके।"[2]

1 आर्येन्द्र शर्मा ठाकुर : वही, पृष्ठ 315-316.
2 डी. पी. शास्त्री : वही, पृष्ठ 434-35.

4 योग्यताम्रो के निर्धारण के लिए लोकसेवा आयोग मे ऐसे सदस्य नियुक्त किए जाने चाहिएँ जिनका व्यक्तित्व बहुत ऊँचे दर्जे का हो और जो राजनीतिक दलबन्दी के शिकार न हो सकें।

5 भर्ती अथवा नियुक्ति मे 'योग्यता के सिद्धान्त' को सर्वोपरि महत्त्व दिया जाना चाहिए। राजकीय सेवा मे दक्षता के लिए यह आवश्यक है कि नियुक्तियाँ क्षमता पर आधारित हों। कम खर्ची और दक्षता के उद्देश्य की पूर्ति तभी सम्भव है जब राजकीय सेवाओ को 'स्पॉयल्स' (Spoils) के कुप्रभावो से निकाल कर ऐसे व्यक्तियो से सगठित किया जाए जो उस क्षेत्र म सबसे अच्छे हो, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि नियुक्ति के ऐसे माध्यम खोजे जाएँ और उन पर अमल किया जाए जिनसे केवल उपयुक्त व्यक्ति ही नियुक्त हो सकें, तथा उन प्रभावो को रोका जा सके जो क्षमता के महत्त्व को गौण सिद्ध करके नियुक्ति को अन्य प्रकार से करते हैं। क्षमता के तर्क मे दो बातें निहित हैं—(1) प्रतियोगिताओं के आधार पर केवल योग्य व्यक्ति ही चुने जाएँ (2) किसी भी प्रकार से योग्यता के अभाव मे नियुक्तियाँ न हो, ताकि राजकीय सेवा मे दक्ष और बुद्धिमान व्यक्ति ही रहें।[1] योग्यता का सिद्धान्त' के प्रभावो को हम इस प्रकार रख सकते हैं—लोकसेवाओ मे नियुक्ति का आधार प्रतियोगिता होगी—यह प्रतियोगिता परीक्षा के रूप मे यह निश्चित करेगी कि कौन व्यक्ति अधिक योग्यता रखता है—इस प्रतियोगिता मे निम्नतम शैक्षणिक योग्यता के आधार पर सभी नागरिको को भाग लेने का अधिकार रहेगा। इस प्रकार की परीक्षाओ म दक्षता और निष्पक्षता रखने के लिए एक स्वतन्त्र सस्था—लोकसेवा आयोग आदि के द्वारा ही प्रतियोगिता आदि सगठित की जाएँगी, लोकसेवा आयोग परीक्षा के परिणामो के आधार पर नियुक्ति की सिफारिश करेगा—नियुक्ति के उपरान्त, कार्यकाल, वेतन, सहूलियतें तथा पदोन्नति एव पदमुक्ति आदि का आधार लोकसेवा के अधिनियम करेंगे। इस प्रकार से नियुक्त व्यक्ति अपनी सफलता के लिए किसी के प्रति कृतज्ञ नही होगा और इसी कारण वह अपने कार्यों मे अधिक स्वतन्त्र व्यवहार रख सकेगा, वह यह अनुभव करेगा कि उसकी नियुक्ति का आधार उसकी अपनी योग्यता ही है।

6 कुछ क्षेत्रों मे यह सुझाव भी दिया गया है कि सरकारी रोजगार को विश्वविद्यालय की उपाधि से असम्बद्ध कर दिया जाए। भारतीय प्रशासन सेवा के प्रत्याशियो को स्कूली शिक्षा के बाद नौकरशाही प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। सेवीवर्ग प्रशासन विभाग के एक भूतपूर्व राज्य मन्त्री ओम मेहता द्वारा प्रस्तावित योजना के अनुसार केन्द्रीय तथा राज्य प्रशासन सेवाओ के प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी के अधिकारी विशेष रूप से निर्मित सस्थानो मे प्रशिक्षित किए जाने चाहिए। हायर सैकण्डरी स्तर पर अखिल भारतीय प्रतियोगिता द्वारा आई ए एस के प्रत्याशियो का चयन कर लिया जाए तथा इनको चार या पाँच वर्ष के लिए एक अकादमी मे

1 वही, पृष्ठ 436.

रखा जाए। इस अकादमी का व्यापक रूप ठीक वैसा रखा जाएगा जैसा कि खड़गवासला स्थित सैनिक अकादमी का है। इस व्यवस्था के फलस्वरूप एक ओर तो विश्वविद्यालयी शिक्षा के लिए एकत्रित भीड़ कम हो जाएगी तथा दूसरी ओर विश्वविद्यालय वास्तव में उच्च शिक्षा के केन्द्र बन सकेंगे।

7 लोकसेवाओं के लिए आयोजित प्रतियोगी परीक्षाएँ मुख्य रूप से सामाजिक विज्ञानों में ली जानी चाहिए। यदि योग्य और प्रतिभाशाली प्रत्याशियों को लेने की वजह से यह न भी किया जा सके तो कम से कम प्रशिक्षण के समय तो अवश्य ही प्रत्याशी को विभिन्न सामाजिक विज्ञानों का गम्भीर अध्ययन कराना चाहिए।

8 भारतीय प्रशासन सेवा के उच्च ग्रेडस के लिए अधिक आयु के प्रत्याशियों में से भी नियमित रूप से भर्ती की जानी चाहिए ताकि शैक्षणिक एवं औद्योगिक क्षेत्र के प्रतिभासम्पन्न लोगों की सेवाएँ प्राप्त की जा सकें।

9 वर्तमान परीक्षा प्रणाली के अन्तर्गत प्रायः अंग्रेजी स्कूलों में पढ़े विद्यार्थी ही सफल हो पाते हैं तथा देहाती प्रत्याशियों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिल पाता। प्रशासन को देहाती सम्मान देने के लिए यह आवश्यक है कि परीक्षा में एक प्रश्न-पत्र ऐसा रखा जाए जो देहाती इलाकों के ज्ञान से सम्बन्धित हो। साक्षात्कार के समय भी देहाती प्रत्याशी को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। चयन के बाद भी प्रत्याशी को एक वर्ष तक देहाती जीवन का ज्ञान कराया जाए।

संविधीय निकायों के लिए भर्तियाँ
(Recruitments for Statutory Bodies)

राज्य एवं संघीय लोकसेवा आयोग न केवल सरकारी विभागों के लिए वरन् अन्य संविधीय निकायों के लिए भी कर्मचारियों की भर्ती करते हैं। 1974-75 में संघीय लोकसेवा आयोग ने ऐसे निकायों जैसे दिल्ली नगर निगम, कर्मचारी राज्य बीमा निगम, कर्मचारी भविष्य निधि संगठन आदि के लिए 986 पदों पर द्वारा होता है। राजस्थान प्रशासनिक सेवा, पुलिस सेवा, लेखा सेवा आदि में नियुक्तियाँ प्रशासनिक सेवा की भाँति ही होती हैं। राजस्थान लोकसेवा आयोग द्वारा इन पदों पर भर्ती के लिए प्रतियोगी परीक्षाएँ आयोजित की जाती हैं। अनुसूचित जाति एवं जनजाति के प्रत्याशियों को आयु में अधिकतम छूट पाँच वर्ष की दी जाती है। प्रत्याशी की शैक्षणिक योग्यता कला, विज्ञान, वाणिज्य अथवा कृषि में स्नातक की उपाधि होनी चाहिए। प्रतियोगी परीक्षा म चार अनिवार्य विषय—हिन्दी, अंग्रेजी, सामान्य ज्ञान तथा प्रतिदिन का विज्ञान और मौखिक परीक्षा होती है। इसके अतिरिक्त 33 विषयों की सूची में से उसे 5 ऐच्छिक विषयों का चयन करना होता है। प्रतियोगी परीक्षाओं के बाद योग्यता सूची म आने वाले प्रत्याशियों के लिए हरिश्चन्द्र माथुर संस्थान, जयपुर में एक वर्ष का प्रशिक्षण दिया जाता है। तत्पश्चात् वे क्षेत्रीय प्रशिक्षण के लिए भेज दिए जाते हैं।

अधीनस्थ सेवाओं तथा लिपिकवर्गीय सेवाओं में नियुक्तियाँ लिखित एवं साक्षात्कार के आधार पर की जाती हैं। 1 सितम्बर, 1984 से राजस्थान में इन सेवाओं में प्रवेश की आयु 16 से 33 वर्ष तक है। राज्य सरकार जहाँ चाहे वहाँ आयु सम्बन्धी छूट प्रदान कर सकती है। सभी श्रेणियों की सेवाओं में पदोन्नति द्वारा नियुक्ति की व्यवस्था की जाती है। पदोन्नति का आधार प्रशन- योग्यता एवं प्रशन वरिष्ठता है। वरिष्ठ लिपिक से ऊपर के पद पर की जाने वाली पदोन्नतियाँ विशुद्ध रूप से योग्यता के आधार पर की जाती हैं। कर्मचारी की सेवा का पिछला रिकार्ड देखने के बाद उसकी पदोन्नति का निर्णय विभागीय पदोन्नति समिति द्वारा लिया जाता है जिसकी अध्यक्षता राजस्थान लोकसेवा आयोग के अध्यक्ष अथवा किसी सदस्य द्वारा की जाती है। जब किसी राज्य कर्मचारी की पदोन्नति भारतीय प्रशासनिक सेवा में की जाती है तो पदोन्नति समिति का सभापतित्व सघीय लोकसेवा आयोग के अध्यक्ष अथवा अन्य किसी सदस्य द्वारा किया जाता है। पदोन्नति द्वारा भर्ती का नियतांश विभिन्न सेवाओं में अलग-अलग रहता है।

ग्रेट ब्रिटेन में सेवीवर्ग की भर्ती
(Recruitment of Personnel in Great Britain)

भारत में लोकसेवाओं की भर्ती का तरीका ब्रिटिश लोकसेवाओं में भर्ती के तरीके से पर्याप्त प्रभावित है क्योंकि पूर्ववर्ती ने परवर्ती से विरासत के रूप में बहुत कुछ लिया है। ग्रेट ब्रिटेन की लोकसेवाओं में भर्ती के तरीके का सक्षिप्त विवेचन निम्न प्रकार किया जा सकता है—

भर्तीकर्त्ता अभिकरण
(Recruiting Agency)

ग्रेट ब्रिटेन में स्थायी सरकारी पदों पर नियुक्ति एवं प्रमाणीकरण का कार्य लोकसेवा आयोग द्वारा सम्पन्न किया जाता है। आयोग की स्थापना 31 मई, 1855 को की गई थी और बहुत समय तक यह एक स्वतन्त्र सस्था के रूप में कार्य करता रहा। 1968 से यह लोकसेवा विभाग का एक भाग बना दिया गया है। अब यह स्थायी एवं अस्थायी कर्मचारियों की नियुक्ति, प्रशिक्षण तथा व्यावसायिक विकास सम्बन्धी नीतियों से निकट सम्बन्ध रखता है। प्रारम्भ में इसमें तीन सदस्य थे किन्तु अब इसमें 6 सदस्य हैं। आयोग के सदस्य अपने कार्यों का सचालन स्वतन्त्रतापूर्वक कर सकें इसलिए उनकी नियुक्ति सीधे ताज द्वारा की जाती है तथा उसी के प्रसाद पर्यन्त ये अपने पद पर बने रहते हैं। आयोग का प्रथम आयुक्त इसका अध्यक्ष तथा लोकसेवा विभाग का उपसचिव होता है। यह भर्ती नीति के निर्धारण एवं नियोजन के लिए उत्तरदायी है। आयोग का द्वितीय आयुक्त लोकसेवा चयन मण्डल के अध्यक्ष, भर्ती के निदेशक तथा वैज्ञानिक एवं तकनीकी परामर्शदाता के रूप में प्रथम आयुक्त की सहायता करता है। आयोग के पाँच सम्भाग (Divisions) हैं।[1]

1 These are the Executive and Clerical division, Administrative division, the General competition division, the Science division and the Technology division.

प्रत्येक सम्भाग में अनेक सेवा उपवर्ग हैं जो विशेष क्षेत्रों में भर्ती सम्बन्धी समस्त प्रक्रिया के लिए प्रारम्भ से अन्त तक उत्तरदायी होते हैं। इसमें एक शोध सम्भाग (Research Division) भी है जो भर्ती के क्षेत्रों में उठने वाली समस्याओं की जाँच करता है। आयोग की वर्तमान सत्ता का आधार 3 अगस्त, 1956 का लोकसेवा सम्बन्धी मन्त्रिपद् आदेश है जिसमें यह कहा गया है कि स्थायी नियुक्ति से पूर्व प्रत्येक प्रत्याशी की योग्यताएँ आयोग द्वारा जाँची जाएँगी तथा किसी व्यक्ति को तब तक सरकारी पद पर नियुक्त नहीं किया जाएगा जब तक कि आयोग द्वारा उसे योग्यता का प्रमाण पत्र नहीं दिया जाता। ताज द्वारा प्रत्यक्ष रूप से नियुक्त अथवा संसद् द्वारा इस शर्त से उन्मुक्त पदाधिकारियों पर यह नियम लागू नहीं होगा।

विशुद्ध रूप से अस्थायी पदों पर, जिनकी संख्या काफी है, भर्ती का कार्य नियुक्तिकर्त्ता विभाग द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है तथा इससे लोकसेवा आयोग का सम्बन्ध नहीं रहता। लिपिक पद के प्रत्याशियों की भर्ती भी विभागों द्वारा कर ली जाती है। यहाँ लोकसेवा आयोग केवल परामर्शदाता के रूप में कार्य करता है तथा प्रत्याशियों को आवश्यक योग्यता प्रमाण-पत्र जारी करता है। सन्देशवाहकों, क्लीनरों तथा ऐसे ही अन्य अधीनस्थ पदों पर नियुक्तियाँ सम्बन्धित विभागों द्वारा की जाती हैं तथा एक निश्चित समय तक सतोषजनक सेवा के बाद उनकी स्थायी नियुक्ति के प्रश्न पर आयोग द्वारा विचार किया जाता है।[1]

लोकसेवा आयोग द्वारा लोकसेवा के रिक्त पदों का समाचार-पत्रों में विज्ञापन दिया जाता है। इसके अलावा व्यावसायिक पुस्तिकाओं, प्रदर्शनियों आदि के माध्यम से भी सम्भावित प्रत्याशियों को रिक्त पदों की सूचना दी जाती है। आयोग लिखित परीक्षाएँ तथा साक्षात्कार आयोजित करता है। यह प्रत्याशी के स्वास्थ्य एवं चरित्र आदि की आवश्यक जाँच करने के बाद ऐसे प्रमाण-पत्र जारी करता है जो प्रत्याशी को स्थायी नियुक्ति के योग्य साबित करें। जब एक विशेष प्रकार की नियुक्तियाँ कई विभागों में एक साथ की जाती हैं तो सफल प्रत्याशियों को छाँटने का कार्य आयोग द्वारा ही किया जाता है। कुछ वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रशासनिक पदों पर नियुक्त होने वाले अधिकारियों के परिवीक्षा काल में भी यह सम्बन्ध रखता है।

प्रत्याशियों की योग्यताएँ
(Qualifications of the Candidates)

ब्रिटिश लोकसेवा में प्रवेश के लिए आवश्यक योग्यताएँ सेवा की श्रेणी के अनुसार अलग अलग हैं। यहाँ लोकसेवा की तीन प्रमुख श्रेणियाँ हैं—प्रशासनिक श्रेणी (Administrative Class), अधिशासी श्रेणी (Executive Class) तथा लिपिकीय श्रेणी (Clerical Class)। ग्रेट-ब्रिटेन में लोकसेवाओं की भर्ती व्यवस्था

1 The British Civil Service, Reference Division, the Central Office of the Information, London, Jan 71, p 16.

की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि विभिन्न श्रेणियों में प्रत्याशियों के प्रवेश को शिक्षा व्यवस्था के विभिन्न स्तरों के समरूप बनाया गया है। तदनुसार प्रशासनिक श्रेणी में विश्वविद्यालय के स्नातक, अधिशासी श्रेणी में माध्यमिक शिक्षा प्राप्त तथा निम्नतर श्रेणियों में प्राथमिक विद्यालय की शिक्षा पर्याप्त मानी जाती है। लोकसेवा आयोग का यह देखने का दायित्व है कि किसी विशेष पद का प्रत्याशी उस पद के लिए निर्धारित योग्यताएँ रखता है अथवा नहीं।

आयु की दृष्टि से ब्रिटिश लोकसेवा की तीनों श्रेणियों की स्थिति इस प्रकार है—प्रशासनिक श्रेणी के लिए 20 से 28 वर्ष, अधिशासी श्रेणी के लिए 17½ से 28 वर्ष तथा लिपिकीय श्रेणी के लिए 15 से 20 वर्ष, 20 से 40 वर्ष तथा 40 से 59 वर्ष है। नियमित सेनाओं में तथा सम्राट् की समुद्रपारीय लोकसेवाओं में कार्य करने वालों को आयु सम्बन्धी विशेष छूट दी जाती है। इस प्रकार साधारणत ब्रिटिश लोकसेवा के लिए आयु सीमा 15 से 59 वर्ष की है। किन्तु व्यवहार में प्रायः स्कूल से निकलने वाले प्रत्याशियों को प्राथमिकता दी जाती है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी पदों के लिए भी अलग-अलग आयु सीमा निर्धारित की गई है।

ग्रेट-ब्रिटेन की लोकसेवा का सदस्य बनने के लिए वहाँ का नागरिक होना भी आवश्यक है। लोकसेवा आयोग द्वारा यह देखा जाता है कि प्रत्याशी एक ब्रिटिश प्रजा हो अथवा एक ब्रिटिश संरक्षित व्यक्ति (British Protected Person) हो अथवा आयरिश गणराज्य का नागरिक हो। इसके अतिरिक्त वह जन्मजात नागरिक होना चाहिए अथवा उसके माता-पिता में से एक को जन्मजात नागरिक होना चाहिए। यदि वह इस जन्मजात नागरिक होने की शर्त को पूरा न करता हो तो उसे पिछले पाँच वर्षों से किसी राष्ट्रमण्डलीय देश का निवासी अथवा कर्मचारी होना चाहिए। अस्थायी पदों पर नियुक्तियाँ अधिक स्वतन्त्रतापूर्वक की जा सकती हैं बशर्ते कि कोई उपयुक्त स्थानीय प्रत्याशी प्राप्त न हो।

लिंग की दृष्टि से उल्लेखनीय है कि ग्रेट-ब्रिटेन में महिलाओं को प्रायः उच्च पदों के अयोग्य समझा जाता रहा है।[1] उनकी नियुक्ति प्रायः लिपिक और विशेषत टंकणकर्ता एवं प्राइवेट सैक्रेटरी के रूप में ही हुआ करती थी। व्यावहारिक जटिलताओं के कारण प्रायः विवाहित महिलाओं को सरकारी सेवा के अयोग्य माना जाता था। अक्तूबर, 1946 में शादी सम्बन्धी प्रतिबन्ध को हटा लिया गया क्योंकि रूटीन कार्य के लिए युवा अविवाहित लड़कियाँ पर्याप्त नहीं मिल पाती थी। अब महिलाओं को भी पुरुषों के समान वेतन देने की व्यवस्था की गई है। फलतः महिलाएँ लोकसेवाओं की ओर अधिक आकर्षित होने लगी हैं।[2]

ब्रिटिश लोकसेवाओं में प्रवेश के लिए एक अन्य आवश्यक योग्यता यह मानी जाती है कि प्रत्याशी में ऐसा कोई शारीरिक दोष अथवा बीमारी नहीं होनी चाहिए जो उसके पद के दायित्वों के निर्वाह में बाधक बने। लोकसेवा आयोग द्वारा किसी

1 प्रशासनिक श्रेणी के पद महिलाओं के लिए पुरुषों के समान शर्तों पर 1925 में खुले हैं।
2 E N Gladden op cit., p 68

स्थायी तथा पेन्शन योग्य पद पर तभी नियुक्ति की जा सकती है। इस पूर्व आवश्यकता के अभाव में केवल अस्थायी रूप से बिना पेन्शन के अधिकार एवं बीमारी अवकाश की सुविधा के नियुक्ति की जा सकती है।

प्रत्याशी के राजनीतिक अभिमत को प्राय लोकसेवाओं में प्रवेश के लिए बाधक नहीं माना जाता किन्तु राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से कुछ विशेष पदों पर विशेष प्रकार का अभिमत रखने वालों को नियुक्त नहीं किया जाता।

सेवीवर्ग के लिए प्रवेश-परीक्षाएँ
(Entrance Tests for Personnel)

1938 से पूर्व ग्रेट-ब्रिटेन में लोकसेवाओं की प्रवेश परीक्षाएँ पर्याप्त सीधी और सरल थी किन्तु आज इनका रूप एवं प्रक्रिया जटिल बन गई है। यह प्रक्रिया अभी तक परिवर्तन के दौर में है। यहाँ हम ब्रिटिश लोकसेवा की तीनों श्रेणियों में प्रवेश-परीक्षाओं का संक्षेप में उल्लेख करेंगे।[1]

(क) प्रशासनिक श्रेणी में प्रवेश परीक्षाएँ (Entrance Tests for Administrative Class)—इस श्रेणी के लिए आयोजित प्रतियोगी परीक्षाओं में 20 से 28 वर्ष की आयु वाले प्रत्याशी भाग लेते हैं। ये परीक्षाएँ मुख्यत दो प्रकार की हैं जिन्हें तरीका-I तथा तरीका-II के नाम से जाना जाता है। दोनों के सम्बन्ध में थोड़ी जानकारी यहाँ उपयोगी रहेगी।

तरीका-I—यह शैक्षणिक परीक्षा (Academic Examination) का पुराना तरीका है। इसके दो भाग हैं। पहले भाग में निबन्ध, अंग्रेजी का परचा तथा एक सामान्य परचा होता है। इस भाग में अपेक्षित स्तर प्राप्त करने के बाद ही दूसरे भाग की परीक्षा में प्रतियोगी बनने दिया जाता है। इस भाग में साक्षात्कार तथा लिखित परीक्षा की व्यवस्था है। लिखित परीक्षा में विश्वविद्यालय आनर्स स्तर के अनेक परचे होते हैं।

इसके अतिरिक्त साक्षात्कार मण्डल द्वारा साक्षात्कार किया जाता है। लिखित परीक्षा तथा साक्षात्कार में प्राप्त कुल अंकों के योग के आधार पर योग्यता निर्धारित की जाती है। इन परीक्षाओं के लिए कोई आवश्यक शैक्षणिक योग्यता नहीं रखी जाती किन्तु आनर्स में द्वितीय श्रेणी से कम के प्रत्याशी के सफल होने के कम ही अवसर रहते हैं। कुछ असाधारण प्रतिभा वाले प्रत्याशी निजी अध्ययन के आधार पर भी सफलता प्राप्त कर लेते हैं। यह तरीका 1969 से कार्यरत नहीं है।[2]

तरीका-II—यह तरीका 'House Party Method' भी कहा जाता है। यह जाँच का आधुनिक तरीका है जिसमें केवल बौद्धिक योग्यता की अपेक्षा प्रत्याशी के व्यक्तित्व एवं निर्णय की तीव्रता की जाँच पर जोर दिया जाता है। यह तरीका युद्धकाल में सैनिक अधिकारियों की नियुक्ति के लिए अपनाया जाता था। इसके

1 This description is based mainly on E. N. Gladden, op cit, pp 72 82.
2 *R. B. Jain*: op cit, p 103.

अन्तर्गत प्रत्याशी नागरिक सेवा चयन मण्डल (Civil Service Selection Board) की देखरेख मे 2 3 दिन रखा जाता है तथा मैत्रीपूर्ण तरीके से उसके व्यक्तिगत गुणो तथा बुद्धि की जाँच की जाती है। इस परीक्षा मे भाग लेने के लिए प्रत्याशी कम से कम प्रथम या द्वितीय श्रेणी की आनर्स की उपाधि अथवा तकनीकी मे डिप्लोमा प्राप्त होना चाहिए। इस परीक्षा के तीन सोपान हैं—सर्वप्रथम प्रारम्भिक लिखित परीक्षा होती है। दूसरे, इसमे सन्तोषजनक प्रयास के बाद परीक्षा एव साक्षात्कार के लिए प्रत्याशी को नागरिक सेवा चयन मण्डल के सामने उपस्थित होना पड़ता है। तीसरे, प्रत्याशी अन्तिम साक्षात्कार मण्डल के सामने प्रस्तुत किया जाता है जो प्रत्याशी के सम्बन्ध मे अब तक एकत्रित की गई सारी सूचनाओं का सकलन करता है तथा स्वय साक्षात्कार के आधार पर निकाले निष्कर्षो से उनका मेल बैठाता है और उसके बाद सफल प्रत्याशियो की क्रमानुसार सूची तैयार करता है।

प्रारम्भ मे तरीका II कुल प्रशासनिक सेवाओ से केवल एक तिहाई पर ही लागू किया जाता था किन्तु इसकी लोकप्रियता के कारण अब 50% भर्तियाँ इसी तरीके के आधार पर की जाती हैं। नागरिक सेवा के बाहर कार्य कर रहे अनुभवी तथा बड़ी उम्र के लोगो की भर्ती के लिए ही यह तरीका अपनाया जाता है। ऐसी परीक्षा के लिए प्रत्याशियो के भिन्न-भिन्न बैच बना दिए जाते है। एक बैच की परीक्षा साधारणत दो दिन तक चलती है। इस प्रकार यह एक लम्बे समय का साक्षात्कार है। कुछ समय पहले तक यह लन्दन मे होता था किन्तु अब ग्रेट-ब्रिटेन के लोकसेवा आयोग के मुख्यालय बासिंगस्टोक्स (Basingstokes) मे होता है। इस प्रकार के साक्षात्कार मे बाह्य वातावरण को यथासम्भव स्वाभाविक बनाए रखा जाता है और इस प्रकार प्रत्याशी के व्यक्तिगत गुणो की जाँच निकटता से हो पाती है।

(ख) अधिशासी श्रेणी के लिए प्रवेश परीक्षाएँ (Entrance Tests for Executive Class)—ये परीक्षाएँ प्रारम्भ मे स्कूल छोड़ने वाले विद्यार्थियो के लिए खुली रहती थी किन्तु इनके परिणामस्वरूप मध्य एव निम्न श्रेणी के पदों की ओर योग्य प्रत्याशियों का आना रुक गया। फलत: 1953 मे यह निर्णय किया गया कि लिखित परीक्षा के स्थान पर General Certificate of Education (G C. E) रखा जाए। लिखित एव कड़ी प्रतियोगी परीक्षाएँ अधिक मात्रा मे उपयुक्त प्रत्याशियों को आकर्षित नहीं कर पाती। अब अधिशासी श्रेणी की परीक्षाओ मे प्रवेश के लिए यह आवश्यक समझा जाता है कि प्रत्याशी 17½ से 28 वर्ष की आयु का हो तथा अग्रेजी भाषा सहित पाँच स्वीकृत विषयो म पास होने के साथ-साथ G. C. E रखता हो। इस सेवा मे चयन साक्षात्कार के आधार पर किया जाता है।

(ग) लिपिकीय श्रेणी के लिए प्रवेश-परीक्षाएँ (Entrance Tests for Clerical Class)—1966 मे किए गए परिवर्तनो के अनुसार लिपिकीय श्रेणी मे प्रवेश हेतु सचालित प्रतियोगिताओ को लन्दन तथा उससे बाहर दो भागो मे बाँट

दिया गया है। इसमें प्रवेश के लिए अंग्रेजी भाषा सहित पांच विषयों में उत्तीर्ण तथा G C E की प्राप्ति होनी चाहिए। जहां तक लन्दन क्षेत्र का सम्बन्ध है यहाँ के रिक्त स्थानों की पूर्ति के लिए लोकसेवा आयोग अनेक प्रकार की प्रतियोगी परीक्षाएँ आयोजित करता है। उनमें कुछ मुख्य ये हैं—15 से 20 वर्ष की आयु के स्कूल से निकले प्रत्याशियों के लिए, 20 से 40 वर्ष तथा 40 से 59 वर्ष की आयु तक के पुराने प्रवेशार्थियों के लिए लिखित खुली प्रतियोगिताएँ और 20 वर्ष से कम उम्र वालों तथा 20 वर्ष से अधिक की उम्र वालों के लिए पृथक् पृथक्, G C E प्रतियोगिताएँ।

लन्दन के अतिरिक्त स्थानों पर रिक्त स्थानों की पूर्ति का अधिकार स्वयं विभागों को प्राप्त है। उपर्युक्त प्रत्याशियों के नाम विभागों द्वारा लोकसेवा आयोग को भेज दिए जाते हैं। नाम के साथ ही प्रत्याशी की उम्र, स्वास्थ्य, चरित्र एवं राष्ट्रीयता सम्बन्धी प्रमाण पत्र भी भेजे जाते हैं जिनके आधार पर आयोग सत्यापन सम्बन्धी अन्तिम निर्णय लेता है। यद्यपि सेवाओं में प्रवेश आयु 15 से 59 वर्ष है किन्तु विभाग स्कूल से निकले प्रत्याशियों की नियुक्ति पर विशेष जोर देते हैं। उन्हें यथासम्भव सामूहिक रूप से कार्य करने को कहा जाता है। विभागों की चयन प्रक्रिया में कुछ स्वेच्छाचारिता भी दिखाई देती है।

लिपिकीय श्रेणी के कुछ पद अधिशासी श्रेणी के असफल प्रत्याशियों को सौंप जाते हैं। गैर-औद्योगिक तथा औद्योगिक शृंखलाओं के कार्यकर्त्ताओं के लिए भी सीमित प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती हैं।

(घ) अन्य पदों के लिए प्रवेश परीक्षाएँ (Entrance Tests for Other Posts)—लिपिकीय सहायकों के पद पर नियुक्तियों के लिए अनेक प्रयोग करने के बाद अन्त में वही तरीका अपनाया गया है जो लिपिकीय श्रेणी में भर्ती के लिए अपनाया जाता है। इसमें अपेक्षाकृत कुछ उदारता बरती जाती है। टंकणकर्त्ताओं (Typing Grades) की नियुक्ति सभी विभागों में व्यापक रूप से की जाती है। इसमें प्रवेश की न्यूनतम आयु 15 वर्ष है। निम्नतम स्तर के टंकणकर्ता की गति एक मिनिट में 30 शब्द की होनी चाहिए। पर्यवेक्षणात्मक पदों के लिए कुछ उच्चतर योग्यता की अपेक्षा होती है। इन पदों पर भर्ती करते समय लोकसेवाओं को गैर-सरकारी क्षेत्र से भारी प्रतियोगिता करनी पड़ती है जहाँ इन कर्मचारियों की मांग अधिक रहती है तथा वेतन भी अधिक मिलता है।

वैज्ञानिक तथा व्यावसायिक वर्गों (Scientific and Professional Classes) में उपयुक्त योग्यताधारी प्रत्याशियों को साक्षात्कार द्वारा कभी भी भर्ती किया जा सकता है। इन पदों पर आवश्यक आयु 29 से 32 वर्ष है। सहायक प्रयोग अधिकारी की आयु सीमा 18 से 28 वर्ष तथा प्रयोग अधिकारी के लिए 26 से 31 वर्ष है। लोकसेवा आयोग भी अनेक तकनीकी एवं व्यावसायिक पदों पर भर्ती के लिए प्रतियोगिताएँ आयोजित करता है। इन भर्तियों के लिए प्रायः कुछ न्यूनतम व्यावसायिक योग्यताएँ रखी जाती हैं। इस प्रकार भर्ती की प्रतियोगिताएँ

निरन्तर चलती रहती हैं तथा लोकसेवकों की मृत्यु, व्यवसाय-परिवर्तन, सेवा निवृत्ति आदि के कारण स्थान रिक्त होते रहते हैं।

उक्त भर्तियों के अलावा विभिन्न विभागों द्वारा अनेक अस्थायी नियुक्तियाँ भी की जाती हैं। इनके लिए प्राय उन्हीं योग्यताओं एव विधियों को अपनाया जाता है जो स्थायी नियुक्ति के लिए निर्धारित हैं। अस्थायी कर्मचारी के प्रमाणीकरण के लिए लोकसेवा आयोग के पास उसका नाम भेजा जाता है तथा उपयुक्त जाँच के बाद आयोग उसे स्थायी बनाने का आदेश दे देता है।

परिवीक्षा काल
(Probation Period)

प्राय सभी श्रेणियों के सभी कर्मचारियों के लिए प्रारम्भिक नियुक्तियाँ परिवीक्षा काल के लिए की जाती हैं। परिवीक्षा काल की व्यवस्था का नियमन ट्रेजरी के नियमों द्वारा किया जाता है। तदनुसार एक स्थायी पद पर नियुक्त होने वाला प्रत्याशी सर्वप्रथम परिवीक्षा काल के लिए नियुक्त किया जाता है। यह काल सामान्यत दो वर्ष का होता है किन्तु इसे व्यक्तिगत मामलों में विभागाध्यक्ष द्वारा तथा सामान्य रूप से ट्रेजरी द्वारा बढ़ाया जा सकता है। नियमानुसार परिवीक्षा काल में विभागाध्यक्ष द्वारा प्रत्याशी की योग्यता एव क्षमता जाँची जाती है तथा उसे स्थायी पद पर तब तक नहीं लिया जा सकता जब तक कि वह अपनी उपयुक्तता सन्तोषजनक रूप से साबित न कर दे।[1] इस रूप में प्रत्याशी को अपनी योग्यता सिद्ध करने का समुचित समय दिया जाता है।

फुल्टन समिति के सुझाव
(Suggestions of the Fulton Committee)

1966 में नियुक्त की गई फुल्टन कमेटी ने लोकसेवकों की नियुक्ति के सम्बन्ध में मुख्यत ये सिफारिशें प्रस्तुत की थीं—

(i) भर्ती एव प्रशिक्षण को परस्पर एकीकृत किया जाना चाहिए। इस बात पर जोर दिया जाना चाहिए कि भर्ती का कार्य वे लोग करें जो बाद में प्रत्याशी के प्रशिक्षण के लिए उत्तरदायी होते हैं।

(ii) लोकसेवा आयोग के स्थान पर एक नया लोकसेवा विभाग बनाया जाए।

(iii) 'भर्ती' कार्यों के विशेष क्षेत्रों में की जानी चाहिए।

(iv) भर्ती कार्य में विभागों का योगदान अधिक होना चाहिए। विभागों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से की जाने वाली भर्तियों का अनुपात अधिक होना चाहिए।

1 "In the U K , it is described, more elaborately, as a testing time, during which a recruit establishes by his performance in a particular post or grade, his fitness or otherwise for a permanent post in the Civil Service, in that particular post or grade, and at the end of which his appointment is either confirmed or terminated" —*United Nations*, op. cit , pp. 66-67.

भर्ती प्रणाली की आलोचना
(Criticism of the Recruitment Process)

ग्रेट ब्रिटेन मे लोकसेवको की भर्ती प्रणाली की आलोचना करने से पूर्व कछ बातें उल्लेखनीय हैं। पहली बात तो यह है कि चयन का वास्तविक तरीका, जिसे तरीका-II कहा जाता है, के सम्बन्ध म सही रूप मे कुछ नही कहा जा सकता क्योकि साक्षात्कार के समय अपेक्षित मापदण्ड एव योग्यताएँ अज्ञात रहती हैं। दूसरे, तरीका-II ही प्रशासनिक श्रेणी मे नियुक्ति का एकमात्र तरीका नहीं है। उदाहरण के लिए, 1966 मे खुली प्रतियोगिता के प्रवेशार्थी 44, प्रत्यक्ष भर्ती के 66 तथा प्रशिक्षार्थी श्रेणी से पदोन्नत किए गए प्रत्याशी 43 थे। तीसरे भर्ती के लिए अपनाए जाने वाले इस तरीके का डेवीज समिति (Davies Committee) ने पर्याप्त समर्थन किया है। यह समिति फुल्टन समिति की प्रतिक्रिया स्वरूप नियुक्त की गई थी। समिति के कथनानुसार विश्वविद्यालय से ली गई गवाहियो का विश्वास था कि प्रत्याशियो के बहुमत द्वारा तरीके-II को भर्ती का स्पष्ट एव न्यायपूर्ण तरीका माना जाता है। सभी गवाहियो को ध्यान म रखकर यह कहा जा सकता है कि तरीका-II तथा नागरिक सेवा चयन मण्डल पर ब्रिटिश लोकसेवा गर्व कर सकती है। इस पृष्ठभूमि के साथ हम ब्रिटिश लोकसेवा मे भर्ती के तरीके की कुछ *आलोचनाएँ प्रस्तुत कर रहे हैं।*

रिचार्ड ए चैपमेन (Richard A Chapman) ने अपनी पुस्तक (The Higher Civil Service in Great Britain, Constable, 1970) म यह उल्लेख किया है कि "वर्तमान लोकसेवा की चयन प्रक्रिया के समर्थक यह तर्क देते हैं कि खुली प्रतियोगिता की प्रणाली सशक्त, प्रजातान्त्रिक एव न्यायपूर्ण है। यह प्रत्याशी की किसी विशेष कार्य को करने की योग्यता के आधार पर निर्णय लेती है। यह पारिवारिक सम्बन्धों तथा वश परम्परागत प्रभावो का ध्यान रखे बिना ही लोगो का चयन करती है। इसके चयन का आधार ज्ञान परिस्थितियो मे निर्धारित परीक्षा का सामान्य नियम है।" इस प्रशसात्मक वक्तव्य का एक दूसरा पहलू भी है जिसके अनुसार यह कहा जा सकता है कि ब्रिटिश लोकसेवा मे चयन की प्रक्रिया अनेक दोष तथा कमियो से युक्त है। इसकी मुख्य आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं—

(1) गुणात्मक आलोचना—भर्ती किए गए कर्मचारी जिस कार्य के लिए भर्ती किए जाते हैं उसके लिए वे कितने उपयुक्त रहते है, यह जानने के लिए पर्याप्त सांख्यिकीय प्रमाण नही मिल पाते। इतने पर भी दो बातें तो स्पष्ट रूप से कही जा सकती हैं। पहली बात तो यह है कि लोकसेवको की भर्ती के लिए जो परीक्षा प्रणाली एवं चयन प्रक्रिया अपनाई गई है उसके फलस्वरूप लोक प्रशासन वैज्ञानिक नहीं बन सका है। दूसरी बात यह है कि प्रत्याशी की उदार शिक्षा (Liberal Education) पर अधिक जोर दिया जाता है तथा कार्य के अनुरूप शिक्षा को प्राथमिकता नहीं दी जाती।

(ii) **व्यक्तित्व की अवहेलना**—प्रत्याशी के व्यक्तित्व की परीक्षा के लिए कोई वस्तुगत जांच का तरीका नहीं है और इस प्रकार मुख्य निर्णायक मूल्यांकनकर्त्ता की केवल विषयगत सम्मति को ही माना जाता है। इस प्रणाली में वे लोग सफल हो जाते हैं जिनकी सामाजिक तथा शैक्षणिक पृष्ठभूमि अच्छी होती है। अच्छे घराने के प्रत्याशी अपने व्यक्तित्व का प्रभाव अधिक डाल पाते हैं। दूसरी ओर योग्य क्षमताएँ कुण्ठित होकर रह जाती हैं।

(iii) **वर्गभेद को बढ़ावा**—इस चयन प्रक्रिया का परिणाम यह है कि उच्च पदों पर केवल उच्च वर्ग के लोग ही आ पाते हैं और इस प्रकार लोकसेवा के विभिन्न पद विभिन्न सामाजिक एवं आर्थिक वर्गों से सम्बद्ध हो जाते हैं। सामाजिक दृष्टि से सम्मानहीन विलक्षण प्रतिभाएँ इस व्यवस्था में लोकसेवा से वंचित रह जाती हैं।

(iv) **कुछ विश्वविद्यालयों की प्रभुता**—लोकसेवकों की प्रशासनिक श्रेणी के लिए आने वाले प्रार्थना-पत्र मुख्यतः ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के कला स्नातक होते हैं। 1948-63 के बीच लोकसेवाओं में प्रविष्ट ऑक्सफोर्ड तथा कैम्ब्रिज के स्नातक 68 प्रतिशत थे किन्तु बाद में यह प्रतिशत बढ़कर 85 प्रतिशत हो गया। उसके बाद यद्यपि यह संख्या गिरी है तथा 1968 में 59 प्रतिशत हो गई किन्तु फिर भी इन दोनों विश्वविद्यालयों से निकलने वाले कुल 14 प्रतिशत स्नातकों की तुलना में यह संख्या अभी भी अधिक ही है।

(v) **बाहरी अनुभव की कमी**—लोकसेवाओं में भर्ती किए जाने वाले प्रत्याशियों को व्यवसाय, उद्योग अथवा अन्य किसी भी सरकारी या गैर-सरकारी प्रतिष्ठान में प्रायः कोई अनुभव नहीं रहता। पूर्व अनुभव पर विशेष ध्यान ही नहीं दिया जाता।

(vi) **तकनीकी मनोवृत्ति**—भर्ती किए जाने वाले कर्मचारियों में यह नहीं देखा जाता कि वे तकनीकी समाज के जटिल कार्यों को सम्पादित करने में कितने सक्षम होंगे, वे स्वयं को तकनीकी कार्यों के अनुरूप ढाल सकेंगे अथवा नहीं।

संयुक्तराज्य अमेरिका में सेवीवर्ग की भर्ती
(Recruitment of Personnel in U. S. A.)

संयुक्तराज्य अमेरिका में लोकसेवा आयोगों द्वारा प्रतियोगी परीक्षाएँ आयोजित की जाती हैं। संघीय स्तर पर ऐसी परीक्षाएँ 1820 से ही आयोजित की जा रही हैं। प्रारम्भ में जल, थल और नभ-सेना अकादमियों में मेडिकल कोर्स के प्रवेश हेतु परीक्षाएँ सम्पन्न की गई थीं। 1853 में काँग्रेस ने कानून द्वारा यह आवश्यक बना दिया कि विभागीय लिपिक के पद पर नियुक्ति से पूर्व एक परीक्षा ली जाए। 1883 में लोकसेवा आयोग की स्थापना के बाद ये परीक्षाएँ आयोग की देख-रेख में सम्पन्न होने लगीं।

भर्तीकर्त्ता अभिकरण
(The Recruiting Agency)

लोकसेवा व्यवस्था पारित होने से पूर्व संयुक्तराज्य अमेरिका में प्रत्येक सरकारी विभाग तथा अभिकरण अपने सेवीवर्ग सम्बन्धी कार्यों का संचालन स्वयं ही करता था। 1883 में पेण्डलेटन अधिनियम तथा ऐसे ही अन्य राज्य व्यवस्थापनों के पारित होने पर लोकसेवाओं में प्रवेश के लिए की जाने वाली भर्ती एवं परीक्षा सम्बन्धी सारी गतिविधियाँ लोकसेवा आयोगों को हस्तान्तरित कर दी गई। इसके बाद क्रमश अन्य सेवीवर्ग सम्बन्धी कार्य भी लाइन अभिकरण से लेकर स्टाफ अभिकरणों को दिए जाते रहे। एक लम्बे विकास के बाद संयुक्तराज्य के लोकसेवा आयोग को इतनी सत्ता प्राप्त हो गई जितनी कि किसी भी देश म इसके समकक्ष संस्था के पास नहीं होगी।[1]

आयोग के कार्य (Functions of the Commission)—डॉ. एल डी ह्वाइट ने लोकसेवा आयोग के निम्नलिखित कार्यों का उल्लेख किया है—

(i) परीक्षाएँ सम्पन्न करना, नियुक्ति के लिए उपयुक्तता का प्रमाण-पत्र देना तथा अपने नियमों की कार्यान्विति की जाँच करना।

(ii) पद वर्गीकरण के लिए मापदण्ड निर्धारित करना तथा वर्गीकरण कार्यों का लेखा परीक्षण करना।

(iii) संघीय कर्मचारियों तथा संघीय कोष का धन प्राप्त करने वाले राज्य एवं स्थानीय कर्मचारियों की राजनीतिक गतिविधियों के विरुद्ध प्रतिबन्ध लगाना।

(iv) नागरिक सेवा सेवानिवृत्ति अधिनियम का प्रशासन करना।

(v) संघीय कर्मचारियों के रोजगार अभिलेख तैयार करना।

(vi) रोजगार हेतु आवेदन-पत्रों की जाँच करना तथा सुरक्षा हेतु कर्मचारियों की जाँच करना।

(vii) भूतपूर्व सैनिक प्राथमिकता अधिनियम को प्रशासित करना।

(viii) प्रशिक्षण की कार्यसम्पन्नता मूल्यांकन योजनाओं को स्वीकार करना तथा मूल्यांकन अधीन व्यवस्था को प्रशासित करना।

आयोग का संगठन
(Organisation of the Commission)

लोकसेवा आयोग तीन सदस्यों का संगठन है जो राजनीतिक प्रभाव से स्वतन्त्र रहकर कार्य करता है। आयोग म 4 ब्यूरोज हैं—Programmes and Standards Bureau, Departmental Operations Bureau, Field Operation Bureau and Inspection Bureau इनके द्वारा आयोग का अधिकांश

1 "As a result of long term trends, American Civil Service Commission have acquired authority far beyond that found in corresponding agencies in most countries of the world" —Dr L D White op cit., p 321.

कार्य सम्पन्न किया जाता है। आयोग के Bureau of Management Services के अन्तर्गत अनेक सहायक सेवाएँ सम्पन्न की जाती हैं, जैसे—बजट एवं वित्त, सेवीवर्ग, कार्यालय सेवाएँ, पुस्तकालय सगठन एवं प्रविधि, तथा सांख्यिकी। आयोग मे अनेक कार्यालय शामिल हैं, जैसे—विधि कार्यालय, सुरक्षा मूल्यांकन कार्यालय, जन-सूचना कार्यालय, अपील एवं पुनरीक्षा मण्डल, न्यायपूर्ण रोजगार मण्डल, अन्तर्राष्ट्रीय सगठन कर्मचारी स्वामिभक्ति मण्डल, आदि। आयोग के कुल कर्मचारियो की सख्या 5 हजार से भी ज्यादा है।

Programmes and Standards Bureau नियोजन एवं मापक निर्धारण का कार्य करता है। इसमे कार्यक्रम नियोजन सम्भाग, नियोजन एव निर्देशन सम्भाग, मापक सम्भाग आदि शामिल हैं। Bureau of Departmental Operations मे परीक्षा सम्भाग अभिलेख सम्भाग, जाँच सम्भाग, मेडिकल सम्भाग तथा सेवानिवृत्ति सम्भाग शामिल हैं। Bureau of Inspection and Clarification Audits के द्वारा विभिन्न अभिकरणो के कार्यों का पर्यवेक्षण किया जाता है। इसका मुख्य कार्यालय वाशिंगटन मे है तथा अन्य 11 क्षेत्रीय कार्यालय हैं।

सयुक्तराज्य अमेरिका मे विभिन्न विभागो तथा सरकारी अभिकरणों के कर्मचारियो की भर्ती लोकसेवा आयोग तथा स्वय विभागो के लाइन अभिकरणो द्वारा की जाती है किन्तु जहाँ तक उच्च प्रशासनिक अधिकारियो की नियुक्ति का प्रश्न है यह कार्य सीनेट की स्वीकृति से राष्ट्रपति द्वारा सम्पन्न किया जाता है। सयुक्तराज्य के सविधान मे कहा गया है कि राष्ट्रपति सीनट के परामर्श एव स्वीकृति से राजदूतों तथा अन्य राजनयिक अधिकारियो, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशो एव अन्य उन सभी अधिकारियो की नियुक्ति करेगा जिनकी अन्यथा नियुक्ति का कोई प्रावधान नहीं है। कांग्रेस चाहे तो नीचे के पदो पर नियुक्ति का अधिकार भी राष्ट्रपति को दे सकती है। सीनेट के अवसान काल मे हुए रिक्त पदो को राष्ट्रपति द्वारा भरा जा सकता है किन्तु बाद मे उन पर सीनेट की स्वीकृति लेनी होगी। इस प्रकार नामांकन (Nomination) एव नियुक्ति मे अन्तर होता है। अधिकारियों का नामांकन राष्ट्रपति अकेले ही करता है किन्तु उनकी नियुक्ति राष्ट्रपति एव सीनेट द्वारा सयुक्त रूप से की जाती है। एक विकसित परम्परा के अनुसार राष्ट्रपति नियुक्तियाँ करने से पूर्व सम्बन्धित राज्य के सीनेटर से विचार-विमर्श कर लेता है, तत्पश्चात् राष्ट्रपति द्वारा की गई नियुक्तियो को सीनेट स्वीकार कर लेती है।

राष्ट्रपति की नियुक्ति सम्बन्धी शक्तियाँ राजदूतो, मन्त्रियों एव अन्य राजनयिक अधिकारियों तक सीमित हैं। यह मधिशासी विभागो के अध्यक्षो तथा विभिन्न स्वतन्त्र मण्डलो एव आयोगों के सदस्यो की नियुक्ति करता है। इनके नीचे के कर्मचारियो की नियुक्ति क्रमश विभागाध्यक्षो, ब्यूरो एव सम्भागो के प्रमुखो तथा उनके निकटस्थ अधीनस्थो द्वारा की जाती है।

प्रवेश के लिए आवश्यक योग्यताएँ
(Essential Qualifications for Entrance)

भर्ती की योग्यता व्यवस्था के अन्तर्गत लोकसेवाओं में वही व्यक्ति प्रत्याशी बन सकते हैं जिनमें कुछ आवश्यक योग्यताएँ हो। उम्र, अनुभव, शिक्षा, निवास, नागरिकता एवं विशेष योग्यताएँ प्रत्येक पद के लिए अलग अलग निर्धारित की जाती हैं। संयुक्तराज्य में लोकसेवाओं के लिए आवश्यक योग्यताओं में एक 'नागरिकता' है। अधिकांश पदों के लिए गैर नागरिक को अयोग्य ठहरा दिया जाता है। केवल विदेशों में अपने दायित्व को निर्वाह के लिए सरकार विदेशी नागरिकों की सेवा स्वीकार करती है। विभिन्न संस्थानों के सेवीवर्ग अभिकरणों को यह अधिकार दिया जाता है कि यदि किसी पद विशेष के लिए योग्य नागरिक नहीं मिल पा रहा हो तो उस पद पर विदेशी को नियुक्त कर लिया जाए। इस अधिकार का प्रयोग कदाचित् ही किया जाता है।

दूसरी आवश्यक योग्यता निवास है।[1] या तो नागरिक सेवा विधि अथवा सेवीवर्ग अभिकरण के नियमों द्वारा सरकारी पदों को देश, राज्य अथवा नगर के निवासियों के लिए सीमित कर दिया जाता है। वाशिंगटन में विभागीय सेवाओं के सम्बन्ध में यह व्यवस्था है कि ये विभिन्न राज्यों के निवासियों को उस राज्य की जनसंख्या के अनुपात में दी जाती हैं। ज्योंही एक राज्य के लिए निर्धारित कोटा पूरा हो जाता है त्योंही उस राज्य के निवासियों की नियुक्ति पर रोक लग जाती है। यह व्यवस्था योग्यता प्रणाली के विरुद्ध है जिसके अन्तर्गत योग्यतम प्रत्याशी को लिया जाता है चाहे वह कहीं भी रहता हो।

तीसरी आवश्यक योग्यता आयु है। विभिन्न सरकारी पदों के लिए अलग-अलग आयु सीमाएँ रखी गई हैं। इन सभी के पीछे मूल विचार यह है कि प्रत्येक को लोकसेवाओं में अवसर प्राप्त हो सके। 1938 में न्यूयार्क राज्य में सभी आयु सवाएँ हटा दी गई थीं। बाल श्रम अधिनियम के अनुसार 18 वर्ष की न्यूनतम तथा सेवा-निवृत्ति अधिनियम के अनुसार 80 वर्ष की अधिकतम आयु रखी गई है। कांग्रेस ने 1952 में सिद्धान्त रूप में संघीय परीक्षाओं में आयु सीमा के विरुद्ध घोषणा की किन्तु लोकसेवा आयोग को यह शक्ति दी कि वह कुछ पदों के लिए अधिकतम आयु-सीमा निर्धारित कर सके। इस प्रावधान के तहत आयोग ने कनिष्ठ सहायक परीक्षाओं तथा अधिकांश वैज्ञानिक तथा व्यावसायिक पदों के लिए अधिकतम आयु सीमा 35 वर्ष तय कर दी। उच्चस्तरीय पदों के लिए कोई आयु सीमा निर्धारित नहीं की गई तथा भूतपूर्व सैनिकों के लिए आयु सीमा सम्बन्धी सभी प्रावधान निरस्त कर दिए गए। इन सभी प्रयासों के पीछे मूल रूप से मानवतावादी भावनाएँ कार्य कर रही थीं तथा मितव्ययता एवं प्रशासनिक कार्यकुशलता के हितों को होने वाली हानि

1 'In the national government this question of residence or domicile, unfortunately play an important part in the personnel system."
—*W. F. Willoughby* Principles of Public Administration, 1962, p. 237.

की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया था।[1] अमेरिका में आयु सम्बन्धी सीमा केवल उन्हीं सेवाओं में प्रवेश के लिए लगाई जाती है जिनमें प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है अथवा जिनके लिए शारीरिक क्षमता एवं शक्ति अपेक्षित है अन्यथा 70 वर्ष या उससे अधिक उम्र के लोगों को भी कम से कम अस्थायी नियुक्ति दी जा सकती है।[2] संयुक्तराज्य अमेरिका में उम्र सम्बन्धी प्रावधानों के परिणामस्वरूप स्कूल से निकलने वाले युवा प्रत्याशी प्रायः लोकसेवा में प्रविष्ट नहीं हो पाते क्योंकि उनको कार्य का कोई व्यावहारिक अनुभव नहीं होता और वे अधिक उम्र के लोगों से स्पर्धा नहीं कर पाते। आयु सम्बन्धी व्यवस्था के कारण ही सेवा में प्रवेश के लिए ली जाने वाली परीक्षाएँ भी सामान्य शैक्षणिक उपलब्धियों का निर्धारण करने की अपेक्षा प्रत्याशी की तकनीकी योग्यताओं को जाँचती हैं। स्पष्ट है कि आयु सम्बन्धी प्रावधानों ने अमेरिका के सेवीवर्ग की प्रकृति एवं परीक्षा के रूप को निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

चौथी योग्यता शिक्षा के दो अर्थ हैं—एक तो शैक्षणिक संस्थाओं द्वारा विद्यार्थियों को दी जाने वाली साधारण शिक्षा और दूसरे व्यावसायिक स्कूलों में दी जाने वाली विशेष शिक्षा। व्यावसायिक एवं तकनीकी प्रकृति के पदों पर भर्ती के लिए तदनुकूल आवश्यक योग्यताएँ निर्धारित कर दी जाती हैं। इनके अतिरिक्त अधिकांश पदों पर किसी प्रकार की शैक्षणिक योग्यता की सीमा लगाना समानता एवं प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं माना जाता। 1935 में संयुक्तराज्य में कुछ व्यावसायिक पदों को छोड़कर अन्य सभी से शिक्षा की पूर्व-आवश्यकता को हटा दिया गया। 1944 में काँग्रेस ने भी व्यावसायिक, वैज्ञानिक एवं तकनीकी पदों को छोड़कर अन्य सभी पदों से शैक्षणिक पूर्व-आवश्यकता को पूर्णतः हटा दिया।[3]

पाँचवीं योग्यता अनुभव है। अनुभव का अर्थ उस प्रशिक्षण से है जो प्रत्याशी को वास्तविक कार्य सम्पन्न करने पर प्राप्त होता है। परीक्षा व्यवस्था में मितव्ययता की दृष्टि से यह उचित समझा जाता है कि प्रत्याशी को कार्य का अनुभव होना चाहिए किन्तु समानता की धारणा एवं बेरोजगारों को रोजगार देने की अभिलाषा इस बात की माँग करती है कि अनुभव को लोकसेवा में प्रवेश की आवश्यक शर्त न बनाया जाए। ऐसा करने पर अनेक होनहार युवा लोकसेवा में प्रवेश से वंचित रह जाते हैं।

छठी योग्यता व्यक्तिगत गुण है। प्रत्येक लोकसेवक से यह आशा की जाती है कि उसका व्यक्तिगत या नैतिक चरित्र ईमानदारी, सच्चाई, शक्ति, साधन-सम्पन्नता, कुशलता, धीरज, विश्वसनीयता, प्रभावशाली योग्यता, आकर्षक शरीर-रचना एवं तहज़ीब से युक्त हो। ये सभी गुण निश्चय ही प्रत्याशी के कार्य एव

1 *L. D. White*: op. cit., p. 340
2 *O. G. Stahl*, op. cit., p. 59
3 58 Stat. 387, Sec. 5 (June 27, 1944).

व्यवहार पर गम्भीर प्रभाव डालते हैं यहाँ तक कि औद्योगिक शिक्षा एवं तकनीकी ज्ञान भी इतना उपयोगी तथा सार्थक साबित नहीं होता। इन व्यक्तिगत गुणों का महत्त्व जितना अधिक है उनको निर्धारित करना उतना ही कठिन है। विभिन्न प्रकार की परीक्षाओं, प्रश्नावलियों एवं कार्यकुशलता अभिलेखों के माध्यम से इनके निर्धारण की चेष्टा की जा सकती है।

सातवें, लिंगभेद का भर्ती प्रक्रिया पर प्रभाव पड़ता है। अमेरिका में प्रारम्भ से ही महिलाओं को उच्च पदों के अयोग्य माना जाता रहा है। यह सच है कि संयुक्त राज्य में कोई कानूनी प्रावधान ऐसा नहीं है जो महिलाओं को सरकारी सेवा के अयोग्य ठहराता हो किन्तु व्यवहार में पुरुष-प्रधान समाज ने महिलाओं के लोकसेवा में प्रवेश और प्रवेश के बाद उनके कार्य की शर्तों में भेदभाव का व्यवहार किया है। महिलाओं को उनका न्याययुक्त दिलाने के लिए एक लम्बा संघर्ष किया गया है जो कि अभी तक जारी है। फरवरी 1976 में भूतपूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति फोर्ड के विरुद्ध एक महिला कर्मचारी ने सर्वोच्च न्यायालय में यह दावा प्रस्तुत किया कि समान पद पर समान कार्य करने वाले पुरुष कर्मचारी को उससे अधिक वेतन दिया जा रहा है और इस प्रकार राष्ट्रपति लिंगभेद करने के दोषी हैं। स्टॉल ने स्वीकार किया है कि "यदि कानून में नहीं तो कम से कम व्यवहार से तो लिंग प्रतिरोध अभी तक कायम है तथा ये निश्चय ही भर्ती के क्षेत्र को प्रभावित करते हैं।"[1] अनेक पदों पर नियुक्ति के समय आवेदन पत्र में आवेदक से उसके लिंग का उल्लेख करने को कहा जाता है तथा आवेदन-पत्रों की छँटनी करते समय महिला आवेदकों को सूची से हटा दिया जाता है और कोई कानूनी बाधा भी नहीं आती। इसके पक्ष में यह कहा जा सकता है कि अपनी प्रकृति एवं शरीर रचना के कारण महिलाएँ कुछ कार्य करने में सक्षम नहीं होतीं।

भर्ती के तरीके
(Methods of Recruitment)

भर्ती के लिए संयुक्तराज्य अमरिका के विभिन्न सोपानों में कार्यवाही सम्पन्न की जाती है। इसका सबसे पहला और मुख्य सोपान रिक्त स्थानों की सूचनाएँ सम्भावित प्रत्याशियों तक पहुँचाना है। साधारणतः इसके लिए तीन तरीके अपनाए जाते हैं—समाचार पत्र में उस पद की घोषणा कर दी जाती है, सार्वजनिक भवनों या लोगों के एकत्रित होने के स्थानों पर पोस्टर लगा दिए जाते हैं, उन व्यक्तियों, संगठनों एवं संस्थाओं को रिक्त स्थानों की सूची भेज दी जाती है जो उपयुक्त प्रत्याशियों के सम्पर्क में रहते हैं। सूचना के ये औपचारिक माध्यम अधिक प्रभावशाली नहीं माने जाते तथा इनके आधार पर श्रेष्ठ प्रत्याशी प्राप्त करने की आशा नहीं की जा सकती। स्टॉल ने लिखा है कि सूचना का प्रसार जीवन्त तथा

1 "Nevertheless, sex barriers still exist in practice, if not in law, and definitely effect the field of recruitment." —*O G Stahl*, op cit., p 61

रोचक रूप में होना चाहिए।[1] लोकसेवाओं के लिए योग्यतम कर्मचारी प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि सूचना प्रसारण एवं भर्ती के लिए आक्रमणकारी नीति अपनाई जाए। द्वितीय हूवर आयोग ने भर्ती के तरीकों के महत्त्व का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया था। इसका मत था कि संघ सरकार को रिक्त स्थानों की घोषणा की प्रकृति एवं वितरण में सुधार करना चाहिए। जनता को सूचित करने के लिए पर्याप्त कार्यक्रम अपनाने चाहिए तथा कॉलेज से की जाने वाली भर्तियों का क्षेत्र बढ़ाना चाहिए।[2]

सूचना प्रसारण के बाद दूसरा कदम यह है कि रिक्त पदों के लिए अनेक लोगों द्वारा जो प्रार्थना-पत्र भेजे गए हैं उनकी जाँच की जाए। आवेदन-पत्र इस रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए ताकि उसके आधार पर यह जाना जा सके कि आवेदक विचाराधीन पद के लिए प्रतियोगी बन सकता है अथवा नहीं। इससे आवेदक का परिचय, शिक्षा, अनुभव, आदतें, प्राथमिकताएँ आदि का पूर्व ज्ञान हो जाता है तथा नियुक्ति के बाद ये सूचनाएँ कर्मचारी के रिकार्ड का काम देती हैं। आवेदन-पत्र के प्रस्तुतीकरण के सम्बन्ध में हूवर आयोग ने 1949 में यह बताया था कि किसी पद के लिए आवेदन-पत्रों का समय नहीं बाँधना चाहिए। यदि कोई पद रिक्त है तथा प्रत्याशी में उसके अनुकूल योग्यताएँ हैं तो उसे आवेदन-पत्र देने की अनुमति दी जानी चाहिए। दूसरे, आवेदक को पहले से ही रिक्त पदों की सूचना नहीं दी जानी चाहिए वरन् उसकी योग्यता एवं अनुभवों की जानकारी प्राप्त करने के बाद स्वयं ही यह तय करना चाहिए कि आवेदक किस पद के योग्य है।

प्रार्थना-पत्र की पुनरीक्षा के बाद उसे रद्द किया जा सकता है यदि आवेदक पद के लिए आवश्यक अर्हताएँ पूरी नहीं करता हो, उसने कोई तथ्य छिपा कर या गलत कह कर धोखा दिया हो अथवा वह कानूनी अपेक्षाएँ पूरी नहीं करता हो।

परीक्षा के तरीके
(Methods of Examination)

संयुक्तराज्य अमेरिका में सेवीवर्ग की भर्ती के लिए परीक्षा प्रणाली का महत्त्व योग्यता व्यवस्था के महत्त्व के अनुपात में बढ़ा है। परीक्षा का लाभ केवल यही नहीं है कि इससे धूर्तों तथा अयोग्य लोगों को लोकसेवा के बाहर रखा जा सकता है किन्तु इसका सकारात्मक लाभ भी है कि योग्य तथा सक्षम व्यक्ति विभिन्न सरकारी पदों पर रखे जा सकते हैं। प्रत्येक सरकारी पद के कुछ विशेष दायित्व एवं कार्य होते हैं जिनके सफल निर्वाह के लिए कुछ विशेष योग्यताएँ अपेक्षित हैं। परीक्षा प्रणाली द्वारा इन योग्यताओं की जाँच सेवा में प्रवेश से पूर्व ही कर ली जाती है। प्रत्याशी की योग्यता को जाँचने के अनेक तरीके हैं। प्रो. विलोबी ने अमेरिका के प्रसंग में इन तरीकों का उल्लेख किया है[3]—

1 *Stahl* op cit, p 61.
2 Commission on Organisation of the Executive Branch of the Govt. Personnel and Civil Service, Washington, Feb 1965, p 60
3 *W. F. Willoughby* : op cit, pp 241-42

(i) नियुक्तिकर्त्ता अधिकारी का व्यक्तिगत निर्णय।
(ii) चरित्र, योग्यता आदि के प्रमाण-पत्र।
(iii) पूर्व-अनुभव के रिकार्ड्स जिसमें शैक्षणिक एवं व्यावसायिक दोनों प्रकार के अनुभव शामिल हैं।
(iv) गैर-प्रतियोगी तथा प्रतियोगी परीक्षाएँ।

प्रो स्टॉल ने वस्तुगत परीक्षा के 5 रूपों का उल्लेख किया है।[1] ये हैं-शिक्षा एवं अनुभव का व्यवस्थित मूल्यांकन, लिखित परीक्षा कार्य सम्पन्नता परीक्षा, मौखिक परीक्षा तथा प्रमाणीकृत योग्यता जाँच। गैर-लिपिकीय तथा गैर यान्त्रिक सेवाओं में नियुक्ति के लिए प्राय शिक्षा एवं अनुभव के व्यवस्थित मूल्यांकन का तरीका अपनाया जाता है। कभी-कभी इसके साथ मौखिक परीक्षाएँ तथा योग्यता जाँच जैसी अन्य प्रणालियों का भी सहारा ले लिया जाता है। शिक्षा तथा अनुभव के मूल्यांकन का आधार प्रत्याशी का आवेदन-पत्र तथा उसके साथ सलग्न अन्य कागज-पत्र होते हैं। इसमें स्वय प्रत्याशी को बुलाने की आवश्यकता नहीं होती, अत इस प्रणाली को अनेकत्रित परीक्षा (Unassembled Test) भी कहा जाता है। इस प्रणाली मे नियुक्तिकर्त्ता का स्वय का निर्णय एव व्यक्तिगत रुचि अधिक निर्णायक भूमिका अदा करती है। इसमें पक्षपात एव विषयगतता को रोकने के लिए दो परीक्षक रखे जाते हैं जो हर मामले का स्वतन्त्र रूप से मूल्यांकन करते हैं।

लिखित परीक्षाओं का प्रयोग संयुक्तराज्य मे अधिकांश सेवीवर्ग अभिकरणो द्वारा किया जाता है। इसमे एक ही समय में बहुत से प्रत्याशियो की योग्यता की जाँच हो जाती है, अत यह सरल और सस्ती है। यह वस्तुगत मूल्यांकन की दृष्टि से भी अधिक सुगम है। लिखित परीक्षाएँ मोटे रूप से दो भागों मे बाँटी जा सकती हैं— विषयगत एव वस्तुगत या स्वतन्त्र उत्तर एव छोटे उत्तर की परीक्षाएँ। लिखित परीक्षाएँ खुली प्रतियोगी परीक्षाएँ होती हैं। इनमे पहले से ही निश्चय एव प्रकाशित योग्यताओं की जाँच की जाती है।

प्रतियोगी तथा गैर प्रतियोगी परीक्षाएँ जाँच की प्रकृति की दृष्टि से तो एक जैसी ही दिखाई देती हैं किन्तु दोनों का मुख्य अन्तर यह है कि प्रतियोगी परीक्षाओं मे योग्यता-क्रम निर्धारित कर लिया जाता है तथा नियुक्तियाँ इसी क्रम से की जाती हैं तथा गैर-प्रतियोगी परीक्षाओं में नियुक्ति करने वाले को यह स्वतन्त्रता रहती है कि परीक्षा पास करने वाले प्रत्याशियो म से वह किसी को भी नियुक्त करे। प्रतियोगी परीक्षाओं के अनेक रूप होते हैं। बहुत स लोगो की एक साथ परीक्षा लेने के लिए मशीनों द्वारा लघु-उत्तर प्रश्न तैयार किए जाते हैं। उच्च विशेषीकृत पदो के लिए प्रत्याशियो का मूल्यांकन केवल उनकी शिक्षा एव अनुभव का गुणात्मक एव सख्यात्मक मूल्यांकन करके किया जाता है। प्रत्याशी के सम्बन्ध मे उत्तरदायी व्यक्तियो द्वारा चरित्र एव योग्यता सम्बन्धी जो प्रमाण-पत्र दिए जाते हैं उनका भी

1 O G Stahl: op cit., pp 73-77

स्वयं में महत्त्व होता है तथा जैसा कि विलोबी का मत है, प्रत्याशी का मूल्यांकन करते समय इनको भी प्रश्रय दिया जाना चाहिए।[1]

परीक्षा की अन्य प्रणाली मौखिक जाँच है जिसमें प्रत्याशी के साक्षात्कार के समय मौखिक वार्तालाप द्वारा उसके जवाब देने की क्षमता, बौद्धिक स्तर, जानकारी, बोलने एवं प्रस्तुतीकरण के तरीके, बात को समझने की क्षमता, शारीरिक बनावट, निर्णय लेने की क्षमता आदि का अनुमान लगाया जाता है। मौखिक साक्षात्कार लिखित परीक्षा के बाद उसके सहायक के रूप में अथवा स्वतन्त्र रूप से सम्पन्न किए जाते हैं। संयुक्तराज्य अमेरिका की लोकसेवा में भर्ती के समय मौखिक परीक्षाओं का उपयोग कम ही होता है। इसकी अपेक्षा लिखित परीक्षा को अधिक विश्वसनीय समझा जाता है।[2]

परीक्षा का एक तरीका कार्य-सम्पन्नता की जाँच है। अमेरिकी लोकसेवा में नियुक्ति के लिए इसे आजकल काफी अपनाया जाने लगा है। यह तरीका न मौखिक है और न लिखित ही है। इसमें कार्य का यथार्थ में प्रदर्शन किया जाता है। प्रत्याशी लिखने अथवा बोलने की अपेक्षा स्वयं कुछ करके दिखाता है और परीक्षक इस कार्य-सम्पन्नता का अवलोकन करता रहता है। स्टेनोग्राफर, टंकणकर्त्ता एवं अन्य तकनीकी कार्यकर्त्ताओं की परीक्षा के लिए इस प्रकार की जाँच आयोजित की जाती है।

प्रत्याशी की योग्यता जाँचने के लिए उसकी योग्यताओं के सम्बन्ध में पूछताछ का तरीका भी अपनाया जाता है। शिक्षा, अनुभव, योग्यता सम्बन्धी प्रमाण पत्र आदि महत्त्वपूर्ण तो हैं किन्तु पर्याप्त नहीं हैं। औपचारिक परीक्षाओं द्वारा इन सभी की दृष्टि से उपयुक्त रहने वाला प्रत्याशी भी उसके चरित्र, स्वभाव, कार्य करने के ढंग आदि के कारण अनुपयुक्त साबित हो सकता है, अतः सेवा में प्रवेश से पूर्व प्रत्याशी के इन गुणों की पूरी जानकारी की जानी चाहिए। यह कार्य एक प्रशिक्षित स्टॉफ द्वारा ही किया जा सकता है। प्रत्याशी के भूतपूर्व नियुक्तिकर्त्ता एवं परिचित मित्रों से इन बातों की जानकारी की जा सकती है। परिवीक्षाकाल में तथा नियुक्ति के बाद भी इस प्रकार की जानकारियाँ जारी रखी जा सकती हैं। यह व्यक्तिगत जाँच पर्याप्त समय एवं धन की अपेक्षा करती है इसलिए केवल कम प्रत्याशी होने पर ही कुछ पद विशेषों के सम्बन्ध में इसे अपनाया जा सकता है।

आधुनिक मनोविज्ञान का विकास होने के साथ-साथ लोकसेवाओं में प्रवेश के लिए प्रत्याशियों की योग्यता जाँचते समय उनकी कुशलता एवं मनःस्थिति, बुद्धिमत्ता एवं किसी विशेष कार्य के करने की क्षमता आदि की जाँच भी की जाती है। पिछली कुछ दशाब्दियों से सरकारी रोजगार को अमेरिका में आजीवन रोजगार बनाने की परम्परा चली है। एक कर्मचारी से सेवा में प्रवेश के समय जिन योग्यताओं की अपेक्षा की जाती है वे उसके निरन्तर बढ़ते हुए दायित्वों के सन्दर्भ में

1 *W. F. Willoughby* : op cit., p. 243
2 *O. G. Stahl* : op cit., p. 76

बढ़ती चली जाती हैं। अब आजीवन सेवा (Career Service) का विकास होने पर यह आवश्यक बन गया है कि प्रत्याशी की योग्यताओं की परीक्षा केवल सेवा में प्रवेश के समय के दायित्वों को देखकर ही न ली जाए वरन् भविष्य के दायित्वों को भी ध्यान में रखा जाए।

प्रत्याशी की परीक्षा के समय उसकी पूरी मनोवैज्ञानिक जाँच की जानी चाहिए क्योंकि व्यक्ति की क्षमताओं का विकास तथा नए गुणों का जन्म उसकी मन स्थिति के आधार पर ही होता है। व्यक्ति की मानसिक क्षमता मनोभावना, साथियों के साथ व्यवहार, आकांक्षाएँ, अहकार की स्थिति, मूल प्रवृत्तियाँ सीखने की क्षमता आदि बातों की जानकारी अत्यन्त आवश्यक है। मनोवैज्ञानिक जाँच के लिए अल्पकालीन छोटे प्रश्न रखे जाते हैं तथा उसके तौर-तरीके, व्यवहार, कुशाग्रता, अविनाशी योग्यता, शक्ति साधन-सम्पन्नता, तकनीकी ज्ञान कुशलता आदि अनेक बातें जानने की चेष्टा की जाती है। इस प्रकार के व्यक्तिगत गुण कर्मचारी की कार्यकुशलता एवं क्षमता को बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

परीक्षा के समय प्रत्याशी की सामान्य बुद्धि की जाँच भी की जाती है। अत लोकसेवा आयोग के सदस्यों को किसी विशेष कुशलता या ज्ञान के एक विशेष क्षेत्र में ही सर्वश्रेष्ठ होने की अपेक्षा मानसिक विकास के लिए क्षमता-सम्पन्न होना चाहिए। उनका स्वय का बौद्धिक स्तर भी सन्तोषजनक होना चाहिए।

लोकसेवकों की भर्ती के लिए विभिन्न परीक्षा प्रणालियों में से कौन-सी अधिक उपयुक्त रहेगी यह प्रश्न इस बात पर निर्भर करता है कि किस पद पर नियुक्ति की जा रही है। इसके साथ ही किसी परीक्षा प्रणाली की प्रभावशीलता और योग्यता निर्धारण में उसकी सफलता बहुत कुछ उस कुशलता पर निर्भर करती है जिसके साथ इसे कार्यान्वित किया जा रहा है। यह तो स्पष्ट है कि प्रत्येक पद के दायित्वों के आधार पर ही उसमें अपेक्षित योग्यताएँ तय की जाती हैं और इन योग्यताओं के आधार पर ही यह निर्णय लिया जा सकेगा कि किस परीक्षा प्रणाली को अपनाया जाए। साधारणत परीक्षाओं द्वारा प्रत्याशी के बारे में जो जानकारी प्राप्त की जाती है उसमें से कुछ बातें ये हैं—प्रत्याशी की सामान्य योग्यताओं का पता लगाना, उसकी विशेष योग्यताओं एव जानकारियों का पता लगाना, प्रत्याशी की उपलब्धियों की जानकारी करना, उसके स्वास्थ्य एव शरीर रचना का ज्ञान, उसके व्यक्तित्व एव भावनाओं का ज्ञान आदि-आदि।

इस सम्बन्ध में एक अन्तिम उल्लेखनीय बात यह है कि संयुक्तराज्य अमेरिका में बड़ी सख्या में अल्पकालीन, मध्यकालीन या अकुशलतायुक्त पदों दूरस्थ स्थानों पर कार्य करने वालों तथा अनेक विशिष्ट प्रावधानों में युक्त पदों पर नियुक्ति के समय किस प्रकार की योग्यता परीक्षा नहीं ली जाती। इन पदों पर नियुक्ति के लिए अमेरिकी लोकसेवा आयोग कुछ न्यूनतम मापदण्ड तथा अन्य सुरक्षाओं की व्यवस्था कर देता है। इस प्रकार के पद आयोग की अनुसूची 'A' में वर्णित हैं। उदाहरण के लिए एटार्नी चीनी व्याख्याता, राष्ट्रपति भवन की विस्तृत बातों में

सम्बन्धित गुप्तचर सेवा, विदेश विभाग की गोपनीय व्यावसायिक एवं तकनीकी सेवाएँ, सैनिक अस्पताल के मेडिकल एवं डेंटल नौमिनिए आदि। ये सभी पद प्रतियोगी वर्गीकृत सेवा म शामिल नहीं हैं, इनका कोई स्थायी स्तर नहीं है, लम्बे रोजगार के कारण इन पदों पर स्थायी सेवा का दावा नहीं किया जा सकता, पदमुक्ति के विरुद्ध तथा पुनर्नियुक्ति के लिए कोई अधिकार नहीं है तथा इन पर सेवानिवृत्ति व्यवस्था लागू नहीं होती।

भूतपूर्व सैनिकों के लिए प्राथमिकताएँ
(Veteran Preference)

संयुक्तराज्य अमेरिका में प्राय सभी सरकारी भर्तीकर्त्ता अभिकरणों द्वारा भूतपूर्व सैनिकों को भर्ती के समय प्राथमिकता दी जाती है। सैनिक कर्मचारियों की सेवाओं के प्रति राष्ट्रीय सम्मान के कारण उनको अनेक परम्परागत पूर्व आवश्यकताओं से छुटकारा दिया जाता है। प्रशासनिक कार्यकुशलता की दृष्टि से इसका चाहे हानिकारक प्रभाव होता हो किन्तु काँग्रेस तथा राज्य व्यवस्थापिकाएँ कानून द्वारा भूतपूर्व सैनिकों के प्रति अपने ऋणभार को उतारने म पीछे नहीं रहतीं। 3 मार्च, 1865 को काँग्रेस ने कानून द्वारा यह प्रावधान किया कि "थल सेना एवं जल सेना में व्यक्ति जो लड़ाई के मैदान में घायल अथवा बीमार होने के कारण अक्षम तथा सेवा के अयोग्य हो जाएँ उन्हें असैनिक कार्यालयों में नियुक्ति के समय प्राथमिकता दी जाएगी, यदि उनमें उन कार्यालयों में कार्य करने की आवश्यक व्यावसायिक क्षमता होगी। यह प्रावधान 1883 के लोकसेवा अधिनियम द्वारा भी जारी रखा गया। एटार्नी जनरल द्वारा इस प्रावधान की व्याख्या करते हुए कहा गया कि एक पद के समान योग्यता रखने वाले अन्य लोगों की अपेक्षा भूतपूर्व सैनिकों को प्राथमिकता दी जाएगी।"अन्य बातें समान रहने पर असैनिक कार्यालयों में नियुक्ति के लिए भूतपूर्व सैनिकों को प्राथमिकता दी जाएगी। 1888 में लोकसेवा आयोग ने इस प्राथमिकता को अधिक उदार बनाते हुए योग्यता की शर्त को हटा दिया। 1910 में जब एटार्नी जनरल ने इसकी व्यवस्था की तो वे और आगे बढ़ गए तथा यह घोषित किया कि 1865 के अधिनियम की भावना के अनुसार अन्य लोगों का मूल्यांकन सूची में चाहे कुछ भी स्थान रहा हो उनकी अपेक्षा भूतपूर्व सैनिकों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। 11 जुलाई, 1919 को काँग्रेस ने पुनः कानून पारित किया जिसके अनुसार घायल सैनिकों एवं नाविकों की पत्नियों को प्राथमिकता देने का प्रावधान रखा गया। इसके बाद समय-समय पर कार्यपालिका आदेश तथा व्यवस्थापन द्वारा भूतपूर्व सैनिकों की प्राथमिकता के प्रावधान में समय-समय पर परिवर्तन होते रहे।

फ्रांस में सेवीवर्ग की भर्ती
(Recruitment of Personnel in France)

फ्रांस में अन्य यूरोपीय देशों की भाँति लोकसेवकों की नियुक्तियाँ राजनीतिक पक्षपात के आधार पर होती थीं। नियुक्ति एवं पदोन्नति दोनों कार्यों के लिए

किसी मन्त्री अथवा विभागाध्यक्ष का पक्षपात अनिवार्य होता था। ऐसी नियुक्तियों में होने वाले भ्रष्टाचार एवं अपव्यय का देश के उदारवादी जनमत ने विरोध किया। पदोन्नति में होने वाले पक्षपात का स्वयं अधिकारियों ने विरोध किया। इस दोहरे दबाव के कारण वस्तुस्थिति में क्रमश परिवर्तन आने लगा। लूट प्रणाली पर रोक लगाने के लिए अनेक प्रयास किए गए। विभिन्न सरकारी पदों के लिए कानून अथवा नियमन के आधार पर आवश्यक योग्यताएँ निर्धारित की गईं, स्वेच्छापूर्ण व्यक्तिगत पसन्द या नापसन्द को रोकने के लिए मन्त्रालयों के अन्तर्गत नियुक्ति एवं पदोन्नति-मण्डल स्थापित किए गए।

फ्रांस की लोकसेवा में भर्ती का तरीका अन्य देशों की भांति वहाँ की लोकसेवा के सामान्य संगठन से पर्याप्त प्रभावित है। यहाँ सम्पूर्ण लोकसेवा के लिए एक जैसे सामान्य वर्ग हैं। ये वर्ग चार हैं—सर्वोच्च वर्ग, मध्यम वर्ग, लिपिक वर्ग तथा चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी। फ्रांस में सेवा के इन वर्गों का नामकरण ABCD के रूप में हुआ है। इन चार सामान्य श्रेणियों के बाहर किन्तु वेतन संरचना में इनके समकक्ष विशेषज्ञ होते हैं। इनका आज के प्रशासन में व्यापक तथा महत्त्वपूर्ण स्थान है।

भर्तीकर्त्ता अभिकरण (The Recruiting Agency)—फ्रांस में 1945 तक लोकसेवकों की नियुक्ति के लिए उत्तरदायी कोई केन्द्रीय संस्था नहीं थी।[1] यह स्वयं कार्य मन्त्रालयों एवं विभागों द्वारा सम्पन्न किया जाता था तथा प्रत्याशियों के लिए आवश्यक योग्यताएँ स्वयं मन्त्रालय द्वारा ही तय की जाती थीं। लोकसेवाओं में भर्ती के लिए खुली प्रतियोगी परीक्षाएँ आयोजित की जाती थीं। इनमें सफलता के लिए प्रत्याशी से काफी तैयारी की अपेक्षा की जाती थी। 1935 के अनुमानों के अनुसार इस प्रकार लगभग 200 परीक्षाएँ प्रतिवर्ष आयोजित की जाती थीं। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय फ्रांस के अनेक प्रबुद्ध न्यायाधीशों, राजनीतिज्ञों एवं प्रशासकों ने जनरल डिगॉल के साथ इंग्लैण्ड में फ्रांस की लोकसेवा में सुधार की समस्या पर विचार किया। युद्ध के बाद ज्यों ही पेरिस को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई उसके बाद लोकसेवा में सुधार के लिए प्रस्ताव तैयार करने हेतु एक तीन सदस्यों की समिति बनाई गई। इस समिति के सुझाव पर्याप्त व्यापक एवं सुविचारित थे।*

सुधार समिति के ही एक सुझाव के अनुसार सभी उच्चतर नागरिक सेवाओं में भर्ती तथा प्रशिक्षण का कार्य सम्पन्न करने हेतु Ecole National d' Administration की स्थापना की गई। B C D तथा विशेषीकृत कोर्प्स में भर्ती का कार्य व्यक्तिगत मन्त्रालयों द्वारा ही सम्पन्न होता रहा। E N A का मुख्य दायित्व उच्च श्रेणी के ऐसे नागरिक सेवक तैयार करना है जिनको एक मन्त्रालय से दूसरे मन्त्रालय में बदला जा सके। फ्रांस में सर्वोच्च श्रेणी की उच्च सेवाओं में

1 *Brian Chapman*, The Profession of Government, 1959 p 80

प्रतिवर्ष लगभग 80-90 पद रिक्त होते हैं। इन पर नई भर्तियाँ करने के लिए E N A खुली लिखित प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा उम्मीदवारों का चयन करती है।

राष्ट्रीय प्रशासन विद्यालय (L'Ecole National d' Administration)–राष्ट्रीय प्रशासनिक विद्यालय द्वारा अनेक उद्देश्यों की पूर्ति की जाती है। इसकी स्थापना (1945) से पूर्व फ्रांस के लोकसेवकों की प्रवेश परीक्षाएँ अलग-अलग विभागों द्वारा की जाती थी किन्तु अब इनके स्थान पर यह विद्यालय एक वार्षिक प्रतियोगिता आयोजित करता है। इसमें साधनहीन प्रतिभाओं को भी अवसर प्राप्त होता है क्योंकि इसमें प्रवेश के बाद तीन वर्ष तक अध्ययन के लिए यह अपनी ओर से आर्थिक व्यवस्था करता है। विद्यालय में प्रतिवर्ष असाधारण योग्यता वाले 100 से अधिक प्रत्याशी प्रविष्ट होते हैं। इनको किताबों और कक्षाओं के निर्देशों के अतिरिक्त विभिन्न व्यावहारिक कार्यों का क्रमिक अनुभव दिया जाता है ताकि भावी प्रशासक अपने मस्तिष्क और आदतों की दृष्टि से प्रशासनिक कार्यों के प्रति अधिक सक्रिय और सजग हो सकें। विद्यार्थी को समाज विज्ञान के अनेक विषयों का ज्ञान कराया जाता है किन्तु इसमें भी अधिक इनका समय विभिन्न प्रशासनिक अभिकरणों के व्यावहारिक अध्ययन में व्यतीत होता है।

फ्रांस के इस विद्यालय की असाधारण विशेषता यह है कि यह अधिकारियों में नैतिकता के विकास हेतु प्रयत्नशील रहता है। विद्यालय के इस दायित्व के सम्बन्ध में इसके संस्थापक मार्शल डेब्रे (Marcel Debre) ने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है जिसका सार यह है कि विद्यालय का कार्य राजनीति सिखाना अथवा किसी सिद्धान्त को थोपना नहीं है वरन् इसे भावी अधिकारियों को राज्य की भावना सिखानी चाहिए, उन्हें प्रशासनिक उत्तरदायित्व समझाने चाहिए, इसके प्राध्यापकों को इतिहास के महान् उदाहरणों तथा महापुरुषों का चित्रण करते हुए उच्च आदर्श स्थापित करने चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति में हर प्रकार का कार्य करने की क्षमता, जोखिम के समय निर्णय लेने की योग्यता तथा निर्भयतापूर्ण कल्पना शक्ति का विकास करना चाहिए। ये सभी महाविद्यालय के महत्वपूर्ण दायित्व हैं।

विद्यालय में प्रवेश के लिए दो पृथक् परीक्षाएँ हैं—एक नए विद्यार्थियों के लिए और दूसरी लोकसेवा में कार्य कर रहे अधिकारियों के लिए। नए प्रत्याशियों की आयु 26 वर्ष से कम तथा राजनीति के संस्थानों का डिप्लोमा प्राप्त होना चाहिए। अधिकारियों की उम्र 26 से 30 वर्ष तक हो और वे 5 वर्ष तक या इससे अधिक सरकारी सेवा कर चुके हों। इस प्रकार अधिशासी वर्ग के अधिकारियों को प्रशासनिक वर्ग में प्रवेश पाने का अवसर प्राप्त हो जाता है। प्रवेश हेतु परीक्षाएँ राजनीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र के क्षेत्र में ली जाती हैं जिनकी प्रकृति विशेषज्ञतापूर्ण न होकर सामान्य होती है। प्रत्याशियों की कुछ शारीरिक परीक्षाएँ भी होती हैं

और यह आशा की जाती है कि वे अपनी सैनिक सेवा पूरी कर चुके होंगे। नए और विभागीय प्रत्याशियों का अनुपात अनुभव पर छोड़ दिया गया है।

विद्यालय चार सम्भागों में सगठित है—सामान्य प्रशासन, अर्थशास्त्र एवं वित्तीय प्रशासन, सामाजिक प्रशासन और विदेशी मामले। प्रत्याशी को स्वयं उल्लेख करना होता है कि वह किस सम्भाग में प्रवेश लेगा। इसके पीछे विचार यह है कि प्रत्याशी को स्वयं की इच्छा के व्यवसाय में प्रवेश का अवसर दिया जाए। प्रवेश परीक्षाओं में यह व्यवस्था की जाती है कि प्रत्याशी अपने विशेष क्षेत्र में उत्तर दे सके। परीक्षक प्रत्याशी की सामान्य संस्कृति, व्यक्तित्व और चरित्र पर विशेष ध्यान देते हैं। योग्यता के आधार पर प्रत्याशियों की सूची बनाई जाती है और उनके स्थान के आधार पर वे किस सम्भाग में जाना चाहेंगे यह पूछा जाता है। यदि कोई प्रत्याशी अपने इच्छित सम्भाग में न जा सके तो या तो उसे अन्य सम्भाग में जाना होगा अथवा अगले वर्ष पुनः प्रयास करना होगा।

विद्यालय में प्रवेश पाने के बाद सभी विद्यार्थी लोकसेवा की अनुशासनात्मक आचार-संहिता के अधीन आ जाते हैं। उन्हें वेतन मिलता है तथा वे 12 वर्ष तक राज्य की सेवा करने का वचन देते हैं। ऐसा न करने पर उन्हें विद्यालय से प्राप्त तीन वर्ष का वेतन, राज्य को वापस लौटाना पड़ता है।

विद्यालय के तीन वर्षों में से प्रथम वर्ष व्यावहारिक कार्य का होता है और द्वितीय तथा तृतीय वर्ष में स्कूली शिक्षा और व्यावहारिक कार्य दोनों साथ चलते है। तीन वर्ष की समाप्ति पर विद्यार्थी अधिकारियों को उनकी योग्यता एवं क्षमता के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। अक्षम तथा अयोग्य लोगों को बाहर निकाल दिया जाता है। इस विद्यालय के स्नातकों द्वारा जिन सरकारी अभिकरणों में सेवा की जाती है वे मुख्यतः ये हैं—कौंसिल डी एटा, लेखा न्यायालय, मन्त्रालयों के केन्द्रीय प्रशासन का उच्चतम स्तर, राजनयिक सेवाएँ वित्त का महानिरीक्षणालय, प्रशासनिक सेवाओं का महानिरीक्षणालय श्रम निरीक्षणालय, प्रीफेक्ट सम्बन्धी कैरियर आदि। फ्रांसीसी सरकार के केन्द्रीकरण ने इन सभी पदों को महत्त्वपूर्ण बना दिया है।

जब भर्ती किए जाने वाले व्यक्ति यथार्थ रूप में राज्य की सेवा में प्रवेश करते हैं तो वे ब्रिटेन की भाँति ही प्रशासनिक कैडेट्स अथवा Assistant Principals के रूप में प्रवेश करते हैं। कुछ स्थान बाहर वालों तथा पदोन्नति से लिए जाने वालों के लिए रखे जाते हैं। कुछ पदों पर मन्त्री अपनी स्वेच्छा से नियुक्ति करते हैं।

विद्यालय का संगठन (Organisation of the School)—फ्रांस में राष्ट्रीय प्रशासन विद्यालय उच्च लोकसेवाओं के लिए प्रतिवर्ष प्रायः 90–100 विद्यार्थियों में से नए प्रवेशार्थी प्रस्तुत करता है। पुराने लोकसेवकों को नया उत्साह तथा ज्ञान देने का कार्य उच्च अध्ययन केन्द्र (Centre des Hautes Etudes) द्वारा किया

जाता है। इस केन्द्र का लक्ष्य तकनीकी, विशेषीकृत एवं स्थानीय सेवाओं में कुछ वर्ष काम कर लेने वाले लोकसेवकों को पुनः शिक्षित एवं तरोताजा करना है। राष्ट्रीय प्रशासन विद्यालय Ecole Libre des Sciences Politiques की पूर्ववर्ती परिषद् में स्थित है। इसके संचालन का व्यय भार राज्य द्वारा उठाया जाता है। सरकार तथा विद्यालय के आपसी सम्बन्ध भी पर्याप्त रोचक हैं। यह मन्त्रि-परिषद् के अध्यक्ष की प्रत्यक्ष सत्ता एवं नियन्त्रण में रहता है। अध्यक्ष के अधीन एक लोकसेवा निदेशालय (Directorate of Public Service) की स्थापना की गई है जो लोकसेवाओं के लिए सामान्य नीति सम्बन्धी रेखाएँ तैयार करता है तथा अभिलेख एवं सांख्यिकी रखता है। इसके अतिरिक्त यह निदेशालय स्तरों के समन्वय, वेतन के सिद्धान्त, पेंशन की योजनाएँ तथा सेवाओं के संगठन का कार्य भी करता है।

निदेशालय के साथ-साथ एक स्थायी प्रशासन परिषद् (Permanent Council of Administration) भी है। लोकसेवा सम्बन्धी नीति का अध्ययन तथा स्पष्टीकरण करती है, उसे सम्पूर्ण प्रशासन व्यवस्था पर लागू करती है और उसके बाद लोकसेवा संविधियों का पर्यवेक्षण करती है। विद्यालय द्वारा भर्ती किए गए लोकसेवकों पर अनुशासन की व्यवस्था का दायित्व यही परिषद् निभाती है। परिषद् में एक सभापति, छः अधिकारी तथा लोकसेवा से बाहर के दो व्यक्ति होते हैं।

विद्यालय का प्रशासन एक निदेशक तथा प्रशासन परिषद् द्वारा किया जाता है। निदेशक की नियुक्ति मन्त्रि-परिषद् के एक आदेश द्वारा की जाती है तथा उसे विद्यालय की प्रशासन परिषद् के सतर्क निर्णय द्वारा निकाला जा सकता है। कौंसिल डी एटा का उपाध्यक्ष प्रशासन परिषद् का पदेन अध्यक्ष होता है। इसके अतिरिक्त परिषद् में विश्वविद्यालय से आए सदस्य, अधिकारी एवं सेवा से बाहर के व्यक्ति होते हैं। विद्यालय का एक अधिकारी लोकसेवा का निदेशक होता है, दो अधिकारी लोकसेवा संघों द्वारा नामजद किए जाते हैं। विद्यालय के अध्यापक आचार्यों तथा प्रशासकों में से लिए जाते हैं।

प्रवेश के लिए आवश्यक योग्यताएँ
(Essential Qualifications for Entrance)

फ्रांस में लोकसेवाओं का वर्गीकरण चार श्रेणियों में किया गया है तथा प्रत्येक श्रेणी के लिए न्यूनतम शिक्षा के भिन्न-भिन्न स्तरों की व्यवस्था की गई है। लोकसेवा की सर्वोच्च श्रेणी में उन प्रत्याशियों को लिया जाता है जो स्नातकोत्तर परीक्षा दे चुके हों। मध्यम श्रेणी के पदों पर महाविद्यालय स्तर के तथा लिपिक श्रेणी में विद्यालय स्तर की परीक्षा देने वाले प्रत्याशी उपयुक्त माने जाते हैं। कर्मचारियों की चौथी तथा अन्तिम श्रेणी के पदों पर प्रायः वे प्रत्याशी आते हैं जो प्राथमिक शिक्षा पूरी कर चुके हैं तथा आयु की दृष्टि से अपरिपक्व हैं। यहाँ लोकसेवाओं में भूतपूर्व सैनिकों तथा अंशतः अपाहिजों को प्राथमिकता दी जाती है।

विभिन्न पदों के लिए न्यूनतम शिक्षा की व्यवस्था के पीछे मूल विचार यह रहता है कि कर्मचारी में उसके पद के अनुकूल शिक्षा तो रहनी ही चाहिए ताकि वह अपने पद के दायित्वों का निर्वाह कुशलतापूर्वक कर सके। शिक्षा की शर्त के कारण प्रत्याशियों की संख्या सीमित हो जाती है तथा योग्य व्यक्ति के चयन में सुविधा रहती है। यदि न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता का प्रावधान न रखा जाए तो किसी भी सरकारी पद के लिए प्रत्याशियों का जमघट लग जाएगा तथा वस्तुगत रूप से योग्यता की जाँच करना कठिन बन जाएगा।

लोकसेवा के विभिन्न पदों के लिए अनुभव एवं तकनीकी कुशलता को वांछनीय योग्यता माना जाता है। यह अनुभव प्रत्याशी को या तो अन्यत्र कार्य करने से प्राप्त होता है अथवा वह प्रवेश-पूर्व प्रशिक्षण से प्राप्त करता है। तकनीकी एवं व्यावसायिक पदों के लिए व्यावसायिक योग्यता प्रत्याशी के लिए अनिवार्य बना दी जाती है। फ्रांस में राज्य सेवा के लिए इन्जीनियर्स को प्रशिक्षित करने की परम्परा काफी पुरानी है। यह कार्य मुख्यतः तीन संस्थाओं द्वारा किया जाता है, ये हैं—Ecole Nationale des Ponts et Chausses, The Ecole Nationale Superieure des Mines Ecole Polytechnique इनमें प्रथम दो की स्थापना 1747 में हुई थी तथा अन्तिम और तीसरा 1794 में स्थापित किया गया था। एकोले पोली टेक्नीक में प्रवेश के लिए सैकण्डरी पास तथा 18 से 20 वर्ष की आयु के प्रत्याशियों को कड़ी प्रतियोगिता का सामना करना होता है। प्रवेशार्थियों पर यह शर्त लगाई जाती है कि प्रशिक्षण कोर्स की समाप्ति के बाद उनको कम से कम दस वर्ष तक राज्य की सेवा करनी होगी। एकोले पोली टेक्नीक में विज्ञान, गणित, रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र आदि विषयों का दो वर्ष तक प्रशिक्षण दिया जाता है। उसके बाद प्रत्याशी की परीक्षा ली जाती है तथा योग्यता के आधार पर प्रत्याशियों को वर्गीकृत कर दिया जाता है तब तक प्रत्याशी अपने भावी व्यवसाय का निश्चय कर लेते हैं। वे या तो तकनीकी कोर्स में चले जाते हैं अथवा सेना की तकनीकी कोर्स में शामिल हो जाते हैं। नागरिक तकनीकी कोर्स का चयन करने वाले लोग Ecole des Mines अथवा Ecole des Ponts et Chausses में प्रवेश प्राप्त कर लेते हैं यहाँ प्रत्याशियों को जो प्रशिक्षण दिया जाता है वह उनको न केवल सुयोग्य इन्जीनियर ही बना देता है वरन् सक्षम प्रशासक भी बनाता है। इस कोर्स के कारण फ्रांस के राष्ट्रीयकृत उद्यमों के संचालन के लिए योग्य कार्यकर्त्ताओं की पूर्ति का एक सन्तोषजनक स्रोत मिल जाता है। चैपमेन के कथनानुसार फ्रांस की लोकसेवा का उत्कृष्टतर बहुत कुछ इन कोर्स के अस्तित्व पर निर्भर है।[1] फ्रांस को तकनीकी लोकसेवा के सामने बहुत कुछ वही समस्या है जिसका सामना उसे अपनी शेष लोकसेवा में करना पड़ता है।

फ्रांस का उच्च श्रेणी के तकनीकी प्रशासक प्राप्त करने की कई वर्षों तक के लिए कोई चिन्ता नहीं रहती। वह प्रशासनिक अनुभव से युक्त प्रथम श्रेणी के

1 *Brian Chapman* : op cit., p 97

इन्जीनियरों की 90% आवश्यकता की पूर्ति करने में सदैव सक्षम है किन्तु चिन्ता का विषय यह है कि साधारण इन्जीनियरों तथा अन्य कुशल कारीगरों की पूर्ति करने म फ्रांस की लोकसेवा अक्षम ठहरती है। दूसरे देशों मे प्राय स्थिति विपरीत रहती है। वहाँ कुशल कारीगर तथा साधारण इन्जीनियर तो पर्याप्त मिल जाते हैं किन्तु उच्च श्रेणी के विशेषज्ञ इन्जीनियर पर्याप्त नहीं मिल पाते। ब्रिटेन मे विज्ञापन तथा मानविकी के बीच जो विभाजन किया गया है उसके परिणामस्वरूप व्यावहारिक व्यक्ति तथा नागरिक सेवक के बीच एक अजनबी विभाजक रेखा बन जाती है। फ्रांस म ऐसा नहीं होता। यहाँ सरकारी तथा निजी उद्योगो के बीच विशेषज्ञ अधिकारियों का आना-जाना बना रहता है।

विदेश सेवा मे नियुक्ति के लिए विशेष ध्यान दिया जाता है। फ्रांस मे E N A के अन्तर्गत विदेशी मामलो के लिए अलग से विशेष सम्भाग हैं, यद्यपि सभी प्रत्याशी सामान्य प्रवेश परीक्षाओं म भाग लेते हैं। विदेश सेवा पर विशेष ध्यान देने का कारण यह है कि विदेशो मे जाकर राजनयिक कार्य सम्पन्न करने वालो से कुछ विशेष कुशलता, सामाजिक समझदारी तथा आत्मज्ञान की अपेक्षा की जाती है, अत सेवा मे प्रवेश से पूर्व भली प्रकार उनकी जाँच करना आवश्यक है।

सेवीवर्ग के लिए प्रवेश परीक्षाएँ
(Entrance Examinations for the Personnel)

फ्रांस म ब्रिटेन, जर्मनी तथा अमेरिका की भाँति एक परीक्षक निकाय नहीं है। यहाँ प्रत्येक विभाग द्वारा पृथक् से भर्ती की जाती है तथा प्रत्येक विभाग स्वय ही कर्मचारियों के लिए आवश्यक योग्यताएँ निर्धारित करता है। इसी प्रकार परीक्षाएँ भी विभागों द्वारा स्वमेव ही सचालित की जाती हैं। जहाँ तक उच्च लोकसेवकों के चयन एव प्रशिक्षण का सम्बन्ध है, यह कार्य Ecole Nationale d' Administration द्वारा सम्पन्न किया जाता है। यहाँ लोकसेवा सम्बन्धी सुधारों के परिणामस्वरूप विभिन्न विश्वविद्यालयों मे बारह Institute d' Eludes Politiques स्थापित किए गए हैं। इनमे विद्यार्थियों को अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र एव अन्य समाज विज्ञानों का ज्ञान कराया जाता है। ये विषय उच्च सेवाओं मे प्रवेश के लिए उपयोगी बनते हैं। प्रतिवर्ष लगभग 80 90 उच्च श्रेणी के पद रिक्त होते है। इन पर भर्ती के लिए E N A द्वारा खुली, लिखित प्रतियोगी परीक्षाएँ आयोजित की जाती हैं। E. N A के निदेशक इन वार्षिक परीक्षाओं के आयोजन के लिए उत्तरदायी रहते हैं। परीक्षकों की नियुक्ति एक आदेश द्वारा वरिष्ठ नागरिक सेवकों तथा विश्वविद्यालय के प्रोफेसरों में से की जाती है। E N A का प्रशिक्षण कोर्स तीन वर्ष चलता है। प्रशिक्षण देने वाले ये लोग विश्वविद्यालय मे प्रोफेसर तथा वरिष्ठ नागरिक सेवक होते हैं। इनकी नियुक्ति निदेशकों द्वारा की जाती है।

उच्च पदों के लिए परीक्षाएँ—सम्पूर्ण नागरिक सेवा के उच्च पदो पर French Ecole d' Administration द्वारा परीक्षाएँ ली जाती हैं। इसके लिए लिखित प्रतियोगी परीक्षाएँ आयोजित की जाती हैं। ये दो प्रकार की होती हैं-एक

विश्वविद्यालयी योग्यताएँ रखने वाले लोगो के लिए तथा दूसरी तीस वर्ष से कम की उम्र वाले उन लोगो के लिए जो किसी प्रशासनिक पद पर कम से कम पाँच वर्ष तक काम कर चुके हो। दूसरी श्रेणी की प्रतियोगिता के लिए किसी प्रकार की शैक्षणिक योग्यता की कोई आवश्यकता नही है। किसी भी श्रेणी के पदो मे सुरक्षित पद रखने की परम्परा नही है। दोनो श्रेणियो के लिए योग्यता के सम्मिलित क्रम की सूची तैयार की जाती है।

द्वितीय श्रेणी (B) के पदो के लिए परीक्षाएँ—इसमे वे प्रत्याशी भाग लेते हैं जो अपनी उच्चतर स्कूली शिक्षा समाप्त कर चुके हैं किन्तु अभी तक यूनिवर्सिटी मे नहीं गए हैं। यूनिवर्सिटी के स्नातक भी इस श्रेणी की सेवाओ की ओर पर्याप्त आकर्षित होते हैं। E N A के उच्च स्तरो के कारण यूनिवर्सिटी स्नातक उच्च सेवाओ मे कदाचित् ही प्रवेश कर पाते हैं, अत वे द्वितीय श्रेणी की सेवाओ की ओर लौटते है। इनमे से कई लोग तो जीवनभर बाहर निकल कर उच्च सेवाओ मे प्रवेश नहीं कर पाते। द्वितीय श्रेणी के लिए निर्धारित योग्यता वाले लोग बाहर रह जाते हैं और उनको तृतीय श्रेणी (C) की परीक्षाओ मे शामिल होने के लिए लौटना पड़ता है। इस प्रकार वे भी अपनी योग्यता से नीचे के पद पर काम करने के लिए मजबूर हो जाते हैं।

E N A द्वारा आयोजित वार्षिकयो प्रतियोगिताओ मे प्रारम्भिक स्कूल अध्यापक भी शामिल होते हैं क्योंकि वे राज्य शैक्षणिक सेवा के सदस्य होते है।

परीक्षाओं के दो भाग—'अधिकारी' एव 'विद्यार्थी' दोनो श्रेणियो की प्रवेश-परीक्षाओ के दो भाग हैं—प्रारम्भिक भाग (Preliminary Part) तथा वर्गीकृत भाग (Classifying Part)। जो प्रत्याशी प्रारम्भिक भाग मे एक निर्धारित स्तर तक पहुँच पाते हैं उनको वर्गीकृत भाग मे बैठने की अनुमति दी जाती है। विद्यार्थी श्रेणी के लिए प्रारम्भिक भाग की परीक्षा के चार भाग हैं। इनमे से तीन छ छ घण्टे तक चलने वाले तीन निबन्ध के पेपर होते हैं। इनमे प्रथम का विषय है–18 वी शताब्दी के राजनीतिक, सामाजिक एव आर्थिक इतिहास का विकास, दूसरे का विषय है—प्रमुख राज्यो की राजनीतिक सस्थाएँ या फ्रांस का प्रशासनिक कानून, तीसरे का विषय है—राजनीतिक अर्थशास्त्र जैसे–1945 से प्रमुख देशो की मौद्रिक नीति। चौथा और अन्तिम पर्चा जर्मन, अग्रेज, स्पेनिश, इटालियन, रशियन तथा अरेबिक आदि मे से किसी भी विदेशी भाषा का होता है। अधिकारी श्रेणी (Official Category) के लिए प्रारम्भिक परीक्षा मे भी विद्यार्थी श्रेणी की भाँति तीन निबन्ध के पर्चे होते हैं किन्तु यहाँ पूछे जाने वाले प्रश्न प्रत्याशी के व्यावहारिक ज्ञान पर अधिक जोर देते हैं। यहाँ चौथे विदेशी भाषा के पर्चे के स्थान पर चार घण्टे मे किसी एक परिपत्र या कुछ परिपत्रो का सक्षिप्तीकरण कराया जाता है। इनमे एक 1000 शब्दो का तथा दूसरा पचास शब्दो का होता है।

वर्गीकृत परीक्षा उन विद्यार्थी एव अधिकारी प्रत्याशियो की ली जाती है जो प्रारम्भिक परीक्षा पास कर चुके हैं। इस परीक्षा द्वारा उनके अधिक विशेषीकृत ज्ञान की जाँच की जाती है। परीक्षा मे शामिल होने से पूर्व प्रत्याशी को चार व्यवसायो मे से एक चुनने को कहा जाता है, ये हैं—सामान्य प्रशासन, वित्तीय प्रशासन, सामाजिक प्रशासन तथा विदेशी मामले। E N A का अध्यापन भी इसी विभाजन पर निर्भर करता है। वर्गीकृत परीक्षा म चार जाँच की जाती हैं। इनमे से तीन का विषय वही होता है जो प्रत्याशी ने स्वय की इच्छा से निर्धारित किया है। प्रथम विद्यार्थी परीक्षा मे प्रशासनिक विधि, वित्तीय विधि, सामाजिक अर्थशास्त्र या 1815 से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो पर एक प्रश्न होता है। चार घण्टे के इस पेपर मे परीक्षार्थी को अपने अनुभाग के अनुसार जवाब देना होता है। शेष विद्यार्थी-परीक्षाएँ मौखिक होती हैं। प्रथम परीक्षा मे विद्यार्थी को परीक्षक मण्डल के सामने प्रस्तुत होने से आधा घण्टे पूर्व सामान्य विषय बता दिया जाता है जिस पर वह मण्डल के सामने 10 मिनिट तक बोलता है। उसके कहे गए पर मण्डल द्वारा प्रश्न पूछे जाते है। द्वितीय एव तृतीय परीक्षाओ मे प्रत्याशी से उसके द्वारा उल्लेखित विषय पर 15 मिनिट तक पूछताछ की जाती है।

'अधिकारी' प्रत्याशियो के लिए वर्गीकृत परीक्षाओ के केवल तीन भाग होते हैं। इनके मिलाकर कुल अक उतने ही होते हैं जितने विद्यार्थी श्रेणी वालो के चार परीक्षाओ के कुल अक होते हैं। इनका मौखिक साक्षात्कार भी दो के स्थान पर एक ही होता है, केवल पन्द्रह मिनिट के लिए। दोनों ही श्रेणी के प्रत्याशियो से यह आशा की जाती है कि दौड, कूद, चढाई, तैराकी, भारोत्तोलन आदि मे एक विशेष स्तर की योग्यता रखें। यदि कोई प्रत्याशी शारीरिक रूप से अक्षम है तो इन खेल-कूदो मे उन्मुक्त रखा जा सकता है। सभी प्रत्याशियो को यह अवसर प्राप्त होता है कि वे तीन आधारो पर अपनी विशेष योग्यता का प्रदर्शन कर सकें-यदि वे पॉयलट हों अथवा पैराशूट जम्पर हो, यदि उनको द्वितीय विदेशी भाषा मे अच्छा स्तर प्राप्त हो यदि, वे मौखिक साक्षात्कार के समय वैज्ञानिक विषयो की विशेष जानकारी दिखा सकें।

रिक्त सरकारी पदों की सख्या की घोषणा (Direction de la Fonction Publique) द्वारा परीक्षा से पूर्व ही कर दी जाती है तथा परीक्षा आयोग योग्यता के आधार पर प्रत्याशियो की सूची बनाता है। यदि दो प्रत्याशी समान अक प्राप्त करें तो परीक्षक मण्डल उन दोनो को बुलाकर पुन साक्षात्कार लेता है तथा योग्यता का चयन करता है।

कुछ उल्लेखनीय विशेषताएँ (Some Remarkable Characteristics)—फ्रांस मे लोकसेवको की भर्ती व्यवस्था की कतिपय उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं जो उसे ब्रिटिश, जर्मन तथा अन्य यूरोपीय देशो की लोकसेवा से भिन्न बनाती हैं। इनमे से मुख्य ये हैं—(1) फ्रांस मे प्रत्याशी का कानून मे सकीर्ण अर्थ मे विशेषज्ञ होना ही पर्याप्त नहीं समझा जाता वरन् इसके स्थान पर दूसरे विषयों के ज्ञान का सयोग

करके उसके विषय क्षेत्र को व्यापक बना दिया जाता है। (ii) फ्रांसीसी परम्परा यह विश्वास नहीं करती कि प्रत्याशी की बुद्धि को किसी भी अनुशासन में जाँचा जा सकता है और प्रत्येक प्रकार का व्यक्ति एक अच्छा प्रशासक बन सकता है। फ्रांस में यह मान्यता है कि एक अच्छे प्रशासक को कुछ विषयों का ज्ञान होना ही चाहिए। ये नौसिखियों को प्रशासन में नहीं रखना चाहते। फ्रांसीसी लोकसेवा की दृष्टि से एक व्यक्ति के पास अच्छा मस्तिष्क होना ही पर्याप्त नहीं है वरन् यह मस्तिष्क उन विषयों में प्रशिक्षित भी होना चाहिए जिनका सम्बन्ध सरकारी कार्यों से है। (iii) फ्रांस में उच्च नागरिक सेवा तथा मध्य स्तरीय सेवा के बीच एक गहरी खाई है। मध्यवर्ती प्रशासकों के लिए उच्च नागरिक सेवा में स्थान सुरक्षित नहीं रहते, न ही उनके लिए प्रतियोगिता में शामिल होने का कोई विशेष अवसर रहता है। उन्हें खुली प्रतियोगिता में बाहर वालों के साथ ही अवसर दिया जाता है। फ्रांसीसी लोकसेवा में प्रशासनिक श्रेणी के अधिकारियों की योग्यताएँ निश्चय ही उच्च बौद्धिक प्रतिभाशील होती हैं। आलोचकों का कहना है कि प्रत्येक प्रशासनिक पद के लिए इतनी बुद्धिमत्ता आवश्यक नहीं होती। अतः व्यापक ज्ञान, प्रशासनिक विशेषज्ञता, धैर्यशील बुद्धि आदि की खोज में फ्रांसीसी लोकसेवा सीधे-सीधे दायित्वों वाले पदों को भी मितव्ययता के साथ नहीं भर पाती। चैपमैन के कथनानुसार, "एक दौड़ के घोड़े से हल खिंचवाना उसी प्रकार मूर्खतापूर्ण है जिस प्रकार एक ताँगे के घोड़े से डर्बी जीतने की आशा करना।"[1] (iv) फ्रांस में भर्ती के लिए ली जाने वाली परीक्षाओं में चरित्र का विशेष ध्यान नहीं रखा जाता। यह प्रयास किया जाता है कि आज बड़े आकार के लोक प्रशासन में विभिन्न प्रकार की प्रकृति एवं स्वभाव वालों को लिया जाए। यह स्वभाव एवं चरित्रगत भिन्नता प्रशासनिक कार्यकुशलता पर अनुकूल असर डालती है। (v) फ्रांस में उच्च शिक्षा का स्वरूप Career-Oriented है। (vi) यहाँ प्रशासन के तकनीकी एवं परामर्शदाता कार्यों में बहुत कम अन्तर किया जाता है। फ्रांसीसी विशेषज्ञ कर्मचारियों को तकनीकी सवीवर्ग तथा सक्षम प्रशासक दोनों ही माना जाता है तथा तकनीकी एवं प्रशासनिक दोनों ही कार्प्स के सदस्यों को प्रशासनिक पदों पर पदोन्नत किया जा सकता है। (vii) फ्रांस में लोक प्रशासन की आजीविका को व्यावसायिक प्रबन्ध एवं तकनीकी से पृथक् नहीं किया जाता।

1 "It is just stupid to make a race horse pull a plough as it is to expect a carthorse to win the Derby" —*Brian Chapman : op cit, p 93*

6 भारत, ब्रिटेन, संयुक्तराज्य अमेरिका तथा फ्राँस में सेवा वर्गीकरण की व्यवस्था

(System of Service Classification in India, Great Britain, U. S. A. and France)

सेवीवर्ग प्रशासन म अनेक दृष्टियों से एक व्यवस्थित सेवा-वर्गीकरण व्यवस्था का उल्लेखनीय महत्त्व है। विलोबी के मतानुसार सरकारी रोजगार का वर्गीकरण और स्तरीकरण निश्चय ही एक ऐसा प्रारम्भिक बिन्दु अथवा आधार है जिस पर समग्र सेवीवर्ग सरचना निर्भर करती है।[1] सम्भवत इसके बिना सेवीवर्ग प्रशासन की अनेक समस्याओं को सन्तोषजनक तरीके से नहीं सुलझाया जा सकेगा। सयुक्तराज्य अमेरिका मे पद वर्गीकरण व्यवस्था है जबकि अन्य देशों म सेवाओं का वर्गीकरण है।

सेवा वर्गीकरण का अर्थ
(The Meaning of Service Classification)

सेवा वर्गीकरण की व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न पदाधिकारियों को उनके कर्त्तव्यो एव दायित्वो के आधार पर विशेष वर्ग समूहो मे सयोजित कर लिया जाता है। यह व्यवस्था प्रशासनिक कार्यकुशलता, कर्त्तव्यों की स्पष्टता और कर्मचारियों के उपयुक्त प्रबन्ध के साथ-साथ उनके वेतन निर्धारण तथा अन्य सेवा की शर्तों के निर्धारण मे भी उपयोगी सिद्ध होती है। साइमन तथा अन्य के कथनानुसार, "पद वर्गीकरण के पीछे मूल विचार यह है कि एक सगठन मे उन सभी पदों को भर्ती, वेतन तथा अन्य सेवीवर्ग विषयो के सम्बन्ध मे एक ही समूह म समूहीकृत कर लिया जाए जो बहुत कुछ एक जैसे कार्यों एव दायित्वो का निर्वाह करते हैं।"[2]

1 *W. F. Willoughby*, op cit., p 204

2 "The basic idea in a position classification is that all those positions in an organisation which involve closely similar duties and responsibilities should be grouped together purposes of recruitment compensation and other personnel matters" —*Simon and others*, op cit., p 353

आज प्राय सभी देशों की सभी स्तरों की सरकारें अपनी प्रशासनिक संरचनाओं में सेवा वर्गीकरण की व्यवस्था को अपनाती हैं। संयुक्तराज्य अमेरिका की संघीय सेवा में सेवा वर्गीकरण का प्रारम्भ गणराज्य की स्थापना के साथ ही हो गया था। तब इसका लक्ष्य 'समान कार्य के लिए समान वेतन' (Equal Pay for Equal Work) था और तभी से इसी लक्ष्य की उपलब्धि के लिए आज तक व्यवस्थापन होता रहा है। डब्ल्यू बी ग्रेव्स (W B Graves) के मतानुसार "वर्गीकरण तुलनात्मक कठिनाई और दायित्व के अनुसार कार्य को उत्तरोत्तर क्रम में व्यवस्थित रूप से निश्चित करने के लिए परिभाषित किया जा सकता है।"[1] मि ग्रेव्स ने यह स्वीकार किया है कि कार्य के विश्लेषण पर आधारित होने के कारण सेवा वर्गीकरण एक कठिन कार्य है। यह व्यक्ति से नहीं वरन् उसके द्वारा सम्पन्न होने वाले कार्यों से सम्बन्ध रखता है। यहाँ समस्या यह है कि एक व्यक्ति अनेकों प्रकार के कार्य करता है जिनमें अलग-अलग ज्ञान, कुशलता, कठिनाई और दायित्वों की आवश्यकता रहती है।

सेवीवर्ग प्रशासन में पद (Position) का अर्थ उन कर्तव्यों एवं दायित्वों के समूह से है जिनकी ओर एक कर्मचारी अपने नियमित कार्यकारी समय में ध्यान देता है। पद बदले जा सकते हैं और प्राय बदले भी जाते हैं। कार्य की योजना, संगठन की संरचना एवं कार्य करने के तरीके की दृष्टि तथा कर्मचारियों की योग्यता एवं कार्य सम्पन्नता के पर्यवेक्षक द्वारा मूल्यांकन के आधार पर पदों में समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं।

सेवा वर्गीकरण के मूल तत्त्व
(The Essentials of Service Classification)

सेवा वर्गीकरण या पद वर्गीकरण का अर्थ अधिक स्पष्ट समझने के लिए इसके मूल तत्त्वों पर विचार करना सार्थक रहेगा। अमरिका के सेवीवर्ग प्रशासन ब्यूरो के निर्देशक फ्रेड टेलफोर्ड (Fred Telford) ने पद वर्गीकरण के निम्नलिखित मूल तत्त्वों का उल्लेख किया है[2]—

1 प्रत्येक व्यक्तिगत पद से सम्बन्धित तथ्यों के बारे में विस्तृत तथ्य एकत्रित किए जाते हैं तथा संगठन में उस पद के स्थान और स्वयं संगठन के कार्य तथा प्रशासनिक प्रक्रिया के बारे में भी तथ्यों का संकलन किया जाता है।

2. इस सूचना के आधार पर व्यक्तिगत पदों को वर्गों में समूहीकृत किया जाता है। प्रत्येक वर्ग में आने वाले सभी पद बहुत कुछ एक जैसे होते हैं। उनके लिए समुचित कार्य सम्पन्नता हेतु एक जैसी योग्यताओं की आवश्यकता होती है, इन रिक्त पदों पर नियुक्ति के लिए एक समान परीक्षाएँ ली जाती हैं और सभी के लिए समान वेतन की व्यवस्था की जा सकती है।

1 *W Brooke Graves* · op cit., p 127
2 *Fred Telford* "The classification & standardization movement in the Public Service" Annals of the American Academy of Political and Social Service, May 1924

3 सभी पदो के वर्ग की लिखित परिभाषा अथवा व्याख्या की जाती है। इस परिभाषा मे उस वर्ग के सभी कर्त्तव्यो का उल्लेख किया जाता है।

4 उस वर्ग के कार्य एव दायित्वो के सफल निर्वाह के लिए कर्मचारी की अपेक्षित शिक्षा, अनुभव, ज्ञान, कुशलता आदि सम्बन्धी न्यूनतम योग्यताएँ लिख दी जाती हैं।

5 प्रत्येक वर्ग के कार्यों एव दायित्वो को देखते हुए उसे तद्नुकूल नाम दे दिया जाता है।

6 इसमे निम्न पदाधिकारी से उच्च पदाधिकारियो तक पदोन्नति की शृंखला स्पष्ट कर दी जाती है।

7 प्रत्येक वर्ग के लिए वेतन सूची का उल्लेख कर दिया जाता है। उस वर्ग म विभिन्न कर्मचारियों को प्राप्त होने वाले न्यूनतम, अधिकतम और मध्यम श्रेणी की वेतन दरें स्पष्ट कर दी जाती हैं।

8 पद वर्गीकरण की यह योजना सभी सम्बन्धित लोगो को उपलब्ध कराई जाती है। नियुक्तिकर्त्ता, नियन्त्रणकर्त्ता, वित्तीय अधिकारी आदि सभी सगठनो एव व्यक्तियो को सेवा वर्गीकरण की योजना स्पष्टत बता दी जाती है।

सेवा वर्गीकरण की विशेषताएँ
(Characteristics of a Classification Plan)

प्राय सेवा वर्गीकरण का कार्य एव दायित्व केन्द्रीय सेवीवर्ग अभिकरण को सौंपा जाता है। अन्य अभिकरण अथवा सगठन भी यदा-कदा उसकी सहायता कर देते हैं। वर्गीकरण योजना के विकास की प्रक्रिया मे मुख्यत चार सीढियाँ होती हैं। प्रो स्टॉल के मतानुसार ये सीढियाँ क्रमश निम्नलिखित हैं—

1 **कार्य की व्याख्या और विश्लेषण**—जिन पदों का वर्गीकरण किया जाता है उनकी विलक्षणताएँ एव कर्त्तव्यो का विश्लेषण तथा अभिलेखन किया जाता है। सभी व्यक्तिगत पदो के बारे मे सभी सूचनाओ के आधार पर समान कार्य के लिए समान वेतन का सिद्धान्त लागू हो सकेगा तथा पदोन्नति की रेखा बनाई जा सकेगी। यह सूचना तीन प्रकार की होगी—पद के कर्त्तव्यो से सम्बन्धित, दायित्वो से सम्बन्धित और आवश्यक योग्यता एव कुशलता से सम्बन्धित। ये सूचनाएँ विभिन्न साधनो और अनेक स्रोतो से प्राप्त की जा सकती हैं। सूचना प्राप्ति के लिए प्रश्नावलियो का प्रयोग किया जाता है।

2 **पदों को वर्गों मे प्रबन्धित करना**—विभिन्न पदो को उनकी समानता के आधार पर एक वर्ग मे समूहीकृत किया जाता है। एक वर्ग (Class) विभिन्न पदो का ऐसा समूह है जिसके सभी पद अपने कर्त्तव्यो और उत्तरदायित्वो के आधार पर विभिन्न रोजगार प्रक्रियाओ में समान व्यवहार को उचित ठहराते हैं। यह कार्य *अपर्याप्त, अस्पष्ट और उत्तरदायित्वपूर्ण है इसलिए* पर्याप्त सावधानी बरतनी चाहिए। पदो का मूल्यांकन एक निश्चित विज्ञान के रूप में नहीं किया जा सकता। इसमे विषयगत व्याख्याएँ तथा मूल्यो और कठिनाइयों सम्बन्धी मनमाने अनुमान सम्भव

है। फिर भी यह एक व्यवस्था और तर्क का व्यवस्थित प्रयोग है अन्यथा पदों के सम्बन्ध में अराजकता और भ्रम फैल जाएगा। सेवा वर्गीकरण की प्रक्रिया को सदैव जाँचते रहना चाहिए ताकि विभिन्न पदों के सम्बन्ध में नई-नई सूचनाएँ मिल सकें। यह जाँच का कार्य कर्मचारियों की मेज पर जाकर उनके वास्तविक कार्य-व्यवहार को देखकर किया जा सकता है।

3 **वर्ग मानकों की तैयारी**—जब विभिन्न पदों के कार्यों एवं दायित्वों सम्बन्धी सूचना एकत्रित हो जाती है तथा उनका विश्लेषण करने के बाद प्रारम्भिक वर्ग बन जाते हैं तो अगले कदम पर सामान्यीकरण किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य एक वर्ग की परिभाषा इस प्रकार करना है ताकि उसे अन्य वर्गों से स्पष्टतः अलग किया जा सके और सम्बन्धित पद को उसमें शामिल किया जा सके। प्रत्येक वर्ग का नामकरण किया जाता है और उसके लिए आवश्यक न्यूनतम योग्यताएँ निर्धारित की जाती हैं। इस प्रक्रिया में कभी-कभी प्रारम्भिक वर्गीकरण को पूरी तरह परिवर्तित और संशोधित भी कर दिया जाता है।

4 **वर्गीकरण योजना को लागू करना**—उक्त सीढ़ियों के बाद अगला कदम पद वर्गीकरण योजना को लागू करने तथा इसके प्रशासन से सम्बन्धित है। इस हेतु वर्गीकरण योजना को स्वीकार किया जाता है इसके प्रशासन हेतु अभिकरण का निर्धारण किया जाता है वर्गीय मानकों का निर्धारण किया जाता है, वर्गों के लिए पदों का प्रारम्भिक आवंटन होता है वर्गीकरण के प्रशासन के लिए औपचारिक नियम स्वीकार किए जाते हैं और आवंटन सम्बन्धी अपीलों पर सुनवाई की व्यवस्था की जाती है।

सेवा वर्गीकरण का महत्त्व एवं आवश्यकता

(The Importance and Necessity of Service Classification)

आधुनिक सेवीवर्ग प्रशासन का शुभारम्भ होने से पूर्व प्रत्येक प्रशासनिक कर्मचारी को पृथक् से नियुक्त किया जाता था और उसके वेतन की राशि उसके व्यक्तिगत तथा राजनीतिक प्रभाव के आधार पर निश्चित की जाती थी। इसके परिणामस्वरूप विभिन्न विभागों, संस्थाओं अथवा एक ही विभाग में एक जैसा कार्य करने वाले लोगों को अलग अलग दर पर वेतन देने से पर्याप्त भ्रम और असन्तोष उत्पन्न होता था। इस स्थिति के परिणामस्वरूप कर्मचारियों का मनोबल गिर जाता था और दूसरी कुछ परेशानियाँ भी उत्पन्न होती थीं। सेवा वर्गीकरण की व्यवस्था का जन्म होने पर स्थिति में काफी कुछ सुधार हुआ। इसका महत्त्व केवल निषेधात्मक ही नहीं है वरन् इसके अनेक सकारात्मक लाभ भी हैं, जैसे—एक ही परीक्षा के आधार पर अनेक लोगों की एक साथ नियुक्ति, प्रबन्ध को सही बजट अनुमान लगाने में सहयोगी समान कठिनाई तथा समान कार्य के लिए समान वेतन की व्यवस्था करने में सहायक पदोन्नति एवं स्थानान्तरण कार्य में सुगमता आदि। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि पद वर्गीकरण अन्य सभी प्रकार की सेवीवर्ग गतिविधियों का मूल आधार है। संगठन एवं कार्य प्रक्रिया की दृष्टि से पद

वर्गीकरण न होने पर जो अनन्त समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं वे सब इससे दूर हो जाती हैं और विभिन्न सेवीवर्ग सम्बन्धी विषयों का न्यायपूर्ण तथा वस्तुपरक सचालन सम्भव हो पाता है।

सेवा वर्गीकरण के परिणामस्वरूप पर्यवेक्षक का कार्य अनेक दृष्टियों से सुगम बन जाता है। इसकी सहायता से वह अपने कार्यों को नियोजित कर सकता है वह विभिन्न पदाधिकारियों के कार्यों का सही प्रतिवेदन तैयार कर सकता है तथा अनेक अन्य बातें उसके सामने स्पष्ट हो जाती हैं। पद वर्गीकरण की सहायता से वह यह जानता है कि जिन कर्मचारियों का वह पर्यवेक्षण कर रहा है, उनके क्या कार्य हैं, वे कार्य कितनी कुशलता से सम्पन्न होने चाहिएँ, किस कर्मचारी को कितने विशेष प्रशिक्षण और निर्देशन की आवश्यकता है तथा किसी कर्मचारी ने अपने दायित्वों का निर्वाह किस सीमा तक किया है।

भर्ती के समय सेवा वर्गीकरण की व्यवस्था अनेक प्रकार से उपयोगी साबित होती है। इसके आधार पर ही भर्ती करने वाली संस्था विभिन्न पदों के लिए आवश्यक रिक्त स्थानों की घोषणा करती है, विभिन्न पदों के लिए आवश्यक न्यूनतम योग्यताएँ निर्धारित करती है, प्रत्याशी भी प्रतियोगिता में भाग लेने से पूर्व अपेक्षित पद के कार्यों, दायित्वों और कठिनाइयों के साथ-साथ उनसे प्राप्त सुविधा, सम्मान, वेतन, पदोन्नति के अवसर आदि से परिचित हो जाते हैं। पद-वर्गीकरण कर्मचारियों की नियुक्ति और कार्य प्रक्रिया में अतिराव और दुहराव पर रोक लगाता है।

सेवा वर्गीकरण का एक मुख्य लाभ समान कार्यों के लिए समान वेतन की व्यवस्था के रूप में प्राप्त होता है। संयुक्तराज्य अमेरिका में 1921 के कार्यपालिका आदेश द्वारा कर्मचारियों के वर्गीकरण को वेतन स्तरीकरण व्यवस्था का साधन माना गया था। सेवा वर्गीकरण और वेतन निर्धारण कार्यों के बीच पारस्परिक सम्बन्धों की घनिष्ठता के कारण ही दोनों को अनेक बार समानार्थक मान लिया जाता है। स्टॉल के कथनानुसार "कर्त्तव्यों के वर्गीकरण का उद्देश्य वेतन प्रशासन, भर्ती प्रक्रिया, प्रवेश की योग्यताएँ और परीक्षा कार्यक्रम की प्रकृति आदि के सचालन में सहयोग देना है।"[1]

वर्गीकरण के उपयोग का उल्लेख करते हुए नॉरमन जे पावेल ने इसकी निम्नलिखित उपयोगिताएँ एवं लाभ बताए हैं—

(1) **वेतन की दरें निश्चित करना**—किसी भी कार्य या पद के लिए वेतन की दर का निर्णय लेने से पूर्व प्रशासक को कई तथ्य और आंकड़ों की आवश्यकता

1 "But the purpose of a duties classification is to aid in the handling of such personnel matters as salary, administration and the recruitment process, entrance qualification and the nature of the testing programme" —O G Stahl : op cit, p 151.

होती है ताकि सम्बन्धित कर्मचारी के कार्य तथा संगठन में उसके कर्त्तव्यों और दायित्वों का स्तर जाना जा सके। 'समान कार्य के लिए समान वेतन' का सिद्धान्त व्यवहार में तभी साकार हो सकता है जबकि सन्तोषजनक वर्गीकरण योजना कायम हो। बिना वर्गीकरण योजना के विभिन्न पदों को दिए गए नाम अर्थहीन बन जाते हैं और इसलिए न्यायपूर्ण वेतन व्यवस्था नहीं हो पाती। असमानतापूर्ण वेतन व्यवस्था पद वर्गीकरण के अभाव का परिणाम है। यह नियोजित भी हो सकती है और परिस्थितिजन्य भी।

2 **प्रशासक को उत्तरदायी बनाने में सहयोगी**—वर्गीकरण योजना द्वारा कार्यों और पदों की अर्थपूर्ण परिभाषा की जाती है। पद का नाम लेते ही उसके दायित्वों और कर्त्तव्यों का एक चित्र हमारे सामने उभर आता है। यदि कोई कर्मचारी इस चित्र के प्रतिकूल व्यवहार करे तो उसे तुरन्त नियन्त्रित किया जा सकता है तथा उसे कार्य के लिए उत्तरदायी बना कर अनुशासनात्मक कार्यवाही की जा सकती है।

3. **सेवीवर्ग की भर्ती चयन और नियुक्ति में सहयोगी**—किसी संगठन में किए जाने वाले कार्यों की प्रकृति सम्बन्धी सूचना प्राप्त करने के बाद ही उन पदों के लिए बुद्धिपूर्ण और मितव्ययितापूर्ण तरीके से नियुक्तियाँ की जा सकेंगी। यदि प्रत्येक पद पर नियुक्ति के लिए अलग से विचार किया जाए और नियुक्तिकर्त्ता यन्त्र अलग से कार्य करे तो यह महँगा और उलझनपूर्ण रहेगा किन्तु यदि एक जैसे पदों को एक वर्ग में समूहीकृत कर दिया जाए तो नियुक्तिकर्त्ता अभिकरण एक साथ बहुत से कर्मचारियों की भर्ती कर सकता है।

4 **कर्मचारियों के मनोबल और अन्तःसंचार को प्रोत्साहन**—कर्मचारियों का कार्य अनेक तथ्यों से प्रभावित होता है। उदाहरण के लिए वेतन की न्यायपूर्ण दर, पदोन्नति के पर्याप्त अवसर, कार्य सम्पादन के लिए उचित मापदण्ड आदि। एक उचित वर्गीकरण योजना इन मूल बातों की स्थापना में सहयोग प्रदान करती है। यह पदों के विभिन्न वर्गों में पदोन्नति की रेखाएँ स्पष्ट करके तथा किसी पद से अपेक्षित कार्य की मात्रा और गुण निर्धारित करके कर्मचारी के मनोबल को ऊँचा उठाती है। इसी प्रकार पद वर्गीकरण योजना प्रशिक्षण कार्यक्रम और सेवीवर्ग सम्बन्धी दूसरी बातों में भी अपेक्षित सुविधा पहुँचाती है। अपेक्षित कार्य की सूचना प्राप्त होने के बाद कर्मचारी को सेवाकालीन प्रशिक्षण देने में सुविधा रहती है। सेवा वर्गीकरण के कारण पर्यवेक्षक और कर्मचारी के बीच सामान्य समझ पैदा होती है और इस प्रकार कर्मचारी तथा प्रबन्ध के सम्बन्ध सुधरते हैं।

5 **संगठनात्मक लाभ**—वर्गों के निश्चित नामों का प्रयोग होने के कारण एक जैसी शब्दावली का प्रयोग सम्भव होता है। इससे प्रत्येक पद की विशेष आवश्यकताएँ ज्ञात की जा सकती हैं। इससे बजट प्रक्रिया को सहयोग मिलता है। पद वर्गीकरण प्रत्येक पद के कार्यों सम्बन्धी सूचनाएँ प्रदान करके संगठन को

समस्याओं तथा प्रक्रियाओं के विश्लेषण में मदद करता है। इसके द्वारा कार्यों के दोहराव, असंगति आदि बातों का पता लगाया जा सकता है।

6 लोकसेवाओं में मूल्यों की स्थापना—वर्गीकरण के फलस्वरूप नागरिक और करदाता यह जान जाते हैं कि सेवीवर्ग प्रशासन पर होने वाले व्यय और दी जाने वाली सेवाओं के बीच एक तर्कसंगत सम्बन्ध है। इसके अतिरिक्त वर्गीकरण सरकारी कर्मचारियों का वेतन निश्चित करते समय सम्भावित राजनीतिक पक्षपात पर रोक लगाता है।

7 प्रबन्ध के अस्त्र के रूप में—वर्गीकरण प्रशासनिक पदसोपान विकसित करने तथा समुचित कार्य विभाजन करने में सहयोगी बन कर प्रबन्ध के कार्य को सरल बना देता है। प्रबन्ध उसकी सहायता से अपना कार्य विभिन्न स्तरों के बीच कार्य तथा स्तरों के महत्त्व के आधार पर वितरित कर देता है।

8 कर्मचारियों के सन्तोष की वृद्धि—वेतन और सेवा की अन्य शर्तों को संस्था का रूप देकर वर्गीकरण योजना एक वस्तुपरक मापदण्ड प्रस्तुत करती है और स्वेच्छाचारी दण्डों पर रोक लगाती है। कर्मचारियों को भी यह विश्वास रहता है कि कार्य की शर्तों और सुविधाओं की दृष्टि से किसी के साथ कोई अनुचित पक्षपात नहीं किया जा रहा है। उनके मन में सुरक्षा और न्याय की भावना के साथ-साथ सन्तोष के भाव भी जाग्रत होते हैं।

9 निर्देशन, नियन्त्रण और अभिप्रेरणा में सहयोगी—वर्गीकरण की सहायता से प्रबन्ध अपने कर्मचारियों के कार्यों का निर्देशन और नियन्त्रण कर पाता है। प्रबन्धक को यह जानने में सुविधा रहती है कि कौनसे कर्मचारी क्या कार्य कर रहे हैं तथा उन्हें क्या कार्य करना चाहिए। यदि कोई कर्मचारी अपने कर्त्तव्य पालन में विशेष क्षमता प्रदर्शित करता है तो उसकी योग्यताओं और प्रयासों को मान्यता दी जाती है। वर्गीकरण के रूप में उचित पदसोपान बन जाने के बाद प्रबन्ध के कर्मचारियों के सामयिक नियन्त्रण में सुविधा रहती है। अयोग्य तथा अक्षम कर्मचारियों को या तो निकाला जा सकता है अथवा उन्हें उन्हीं पदों पर रोका जा सकता है जहाँ से आगे वे योग्यता प्रदर्शित नहीं करते।

नियन्त्रण को प्रभावशाली बनाने के लिए वर्गीकरण द्वारा एकरूप कार्य के स्तर निर्धारित किए जाते हैं। योग्यता के अपव्यय को बचाने के लिए समय समय पर यह देखा जाता है कि एक कर्मचारी अपने पद और कुशलता के अनुकूल कार्य प्राप्त कर सका है अथवा नहीं। यदि इसमें अपव्यय दिखाई दे तो तुरन्त कार्यवाही की जाती है।

10 अद्यतन सेवीवर्ग अभिलेख—वर्गीकरण के कारण सेवीवर्ग अभिलेख को अद्यतन बनाए रखना सरल हो जाता है। प्रत्येक व्यक्तिगत कर्मचारी और सेवा के पूरे समूह के सम्बन्ध में सारी बातें अभिलेख रूप में तैयार रखी जाती हैं। प्रत्येक स्तर तथा कार्यात्मक समूह की सेवा के आकार का अध्ययन करने के लिए

अभिलेख उपलब्ध रहते हैं। इनके फलस्वरूप प्रबन्ध अनेक सेवा सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाने, रोजगार की प्रवृत्तियों और रूपों का अध्ययन करने तथा सेवीवर्ग के कार्यक्रमों और नीतियों की योजना बनाने में इनका सदुपयोग करता है।

सेवा अथवा पद-वर्गीकरण की सीमाएँ एवं समस्याएँ
(The Limitations and Problems of Service or Position Classification)

सेवा अथवा पद वर्गीकरण करने वाले अधिकारी का यह मुख्य कर्त्तव्य है कि वह समान कार्य उत्तरदायित्व एवं कठिनाई वाले पदों को एक वर्ग विशेष में निश्चित कर दे। ऐसा करते समय वह उस पद के कार्यों एवं उत्तरदायित्वों का अध्ययन करेगा। यदि कोई पद अपने वर्ग के उत्तरदायित्वों में भिन्न बन चुका है तो उसे उस वर्ग से निकाल देगा। सेवा अथवा पद-वर्गीकरणकर्त्ता केवल तथ्यों का अध्ययन करता है। वह पद को केवल उसी रूप में देखता है जैसा कि वह है। इस अधिकारी को पदों के कार्यों में हेर फेर करने आन्तरिक संगठन में परिवर्तन करने, किसी कर्मचारी को पदोन्नत या पदावनत अथवा स्थानान्तरित करने का अधिकार नहीं होता। पद वर्गीकरण के कार्य पर ये कुछ सीमाएँ हैं। पद-वर्गीकरण का कार्य, जैसा कि डॉ॰ व्हाइट का कथन है एक अत्यन्त कठिन और आपत्तिजनक कार्य है। इस जोखिमपूर्ण कार्य को करने के लिए जिन परीक्षकों एवं विश्लेषणकर्त्ताओं की आवश्यकता हो वे तकनीकी योग्यता सम्पन्न होने चाहिए। उनमें सामान्य स्तर से अधिक सामाजिक बुद्धि होनी चाहिए क्योंकि उनके कार्य से लोगों के नाराज होने की सम्भावनाएँ अधिक रहती हैं। उनमें इतनी योग्यता एवं कुशलता होनी चाहिए कि नाराज कर्मचारी या प्रशासनिक अधिकारी भी उन्हें ईमानदार समझें। जिस समय वे प्रमाण एकत्र करें और गवाहों की परीक्षा करें तो उनमें एक न्यायाधीश की सी निष्पक्षता और वस्तुनिष्ठता होनी चाहिए। अधिकारियों को वर्गीकृत संगठन के कार्यों का पूरा-पूरा ज्ञान होना चाहिए। यद्यपि ये अधिकारी लोकसेवा आयोग एवं पद-वर्गीकरण योजना के प्रति अपनी स्वामिभक्ति रखें तथापि इनका अधिक से अधिक प्रयास यह होना चाहिए कि कानून की सीमाओं में रहकर विभागों को अधिक से अधिक सहायता प्रदान करें। ये अधिकारी पद-वर्गीकरण के लक्ष्यों एवं सामान्य सिद्धान्तों से भी परिचित होने चाहिए ताकि उनका कोई कार्य विपरीत दिशा में सचालित न हो सके।

सेवा अथवा पद वर्गीकरण की प्रक्रिया के मार्ग में व्यावहारिक दृष्टि से जो अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, वे इस प्रकार हैं—

1 सबसे बड़ी समस्या यह उठती है कि किसी पद का वर्ग में किस प्रकार सम्मिलित किया जाए, यह निर्णय किस प्रकार किया जाए कि अमुक पद अमुक वर्ग में आना चाहिए। कई बार ऐसा होता है कि अलग-अलग दिखने वाले पदों में भी मूलभूत समानता रहती है जबकि एक समान लगने वाले पदों के बीच मौलिक असमानता के तत्त्व दिखाई देते हैं। कार्यों एवं उत्तरदायित्वों की केवल गणना मात्र

कर लेना ही पर्याप्त नहीं है, उनका महत्व की दृष्टि से मूल्यांकन किया जाना बहुत जरूरी है। यह कार्य जितना महत्वपूर्ण है उतना ही जटिल एवं कठिन भी है। उदाहरण के लिए यदि प्रत्येक कार्यालय के वरिष्ठ लिपिक को समान समझा जाए, उनके साथ एक जैसा व्यवहार किया जाए तथा सेवा सम्बन्धी सुविधाएँ, वेतन आदि एक समान प्रदान किए जाएँ तो इसे न्यायपूर्ण नहीं कहा जा सकता। कई कार्यालयों में वरिष्ठ लिपिक पर इतना कार्यभार होता है कि उसे साँस लेने की फुरसत नहीं होती जबकि कुछ अन्य कार्यालयों में वरिष्ठ लिपिक किसी प्रकार अपना समय व्यतीत करने की चिन्ता में रहते हैं। एक का सिर उत्तरदायित्वों के बोझ से झुका रहता है जबकि दूसरा इनसे मुक्त रहता है। इन दोनों को एक ही वर्ग में वर्गीकृत करना उचित नहीं होगा।

2 पदों को वर्गीकृत करने के लिए निश्चित नियम नहीं होता जिसके आधार पर दो पदों को एक ही वर्ग में रखा जा सके। शिक्षा, कर्त्तव्य, उत्तरदायित्व, कार्य की कठिनाइयाँ, जटिलताएँ—ये सब इतने अधिक मापदण्ड हैं कि प्रायः उचित निर्णय लेना कठिन हो जाता है। इन मापदण्डों में परस्पर संघर्ष उत्पन्न होने की सम्भावनाएँ भी रहती हैं। यदि एक बात समान है और दूसरी बात असमान है तो निर्णायक तत्त्व किसे माना जाएगा, यह स्पष्ट नहीं होता।

3 जब पदों का वर्गीकरण करने में व्यक्तिगत पद की विशेषताओं पर अधिक ध्यान दिया जाता है तो पदों के अनेक वर्ग बन जाते हैं जिनके बीच बहुत कम अन्तर रह जाता है। इस प्रक्रिया से पदोन्नत सोपानों की मात्रा बढ़ जाती है और एक पदाधिकारी को वांछनीय पद तक पहुँचने के लिए बहुत सीढ़ियाँ पार करनी होती हैं। इसके फलस्वरूप कर्मचारियों व पदाधिकारियों का मनोबल गिर जाता है और कार्यों के प्रति उनका उत्साह ढीला पड़ जाता है।

4 सेवा अथवा पद वर्गीकरण कई बार अधिकारियों के बीच संघर्ष उत्पन्न कर देता है। उनमें परस्पर द्वेष तथा मन-मुटाव पैदा हो जाते हैं। सरकारी सेवाओं में वर्गीय भावना कुल मिलाकर प्रशासनिक असुविधाओं का कारण बन जाती है।

5 केन्द्रीय एवं राज्य स्तरीय कर्मचारियों के कार्य की स्थिति एवं समस्याओं में पर्याप्त भिन्नता रहती है। अतः इन दोनों स्तरों पर पद-वर्गीकरण के लिए कोई निश्चित आधार नहीं अपनाया जा सकता जिसके परिणामस्वरूप पद वर्गीकरण बहुरूपी बन जाता है और इसलिए इसमें पर्याप्त भ्रम रहने की गुंजाइश रहती है।

सेवा अथवा पद वर्गीकरण के विभिन्न प्रशासनिक समस्याओं पर टोरपे ने विस्तार से चर्चा की है। उनके मतानुसार ये समस्याएँ निम्न हैं—

(1) अपर्याप्त रूप से तैयार किए हुए पद विवरण (Inadequately prepared position descriptions),

(2) व्यक्तिगत वर्गीकरण सम्बन्धी कार्यों के लिए आवश्यक कालावधि (Length of time required for individual classification action),

(3) असामयिक पद-विवरण (Out dated position descriptions),
(4) दबाव (Pressures),
(5) अपूर्ण वर्ग-विशेषीकरण (Incomplete class specification)
(6) कर्मचारी और पर्यवेक्षक में विश्वास का अभाव (Lack of confidence between employee and superviser),
(7) यह विश्वास कि उच्चस्तरीय पदों को पर्यवेक्षण का उत्तरदायित्व सौंपना आवश्यक है (Belief that supervisory responsibility is necessary for allocation to higher level positions)
(8) सुरक्षात्मक प्रयास (Security precautions), एवं
(9) वर्गीकरण-प्रक्रिया का दुरुपयोग (Misuse of classification process)

सेवा अथवा पद वर्गीकरण की एक स्वस्थ व्यवस्था
(A Sound System of Service or Position Classification)

प्रशासनिक संगठनों में किया जाने वाला पद वर्गीकरण सेवीवर्ग प्रबन्ध की एक महत्त्वपूर्ण एवं केन्द्रीय आकर्षण की समस्या है जिसका सन्तोषजनक समाधान इस बात को तय करने में प्रभावशील रूप से भाग लेता है कि संगठन में कार्यकुशलता रहेगी अथवा नहीं और रहेगी तो किस मात्रा में रहेगी। पद-वर्गीकरण का रूप कैसा रखा जाए और उसमें किन विशेषताओं को समन्वित किया जाए—इस सम्बन्ध में लोक प्रशासन के विचारकों ने अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किए हैं—

प्रथम, यह कहा जाता है कि पदों का वर्गीकरण उत्तरदायित्व के आधार पर किया जाए, कार्यों के आधार पर नहीं। कार्य तो दो अधिकारियों के समान हो सकते हैं अथवा तुलनात्मक रूप से एक अधिकारी के कार्य कुछ अधिक हो सकते हैं किन्तु इस दृष्टि से उनके स्तर का निर्धारण करना उपयुक्त नहीं है। उच्च पद उसी अधिकारी को सौंपा जाना चाहिए जो अधिक उत्तरदायित्वों से युक्त हो।

दूसरे, यह सुझाया जाता है कि वर्गीकरण का रूप स्पष्ट होना चाहिए। अस्पष्ट वर्गीकरण संगठन के कर्मचारियों के दिल में अनेक प्रकार के भ्रम पैदा कर अनेक समस्याओं को जन्म देता है। पद वर्गीकरण की केवल वही योजना सफल हो पाती है जिससे सभी पदाधिकारी अवगत हो जाएँ। स्टॉल महोदय ने लिखा है कि जो पद-वर्गीकरणकर्ता अपने तकनीकी ज्ञान को गुप्त रखता है वह अपने संगठन में प्रायः अच्छे सम्बन्ध नहीं रख पाता।

तीसरे, कुछ विचारकों का कहना है कि सेवा अथवा पद-वर्गीकरण की योजना में कुछ स्थायित्व रहना चाहिए, क्योंकि यदि उसमें प्रतिदिन परिवर्तन की नीति अपनाई गई तो उससे प्रत्याशित लाभ प्राप्त नहीं हो पाएँगे। एक वर्ग के लिए आज कुछ योग्यताएँ निर्धारित की गई हैं—कल कुछ दूसरी, अथवा आज उस वर्ग का नाम कुछ रखा गया है और कल कुछ और तो इन सबके परिणामस्वरूप संगठन में पर्याप्त भ्रम उत्पन्न हो जाएगा।

चौथे, अधिकांश अमेरिकी लेखक यह मानते हैं कि लोकसेवा स्थायी चीज नहीं है। राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं अन्य तत्त्वों मे मोड़ आने पर प्रशासनिक अधिकारियों के उत्तरदायित्वों की प्रकृति एवं मात्रा में गम्भीर परिवर्तन हो जाते हैं। इन परिवर्तनों के अनुसार यदि पद-वर्गीकरण की योजना में भी सशोधन न किए गए तो वह असामयिक (Out of date) बन जाएगी। वर्गीकरण योजना को सामयिक रखना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए उसका समय-समय पर निष्पक्ष मूल्यांकन होता रहना चाहिए।

पाँचवें, पद-वर्गीकरण की एक अच्छी योजना प्राय सहकारी प्रयास (Co-operative Effort) होती है। योजना की सार्थकता एवं प्रभावशीलता इस बात पर निर्भर करती है कि सगठन म इस समझा और स्वीकार किया जाए, इसके लिए वर्गीकरण की प्रक्रिया मे भाग लेने को उन्हे प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। योजना के विकास एवं क्रियान्विति म भागीदारो को समान रूप स भाग लेना चाहिए। वर्गीकरण के लक्ष्यो को विभागो एव सम्भागो के अध्यक्षो के सम्मुख अच्छी तरह स्पष्ट कर देना चाहिए, इकाई के सभी कर्मचारियो से मिलना चाहिए तथा योजना को बनाते समय कर्मचारी सघ के प्रतिनिधियो का सहयोग लेना चाहिए। इन सभी को यह अवसर देना चाहिए कि वे प्रत्येक स्तर पर आलोचना एव सुझाव प्रस्तुत कर सकें।

छठे, पद-वर्गीकरण के वर्गों के बीच मे रिक्त स्थान नही होना चाहिए, अर्थात् वे एक-दूसरे से जुड़े हुए हो। पद-सोपान की भाँति सर्वोच्च पद एव निम्न पद के बीच अनेक ऐसी कड़ियाँ हो जो उनको जोड़ने का कार्य करें। ऐसा न होने पर वर्गीकरण की व्यवस्था पदोन्नति के कार्य को अत्यन्त जटिल बना देती है।

सातवें, पद-वर्गीकरण की एक अच्छी योजना को केवल अनुशासन, पदोन्नति अथवा नियन्त्रण के लिए ही नहीं, वरन् मुख्यत मनोबल को ऊँचा उठाने, प्रेरणा पैदा करने एव कार्यकुशलता बढाने के लिए सचालित किया जाना चाहिए। यह योजना सगठन के कार्यों मे एकरूपता, प्रमापकता, क्रियान्विति की गति एव लोचशीलता कायम रखने वाली होनी चाहिए।

आठवें, इनमे उन कर्मचारियो एव अधिकारियो की अपीलें सुनने का प्रावधान भी होना चाहिए जिनको पद-वर्गीकरण की इस योजना से किसी प्रकार का अभाव-अभियोग हो। वर्गीकरण म पदो के बीच नाम आदि के आधार पर ऐसा अन्तर न रखा जाए कि उनमे वर्ग-सघर्ष पैदा हो जाए।

सेवा वर्गीकरण की प्रमुख प्रणालियाँ
(Major Systems of Service Classification)

विभिन्न देशो मे प्राप्त सेवा वर्गीकरण व्यवस्थाओं को मोटे रूप से दो वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है। इनमे एक ग्रेट ब्रिटेन मे तथा दूसरी सयुक्तराज्य अमेरिका मे उपलब्ध होती है। सयुक्तराज्य अमेरिका की वर्गीकरण व्यवस्था अधिक

विकसित और कठोर है। यह पद और वर्गीकरण की अवधारणाओं पर आधारित है। पद का अर्थ उन कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों से है जिनके प्रति किसी व्यक्ति से समय और ध्यान देने की आशा की जाती है, दूसरी ओर वर्ग ऐसे पदों का समूह है जिनका वेतन और अन्य रोजगार प्रक्रियाएँ दूसरे वर्गों के पदों से भिन्न हैं। संयुक्त-राज्य में मुख्य मान्यता यह है कि किसी पद की स्थिति उसके द्वारा सम्पन्न कार्यों पर निर्भर है व्यक्ति की पूर्व सेवा पर नहीं। यहाँ व्यक्ति को नहीं वरन् उसके पद को महत्त्व दिया जाता है।

ग्रेट ब्रिटेन में ट्रेजरी श्रेणियों[1] की सेवाएँ सामान्य कार्यात्मक श्रेणियों के आधार पर कुछ व्यापक सेवाओं से युक्त होती हैं। तदनुसार ये सेवाएँ प्रशासनिक श्रेणी, निष्पादक श्रेणी टंकणकर्त्ता, लेखन सहायक, लिपिक आदि में विभाजित की जाती हैं। इन श्रेणियों में भर्ती के समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि विभिन्न पदों पर खुली प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा नवयुवकों को नियुक्त किया जाए। भर्ती परीक्षाओं में प्रत्याशी की तकनीकी और शैक्षणिक तथा विशेषज्ञतापूर्ण योग्यताओं की अपेक्षा सामान्य योग्यता और बुद्धि पर विशेष ध्यान दिया जाता है। सरकार का कार्य भर्ती किए गए पदाधिकारियों के आधार पर वर्गीकृत नहीं किया जाता वरन् बड़े बड़े खण्डों में विभाजित किया जाता है। विभिन्न खण्डों के लिए विशेष स्तर की शैक्षणिक योग्यता वाले किसी भी योग्य प्रत्याशी को नियुक्त किया जाता है। ट्रेजरी श्रेणियों के बाहर अधिकांश विभागीय सेवाएँ अपने पद वर्गीकरण में संशोधन करके, संयुक्तराज्य अमेरिका की व्यवस्था के अधिक निकट हो गई हैं। ये सेवाएँ मुख्य तकनीकी और वैज्ञानिक प्रकृति की हैं और इसलिए इनमें कार्यों तथा दायित्वों के आधार पर व्यवस्थित वर्गीकरण अपनाया गया है।

अमेरिकी और ब्रिटिश पद वर्गीकरण व्यवस्थाओं का अन्तर मुख्यतः पद (Position) और श्रेणी (Rank) का अन्तर है। श्रेणी की मान्यता यह है कि वेतन, सम्मान, अधिकार इत्यादि के द्वारा व्यक्ति को प्राप्त होने वाला स्तर एक भिन्न चीज है, चाहे उसे सम्पन्न करने के लिए कार्य कुछ भी दिया गया हो। इस व्यवस्था में किसी कर्मचारी का व्यावसायिक भविष्य कुण्ठित किए बिना आवश्यकतानुसार कहीं भी उसकी सेवाओं का उपयोग किया जा सकता है। दूसरी ओर अमरिकी व्यवस्था में पद की धारणा यह है कि व्यक्ति का स्तर उसके द्वारा किए जाने वाले कार्य पर निर्भर करता है न कि उस व्यक्ति पर जो कार्य सम्पन्न करता है। दोनों व्यवस्थाओं का यह अन्तर अधिक आधारभूत और मौलिक नहीं है, वरन् मुख्य अन्तर जोर देने और मात्रा का है।

पद वर्गीकरण के अर्थ, महत्त्व स्वरूप तथा क्षेत्रों के सम्बन्ध में कुछ प्रारम्भिक जानकारी के बाद अब हम विचाराधीन देशों में पद वर्गीकरण की स्थिति का संक्षेप में अवलोकन करेंगे।

1 *W. J. M. Mackenzie and J. W. Grove* Central Administration in Britain, 1966, pp 18 19

ग्रेट ब्रिटेन मे सेवा वर्गीकरण
(Service Classification in Great Britain)

ग्रेट ब्रिटेन मे व्यापक रूप से लोकसेवाओं को चार श्रेणियों मे विभाजित किया जाता है, ये हैं—(i) औद्योगिक तथा गैर-औद्योगिक सेवा—औद्योगिक लोकसेवक वे कहलाते हैं जिन्हे अस्त्र फैक्ट्रियाँ जैसे स्थानों म नियुक्त किया जाता है। इनका वेतन सम्बन्धित उद्योग द्वारा ही निर्धारित होता है तथा इन्हें व्यावसायिक सघो म सगठित रहने की सुविधा रहती है। डाकघर के कार्यकर्त्ता भी औद्योगिक लोकसेवक माने जाते हैं किन्तु इनका वेतन राष्ट्रीय ह्विटले परिषदो के समझौतो द्वारा निश्चित किया जाता है। गैर-औद्योगिक लोकसेवाएँ वे होती हैं जो औद्योगिक की परिभाषा मे नहीं आती। (ii) सुस्थापित और गैर-सुस्थापित सेवाएँ—सुस्थापित लोकसेवक वे कहे जाते हैं जिनकी नियुक्ति राजकोष द्वारा स्वीकृत सुस्थापित पदो पर होती है। दूसरी ओर गैर सुस्थापित लोकसेवक वे हैं जो या तो अस्थायी पदो पर नियुक्त हैं अथवा अस्थायी किन्तु गैर-सुस्थापित पदो पर हैं तथा उनकी स्थायी नियुक्ति अभी विचाराधीन है। (iii) राजकोषीय अथवा विभागीय श्रेणी—विभागीय लोकसेवक सामान्यतः एक विभाग तक प्रतिबन्धित होते हैं और उनकी सेवा की शर्तें बहुत कुछ उनके विभाग द्वारा नियन्त्रित होती हैं। राजकोषीय श्रेणी के लोकसेवक किसी विशेष विभाग के लिए नही वरन् सामान्यतः विभाग के लिए नियुक्त किए जाते हैं और इनकी सेवा की शर्तें राजकोष द्वारा निर्धारित होती हैं। (iv) सामान्य और विशेषज्ञ सेवाएँ—विशेषज्ञ सेवाएँ वे होती हैं जो वैज्ञानिक, तकनीकी या व्यावसायिक प्रकृति के कार्य सम्पन्न करती हैं। वकील, डॉक्टर, अभियन्ता, प्रयोगशाला सहायक आदि सेवाएँ इसी श्रेणी मे आती हैं। इनके अतिरिक्त सेवाएँ सामान्य की श्रेणी मे आती हैं।

ब्रिटिश लोकसेवा के उक्त वर्गों मे परस्पर अनिराव और दुहराव है। यहाँ 1853–54 मे ट्रेवील्यान नार्थकोट प्रतिवेदन के सुझावो के आधार पर त्रिवर्गीय लोकसेवाओं का विकास हुआ किन्तु इस त्रिवर्गीय रूप रचना मे ग्रेट ब्रिटेन की वर्तमान लोकसेवाएँ शामिल नही हो पातीं। आज सरकारी प्रशासन के बढते हुए क्षेत्र के अनुसार अनेक नई व्यावसायिक सेवाएँ प्रारम्भ हुई हैं, जो इन तीनो वर्गों मे नही आतीं।[1] प्रोफेसर ई एन ग्लेडन ने ब्रिटिश लोकसेवाओं को मोटे रूप से तीन भागो मे वर्गीकृत किया है—(i) गैर-औद्योगिक नागरिक सेवा, (ii) औद्योगिक नागरिक सेवा तथा (iii) महामहिम की राजनयिक सेवा। इनमे से प्रथम श्रेणी को उन्होने पुन इन भागो मे वर्गीकृत किया है–(क) प्रशासनिक वर्ग, (ख) निष्पादकीय, लिपिकीय तथा अन्य कार्यालय सम्बन्धी वर्ग, (ग) व्यावसायिक, वैज्ञानिक एव वैज्ञानिक एव तकनीकी वर्ग, (घ) छोटे तथा सहायक वर्ग।

1 "The service generally has a much greater complexity than the three class pattern suggests" —E N Gladden op cit., p 38

ग्रेट ब्रिटेन की वर्तमान लोकसेवाएँ मूलत 19वी शताब्दी की उपज हैं। 19वी शताब्दी तक यहाँ लोकसेवाओ के सगठन का सामान्य रूप नही उभर सका था। तब सेवाएँ अनुग्रह (Patronage) पर आधारित थी, नियुक्ति का कोई स्वीकृत मापदण्ड नही था तथा वेतन-भुगतान का मानक तरीका नही था। ट्रेवील्यान नार्थकोट (Trevelyan Northcote) ने 1854 म प्रस्तुत प्रतिवेदन म इस सम्बन्ध मे सुझाव दिए। इन सुझावो को क्रमश 1855 और 1870 मे स्वीकार किया गया। 1870 मे सभी सेवाओ को एक ही सेवा म एकीकृत कर दिया गया तथा उनके लिए सामान्य वेतन एव सेवा निवृत्ति की दरें निर्धारित की गईं। इसक बाद रिडले कमीशन–1890 (Ridley Commission–1890) मैकडानल कमीशन–1914 (Mac-Donnell Commission–1914) ग्लैडस्टन कमीशन–1918 (Gladstone Commission–1918) टोमलिन कमीशन–1931 (Tomlin Commission–1931) तथा फुल्टन कमेटी–1966 (Fulton Committee–1966) आदि के द्वारा लोकसेवाओ क वर्गीकरण को अधिक व्यावहारिक, तथ्यगत, उपयोगी तथा कार्यकुशल बनाने क लिए सुझाव दिए गए।

उक्त ऐतिहासिक एव परिचयात्मक पृष्ठभूमि क बाद हम ब्रिटिश लोकसेवा के कुछ प्रमुख वर्गों का सक्षेप म विवेचन करेंगे।

(1) प्रशासनिक वर्ग

(The Administrative Class)

ग्रेट ब्रिटेन की नागरिक सेवा क सभी उच्च पदो पर इस श्रेणी के सदस्य आसीन हैं। 1966 मे इनकी सख्या लगभग 2500 थी। इन पदा पर नियुक्तियाँ अधिकतर योग्यतर स्नातको म स प्रत्यक्ष रूप स की जाती हैं किन्तु अनेक पद (लगभग 40%) आन्तरिक पदोन्नति अथवा श्रेणी परिवर्तन द्वारा की जान वाली नियुक्तियों से भी भरे जाते हैं। यह श्रेणी प्रशासनिक चक्र की धुरी है जो एक तरफ से ससदीय यन्त्र से सलग्न है और दूसरी ओर प्रशासन की क्रियाशील भुजाओ से।[1]

साधारणत इस वर्ग क प्रशासको का कार्य सरकारी नीति की रचना, सरकारी यन्त्र का समन्वय तथा विभागो का सामान्य प्रशासनिक नियन्त्रण करना है। कभी-कभी नीति-रचना के कार्य म इस वर्ग का योगदान इतना अधिक बना दिया जाता है कि इसके प्रशासनिक कार्य पृष्ठभूमि मे चले जाते हैं। इस वर्ग के कुछ प्रमुख कार्य ये हैं[2]—

(1) वित्तीय कार्य (Financial Functions)—ये प्रशासक व्ययो का पूर्व अनुमान लगाते है, विभागीय कार्यों पर वित्तीय नियन्त्रण स्थापित करते हैं, उपयुक्त विनियोग कार्यक्रमो की पुनरीक्षा करते हैं।

1 "This class is the hub of the administrative wheel, on one side it is attached to the Parliamentary machine, on the other to the Executive arms of the Administration" —*Herman Finer* The Theory and Practice of Modern Government, Asia, 1965 p 763

2 *M P Barber* · Public Administration, M. E. Handbooks, 1972, p 61

(ii) नीति रचना (Policy Formulation)—ये अधिकारी सरकारी नीति के विकास, रूप-रचना एवं कार्यान्विति से सम्बन्ध रखते हैं। ये नई नीतियों के सम्बन्ध में सरकार को सुझाव तथा परामर्श देते हैं। ये मन्त्रियों के भाषणों के लिए विषय सामग्री तैयार करते हैं। नीति सम्बन्धी कार्य का सम्पादन करते समय इन अधिकारियों को आवश्यकतानुसार राष्ट्रीय उद्योगों के साथ समझौता वार्ताएँ करनी होती हैं। ये निजी क्षेत्र के साथ सहयोग करते हैं तथा स्थानीय अधिकारियों से वार्ता करते हैं।

(iii) प्रबन्ध सम्बन्धी कार्य (Management Function)—ये विभागीय स्थापना सम्भाग तथा स्टॉफ प्रबन्ध को निर्देशन प्रदान करते हैं। प्रत्येक विभाग में एक केन्द्रीय स्थापना सम्भाग होता है जो कि अवर सचिव के अधीन कार्य करता है। प्रशासनिक वर्ग का यह प्रबन्धात्मक कार्य अनेक बार आलोचना का विषय बनाया जाता है।

(iv) समिति कार्य (Committee Work)—प्रशासनिक वर्ग के सदस्यों का काफी समय समितियों में व्यतीत होता है। ये समितियाँ विभागीय अथवा अन्तर्विभागीय दोनों प्रकार की हो सकती हैं। अन्तर्विभागीय समितियों के माध्यम से लोकसेवाओं के बीच समन्वय स्थापित किया जाता है।

प्रशासनिक वर्ग में भर्ती के दो तरीके हैं। प्रथम तरीके में पहले तो सामान्य योग्यता की जाँच के लिए लिखित परीक्षा होती है और उसके तत्काल बाद ही मौखिक साक्षात्कार किया जाता है। दोनों के आधार पर योग्यता सूची तैयार की जाती है। दूसरा तरीका प्रथम या द्वितीय श्रेणी की उपाधि प्राप्त प्रत्याशियों के लिए होता है। इसमें प्रारम्भिक परीक्षा के बाद परीक्षकों द्वारा दो या तीन दिन तक प्रत्याशी का मूल्यांकन किया जाता है। यह 'House Party Method' कहा जाता है। इसमें प्रत्याशी का सामान्य ज्ञान, अभिव्यक्ति की क्षमता, समिति कार्यों में भाग लेने की क्षमता आदि का अवलोकन किया जाता है। इन परीक्षाओं के बाद प्रत्याशी का साक्षात्कार लिया जाता है तथा उसके स्वभाव, व्यक्तित्व, बुद्धि आदि की जानकारी की जाती है।

प्रत्यक्ष भर्ती द्वारा आने वाले प्रशासकों के लिए प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाती है। प्रत्येक प्रत्याशी का विभिन्न सम्भागों के वरिष्ठ अधिकारी के सहायक के रूप में दो वर्ष तक रखा जाता है। तब प्रशासनिक अध्ययन केन्द्र में 20 सप्ताह तक उसे सामान्य शैक्षणिक एवं आर्थिक विषयों का ज्ञान कराया जाता है। बाद के दो या तीन वर्ष वह पुनः किसी अधिकारी के सहायक का कार्य करता है तथा बाद में एक वर्ष के लिए मन्त्री अथवा स्थायी सचिव के निजी कार्यालय में कार्य करता है।

प्रशासनिक वर्ग की कार्य-प्रणाली तथा रूप-रचना की आलोचना करते हुए कई बातें कही जाती हैं। इनमें कुछ मुख्य ये हैं—

विशेषज्ञ वर्ग इन पदो से बाहर रह जाते हैं। यद्यपि निष्पादक वर्ग के अधिकारियो को प्रबन्ध के क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण अनुभव प्राप्त हो जाता है फिर भी वे अपने विभागो के शीर्षस्थ पदो मे वचित रहते हैं।

इस वर्ग की सेवाओ के कार्य सचालन के बारे मे मुख्यत ये आलोचनाएँ प्रस्तुत की जाती हैं—(I) इन अधिकारियो को कार्य करते हुए प्रबन्ध की तकनीको का विषय ज्ञान तथा अनुभव हो जाता है किन्तु फिर भी इसे मान्यता नही दी जाती और उच्च पदो पर इनको पदोन्नति के अवसर नहीं मिलते। कारण यह है कि सेवाओ मे वर्गों के बीच मोटी दीवार रहती है जिसे पार नही किया जा सकता। (II) इसके अतिरिक्त मान्यता यह है कि पदोन्नति के लिए केवल विशेषज्ञ बन जाना ही पर्याप्त नही है वरन् समग्र प्रशासनिक क्षमता प्रदर्शित की जानी चाहिए। आलोचको का कहना है कि प्रबन्ध कार्य की बढती हुई वैज्ञानिक प्रवृत्ति के कारण इन पदो पर वैज्ञानिक अधिकारियो की सेवाओ का लाभ उठाया जाना चाहिए किन्तु ऐसा हो नही पाता क्योकि विशेषज्ञ श्रेणी से निष्पादक श्रेणी मे स्थानान्तरण का कोई प्रावधान नही है। यदि ऐसा स्थानान्तरण हो भी जाए तो स्तर की हानि की सम्भावना है। (III) निष्पादक वर्ग के कार्यकर्त्ताओ को विशेषज्ञ बनने के लिए कोई प्रेरणा नहीं रहती।

निष्पादक वर्ग के कर्मचारियो की सख्या 1965 मे 77,800 थी।

(3) लिपिक वर्ग
(The Clerical Class)

इस वर्ग मे सामान्य लिपिक वर्ग के कर्मचारी शामिल हैं जो उच्च लिपिकीय एव लिपिकीय अधिकारियो के रूप मे विभाजित रहते हैं। साथ ही लिपिकीय सहायक वर्ग भी इसमे शामिल है। इन पदो पर प्रत्यक्ष भर्ती G C E O' स्तर के मानक पर होती है तथा लिपिकीय सहायको और अन्य नीचे की श्रेणियों से पदोन्नति के माध्यम से होती है।

इस वर्ग के कर्मचारियो (लिपिकीय सहायको) के कार्य ईस्टाकोड (Estacode) मे इस प्रकार वर्णित हैं—साँख्यिकीय एव अभिलेखो को तैयार करना तथा जाँच करना, उच्च अधिकारियो के निरीक्षण मे रहकर अन्य अभिलेख तैयार करना, सरल तरीके के पजीकरण कार्य करना तथा सरल प्रकृति का पत्र व्यवहार करना। लिपिकीय अधिकारियों के कार्य मे ये सभी तो शामिल हैं ही, इनके अतिरिक्त वे लेखो की जाँच करते हैं, सरल प्रारूप रचना करते हैं, लिपिकीय सहायको के कार्यों का पर्यवेक्षण करते हैं तथा वह सामग्री एकत्रित करते हैं जिसके आधार पर निर्णय लिया जा सके।

इस वर्ग के कर्मचारियो की सख्या लगभग 2,00,500 है। इनकी पदोन्नति जूनियर स्तर के निष्पादक वर्ग मे हो जाती है। फलत निष्पादक लिपिकीय (Executive-Clerical) क्षेत्र अब प्रशासनिक पदसोपान का एक अग बन गया है।

स्वचालितों का अधिकाधिक प्रयोग होने के साथ ही इस वर्ग के कर्मचारियों का कार्य गम्भीर रूप में बदल गया है।

आलोचकों ने इस वर्ग की कार्य-प्रणाली एवं स्थिति के बारे में कुछ आपत्तियाँ की हैं—(i) लिपिकीय अधिकारियों को पर्यवेक्षणात्मक दायित्व अपेक्षाकृत कम दिए गए हैं, (ii) इस वर्ग में अतिशय कार्य विभाजन किया जाता है और इसलिए किसी पूरे कार्य का दायित्व किसी एक व्यक्ति का नहीं रहता, (iii) लिपिकीय अधिकारी एवं सहायक का अन्तर अनावश्यक तथा मानव-शक्ति का अपव्यय है, (iv) लिपिकीय अधिकारियों के व्यावसायिक विकास के लिए बहुत कम प्रयास किए गए हैं, (v) उच्चतर लिपिकीय अधिकारियों के ग्रेड की समाप्ति के बाद इस वर्ग के कर्मचारियों की निष्पादक वर्ग में पदोन्नति का मार्ग रुक गया है। दोनों वर्गों के बीच का पुल टूट गया है।

उक्त तीनों वर्गों के अतिरिक्त कुछ अन्य सेवाएँ भी ब्रिटिश लोक प्रशासन में कार्यरत हैं। इनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

(4) व्यावसायिक, वैज्ञानिक एवं तकनीकी वर्ग

(Professional, Scientific and Technical Classes)

इस वर्ग के कार्यकर्त्ताओं की कुल संख्या लगभग 82,000 है। इस समूह के कर्मचारी प्रशासनिक वर्ग के निर्देशन में कार्य करते हैं। कुछ अन्य विभागों में कानूनी, मेडीकल तथा वैज्ञानिक कार्य के वरिष्ठ पद व्यावसायिक लोगों के हाथ में रहते हैं, इनका स्तर प्रशासनिक अधिकारी के समकक्ष होता है। परम्परागत रूप में व्यावसायिक तथा गैर-व्यावसायिक कर्मचारियों को पृथक् इकाइयों में संगठित किया जाता है तथा प्रत्येक विभाग के कार्य का दायित्व सामान्य प्रशासनिक विभाग में रखा जाता है। सामान्य तथा व्यावसायिक कर्मचारियों का आपसी सम्बन्ध पर्याप्त विवाद का विषय बना है। इस विवाद को तय करना कोई सरल कार्य नहीं है क्योंकि प्रत्येक विभाग में वैज्ञानिक अधिकारियों की स्थिति एवं कार्य अलग-अलग हैं।

(5) छोटे तथा सहायक वर्ग

(Minor and Auxiliary Classes)

प्रशासनिक, निष्पादक, व्यावसायिक तथा वैज्ञानिक प्रकृति के सभी अधिकारियों को दिन-प्रतिदिन का कार्य सम्भालने के लिए सहायकों की निरन्तर आवश्यकता है। इनका कार्य एवं संगठन विभिन्न विभागों में अलग-अलग होता है। इनको उच्च वर्ग के पदों पर पदोन्नति का अवसर प्राप्त होता है किन्तु ये अधिकतर अपनी स्थिति में ही असन्तुष्ट रहते हैं। इन पर अन्तिम नियन्त्रण वरिष्ठ वर्ग के कार्यकर्त्ताओं का रहता है।

(6) औद्योगिक लोकसेवा

(Industrial Civil Service)

इस वर्ग के कर्मचारियों की संख्या लगभग 2,35,800 है। यह कोई पृथक् सेवा नहीं है, यद्यपि इसको स्वतन्त्र समझा जाता है। इसमें व्यावसायिक तथा

औद्योगिक कार्यकर्त्ता शामिल रहते हैं। इन पर औद्योगिक एव व्यावसायिक सघो की परम्पराओ तथा नियमो का प्रभाव रहता है। ये सुरक्षा एव उड्डयन विभाग, स्टेशनरी ऑफिस, होम ऑफिस, जगलात आयोग, सार्वजनिक भवन एव निर्माण मन्त्रालय आदि से सम्बन्धित औद्योगिक सस्थानो मे कार्य करते हैं। इनमे पर्यवेक्षक तथा निदेशक के पद अलग रहते हैं।

(7) महामहिम की राजनयिक सेवाएँ

(Her Majesty's Diplomatic Services)

ये सेवाएँ गृह लोकसेवाओ (Home Civil Services) से पूर्णत भिन्न होती हैं तथा इनका स्वय का स्थायी अध्यक्ष अलग होता है जो राजकोष के सयुक्त स्थायी सचिव के समकक्ष होता है। ब्रिटिश लोकसेवाओ की समुद्रपारीय शाखाएँ बहुत पहले से ही अलग रखी गई हैं। इनकी नियुक्ति तथा सगठन अलग होता है। 1943 के पुनर्गठन के बाद विदेश सेवा को ताज की पृथक् सेवा की औपचारिक मान्यता प्राप्त हो गई। 1965 म विदेश सेवा को राष्ट्रमण्डलीय सेवा के साथ जोड दिया गया।

सक्षेप मे, ग्रेट ब्रिटेन मे लोकसेवाओ का वर्गीकरण इस प्रकार है—

Classification of British Civil Services

Broad Classification .

(1) Industrial and Non Industrial
(2) Established and Non-Established
(3) Treasury Class and Departmental Class
(4) Generalist and Specialist

Major Classes of Today ·

(1) Administrative Class
(2) Executive Class
(3) Clerical Class
(4) Professional, Scientific & Technical Classes
(5) Minor and Auxiliary Classes
(6) Industrial Civil Service
(7) Her Majesty's Diplomatic Service

भारत मे सेवा वर्गीकरण व्यवस्था

(Service Classification System in India)

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

(Historical Background)

अग्रेजी राज के समय भारतीय लोकसेवाओ के व्यवस्थित वर्गीकरण की ओर कम ध्यान दिया गया था। 1858 म आजीवन सेवाओ की स्थापना और 1887 म अचीसन कमीशन की रिपोर्ट के बाद प्रशासनिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए सेवाओ की शृंखला रची गई। सकल सेवाओ को चार वर्गों म समूहीकृत किया गया—इम्पीरियल सेवाएँ, प्रान्तीय सेवाएँ, अधीनस्थ सेवाएँ और हीन सेवाएँ।

तृतीय श्रेणी में लिपिक एवं टंकणकर्त्ता वर्ग की सेवाएँ थीं जबकि चतुर्थ श्रेणी में चपरासी और सन्देशवाहक थे। प्रथम दो सेवाएँ उच्चतर लोकसेवाएँ कही जाती थी। इनका वर्गीकरण उनके कर्त्तव्यों एवं कार्यों के किसी बुद्धिपूर्ण आधार पर निर्भर नहीं था वरन् उनकी भर्ती पर आधारित था। ये भारत सचिव द्वारा नियन्त्रित सेवाएँ थीं। भारत में लोकसेवाओं पर शाही आयोग ने यह सुझाया कि लोकसेवाओं का नया वर्गीकरण किया जाए जिसमें प्रथम और द्वितीय श्रेणी की सेवाएँ हो। आयोग के मतानुसार उच्चतर और अधीनस्थ सेवाओं के बीच सेवाओं को प्रान्तीय सेवाएँ न कहा जाए। यदि प्रान्त द्वारा उनका संगठन हो तो उस प्रान्त के नाम से उन्हें पुकारा जाए और यदि भारत सरकार द्वारा संगठन हो तो दोनों सेवाओं को प्रथम और द्वितीय श्रेणी की सेवाएँ कहा जाए।

1919 में भारत सरकार अधिनियम द्वारा इम्पीरियल् सेवाओं को दो वर्गों में विभाजित कर दिया गया। यह विभाजन प्रशासनिक विषयों के आधार पर था—भारत सरकार के प्रत्यक्ष नियन्त्रण वाले विषय और प्रान्तीय सेवाओं द्वारा मुख्यतः नियन्त्रित विषय। इनमें प्रथम का दायित्व केन्द्रीय सेवाओं को तथा द्वितीय का अखिल भारतीय सेवाओं को सौंपा गया। यह अखिल भारतीय सेवाएँ मुख्यतः प्रान्तीय सरकारों के अधीन कार्य करती थीं। इन्हें भारत के किसी भी भाग में कार्य करने के लिए भारत सचिव द्वारा नियुक्त किया जाता था।

1946 में केन्द्रीय वेतन आयोग ने सेवाओं के वर्गीकरण पर विचार किया। उस समय अखिल भारतीय सेवाओं और केन्द्रीय लोकसेवाओं के अतिरिक्त चार वर्गों में सेवाएँ विभाजित थीं—प्रथम श्रेणी, द्वितीय श्रेणी अधीनस्थ सेवाएँ और हीनतर सेवाएँ। आयोग ने सुझाया कि अन्तिम दो सेवाओं को तृतीय श्रेणी और चतुर्थ श्रेणी की सेवाएँ कहा जाना चाहिए। तकनीकी सेवाओं को भी इसी वर्ग में शामिल कर लिया गया और उनके लिए अलग से श्रेणी नहीं बनाई गई। कुछ लोगों ने केन्द्रीय वेतन आयोग को सुझाव दिया कि भारत में ब्रिटिश राजकोष के वर्गीकरण को अपना लिया जाए। आयोग ने इस सुझाव को अस्वीकार करते हुए कहा कि भारत में किसी अधिकारी को प्रशासनिक या निष्पादक नाम देना सम्भव नहीं है क्योंकि अनेक अधिकारी दोनों प्रकार के कार्य करते हैं। 1946 में केन्द्रीय सेवाओं के अतिरिक्त तीन प्रकार की सेवाएँ और थीं—अखिल भारतीय सेवाएँ, विभिन्न सेवाएँ और प्रान्तीय सेवाएँ।

भारतीय पद-वर्गीकरण व्यवस्था वेतन की दर और सम्पादित कार्य की प्रकृति दोनों तत्त्वों पर आधारित रही है। यह वर्गीकरण पदाधिकारियों की अनुशासनात्मक कार्यवाही और अधीन की सुविधा के विशेषाधिकारों पर आधारित रहा है।

वर्तमान वर्गीकरण व्यवस्था
(Classification System of Today)

"वर्तमान सेवा संरचना यद्यपि एकीकृत नहीं है फिर भी विशेषीकृत कार्य एवं

सामान्य प्रकृति के कार्य तथा विभिन्न प्रकृति वाले कार्य के समन्वय एवं एकीकरण से किए जाने वाले कार्यों को सचालित करने के लिए उपयुक्त है।"[1] भारतीय लोक सेवा की सरचना में सघीय और राज्य दोनों ही स्तरों की सेवाएँ हैं। ये राजनीतिक कार्यपालिका को नीति-रचना और कार्यान्वित करने मे सहयोग देती हैं। सरकारी नीतियो और कार्यक्रमो की वास्तविक कार्यान्विति के लिए या तो सामान्य सेवाएँ अथवा कार्यात्मक सेवाएँ उत्तरदायी हैं। कार्यात्मक सेवाएँ वहाँ स्थापित की जाती हैं जहाँ सम्बन्धित कार्य विशेषीकृत प्रकृति का है और मात्रा मे इतना अधिक कि उसके लिए पृथक् सेवा की आवश्यकता है। जैसे आयकर, चुंगी, आबकारी, लेखा एवं लेखा-परीक्षा सेवाएँ आदि इनके उदाहरण हैं। कार्यात्मक सेवाओ की भाँति विशेषज्ञ सेवाएँ भी होती हैं जिन पर नियुक्तियाँ व्यावसायिक योग्यताओं के अनुभव के आधार पर की जाती हैं।

भारत मे सेवाओ के वर्गीकरण की एक मुख्य विशेषता यह है कि यहाँ केवल असैनिक सेवाओ को ही वर्गीकृत नही किया गया वरन् असैनिक पदो को भी वर्गीकृत किया गया है अर्थात् श्रेणी, स्तर और विशेषाधिकार पदो के साथ जोड दिए गए हैं। कभी-कभी एक पदाधिकारी अपनी योग्यता और वारिष्ठता की अपेक्षा ऊँचे पद के दायित्व भी निभाता है। यह स्थिति कार्यवाहक (Officiating) कही जाती है जो अस्थाई अथवा मध्यकालीन होती है। यहाँ वर्गीकरण स्थाई और अस्थाई दोनो प्रकार के पदो का होता है। ज्योही गृह मन्त्रालय और वित्त मन्त्रालय से विचार करके कोई पद निर्मित होता है त्योही उसे वर्गीकृत कर दिया जाता है। वर्गीकरण मे यह स्पष्ट किया जाता है कि पद किस श्रेणी का है तथा यह लिपिकवर्गीय पद है अथवा गैर-लिपिकीय पद है। यह अन्तर स्पष्ट करता है कि लिपिकीय सेवाएँ अधीनस्थ सेवाएँ होती हैं और इनके काय पूर्णत. या मूलत. लिपिकीय प्रकृति के होते हैं।

गैर-सैनिक सेवाएँ पुन राजपत्रित एव अराजपत्रित इन दो भागो मे विभाजित की जाती हैं। राजपत्रित सेवाएँ वे होती हैं जिन पर नियुक्ति की सूचना भारत सरकार के राजपत्र मे प्रकाशित की जाती है। यह स्तर एव मान्यता प्रथम श्रेणी (Class I) की सभी सेवाओ तथा द्वितीय श्रेणी के गैर-लिपिकीय एव निष्पादक पदो को दिया जाता है। सामान्यत द्वितीय श्रेणी के लिपिकीय पद तथा तृतीय एव चतुर्थ श्रेणी के सभी पद अराजपत्रित माने जाते हैं। दोनो के बीच कुछ अन्य व्यावहारिक अन्तर भी हैं जैसे राजपत्रित कर्मचारी का वेतन 500/- रुपये प्रतिमाह से अधिक होता है, वे अपना वेतन सीधे प्राप्त करते हैं तथा वे महालेखापाल से सीधा पत्र व्यवहार कर सकते हैं।

1 "The present service structure, though not unified, is balanced enough for the purpose of carrying out specialised work as well as tasks of general nature and tasks requiring co-ordination and integration of work of diverse character"
—I I P A. The Organisation of the Government of India, 1971, p 489.

भारत में सेवाओं का वर्गीकरण मुख्यतः उन नियमों के अन्तर्गत होता रहा है जो मूलरूप में 1930 में बनाए गए थे और जिनमें संशोधन समय-समय पर किया जाता रहा है। वर्तमान काल में यह वर्गीकरण इस प्रकार है—

(1) अखिल भारतीय सेवाएँ (All India Services)
(2) केन्द्रीय (संघीय) सेवाएँ, प्रथम श्रेणी (Class I)
(3) केन्द्रीय (संघीय) सेवाएँ, द्वितीय श्रेणी (Class II)
(4) प्रान्तीय (राज्य) सेवाएँ
(5) विशिष्ट सेवाएँ, (Special Services)
(6) केन्द्रीय सेवाएँ तृतीय श्रेणी
(7) केन्द्रीय सेवाएँ चतुर्थ श्रेणी
(8) केन्द्रीय सचिवालय सेवा (Central Secretariat Service) प्रथम, द्वितीय तृतीय और चतुर्थ श्रेणी।

अखिल भारतीय सेवाएँ
(All India Services)

स्वयं संविधान के भीतर अखिल भारतीय सेवाओं का प्रावधान किया गया है। भारतीय प्रशासन सेवा (I. A. S.), भारतीय पुलिस सेवा (I. P. S.), भारतीय विदेश सेवा (I. F. S.), भारतीय अर्थ सेवा/भारतीय सांख्यिकी सेवा (Indian Economic Statistical Services) आदि अखिल भारतीय सेवाएँ हैं। भारतीय अर्थ सेवा तथा भारतीय सांख्यिकी सेवा का गठन 1961 में किया गया था, क्योंकि कुछ पदों पर अर्थशास्त्र तथा सांख्यिकी के विशिष्ट ज्ञान की आवश्यकता होती है। 1963 में तीन नई अखिल भारतीय सेवाओं का निर्माण किया गया था, ये हैं—भारतीय वन सेवा, इंजीनियरों की भर्ती सेवा तथा भारतीय चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवा।

अखिल भारतीय सेवाओं में अधिकारियों की भर्ती संघीय लोकसेवा आयोग द्वारा की जाती है और इन्हें भारत या भारत से बाहर कहीं भी काम करने के लिए भेजा जा सकता है। व्यवस्था यह है कि भारतीय प्रशासन तथा पुलिस सेवाओं के अधिकारी एक निर्धारित कोटे (Fixed Quota) के आधार पर विभिन्न राज्यों को बाँट दिए जाते हैं। संविधान के अन्तर्गत संसद् को यह अधिकार है कि वह संघ तथा राज्यों के लिए समान रूप में काम करने वाली एक या अधिक अखिल भारतीय सेवाओं के निर्माण के लिए कानून बनाए, पर यह तभी सम्भव है जबकि राज्य सभा में इसके लिए प्रस्ताव पेश हो और उपस्थित सदस्य दो-तिहाई मतों से उस प्रस्ताव का अनुमोदन करें। अखिल भारतीय सेवाएँ इतने उच्च स्तर की होती हैं कि वे स्थानीय प्रभावों से प्रायः मुक्त रहती हैं। प्रशासन तन्त्र को मजबूत बनाने की दृष्टि से भारत सरकार सभी राज्य सरकारों तथा गृह मन्त्रालय के संघ राज्य क्षेत्र डिवीजन से अनुरोध कर सकती है कि वे अखिल भारतीय सेवाओं के उन सदस्यों के मामलों का पुनरीक्षण करें जिन्होंने 50 वर्ष की आयु प्राप्त करली हो

अथवा 30 वर्ष की अर्हक सेवा पूरी करली हो ताकि उन्हें आगे सेवा में बनाए रखने के लिए उनकी उपयुक्तता आदि का निर्णय किया जा सके।

अखिल भारतीय सेवाओं की नियुक्ति एवं प्रशिक्षण केन्द्रीय सेवा की भाँति केन्द्र सरकार द्वारा किया जाता है। इन्हें कार्य के लिए विभिन्न राज्यों में भेज दिया जाता है जहाँ वे राज्य सरकारों की सेवा करते हैं तथा उनके सेवा सम्बन्धी प्रावधान भी राज्य सरकारों द्वारा प्रशासित किए जाते हैं। इनके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही सघीय लोकसेवा आयोग के परामर्श से राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। डेप्युटेशन पर ये केन्द्र सरकार की सेवा भी कर सकते हैं किन्तु तीन से पाँच वर्ष तक कार्य करने के बाद उन्हें अपने राज्य में वापस लौटना पड़ता है। भर्ती के तरीके चयन, वेतन, सेवा का स्तर, श्रेणी तथा अन्य विशेषाधिकारों की दृष्टि से अखिल भारतीय सेवाएँ प्रथम श्रेणी की केन्द्रीय सेवाओं के समकक्ष होती हैं। उदाहरण के लिए भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा भारतीय विदेश सेवा बहुत कुछ समान स्तर की हैं। इनमें प्रथम अखिल भारतीय सेवा है किन्तु द्वितीय केन्द्रीय सेवा (प्रथम श्रेणी) है। सघीय लोकसेवा आयोग दोनों प्रकार की सेवाओं के लिए प्राय सयुक्त परीक्षाएँ आयोजित करता है।

केन्द्रीय (सघीय) सेवाएँ
(Central Civil Services)

केन्द्रीय लोक सेवाएँ चार श्रेणियों में वर्गीकृत की गई हैं—केन्द्रीय सेवाएँ प्रथम श्रेणी, केन्द्रीय सेवाएँ द्वितीय श्रेणी, केन्द्रीय सेवाएँ तृतीय श्रेणी तथा केन्द्रीय सेवाएँ चतुर्थ श्रेणी। प्रथम श्रेणी में केन्द्रीय सामान्य सेवाएँ आती हैं। ये सभी केन्द्रीय सेवाएँ उन विषयों का प्रशासन करती हैं जो संघ सरकार के क्षेत्राधिकार में हैं। उदाहरण के लिए, विदेश सेवा, आयकर सेवा, चुंगी, रेल्वे, डाकघर आदि। ये सभी तकनीकी तथा गैर-तकनीकी दो भागों में विभाजित की जा सकती हैं। गैर-तकनीकी सेवाएँ ये हैं—भारतीय विदेश सेवा भारतीय लेखा परीक्षा एवं लेखा सेवा, भारतीय डाक सेवा (प्रथम श्रेणी), भारतीय सुरक्षा लेखा सेवा, भारतीय रेल्वे लेखा सेवा, भारतीय रेल्वे यातायात सेवा, रेल्वे बोर्ड सचिवालय सेवा आदि।

प्रथम श्रेणी की केन्द्रीय सेवाओं के पदाधिकारियों को अपने-अपने विभाग में ज्येष्ठ पदों (Senior Posts) पर रखा जाता है। भारत सरकार के अधीन केन्द्रीय सचिवालय के तथा अन्य प्रशासकीय पदों पर उन्हें नियुक्त किया जाता है। उनकी भर्ती एक ऐसी सयुक्त प्रतियोगिता परीक्षा (Combined Competitive Examination) के परिणाम के आधार पर की जाती है जो सघीय लोक सेवा आयोग, अखिल भारतीय सेवाओं तथा प्रथम एवं द्वितीय श्रेणियों की सेवाओं के लिए प्रार्थियों का चयन करने हेतु आयोजित करता है।

डॉ अवस्थी एवं माहेश्वरी ने भारत में केन्द्रीय लोकसेवा (प्रथम श्रेणी) में अग्रलिखित 33 सेवाएँ गिनाई हैं—

1 पुरातत्व सेवा (प्रथम श्रेणी)
2 भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण (प्रथम श्रेणी)
3 केन्द्रीय इन्जीनियरिंग सेवा (प्रथम श्रेणी)
4. केन्द्रीय विद्युत् यांत्रिक सेवा (प्रथम श्रेणी)
5 केन्द्रीय स्वास्थ्य सेवा (प्रथम श्रेणी)
6 केन्द्रीय राजस्व रासायनिक सेवा (प्रथम श्रेणी)
7 केन्द्रीय सचिवालय सेवा
(अ) विशिष्ट चयन ग्रेड
• (ब) ग्रेड प्रथम
8 सामान्य केन्द्रीय सेवा (प्रथम श्रेणी)
9 भारतीय भू-सर्वेक्षण सेवा (प्रथम श्रेणी)
10 भारतीय लेखा परीक्षण एवं लेखा सेवा
11 भारतीय सुरक्षा लेखा सेवा
12 भारतीय विदेश सेवा (प्रथम श्रेणी)
13 भारतीय मौसम सेवा (प्रथम श्रेणी)
14 भारतीय डाक सेवा (प्रथम श्रेणी)
15 भारतीय डाक तार सचालन सेवा (प्रथम श्रेणी)
16 भारतीय राजस्व सेवा
(अ) सीमा शुल्क शाखा (भारतीय सीमा शुल्क सेवा-प्रथम श्रेणी)
(आ) केन्द्रीय एक्साइज शाखा (केन्द्रीय एक्साइज सेवा-प्रथम श्रेणी)
(ब) आयकर शाखा (आयकर सेवा-प्रथम श्रेणी)
17 भारतीय नमक सेवा (प्रथम श्रेणी)
18 व्यापारिक जहाजरानी प्रशिक्षण जलयान सेवा (प्रथम श्रेणी)
19 खनिज विभाग (प्रथम श्रेणी)
20 समुद्र पार सचार सेवा (प्रथम श्रेणी)
21 भारत सर्वेक्षण सेवा (प्रथम श्रेणी)
22 तार यान्त्रिक सेवा (प्रथम श्रेणी)
23 भारतीय जन्तु सर्वेक्षण (प्रथम श्रेणी)
24 भारतीय सीमा प्रशासन सेवा
(अ) ग्रेड प्रथम
(आ) ग्रेड द्वितीय
25 केन्द्रीय विधिक सेवा (प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी)
26 रेलवे निरीक्षण सेवा (प्रथम श्रेणी)
27 भारतीय विदेश सेवा शाखा (ब)
(अ) सामान्य केडर—ग्रेड (कोटि) प्रथम
(आ) सामान्य केडर—ग्रेड द्वितीय

28 भारतीय निरीक्षण सेवा (प्रथम श्रेणी)
29 भारतीय पूर्ति सेवा (प्रथम श्रेणी)
30 केन्द्रीय सूचना सेवा
(अ) वरिष्ठ प्रशासनिक वेतनमान
(आ) कनिष्ठ प्रशासनिक वेतनमान
(इ) ग्रेड प्रथम
(ई) ग्रेड द्वितीय
31 भारतीय सांख्यिकी सेवा
32 भारतीय आर्थिक सेवा
33 तार यातायात सेवा (प्रथम श्रेणी)

प्रथम श्रेणी की उपरोक्त केन्द्रीय सेवाओं में विशेष महत्त्वपूर्ण हैं—केन्द्रीय सचिवालय सेवा, भारतीय लेखा परीक्षण तथा लेखा शाखा, भारतीय डाक सेवा, भारतीय राजस्व सेवा तथा भारतीय प्रतिरक्षा सेवा। यह सुझाव दिया जाता है कि भारतीय प्रशासन सेवा तथा प्रथम श्रेणी की केन्द्रीय सेवाओं का परस्पर विलय कर दिया जाना चाहिए और केन्द्र सरकार के अधीन सभी गैर-तकनीकी विभागों के लिए एक ही 'उच्चतर प्रशासकीय सेवा' होनी चाहिए।[1]

डॉ अवस्थी एवं महेश्वरी ने केन्द्रीय सेवा (द्वितीय श्रेणी) में निम्नलिखित 26 सेवाएँ गिनाई हैं[2]—

1. केन्द्रीय सचिवालय सेवा (संक्शन अधिकारी ग्रेड)
2 केन्द्रीय सचिवालय सेवा (ग्रेड चतुर्थ)
3 केन्द्रीय सचिवालय स्टेनोग्राफर सेवा (ग्रेड प्रथम)
4 केन्द्रीय सचिवालय स्टेनोग्राफर सेवा (सम्मिलित)
5 ग्रेड (कोटि) द्वितीय एवं तृतीय
6. श्रम अधिकारी सेवा (द्वितीय श्रेणी)
7 केन्द्रीय स्वास्थ्य सेवा (द्वितीय श्रेणी)
8 भारतीय जलवायु सेवा (द्वितीय श्रेणी)
9 डाक निरीक्षण सेवा (द्वितीय श्रेणी)
10 पोस्ट मास्टर सेवा (द्वितीय श्रेणी)
11 तार यान्त्रिक एवं बेतार सेवा (द्वितीय श्रेणी)
12 तार यातायात सेवा (द्वितीय श्रेणी)
13 केन्द्रीय एक्साइज सेवा (द्वितीय श्रेणी)
सुपरिटेण्डेण्ट द्वितीय श्रेणी (मुख्यालय सहित)
कलेक्टर के अधीनस्थ एवं जिला अफीम अधिकारी (द्वितीय श्रेणी)

1 सी पी. भाम्भरी : वही, पृष्ठ 412.
2 अवस्थी एवं महेश्वरी : वही, पृष्ठ 373.

14 सीमा शुल्क आंकलन सेवा (द्वितीय श्रेणी)
मुख्य आंकलक एवं अध्यक्ष आंकलक
15 सीमा शुल्क आंकलन सेवा—द्वितीय श्रेणी (आंकलक)
16 सीमा शुल्क निरीक्षक सेवा—द्वितीय श्रेणी (मुख्य निरीक्षक)
17 सीमा शुल्क निरीक्षक सेवा—द्वितीय श्रेणी (निरीक्षक)
18 आयकर सेवा (द्वितीय श्रेणी)
19 भारतीय भू सर्वेक्षण सेवा (द्वितीय श्रेणी)
20 भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण सेवा (द्वितीय श्रेणी)
21 भारतीय सर्वेक्षण सेवा (द्वितीय श्रेणी)
22 भारतीय जन्तु सर्वेक्षण सेवा (द्वितीय श्रेणी)
23 केन्द्रीय विद्युत यांत्रिक सेवा (द्वितीय श्रेणी)
24 केन्द्रीय यान्त्रिक सेवा (द्वितीय श्रेणी)
25 भारतीय लवण सेवा (द्वितीय श्रेणी)
26 सामान्य केन्द्रीय सेवा (द्वितीय श्रेणी)

तृतीय और चतुर्थ श्रेणी के लिए सारी अधीनस्थ सेवाएँ (Subordinate Services) हैं जिनमें लिपिकवर्गीय (Clerical) मन्त्रीय (Ministerial) निष्पादक (Executive) अथवा बाह्य कर्त्तव्यों वाले (Outdoor duties) पद सम्मिलित किए जाते हैं। उल्लेखनीय है कि प्रथम श्रेणी की सेवाओं/पदों पर सभी प्रथम नियुक्तियाँ राष्ट्रपति द्वारा की जाती हैं जबकि अन्य मामलों में निम्न प्राधिकारियों (Lower Authorities) को ऐसी नियुक्तियाँ करने का अधिकार प्राप्त है। प्रथम श्रेणी के सभी पद और द्वितीय श्रेणी के बहुत से पद राजपत्रित (Gazetted) होते हैं, किन्तु अन्य नहीं होते। राष्ट्रपति प्रथम श्रेणी के लिए अनुशासनिक प्राधिकारी (Disciplinary Authority) तथा द्वितीय श्रेणी के लिए अपीलीय प्राधिकारी (Appellate Authority) है जबकि तृतीय और चतुर्थ श्रेणियों के लिए अनुशासनात्मक और अपीलीय प्राधिकारी अधिकतर विभागाध्यक्ष अथवा उनके अधीन काम करने वाले अधिकारी होते हैं। प्रथम एवं द्वितीय श्रेणी की सेवाओं/पदों की सीधी भर्ती संघीय लोकसेवा आयोग के परामर्श से की जाती है (बशर्ते कि किसी सेवा को इस प्रतिबन्ध से खास तौर पर मुक्त न रखा गया हो) जबकि तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी की सेवाओं के सम्बन्ध में ऐसा कोई सामान्य नियम नहीं है।

वर्गीकरण का एक आधार राजपत्रित (Gazetted) और अराजपत्रित (Non-gazetted) श्रेणियों का है। राजपत्रित पद वे हैं जिनके पदाधिकारियों के नाम नियुक्ति, पदोन्नति, सेवानिवृत्ति आदि के बारे में सरकारी गजट में प्रकाशित किए जाते हैं। अराजपत्रित पद वे हैं जिनके पदाधिकारियों के नाम सरकारी गजट में नहीं छपते। तृतीय और चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी राजपत्रित नहीं होते।

राज्य सेवाएँ
(State Services)

ये सेवाएँ पूर्णरूप से राज्य सरकार के क्षेत्राधिकार मे रहती हैं तथा राज्य सूची म उल्लिखित विषयो का प्रशासन करती है। अखिल भारतीय सेवाओ मे लगभग 25 प्रतिशत रिक्त पदो पर नियुक्तियाँ राज्य सेवा मे से पदोन्नति करके की जाती है।

भारत मे लोकसेवाओ का वर्गीकरण यहाँ की सांविधानिक रूप-रचना से मेल खाता है। जिस प्रकार भारतीय संविधान द्वारा सभी प्रशासनिक विषयो का बँटवारा संघ सूची, राज्य सूची तथा समवर्ती सूचियो मे किया गया है, उसी प्रकार लोकसेवाएँ भी केन्द्रीय सेवाएँ अखिल भारतीय सेवाएँ तथा राज्य सेवाओ के रूप म बाँटी गई हैं। संयुक्तराज्य अमरिका मे संघात्मक व्यवस्था होते हुए भी अखिल अमेरिकी सेवाओ का कोई प्रावधान नहीं है जो संघ तथा राज्य दोनो सरकारो की सेवा करें।

राज्य सेवाओ (State Services) मे मुख्य हैं—

1 राज्य प्रशासकीय सेवा (State Administrative Service)
2 राज्य पुलिस सेवा (State Police Service)
3 राज्य अंकेक्षण एव लेखा सेवा (State Audit and Accounts Service)
4 राज्य शिक्षा सेवा (State Education Service)
5 राज्य सहकारिता सेवा (State Co operative Service)
6 राज्य रोजगार सेवा (State Employment Service)
7 राज्य जेल सेवा (State Jail Service)
8 राज्य प्राविधिक सेवाएँ (State Technical Services)

केन्द्रीय सचिवालय सेवाएँ

केन्द्रीय सचिवालय की निम्नलिखित तीन सेवाएँ हैं—

(i) केन्द्रीय सचिवालय सेवा म चार ग्रेड हैं, अर्थात्—
   (क) चयन ग्रेड (रुपये 1500–2000)
   (ख) ग्रेड–1 (रु० 1200–1600)
   (ग) अनुभाग अधिकारी ग्रेड (रु० 650–1200)
   (घ) सहायक ग्रेड (रु० 425–800)

(ii) केन्द्रीय सचिवालय आशुलिपिक सेवा मे चार ग्रेड हैं, अर्थात्—
   (क) ग्रेड क (रु० 650–1200)
   (ख) ग्रेड ख (रु० 650–1040)
   (ग) ग्रेड ग (रु० 425–800)
   (घ) ग्रेड घ (रु० 330–560)

(iii) केन्द्रीय सचिवालय लिपिक सेवा में निम्नलिखित दो ग्रेड हैं अर्थात्–

(क) उच्च श्रेणी लिपिक (रु० 330–560)

(ख) अवर श्रेणी लिपिक (रु० 260–400)

केन्द्रीय सचिवालय सेवा का अनुभाग अधिकारी ग्रेड तथा सहायक सचिवालय ग्रेड और केन्द्रीय आशुलिपिक सेवा के सभी ग्रेड विकेन्द्रीकृत हैं अर्थात् नियुक्तियाँ, पदोन्नति तथा स्थायीकरण संवर्गवार किए जाते हैं। प्रत्येक संवर्ग में एक अथवा एक से अधिक मन्त्रालय, विभाग तथा सहभागी सम्बद्ध कार्यालयों के पद शामिल होते हैं। केन्द्रीय सचिवालय सेवा का चयन ग्रेड तथा ग्रेड I केन्द्रीकृत हैं अर्थात् नियुक्तियाँ, पदोन्नतियाँ तथा स्थायीकरण पूरे सचिवालय के आधार पर किए जाते हैं। विकेन्द्रीकृत संवर्गों के सम्बन्ध में, कार्मिक और प्रशासनिक सुधार विभाग पदोन्नति के क्षेत्र नियत करने के लिए और प्रतियोगिता तथा विभागीय परीक्षाओं के माध्यम से रिक्तियाँ भरने के लिए विभिन्न संवर्गों की आवश्यकताओं का मूल्यांकन करता है और लगातार मानीटर करता रहता है।[1]

भारत में सेवा अथवा पद वर्गीकरण : व्यवस्था की समीक्षा

भारत में सेवाओं के वर्गीकरण की व्यवस्था की अनेक क्षेत्रों में आलोचना होती रही है। प्रो एपलबी ने इसके छः मुख्य दोषों को गिनाया है, वे हैं—(1) कठोरता (Rigidity), (2) बौद्धिक अनुप्रेरित (Intellectually Oriented), (3) विशृंखलित (Disjointed) (4) स्तर से प्रभावित (Status Oriented), (5) अन्तर्विभागीय ईर्ष्या (Interclass Jealousie), एवं (6) गैर-विशेषज्ञों से प्रभावित (More Generalist Dominated)। डॉ एम पी शर्मा ने तीन प्रधान आलोचनाओं को इस प्रकार व्यक्त किया है—पहली तो यह कि किसी वैज्ञानिक अथवा स्पष्ट सिद्धान्त पर आधारित नहीं है, न तो इसका आधार कार्य अथवा कर्त्तव्य है और न पद सम्बन्धी दायित्व। प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी की सेवाओं के लिए आने वाले उम्मीदवारों में समान प्रकार की ही योग्यता अपेक्षित मानी गई है तथा प्रायः दोनों में कोई अन्तर नहीं है। दोनों ही भर्ती लोकसेवा आयोग द्वारा आयोजित प्रतियोगिता परीक्षाओं अथवा चयन द्वारा की जाती है तथा कभी कभी दोनों वर्गों के लिए एक संयुक्त परीक्षा के आधार पर भर्ती कर ली जाती है। यही कारण है कि द्वितीय श्रेणी के अधिकारियों के प्रतिनिधियों ने इन दोनों श्रेणियों के विलय की मांग की थी। दूसरी बात यह है कि भारतीय वर्गीकरण, भर्ती करने वाली उच्चतर और निम्नतर सत्ताओं के आधार पर किया जाता है, जिसके कारण अंग्रेजों द्वारा अपनाई जाने वाली भेदभाव की नीति अभी तक चली आ रही है और यह निश्चित रूप से आधुनिक लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था के अनुरूप नहीं है। तीसरी बात यह है कि भारतीय वर्गीकरण इतना व्यापक नहीं है कि उसके

1 भारत सरकार, कार्मिक और प्रशासनिक सुधार विभाग, गृह मन्त्रालय की वार्षिक रिपोर्ट, 1983-84, पृष्ठ 17

भीतर प्रत्येक प्रकार की लोकसेवा का समावेश हो सके तथा वह सभी मन्त्रालयों और विभागों में एक सरीखा भी नहीं है।

कुछ आलोचनाओं में सत्यांश है, तथापि यह कहना भी अनुचित होगा कि सभी विभागों मे वर्गीकरण की पूर्ण समरूपता असम्भव है क्योंकि कुछ विभागो मे विशेष परिस्थितियाँ होती है। यह सुझाव भी विशेष वजन नही रखता कि प्रथम और द्वितीय श्रेणी के बीच का भेद मिटा देना चाहिए। डॉ भाम्भरी के शब्दो मे, 'यह भेद जारी रहना चाहिए, क्योंकि द्वितीय श्रेणी की सेवाओं के बहुसंख्या अधिकारियों की सीधी भर्ती (Direct Recruitment) नही होती और द्वितीय श्रेणी के ऐसे सब रिक्त स्थान तृतीय श्रेणी के अधिकारियों को पदोन्नति के आधार पर भरे जाते हैं। इस प्रकार जहाँ द्वितीय श्रेणी के पदाधिकारियों तथा प्रथम श्रेणी के कनिष्ठ शाखा (Junior Branch) के पदाधिकारियो के कर्त्तव्य तथा उत्तरदायित्व एक स हैं वहाँ उनके पारिश्रमिक (Remuneration) तथा उनकी पदस्थिति (Status) मे पाई जाने वाली विभिन्नता को इस आधार पर न्यायोचित ठहराया जा सकता है कि प्रथम श्रेणी मे पदाधिकारियों की भर्ती उच्चतर पदो के सम्भालने के लिए की जाती है और इसी श्रेणी के कनिष्ठ वेतनक्रम वाले पदो (Junior Scale Posts) का उद्देश्य केवल यह होता है कि वे पदाधिकारियो के लिए प्रशिक्षण के आधार के रूप मे (As Training Ground) कार्य करें और उनको उन उच्चतर उत्तरदायित्वो को वहन करने के योग्य बना दें जिनके लिए उनकी भर्ती की गई है। इसके विपरीत द्वितीय श्रेणी के पदाधिकारियो की भर्ती चाहे वह पदोन्नति द्वारा की जाए अथवा सीधे हो, उस पदक्रम (Grade) के कर्त्तव्यों को सम्पन्न करने के लिए की जाती है, जिस पर कि उनकी नियुक्ति की जाती है। इस प्रकार प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी के बीच का भेद जारी रहना चाहिए।"

भारतीय लोकसेवाओं के वर्गीकरण को सन्तोषजनक बनाने के लिए एक सुझाव यह दिया जाता है कि यहाँ सयुक्तराज्य अमेरिका की भाँति पद-वर्गीकरण किया जाए साथ ही सेवा वर्गीकरण पर विचार करते समय विकास प्रशासन की आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाए।

सयुक्तराज्य अमेरिका में पद-वर्गीकरण
(Position Classification in U. S. A.)

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
(The Historical Background)

सयुक्तराज्य अमेरिका मे पद-वर्गीकरण मे निहित विचार करीब सवा सौ वर्ष पूर्व ही विकसित हो चुके थे। 1838 मे अनेक सरकारी लिपिको ने जब समान कार्य के लिए समान वेतन की माँग रखी तो सीनेट ने एक प्रस्ताव पारित करके विभागाध्यक्षों को यह निर्देश दिया कि वे लिपिकों का वर्गीकरण तैयार करें तथा ऐसा करते समय इन बातो का ध्यान रखें—आवश्यक श्रम की प्रकृति, सौंपा गया

दायित्व, अन्य सेवाओं की अपेक्षा प्रत्येक श्रेणी द्वारा दी गई सेवाओं का जनता के लिए मूल्य आदि। लिपिकों के लिए सविधीय वर्गीकरण योजना काँग्रेस द्वारा 1853 में बनाई गई। इसके स्थान पर 1923 में कांग्रेस ने एक व्यापक वर्गीकरण की योजना स्वीकार दी। संघीय कर्मचारियों के राष्ट्रीय संघ के प्रयासों के फलस्वरूप संघीय वर्गीकरण अधिनियम 1923 में ही बन सका। 1925 में डाक सेवा का पुनर्वर्गीकरण किया गया तथा 1928 में एक सामान्य सर्वेक्षण करके संघीय व्यवस्था को क्षेत्रीय स्तरों पर भी लागू कर दिया गया। आर्थिक मन्दी के कारण सम्बन्धित व्यवस्थापन में देरी हुई किन्तु 1940 के राम्सपीक अधिनियम (Ramspeck Act) में यह बात स्वीकार कर ली गई।

पद वर्गीकरण के लिए किए जाने वाले इस महत्त्वपूर्ण आन्दोलन के जन्म तथा विकास के लिए उत्तरदायी कुछ कारणों का उल्लेख किया जा सकता है। इनमें पहला था योग्यता व्यवस्था को स्वीकार कर लेना। यदि पदाधिकारियों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर करनी थी तो यह आवश्यक था कि विभिन्न पदों के कार्य बताए जाते तथा उनके लिए आवश्यक योग्यताओं का उल्लेख किया जाता। दूसरी बात यह है कि वर्गीकरण आन्दोलन लोकसेवा में सुधार कार्यक्रमों के अनुरूप था। तीसरे, समान कार्य के लिए समान वेतन की माँग निरन्तर जोर पकड़ती जा रही थी। इन सब कारणों ने मिलकर 1923 के अधिनियम को पारित कराने में योगदान दिया। यह अधिनियम सेवीवर्ग व्यवस्थापन का महान् मील चिह्न कहा गया है।[1] इसके बाद समय समय पर इस अधिनियम में उल्लेखनीय संरचनात्मक परिवर्तन जुड़ते गए। 1949 में इस अधिनियम का स्थान पूर्णरूप से एक नए वर्गीकरण अधिनियम ने ले लिया। प्रायः सभी राज्य तथा स्थानीय क्षेत्राधिकारों में पदों के मूल्यांकन तथा वर्गीकरण का कार्य केन्द्रीय सेवीवर्ग प्राधिकरण द्वारा किया जाता है। सम्बन्धित विभागों द्वारा सिफारिशें की जाती हैं।

अमरिकी पद-वर्गीकरण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के वर्णन में उन समस्याओं तथा दावों का उल्लेख करना भी प्रासंगिक होगा जो आधुनिक वर्गीकरण से पहले मौजूद थे। तत्कालीन सेवाओं की स्थिति में भारी भ्रम, पर्याप्त अपव्यय सरकारी कर्मचारियों के कार्य तथा वेतन तय करने में अनिश्चय राजनीतिक एवं व्यक्तिगत पक्षपात रहता था। विभिन्न कार्यों का कोई मानक नाम नहीं था। भिन्न प्रकृति के अनेक कार्यों को एक ही नाम से जाना जाता था तथा एक ही कार्य का अनेक नामों से पुकारा जाता था उनके वेतनमान भी अलग-अलग होते थे। वेतन का सम्बन्ध किए जाने वाले कार्य से कोई सम्बन्ध नहीं था, अतः व्यक्तिगत एवं राजनीतिक पक्षपात के आधार पर वेतन का निर्धारण हो जाता था। 1920 में संघीय सेवा की स्थिति इतनी खराब हो गई थी कि पुनर्वर्गीकरण पर काँग्रेस के संयुक्त सम्मेलन ने बड़े निन्दनीय शब्दों में इसकी कटु आलोचना की।[2]

1 O G *Stahl*, op cit., p 150
2 House Doc 686, 66th Cong, 2nd Sess., 1920, p 54

1949 का वर्गीकरण अधिनियम
(The Classification Act of 1949)

इस अधिनियम द्वारा कांग्रेस ने कार्य की कठिनाइयों एवं दायित्वों तथा किए जाने वाले कार्य के आधार पर पदों का व्यवस्थित विश्लेषण एवं प्रबन्ध करने की चेष्टा की। यह वर्गीकरण की योजना वास्तविक व्यवहार में प्रशासनिक कार्यों द्वारा साकार की जाती है। इसीलिए 1949 के अधिनियम ने व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका के बीच स्पष्ट कार्य विभाजन किया था। इसमें कांग्रेस ने मूल रूप से तीन बातों की व्याख्या की थी—

(i) कांग्रेस द्वारा पहला काम यह किया गया कि इसने सभी संघीय पदों के लिए मूल वेतन सूची तैयार की। ऐसा करते समय कार्य के बाजार मूल्य को ध्यान में रखा गया तथा कार्यों के आपसी महत्व एवं उपयोगिता को भी देखा गया। उदाहरण के लिए, Gs-5 का वेतनमान 3410–125–4160 डॉलर तय किया गया। यह ऐसा पद है जिस पर विद्यालय तथा महाविद्यालय के गैर-अनुभवी स्नातकों को लिया जा सकता है।

(ii) कांग्रेस ने दूसरा कार्य यह किया कि इसने सम्पूर्ण संघीय सेवा को दो मोटे वर्गों में विभाजित कर दिया—(A) General Schedule (GS), तथा (B) Crafts, Protective and Custodial Schedule (CPC) इसने GS में 18 ग्रेड्स स्थापित किए तथा इनमें व्यावसायिक एवं वैज्ञानिक, अर्द्ध-व्यावसायिक, लिपिकीय, प्रशासनिक तथा वित्तीय पदों को शामिल कर लिया गया। इसने CPC में 10 ग्रेड्स स्थापित किए। कांग्रेस ने प्रत्येक ग्रेड के कार्य को उसके दायित्वों एवं कठिनाइयों के सन्दर्भ में परिभाषित करने की चेष्टा की। प्रत्येक ग्रेड के बारे में एक स्पष्ट किन्तु व्यापक वक्तव्य दिया गया। यह श्रेणी विशेषत्व नहीं था वरन् इसके द्वारा ग्रेड की सीमाएँ स्थापित की गई जिनके अन्दर पदों की श्रेणियाँ आ सकती थीं। श्रेणियों की व्याख्या तथा एक उपयुक्त ग्रेड में श्रेणी के रूप में उसके आवंटन का कार्य लोकसेवा आयोग के लिए छोड़ दिया गया।

(iii) कांग्रेस ने मूलभूत कार्य-संचालन के नियम स्थापित किए तथा वर्गीकरण व्यवस्था के प्रशासन का अधिकार आवंटित किया। इसने पद, श्रेणी तथा ग्रेड की परिभाषाएँ कीं, लोकसेवा आयोग को यह अधिकार दिया कि वह विभिन्न पदों को उनकी उपयुक्त श्रेणी तथा ग्रेड में शामिल करने के लिए मानक तैयार करें, यह आशा की कि प्रशासन, बजट तथा आर्थिक मामलों में कुछ मापदण्ड तय किए जाएँ। कांग्रेस ने वर्गीकरण व्यवस्था का आधार निर्धारित कर दिया तथा उसे आगे विकसित करने तथा बनाए रखने की सत्ता हस्तान्तरित कर दी। यह हस्तान्तरण अमेरिकी लोकसेवा आयोग को किया गया। आयोग ने कुछ विशेष मामलों में मापदण्ड निर्धारित किए तथा सम्पूर्ण व्यवस्था पर सकल रूप से भी दृष्टिपात किया। प्रत्येक श्रेणी के विशेष वर्णन में आयोग द्वारा 'एक प्रतीक' निश्चित किया गया। उदाहरण के लिए, GS के समाज विज्ञान, मनोविज्ञान तथा कल्याणकारी समूह के

लिए 100 से लेकर 200 तक के अंक निर्धारित किए गए। किसी भी समूह की प्रत्येक विशेष शृंखला को एक विशेष अंक प्रदान किया गया, जैसे वन अर्थशास्त्र (Forest Economics) की शृंखला को 118 अंक दिया गया। इस क्षेत्र के प्रत्येक पद को GS-118 के परिचय प्रतीक से जाना जाएगा। इसी शृंखला के एक पद को यदि ग्रेड-5 में रखा गया है तो इसका पूरा परिचय प्रतीक इस प्रकार होगा—GS-118-5 ये प्रतीक एक प्रकार से सुविधाजनक आशुलिपियाँ थे। आयोग ने इस सम्बन्ध में जो मापदण्ड निर्धारित किए उन्हीं के अन्तर्गत प्रत्येक पद को उपयुक्त श्रेणी तथा ग्रेड में आवंटित करने की शक्ति विभागों को दी गई। इनका निर्णय, यदि आयोग द्वारा न बदला जाए तो अन्तिम होता था। आयोग को यह अधिकार था कि विभाग द्वारा किए गए आवंटन का निरीक्षण करे, त्रुटियों को सही करे और यदि किसी अभिकरण ने इसके मानकों को नहीं अपनाया है तो उसकी शक्ति को वापस छीन ले।

इस प्रकार वर्गीकरण व्यवस्था में कांग्रेस तथा कार्यपालिका शाखा दोनों ही मिल कर कार्य करते हैं। कांग्रेस आधारभूत नियम प्रदान करती है लोकसेवा आयोग उनको अधिक स्पष्ट करता है, अभिकरण इन नियमों के तहत वर्गीकरण व्यवस्था को कार्यरूप देता है। आयोग इस कार्य में सहायक तथा पुलिसमैन का कार्य करता है।

अमेरिका की पद-वर्गीकरण व्यवस्था सकल रूप में एक ढाँचा है जिसके ऊपर सेवा की सेवीवर्ग सम्बन्धी रूप रचना तैयार की जाती है। सरकारी रोजगार में जितने प्रकार के कार्य हैं तथा उनके उत्तरदायित्व की मात्रा है उन सभी का तर्कसंगत विश्लेषण करने के बाद पद वर्गीकरण किया जाता है। यह पदों की उलझनपूर्ण भीड़ को व्यवस्थित सम्बन्धों में बदल देती है तथा कार्यों एवं दायित्वों पर जोर देने के कारण यह व्यावहारिक समस्याओं को अधिक बुद्धिपूर्ण रूप से समझने में सहायता देती है। यह आजीवन सेवा के विकास के लिए मूलभूत है क्योंकि इसके द्वारा उन सोपानों का वर्णन कर दिया जाता है जिनमें होकर एक नए प्रवक्ता को उच्च पद पर पहुँचने के लिए निकलना होगा।

Position Classification in U S A

General Schedule (GS) 18 Grades	Crafts, Protective and Custodial Schedules (CPC) 10 Grades

पद-वर्गीकरण की विधि
(Position Classification Method)

पद-वर्गीकरण की प्रक्रिया में चार मुख्य अभिनेता होते हैं—कर्मचारी, पर्यवेक्षक अभिकरण, सेवीवर्ग कार्यालय और लोकसेवा आयोग। सामान्यतः कर्मचारी द्वारा मूल आँकड़े प्रस्तुत किए जाते हैं, पर्यवेक्षक इन आँकड़ों की पुनरीक्षा करके जो

आवश्यक हो वह अभिमत प्रकट करता है । अमेरिकी संघीय सेवा में पद-वर्गीकरण 'आयोग' द्वारा स्वीकृत मानकों के अनुसार लाइन सेवीवर्ग कार्यालय द्वारा किया जाता है । लोकसेवा आयोग अभिकरण के कार्यों की देख-रेख और मूल्यांकन करता है । इसका प्रभाव व शक्ति पद-वर्गीकरण को वस्तुगत, एकीकृत, एकरूप और निष्पक्ष बनाने का प्रयास करता है ।

किसी पद के वर्गीकरण की अपनाई जाने वाली विधि अनेक परिस्थितियों से प्रभावित होती है, जैसे—एक व्यवस्थित योजना का पहले से होना, कर्मचारी सगठनों की शक्ति, समाज के प्रभावशाली समूहों द्वारा विरोध के बाद भी किया गया वर्गीकरण सर्वेक्षण, योग्यता व्यवस्था का न होना आदि-आदि । पद-वर्गीकरण की प्रक्रिया में मुख्यत निम्नलिखित कदम उठाए जाते हैं—

1 एक उत्तरदायी अभिकरण यह उल्लेख करता है कि पद-वर्गीकरण के लिए सर्वेक्षण किया जाना चाहिए । इस उल्लेख में सम्बन्धित पदों का नाम और सर्वेक्षण की समय-सीमा का उल्लेख किया जाता है ।

2 विश्लेषणकर्त्ता अध्ययन के लिए एक योजना बनाता है और उसे कार्यान्वित करने का प्रयास करता है । वर्गीकरण सर्वेक्षण पर्याप्त महँगे और समय खपाने वाले होते हैं । इनमें छ माह से एक वर्ष तक का समय लग जाता है और प्रत्येक वर्ग के वर्गीकरण में बहुत से डॉलर खर्च हो जाते हैं ।

3 किया गया अध्ययन सहयोगी अभिकरणों और व्यक्तियों को बताया जाता है । विश्लेषणकर्त्ता इसके लिए अपने पास के सभी सूचना साधनों का प्रयोग करता है ।

4 व्यक्तिगत पदों के सम्बन्ध में किए गए कार्य की सूचना एकत्रित की जाती हैं । यह काम प्रश्नावली, साक्षात्कार एव निरीक्षण के माध्यम से किया जाता है ।

5 कार्य की विभिन्न श्रेणियों का तात्कालिक विवरण तैयार कर लिया जाता है और व्यक्तिगत पद उपयुक्त श्रेणी में रख दिए जाते हैं ।

6 तात्कालिक विशेष विवरणों एव आवटनों की पुनरीक्षा की जाती है । प्रशासकों, पर्यवेक्षकों और अन्य सम्बन्धित व्यक्तियों तथा समूहों के परामर्श के आधार पर इसमें परिवर्तन और सशोधन किए जाते हैं ।

7 अध्ययन के परिणामों को स्पष्ट करते हुए प्रतिवेदन तैयार किया जाता है ।

8. अन्त में वर्गीकरण योजना अपना ली जाती है और उसके निरन्तर प्रशासन के लिए प्रावधान किया जाता है ।

पद वर्गीकरण की मूलभूत समस्याएँ

(Basic Problems of Position Classification)

पद-वर्गीकरण कार्य में मूलभूत रूप से चार प्रश्न उठते हैं—श्रेणियों तथा ग्रेड्स की सामान्य सरचना निर्धारित करने में किन बातों का ध्यान रखा जाए ?

विशेष विवरण की विषय-वस्तु क्या हो ? प्रावटनों में निश्चितता और न्याय किस प्रकार प्राप्त हो ? और वर्गीकरण योजना को किस प्रकार प्रचलन बनाए रखा जाए ? इन प्रश्नों के सम्बन्ध में यहाँ संक्षेप में विचार करना उपयोगी रहेगा।

1 विभिन्न श्रेणियों तथा ग्रेड्स की सामान्य संरचना का निर्णय लेते समय कर्मचारी की वृद्धि, प्रतिभा तथा उसके दायित्वों के आपसी सम्बन्ध पर विचार किया जाए। इसके अतिरिक्त कार्यभार की लोचशीलता पदोन्नति और स्थानान्तरण यन्त्र की उपयोगिता, सामान्य और विशेष शिक्षा के मूल्य अच्छी और श्रेष्ठ परीक्षाओं का उपयोग आदि विभिन्न बातों को ध्यान में रखते हुए जहाँ तक सम्भव हो सके कम श्रेणियाँ बनाई जाएँ। श्रेणियाँ केवल इतनी होनी चाहिए ताकि अपने लिए आवंटित पदों के कार्य की पर्याप्त रूप से व्याख्या कर सकें। इस मापदण्ड को हम जब व्यक्तिगत मामलों पर लागू करते हैं तो काफी कठिनाई आती है क्योंकि कभी दो पद पूर्णरूप से एक जैसे नहीं होते। उदाहरण के लिए, दो कर्मचारी अपने हाथ से डाक खोलने के अलावा कुछ नहीं करते एक तीसरा व्यक्ति आने वाली डाक को सम्बन्धित व्यक्ति तक पहुँचाने के लिए एक तरफ रख देता है, चौथा व्यक्ति डाक को उपयुक्त अधिकारी तक पहुँचाता है। प्रश्न यह है कि क्या इन चारों पदों को एक श्रेणी में रखा जाए? इसका उत्तर हाँ में है क्योंकि ये सभी एक जैसा सरल कार्य करते हैं जिसमें किसी विशेष पूर्व प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं है। इन्हें एक प्रकार में भर्ती किया जा सकता है समान वेतन दिया जा सकता है तथा एक जैसा नाम दिया जा सकता है। यदि इन सरल कार्यों के साथ नए कार्य जुड़ जाएँ तो पद के नाम, वेतन, प्रशिक्षण, भर्ती का तरीका योग्यता और अनुभव आदि भिन्न हो जाएँगे। वर्गीकरण संरचना करने से पूर्व यह ध्यान रखना चाहिए कि इसका सम्पूर्ण प्रशासनिक प्रक्रिया और शिक्षा व्यवस्था पर असर रहता है।

2 विशेष विवरण की विषय-वस्तु के रूप में चार बातें उल्लेखनीय हैं—पद का नाम कर्त्तव्यों सम्बन्धी सामान्य वक्तव्य, विलक्षण कार्य और न्यूनतम स्वीकार्य योग्यताएँ। पद का नाम छोटा वर्णनात्मक और लोगों की समझ में आने वाला होना चाहिए। ये सभी बातें किसी न किसी मामले में परस्पर संघर्षपूर्ण भी हो सकती हैं और तब एक सन्तुलनकारी दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। यदि इन बातों को पूरा करते हुए किसी विशेष नाम में व्यक्ति को सम्मान दिया जा सके तो उपयुक्त होगा। पदाधिकारी के कर्त्तव्य सम्बन्धी सामान्य वक्तव्य में सम्बन्धित कार्य की कठिनाइयों और उत्तरदायित्वों का उल्लेख किया जाता है। विलक्षण कार्यों के उल्लेख में किसी पद के केवल वे कार्य बताए जाते हैं जो अन्य पदाधिकारियों द्वारा नहीं किए जाते। न्यूनतम योग्यताओं की दृष्टि में पद के लिए आवश्यक शिक्षा, अनुभव, शारीरिक योग्यताएँ आदि का उल्लेख किया जाए।

3 पदों के आवंटन में निश्चितता एवं समानता के लिए ईंक आडिट, सम-स्तर लोगों के साथ सम्मेलन तथा प्रभावशाली अधीनीय यन्त्र की रचना आदि उपयोगी होंगे। अधीन मण्डल में बजट परिकरण, सेवीवर्ग इकाई और नागरिक

सगठन के प्रतिनिधि तथा निर्वाचित निष्पादक कार्यालय रखा जा सकता है। पदो का आवंटन करते समय जिन तत्त्वों का उपयोग किया जाता है अथवा जिन बातो का ध्यान रखा जाता है, वे मुख्यत ये हैं—(i) कार्य का प्रकार और रूप, (ii) कार्य सम्पन्नता के लिए उपलब्ध मार्गनिर्देशों की प्रकृति और मात्रा, (iii) कार्य पर दूसरों द्वारा रखे गए पर्यवेक्षणात्मक नियन्त्रण की प्रकृति, (iv) आवश्यक पहलू, मौलिकता एव निर्णय शक्ति, (v) कार्य द्वारा अपेक्षित व्यक्तिगत सम्पर्कों का लक्ष्य एव प्रकृति (vi) सम्बन्धित सिफारिशों निर्णयो एव निष्कर्षों की प्रकृति तथा क्षेत्र (vii) एक कर्मचारी द्वारा असाधारण रूप मे कार्यकुशल सेवा मे अपेक्षित अतिरिक्त उत्तरदायित्व (viii) अपेक्षित ज्ञान, योग्यता एव अन्य गुणों का प्रकार, क्षेत्र और मात्रा, (ix) *आवश्यक अनुभव, प्रकार, दीर्घता और गुण, (x) कार्य पर* पर्यवेक्षणात्मक नियन्त्रण की प्रकृति और मात्रा आदि। इन सभी बातो के आधार पर यदि पदो का आवंटन किया गया तो निश्चितता, न्याय एव क्षमता की अपेक्षा की जा सकती है।

4 वर्गीकरण योजनाएँ सदैव चलने वाली प्रक्रिया है, यह कभी पूरी नहीं होती। व्यक्तिगत पदो और कार्य की इकाइयों के सकलन की विशेषताएँ बदल जाती हैं। यह परिवर्तन समाज की गत्यात्मक प्रकृति एव कार्यकर्त्ताओं के स्वभाव के कारण आता है। पद-वर्गीकरण कार्य की तुलना प्राय सड़क की रचना से की जाती है, जैसे सड़क बनाने के बाद उसमे जहाँ तहाँ मरम्मत कार्य की आवश्यकता पैदा करदी जाती है उसी प्रकार ज्योंही वर्गीकरण योजना स्थापित होती है तो उसमें यहाँ-तहाँ होने वाले परिवर्तनों के अनुरूप परिवर्तन और समायोजन भी आवश्यक बन जाते हैं।

सेवा अथवा पद के दायित्वों म आए परिवर्तनों की जानकारी या तो स्वय वर्गीकरणकर्त्ता को करनी चाहिए अथवा सम्बन्धित कर्मचारियों से प्राप्त की जानी चाहिए। वैसे व्यवहार मे कार्यकर्त्ताओं का विश्वास करके उन पर निर्भर नही रहा जा सकता कि वे परिवर्तनों की तुरन्त सूचना दे देंगे। कारण यह है कि प्रत्येक कार्यकर्त्ता अपने कार्यों म व्यस्त रहता है और पूरे सगठन म उसके पद का महत्व और स्थिति बदल गई है इसकी ओर कम ध्यान देता है। उचित यह होगा कि वर्गीकरणकर्त्ता स्वय ही प्रशासको और पर्यवेक्षको के साथ अनौपचारिक व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित करे।

अमेरिकी पद वर्गीकरण का आलोचनात्मक मूल्यांकन
(Critical Evaluation of American Position Classification)

अमेरिकी पद-वर्गीकरण व्यवस्था का मूल्यांकन करते हुए इसकी प्रशसा और आलोचना दोनो दृष्टियों से कई बातें कही जाती हैं। आलोचको की मान्यता है कि यह वर्गीकरण अनेक पूर्वधारणाओं पर आधारित है। ये पूर्वधारणाएँ यथार्थ म सही नहीं हैं। एक पूर्व अवधारणा यह है कि एक पद को उसके कार्यकर्त्ताओं से अलग किया जा सकता है। यही कारण है कि यह केवल पद और उसके कार्यों पर ध्यान

(2) पद की अवधारणा व्यवस्था प्रदान करती है। इसके द्वारा अनुभव और शिक्षा पर विशेष जोर दिया जाता है। व्यक्ति की अन्तर्निहित योग्यता की अपेक्षा उसके कार्य पर अनुभव को विशेष महत्त्व दिया जाता है। इस सम्बन्ध मे विलियम लेहमेन (William Lehman) ने लिखा है कि "हमारी भर्ती और परीक्षा प्रणालियाँ युवा व्यक्तियो को बाध्य करती है कि यदि वे लोकसेवा मे प्रवेश पाना चाहते हैं तो विशेषज्ञ बनें। जो लोग मानविकी एव उदार कलाओ का अध्ययन करते है उनके लिए लोकसेवा के दरवाजे क्रमश बन्द हो जाते हैं।"[1]

(3) इस व्यवस्था मे जातिवाद के विकास की आशकाएँ नही रहती।

(4) यह व्यवस्था पद-वर्गीकरण के साथ-साथ श्रेणी-वर्गीकरण को भी अपनाती है। प्रथम का प्रयोग उच्च पदो के लिए तथा द्वितीय का प्रयोग निम्न पदो के लिए किया जाता है।

फ्रांस मे सेवा वर्गीकरण
(Service Classification in France)

फ्रांस मे लोकसेवाओ की सरचना की चार इकाइयाँ हैं–श्रेणियाँ (Classes), कोर्प्स (Corps), सेवाएँ (Services) तथा ग्रेड्स (Grades)। श्रेणियो को समतल (Horizontal) रूप से चार भागो मे विभाजित किया गया है। ये श्रेणियाँ प्रशासन मे मुख्य रूप से व्यक्ति की शैक्षणिक पृष्ठभूमि पर आधारित होती हैं तथा देश के प्रशासन मे व्यापक भूमिका निभाती है। कोर्प्स एक व्यापक नाम है। सभी लोकसेवक जिस किसी आजीवन सेवा के सदस्य बनते हैं वह सेवा एक कोर्प्स का अग होती है। कोर्प्स की तुलना मे वर्गों का महत्त्व कम होता है। इनकी परिभाषा लोक-सेवको के ऐसे समूह के रूप मे की जाती है जो समान ग्रेड्स के लिए एक जैसे नियमो तथा योग्यताओ से प्रशासित होते हैं।[2] प्रत्येक कोर्प्स एक सीलबन्द इकाई के समान है। 'सेवाएँ' लोकसेवाओ के लम्बरूप विभाजन का प्रतिनिधित्व करती हैं। एक सेवा मे लम्बरूप मे सम्बन्धित विभिन्न कोर्प्स की एक शृंखला होती है। पेरिस स्थित प्रबन्धकीय सम्भागो द्वारा नीति रचना एव क्षेत्रीय सेवाओ की दृष्टि से एक सेवा में एकरूपता की स्थापना की जाती है। ग्रेड्स वे इकाइयाँ हैं जो प्रत्येक कोर्प्स मे अस्तित्व रखती हैं।

फ्रांस की लोकसेवाओ का वर्तमान वर्गीकरण द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद मे 1946 मे किए गए व्यवस्थापन का परिणाम है। इससे पूर्व फांस मे विभिन्न विभागो मे Redacteurs श्रेणी थी जो प्रशासनिक कार्य सम्पन्न करती थी। दूसरी ओर निष्पादक लिपिकीय वर्ग (Executive Clerical Class) था। इन दोनो के बीच

1 *William Lehman* "International Personnel Administration" Personnel Administration, Vol 10 (Sept. 1949) pp 5 6

2 "Corps have been defined as groups of civil servants governed by the same regulations and qualifications for the same grades"
—*M P Barber*, Public Administration, M & E Handbooks, 1972, p 68

कार्यों की व्यवस्था पर्याप्त भ्रमपूर्ण थी। कारण यह था कि उच्चतर कर्तव्यों तथा प्रतिदिन के चालू कर्तव्यों के बीच अन्तर करने की चेष्टा नहीं की गई थी। विभिन्न विभाग समय समय पर होने वाले रिक्त स्थानों पर स्वय ही नियुक्ति करते थे। अपने कार्यों का विभाजन भी स्वय विभाग द्वारा ही किया जाता था। अतः सुविधा के लिए विभिन्न विभाग उच्च पदों के नीचे के तथा निम्न पदों को ऊँचे पदों के कार्य सौंप देते थे, फलतः कार्यों एव पदों के बीच अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती थी। इस समस्या के समाधान का केवल एक ही रास्ता था कि एक ऐसे वर्ग की स्थापना की जाए जो सभी विभागों में कार्य करे। उसमें एकीकरण के लिए सामान्य शिक्षा, सामान्य परीक्षाएँ तथा सामान्य स्तर की स्थापना की जाए। यह कार्य 1946 के व्यवस्थापन द्वारा सम्पन्न किया गया।

युद्धोत्तर विकास
(The Post-War Developments)

युद्ध से पूर्व फ्रांस की लोकसेवा एकरूप नहीं थी। अनेक बार वास्तविक कार्यकारी इकाई विभाग न होकर कोर्प्स होती थी। कुछ कोर्प्स तो इतना अधिक सम्मान रखती थी कि वे संगठन तथा प्रबन्ध की दृष्टि से प्रायः स्वायत्त बन गई थीं। इस प्रशासनिक अराजकता और भ्रम की स्थिति के स्थान पर एकरूपता लाने के लिए युद्ध के तुरन्त बाद तीन महत्त्वपूर्ण सुधार किए गए—

(i) लोकसेवा निदेशालय (Civil Service Directorate)—1945 में लोकसेवा निदेशालय की स्थापना की गई। यह सीधा प्रधानमन्त्री के अधीन रखा गया। 1946 तथा 1959 के अधिनियमों में यह स्पष्ट उल्लेख था कि इन कानूनों को कार्यान्वित करने का दायित्व प्रधानमन्त्री का होगा। यह दायित्व दूसरे कानूनों सम्बन्धी दायित्व जैसा नहीं था वरन् लोकसेवाओं का प्रबन्ध करने का काम प्रधानमन्त्री को उसी रूप में सौंपा गया जिस प्रकार दूसरे मन्त्री अपने विभागों का संचालन करते हैं।

यह निदेशालय सामान्य सचिवालय से जुड़ा हुआ विशेषज्ञों का निकाय होता है। यह बहुत कुछ सेवीवर्ग विषयों से सम्बन्ध रखता है तथा गौण रूप से प्रशासनिक विधियों में सुधार से सम्बन्धित है। यह भर्ती, वर्गीकरण तथा सेवा की शर्तों को नियन्त्रित करने की अपेक्षा सामान्य सेवीवर्ग अभिकरण के रूप में विभिन्न मन्त्रालयों के बीच श्रेष्ठ समन्वय की स्थापना के लिए परामर्श देता है। निदेशालय को लोकसेवाओं में एकरूपता लाने का काम भी सौंपा गया है। इस कार्य के दौरान इसने पाया कि विभिन्न मन्त्रालयों में भर्ती तथा पदोन्नति से सम्बन्धित लगभग एक सौ अलग-अलग सविधियाँ हैं। निदेशालय ने कुछ मॉडल प्रबन्ध भी किए हैं। इसने सभी लोकसेवकों को ABCD चार श्रेणियों में विभाजित किया तथा विभिन्न मन्त्रालयों के विस्तार के साथ सुझाव भी दिए कि उन्हें स्वयं के व्यवहार को किस प्रकार सामंजस्यपूर्ण बनाना चाहिए।

(ii) प्रशासन विद्यालय की स्थापना (Establishment of School of Administration)—1945 में प्रशासन विद्यालय (The Ecole Nationale d'

Administration) की स्थापना की गई। इसका उद्देश्य गैर-तक्नीकी उच्चतर लोकसेवकों की भर्ती में एकरूपता स्थापित करना था। ग्रेट ब्रिटेन के लोकसेवा आयोग से भिन्न प्रशासन विद्यालय लोकसेवकों के केवल उच्चतर वर्ग के लिए ही नियुक्ति करता था और निष्पादक तथा लिपिक ग्रेड के पदों की नियुक्तियाँ सभी की विभागों के हाथों में छोड़ दी गई थी। विद्यालय द्वारा कर्मचारियों को नियुक्त ही नहीं किया जाता था वरन् उनको प्रशिक्षण देने का कार्य भी यह करता था। इसकी स्थापना के बाद प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण की व्यवस्था प्रारम्भ हुई।

(iii) सेवा संरचना में सुधार (Reforms in the Structure of Service)—1946 के अधिनियम ने फ्रांस की लोकसेवा की संरचना में भारी सुधार किए। अब सभी विभागों में लोक प्रशासकों की चार सामान्य श्रेणियाँ बना दी गईं। सभी तकनीकी एवं गैर-तक्नीकी लोकसेवकों को इन्हीं चार श्रेणियों में रखा गया। इन श्रेणियों को ABCD का नाम दिया गया। ये श्रेणियाँ ग्रेट ब्रिटेन की प्रशासनिक, निष्पादक, लिपिकीय तथा टंकणकर्ता श्रेणियों के समकक्ष हैं।[1] इन श्रेणियों में हजारों प्रकार के कार्यों को, कार्यों की समरूपता एवं वेतन दरों के आधार पर वर्गीकृत किया गया। फलत ग्रेट ब्रिटेन की भाँति न्यायपूर्ण पदोन्नति, वेतन, रोजगार में स्थायित्व आदि की समस्या को सुलझा दिया गया। ग्रेट ब्रिटेन से भिन्न फ्रांस की Conseil d' Etat ने राज्य कर्मचारियों को एक विशेष अधिकार दिया है कि यदि किसी कर्मचारी को दण्ड की चेतावनी दी जाए या उसका अनिच्छापूर्ण स्थानान्तरण किया जाए अथवा पदोन्नति को रोका जाए तो वह अपनी सम्बन्धित पत्रावली (File) देखने और तदनुसार न्यायिक कार्यवाही करने का अधिकारी है।[2]

फ्रांस की लोकसेवा का चतुर्वर्गीय विभाजन कार्यों पर आधारित है। लोकसेवा के चार वर्ग क्रमश ये चार कार्य सम्पन्न करते हैं—(i) नियोजन एवं निदेशन का कार्य, (ii) कार्यान्विति का कार्य जिसमें कुछ प्रशासनिक समझ तथा पहल एवं निर्णय की आवश्यकता होती है; (iii) कार्यान्विति के विशेषीकृत कार्य, जिनमें तक्नीकी क्षमता अपेक्षित है, (iv) गैर-विशेषीकृत कार्य जिनमें प्रारम्भिक तथा सरल व्यावसायिक योग्यता की आवश्यकता होती है।

Service Classification in France

(1) Class A—Whose main Function is Planning and Directional (de conception et de direction)

(2) Class B—Whose main Function is applicational (d' application)

1 "These classes were to be known as categories A, B C and D They are roughly equivalent to the British administrative, executive, clerical and typist classes" —*F. Kidley and J. Blondel* · op cit, p 33

2 *Dr Herman Finer*: The Major Government of Modern Europe, 1960, *p 346*

(3) Class C—Whose main Function is executional
(d' execution)

(4) Class D—Whose main Function is support
(Subalterne)

1946 के अधिनियम में वर्गीकृत सेवाएँ
(The Services Classified under the Act of 1946)

1946 में तत्कालीन अस्थायी सरकार के अध्यक्ष जनरल डिगॉल (General De Gaulle) ने कौंसिल डी' एटा के एक सदस्य मार्सल डब्रे (Marcel Debre) को लोकसेवाओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिए सुझाव तैयार करने का काम सौंपा। यह सुधार का कार्य उच्च प्रशासनिक सेवा तथा शिक्षा व्यवस्था दोनों में एक साथ किया जाना था क्योंकि एक के बिना दूसरा सुधार अर्थहीन था। कौंसिल डी' एटा, मन्त्रि परिषद् एवं परामर्शदाता सभा ने इस समस्या पर पूरी तरह से विचार किया और उसके बाद 10 अक्तूबर, 1945 को संयुक्त अध्यादेश, डिक्री तथा विनियम प्रकाशित किए गए। अक्तूबर, 1946 में लोकसेवकों के अधिकारों तथा कर्त्तव्यों पर प्रकाश डालते हुए एक अधिनियम पारित किया गया।

1946 के अधिनियम ने जिन चार प्रकार की सेवाओं का उल्लेख किया उनमें से दो व्यावसायिक वर्ग (Professional Class) की थीं जो नीति रचना एवं नीति कार्यान्विति के कार्यों में सम्बन्धित थीं। इनमें प्रथम को असैनिक प्रशासक (Civil Administrators) कहा गया तथा द्वितीय को प्रशासनिक सचिव (Secretaries of Administration) कहा गया। इन दोनों सेवाओं के नीचे अधिकारियों के दो वर्ग रखे गए जिनको चालू निष्पादन का कार्य सौंपा गया। इन दोनों वर्गों के कर्मचारी ग्रेट ब्रिटेन के क्रमशः लिपिक वर्ग तथा सन्देशवाहक वर्ग के समकक्ष थे। यहाँ हम फ्रांस की उच्चतर लोकसेवा अर्थात् प्रथम दो वर्गों का परिचयात्मक विवेचन निम्नलिखित पंक्तियों में करेंगे।

(i) असैनिक प्रशासक (Civil Administrators)—इस वर्ग की संरचना ग्रेट ब्रिटेन के प्रशासनिक वर्ग के मॉडल को ध्यान में रखते हुए की गई है। यह प्रशासकों का ऐसा समूह है जिसके लिए मुख्य रूप से ये प्रशासनिक सुधार किए गए हैं। इस वर्ग के सभी सदस्य, चाहे वे किसी भी विभाग में कार्य कर रहे हों, एक जैसे अनुशासनात्मक नियमों के अधीन रहते हैं तथा एक ही समूह एवं आजीवन सेवा का प्रतिनिधित्व करते हैं।[1] इन अधिकारियों की सेवाएँ किसी भी विभाग में तथा किसी भी स्तर पर—स्थानीय, राष्ट्रीय, समुद्रपारीय अथवा विदेशी—सम्पन्न की जा सकती हैं, किन्तु ये एक ही कोर्प्स (Corps) के सदस्य माने जाते हैं। ये सेवाएँ

[1] "The civil administrators constitute a single class responsible for the top policy decisions made within the permanent services and subject to the same rules regardless of the department they may serve in."
—*Carter, Ranney and Herz* Major Foreign Powers, 1952, p 3[?]9

5 रैंक में विभाजित हैं जो नीचे से क्रमश इस प्रकार प्रारम्भ होती हैं—Administrators adjoint Administrative Class three, Administrative Class two Administrative Class one and Class Exceptional इन सभी स्तरों के पदाधिकारियों की नियुक्ति नव-निर्मित राष्ट्रीय प्रशासनिक स्कूल द्वारा होती है।

इस श्रेणी के लोकसेवकों के कार्यों का उल्लेख करते हुए मार्सल डेब्रे, (Marcel Debre) ने मुख्यत ये कार्य गिनाए हैं–प्रशासनिक मामलों के आचरणों को सरकार की सामान्य नीति के अनुरूप ढालना, कानूनों और नियमों तथा मन्त्रालयी निर्णय के प्रारूप तैयार करना, उनके कार्यान्वयन के लिए निर्देश तैयार करना तथा लोकसेवकों की गतिविधियों के बीच समन्वय स्थापित करना।[1] 1964 में इस श्रेणी के सदस्यों की सख्या लगभग 1900 थी जो कार्य और दायित्वों के बढ़ने के साथ-साथ निरन्तर बढ़ती चली गई।

प्रशासनिक श्रेणी के कर्मचारियों की स्थिति इनकी शर्तों, कार्य और आजीवन सेवा के अनुरूप अन्य श्रेणियों से भिन्नतापूर्ण है। इस श्रेणी के कर्मचारी के विशेष कार्य एव दायित्वों को देखते हुए राज्य का पहला कार्य यह हो जाता है कि इस श्रेणी में भर्ती हेतु योग्यतम लोगों को आकर्षित करे। इस श्रेणी के सभी कर्मचारी लोक प्रशासन के राष्ट्रीय विद्यालय द्वारा भर्ती किए जाते हैं। इस श्रेणी की पूर्वोक्त पाँचों वर्गों में पदोन्नति वरिष्ठता की अपेक्षा सुविधा और योग्यता के आधार पर की जाती है। व्यवहार में इस नियम का अपवाद भी सम्भव है किन्तु सिद्धान्त में यह बात पूर्णत स्थापित की गई है। राष्ट्रीय विद्यालय के अतिरिक्त अथवा बिना असैनिक प्रशासक के रूप में नियुक्ति केवल अपवादस्वरूप होती है। यदि कभी ऐसा किया जाए तो इसके लिए यह आवश्यक शर्त है कि सम्बन्धित प्रत्याशी निम्न पद पर कम से कम 10 वर्ष सेवा कर चुका हो। इस प्रकार की असाधारण नियुक्तियाँ कानून द्वारा कुल नियुक्तियों की सख्या का 10% निश्चित कर दी गई हैं।

निष्पादक सचिव (Executive Secreataries or Secretaries d' Administration)—यह फ्रांस की उच्च सेवाओं की द्वितीय श्रेणी है। यह ग्रेट ब्रिटेन के निष्पादक वर्ग से समानता रखती है। इस ग्रेड में सभी उच्चतर गैर-लिपिकीय कार्य जैसे अनुवाद कार्य, लेखा कार्य आदि शामिल कर लिए जाते हैं। इस श्रेणी के सदस्यों की भर्ती प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा माध्यमिक विद्यालय के स्नातकों में से की जाती है।[2] विभिन्न मन्त्रालयों के बीच कार्य करने के कारण इस श्रेणी के

1 " . to fit the conduct of administrative affairs to the general policy of the Government, to prepare-drafts of law and rules and ministerial decision to formulate the directives to their execution and to co-ordinate the march of the public services " —*Cf Marcel Debre* • "La Reform deia Fonction Publique" in Reveue d l' Ecole d' Administration, May, 1946, p 34

2 Ordinance No 45-2283 of October 9, 1946, the Provincial Government of the French Republic, Ibid, p 55.

कर्मचारियों में भिन्नता स्थापित की जाती है। इन्हें मुख्य रूप से विभागों में विभाजित किया जाता है। इसमें पदोन्नतियाँ पूर्णरूप से योग्यता के आधार पर की जाती हैं। इस श्रेणी के पदों के लिए बिना परीक्षा के की जाने वाली असाधारण नियुक्तियाँ केवल 12 वर्ष तक सेवा कर चुके लोगों में से ही की जा सकती हैं। कानून द्वारा ऐसी नियुक्तियों को 10% तक सीमित रखा गया है। मार्सल डेब्रे ने इस श्रेणी के कर्मचारियों को प्रशासनिक सेवाओं के तकनीकी विशेषज्ञ कहा है। इन्हीं के कथनानुसार इस श्रेणी के मुख्य कार्य हैं—नीति कार्यान्विति के कार्यों को संचालित करना और कुछ विशेषीकृत कार्य सम्पन्न करना जिनके लिए काफी ज्ञान और अनुभव की आवश्यकता होती है।[1]

इन अधिकारियों को शीर्ष के कार्यालय प्रबन्धक कहा जा सकता है। 1964 में इनकी संख्या लगभग 1200 थी।

फ्रांसीसी लोकसेवा में उक्त दो उच्चतर श्रेणियों के अतिरिक्त लिपिक, टंकणकर्त्ता और हाथ से काम करने वाले कार्यकर्त्ता भी होते हैं। इस वर्गीकरण के फलस्वरूप फ्रांस की लोकसेवाओं का एक व्यापक तथा स्पष्ट विभाजन हो सका है। इससे पूर्व विभिन्न मन्त्रालयों में जो भ्रम और अस्पष्टता की स्थिति थी वह अब समाप्त हो गई है। यह वर्गीकरण लोकसेवाओं में जाति व्यवस्था के विकास को प्रोत्साहन नहीं देगा।

एकीकृत प्रशासनिक सेवा (Unified Administrative Service)—फ्रांस में ग्रेट ब्रिटेन की भाँति स्थायी सचिव के रूप में एक ही कार्यालय के विचार का विकास नहीं हो सका है। अधिकांश मन्त्रालयों में यहाँ अनेक निदेशालय हैं तथा प्रत्येक की अध्यक्षता एक महानिदेशक द्वारा की जाती है। इस पद पर आने वाला व्यक्ति प्रायः इकाई के अन्दर से पदोन्नत होकर नहीं आता वरन् ग्राण्ड कोर्प्स का सदस्य होता है। एकीकृत प्रशासनिक सेवा की स्थापना की दृष्टि से नवम्बर, 1964 में कुछ नियमन किया गया। इसके द्वारा कुछ मात्रा में गतिशीलता को प्रोत्साहन दिया गया है तथा एकीकृत सेवा की अवधारणा को लागू करने की चेष्टा की गई है। इसके लिए एक प्रशासनिक इकाई में कार्य करने वाले असैनिक अधिकारियों पर उस इकाई का कार्यकारी नियन्त्रण समाप्त करके उसके स्थान पर एकीकृत सेवा की औपचारिक रचना कर दी जाएगी जो प्रत्यक्षतः प्रधान मन्त्री के अधीन रहे तथा जिसमें पदोन्नतियाँ होती रहें।

कोर्प्स का अस्तित्व (The Existence of Corps)—फ्रांस में लोकसेवाओं के पुनर्गठन तथा वर्गीकरण के बाद उच्चस्तरीय कोर्प्स को उनके उच्च सम्मान के कारण बनाए रखा गया है। उदाहरण के लिए कौंसिल डी' एटा कोर्प्स, प्रीफेक्ट का कोर्प्स तथा वित्त निरीक्षणालय आदि। इनको पूरी तरह समाप्त करना नासमझी

1. Cf *Marcel Debre* op cit., p 34

का कार्य माना गया और इस दृष्टिकोण का परिणाम यह हुआ कि यहाँ की लोकसेवा को कभी पूरा बहाव प्राप्त नहीं हो सका। उच्चस्तर पर प्रशासनिक एकरूपता नहीं आ सकी वरन् यह केवल मध्यस्तर पर ही प्राप्त हो सकी। सैद्धान्तिक दृष्टि से यह व्यवस्था की गई है कि कोई प्रशासक नीचे से उन्नति करता हुआ उच्च पदों तक पहुँच सकता है, किन्तु व्यवहार में यह नहीं होता। व्यावहारिक दृष्टि से सभी उच्च पदों पर Grand Corps का एकाधिकार है। इस कोर्प्स के अधिकारियों को अभी तक परम्परागत स्वायत्तता प्राप्त है। यह समझा जाता है कि इन कोर्प्स में फ्रांस की लोकसेवा के सर्वाधिक योग्य व्यक्ति होते हैं जो प्रायः सभी विभागों में फैले रहते हैं। तकनीकी तथा गैर-तकनीकी ग्राण्ड कोर्प्स के सदस्य सरकारी विभागों के प्रायः सभी मुख्य पदों पर उपलब्ध हो जाते हैं। यहाँ तक कि इन्हें सरकारी निगमों तथा स्थानीय सरकार के पदों पर भी उपलब्ध किया जा सकता है।

फ्रांस की लोकसेवाओं का कोई एक कोर्प्स नहीं है। एक ही मन्त्रालय अथवा विभाग में अनेक कोर्प्स का अस्तित्व है। 1964 में इस प्रकार के पृथक् कोर्प्स की संख्या 22 थी। केवल वित्त मन्त्रालय में ही 5 कोर्प्स वर्तमान थे। इन कोर्प्स के सदस्यों का पारस्परिक स्थानान्तरण पर्याप्त कठिनाई के बाद हो पाता है। निष्कर्ष रूप से रिडले तथा ब्लोण्डेल (Ridley and Blondel) के शब्दों में यह कहा जा सकता है कि "1944-46 के सुधारों ने सेवा को एकीकृत बनाने का कुछ प्रयास किया है किन्तु विभागों की परम्पराओं तथा ग्राण्ड कोर्प्स के सम्मान ने मिलकर वास्तविक एकरूपता को यथार्थ की अपेक्षा आशा मात्र बना कर छोड़ दिया है।"[1]

तुलनात्मक विश्लेषण
(A Comparative Analysis)

भारतीय लोकसेवक चार श्रेणियों में से किसी एक श्रेणी का सदस्य होता है जबकि संयुक्तराज्य अमेरिका में संघ सरकार की सेवा में कार्य करने वाले कर्मचारी वहाँ स्थापित 18 ग्रेड्स में से किसी एक के सदस्य होते हैं। ये ग्रेड्स Gs–1 से Gs–18 तक हैं जिनमें कर्मचारियों को उनके कार्य तथा दायित्व के आधार पर रखा जाता है। भारत में कार्य तथा श्रेणी का आवश्यक सम्बन्ध नहीं है। किसी कर्मचारी की श्रेणी के द्वारा केवल उसके स्तर (Rank) का ज्ञान हो पाता है, उसके कार्यों का नहीं होता। भारतीय एवं अमेरिकी वर्गीकरण के अन्तर की दृष्टि से अन्य उल्लेखनीय बात यह है कि अमेरिकी व्यवस्था के ग्रेड्स किसी भी पदाधिकारी में न तो वर्गीय चेतना का विकास करते हैं और न उसके स्तर का दिग्दर्शन कराते हैं क्योंकि यहाँ पद का वर्गीकरण किया गया है, पदाधिकारियों का वर्गीकरण नहीं किया गया है। भारत में प्रथम श्रेणी का अधिकारी कहीं भी तथा

1 "The reforms of 1944-46 thus went some way to unifying the service, but the traditions of the departments, combined with the prestige of the grand corps, have remained sufficiently alive for real unity to be more of a hope than a reality." —*F. Ridley & J. Blondel*: op cit, p 34

किसी भी विभाग में कार्य कर सकता है। इसके भिन्न अमेरिका में एक ही ग्रेड का अधिकारी दूसरे विभाग में उसी ग्रेड के पद पर कार्य करने योग्य नहीं माना जाता। कारण यह है कि प्रत्येक विभाग में प्रत्येक ग्रेड के कार्य तथा दायित्व अलग अलग हैं। भारत में स्थिति इससे भिन्न है। इसे स्पष्ट करते हुए द्वितीय वेतन आयोग के प्रतिवेदन में कहा गया था कि सेवाओं के विभाजन की रेखाएँ सेवा के पार समानान्तर रूप में चलती हैं। इसके परिणामस्वरूप गैर-विभागीय एवं गैर-व्यावसायिक आधार पर सेवाएँ तथा पद समूहीकृत हो जाते हैं। यहाँ एक ही सेवा में अनेक ग्रेड्स रखे जा सकते हैं जो पदाधिकारी के वेतन तथा पदसोपान में उसकी स्थिति का दिग्दर्शन तो करा देते हैं किन्तु उसके कार्यों अथवा व्यवसाय की सूचना नहीं दे पाते।

लोकसेवाओं में व्यावसायिक तथा तकनीकी तत्त्व की दृष्टि से भी अमेरिकी एवं भारतीय वर्गीकरण व्यवस्था का अन्तर दर्शनीय है। भारत में लोकसेवाओं का संगठन विशेषज्ञता के सिद्धान्त के आधार पर नहीं वरन् गैर विशेषज्ञता के सिद्धान्त के आधार पर किया जाता है। सामान्य प्रशासक एवं व्यावसायिक पदों पर प्रवेश के लिए कोई विशेष आवश्यक योग्यताएँ निर्धारित नहीं की जातीं। यहाँ तक कि व्यावसायिक पदों के कार्यकर्त्ताओं को भी उनके कार्य का प्रशिक्षण सेवा में प्रवेश के बाद दिया जाता है। यहाँ संयुक्तराज्य अमेरिका की भाँति सेवाओं का कठोर रूप से व्यवसायीकरण नहीं किया जाता।

भारत में लोकसेवकों की श्रेणियाँ प्रशासनिक संगठन के पदसोपान में उनका स्थान निर्धारित करती हैं किन्तु संयुक्तराज्य अमेरिका में एक ग्रेड से सम्बन्धित पदाधिकारी के पदसोपानीय स्तर का कोई ज्ञान नहीं हो पाता। एक विभाग में ग्रेड Gs-8 का जो स्तर है दूसरे विभाग में यह आवश्यक नहीं है कि उसे वही स्तर प्रदान किया जाए।

भारतीय वर्गीकरण व्यवस्था ब्रिटिश वर्गीकरण व्यवस्था से मिलती है। ग्रेट ब्रिटेन में सेवाओं का वर्गीकरण एक पदाधिकारी की पदसोपानीय स्थिति का भारतीय वर्गीकरण की भाँति परिचय करा देता है। भारत में प्रथम श्रेणी की सेवाओं में जो पदाधिकारी शामिल हैं वे ब्रिटिश नागरिक सेवा के प्रशासक वर्ग के समकक्ष हैं। उदाहरण के लिए इस श्रेणी में सचिव अतिरिक्त सचिव संयुक्त सचिव आदि शामिल हैं। ब्रिटिश निष्पादक वर्ग की समानता मध्य प्रबन्ध के अधिकारियों–उप सचिव तथा अवर सचिव से की जा सकती है। ग्रेट ब्रिटेन में एक विशिष्ट अधिकारी वर्ग भी है जिसकी समानता भारत में सैक्शन अधिकारी या अधीक्षक से की जा सकती है। अराजपत्रित द्वितीय श्रेणी की सेवाओं के समान सहायक तथा वरिष्ठ लिपिक का पद है। कनिष्ठ लिपिक, टंकणकर्त्ता तथा एसे ही अन्य पद तृतीय श्रेणी में समूहीकृत हैं। चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों में चपरासी, सन्देशवाहक तथा अन्य ऐसे ही कार्य करने वाले लोग आते हैं। पदसोपान के आधार पर किया गया भारतीय सेवा वर्गीकरण फ्रांस के इसी आधार पर किए गए वर्गीकरण के भी कुछ अनुरूप माना जा सकता है।[1]

---

1 "The classes are defined as A, B, C and D in decreasing order of hierarchical importance".—United Nations, op cit, p 166

7 वेतन प्रशासन : भारत, ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्तराज्य अमेरिका तथा फ्राँस

(Salary Administration in India, U. K., U. S. A. and France)

सेवीवर्ग प्रशासन की अनेक समस्याएँ तथा प्रश्न प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से लोकसेवकों को उनकी सेवाओं के बदले दिए जाने वाले वेतन से सम्बन्धित रहते है। लोकसेवकों की भर्ती एवं उनकी कार्य-सम्पन्नता पर इसका उल्लेखनीय प्रभाव रहता है। वित्तीय उपलब्धियों का आकर्षण, योग्य प्रत्याशियों को आकर्षित करने, उन्हें सेवा में बनाए रखने और पूरी क्षमता एवं योग्यता के अनुसार कार्यकुशलता प्रकट करने की प्रेरणा देता है। 'वेतन' लोकसेवकों द्वारा सम्पन्न कार्यों का प्रतिफल है। यह वह धनराशि है जो प्रत्येक कर्मचारी को उसके कार्य के बदले मासिक, साप्ताहिक अथवा दैनिक रूप से मिलती है। वेतन अथवा प्रतिफल के रूप में प्राप्त धनराशि से लोकसेवक अपनी तथा अपने परिवार की भौतिक आवश्यकताएँ पूरी करता है। एक कर्मचारी को प्राप्त होने वाले वेतन की मात्रा, उसके सम्मान, लोक-सेवाओं में उसके स्तर तथा कार्य के प्रति सन्तोष का आधार बनती है। कितनी धनराशि से कोई लोकसेवक सन्तोष का अनुभव कर सकेगा, यह बात अनेक तत्वों पर निर्भर करती है; उदाहरण के लिए, कर्मचारी की स्वय की तथा पारिवारिक भौतिक आवश्यकताएँ, समाज में उसकी प्रतिष्ठा एवं रहन-सहन का स्तर, पद के दायित्वों की प्रकृति पद के जोखिम की प्रकृति, वैसे ही कार्य के लिए अन्य संस्थानों में प्राप्त वेतन की मात्रा आदि। यही कारण है कि विभिन्न सरकारी पदों के लिए वेतन निर्धारित करते समय इन विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखने की चेष्टा की जाती है।

लोकसेवकों के जीवन में वेतन के अत्यधिक महत्त्व और उपयोगिता के कारण यह विषय अनेक भ्रमों और संघर्षों का आधार बन जाता है। यह बात निजी प्रशासन की अपेक्षा सरकारी प्रशासन पर अधिक लागू होती है। कारण यह है कि सरकारी रोजगार में अन्तिम नियोक्ता जनता होती है जो करदाता के रूप में हमेशा इस बात पर जोर देती है कि न्यूनतम लागत से अधिकतम सेवाएँ उपलब्ध कराई

जाएँ। इस प्रकार सेवीवर्ग अधिकारी पर दुहरा दबाव पड़ता है। एक ओर लोक-सेवकों द्वारा उदार वेतन नीति अपनाकर अधिक वेतन देने की माँग की जाती है और दूसरी ओर करदाता सरकारी व्यय घटाने के लिए लोकसेवकों का वेतन कम रखने का दबाव डालते हैं। मुख्य परेशानी की बात यह है कि आम जनता प्रशासनिक मितव्ययता के साथ ही योग्य और कार्यकुशल कर्मचारियों से अधिकतम अनसेवा प्राप्त करना चाहती है।

स्पष्ट है कि सम्पूर्ण सेवीवर्ग प्रशासन स्वयं लोकसेवक और आम जनता की दृष्टि से लोकसेवकों का वेतन एवं प्रतिफल पर्याप्त महत्व रखता है। लोकसेवक की वास्तविक आय उसके जीवन स्तर को निर्धारित करती है। अपर्याप्त और असन्तोषजनक वेतन नीति के कारण कर्मचारियों का मनोबल गिर जाता है, कार्यकुशलता घट जाती है और सम्पूर्ण प्रशासनिक संगठन असन्तोषजनक रूप से कार्य करता हुआ सफलता की पगडण्डी से उतर जाता है। यही कारण है कि प्रत्येक देश में सेवीवर्ग प्रशासन के इस पहलू पर यथोचित ध्यान दिया जाता है।

आज के लोक-कल्याणकारी राज्यों में सरकार के कार्यों का क्षेत्र पर्याप्त व्यापक हो गया है। विकासवादी नियोजन के कारण वैज्ञानिकों तथा तकनीशियनों का कार्य काफी महत्वपूर्ण बन गया है। अतः वेतन-संरचना ऐसी होनी चाहिए जो सामाजिक मूल्यों में आए हुए परिवर्तनों को अभिव्यक्त कर सके। अपने व्यापक प्रभाव क्षेत्र के कारण सरकारी क्षेत्र के वेतन सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था को प्रभावित करते हैं तथा वर्तमान मजदूरी का स्तर भी इससे प्रभावित होता है। अन्य राज्यों की भाँति भारत में भी सरकारी रोजगार की मात्रा में काफी वृद्धि हुई है। यहाँ 1956 में केन्द्र सरकार के कर्मचारियों की संख्या लगभग 1.86 मिलियन थी जो 1972 तक बढ़कर लगभग 2.84 मिलियन हो गई अर्थात् 52.7 प्रतिशत की वृद्धि हो गई।[1] 1984 तक तो इस संख्या में और भी काफी वृद्धि हो चुकी है। यह वृद्धि आने वाले भविष्य में भी इस प्रकार होती रहेगी, यह आशा की जा सकती है और इसलिए यह तथ्य स्वीकार किया जा सकता है कि सरकार द्वारा किए जाने वाले वेतन स्थिरीकरण का समग्र अर्थ-व्यवस्था पर उल्लेखनीय प्रभाव होता है।

स्वस्थ वेतन संरचना की विशेषताएँ
(Characteristics of a Sound Pay Structure)

एक स्वस्थ वेतन व्यवस्था की तीन प्रमुख विशेषताएँ मानी जाती हैं—संयुक्तीकरण (Inclusiveness), ग्राह्यता (Comprehensibility) एवं पर्याप्तता (Adequacy)।[2] इन तीनों का संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

(1) संयुक्तीकरण (Inclusiveness)

इस विशेषता का अर्थ यह है कि सरकारी कर्मचारियों की वेतन संरचना

1 Report of the Third Central Pay Commission, 1973, Vol. I, Ministry of Finance, Govt. of India, p. 23

2 United Nations, op. cit., p. 85

जैसी अपनाई जाए वैसी ही स्वायत्तशासी तथा अर्द्ध-सरकारी संगठनों द्वारा भी अपनाई जानी चाहिए। प्राय सभी देशों मे गैर-सरकारी या स्वायत्तशासी निकायों का निरन्तर प्रसार होता जा रहा है। ये अपने दिन प्रतिदिन के प्रशासन मे सरकारी नियन्त्रण से उन्मुक्त रहते हैं तथा इन्हे अपना सेवीवर्ग प्रबन्ध एव वित्तीय प्रशासन करने की पर्याप्त स्वतन्त्रता प्रदान की जाती है। इसके फलस्वरूप एकरूपता का अभाव पाया जाता है तथा विभिन्न संगठनो द्वारा एक जैसे कार्यों के लिए अलग-अलग वेतनमान की व्यवस्था की जाती है। इससे प्रशासन मे अनेक समस्याएँ तथा भ्रम पैदा हो जाते है।

सयुक्तीकरण के सिद्धान्त का उल्लंघन बडी संख्या मे की जाने वाली आकस्मिक, मस्टरवालीय तथा अस्थायी नियुक्तियो मे किया जाता है। इन मामलों मे रोजगार पर रखे गए व्यक्ति का वेतन पूर्णत माँग तथा पूर्ति की दशाओं द्वारा तय किया जाता है न कि सामाजिक न्याय एव समानता के विचारो के आधार पर। सुरक्षा के अभाव मे ये कर्मचारी अपना सर्वश्रेष्ठ योगदान नहीं दे पाते। नियोक्ता अधिकारी इनको कभी भी हटा सकता है इसलिए इनका कार्यकाल अनिश्चित रहता है।

(2) ग्राह्यता (Comprehensibility)

अच्छी वेतन व्यवस्था की यह दूसरी विशेषता है। इसका अर्थ यह है कि सरकारी कर्मचारियो का वेतनमान ऐसा हो जो उनकी आय की पूरी तस्वीर प्रस्तुत कर सके। एक कर्मचारी की कुल आय मे विभिन्न प्रकार के भत्ते तथा अतिरेक शामिल रहते हैं। इनमे से कुछ भत्ते तो ऐसे होते हैं जो कर्मचारी की आय मे कोई वृद्धि नही करते वरन् जो कुछ भी उसके द्वारा व्यय किया गया है उसी का भुगतान मात्र करते हैं, जैसे—स्थानान्तरण होने पर यात्रा व्यय, चिकित्सा व्यय आदि। दूसरे प्रकार के भत्ते विशेष वेतन के रूप मे होते हैं जो कर्मचारियो को उनके विशेष कार्यों एव दायित्वों के बदले दिए जाते हैं। तीसरे प्रकार के भत्ते ऐसे अस्पष्ट रूप मे होते है कि उनके कारण वित्तीय रूप मे कर्मचारी को कितना प्राप्त हो सकेगा यह स्पष्ट नही होता। उदाहरण के लिए बिना किराए के घर की सुविधा का प्रावधान। इस प्रकार सरकारी कर्मचारियों को मूल वेतन के साथ-साथ अनेक प्रकार की वित्तीय उपलब्धियाँ प्रदान की जाती हैं। एक स्वस्थ वेतन व्यवस्था वह होती है जिसमे इस बात की स्पष्टता हो कि कर्मचारी को कुल मिलाकर कितनी वित्तीय उपलब्धि हो जाएगी।

(3) पर्याप्तता (Adequacy)

सरकारी कर्मचारियों को दिया जाने वाला वेतन पर्याप्त होना चाहिए। इस पर्याप्तता के दो पहलू हैं—आन्तरिक तथा बाह्य। वेतन आन्तरिक रूप से पर्याप्त होना चाहिए अर्थात् इसे निर्धारित करते समय सम्बन्धित कर्मचारी के गुण, शिक्षा, प्रशिक्षण, कुशलता, कर्त्तव्य एव दायित्व आदि का समुचित ध्यान रखा जाना चाहिए। वेतन बाह्य रूप से भी पर्याप्त होना चाहिए अर्थात् यह इतना हो कि एक कर्मचारी अपना सन्तोषजनक जीवन स्तर बनाए रख सके। ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए

ताकि बढ़ती हुई महँगाई तथा वेतन वृद्धि के परिणामस्वरूप कर्मचारी का जीवन-स्तर खतरे में न पड़ जाए। आर्थिक अभाव के कारण कर्मचारी को इस प्रकार रहने के लिए मजबूर न होना पड़े कि उसकी सारी सामाजिक प्रतिष्ठा गिर जाए तथा अपने समाज की परम्पराओं को अपनाने में वह असमर्थ रहे। अनेक सरकारी कर्मचारी निर्णायक स्थिति में रह कर अनेक महत्वपूर्ण वित्तीय निर्णय लेते हैं। उनकी वस्तुपरकता एवं निष्पक्षता में विश्वास रहना चाहिए। यह सच है कि पदाधिकारियों का उच्च वेतन उनकी ईमानदारी तथा निष्पक्षता की कोई गारण्टी नहीं होता लेकिन उपयुक्त मात्रा से कम वेतन प्रत्यक्ष रूप से बेईमानी और भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन होता है। जब तक एक कर्मचारी को पर्याप्त वेतन नहीं दिया जाएगा तब तक संगठन में अनुशासन नहीं बनाए रखा जा सकता। अनुशासन की स्थापनार्थ की जाने वाली सारी कार्यवाहियाँ तब प्रभावहीन हो जाती हैं जबकि कर्मचारी के सामने वित्तीय हानि उठाए बिना वैकल्पिक रोजगार भी रहते हैं। वेतन की पर्याप्त मात्रा के साथ-साथ सेवा की अन्य शर्तें भी अपना प्रभाव रखती हैं। उदाहरण के लिए, कार्यकाल की सुरक्षा, पदोन्नति के अवसर, अवकाश, सेवानिवृत्ति के अधिकार आदि। इनके साथ-साथ सरकारी सेवा का सम्मान भी प्रत्याशियों को इस ओर आकर्षित करता है। निश्चय ही अनार्थिक तत्वों का प्रभाव रहता है किन्तु वे पर्याप्त वेतन का स्थानापन्न नहीं बन सकते। कारण यह है कि सरकार को योग्य कर्मचारी प्राप्त करने के लिए गैर-सरकारी उद्यमों एवं संस्थानों से स्पर्द्धा करनी होती है, अतः पर्याप्त वेतन की मात्रा एक निर्णायक तत्त्व बन जाती है।

आजकल सरकारी पदों के प्रति रहने वाला आकर्षण समाप्त प्रायः हो गया है तथा इसके विपरीत गैर-सरकारी क्षेत्र का आकर्षण निरन्तर बढ़ता जा रहा है। वहाँ प्राप्त चिकित्सा सुविधाएँ, सेवानिवृत्ति, उदार भविष्यनिधि, बोनस की व्यवस्था आदि के कारण योग्य प्रत्याशी उधर आकर्षित होने लगे हैं। सरकारी सेवा में रहने वाले अनेक प्रतिबन्ध भी इसके प्रति लोगों की अभिरुचि कम करते हैं। स्पष्ट है कि पर्याप्त वेतन का मापदण्ड अत्यन्त उलझनपूर्ण है। व्यावहारिक रूप से इसे तभी अपनाया जा सकता है जबकि अन्य तत्वों को भी ध्यान में रखा जाए। तृतीय वेतन आयोग के प्रतिवेदन के अनुसार, "पर्याप्त वेतन का मापदण्ड अन्तिम रूप से यह है कि प्रस्तावित वेतनमान पर योग्य प्रत्याशी प्राप्त हो जाएँ तथा प्राप्त करने के बाद पद पर ही बने रहें।"[1]

अन्त में, एक स्वस्थ वेतन संरचना की पूर्व आवश्यकता यह है कि इसे सरल तथा बुद्धिपूर्ण होना चाहिए। एक के बाद एक नए वेतनमानों की व्यवस्था पर्याप्त भ्रम तथा अस्पष्टता का कारण बन जाती है। दो पदों के बीच वेतनमानों का थोड़ा-सा अन्तर रहने पर भेदभाव की शिकायतें की जाती हैं तथा इस आधार पर वेतन परिवर्तन की माँग की जाती है। अतः उपयुक्त होगा कि कुछ वेतनमानों को

1 Report of the Third Central Pay Commission, 1973, Vol. I, Ministry of Finance, Govt of India, p 31

व्यापक बनाया जाए ताकि इस प्रकार की शिकायतें न आ सकें। वेतनमानों की सख्या घटाना प्रशासनिक दृष्टि से भी सुविधाजनक रहेगा। वेतन सरचना सरल होने के कारण वेतन बिल तैयार करना सरल होगा, बजट के प्रावधानो को चैक किया जा सकेगा तथा विभिन्न प्रकार की शिकायतो को रोका जा सकेगा।

भारत मे वेतन प्रशासन
(Salary Administration in India)

भारतीय सेवीवर्ग प्रशासन के अन्य पहलुओं की भांति यहाँ का वेतन प्रशासन भी ब्रिटिश राज की विरासत को काफी कुछ सजोए हुए है।

वेतन निर्धारण के सिद्धान्त
(Principles of Pay Determination)

भारत मे लोकसेवको का वेतन निर्धारित करते समय जिन मुख्य सिद्धान्तो को ध्यान मे रखा गया है उनमे से प्रमुख निम्नलिखित हैं—

1 माँग तथा पूर्ति सम्बन्धी विचार (Supply and Demand Considerations)—1915 के इसलिंगटन आयोग (Islington Commission) ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया था कि सरकार को अपने कर्मचारियो को केवल इतना वेतन देना चाहिए कि विभिन्न पदो पर योग्य कर्मचारी नियुक्त किए जा सकें तथा उन्हे इतना आराम और सम्मान देना चाहिए कि वे बाहरी लालच से बच सकें तथा सेवा पर्यन्त कार्यकुशल रह सकें। यह माँग तथा पूर्ति के नियम के समकक्ष था। आयोग ने बताया कि भारत सरकार व्यवहारत. एकाधिकारी नियोक्ता थी। इस पर व्यावसायिक सघो का कोई दबाव न था और श्रम बाजार की पूर्ति काफी थी। इन कारणों से सरकार को अपने कर्मचारियों की वेतन दरें तय करने का पूरा अधिकार था। स्वय आयोग ने भारतीय कर्मचारियों के लिए ये दरें निधारित नहीं की तथा सस्तेपन के आदर्श पर ही विशेष जोर दिया।

भारत के प्रथम लोकसेवा आयोग ने इसलिंगटन आयोग के सिद्धान्त का उल्लेख किया तथा बताया कि वह रिकार्डो से प्रभावित तथा 19वी शताब्दी के पूंजीवादी दृष्टिकोण पर आधारित था। आयोग ने लोकसेवाओ मे व्यावसायिक सघो के विकास तथा समाजवाद की नई प्रवृत्तियो पर प्रकाश डाला। आयोग के शब्दो मे, "हमारी यह मान्यता है कि निजी रोजगार मे मजदूरी का निर्धारण विशुद्ध रूप से सौदेबाजी द्वारा हो सकता है किन्तु जब सरकार नियोक्ता हो तो यह नहीं होना चाहिए तथा किसी 'नैतिक सिद्धान्त' को अवश्य अपनाया जाना चाहिए।"[1] इस आधार पर आयोग ने यह राय प्रकट की कि किसी भी

1 "We recognise that even if wages in private employment could be allowed to be fixed by pure bargaining—but this too is no longer the case—application of some 'moral principle' is expected, when the Government happen to be the employer"

—Report of the First Pay Commission, p 43-44

परिस्थिति में कर्मचारी का वेतन उसके निर्वाह योग्य वेतन से कम नहीं होना चाहिए। इसे आयोग द्वारा न्यूनतम वेतन बताया गया है। द्वितीय वेतन आयोग का निष्कर्ष यह था कि न्यूनतम मजदूरी केवल आर्थिक आधार पर तय नहीं की जानी चाहिए वरन् यह सामाजिक परीक्षा में भी उपयुक्त साबित होनी चाहिए। उच्चतर वेतनों के निर्धारण में भी आर्थिक एवं सामाजिक तत्वों का सहयोग प्रभावशाली रहना चाहिए। द्वितीय आयोग ने इस्लिंगटन आयोग द्वारा निर्धारित मापदण्ड की उपयोगिता को स्वीकार किया। आयोग की स्पष्ट मान्यता थी कि यद्यपि माँग और पूर्ति के विचारों को पर्याप्त महत्त्व दिया जाना चाहिए किन्तु यदि इन्हीं को एकमात्र निर्धारक तत्त्व बना दिया गया तो भारत जैसे देश में जहाँ अकुशल श्रमिकों की पूर्ति भारी मात्रा में है, मजदूरी की दर भूखे मरने के स्तर तक गिर जाएगी। अतः यहाँ न्यूनतम वेतन निर्धारित करते समय माँग और पूर्ति की दशाओं के अलावा श्रमिक की मूलभूत शारीरिक आवश्यकताओं एवं उसके आश्रितों की आवश्यकताओं का भी ध्यान रखना चाहिए। सरकारी क्षेत्र में वेतन सरंचना की पर्याप्तता वैकल्पिक रोजगार में तुलना करके देखी जानी चाहिए। यदि सरकारी क्षेत्र में वेतन का स्तर अपेक्षाकृत नीचा है तो इस क्षेत्र में उपयुक्त सेवीवर्ग की पूर्ति अपने आप घट जाएगी। इसी आधार पर द्वितीय वेतन आयोग ने यह सुझाया था कि यदि किसी पद विशेष के लिए उपयुक्त कर्मचारियों की पूर्ति घट जाती है तो वेतन को अधिक आकर्षक बनाया जाना चाहिए तथा साथ ही सेवीवर्ग के आवश्यक प्रशिक्षण के लिए व्यवस्था की जानी चाहिए।

मध्यवर्ती एवं उच्चस्तरीय पदों के लिए वेतन स्तर कहाँ तक जा सकता है, इस प्रश्न का उत्तर केवल आर्थिक आधार पर नहीं वरन् सामाजिक और मनोवैज्ञानिक आधारों पर दिया जा सकता है। मध्यवर्ती पदों पर कर्मचारियों की संख्या अधिक रहती है इसलिए उनके वेतन की सीमा अर्थव्यवस्था की क्षमता के आधार पर तय की जाती है। उच्चस्तरीय कर्मचारियों की संख्या कम होती है, अतः उनके वेतन निर्धारण में सामाजिक स्वीकृति महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। माँग और पूर्ति के बीच स्थापित असन्तुलन को वेतन निर्धारण में अनावश्यक महत्त्व नहीं दिया जाना चाहिए।

2. समान कार्य के लिए समान वेतन (Equal Pay for Equal Work)– प्रायः सभी कर्मचारी संघ द्वारा सरकारी कर्मचारियों के वेतन निर्धारण के लिए 'समान कार्य के लिए समान वेतन' का सिद्धान्त स्वीकार किया जाता है। कर्मचारी संघ कार्यों के मूल्यांकन पर जोर देते हैं। उनके मतानुसार कार्य मूल्यांकन की तकनीकें वेतन विभिन्नताएँ निर्धारित करने तथा वैज्ञानिक आधार पर वेतन सरंचना लागू करने में सहायता कर सकती हैं। तृतीय वेतन आयोग के सम्मुख केन्द्रीय सरकारी कर्मचारी एवं मजदूरों के संघ और डाक तथा तार कर्मचारियों के राष्ट्रीय संघ ने यह विचार रखा था कि "प्रत्येक विभाग की प्रत्येक श्रेणी के कार्यों की जाँच की जानी चाहिए तथा वैज्ञानिक आधार पर उनके कार्यों का मूल्यांकन और वेतन

भिन्नताएँ निर्धारित की जानी चाहिए। कार्यों का मूल्यांकन प्रबन्ध एवं मजदूर दोनों के मिश्रित संगठनों द्वारा किया जाए।" भारतीय रेल कर्मचारियों के राष्ट्रीय संघ का कहना था कि "कार्य मूल्यांकन तकनीकें सरकारी कर्मचारियों की वेतन संरचना निर्धारित करने में लागू की जा सकती हैं।" अखिल भारतीय रेल कर्मचारी संघ (AIRF) ने अपने स्मरण पत्र में यह उल्लेख किया कि "रेल कर्मचारियों की वेतन संरचना और सेवा की शर्तें उनके कार्यों एवं उत्तरदायित्वों के आधार पर निर्धारित होनी चाहिए। तृतीय व चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों के लिए वेतनमानों की संख्या 12 तक सीमित की जानी चाहिए और अधिकारी वर्ग के लिए केवल 4 तक रखी जानी चाहिए।"

तृतीय वेतन आयोग ने समान कार्य के लिए समान वेतन तथा भारतीय परिस्थितियों में कार्यों के मूल्यांकन सम्बन्धी विषय पर सरकार के वरिष्ठ अधिकारियों से भी विचार-विमर्श किया। भारतीय संविधान की धारा 39(d) में राज्य की नीति के निर्देशक सिद्धान्त का उल्लेख करते हुए यह कहा गया है कि राज्य अपनी नीतियां इस प्रकार निर्देशित करेगा ताकि स्त्री एवं पुरुषों को समान कार्य के लिए समान वेतन प्रदान किया जा सके। सर्वोच्च न्यायालय ने हिन्दुस्तान एन्टीबायोटिक्स के मामले में इस निर्देशक सिद्धान्त को पर्याप्त व्यापक रूप से परिभाषित किया।

वेतन निर्धारण के इस सिद्धान्त के विरुद्ध यह आपत्ति की जा सकती है कि इसे व्यवहार में लागू करना अत्यन्त कठिन है। प्रशासनिक कर्मचारी एक पद-सोपान के रूप में संगठित होते हैं। पद सोपान का प्रत्येक स्तर जिनका पर्यवेक्षण करता है उनकी अपेक्षा अधिक दायित्व स्वीकार करता है। इसके लिए उसे निश्चय ही अधिक वेतन प्राप्त होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं हुआ तो उच्च पदों पर पदोन्नति पाने तथा अधिक दायित्व स्वीकार करने की प्रेरणा समाप्त हो जाएगी। द्वितीय तथा तृतीय वेतन आयोगों ने इस बात को स्वीकार किया है। एक अन्य कठिनाई यह है कि न्यायपूर्ण सापेक्षताएं निर्धारित करने का कोई वैज्ञानिक तरीका नहीं है। किसी पद के कार्यों एवं दायित्वों के अतिरिक्त सेवा की अन्य शर्तों को भी वेतन निर्धारण के समय ध्यान में लेना आवश्यक होता है। यदि सेवा की शर्तें भिन्न हों तो कार्य एवं दायित्व समान होते हुए भी असमान वेतन की व्यवस्था की जा सकती है। ऐसा करना निर्देशक सिद्धान्तों का उल्लंघन नहीं है क्योंकि स्त्री और पुरुषों के लिए ये असमान वेतनमान भी समान रूप से लागू किए जाते हैं।

प्रशासनिक सुधार आयोग ने सेवीवर्ग प्रशासन सम्बन्धी अपने प्रतिवेदन में यह सुझाया था कि नागरिक सेवा के विभिन्न पदों को ग्रेड्स में समूहीकृत किया जाना चाहिए ताकि समान कर्त्तव्यों एवं दायित्वों वाले पद एक ही ग्रेड में शामिल हो सकें। एक ग्रेड के सभी पदों का समान वेतनमान होना चाहिए। ग्रेड की संख्या 20-25 रखी जा सकती है। सम्बन्धित ग्रेड में शामिल करने के लिए प्रत्येक पद का उचित मूल्यांकन किया जाए। यह योजना एकीकृत ग्रेड संरचना (Unified Grade Structure) के रूप में जानी गई। इसके माध्यम से प्रत्येक कार्य के लिए सर्वश्रेष्ठ

व्यक्ति प्राप्त किए जा सकेंगे।[1] भारतीय प्रशासनिक सुधार आयोग की भांति ग्रेट ब्रिटेन में भी उसी समय फुल्टन कमेटी (19 जून, 1968) वहाँ की नागरिक सेवा की संरचना, भर्ती और प्रबन्ध का अध्ययन कर रही थी। उसने भी ग्रेडस की संख्या कम करने और कार्यों के वैज्ञानिक विश्लेषण एवं मूल्यांकन के आधार पर एकीकृत ग्रेड संरचना (Unified Grading Structure) स्थापित करने का सुझाव दिया।

3 उपयुक्त तुलना (Fair Comparison)—समान कार्य के लिए समान वेतन के सिद्धान्त को सरकारी क्षेत्र की परिधियों से बाहर निकाल कर देखा जाए तो यह गैर-सरकारी क्षेत्र के साथ उपयुक्त तुलना का सिद्धान्त बन जाता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि समान कार्य, चाहे वह सरकारी क्षेत्र में हो अथवा गैर-सरकारी क्षेत्र म, के लिए समान वेतन दिया जाना चाहिए। तृतीय वेतन आयोग के सम्मुख आए सभी स्मरण पत्रों मे इस बात का उल्लेख किया गया था कि सगठित निजी क्षेत्र के कर्मचारियों का वेतन समान कार्य करने वाले सरकारी कर्मचारियों के वेतन की अपेक्षा अधिक होता है। यह माँग की गई कि सरकार तथा सरकार के बाहर कर्मचारियो के कार्य एव उत्तरदायित्वों तथा उनके वेतन की उपयुक्त तुलना की जानी चाहिए। केन्द्र सरकार के कर्मचारियों की यह शिकायत भी थी कि सरकारी क्षेत्र के उद्यमो म समान कार्य करने वाले कर्मचारियों को उनकी अपेक्षा भारी वेतन दिया जाता है। इनका औचित्य उच्चतर कर्त्तव्यों एव दायित्वों और अधिक योग्य कर्मचारियों की भर्ती की आवश्यकता आदि के आधार पर निर्धारित नहीं किया जा सकता। जो सरकार सरकारी उद्यमो की वित्त व्यवस्था करती है, वह स्वयं अपने कर्मचारियों को अपेक्षाकृत कम वेतन प्रदान करे, यह चिन्तनीय स्थिति है। इस मसले पर विचार करने के लिए अनेक आयोग और समितियाँ नियुक्त की गईं। प्रथम वेतन आयोग, डॉ डी आर गाडगिल द्वितीय वेतन आयोग आदि ने इस प्रश्न पर विचार करते हुए यह मत प्रकट किया कि सरकारी कर्मचारियों का वेतन तय करते समय निजी संस्थानों के कर्मचारियों के वेतन से भी तुलना की जानी चाहिए। द्वितीय वेतन आयोग ने इस कार्य म आने वाली गम्भीर व्यावहारिक सीमाओं का भी उल्लेख किया और यह बताया कि—(क) निजी क्षेत्र की वेतन दरों की पूरी और व्यवस्थित सूचना प्राप्त करना कठिन है, (ख) अनेक सरकारी पदों का गैर-सरकारी क्षेत्र में कोई समकक्ष नहीं होता।

कुछ अन्य देशों म भी नागरिक सेवकों का वेतन निर्धारित करने के लिए उपयुक्त तुलना का सिद्धान्त अपनाया जाता है। ग्रेट ब्रिटेन म प्रीस्टले कमीशन ने सरकारी कर्मचारियों और औद्योगिक कर्मचारियों के बीच उपयुक्त सापेक्षता के निर्धारण पर जोर दिया। आयोग का मत था कि एक कार्यकुशल लोकसेवा को पर्याप्त प्रभावशील होना चाहिए, प्रत्येक कर्मचारी को इतना वेतन प्राप्त होना चाहिए जो समाज के लिए, विभाग के अध्यक्ष के लिए और स्वयं कर्मचारी के लिए न्यायपूर्ण

1 A. R. C Report on Personnel Administration, 18th April, 1969

हो। उपयुक्त तुलना का सिद्धान्त अपनाने पर योग्य कर्मचारी नियुक्त किए जा सकेंगे तथा नियुक्त कर्मचारियों में सन्तोष की भावना पैदा की सकेगी। ग्रेट ब्रिटेन की फुल्टन कमेटी ने भी इस सिद्धान्त का समर्थन किया है।

संयुक्तराज्य अमरिका में सविधि द्वारा संघ सरकार के कर्मचारियों एवं गैर-सरकारी व्यापार तथा उद्योगों के कर्मचारियों के बीच उपयुक्त तुलना की व्यवस्था की गई है। इस हेतु सूचना एकत्रित करने और विभिन्न पदों के बीच समानता स्थापित करने की व्यवस्था की गई है। संयुक्तराज्य अमेरिका की पद-वर्गीकरण व्यवस्था प्रारम्भिक कार्य मूल्यांकन पर आधारित है। यहाँ एक ग्रेड के अन्तर्गत अनेक व्यावसायिक समूह आ जाते हैं।

फ्राँस में सरकारी पदों का वेतन विभिन्न मापदण्डों पर विचार करने के बाद तय किया जाता है। यह प्रभावी बाजार दरों बजट सम्बन्धी विचारों आदि पर निर्भर करता है। लोकसेवा कानूनों एवं व्यवहारों पर संयुक्त राष्ट्रसंघ की लघु पुस्तिका के अनुसार फ्राँस जैसे आर्थिक रूप से सम्पन्न देश में निजी क्षेत्र की स्पर्द्धा, नागरिक सेवा संघों की शक्ति और सम्भवतः वहाँ के राजनीतिक दर्शन ने मुद्रा प्रसार के प्रभावों के विरुद्ध लोकसेवकों को पर्याप्त वेतन सम्बन्धी समायोजन करने की क्षमता दी है। यह स्थिति प्रायः वरिष्ठ पदों पर लागू नहीं होती। फ्राँस के बारे में यह प्रश्न चिह्न है कि यहाँ की लोकसेवा गैर-सरकारी क्षेत्र के ऊँचे मापदण्डों को प्राप्त करने में सफल हो सकी है अथवा नहीं। यहाँ प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी के पदाधिकारी यह सोच सकते हैं कि उनको अपेक्षाकृत कम वेतन दिया जा रहा है। यह कहना गलत नहीं होगा कि फ्राँस में यद्यपि वेतन की प्रभावी बाजार दरें सरकारी वेतनों को प्रभावित करती हैं किन्तु उपयुक्त तुलना को औपचारिक सिद्धान्त के रूप में यहाँ अपनाया गया है। गैर-सरकारी क्षेत्र की वेतन दरों का प्रभाव अनेक बाहरी तत्वों पर निर्भर करता है तथा सरकारी लोकसेवकों का वेतन निर्धारित करने में पर्याप्त लोचशीलता अपनाता है।

भारत में द्वितीय वेतन आयोग ने इस तथ्य का उल्लेख किया कि उद्योग एवं व्यापार के सुसंगठित क्षेत्रों में भी वेतन की दरों से सम्बन्धित व्यवस्थित सूचना उपलब्ध नहीं होती। तृतीय वेतन आयोग ने जब विभिन्न गैर-सरकारी पदों की वेतन दरें जानने का प्रयास किया तो कई मनोरंजक तथ्य सामने आए। इससे ज्ञात हुआ कि सरकारी उद्यम भारी हानि उठाते हुए भी अपने कर्मचारियों को अधिक वेतन प्रदान कर रहे थे। इसका कारण केवल केन्द्र सरकार द्वारा इन्हें दी जाने वाली वित्तीय सहायता थी।

तृतीय वेतन आयोग ने विभिन्न देशों की सक्रिय जनसंख्या और राज्य सेवारत कर्मचारियों के अनुपात सम्बन्धी जो आँकड़े प्रस्तुत किए, वे निम्नलिखित हैं—

Ratio of the No of Central, Federal Govt Employees to the Total No of Salaried Employees for Various Countries

Country	Year for which data available	Total of economically active population	Salaried empolyees and wage-earners out side agriculture (Millions)	Ratio of 4 to 3 as %age	No of Central Federal Govt Employees (Millions)	Ratio of col (9) to col (4) as %age
1	2	3	4	5	6	7
India	1971	183 61	24 09	13 1	2 77	11·5
France	1970	21 33	15 58	73 0	1 60	10 3
U K	1966	24 86	21 97	88 4	0 69	3 1
U S A	1970	85 90	75 98	88 5	3 08	4 1

Source Year Book of Labour Statistics (ILO), 1971.

उक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि भारत में वैतनिक कर्मचारी एवं मजदूरों की संख्या कुल आर्थिक दृष्टि से सक्रिय जनसंख्या का एक छोटा सा प्रतिशत है। दूसरे, यहाँ केन्द्र सरकार के कर्मचारियों की संख्या अन्य देशों की अपेक्षा कुल वेतन प्राप्त कर्मचारियों और मजदूरों का पर्याप्त उच्चतर प्रतिशत है। भारत में सरकार का दोहरा कार्य है। यह न केवल देश में प्रशासन और विकास के लिए उत्तरदायी है वरन् यह स्वय के कर्मचारियों के सन्तोष, कार्यकुशलता और मोरेल को बनाए रखने के लिए भी उत्तरदायी है। यह आशा की जाती है कि इन दोनों कार्यों के बीच उपयुक्त सन्तुलन रखा जाएगा और एक की कीमत पर अन्य को अनावश्यक महत्त्व नहीं दिया जाएगा।

लोकसेवकों के वेतन निर्धारण में उपयुक्त तुलना के सिद्धान्त को अनुचित महत्त्व नहीं दिया जाना चाहिए किन्तु दूसरी ओर यह भी सच है कि सगठित गैर-सरकारी क्षेत्र द्वारा सरकार की अपेक्षा अधिक वेतन दिया गया और सरकार ने इसकी अवहेलना की तो उसके कर्मचारियों के गुण एवं बुद्धि का निरन्तर ह्रास होता चला जाएगा। वर्तमान काल में सरकार के कार्यों का क्षेत्र व्यापक हो रहा है तथा यह भारी उत्तरदायित्व अपनाती जा रही है अतः इसकी पहली आवश्यकता कार्यकुशल प्रशासन है। यह तब तक प्राप्त नहीं हो सकता जब तक कि बुद्धिपूर्ण वेतन व्यवस्था न अपनाई जाए जो बाहरी दुनिया के वेतन के स्वरूप में होने वाले परिवर्तनों को भी प्रतिबिम्बित कर सके। उपयुक्त वेतन होने पर ही सरकारी पदों की ओर योग्य तथा क्षमतावान व्यक्ति आकर्षित हो सकेंगे और निरन्तर सेवा में बने रह सकेंगे।

इसके अतिरिक्त सरकारी कर्मचारियों को अपने वेतन और सेवा की शर्तों से पर्याप्त सन्तोष रहेगा तभी वे अपना श्रेष्ठतम योगदान कर सकेंगे। जब तक वेतन पर्याप्त नहीं है तब तक उपयुक्त सेवा की शर्तें भी निरर्थक बन जाती हैं। यह तर्क अपने आप में महत्त्व नहीं रखता कि योग्य कर्मचारी सरकारी पदों की ओर आ रहे हैं इसलिए उनका वेतन सन्तोषजनक ही होगा। जिन पदों की नियुक्ति पर सरकार का एकाधिकार होता उनका कम वेतन होते हुए भी कोई विकल्प न होने के कारण योग्य कर्मचारियों को मजबूरी में स्वीकार करना पड़ता है। ये असन्तुष्ट कर्मचारी निश्चय ही अपनी योग्यताओं का समुचित लाभ नहीं दे सकते। तथ्य तो यह है कि सरकारी कर्मचारी स्वाभाविक रूप से गैर-सरकारी क्षेत्र के कर्मचारियों के वेतन पर तुलनात्मक दृष्टि रखते हैं और यदि असमानताएँ गम्भीर हैं तो इनसे अन्याय की भावनाओं का जन्म होगा जो उनके मोरेल को गिराएगा, असन्तोष पैदा करेगा तथा कार्यकुशलता पर विपरीत प्रभाव डालेगा। पर्याप्त वेतन प्राप्त होने पर सरकारी कर्मचारी अपने परिवार के भरण-पोषण की चिन्ताओं से मुक्त रहकर अपना पूरा ध्यान तथा शक्ति अपने पद के दायित्वों का निर्वाह करने में लगा सकते हैं। असन्तुष्ट तथा निराश लोकसेवा संकट के समय सन्तोषजनक कार्य नहीं कर सकती।

इस सम्बन्ध में तृतीय वेतन आयोग ने अपना मत प्रकट करते हुए मुख्य निम्नलिखित बातें कही हैं[1]—

(i) सरकारी क्षेत्र तथा संगठित व्यापार एवं उद्योग के क्षेत्र के बीच वेतन की गम्भीर असमानता का दीर्घकाल में लोकसेवाओं की कार्यकुशलता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

(ii) सरकारी कर्मचारियों तथा सरकारी उद्यमों और निजी क्षेत्र के कर्मचारियों के वेतन के बीच व्याप्त अन्तर इतने गम्भीर हैं कि इस समस्या की ओर व्यवस्थित तथा लगातार ध्यान देने की आवश्यकता है। मजदूरी सम्बन्धी आँकड़े एकत्रित करने के लिए एक स्थायी यन्त्र की स्थापना की जानी चाहिए।

(iii) सरकारी क्षेत्र के उद्यमों के कर्मचारियों के वेतन, मजदूरी तथा सेवा की शर्तों के बारे में एक समान नीति बनाई जानी चाहिए।

(iv) एक कड़ी तथा प्रभावशाली समन्वयकारी मशीनरी की स्थापना की जाए जिसमें वित्त मन्त्रालय तथा सेवीवर्ग मन्त्रालय का प्रतिनिधित्व रखा जाए।

(v) यह समन्वयकारी मशीनरी ही सरकारी कर्मचारियों तथा गैर-सरकारी कर्मचारियों के वेतन सम्बन्धी अन्तरों को दूर कर सकेगी।

(vi) कीमतों तथा मजदूरी की दरों में स्थायित्व लाने के लिए निजी क्षेत्र में मजदूरी की दर को नियन्त्रित करने का प्रयास भी किया जाना चाहिए।

4 **कार्य का मूल्यांकन (Job Evaluation)**—लोकसेवकों के वेतन निर्धारण का एक अन्य आधारभूत सिद्धान्त कार्य का मूल्यांकन है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय

1 Report of the Third Pay Commission, op cit., pp. 44-45.

द्वारा इसकी परिभाषा करते हुए कहा गया कि "कार्य मूल्यांकन कार्य पदसोपान में विभिन्न कार्यों की स्थिति निर्धारित करने के लिए उनका मूल्यांकन करना है। इसका प्रयोग व्यापक रूप से मजदूरी दर की संरचनाओं को स्थापित करने तथा मजदूरी की असमानताओं को दूर करने के लिए किया जाता है। यह कार्यों में लगे व्यक्तियों के गुणों की अपेक्षा हमेशा कार्यों से सम्बन्धित रहता है।"[1] तृतीय वेतन आयोग के प्रतिवेदन के अनुसार कार्य मूल्यांकन का मुख्य उद्देश्य वेतन संरचना के आधार के रूप में कार्यों का स्तर तय करना है। इसका लक्ष्य एक सामान्य मापदण्ड का प्रयोग करते हुए विचाराधीन सभी कार्यों की तुलना करना तथा एक कार्य से दूसरे कार्य के सम्बन्ध को परिभाषित करना है।"[2] कार्य मूल्यांकन निर्वैयक्तिक होता है क्योंकि इसका सम्बन्ध कार्य की विशेषताओं से होता है कार्मकर्त्ताओं से नहीं।

कार्य मूल्यांकन के अनेक तरीके होते हैं। इनमें से कुछ तो गैर-विश्लेषणात्मक होते हैं तथा कार्य पर समग्र रूप से विचार करते हैं जबकि अन्य तरीके विश्लेषणात्मक होते हैं, जिनमें कार्य को विभिन्न तत्वों अथवा निर्णायक अंगों, जैसे—कुशलता, मानसिक अथवा शैक्षणिक आवश्यकताएँ, उत्तरदायित्व एवं कार्य की दशाओं के रूप में विभाजित कर दिया जाता है।

कार्य मूल्यांकन के अपने वर्तमान रूप में कुछ लाभ हैं किन्तु इसकी अनेक सीमाएँ भी हैं। यह अभी तक मुख्यतः औद्योगिक कार्यों पर ही लागू हो सका है। उच्च वेतन वाले पद कदाचित् ही इस प्रकार के विश्लेषण का विषय बनते हैं। कार्य मूल्यांकन की प्रक्रिया में विषयगत तत्व का प्रभाव अधिक रहता है। इसके अतिरिक्त यह तकनीक समय अधिक लाने वाली है तथा परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ इसकी निरन्तर पुनरीक्षा की जानी चाहिए।

5 मजदूरी एवं उत्पादकता (Wages and Productivity)—सरकारी कर्मचारियों का वेतन निर्धारित करते उसे उत्पादकता के साथ जोड़ने का प्रयास किया जाता है। यह एक अर्थशास्त्रीय यथार्थ है कि वेतन में की जाने वाली वृद्धि वास्तविक आय में तब तक कोई वृद्धि नहीं कर सकती जब तक कि उसे उत्पादकता के साथ नहीं जोड़ा जाएगा। गैर-सरकारी क्षेत्र में मजदूरी को उत्पादकता के साथ जोड़ना अधिक सरल माना जाता है किन्तु कभी-कभी मजदूर संघों की माँग के दबाव में आकर उत्पादकता से असम्बद्ध वेतन-वृद्धि कर दी जाती है। उस समय मुद्रा प्रसार

1 "Job evaluation in the evaluation or rating of jobs to determine their position in a job hierarchy ... Job evaluation is widely used in the establishment of wage rate structures and in the elimination of wage inequalities It is always applied to jobs rather than the qualities of individuals in the jobs."
—I L O, Job Evaluation, p 9

2 "The principal purpose of job evaluation is to rank jobs as a basis for a pay structure. It aims, therefore, to compare all jobs under review using common criteria"
—Report of the Third Central Pay Commission, op cit p 45

के दबाव बढ़ जाते हैं तथा वेतन मे होने वाली वृद्धि का कोई वास्तविक लाभ कर्मचारी को प्राप्त नही हो पाता।

6 मॉडल नियुक्तिकर्त्ता की अवधारणा (The Concept of the Model Employer)—तृतीय वेतन आयोग के सामने अनेक कर्मचारी संघो तथा संस्थाओ ने यह मांग की कि सरकार को कर्मचारियो का वेतन और मजदूरी तय करते समय एक मॉडल नियोक्ता के रूप मे काम करना चाहिए। दोनों ही रेल्वे संघों ने इस सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की। NFIR के अनुसार 'सरकार निजी नियोक्ताओ से उनके कर्मचारियो को जो दिलाने की आकांक्षा करती है वह उसे पहले स्वय अपने कर्मचारियों को देना चाहिए।" भारत सरकार सबसे बडा नियुक्तिकर्त्ता है। सरकारी क्षेत्र के उद्यमो की स्थापना के बाद इसके रोजगार की संख्या काफी बढ गई है। सरकार के कार्यों मे लाभ की भावना नहीं होती, अतः उसके लिए यह सम्भव है कि अपने कर्मचारियो को श्रेष्ठतर कार्य की शर्तें प्रदान कर सके। दूसरी ओर गैर-सरकारी नियोक्ता चाहे कितना ही सजग तथा जागरूक क्यो न हो, लाभ की आकांक्षा से प्रेरित होने के कारण अपने कर्मचारियो को सरकार के समान कार्य की दशाएँ नही दे पाएगा।

मॉडल नियुक्तिकर्त्ता शब्द का प्रारम्भ ग्रेट ब्रिटेन के मैकडानल्ड आयोग (1912–15) से हुआ है। इसका कहना था कि सभी पक्षो ने इस सिद्धान्त को स्वीकार किया है कि सरकार को मॉडल नियुक्तिकर्त्ता होना चाहिए। सम्भवत इसका अर्थ यह है कि सरकार को अपने कर्मचारियो को कार्य की ऐसी दशाएँ तथा इतना वेतन देना चाहिए जो कि गैर-सरकारी क्षेत्र के नियुक्तिकर्त्ताओ के लिए एक मॉडल बन जाए। इसकी एक अन्य व्याख्या यह है कि सरकार को अन्य नियुक्ति-कर्त्ताओ की अपेक्षा इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि कर्मचारियो की पदोन्नति आदि निष्पक्ष तथा वस्तुगत रूप से की जा सके, सेवा की अधिकतम सुरक्षा हो, कार्य की दशाएँ तथा निवास की व्यवस्था सन्तोषजनक हो।

इस सिद्धान्त का अर्थ यह कदापि नहीं है कि सरकार अपने कर्मचारियो को एक विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग बना दे। हम इस तथ्य का पहले भी उल्लेख कर चुके हैं कि अनेक पदो पर गैर-सरकारी क्षेत्र मे सरकारी क्षेत्र की अपेक्षा अधिक वेतन दिया जाता है। सरकार का खजाना इस बात की अनुमति नही देता कि वह एक आदर्श नियोक्ता बनने की गरज से इस अन्तर को दूर करने की चेष्टा करे। द्वितीय वेतन आयोग का कहना था कि यदि सरकार मॉडल नियुक्तिकर्त्ता बनने के लिए अन्य नियुक्तिकर्त्ताओ से अधिक वेतन प्रदान करे तो यह अपव्यय माना जाएगा। तृतीय वेतन आयोग का इस सम्बन्ध मे यह मत था कि मॉडल नियुक्तिकर्त्ता की अवधारणा की अनेक प्रकार की व्याख्याएँ की जा सकती हैं किन्तु व्यावहारिक मूल्य का कोई निश्चित दिशासूत्र प्राप्त नहीं हो पाता। एक अच्छे नियुक्तिकर्त्ता के लिए यह आवश्यक नहीं होता कि वह सर्वोच्च वेतन दरें प्रदान करे। इसके कुछ अन्य लाभ भी हो सकते हैं जैसे रोजगार का स्थायित्व तथा निरन्तरता, प्रशिक्षण एवं

पदोन्नति के लिए पर्याप्त सुविधाएँ, ईमानदारी तथा निष्पक्षता का उच्चतर स्तर आदि। इन सभी बातों की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए। अब तक हुआ यह है कि सेवीवर्ग सम्बन्धी विषयों की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है, इसी कारण लोक प्रशासन में भ्रष्टाचार तथा अन्य समस्याओं का जन्म हुआ जो आज भी सम्पूर्ण समाज पर कोढ़ की भाँति छाया हुआ है।

तृतीय वेतन आयोग की सिफारिशें
(Recommendations of the Third Pay Commission)

तृतीय वेतन आयोग ने लोकसेवकों के वेतन निर्धारण सम्बन्धी विभिन्न सिद्धान्तों का उल्लेख करने के बाद वेतन निर्धारित करने के बारे में स्वयं का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। आयोग के मतानुसार इसके लिए कोई एक सिद्धान्त निर्धारित नहीं किया जा सकता क्योंकि केन्द्रीय सरकार की गतिविधियाँ अत्यन्त व्यापक हैं और कर्मचारियों की श्रेणियाँ असंख्य तथा भिन्न-रूपी हैं। ऐसी स्थिति में वेतन निर्धारण के लिए किसी एक सिद्धान्त को अपनाकर कठोरतापूर्ण व्यवहार करने की अपेक्षा आयोग ने केन्द्र सरकार के विभिन्न पदों और सेवाओं के वेतनमान निर्धारित करते समय विभिन्न सिद्धान्तों और दशाओं को ध्यान में रखा है। आयोग के सुझाव मुख्य रूप से निम्नलिखित हैं—

(A) सरकार एक प्रमुख नियुक्तिकर्त्ता है अतः इसे अपनी आवश्यकता के अनुकूल वेतन निर्धारण के अपने सिद्धान्त स्वयं ही तय करने चाहिए। ऐसा करते समय सरकार भर्ती सम्बन्धी कठिनाइयों तथा लोकसेवाओं में उच्चस्तरीय कार्य-कुशलता की स्थापना का ध्यान रखे। सन्तोषजनक वेतन व्यवस्था का सच्चा मापदण्ड यह है कि क्या सरकारी सेवा आवश्यकतानुकूल कर्मचारियों को आकर्षित एवं सेवारत रख पाती है और क्या वे अपने वेतन व सेवा की अन्य शर्तों से सन्तुष्ट हैं। परिवर्तित परिस्थितियों के साथ-साथ सरकार की विभिन्न श्रेणियों के कर्मचारियों का वेतन और सेवा आय शर्तें बदलना आवश्यक बन जाता है। इस सम्बन्ध में आयोग ने लोचशील दृष्टिकोण अपनाने को कहा है।

(B) वेतन सम्बन्धी पहली बात न्यूनतम वेतन का निर्धारण करना है। आयोग के मतानुसार यह सामाजिक मूल्यों के अनुसार निर्धारित होना चाहिए ताकि माँग और पूर्ति की दशाओं का विचार किए बिना एक उपयुक्त जीवन-स्तर को बनाए रखा जा सके। सरकारी सेवा के लिए लोग काफी संख्या में उपलब्ध होते हैं, अतः न्यूनतम वेतन का पूरा लाभ प्राप्त करने के लिए कर्मचारियों की योग्यताएँ और भर्ती के स्तरों को बढ़ा दिया जाना चाहिए। न्यूनतम मजदूरी अधिक रखने के बाद योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। न्यूनतम वेतन में वृद्धि के साथ ही उसी अनुपात में ऊपर के कर्मचारियों का वेतन भी बढ़ाया जाना चाहिए। वेतन-वृद्धि के साथ-साथ कर्मचारियों की संख्या को भी नियन्त्रित किया जाए।

(C) उच्च पदो के वेतन की सीमा सामाजिक स्वीकृति के आधार पर तय की जाए। सामाजिक तत्त्व एव आयु की असमानता घटाने पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

(D) मध्यवर्ती स्तरो पर वेतन निर्धारित करते समय 'समान कार्य के लिए समान वेतन' का सिद्धान्त अपनाया जाना चाहिए। आयोग के मतानुसार भेदमूलक विशेषताओ के अभाव मे विशेष शाखाओं के समान कर्मचारियो को समान वेतन दिया जाना चाहिए, यदि किसी सुस्थापित मापदण्ड के आधार पर उनका कार्य समान मूल्य का साबित होता हो।

(E) इस सिद्धान्त को मूर्त रूप देने तथा तुलना के लिए आधारभूत तत्त्वो को तय करना आवश्यक है। आयोग के मतानुसार मध्यवर्ती स्तरो पर एक पद का वेतन उस पद के कार्यों एव उत्तरदायित्वो, नियुक्ति के लिए निर्धारित आवश्यक योग्यताओ, पर्यवेक्षण की मात्रा आदि के आधार पर तय किया जाना चाहिए। वतन निर्धारण के लिए कुछ अन्य प्रमुख तत्त्व ये हैं—कुशलता की मात्रा, कार्य की परेशानियाँ आवश्यक अनुभव, अपेक्षित प्रशिक्षण, निहित उत्तरदायित्व, मानसिक एव शारीरिक अपेक्षाएँ, कार्य की स्वीकृति की सम्भावनाएँ, आवश्यक उपस्थितियाँ, आने वाली थकान, भर्ती का तरीका, पद के लिए निर्धारित न्यूनतम शैक्षणिक एव तकनीकी योग्यताएँ, जनसम्पर्क, पदोन्नति के अवसर तथा कार्यों के साथ सापेक्षिक सम्बन्ध।

(F) आयोग के मतानुसार वेतनमान निर्धारित करते समय सम्पन्न किए जाने वाले कार्य की कठिनाइयो, जटिलताओ तथा उत्तरदायित्वो पर ध्यान रखा जाना चाहिए। एक कर्मचारी के कार्यों का मूल्यांकन उसके निम्न तथा उच्च अधिकारियो द्वारा सम्पन्न कार्यों के आधार पर किया जा सकता है। एक कर्मचारी का उत्तरदायित्व उस पर रखे गए पर्यवेक्षण की मात्रा और उसके कार्य के परिणामो पर निर्भर करता है। आयोग ने वेतनमान निर्धारित करते समय इन सभी बातो को ध्यान मे रखा।

(G) वेतन सरचना सरल एव बुद्धिपूर्ण होनी चाहिए तथा वेतनमानो की भारी सख्या को कम किया जाना चाहिए। इसके लिए विभिन्न श्रेणियो एव व्यवसायो के पदो को एक ग्रेड मे समूहीकृत कर दिया जाए।

(H) ग्रेड्स की सख्या गम्भीर रूप से घटाना भी गैर-लाभदायक और खतरनाक है। केन्द्र सरकार के 2 8 मिलियन कर्मचारियो को केवल 20 या 25 श्रेणियो में रखना सम्भव नहीं है। इसके परिणामस्वरूप कुछ क्षेत्रो मे पदोन्नति के अवसर समाप्त हो जाएँगे। पदोन्नति न केवल पदोन्नत हुए लोगो की कार्यकुशलता को प्रभावित करती है वरन् उन्हें भी प्रभावित करती है जो इसकी आकांक्षा रखते हैं। पदोन्नति के पर्याप्त अवसर होने से कर्मचारियो मे विश्वास जाग्रत होता है तथा सगठन की कार्य प्रक्रिया प्रभावित होती है। इसके लिए ग्रेड्स की पर्याप्त सख्या होना आवश्यक है।

(I) वेतन संरचना को सरलीकृत करने के लिए समतल की तुलनाएँ आवश्यक बन जाती हैं। कार्य मूल्यांकन की तकनीक को प्रारम्भ में प्रायोगिक आधार पर अपनाया जाए और उसके बाद यदि उपयोगी समझा जाए तो इसे जारी रखा जाए।

अन्त में तृतीय वेतन आयोग ने निष्कर्ष रूप से यह मत प्रकट किया कि मजदूरी और वेतन की दरें रोजगार के क्षेत्र में प्रवेश पाने वाले स्त्री व पुरुषों के निर्णयों को प्रभावित करती हैं। विभिन्न व्यवसायों का वित्तीय आकर्षण इस प्रकार का होना चाहिए ताकि उपलब्ध मानवीय सामग्री का बुद्धिपूर्ण आवंटन हो सके और समग्र लाभ को अधिकतम किया जा सके। वर्तमान माँग तथा पूर्ति के असन्तुलन को सुधारा जाना चाहिए तथा तकनीकी परिवर्तनों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। एक प्रजातान्त्रिक प्रतिनिधि शासन होने के नाते सरकार को सामाजिक न्याय को महत्त्व देना होगा। इसे मानवीय आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं की ओर भी उपयुक्त ध्यान देना होगा। सरकारी कर्मचारियों को यह विश्वास होना चाहिए कि उनका वेतन गैर-सरकारी क्षेत्र के कर्मचारियों से कम नहीं है। ऐसी स्थिति में मानवीय तथा प्रशासनिक कारणों से केवल आर्थिक दृष्टि से निर्धारित वेतनमानों में पूर्ण परिवर्तन आवश्यक बन जाता है। तृतीय वेतन आयोग ने स्वीकार किया है कि उसके द्वारा प्रस्तावित नए वेतनमानों के कारण सरकारी राजकोष पर व्ययभार बढ़ जाएगा किन्तु सरकारी कर्मचारियों के सन्तोष एवं आत्मतुष्टि के लिए यह आवश्यक है।

न्यूनतम प्रतिफल
(Minimum Remuneration)

न्यूनतम प्रतिफल का निर्धारण बाजार की माँग तथा पूर्ति की शक्तियों द्वारा न होकर विभिन्न सामाजिक आर्थिक तत्त्वों के आधार पर होता है। अनेक समितियों, आयोगों, न्यायालयों तथा न्यायाधिकरणों ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है कि श्रमिक की न्यूनतम आवश्यकताओं के आधार पर उसके वेतन का निर्धारण किया जाना चाहिए। सरकारी सेवा में न्यूनतम वेतन निर्धारित करने में देश की सामान्य आर्थिक स्थिति, इसकी प्रति व्यक्ति आय, बेरोजगारी का स्तर, सरकार की वित्तीय स्थिति, साधन स्रोतों को गतिमान करने की इसकी इच्छा एवं योग्यता, देश के विकास के लिए इन स्रोतों पर पड़ने वाला भार आदि तत्त्व उल्लेखनीय भूमिका अदा करते हैं। स्वयं कर्मचारी की न्यूनतम आवश्यकताएँ, कई बातों के आधार पर तय होती हैं, जैसे—(i) उसके परिवार की आवश्यकताएँ, (ii) उसके तथा उसके परिवार के भोजन की आवश्यकता, (iii) पर्याप्त वस्त्रों का प्रबन्ध, (iv) निवास-स्थान की सुविधा, (v) मेडिकल उपचार की व्यवस्था, (vi) स्वास्थ्य की रक्षा, (vii) शिक्षा का प्रबन्ध आदि कुछ ऐसी मूलभूत आवश्यकताएँ हैं जिनकी पूर्ति कर्मचारी के सन्तोष एवं कार्यकुशलता के लिए आवश्यक है।

तृतीय वेतन आयोग ने आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम प्रतिफल को मुख्य इन बातो पर आधारित किया—शाकाहारी भोजन का व्यय, कर्मचारी का परिवार, जिसमे तीन वयस्क सदस्य शामिल है, कपडे की आवश्यकता, जिसमे 18 गज प्रति व्यक्ति के हिसाब से लगभग 72 गज कपडा प्रतिवर्ष आवश्यक होगा। कुल आय का 7½% भाग मकान के किराए के रूप मे तथा अन्य खर्च जो कि कुल व्यय का 20% होगा। इन सभी आँकडो को आयोग ने निम्न तालिका मे प्रस्तुत किया है—

Actual figures of Need based Minimum Remuneration

Items		Expenditure
		(Rs per month)
1 Food (Simple average of four cities)	...	131 70
2 Clothing @ Rs 1 91 per metre (Rs 1 75 per yard) for 5 5 metres (6 yards)	... ...	10 50
3 House rent @ 7 % of the total	... ..	14 71
4 Miscellaneous expenditure @ 20% the total		*39 23*
		196 14
		Rs 196 in round figures

आयोग द्वारा प्रस्तावित वेतनमान

(The Pay Scales Proposed by the Pay Commission)

तृतीय वेतन आयोग ने वेतन निर्धारण के विभिन्न सिद्धान्तो तथा कर्तव्यो, दायित्वो, योग्यताओ एव अन्य सम्बन्धित बातो का ध्यान रखते हुए केन्द्र सरकार के अधीन पदो की विभिन्न श्रेणियो के अन्तर्गत 80 वेतनमान सुझाए।[1] इनको अग्रिम तालिका मे प्रस्तुत किया जा रहा है—

PROPOSED SCALES OF PAY (in rupees)

1 160-2-170.
2 185-2-193-3-205-EB-3 220.
3 190 3-208-4-220-EB 4-232.
4. 193-3-208-4-220-EB 4-240.
5. 200-3 212-4-240-EB-5-260
6 200-3-212-EB-240-4-EB 5-280.
7 225-5 260 6 290 EB 6-308.
8 225-5-260-6-326-EB-7-350.

1 Report of the Third Central Pay Commission, Para 55

9 260-6-326-EB 8-350
10 260-6-290 EB-6-326 8-366-EB 8 390-10-400
11 260 8-300-EB-8-340 10-383-EB-10-430.
12 260-8-300-EB 8 340-10-360-12-420-EB-12-480
13 290 6-326 EB-8-350
14. 290-6-326-8-350 EB 8-390-10-400
15 290 8-330 EB 8 370 10 400-EB-10-480
16 290-10-350 EB-12-410 EB 15-500
17 290-8 330-10-380 EB-12 500-EB-15 500
18 320 6-326-8-390-10 400
19 330 8-370-10-400 EB 10-480
20 330 10-380 EB 12 500 EB 15-560.
21 380 12-500 15-530
22 380-12-500-EB 15 560
23 380-12-440 EB 15-560 EB-20 640.
24 425-15 500 EB-15-560-20 600
25 425 15-560-EB 20 640
26 425-15-500-EB-15-560-20-700
27. 425-15-500-EB 15-560-20-640-EB-20-700-25-750
28 425-15-500 EB 15-560-20 700 EB-25-800
29 440 15-515 E B 15-560-20-700-EB-25-750
30 455-15-560-EB-20-700.
31 470-15-560-20 580
32 470-15-530-EB 20-650-EB-25-750.
33 500-20-700 EB-25-900
34 500-15-560-20-620
35 550-20-650-25-700.
36 550-20-650-25-750
37 550-20-650-25 800
38 550-25-750 -EB 30-900
39 600 25-750
40 650-30-710
41 650-30-740-35-880 EB-40-960
42 650-30-740-35-880-EB-40-1040.
43. 650-30-740-35-810-EB-35-880-40-1000-EB-40-1200
44 700-30-760-35-900
45 700-40 900 EB-40-1100-50-1300
46 700-40-900-EB-40-1100-50-1250-EB-50-1600
47 740-35-880
48. 775-35-880-40-1000
49 775-35-880-40-1000-EB-40-1200

50 840-40-1040
51 840-40-1000-EB-40-1200.
52 900-40-1100-EB-50-1400.
53 1050-50-1600
54 1050-50-1500-EB-60-1800.
55 1100-50-1500
56 1100-50-1600
57 1100-50-1500-60-1800
58 1200-50-1600
59 1200-50-1700
60 1200-50-1500-60-1800
61 1200-50-1300-60-1600-EB-60-1900-100-2000.
62 1300-50-1700.
63 1500-960-1800
64 1500-60-1800-100-2000.
65 1650 75-1800
66 1800-100-2000
67 1800-100-2000-125/2-2250
68 1850 Fixed
69 2000-125/2-2250.
70 2000-125/2-2500
71 2250-125/2-2500
72 2250-125/2-2500-EB-125/2-2750.
73 2500 Fixed
74 2500-125/2-2750
75 2500-125/2-3000
76 2750 Fixed
77 3000 Fixed
78 3000-100-3500.
79 3250 Fixed.
80. 3500 Fixed.

Source—Report of the Third Central Pay Commission, op cit, p 85

सरकार ने तृतीय वेतन आयोग की अधिकांश सिफारिशों को मान लिया है। 1983 मे गठित चतुर्थ वेतन आयोग की रिपोर्ट अभी प्रतीक्षित है।

एकीकृत सामान्य वेतन योजना का अभाव

(Lack of Integrated General Pay Plan)

भारत मे सामान्य एकीकृत योजना को कभी लागू नहीं किया गया। इसके परिणामस्वरूप लोकसेवाओं की चारो श्रेणियों मे 500 से भी अधिक वेतनमान बन

गए हैं। सामान्य वेतन योजना न होने के कारण प्रत्येक पद और सेवा के लिए अलग से वेतनमान निर्धारित किया जाता है। पदों की संख्या में वृद्धि के साथ-साथ वेतनमानों की संख्या भी बढ़ जाती है। अनुभव साक्षी है कि वेतन आयोगों के मध्य काल में वेतनमान कई गुना बढ़ जाते हैं। प्रथम वेतन आयोग ने कुल 150 वेतनमानों की सिफारिशें की थीं। द्वितीय वेतन आयोग के समय वेतनमानों की संख्या 500 को पार कर चुकी थी। द्वितीय वेतन आयोग ने 140 वेतनमानों की सिफारिश की जिसके फलस्वरूप वेतनमानों की संख्या में उल्लेखनीय कमी आई किन्तु 1 जनवरी, 1971 तक इनकी संख्या 500 से ऊपर पहुँच गई।

तृतीय वेतन आयोग ने इस संख्या को गम्भीर रूप से कम करते हुए कुल 80 वेतनमान सुझाए।

भारतीय वेतन व्यवस्था की एक अन्य विशेषता समयमान (Time Scale) व्यवस्था है। इसका अर्थ ऐसे वेतन से है जो सामयिक वृद्धियों द्वारा न्यूनतम दरों से अधिकतम दरों तक पहुँच जाता है। इस व्यवस्था में दक्षता अवरोध (Efficiency bar) भी सलग्न है। इसका अर्थ यह है कि वेतनमान के एक निश्चित बिन्दु पर पहुँचने के बाद आगे वेतन वृद्धि करने से पूर्व यह देखा जाता है कि कर्मचारी में उच्च पद के दायित्व निभाने की क्षमता है अथवा नहीं। अनेक उच्चतर सेवाओं में जहाँ विशेष ग्रेड नहीं हैं वहाँ समयमान की व्यवस्था की गई है।

एक सुनिश्चित वेतन योजना न होने के कारण भारतीय सेवीवर्ग प्रशासन अनेक प्रशासनिक कठिनाइयों में उलझ जाता है। यहाँ विभिन्न वेतनमानों के लिए अलग-अलग लेखा तालिकाएँ बनानी पड़ती हैं। प्रत्येक सेवा और पद के लिए पृथक् से नियम निर्धारित करने पड़ते हैं। आलोचकों का कहना है कि भारतीय वेतनमान व्यवस्था ने लोकसेवकों में जातीय व्यवस्था को प्रोत्साहन दिया है। इसकी भ्रमपूर्ण व्यवस्था में कोई बुद्धिसंगत तथा एकरूप कार्यवाही असम्भव बन गई है।

वेतन विभिन्नताएँ
(The Pay Differentials)

भारतीय सेवीवर्ग प्रशासन की सामान्य नीति के अनुसार कुछ वेतन सम्बन्धी विभिन्नताएँ अनिवार्य रूप से अपनाई जाती हैं किन्तु भ्रम निवारण हेतु एक स्तर के सभी कर्मचारियों का वेतन एक जैसा बनाए रखने की चेष्टा की जाती है। यदि किसी पदाधिकारी को अपने पद के कर्त्तव्य सम्पन्न करते समय अथवा पद की अपेक्षाओं के कारण कोई हानि होती है तो उस हानि के बदले मुआवजे के रूप में उसे विशेष वित्तीय सहायता दी जा सकती है। बड़े शहरों में कार्य करने वाले कर्मचारियों को अपेक्षाकृत अधिक महँगाई के कारण जीवनयापन व्यय अधिक करना पड़ता है, अतः उनको वेतन के अतिरिक्त निवास स्थान-भत्ता, शहरी भत्ता आदि अन्य भत्ते भी प्रदान किए जाते हैं। इसी प्रकार विदेशों में कार्य करने वालों के लिए समुद्रपारीय भत्ता प्रदान किया जाता है।

वेतन प्रशासन के लिए उत्तरदायी प्राधिकारी
(The Authority Responsible for Salary Administration)

भारत में सरकारी कर्मचारियों के वेतन प्रशासन तथा विकास का कार्य प्रत्येक मन्त्रालय पर व्यक्तिगत रूप से छोड़ दिया गया है। यह मन्त्रालय वित्त मन्त्रालय के समग्र पर्यवेक्षण में रह कर कार्य करता है। किसी मन्त्रालय में जब कोई नया पद स्थापित किया जाता है तो सर्वप्रथम वह मन्त्रालय विचाराधीन सेवा के कार्यों तथा दायित्वों की प्रकृति पर विचार करता है। उसके बाद वह गृह मन्त्रालय के स्थापना अधिकारी, वित्त मन्त्रालय के व्यय विभाग तथा संघीय लोकसेवा आयोग के साथ विचार-विमर्श करके उस पद या सेवा का वेतन तथा अन्य कार्य की शर्तें निर्धारित करता है। स्पष्ट है कि किसी पद या सेवा के वेतनमान का विकास एक अन्तर्विभागीय विषय है।

वेतनमान के प्रशासन के लिए एक अलग तरीका अपनाया जाता है। इस हेतु समस्त लोकसेवाएँ दो श्रेणियों में समूहीकृत की गई हैं—राजपत्रित एवं अराजपत्रित (Gazetted and Non-Gazetted)। सभी राजपत्रित अधिकारी *अपना वेतन एवं भत्ते स्वयं ही प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त करते हैं और इसी कारण उनको* 'Self-drawing Officers' कहा जाता है। इन अधिकारियों की नियुक्ति भारत के राजपत्र में अधिसूचित की जाती है। इस राजपत्र अधिसूचना की एक अग्रिम प्रतिलिपि नियुक्ति-पत्र की प्रतिलिपि के साथ सम्बन्धित ऑडिट या वेतन लेखा अधिकारी के पास भेज दी जाती है। लेखा परीक्षा अधिकारी द्वारा नियुक्त अधिकारी को वेतन पर्ची (Pay Slip) प्रदान की जाती है जिसके द्वारा उसे नियुक्ति के बाद से ही वेतन एवं भत्ते लेने का अधिकार प्रदान किया जाता है। यह वेतन पर्ची राजकोष अधिकारी अथवा वेतन एवं लेखा अधिकारी को भी दी जाती है जो आवश्यक जाँच-पड़ताल के बाद भुगतान के लिए बिल को पास कर देता है।

अराजपत्रित अधिकारियों का वेतन एवं भत्ते स्थापना वेतन बिल (Establishment Pay Bill) के द्वारा एक विभागीय अधिकारी द्वारा उठाए जाते हैं। अधिकारी वेतन बिलों को निकालने तथा बाँटने के लिए जिम्मेदार होता है। ये स्थापना वेतन बिल सम्बन्धित कार्यालय की स्थापना शाखा द्वारा कर्मचारी वर्ग की श्रेणी के आधार पर तैयार किए जाते हैं। इस प्रकार एक ही श्रेणी के सभी अराजपत्रित अधिकारियों का एक ही बिल बना लिया जाता है। इन बिलों पर प्राधिकृत निष्कासन एवं वितरण अधिकारी के हस्ताक्षर होते हैं तथा उसके बाद यह भुगतान के लिए पास होने को राजकोष अधिकारी/वेतन एवं लेखा अधिकारी के पास भेज दिया जाता है। निष्कासित धन को कैशियर द्वारा कर्मचारी वर्ग के सदस्यों को एक परिचय रोल पर उनके हस्ताक्षर लेकर वितरित कर दिया जाता है।[1]

1 IIPA. The Organisation of the Govt. of India, 1971, pp 499 500

वेतन सम्बन्धी समस्त मामले तथा अभिलेख महालेखाकार द्वारा बनाए व रखे जाते हैं। इस प्रकार कानूनी भाषा में यह कहना सही होगा कि सरकारी कर्मचारियों के वेतन प्रशासन का दायित्व महालेखाकार के कार्यालय का होता है। यथार्थ में केवल राजपत्रित अधिकारी ही अपना वेतन ग्रहण करने के लिए महालेखाकार के कार्यालय के सम्पर्क में आते हैं अन्यथा गैर-राजपत्रित कर्मचारियों का कार्य तो सम्बन्धित मन्त्रालय के प्रशासनिक कार्यालय द्वारा ही सम्पन्न कर दिया जाता है।

ग्रेट ब्रिटेन में वेतन प्रशासन
(Salary Administration in Great Britain)

ब्रिटिश राजकोष द्वारा प्रीस्टले कमीशन (1953 55) के सम्मुख प्रस्तुत परिचयात्मक तथ्यगत ज्ञापन में तत्कालीन वेतन संरचना के चार स्तरों का उल्लेख किया गया था।[1] ये स्तर निम्नलिखित हैं—

(A) शार्ट स्केल्स (Short Scales)—सन्देश वाहकों, क्लीनरों, डाकघर इन्जीनियरों मजदूरों आदि गैर-कार्यालयी ग्रेड्स के लिए।

(B) लांग स्केल्स (Long Scales)—निष्पादक अधिकारी जैसे अनेक मूलभूत एवं भर्ती ग्रेडस के लिए।

(C) मीडियम लैंग्थ स्केल्स (Medium Length Scales)—मध्यम श्रेणी के कार्यालयी कर्मचारी के लिए।

(D) शार्ट स्केल्स (Short Scales)—उच्च श्रेणी के कार्यालयी कर्मचारी वर्ग के लिए।

वेतन निर्धारण के सिद्धान्त
(Principles of Pay Determination)

ग्रेट ब्रिटेन की लोकसेवाएँ इस तथ्य से परिचित हैं कि कर्मचारियों का मासिक वेतन लोकसेवकों की सेवा की शर्तों में सबसे महत्वपूर्ण है। जब कर्मचारियों को अपेक्षित से कम वेतन दिया जाता है तो इनकी कार्यकुशलता घट जाती है तथा उसमें सुधार के लिए किए जाने वाले विभिन्न प्रयास निरर्थक साबित होते हैं। यही वेतन निर्धारण के लिए यहाँ समय समय पर विभिन्न सिद्धान्तों का समर्थन किया गया है। इनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं—

(1) आदर्श नियोक्ता का सिद्धान्त (Principle of Model Employer)—यहाँ प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व यह माना जाता था कि सरकार को अपने कर्मचारियों का वेतन इस प्रकार निर्धारित करना चाहिए कि गैर सरकारी नियुक्तिकर्त्ताओं के लिए एक आदर्श बन सके। 1914 में मैकडानल्ड कमीशन ने इस मॉडल एम्पलायर

1 *W J M Mackenzie & J W, Grove* : Central Administration in Britain, 1957, pp 45–46

(Model Employer) के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया तथा 1922 में राजकोष प्रवक्ता ने इसका समर्थन किया।

(2) कार्यकुशलता का सिद्धान्त (The Principle of Efficiency)—प्रथम महायुद्ध के बाद उत्पन्न आर्थिक संकट के समय इस दृष्टि से एक नए युग का सूत्रपात हुआ। 1923 में राज्य कर्मचारियों के वेतन पर विचार करने के लिए नियुक्त एण्डरसन समिति (Anderson Committee) का विचार था कि "केवल एक ही सिद्धान्त में उत्तरदायित्व जीवन-निर्वाह व्यय, शादी बच्चे, सामाजिक स्थिति आदि तत्त्व शामिल हो जाते हैं। यह सिद्धान्त है कि नियुक्तिकर्ता को उतना वेतन देना चाहिए जितना कार्यकुशल कर्मचारी वर्ग की नियुक्ति तथा उसे पद पर बनाए रखने के लिए आवश्यक है।"[1] एण्डरसन समिति के निष्कर्ष को कई दृष्टियों से सत्य स्वीकार किया गया। इस सम्बन्ध में एक प्रकार से आम सहमति है कि लोकसेवकों को इतना वेतन तो दिया ही जाना चाहिए कि कार्यकुशल कर्मचारी भर्ती किए जा सकें। इस सम्बन्ध में मुख्य प्रश्न ये उठते हैं कि कार्यकुशल कर्मचारी किसे माना जाए, वह कितने वेतन पर कार्यरत रह सकेगा, उसे कितने समय तक सेवा में रखा जाना चाहिए तथा सेवा की अन्य शर्तों को कितना मूल्य दिया जाना चाहिए, आदि।

(3) निर्वाह व्यय का सिद्धान्त (The Principle of Cost of Living)—आजीवन सेवाओं के लिए निर्धारित वेतनमान निर्वाह व्यय (Cost of Living) में आने वाले उतार-चढ़ावों से काफी प्रभावित होता है। प्रथम विश्वयुद्ध के समय तथा उसके बाद आर्थिक संकट के समय बढ़ती हुई महँगाई का सामना करने के लिए मूल वेतन के साथ बोनस प्रदान करने की भी व्यवस्था की गई। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद लोकसेवाओं के स्टॉफ प्रतिनिधियों ने निर्वाह व्यय बोनस व्यवस्था पर कोई जोर नहीं दिया। इसके स्थान पर उन्होंने समकन (Consolidation) को अधिक उपयुक्त माना। इस समय निर्वाह व्यय निरन्तर बढ़ता जा रहा था और इसलिए वेतन का मूल्य कम होता जा रहा था। इस स्थिति का मुकाबला करने के लिए राजकोष ने कुछ सुझाव प्रस्तुत किए, किन्तु ये असन्तोषजनक थे। अतः कर्मचारी संघों तथा व्हिटले परिषदों ने निरन्तर राजकोष के दृष्टिकोण का विरोध किया, फलतः इस समस्या के समाधान का कार्य लोकसेवा पंचनिर्णय न्यायाधिकरण (Civil Service Arbitration Tribunal) को सौंपा गया।

(4) उचित तुलना का सिद्धान्त (The Principle of Fair Comparison)—इस सिद्धान्त का समर्थन प्रीस्टले आयोग द्वारा किया गया था। एक अन्तिम वेतन आयोग के रूप में इस आयोग की स्थापना 19 नवम्बर, 1953 को सर रेमण्ड एडवार्ड प्रीस्टले की अध्यक्षता में की गई। इस शाही आयोग में 12 सदस्य थे।

1 "In our view there is only one principle in which all factors of responsibility, cost of living, marriage, children, social position etc are included—employer should pay what is necessary to recruit and to retain an efficient staff" —Quoted by *E N Gladden*, op cit, p 47

इसे अन्य कार्यों के साथ-साथ लोकसेवाओं के लिए वेतन स्थिरीकरण का काम भी सौंपा गया। आयोग का प्रतिवेदन 1953 में प्रकाशित किया गया। इसमें आयोग ने वेतन निर्धारण के प्राथमिक सिद्धान्त के रूप में उचित तुलना के सिद्धान्त की सिफारिश की। तदनुसार लोकसेवकों के वेतन का निश्चय करते समय लोकसेवाओं के बाहर वैसे ही कार्यों के लिए दिए जा रहे वेतन की मात्रा का ध्यान रखा जाना चाहिए। प्रीस्टले कमीशन के शब्दों को उद्धरित करते हुए यह कहा जा सकता है कि "......सामान्य समाज, लोकसेवा प्रशासक तथा व्यक्तिगत लोकसेवकों के हितों के बीच सन्तुलन रखा जाना चाहिए। समाज को यह अनुभव होना चाहिए कि उसे कार्यकुशल सेवा प्राप्त हो रही है तथा इसके लिए उसे अधिकतम कीमत का भुगतान नहीं करना पड़ रहा है। लोकसेवक को यह अनुभव होना चाहिए कि उसे बुद्धिमत्तापूर्ण वेतन प्राप्त हो रहा है। हम सोचते हैं कि सही सन्तुलन केवल तभी प्राप्त किया जा सकेगा जबकि लोकसेवकों के वेतन का प्रमुख सिद्धान्त सेवा की अन्य शर्तों को ध्यान में रखते हुए उनके वर्तमान वेतन के समकक्ष बाहरी रोजगार के वेतन के साथ उचित तुलना का बनाया जाएगा।"

आयोग के मतानुसार उचित तुलना का सिद्धान्त मुख्यतः दो कारणों से समाज के लिए लाभदायक है—(i) यह एक करदाता के रूप में प्रत्येक साधारण नागरिक के हितों की देखभाल करता है। यदि सरकार अपने कर्मचारी को उतना ही वेतन दे रही है जितना कि वैसे ही कार्य के लिए गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा दिया जा रहा है तो साधारण जनता अपना शोषण होने की शिकायत नहीं कर सकती। उसे यह भी विश्वास हो जाता है कि यदि कर्मचारी को वेतन कम दिया गया तो उसे कार्यकुशल सेवाएँ प्राप्त नहीं हो सकेंगी। (ii) यह सिद्धान्त राजनीतिक दबावों के विरुद्ध लोकसेवकों को सुरक्षा प्रदान करता है।

ब्रिटिश सरकार ने प्रीस्टले कमीशन के सुझावों को स्वीकार कर लिया तथा 1956 से अपने कर्मचारियों के वेतन का निर्धारण इसी सिद्धान्त के आधार पर किया। प्रसंगवश यह उल्लेखनीय है कि उचित तुलना के लिए तथ्यात्मक सामग्री आवश्यक है जिसके आधार पर तुलना की जा सके। प्रीस्टले कमीशन ने इसके लिए एक वेतन शोध इकाई (Pay Research Unit) की स्थापना का सुझाव दिया जो कि लोकसेवाओं से बाहर दिए जा रहे वेतन भुगतान सम्बन्धी तथ्यों का अध्ययन कर सके। इस इकाई का संक्षिप्त विवेचन हम आगे करेंगे।

(5) आन्तरिक सापेक्षता का सिद्धान्त (The Principle of Internal Relativities)—वेतन निर्धारण का यह सिद्धान्त भी प्रीस्टले कमीशन द्वारा ही सुझाया गया था। तदनुसार लोकसेवकों का वेतन तय करते समय उसी सेवा के दूसरे ग्रेडस का तथा दूसरी सेवा में उसी ग्रेड का समुचित ध्यान रखा जाना चाहिए। आयोग का सुझाव था कि विभिन्न व्यवसायों में सेवा के बाहर उनके सापेक्षिक मूल्यों में जो परिवर्तन आए उन्हें सेवा के अन्दर भी अभिव्यक्त होना चाहिए। कर्मचारीगण अपने वेतन की तुलना गैर-सरकारी रोजगार में प्राप्त वेतन से ही नहीं

करते वरन् सरकारी रोजगार में ही अन्य समकक्ष पदों पर किए जा रहे वेतन भुगतान से भी करते हैं। यह स्वाभाविक है कि प्रत्येक कर्मचारी अपने वेतन की पर्याप्तता जानने के लिए समान कार्यों वाले अपने साथी कर्मचारियों के वेतन से उसकी तुलना करता है। यदि साथियों का वेतन उससे अधिक है तो वह यह जानना चाहता है कि उसका वेतन भी उतना क्यों नहीं है। कर्मचारी के सन्तोष के लिए आन्तरिक सापेक्षता उपयोगी है।

नागरिक सेवा वेतन शोध इकाई
(Civil Service Pay Research Unit)

इसकी स्थापना 1956 में की गई है। निष्पक्षतापूर्ण कार्य-सचालन की दृष्टि से इसे किसी सरकारी विभाग का अंग नहीं बनाया गया है। इसकी अध्यक्षता एक निदेशक द्वारा की जाती है जो सहायक सचिव के स्तर का लोकसेवक होता है। इसकी नियुक्ति ह्विटले परिषद् के दोनों पक्षों से परामर्श करके प्रधानमन्त्री द्वारा की जाती है। इकाई के अन्य कर्मचारियों में सर्वेक्षणों का निर्देशन करने वाले नियन्त्रक अधिकारी, सर्वेक्षण अधिकारी तथा कुछ अन्य सहायक कर्मचारी होते हैं। ये सब 5 वर्ष के लिए कार्य करने हेतु उस इकाई में आते हैं। इकाई का दायित्व सम्भालने से पूर्व प्रत्येक कर्मचारी को 15 दिन का आवश्यक प्रशिक्षण दिया जाता है। इकाई दो सम्भागों में बँटी हुई है। प्रत्येक सम्भाग एक उपनिदेशक के अधीन रहता है। इसमें प्रशासन शाखा सहित कुल सात शाखाएँ हैं। ये सभी उपनिदेशकों के अधीन कार्य करती हैं।

इकाई का मुख्य कार्य ह्विटले परिषदों के कहने पर वेतन निर्धारण हेतु वेतन शोध सर्वेक्षण कराना है। कर्मचारियों के वेतन का निर्धारण राष्ट्रीय ह्विटले परिषदों के सरकारी एवं कर्मचारी पक्षों के पारस्परिक विचार-विनिमय के परिणाम-स्वरूप किया जाता है। वेतन शोध इकाई एक तथ्य ज्ञाता निकाय है। यह अपने कार्यों का प्रतिवेदन राष्ट्रीय ह्विटले परिषद् की सचालन समिति को प्रस्तुत करती है। इकाई द्वारा आयोजित वेतन शोध सर्वेक्षणों में लिपिकीय सहायकों से लेकर सहायक सचिव तक के सभी ग्रेड शामिल रहते हैं। अवर सचिव तथा उससे ऊपर के अधिकारी इसके क्षेत्राधिकार का विषय नहीं हैं। इसके लिए उत्तरदायी एक अन्य निकाय है जो शीर्ष वेतन पुनरीक्षा निकाय (Top Salaries Review Body) अथवा बॉयले बॉडी (Boyle Body) के नाम से जाना जाता है।

इकाई के कार्य का शुभारम्भ राष्ट्रीय ह्विटले परिषद् की पहल से होता है। परिषद् द्वारा इकाई के कार्यक्रम में शामिल होने वाली श्रेणियों का निर्णय लिया जाता है। प्रत्येक सर्वेक्षण की विस्तृत बातों का निर्णय सरकारी पक्ष, कर्मचारी संस्थाएँ तथा स्वयं इकाई के पारस्परिक विचार विमर्श द्वारा लिया जाता है। निर्णय के समय प्रायः इन बातों पर विचार किया जाता है कि सर्वेक्षण में किन ग्रेडस को शामिल किया जाएगा, सेवा में कहाँ उनके कार्य का अध्ययन किया जाएगा, वे कौन से बाहरी संगठन होंगे जिनके कार्यों की तुलना करनी है, आदि। शोध इकाई सबसे

पहले अपना 'सेम्पुल' निर्धारित करती है। राष्ट्रीय ह्विटले परिषद् के दोनो पक्षों की राय से ऐसा सेम्पुल चुना जाता है जो सम्बन्धित ग्रेड का सही प्रतिनिधित्व करता है तथा गैर-सरकारी रोजगार में जिसका समकक्ष भी मिल सके। 'सेम्पुल' का आकार भी तय कर लिया जाता है ताकि प्रतिवेदन आने पर उसकी आलोचना न की जाए सेम्पुल मे आने वाली फर्म्स का नाम तथा स्थान सरकार तथा कर्मचारी किसी भी पक्ष को नही बताया जाता। यदि इन प्रश्नो के बारे मे ह्विटले परिषद् के दोनो पक्षों मे मतभेद हो जाए तो निदेशक द्वारा निर्णय लिया जाता है। इकाई निजी उद्योगो के तुलनीय पदो से सम्बन्धित सूचना एकत्रित करती है। कुछ उद्योगो द्वारा अपने विभिन्न पदो का विस्तृत विवरण तैयार किया जाता है। यह इकाई को यथावत् प्राप्त हो जाता है, किन्तु यदि किसी उद्योग मे यह नही किया गया हो तो यह इकाई मुफ्त मे उसके लिए यह कार्य सम्पन्न करती है। इसके लिए इकाई गैर सरकारी सगठनो के साथ निकटवर्ती एव सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध रखती है फलत इसे वांछित सूचना एकत्रित करने मे कठिनाई नही होती। यह व्यापार सघो से प्राय कोई सम्पर्क नही रखती। यह सर्वेक्षण के समय प्राप्त समस्त सूचनाओ को गुप्त रखती है तथा उनके स्रोत का प्रकाशन नही करती। इकाई द्वारा अपने कार्यों का प्रतिवेदन लोकसेवा विभाग तथा सम्बन्धित कर्मचारी सघ को प्रस्तुत किया जाता है। ये दोनो पारस्परिक विचार-विमर्श द्वारा अन्तिम निर्णय पर पहुचते हैं। एक अभिसमय के अनुसार विचार-विमर्श के समय किसी भी पक्ष द्वारा इकाई की आलोचना नही की जाती।

शीर्ष वेतन पुनरीक्षा निकाय
(Top Salaries Review Body)

वेतन शोध इकाई के कार्यक्षेत्र म 70% लोकसेवा आ जाती है। शेष 30% लोकसेवा के लिए अन्य निकाय उत्तरदायी है जिसे बॉयले बॉडी अथवा शीर्ष वेतन पुनरीक्षा निकाय कहा जाता है। इसकी नियुक्ति 1971 म की गई थी। यह प्रधानमन्त्री को जिन उच्च अधिकारियो के वेतन के बारे मे परामर्श देती है उनम मुख्य हैं—राष्ट्रीयकृत उद्योगो के अध्यक्ष एव सदस्य, उच्चतर न्यायपालिका, वरिष्ठ लोकसेवक, सशस्त्र सेनाओ के वरिष्ठ अधिकारी तथा अन्य सेवा-समूह जो इसे सौंपे जाएँ। यह दो वर्ष बाद शीर्ष के वेतनो की पुनरीक्षा करता है। इस निकाय के अनुभवो के आधार पर यह कहा जाता है कि शीर्ष के पदों की वेतन श्रृंखलाओ की तुलना गैर-सरकारी सस्थाओ के समकक्ष पदो से करना बहुत कठिन है। ये शीर्ष के पद परस्पर इतने भिन्न होते हैं कि उनके बीच तुलना करना सम्भव नही होता। बॉयले बॉडी का दृष्टिकोण यह है कि शीर्ष के पदो का वेतन निर्धारित करते समय यह उचित रहेगा कि उनसे ऊपर के पदो के वेतन से तुलना की जाए तथा कार्यों के अन्तर को ध्यान मे रखते हुए औचित्य का निर्णय लिया जाए।

ग्रेट ब्रिटेन म लोकसेवकों का वेतन निर्धारित करने वाला उपयुक्त तुलना (Fair Comparison) का सिद्धान्त व्यवहार मे इतना सरल नही है। ऐसी तुलना

की उपयुक्तता एवं सत्यता के बारे में प्रश्न किया जाता है। इसके अतिरिक्त लोक-सेवा में अनेक पद ऐसे हैं जिनकी तुलना बाहर के किसी पद से नहीं की जा सकती। इस प्रकार यह सिद्धान्त सदैव अनेक जटिल प्रश्न पैदा करता रहता है। एक अन्य समस्या यह है कि ऐसी तुलना के लिए व्यापारिक संस्थान के साथ सही सम्बन्ध स्थापित करना जरूरी है। जिन संगठनों का सर्वेक्षण किया जाता है वे कभी-कभी शोध इकाई को एक विशेष रूप से कार्य करने को बाध्य करते हैं। इकाई को पर्याप्त सतर्क रहकर अपने स्थापित सदभाव की रक्षा करनी होती है। इसके अतिरिक्त इकाई का कार्य अत्यधिक गोपनीय प्रकृति का है जो स्वयं में कई प्रकार की समस्याएँ पैदा करता है।

उच्च अधिकारियों का वेतन
(Salary of Top Civil Servants)

ब्रिटेन की उच्च श्रेणी के लोकसेवकों को कभी अधिक वेतन नहीं दिया गया। केवल लोकसेवाओं के प्रति स्वामीभक्ति के कारण ही कम वेतन पर असाधारण क्षमता वाले व्यक्ति नियुक्त किए जा सकें तथा सेवा में बने रह सकें। वे निश्चय ही लोकसेवा से बाहर रहते तो अपेक्षाकृत अधिक वेतन प्राप्त कर सकते थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जब बाहर की प्रतियोगिता बढ़ी तो शीर्षस्तरीय लोक-सेवाओं की स्थिति बिगड़ गई। लोकसेवाओं में वैज्ञानिक तथा अन्य व्यावसायिक कर्मचारियों की बढ़ती आवश्यकता के कारण यह आवश्यक हो गया कि उन्हें प्रतियोगी वेतन प्रदान किया जाए। इसके फलस्वरूप वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारियों का वेतन विशेषज्ञों की तुलना में पीछे रह गया। 1949 में चोर्ले समिति (Chorley Committee) द्वारा की गई विशेष जाँच एवं प्रस्तावों के परिणामस्वरूप शीर्षस्तरीय वेतनों में महत्त्वपूर्ण सुधार किए गए।

वार्षिक वेतन वृद्धि की व्यवस्था
(The System of Annual Increments)

कुछ विशेषज्ञ एवं शीर्ष-स्तरीय पदों का वेतन निश्चित होता है। इनके अतिरिक्त पदों पर वेतनमान की ऐसी व्यवस्था रहती है जिसमें व्यक्ति को तब तक वार्षिक वेतन वृद्धियाँ दी जाती हैं जब तक वह अपने वेतनमान की अधिकतम सीमा तक न पहुँच जाए। उम्र को महत्त्व देते हुए नवीन भर्ती किए गए कर्मचारियों का वेतन उनकी उम्र देखकर प्रदान किया जाता है। उसके बाद दी जाने वाली वेतन वृद्धियाँ व्यक्ति की निरन्तर बढ़ती हुई कार्यकुशलता के आधार पर दी जाती हैं। यह माना जाता है कि कार्य करते हुए व्यक्ति का ज्ञान एवं अनुभव स्वाभाविक रूप से ही बढ़ेगा। बड़े प्रशासनिक संगठनों में यह सम्भव नहीं हो पाता कि प्रत्येक कर्मचारी की बढ़ती हुई योग्यता एवं कार्य-सम्पन्नता की जाँच की जाए, अतः यहाँ वेतन वृद्धि स्वतः ही होती है। इस प्रकार एक लोकसेवक का वेतन उसकी योग्यता एवं कार्य के मूल्यांकन का परिणाम न होकर सम्बन्धित ग्रेड की वेतन शर्तों पर आधारित होता है।

महिलाओं को समान वेतन
(Equal Pay for Women)

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद लिंग के आधार पर समानता को मान्यता प्राप्त होने के साथ ही महिलाओं के लिए वेतन की समानता का आन्दोलन चल पड़ा। टॉमलिन कमीशन (Tomlin Commission) ने 'A fair field and no favour' के सिद्धान्त की सिफारिश की तथा इसे सामान्यत स्वीकार भी किया गया तो भी व्यवहार में महिलाओं को समान कार्य के लिए भी पुरुषों की तुलना में 80% वेतन देने की व्यवस्था चलती रही। सरकार ने समान वेतन का सिद्धान्त केवल सिद्धान्त रूप में ही स्वीकार किया किन्तु मितव्ययिता एवं कार्यान्विति में आने वाली कठिनाइयों के कारण इसे व्यावहारिक रूप नहीं दिया जा सका। इधर कर्मचारी संघों ने समान वेतन की स्वीकृति पर विशेष जोर दिया। कुछ महिलाओं तथा अनेक पुरुषों को इसके औचित्य एवं व्यावहारिकता में सन्देह था किन्तु इसे चुनौती देने की हिम्मत किसी में नहीं थी। अन्त में राजनीतिक दलों की स्पर्द्धा, जनमत का समर्थन एवं बाहर के नियोक्ताओं के लिए आदर्श प्रस्तुत करने का लक्ष्य आदि के कारण इसे मान्यता देनी पड़ी। इसका दीर्घगामी प्रभाव यह हुआ कि अविवाहित महिलाओं को राष्ट्रीय आय का एक बड़ा हिस्सा दिया जाने लगा। इसके साथ ही यह समस्या भी उत्पन्न हुई कि अविवाहित महिलाओं को बेरोजगार पत्नी वाले विवाहित पुरुष के समक्ष रखना कहाँ तक न्यायपूर्ण अथवा सामाजिक दृष्टि से वांछनीय है? वित्तीय सुविधा को ध्यान में रखते हुए 1955 में एक समझौता हुआ, तदनुसार पुरुष एवं महिलाओं के समान वेतन के प्रति छः वर्ष तक क्रमिक दृष्टिकोण अपनाने की बात तय की गई। सामान्यत लोकसेवाओं में इस निर्णय का स्वागत हुआ।

स्थान-जन्य विभिन्नताएँ
(The Differentials of Place)

समान पदों पर समान दायित्वों का निर्वाह करने वाले कर्मचारियों को भी कार्य के स्थान की भिन्नता के आधार पर अलग-अलग वेतन दिया जाता है। 1920 की पुनर्गठन समिति के कर्मचारी संघों ने भी सिद्धान्त रूप में यह व्यवस्था स्वीकार की थी। इसके आधार पर लन्दन तथा अन्य महँगे स्थानों पर निर्वाह व्यय के अनुसार अधिक वेतन देने की व्यवस्था की गई। इस हेतु अधिकांश लोकसेवकों के लिए तीन स्तरीय व्यवस्था (Three Tier System) अपनाई गई। अन्तरंग लन्दन के लिए वेतन की सर्वोच्च दर निर्धारित की गई, बाह्य लन्दन तथा कुछ बड़े कस्बों के लिए मध्यवर्ती दरें रखी गईं तथा अन्य स्थानों के लिए प्रान्तीय दरें कायम की गईं। वेतन दरों का निर्धारण लन्दन में कार्य कर रहे लोगों के लिए किया जाता था। उसमें 30% कटौती करके मध्यवर्ती दरें तथा 5% या 6% कटौती करके प्रान्तीय दरें निर्धारित की जाती थीं। यह व्यवस्था व्यापक विरोध का आधार बनी।

मुख्य कर्मचारी संघों ने उक्त व्यवस्था का विरोध किया। इसके विरुद्ध ये तर्क दिए गए—(1) सेवा के छोटे से भाग (लन्दन) के आधार पर वेतन दरों को

निश्चित करना अनुपयुक्त है। (ii) आजकल सेवा को मुख्यालय सेवा नहीं वरन् राष्ट्रीय सेवा समझा जाता है अत लन्दन क्षेत्र को अनुपयुक्त महत्त्व देना अनुचित है। (iii) वेतन की दृष्टि से सीमा-रेखाएँ बना देना और उनके आधार पर अन्तर करना अनेक व्यावहारिक कठिनाइयाँ पैदा कर देता है। यदि लन्दन क्षेत्र से एक कर्मचारी का प्रान्तीय क्षेत्र मे स्थानान्तरण हो जाए तथा उसका परिवार लन्दन क्षेत्र मे ही निवास करता रहे तो कर्मचारी को दुधारी तलवार का वार सहना होगा। एक ओर तो उसे ऊँचे निर्वाह व्यय मे परिवार का पालन-पोषण करना होगा तथा दूसरी ओर उसे प्रान्तीय दरें प्राप्त होगी। ऐसी स्थिति मे कोई कर्मचारी स्थानान्तरण के बाद पदोन्नति भी नहीं चाहेगा। इन सभी बातो को सोचकर ही यह सुझाव दिया गया कि तीन के स्थान पर दो-स्तरीय वेतन दरें निर्धारित की जाएँ। वेतन की मूल दरो का निर्धारण राष्ट्रीय स्तर पर किया जाए। प्रान्तरिक लन्दन की विशेष वेतन दरें अन्य सेवाओं के समकक्ष कर्मचारियो की दरें देखकर निश्चित की जाएँ।

प्रीस्टले कमीशन (1953–55) की सिफारिशो के बाद यह व्यवस्था की गई है कि सभी क्षेत्रो के लिए कर्मचारियो को वेतन की राष्ट्रीय दरें प्रदान की जाती हैं तथा लन्दन क्षेत्र के कर्मचारियो को निर्वाह व्यय हेतु मुआवजा दे दिया जाता है। इस मुआवजे की राशि मे समय-समय पर परिवर्तन होता रहता है। वर्तमान व्यवस्था की प्रक्रिया भिन्न है किन्तु प्रभाव की दृष्टि से यह पूर्ववत् है।

संयुक्तराज्य अमेरिका मे वेतन प्रशासन
(Salary Administration in U S A.)

संयुक्तराज्य अमेरिका मे अनेक पदो पर वेतन की दरो का निर्धारण परम्परा द्वारा या पक्षपात एव राजनीतिक दबाव के आधार पर होता है। केवल कुछ मामलो मे ही बुद्धिमत्त रूप से योग्यता के आधार पर कर्मचारियो का वेतन निर्धारित किया जाता है। पक्षपात तथा राजनीतिक दबाव का प्रभाव होने के कारण अमरीकी लोक सेवक के सम्बन्ध मे आम धारणा प्राय यह रही है कि उसे अत्यधिक वेतन दिया जाता है वह बिना काम के वेतन पाता है, वह वेतन पाता नहीं है वरन् खाता है आदि। वर्तमान परिस्थितियो मे ये धारणाएँ तथ्यगत नही हैं। प्रो स्टॉल ने लिखा है कि सरकारी वेतन संरचना की यह विशेषता है कि नीचे के पदो पर दिया जाने वाला वेतन गैर-सरकारी वेतन दरो की अपेक्षा अधिक होता है किन्तु व्यावसायिक एव निष्पादक रोजगार के लिए वेतन दरें अपेक्षाकृत नीची हैं।[1] प्रथम विश्वयुद्ध के तुरन्त बाद सरकारी कर्मचारियो की मौद्रिक आय मे पर्याप्त वृद्धि हुई किन्तु आर्थिक मन्दी के आगमन पर यह प्रवृत्ति कुछ रुक गई। वैसे कर्मचारियो की मौद्रिक आय मे वृद्धि स्वय मे विशेष महत्त्व नही रखती जब तक कि निर्वाह व्यय एव देश की सापेक्षिक उत्पादकता मे वृद्धि को भी ध्यान मे न रखा जाए। संयुक्तराज्य अमेरिका

1 *O G Stahl*: op cit, p 170

में सरकारी रोजगार की वेतन संरचना का अवलोकन करने के बाद कुछ सामान्य निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—(i) पहली बात तो यह है कि समान कार्य के लिए समान वेतन के सिद्धान्त के बारे में यद्यपि जबानी जमा-खर्च काफी किए गए हैं किन्तु व्यवहार में अनेक महत्त्वपूर्ण सरकारी पद इससे अप्रभावित हैं, (ii) लघुतर पदों के लिए कोई उल्लेखनीय सामान्य अथवा मूल वेतन नीति नहीं है; (iii) काफी सुधार हो जाने के बाद भी लोकसेवाओं में वेतन का सामान्य स्तर पर्याप्त नीचा है, (iv) प्रशासनिक एवं वैज्ञानिक प्रकृति के उच्च पदों के निजी एवं सरकारी वेतन क्रमों में भारी असमानताएँ हैं। इसके परिणामस्वरूप प्रतियोगिता में सरकारी उद्यम की हानि होती है, (v) निर्वाह व्यय बढ़ने पर सरकारी मजदूरी की दरें निजी उद्यमों की भाँति न तो शीघ्र बढ़ती हैं और न निर्वाह व्यय घटने पर शीघ्र ही घटती हैं; (vi) सरकारी वेतन दरों का सम्बन्ध बाजार दरों से बहुत कम रहता है और श्वेत् कॉलर श्रमिकों (White Collar Workers) का तो प्राय रहता ही नहीं है।

वेतन योजना के आधारभूत सिद्धान्त
(Basic Principles of Pay Plan)

अमेरिकी सेवीवर्ग प्रशासन के अधिकारी लेखक प्रो स्टॉल की मान्यता है कि वैज्ञानिक वेतन शृ खला जैसी कोई चीज ही नहीं होती। वेतन को निर्धारित करने में अनेक तत्त्व अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जैसे—सामाजिक नीति परम्परा एवं रीति-रिवाज, औद्योगिक उत्पादकता, श्रमिकों की आपूर्ति, मोलभावजी की शक्ति आदि आदि। इन सभी तत्त्वों को मोटे रूप से आर्थिक, नैतिक तथा सामाजिक के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। अमेरिका में अनेक सरकारी पदों का वेतन निर्धारित करने में परम्पराएँ, पक्षपात एवं राजनीतिक दबाव आदि बातें काफी प्रभाव डालती हैं। वेतन को निर्धारित करने वाले इन सभी आधारभूत तत्त्वों अथवा सिद्धान्तों का संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है—

1 आर्थिक सिद्धान्त (Economic Considerations)—आर्थिक सिद्धान्त के अनुसार एक श्रमिक का वेतन उसके द्वारा उत्पादित मूल्य के आधार पर तय किया जाना चाहिए। सारा समाज आर्थिक रूप से संगठित है और इसलिए लोक-सेवकों के वेतन की अधिकता पर व्यावहारिक सीमाएँ हैं। यह सीमा उद्योग के कुल उत्पादन तथा उत्पादन के दूसरे तत्त्वों की माँगों द्वारा निश्चित की जाती है। इस रूप में तय की गई मजदूरी आर्थिक मजदूरी (Economic Wage) कही जाती है। जो उद्योग अनार्थिक मजदूरी (*Uneconomic Wage*) देने का प्रयास करते हैं वे बन्द हो जाते हैं।

सरकारी उद्योगों का सेवाओं पर एकाधिकार रहता है तथा उन्हें प्रतिस्पर्द्धा की कड़ी प्रक्रिया में होकर नहीं गुजरना पड़ता। वेतन के रूप में होने वाले सरकारी व्यय पर मुख्य सीमा करदाता की जेब द्वारा लगाई जाती है। इसके अतिरिक्त यह भी उचित समझा जाता है कि वेतन दरें निश्चित करते समय निजी उद्योगों द्वारा

निर्धारित ग्रार्थिक स्तरो का भी ध्यान रखा जाए। श्रम बाजार मे सरकार की स्पर्द्धा निजी उद्यमो से रहती है। यदि सरकारी पदो पर निजी उद्यमो की अपेक्षा वेतन का सामान्य स्तर नीचा रहा तो सम्भव है कि योग्य व्यक्ति सरकारी सेवा मे नही आ सकेंगे। दूसरी ओर यदि यह अपेक्षाकृत ऊँचा रहा तो इसके परिणामस्वरूप अत्यधिक कार्यकुशल लोग निजी उद्यमो से भाग आएँगे और इस प्रकार देश का उत्पादन गिर जाएगा। स्पष्ट है कि सरकारी वेतन दरें निर्धारित करने मे श्रम की बाजार दरें महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालती हैं। इतने पर भी बाजार दरो को एकमात्र प्रभाव तत्त्व नही कहा जा सकता, इसके दो कारण हैं—(क) व्यावहारिक रूप से किसी पक्ष विशेष की बाजार दरें निर्धारित करना अत्यन्त कठिन होता है, (ख) अनेक लोकसेवाओ का निजी उद्यमो मे कोई समकक्ष नही होता है।

2 सामाजिक तथा नैतिक सिद्धान्त (Social and Ethical Considerations)—सामाजिक तथा नैतिक दृष्टि से राज्य वेतन निर्धारित करने मे उतना स्वतन्त्र नही है। राज्य का मुख्य दायित्व सामान्य कल्याण एव वाँछनीय सामाजिक परिस्थितियो की व्यवस्था करना है। इसके अतिरिक्त सरकारी कर्मचारियो की सौदेबाजी करने की शक्ति भी सीमित होती है, क्योकि—(क) अनेक लोकसेवाओ का कोई प्रभावशाली सगठन नही होता, (ख) लोकसेवको के हडताल करने तथा राजनीतिक गतिविधियो मे भाग लेने पर प्रतिबन्ध होते हैं, (ग) सरकारी कार्यों की प्रकृति इतनी विशेषीकरणयुक्त होती है कि कोई कर्मचारी इसे छोडकर निजी क्षेत्र मे नौकरी पाने की आशा नही कर सकता। इन कारणो से स्वय राज्य का ही यह विशेष दायित्व हो जाता है कि वह अपने कर्मचारियो के साथ न्याय करे। कर्मचारियो की सौदेबाजी करने की कमजोर स्थिति के कारण वेतन के सम्बन्ध मे इन्हे सरकार के भेदभावपूर्ण तथा स्वेच्छापूर्ण आचरण का शिकार बनना पडता है। सरकारी अन्याय के विरुद्ध मुख्य प्रतिबन्ध केवल स्वआरोपित ही है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि सरकार एक मॉडल नियुक्तिकर्त्ता होती है।

कर्मचारियो को कम से कम इतना वेतन अवश्य मिलना चाहिए कि वे अपना जीवन यापन कर सके। इस मान्यता के पीछे कोई आर्थिक तर्क नही है वरन् यह नैतिक मान्यताओ पर आधारित है। नैतिक मान्यता यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को इतने साधन उपलब्ध हो सकें कि वह समाज के स्तर के अनुकूल अपने रहन-सहन का स्तर बना सके। न्यूनतम वेतन की व्यवस्था मे अनेक व्यावहारिक प्रश्न उलझते हैं किन्तु फिर भी प्रो स्टॉल की मान्यता है कि सरकारी वेतन नीति निर्धारित करते समय निर्वाह मजदूरी की अवधारणा को पर्याप्त महत्त्व दिया जाना चाहिए।[1] उन्ही के शब्दो मे, "एक निजी उद्योग, जो पर्याप्त मुआवजा नही दे पाता, वह अनार्थिक है तथा सामाजिक रूप से विध्वसकारी है, जो राज्य यह नही कर पाता 'वह' अपने श्रमिको पर एक प्रकार का दुर्भाग्य लाद देता है।"[2]

1 *Ibid*, p 176

2 "The private industry which cannot pay adequate compensation is uneconomic and socially destructive, the state which does not do it is imposing a kind of serfdom on its workers" —*Ibid*, p 177

3 अन्य तत्त्व (The Other Factors)—लोकसेवकों के वेतन को निर्धारित करने में प्रभाव रखने वाले आर्थिक, सामाजिक एवं नैतिक तत्त्वों के अतिरिक्त कुछ अन्य तत्त्व भी उल्लेखनीय होते हैं। इनमें से मुख्य ये हैं—छुट्टी सम्बन्धी प्रावधान कार्य के घण्टे, कार्यालय की सापेक्षिक सुरक्षा, पेंशन, सेवा निवृत्ति सम्बन्धी विशेषाधिकार आदि। इन सभी तत्त्वों के प्रभाव को निश्चित रूप से नहीं मापा जा सकता।

वेतन की दर निर्धारित करते समय इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि वेतन की उच्च दरें कार्य करने की मुख्य प्रेरणा होती हैं। प्रशासनिक संगठन में मनोबल को ऊँचा उठाने के प्रेरक के रूप में केवल उच्च वेतन ही सब कुछ नहीं होता अन्य तत्त्व भी आवश्यक होते हैं, किन्तु यह सत्य है कि निम्न वेतन दरें होने पर संगठन के मनोबल को ऊँचा उठाना सरल नहीं होता। कर्मचारियों की वेतन-दरें सेवीवर्ग प्रशासन के अन्य पहलुओं पर भी असर डालती हैं। यदि राज्य ने अपने कर्मचारियों के लिए उदार वेतन नीति अपनाई तो उसे चयन तथा कार्य सम्पन्नता के लिए ऊँचे मापदण्ड स्थापित करने होंगे।

वेतन सम्बन्धी विभिन्नताएँ
(The Pay Differentials)

समान पदों पर रह कर समान दायित्वों का निर्वाह करने वाले कर्मचारियों का वेतन साधारणतः समान होता है किन्तु कुछ विशेष परिस्थितियों में विशेष कारणोंवश उनके बीच विभिन्नताएँ भी स्थापित की जाती हैं। ये विभिन्नताएँ कार्य की विशेष परिस्थितियाँ जोखिम, कष्ट, अनाकर्षक वातावरण आदि से जन्म लेती हैं। इनका संक्षेप में निम्न प्रकार विवेचन किया जा सकता है—

1. भौगोलिक कारण (Geographical Reasons)—एक निश्चित स्थान पर कार्य करने वाले सभी वर्गों के कर्मचारियों की वेतन दरें दूसरे स्थान पर कार्य करने वाले कर्मचारियों की वास्तविक आय के समान बनाने के लिए बढ़ा दी जाती हैं। यह प्रायः ऐसे रोजगारों में किया जाता है जहाँ क्षेत्रीय सेवाएँ पर्याप्त मात्रा में होती हैं। मान्यता यह है कि वास्तविक वेतन की समानता या असमानता कर्मचारी को प्राप्त धन की मात्रा से तय नहीं होती वरन् इस बात से तय होती है कि कर्मचारी उस धन से क्या तथा कितना खरीद पाते हैं। सिद्धान्त में यह बात चाहे कितनी भी प्रभावशील हो किन्तु व्यवहार में किसी भौगोलिक क्षेत्र में वेतन दरें निश्चित करना अत्यन्त विवादपूर्ण विषय है। इसमें काफी राजनीतिक हस्तक्षेप होता रहता है।

2 खतरनाक कार्य (Hazardous Work)—जिन पदों पर कार्य करने वाले कर्मचारियों का जीवन असाधारण रूप से खतरे में रहता है, घातक चोट लगने का भय रहता है या कार्य से अक्षम बनाने वाली बीमारी का भय रहता है, उनके लिए अतिरिक्त वेतन की व्यवस्था की जाती है। निर्माण, निरीक्षण, जाँच, प्रयोगशाला, अस्पताल, आदि में संलग्न कर्मचारीगण ऐसे खतरों का सामना करते हैं। खतरनाक कार्यों के लिए अतिरिक्त वेतन व्यवस्था के बारे में अलग-अलग राय है। जो लोग

ऐसे कार्यों के लिए अतिरिक्त वेतन न देने की राय प्रकट करते हैं उनकी मान्यता यह है कि पद के खतरों को कम करने के लिए पर्याप्त सुरक्षा की व्यवस्था, योग्य कर्मचारियों का चयन कार्य की शर्तों का सावधानीपूर्वक समायोजन तथा कार्य पर कर्मचारियों की मृत्यु की स्थिति में उसके परिवार को आर्थिक सहायता देने की व्यवस्था की जाए।

3 **प्रादेशिक, महाद्वीप बाह्य तथा विदेशी पद (Territorial, Extra Continental and Foreign Posts)**—विदेशों में कार्य कर रहे कर्मचारियों का निर्वाह-व्यय निश्चित ही अधिक होता है, अतः उनकी वेतन दरें अपेक्षाकृत अधिक रखी जाती हैं। देश के अन्तर्गत ही एक स्थान के निवासियों को जब दूरस्थ प्रदेशों में नियुक्त किया जाता है तो परिवार की अन्य असुविधाओं के कारण अधिक वेतन दिया जाना न्यायोचित बन जाता है।

4 **ओवरटाइम, रात्रि तथा अवकाश का वेतन (Overtime, Night and Holiday Pay)**—ओवरटाइम कार्य करने के लिए कर्मचारी को डेढ गुना वेतन दिया जाता है। यह प्राय उन व्यवसायों में चलता है जो चौबीस घण्टे सचालित होते हैं। अवकाश के दिन काम करने के बदले कर्मचारियों को या तो अतिरिक्त अवकाश प्रदान किया जाता है अथवा इसके लिए अतिरिक्त वेतन दिया जाता है।

उक्त सभी तत्वों के आधार पर समान पद पर कार्य करने वाले कर्मचारियों के बीच भी वेतन सम्बन्धी भिन्नताएँ स्थापित की जाती हैं। व्यवस्थापिका द्वारा सेवीवर्ग अभिकरण को यह शक्ति प्रदान की जाती है कि वह बजट अभिकरण तथा नियुक्तिकर्त्ता अधिकारियों से वार्तालाप करके स्वय ही वेतन सम्बन्धी विभिन्नताओं को निर्धारित कर ले।

वेतन योजना के लिए उत्तरदायी सत्ता (Authority Responsible for the Pay Plan)—वेतन योजना बनाते समय दो काम किए जाते हैं—(i) विभिन्न पदों के प्रत्येक वर्ग के लिए वेतनमान निर्धारित कर दिया जाता है तथा (ii) वेतन योजना तथा पद वर्गीकरण योजना को कुछ-कुछ एक जैसा माना जाता है। ये दोनों समग्र लोकसेवा की सरचनात्मक प्रतिलिपि होते हैं। एक अच्छी वेतन योजना वह मानी जाती है जो निश्चित हो, सक्षिप्त हो तथा किसी भी श्रेणी के पद पर तुरन्त लागू की जा सके।

वेतन योजना का कार्य सर्वश्रेष्ठ रूप से मुख्यत उसी अभीकरण द्वारा सम्पन्न किया जा सकता है जो कार्यों के वर्गीकरण के लिए उत्तरदायी है अर्थात् सेवीवर्ग अभिकरण। वेतन तथा मजदूरी से सम्बन्धित विभिन्न मामलों के बारे में सेवीवर्ग अभिकरण, वित्तीय अभिकरण तथा व्यवस्थापिका का सहयोगपूर्ण प्रयास वांछनीय है। सेवीवर्ग अभिकरण द्वारा वेतन योजना तैयार की जाती है किन्तु उस पर अन्तिम स्वीकृति देने का अधिकार व्यवस्थापिका का होता है। जिन पदों की वेतन योजना व्यक्तिगत विभागों, स्वतन्त्र अभिकरणों या प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा तय की जाती है उनमें भी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यवस्थापिका की स्वीकृति ली

जाती है। वेतन व्यवस्था प्रशासनिक कर्मचारियों की मुख्य प्रेरणा होती है और प्रशासन इसका पूरा उपयोग करता है। रोजगार तथा आर्थिक परिस्थितियों में परिवर्तन के अनुसार वेतन में भी शीघ्रतापूर्वक समायोजन हो जाना चाहिए। इसके लिए यह जरूरी है कि वेतन प्रशासन का कार्य वित्तीय अभिकरण के परामर्श तथा सहयोग के साथ सेवीवर्ग अभिकरण द्वारा सम्पन्न किया जाए।

संयुक्तराज्य अमेरिका की वेतन व्यवस्था का अध्ययन करने के बाद विचारकों ने निष्कर्ष रूप में यह बताया है कि यहाँ एक समानतापूर्ण तथा न्यायपूर्ण वेतन संरचना निर्धारित करने की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है। इसके फलस्वरूप वेतन अनुसूचियों में असमानता है गैर सरकारी रोजगार की आकर्षक शर्तों के कारण भर्ती एवं स्थानान्तरण की समस्याएँ पैदा होती हैं, कार्यकुशलता कम होती है मनोबल गिर जाता है। यहाँ संघीय स्तर की लोकसेवाओं में भी उपयुक्त समन्वय प्राप्त नहीं होता। यहाँ वेतन की दर सम्बन्धी मूलभूत आँकड़ों की व्याख्या के लिए कोई केन्द्रीय सत्ता नहीं है जो उचित कार्यवाही कर सके तथा राष्ट्रपति अथवा काँग्रेस को प्रत्यक्ष प्रतिवेदन दे सके। अधिकांश सरकारी प्राधिकारी वेतनक्रम का प्रयोग प्रेरक के रूप में नहीं कर सके हैं। स्वतः ही वेतन वृद्धि अपवाद न होकर एक नियम है। एक स्वामिभक्त साधारण बुद्धि के कर्मचारी को भी उतना ही पुरस्कृत किया जाता है जितना कि एक रचनात्मक प्रयासकर्त्ता को किया जाता है। वेतनक्रम को प्रमापीकृत करने का आन्दोलन पद-वर्गीकरण के साथ साथ चला है। यह मुख्य रूप से उच्च पदों के सम्बन्ध में अधिक सफल रहा है।

फ्रांस में वेतन प्रशासन

(Salary Administration in France)

फ्रांस में लोकसेवकों को दिया जाने वाला वेतन अभी भी 19वीं शताब्दी के मूल्यों से प्रभावित है। तद्नुसार एक कर्मचारी को जो वेतन दिया जाता है वह उसके द्वारा यथार्थ में किए जाने वाले कार्यों का मुआवजा नहीं है वरन् वह उसे इसलिए दिया जाता है ताकि वह समाज में अपना उपयुक्त जीवन स्तर बनाए रख सके तथा भौतिक चिन्ताओं से मुक्त रहे बिना स्वयं को जनसेवा के लिए अर्पित कर सके। व्यवहार में यह सिद्धान्त अत्यन्त सीमित प्रभाव रखता है। इसके फलस्वरूप अनेक जटिल समस्याएँ पैदा होती हैं। उच्च तथा निम्न पदों पर कार्य करने वाले सभी कर्मचारी यह शिकायत करते रहते हैं कि उनको दी जा रही वेतन राशि से वे समाज में अपनी स्थिति नहीं बनाए रह सकेंगे। वे सदैव गैर-सरकारी रोजगार की कार्य की शर्तों से अपनी तुलना करते रहते हैं।

वेतन निर्धारण का आधार

(The Basis of Pay Determination)

ग्रेट ब्रिटेन की भाँति फ्रांस में लोकसेवकों का वेतन मुख्यतः इन बातों से प्रभावित होता है—देश के बजट की स्थिति, निजी क्षेत्र में मजदूरी की सामान्य प्रवृत्ति तथा सरकारी एवं गैर-सरकारी दोनों में तुलना कराने की कर्मचारी संस्थाओं की बढ़ती हुई क्षमता आदि। फ्रांस में मुद्रा-स्फीति से उत्पन्न परिस्थितियों का सामना

करने के लिए लोकसेवकों के वेतन मे समायोजन किए गए। इस व्यवस्था के अन्तर्गत कठिनाइयाँ तो हैं किन्तु ग्रान्तरिक भेदो को दूर किए बिना ही वेतन को जीवन व्यय (Cost of Living) के अनुसार समायोजित कर लिया जाता है। यह ग्रेट ब्रिटेन की सामयिक वेतन ग्रायोग व्यवस्था की अपेक्षा अधिक लोचशील है। यह सयुक्तिकरण ग्राह्यता एव पर्याप्तता के मापदण्डो पर भी खरी उतरती है।

दो विश्वयुद्धो के बीच ग्राई ग्रार्थिक मन्दी तथा मुद्रा प्रसार से उत्पन्न स्थिति का मुकाबला करने के लिए फ्रांस के लोकसेवको का भत्ता बढा दिया गया। ऐसा करते समय बजट सम्बन्धी स्थिति को भी पूरा ध्यान मे रखा गया था तथा कम से कम प्रदान करने की नीति अपनाई गई थी ताकि अर्थव्यवस्था टूट न जाए। फलत. कम वेतन पाने वालो की वृद्धि ग्रानुपातिक रूप मे अधिक की गई। इस प्रकार अधिकतम और न्यूनतम वेतन का अन्तर भी कम किया गया।

फ्रांस की लोकसेवा के वेतन निर्धारण मे उचित तुलना का सिद्धान्त भी अपनाया जाता है। गैर सरकारी उद्योगो मे समकक्ष कार्य एव पदो पर प्राप्त होने वाले वेतन की दरें देखकर सरकारी कर्मचारियो के वेतन मे तदनुसार परिवर्तन किए जाते है।

सूचकांक व्यवस्था (Index Number System)

1946 के अधिनियम द्वारा लोकसेवको के वेतन के लिए प्राय उस व्यवस्था को स्वीकार कर लिया गया जो दो विश्वयुद्धो के बीच अपनाई गई थी। तदनुसार प्रत्येक पद अथवा पदो के समूह को एक सूचकांक प्रदान किया जाता है। इसमे वेतन वृद्धि का मान स्पष्ट कर दिया जाता है। यह अक अथवा मान (Scale) किसी भी पद के पद सोपानीय मूल्यांकन को दर्शाता है। यह एक प्रकार से पदवर्गीकरण को अभिव्यक्त करता है। यह केवल तभी बदला जा सकता है जबकि सम्बन्धित पद से जुडे कर्त्तव्यो मे गम्भीर परिवर्तन हो जाएँ। इस प्रकार फ्रांस के लोकसेवक के वेतन मे एक निर्धारित मूल को पद के सूचकांक से गुणित करके रखा जाता है। वेतन मे सामजस्य के लिए मूल राशि राशि मे सामजस्य किया जाता है। प्रारम्भ में जब सूचकांक निश्चित किया गया था तो उसकी अधिकतम राशि 800 निदेशक के लिए थी तथा न्यूनतम राशि 100 एक नए भर्ती किए गए श्रमिको के लिए थी। मूल रूप से सूचकांको को शुद्ध वेतन (Net Salary) के समरूप बनाया गया अर्थात् *यह वह राशि थी जो करो तथा सेवानिवृत्ति की कटौतियो को काटने के बाद शेष बच जाए।* यदि उस समय के करो को भी शामिल कर लिया जाए तो सूचकांक का मान 100 से 800 की अपेक्षा 100 से 1163 हो जाता है। उस समय के सामान्य कानून के अनुसार भत्तों एव वेतन के अतिरिक्त की जाने वाली राशियो पर प्रतिबन्ध लगाया गया था।

शुद्ध सूचकांको के प्रयोग का प्रभाव यह हुआ कि सामान्य जनता पर लागू प्रत्यक्ष करो मे होने वाले परिवर्तनो के विरुद्ध नागरिक सेवक सुरक्षित हो गए। किन्तु इस व्यवस्था मे समय-समय उनके वेतन मे कटौती की जो व्यवस्था थी उसकी भारी आलोचना की गई। यह तर्क दिया गया था कि केवल वे ही क्यो इस प्रकार

बलि के बकरे बनाए जाएँ फलत शुद्ध (Net) सूचकांक की धारणा को सकल (Gross) सूचकांक के रूप में बदल दिया गया।

व्यवहार में कठिनाई यह थी कि यह व्यवस्था अत्यधिक प्रभावशाली थी और इसलिए इसका बजट अधिकारियों द्वारा स्वागत नहीं किया गया। मूल राशि के साथ सामजस्य द्वारा की जाने वाली वेतन वृद्धि का बजट पर गम्भीर प्रभाव पड़ता था। फलत मूल राशि के साथ, सामजस्य को टाला जाता था तथा कानून द्वारा स्थापित सीमाओं के होते हुए भी मुद्रा प्रसार के प्रभावों का मुकाबला तदर्थ भत्तों के द्वारा किया जाता था फलत मध्यम वर्ग तथा उच्च वर्ग लाभों से वंचित रह जाते थे तथा कम वेतन पाने वालों को लाभ मिल जाता था। इसके परिणामस्वरूप सूचकांक द्वारा स्थापित अन्तर समाप्त हो गया तथा इस प्रकार सारी योजना ही प्रभावहीन बन गई। 1955 तक वेतनों के बीच का अन्तर 100 से 1163 तक की अपेक्षा 100 से 731 तक रह गया तथा सेवकों का पद-सोपान भी तदनुसार ही परिवर्तित हो गया। इसके परिणामस्वरूप भत्ता के रूप में मुआवजे प्राप्त करने का अपरिहार्य दबाव बढ़ा तथा इस दबाव को वित्त मन्त्रालय तथा लोकसेवा के लिए उत्तरदायी मन्त्री द्वारा टाला नहीं जा सका।

1955 के बाद की स्थिति (The Situation after 1955)

1955 के बाद से स्थिति पर्याप्त बदल गई है। मूल वेतन का अधिक स्वतन्त्रता के साथ सामजस्य किया जाता है। पिछले कुछ वर्षों से तो यह प्राय प्रतिवर्ष होने लगा है। ऐसा करते समय गैर-सरकारी क्षेत्र के वेतनों में होने वाले परिवर्तनों को भी ध्यान में रखा जाता है। इस स्थिति की तुलना ग्रेट ब्रिटेन के साथ की जा सकती है जहाँ लोकसेवकों के वेतन की प्रतिवर्ष निजी संस्थानों के वेतनों से तुलना की जाती है। भत्तों को घटा दिया गया है तथा इनको कड़ाई के साथ नियन्त्रित किया गया है। यह योजना अब इस रूप में कार्यान्वित की जा रही है जैसी कि प्रारम्भ में सोची गई थी।

वर्तमान स्थिति के अनुसार फ्रांस के लोकसेवकों के वेतन के रूप में प्राप्त होने वाली आय में ये चीजें शामिल रहती हैं—(i) मूल वेतन की राशि, (ii) क्षेत्र सम्बन्धी भिन्नताएँ जो कि ग्रेट ब्रिटेन की अपेक्षा अधिक हैं, (iii) पारिवारिक वेतन पूरक, (iv) वे बोनस तथा भत्ते जो विशेष रूप में सामान्य कानून द्वारा अधिकृत हैं। अप्रैल, 1965 में सूचकांक सकल रूप में (In Gross Terms) 100 से 1000 थे तथा वास्तविक रूप में ये 100 से 760 तक थे। अप्रैल, 1965 में नए सूचकांक भी प्रारम्भ किए गए। उल्लेखनीय है कि पुनर्मूल्यांकन की इस प्रक्रिया में निम्नतर स्तरों पर पदों के सूचकांक घट गए तथा उच्चस्तरीय पदों पर बढ़ गए। इस परिवर्तन एवं विकास की तुलना हम ग्रेट ब्रिटेन के प्रीस्टले कमीशन के इस सुझाव से कर सकते हैं कि लोकसेवाओं में योग्यता को बनाए रखने तथा योग्य प्रत्याशियों को आकर्षित करने के लिए वेतन सम्बन्धी अन्तरों को कम करने की नीति कोई अच्छी नीति नहीं है।

मूल्यांकन (An Evaluation)

फ्रांस में वेतन नीति का इतिहास यह प्रदर्शित करता है कि वेतन को केवल एक बजट सम्बन्धी मामला समझने के परिणाम घातक रहे हैं। इसे रोकने के लिए एक शक्तिशाली केन्द्रीय स्थापना कार्यालय अत्यन्त आवश्यक है। यहाँ की सूचकांक व्यवस्था स्पष्ट रूप से मूल वेतन के साथ जुडी हुई पद वर्गीकरण व्यवस्था है। इस व्यवस्था के सफल कार्य सचालन के लिए दो परिस्थितियाँ आवश्यक हैं—(i) वर्गीकरण को तब तक बनाए रखा जाए जब तक कि उस पद के कर्त्तव्यो मे आमूल-चूल परिवर्तन न हो जाएँ, (ii) जब जीवनयापन-व्यय बदल जाए तो मूल वेतन को भी तुरन्त ही बदल दिया जाना चाहिए। इन दोनो शर्तों मे से एक का भी पूरा होना सरल काम नही है। सूचकांको मे सशोधन के लिए, विशेषत कम वेतन पाने वाले पदो के सम्बन्ध मे लगातार दबाव रहता है। मूल वेतन का सामजस्य करने की ओर प्राय अरुचि रहती है।

लोकसेवको को अन्य नागरिको की भाँति पारिवारिक भत्ता मिलता है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य विशेष लाभ भी प्रदान किए जाते हैं, जैसे—पारिवारिक वेतन पूरक। यह एक प्रकार से पूरक पारिवारिक भत्ता होता है। इसकी दरें मूल वेतन की मात्रा तथा बच्चो की सख्या के आधार पर अलग अलग होती हैं। यह केवल कम वेतन पाने वाले कर्मचारी वर्ग को दिया जाता है। अनेक सरकारी अधिकारियो को निवास स्थान की सुविधा प्राप्त होती है।

8 पदोन्नति : भारत, ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्तराज्य अमेरिका तथा फ्रांस

(Promotion Policies in India, Great Britain U. S. A. and France)

पदोन्नति को सेवीवर्ग प्रशासन में चयन प्रक्रिया का उतना ही महत्त्वपूर्ण पहलू माना जाता है जितना कि प्रारम्भिक भर्ती को।[1] पदोन्नति में एक ही श्रेणी के विभिन्न ग्रेडस के बीच तथा विभिन्न श्रेणियों के बीच होने वाली प्रगति को शामिल किया जाता है। प्रो चैपमेन (Brian Chapman) के मतानुसार प्रगतियाँ (Advancements) तीन प्रकार की हो सकती हैं[2]—(i) एक कर्मचारी को प्रशासनिक ग्रेड के वर्तमान स्तर पर रख कर बहुत कुछ स्वत ही उसकी वेतन वृद्धि होती रहे, जैसे एक लिपिक पद पर ही बना रह कर सामयिक वेतन वृद्धियाँ प्राप्त करता रहे। (ii) किसी कर्मचारी को एक ही सामान्य श्रेणी के अन्तर्गत अगले उच्चतर पद पर पदोन्नत कर दिया जाए; जैसे लिपिक सहायक ग्रेड चतुर्थ से तृतीय में तृतीय से द्वितीय में तथा द्वितीय से प्रथम में पदोन्नत किया जाए। (iii) एक कर्मचारी को उसकी श्रेणी से पदोन्नत करके उच्चतर श्रेणी में पहुँचा दिया जाए, जैसे ग्रेट ब्रिटेन के सन्दर्भ में निष्पादक वर्ग से प्रशासनिक वर्ग में पदोन्नत कर दिया जाए। इस प्रकार वह उस श्रेणी को ही त्याग देता है जिसमें प्रारम्भ में उसकी नियुक्ति हुई थी। पदोन्नति की दृष्टि से सर्वाधिक उपयुक्त प्रगति मध्यवर्ती है। केवल मात्र वेतन वृद्धि में कर्मचारी के उत्तरदायित्वों एवं कार्यों में कोई विशेष अन्तर नहीं आता अत यह पदोन्नति नहीं है। पदसोपान के अन्तर्गत कर्मचारी पदसोपान के निम्न स्तरों से क्रमश उच्च स्तरों की ओर अग्रसर होता है। जिस प्रगति में श्रेणी ही बदल जाती है वह पदोन्नति कम और नई नियुक्ति अधिक है।

1 "Promotion is as important an aspect of the selection process in public personnel administration as original recruitment"—Public Personnel Association (formerly the Civil Service Assembly). Placement and Probation in the Public Service, Chicago, 1946, p 80

2 *Brian Chapman*, op cit, p 165

'पदोन्नति' योग्य तथा सक्षम कार्यकर्त्ताओं को उनकी सेवा के बदले दिया गया पुरस्कार है। इसके द्वारा योग्य कर्मचारियों को उन पदों पर नियुक्त करने की *व्यवस्था की जाती है जहाँ वे सर्वाधिक उपयुक्त साबित हो सकें।*[1] वेतन वृद्धि प्राय पदोन्नति के साथ जुड़ी रहती है किन्तु यह इसका आवश्यक अग नहीं है। बिना पदोन्नति के वेतन वृद्धि हो सकती है तथा वेतन वृद्धि के बिना भी पदोन्नति हो सकती है। पदोन्नति की आवश्यक विशेषता कर्मचारी के पद के कर्त्तव्यों एव दायित्वों मे होने वाला परिवर्तन है। यह निम्न पद से उच्च पद पर नियुक्त होने की *व्यवस्था है। प्रो फिफनर ने सही लिखा है कि "पदोन्नति का अर्थ प्रविपन की* व्यवस्था से कुछ अधिक है। पदोन्नति के साथ सामान्यत वेतन वृद्धि होती है किन्तु एक कर्मचारी बिना पदोन्नत हुए भी अधिक वेतन पा सकता है। पदोन्नति प्रक्रिया की मुख्य विशेषता कर्त्तव्यों म परिवर्तन है। इस प्रकार पदोन्नति निम्न पद से उच्च पद की ओर प्रगति है जिसके साथ-साथ कर्त्तव्यों मे भी परिवर्तन हो जाता है।"[2]

उपयुक्त पदोन्नति व्यवस्था का महत्त्व
(Importance of a Proper Promotion System)

पदोन्नति व्यवस्था के दो पक्ष हैं—एक लोकसेवक तथा दूसरा सेवीवर्ग प्रशासन। पदोन्नति के द्वारा लोकसेवक के कार्य एव दायित्व बढ जाते हैं तथा दूसरी ओर सेवीवर्ग प्रशासन को उपयुक्त स्थान के लिए उपयुक्त कार्यकर्त्ता प्राप्त हो जाता है। *प्रो विलोबी ने पदोन्नति को समस्त सेवीवर्ग प्रशासन मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण* कार्य माना ह।[3] कारण यह है कि पदोन्नति कार्य के सफल और सन्तोषजनक प्रशासन द्वारा ही सम्पूर्ण सेवीवर्ग व्यवस्था को कार्यकुशलता निर्धारित होती है। सेवीवर्ग व्यवस्था म पदोन्नति के महत्त्व तथा उपयोगिता की दृष्टि से मुख्यत ये बातें उल्लेखनीय हैं—(i) यह अच्छे कार्य का पुरस्कार है। इसकी आकांक्षा मे लोकसेवक अपने कार्य समुचित रूप से सम्पन्न करते हैं तथा जिन्हें पदोन्नति प्राप्त हो जाती है वे अपने कठिन परिश्रम, ईमानदारी, सजगता, कार्यकुशलता आदि के प्रति सन्तोष *का अनुभव करते हैं। प्रोक्टर के कथनानुसार कर्मचारियों के लिए पदोन्नति पुरस्कार* अथवा सम्भावित पुरस्कार के रूप मे प्रत्यक्ष महत्त्व की चीज है। वास्तविक पदोन्नति तो पुरस्कार है ही किन्तु पदोन्नति का *अवसर भी सम्भावित पुरस्कार है।*[4] (ii) यह उपयुक्त सेवीवर्ग प्रशासन की व्यवस्था करता है। इसके प्रभाव से समस्त प्रशासन प्रत्येक स्तर पर लाभान्वित होता है। पदोन्नत कर्मचारी सन्तोष का अनुभव करता है। वह पद पर बने रहने तथा इधर-उधर जाने की नहीं सोचता तथा कुशलतापूर्वक अपने दायित्वों को पूरा करने की चेष्टा करता है ताकि अपनी पदोन्नति

1 "Fitting the square peg into the square hole."
—*E N Gladden* op cit., p 108.

2 *J. M Pfiffner* . Public Administration p *303*

3 "......promotion of employees from one position to another probably ranks first in importance" —*W. F Willoughby* op cit , p 249.

4 *Procter* . Principles of Personnel Administration, pp 173-74

का औचित्य सिद्ध कर सके। (iii) पदोन्नति प्रत्येक कर्मचारी के लिए व्यापक प्रेरणा का स्रोत है। यह कर्मचारी के लिए ऐसा बाह्य आकर्षण है जो उसमें आन्तरिक भावनाएँ प्रेरित करता है। (iv) इससे प्रशासनिक कार्यकुशलता बढ़ती है। कारण यह है कि पदोन्नति के कारण एक ओर तो कर्मचारियों को अपने कार्य के प्रति सन्तोष रहता है तथा दूसरी ओर उच्च पदों पर अनुभवी, क्षमतावान, कार्यकुशल वरिष्ठ एवं संगठन से पूर्णतः परिचित कर्मचारी नियुक्त हो पाते हैं। (v) पदोन्नति व्यवस्था संगठन को अनेक रूपों में लाभान्वित करती है। इसके फलस्वरूप उपयुक्त कार्यकर्त्ता विभिन्न पदों पर नियुक्त हो पाते हैं इसके कारण कर्मचारी अधिक समय तक अपने पद पर कार्य कर पाते हैं, इससे कर्मचारी का प्रशिक्षण तथा आत्म सुधार का कार्य प्रभावित होता है इसमें संगठन में वांछनीय अनुशासन रह पाता है यह संगठन के लिए अपेक्षित सद्इच्छा एवं उत्साह को प्रभावित करता है तथा कुल मिलाकर इसके कारण संगठन की कार्यकुशलता प्रभावित होती है। (vi) इसका अभाव हानिकारक है। यदि किसी संगठन में लोकसेवकों को पदोन्नति के उपयुक्त अवसर प्राप्त न हो सकें तो योग्य तथा सक्षम कार्यकर्त्ता उसकी ओर आकर्षित नहीं हो पाएँगे। जो लोग कार्य कर रहे हैं वे भी निरन्तर यह प्रयत्न करते रहेंगे कि ज्यों ही अवसर प्राप्त हो त्यों ही वे इस संगठन को त्याग कर ऐसे संगठन में प्रवेश कर लें जहाँ पदोन्नति के पर्याप्त अवसर मिलें। यदि पदोन्नति के संचालन में धाँधली होती है तथा पक्षपातपूर्ण नीतियाँ अपनाई जाती हैं तो कर्मचारियों में असन्तोष पैदा होता है। प्रो. एल. डी. ह्वाइट की मान्यता है कि दुर्नियोजित पदोन्नति व्यवस्था न केवल अयोग्य लोगों को सामने लाकर संगठन को हानि पहुँचाती है वरन् इससे सम्पूर्ण समूह का मोरेल गिर जाता है।[1] प्रो. मेयर्स का मत है कि पदोन्नति व्यवस्था में होने वाली त्रुटि का परिणाम प्रारम्भिक भर्ती में होने वाली त्रुटि से भी अधिक भयंकर होता है। यदि भर्ती के समय अधिक योग्य की अपेक्षा कम योग्य का चयन कर लिया जाए तो यह बात कुछ ही सम्बन्धित लोगों को ज्ञात होती है तथा प्रभावित व्यक्ति संगठन से बाहर ही रहता है। दूसरी ओर यदि पदोन्नति व्यवस्था में गड़बड़ी की गई तो यह बात सभी कर्मचारियों को ज्ञात हो जाती है तथा सभी सम्बन्धित एवं सम्भावित कर्मचारियों में असन्तोष पैदा करती है, उनकी पहल को आघात पहुँचाती है तथा सामान्यतः मनोबल को गिरा देती है। अतः भर्ती से अधिक कार्यकुशल तथा निश्चित तरीके पदोन्नति के लिए अनिवार्य हैं।[2] (vii) संगठन में उच्च मनोबल की दृष्टि से उपयुक्त पदोन्नति व्यवस्था विशेष रूप से महत्त्व रखती है। विफनर के कथनानुसार इस दृष्टि से 'निष्पक्षता' संगठन में मनोबल की स्थापना के लिए पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है। इससे श्रेष्ठ सेवीवर्ग सेवा में बने रहने के लिए प्रोत्साहित होगा तथा गैर-सरकारी हरे-भर

1 "A badly planned promotion system harms an organisation not merely by pushing ahead unqualified persons but also by undermining the morale of the whole group" —*L. D. White* op. cit., p. 400

2 *Mayers* The Federal Service, p. 317

सज्ज वायों के प्रलोभन में नहीं पड़ेगा।[1] डॉ. एल डी ह्वाइट का कहना है कि यदि उपयुक्त पदोन्नति व्यवस्था असफल हो जाती है तो इसका भर्ती पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा और इससे अच्छा कार्य करने की प्रेरणा मर जाएगी तथा कर्मचारियों का मनोबल नीचा हो जाएगा।

उचित पदोन्नति व्यवस्था की विशेषताएँ
(Characteristics of Proper Promotion System)

पदोन्नति व्यवस्था की असफलता अनेक बार तो राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक कारणों से होती है किन्तु कभी-कभी यह इसलिए भी हो जाती है कि सेवीवर्ग प्रबन्ध उपयुक्त पदोन्नति व्यवस्था की मूलभूत विशेषताओं से परिचित नहीं था। प्रो विलोबी ने संक्षेप में इन विशेषताओं का उल्लेख निम्न प्रकार किया है—

(1) सरकारी सेवा के सभी पदों के लिए पदाधिकारियों की सभी आवश्यक योग्यताओं एवं कर्त्तव्यों का उल्लेख करते हुए कुछ मापदण्ड निर्धारित किए जाएँ।

(2) इन सभी पदों का विभिन्न सेवाओं में वर्गीकरण किया जाए। प्रत्येक सेवा की सामान्य प्रकृति एक जैसी हो। प्रत्येक सेवा के अन्तर्गत पदों की व्यवस्था उनके सापेक्षिक महत्त्व के अनुसार पदसोपान के रूप में प्रतिबन्धित की जाए।

(3) इस वर्गीकरण में राजनीतिक प्रकृति की सेवाओं को छोड़कर अन्य सभी उच्चतर प्रशासनिक पद शामिल किए जाएँ।

(4) यह सिद्धान्त स्वीकार किया जाना चाहिए कि जहाँ तक हो सके उच्चतर पदों के रिक्त स्थानों की पूर्ति सेवा के निम्न स्तरों से पदोन्नति करके अथवा दूसरी सेवाओं से स्थानान्तरण करके की जाएगी।

(5) यह सिद्धान्त स्वीकार किया जाए कि पदोन्नति द्वारा कर्मचारियों के चयन का आधारभूत सिद्धान्त केवल योग्यता होगा।

(6) पदोन्नति के लिए उपयुक्त कर्मचारियों की सापेक्षिक योग्यताओं को निर्धारित करने के लिए पर्याप्त साधनों की व्यवस्था की जाए।

उक्त विशेषताओं को अपनाने के बाद यह बहुत कुछ निश्चित हो जाता है कि कर्मचारियों की पदोन्नति एक वैज्ञानिक आधार पर हो सकेगी और विभिन्न उच्च पदों पर न केवल योग्य व्यक्तियों को नियुक्त किया जा सकेगा वरन् सम्बन्धित तथा सम्भावित कर्मचारियों के मन में इसकी निष्पक्षता के प्रति सन्तोष भी पैदा किया जा सकेगा। प्रत्येक पदाधिकारी इस सम्बन्ध में आश्वस्त हो जाएगा कि यदि उसने योग्यता से काम किया तो उपयुक्त अवसर आने पर वह उच्च पद के लिए अवश्य चुना जा सकेगा। इस प्रकार प्रत्येक कर्मचारी के साथ सर्वश्रेष्ठ कार्य करने के लिए

1 *J M Pfiffner*, op cit, p 303

एक प्रभावशाली अभिप्रेरणा रहेगी जिसके कारण वह न केवल वर्तमान पद के कार्यों को भली प्रकार सम्पन्न करेगा वरन् भावी पद के लिए भी तैयार रहेगा।

पदोन्नति के लिए पात्रता
(Eligibility for Promotion)

संगठन में कार्य कर रहे विभिन्न कर्मचारियों में से उच्च पद के लिए किसे पात्र माना जाए, यह प्रश्न पदोन्नति व्यवस्था में पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है। यह पात्रता एक कर्मचारी को पदोन्नत होने का अधिकारी बना देती है। प्रो विलोबी ने पदोन्नति के लिए पात्रता के दो आधारों का वर्णन किया है, ये है—सेवीवर्ग की योग्यताएँ तथा उनकी सेवा की स्थिति।

(1) सेवीवर्ग की योग्यताएँ (Personnel Qualifications)—पद-वर्गीकरण के समय प्रत्येक पद के कार्यों, दायित्वों एवं योग्यताओं का निर्धारण किया जाता है। इन योग्यताओं में ज्ञान, कुशलता अनुभव शैक्षणिक योग्यता लिंग, निवास, तकनीकी कुशलता आदि प्रमुख होती हैं। जिस पद के लिए पदोन्नत किया जाता है उसके लिए सभी आवश्यक योग्यताएँ सम्बन्धित प्रत्याशी में होनी चाहिए। इनके बिना पदोन्नति के लिए किसी कर्मचारी के नाम के सम्बन्ध में विचार ही नहीं किया जा सकता। जब ये आवश्यक योग्यताएँ निर्धारित की जाती हैं तभी यह तय हो जाता है कि पदोन्नति के लिए प्रत्याशियों का क्षेत्र व्यापक रहेगा अथवा संकीर्ण।

(2) सेवा का स्तर (Service Status)—व्यक्तिगत योग्यताओं की भाँति पदोन्नति की पात्रता का एक अन्य आधार प्रत्याशी की सेवा का स्तर है। इसके अन्तर्गत यह निर्धारित किया जाता है कि पदोन्नति के लिए सम्भावित प्रत्याशी कहाँ से प्राप्त किए जाएँगे। प्रायः सेवा के नियमों में ही यह निर्धारित कर दिया जाता है कि किसी विशेष पद के रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए पदोन्नति उसी पद के तुरन्त नीचे वाले पद से की जाएगी या उस संगठन के किसी भी कर्मचारी से की जाएगी या उस ब्यूरो के किसी कर्मचारी से की जाएगी जिसका वह संगठन एक अंग मात्र है या सम्बन्धित विभाग के किसी भी कर्मचारी से या सम्पूर्ण सरकारी सेवा के किसी कर्मचारी से की जाएगी। इन विकल्पों को निश्चित कर देने पर पदोन्नति की रेखाएँ स्पष्ट हो जाती हैं।

पदोन्नति के क्षेत्र को संकीर्ण रूप से मर्यादित करना अत्यन्त लाभदायक है। इससे पदोन्नति की रेखाएँ पूरे निश्चय के साथ तय हो जाती हैं। कर्मचारियों को यह स्पष्ट हो जाता है कि वे किस पद तक पदोन्नत हो सकेंगे, वहाँ उनको कितना आर्थिक लाभ मिल सकेगा तथा वहाँ तक पहुँचने के लिए उन्हें कौन-सी योग्यताएँ अर्जित करनी चाहिए। इस व्यवस्था की हानि यह है कि इसके फलस्वरूप कर्मचारियों के पदोन्नति के अवसर कम रह जाते हैं, साथ ही योग्य प्रत्याशियों का सम्भावित क्षेत्र भी छोटा हो जाता है। उक्त लाभों तथा हानियों का सापेक्षिक प्रभाव इस

बात पर निर्भर करता है कि सेवा अथवा सगठनात्मक इकाई का क्षेत्र कितना व्यापक है।

प्रो विलोबी की मान्यता है कि विभिन्न कर्मचारियो की सेवा की शर्तों मे भारी अन्तर रहते हैं इसलिए यदि उन सभी के लिए एकरूप व्यवस्था स्थापित करने की चेष्टा की गई तो यह घातक होगी। इस दृष्टि से कुछ सामान्य सिद्धान्त निर्धारित किए जा सकते हैं। ये निम्नलिखित हैं—

(i) प्रत्येक सेवा के लिए पदोन्नति की व्यवस्था स्वय की होनी है तथा यह अन्य सेवा से पर्याप्त भिन्न है अत प्रत्येक सेवा मे पदोन्नति की समस्या पर पृथक् से विचार किया जाना चाहिए।

(ii) जहाँ तक सम्भव हो सके, सभी कर्मचारियो को पदोन्नति के अधिक मे अधिक अवसर प्रदान करने की चेष्टा की जानी चाहिए।

(iii) पदोन्नति द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति करते समय सम्बन्धित सगठन के कर्मचारी को सगठन के बाहर के कर्मचारी की अपेक्षा प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

पात्रों में से चयन के निर्धारक तत्त्व

(Factors in Determining Selection among Eligibles)

किसी पद पर पदोन्नति के लिए पात्रता निर्धारित करने के बाद एक अन्य प्रश्न यह उपस्थित होता है कि एक से अधिक पात्रो म से पदोन्नति के लिए चयन करने का आधार क्या होना चाहिए। विभिन्न देशो के सेवीवर्ग प्रशासन मे पदोन्नति के लिए प्रचलित व्यवहार के आधार पर पात्रो मे से चयन के दो आधारभूत तत्त्वों का उल्लेख किया जा सकता है। ये है—वरिष्ठता एव योग्यता। इनका विवेचन हम अग्रिम पंक्तियों मे कर रहे हैं।

(1) वरिष्ठता अथवा सेवा की लम्बाई

(Seniority or Length of Service)

प्राय सभी सरकारी सेवाओ मे सेवा की लम्बाई पर विचार किया जाता है। यह बात अलग है कि कही इसका कम महत्त्व प्राप्त होता है तथा दूसरी बातें अधिक महत्वपूर्ण बन जाती है और दूसरे स्थानो पर यही एकमात्र निर्णायक तत्त्व बन जाता है। वरिष्ठता के आधार पर की जाने वाली पदोन्नति के पक्ष में प्रो मयर्स ने ये बातें कही हैं[1]—

(i) सेवा की लम्बाई द्वारा कर्मचारी मे तकनीकी योग्यताएँ बढ जाती हैं, *(ii) इसके कारण पदोन्नति के लिए सगठन के कर्मचारियो के मध्य होने वाला* सघर्ष रुक जाता है, (iii) पदोन्नति करने वाले अधिकारी राजनीतिक एव अन्य प्रकार के दबावो से मुक्त हो जाते हैं, (iv) इससे कर्मचारियो मे यह भावना पनपती है कि पदोन्नति न्यायपूर्ण, निष्पक्ष एव बिना किसी भेदभाव के की जा रही है, अत कर्मचारियों का सामान्य रूप से मनोबल बढता है, (v) पदोन्नति की निष्पक्षता एव

1 *Mayer* : The Federal Service, pp 319-20

स्पष्टता होने के कारण प्रबन्ध लोग सरकारी पदों की ओर आकर्षित होने लगते हैं तथा (vi) अनेक महत्वपूर्ण पदाधिकारी सेवा में रहते हैं जो कि अन्यथा सेवा से बाहर जा सकते थे।

वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति करना अन्य कई दृष्टियों से भी लाभदायक सिद्ध होता है। यह एक कर्मचारी द्वारा किए गए कार्य एवं उससे प्राप्त अनुभव का उपयुक्त पुरस्कार होता है। इसमें पदोन्नतिकर्त्ता अधिकारी को व्यक्तिगत निर्णय से काम नहीं लेना पड़ता इसलिए विषयगत निर्णय की आशंकाएँ समाप्त हो जाती हैं। इस प्रकार से पदोन्नत हुआ कर्मचारी किसी का अहसानमन्द नहीं रहता, इसमें उसे किसी की दया अथवा कृपा पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं होती। पदोन्नति की रेखाएँ स्पष्ट होने के कारण कर्मचारीगण सेवा को जीवनवृत्ति के रूप में अपना लेते हैं। पदोन्नति कार्य में किसी के हस्तक्षेप की गुंजाइश नहीं रहती।

वरिष्ठता के आधार पर की जाने वाली पदोन्नति की कुछ कमजोरियाँ तथा हानियाँ भी हैं – (1) एक बात तो यह है कि इस प्रणाली के द्वारा योग्यतर लोगों के पदोन्नत होने की गारण्टी नहीं होती। केवल अधिक समय तक कार्य कर लेना ही योग्यता को अनिवार्यतः नहीं बना जाता। इस आलोचना के विरोध में यह कहा जा सकता है कि प्रारम्भिक भर्ती के समय आयोजित प्रतियोगी परीक्षाओं में ही कर्मचारी की योग्यता भली प्रकार देख ली जाती है। (2) वरिष्ठता के विरुद्ध यह कहा जाता है कि लम्बी सेवा का अर्थ आवश्यक रूप से योग्यता और कुशलता में वृद्धि नहीं है। यह भी हो सकता है कि लम्बे समय तक एक ही कार्य को करते रहने के कारण उस कार्य के प्रति व्यक्ति की रुचि में जंग लग जाए। लम्बी सेवा का अनुभव एक ही वर्ष के कार्य को हर वर्ष दोहराने से अधिक कुछ भी नहीं होता। इससे कर्मचारी को कोई नई उपलब्धि नहीं हो पाती वरन् वह एक घेरे में घूमता हुआ कुछ प्रगति विरोधी रूढ़ियाँ विकसित कर लेता है। (3) इसके फलस्वरूप योग्य तथा प्रतिभावान व्यक्ति लोकसेवा में नहीं आते तथा वे निजी प्रशासन में जाना अधिक पसन्द करते हैं। इस व्यवस्था में उन्नति ही तथा अधिक योग्यता वाले कर्मचारियों के लिए कोई विशेष प्रगति के अवसर नहीं होते। अतः वे या तो सेवा से बाहर चले जाते हैं अथवा अपनी प्रवृत्ति बदल कर ढीले ढाले रूप में निरुत्साहजनक रूप से कार्य करते रहते हैं। कर्मचारी वर्ग में आलस्य की भावना भर जाती है। (4) इसके परिणामस्वरूप सारा संगठन लालफीताशाही के दोष से ग्रस्त हो जाता है। इसमें सार्वजनिक हितों की उपेक्षा की जाती है। संगठन की सारी कार्यकुशलता समाप्त हो जाती है। (5) पदोन्नति एक अधिकार के रूप में स्वतः ही वरिष्ठ कर्मचारियों को प्राप्त होने लगती है। इस प्रकार से पदोन्नत हुआ कर्मचारी अपने वरिष्ठ अधिकारियों के प्रति किसी प्रकार का सद्भाव नहीं रख पाता। (6) वरिष्ठता का सिद्धान्त संगठन के लिए हानिकारक है क्योंकि इसमें नवागन्तुक योग्य तथा कुशल कर्मचारियों को वरिष्ठ कर्मचारियों की तुलना में पदोन्नति नहीं दी जाती तो वे त्यागपत्र देकर अन्यत्र चले

जाते हैं। यदि वे पदो पर बने भी रहते है तो अपनी योग्यता प्रदर्शन की ओर से उदासीन हो जाते हैं। फिफनर की मान्यता है कि ज्येष्ठता सिद्धान्त के अन्तर्गत सनकी किस्म के लोग पदोन्नत हो जाते हैं तथा इनके कारण सारे सगठन को हानि पहुँचती है। (7) यह सिद्धान्त सगठन को प्रतिक्रियावादी बना देता है क्योकि ऊँचे पदो पर प्रासीन रूढ़िवादी और परम्परानिष्ठ व्यक्ति स्वय को नए वातावरण तथा नई आवश्यकताओ के अनुरूप ढालने मे प्राय असमर्थ रहते हैं।

वरिष्ठता सिद्धान्त की आलोचना करते हुए प्रो फिफनर ने लिखा है कि केवल वरिष्ठता को ही पदोन्नति का आधार बनाने से उच्च पद अयोग्य तथा असमर्थ व्यक्तियो मे भरने लगते हैं। इसके कारण कर्मचारियो की महत्त्वाकांक्षा नष्ट हो जाएगी तथा वे प्रेरणाएँ समाप्त हो जाएँगी जिनके कारण कर्मचारियो मे व्यक्तित्व, साहस आत्मनिर्भरता और प्रगतिशील दृष्टिकोण का विकास होता है।

प्रो ई एन ग्लेडन का मत है कि वरिष्ठता सिद्धान्त कुछ गलत मान्यताओ पर आधारित है। ये गलत मान्यताएँ सक्षेप मे ये है— (i) इसमे यह मान लिया जाता है कि एक ग्रेड के सभी कर्मचारी समान रूप से पदोन्नति के योग्य है, किन्तु वास्तविकता यह नही है। (ii) यह मान लिया जाता है कि ज्येष्ठता सूची सभी को पदोन्नति के अवसर प्रदान करेगी किन्तु ऐसा होता नही है। (iii) यह मान लिया जाता है कि निम्न पदो की अपेक्षा उच्च पदो का प्रतिशत अधिक होना है, अत एक न एक दिन प्रत्येक कर्मचारी को उच्च पदो पर काम करने का अवसर प्राप्त होगा, परन्तु व्यवहार मे यह सम्भव नहीं होता। (iv) यह मान लिया जाता है कि रिक्त स्थान काफी बडी सख्या मे उत्पन्न होते है, जबकि प्रावश्यक रूप से ऐसा होता नही है।

(2) योग्यता अथवा प्रतियोगी परीक्षाएँ
(Merit or the Competitive Examinations)

योग्यता सिद्धान्त श्रेष्ठता अथवा वरिष्ठता के सिद्धान्त का प्रतिस्पर्द्धी है। इसके अनुसार यह माना जाता है कि पदोन्नति के लिए पात्रो का चयन करते समय निर्णायक तत्त्व प्रत्याशियो की तुलनात्मक योग्यता को माना जाना चाहिए न कि उनकी सेवा की दीर्घता को। एक कर्मचारी दस वर्ष से सगठन मे कार्य करते हुए भी पिछले वर्ष आने वाले कर्मचारी की तुलना मे कम योग्य हो सकता है, अत जब इन दोनो मे से पदोन्नति के लिए किसी एक को चुनने का प्रश्न उपस्थित हो तो वरिष्ठ की अपेक्षा योग्य का ही चयन किया जाना चाहिए।

योग्यता के आधार पर पदोन्नति के पक्ष मे दिए जाने वाले तर्क प्राय अकाट्य हैं किन्तु यदि इस सिद्धान्त को पदोन्नति का आधार बनाया जाए तो समस्या यह उत्पन्न होती है कि योग्यता और गुणो की जाँच किस प्रकार की जाए। किसी व्यक्ति की योग्यता एव दक्षता का सही अनुमान लगाना वास्तव मे टेढी खीर है। इसके लिए वस्तुगत (Objective) परीक्षाओ का सुझाव दिया जाता है। कर्मचारियो की योग्यता मापने के लिए सामान्यतः तीन विधियाँ अपनाई जाती है—

(क) प्रतियोगी परीक्षाएँ (Competitive Examinations)
(ख) सेवा अभिलेख (Service Records)
(ग) विभागाध्यक्ष का व्यक्तिगत निर्णय (Personal Judgement of the Departmental Head)

(क) प्रतियोगी परीक्षाएँ (Competitive Examinations)—यह कर्मचारियों की योग्यता की जांच के लिए प्रथम व्यक्ति-निरपेक्ष विधि है। प्रतियोगी परीक्षाएँ पदोन्नति के लिए विशेष रूप से आयोजित की जाती हैं और इसलिए इन्हें पदोन्नति परीक्षाएँ (Promotional Examinations) कहा जाता है। ये परीक्षाएँ प्राय लोकसेवा आयोग द्वारा सचालित की जाती है तथा मुख्य रूप से तीन प्रकार की होती हैं—

(i) खुली प्रतियोगी परीक्षाएँ (Open Competitive Examinations)—इनमें बैठने का अवसर सभी व्यक्तियों को मिलता है चाहे वे पहले से सेवा मे हो अथवा न हो। सेवा से बाहर के व्यक्तियो को रिक्त पद के लिए प्रतियोगिता करने की खुली छूट देना उन कर्मचारियों को रुचिकर नहीं होता जो पहले से ही सेवा मे मौजूद है। उनका तर्क यह है कि पदोन्नति का रिक्त स्थान केवल उन्ही लोगो के लिए होना चाहिए जो पहले से ही सेवा में हैं।

(ii) सीमित प्रतियोगी परीक्षाएँ (Limited Competitive Examinations)—यह पदोन्नति परीक्षा का दूसरा रूप है। इसमें वे व्यक्ति भाग लेते हैं जो पहले ही सेवा मे मौजूद हैं। यही कारण है कि जहाँ पहली पद्धति को खुली पद्धति (Open System) कहा जाता है वहाँ दूसरी पद्धति को बन्द पद्धति (Closed System) का नाम दिया जाता है।

(iii) उत्तीर्णता परीक्षाएँ (Pass Examinations)—इस परीक्षा म प्रत्याशीको केवल उत्तीर्ण होना पड़ता है। इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि उसमे न्यूनतम योग्यता है। परीक्षाफल के आधार पर योग्य कर्मचारियों की एक सूची तैयार कर ली जाती है तथा स्थान रिक्त होने पर इस सूची के आधार पर पदोन्नति कर दी जाती है। भारत मे प्रतिवर्ष ऐसी अनेक पदोन्नति परीक्षाएँ आयोजित की जाती हैं।

परीक्षा पद्धति का मूल्यांकन (Evaluation of the Examination System)—योग्यता की माप के लिए आयोजित परीक्षा पद्धति के पक्ष और विपक्ष मे बहुत कुछ कहा जाता है। इस पद्धति के पक्ष म प्राय ये तर्क दिए जाते हैं—(i) यह व्यक्ति-निरपेक्ष होती है। (ii) पक्षपातरहित होने के कारण इसम भ्रष्टाचार की सम्भावनाएँ कम से कम रहती हैं। (iii) इस व्यवस्था म सभी को अपनी योग्यता प्रदर्शित करने का समान अवसर प्राप्त होता है (iv) कर्मचारी की वरिष्ठता उसकी योग्यता का प्रामाणिक आधार नहीं होती अत प्रतियोगी परीक्षा की प्रणाली को ही अधिक विश्वसनीय कहा जा सकता है।

परीक्षा प्रणाली के विरुद्ध में मुख्य रूप से ये तर्क प्रस्तुत किए जाते हैं—

(i) लिखित परीक्षा के माध्यम से प्रत्याशियों के व्यक्तित्व की सही तथा पूरी जाँच नहीं हो पाती। साधारण योग्यता वाले कर्मचारी भी कुछ प्रश्नों अथवा तथ्यों को रटकर परीक्षा में अच्छे अंक ले आते हैं। (ii) लिखित परीक्षा में अच्छे अंक पाने के बाद भी यह विश्वास के साथ नहीं कहा जा सकता कि प्रत्याशी में उच्च प्रशासनिक पदों के लिए आवश्यक व्यक्तिगत गुण मौजूद हैं। (iii) लिखित परीक्षाओं द्वारा नेतृत्व के गुणों की जाँच सम्भव नहीं है।

परीक्षा प्रणाली के उक्त दोषों के कारण ही इंग्लैण्ड तथा फ्रांस आदि देशों में पदोन्नति के लिए इसे अनुपयुक्त समझा जाता है। संयुक्तराज्य अमेरिका में पदोन्नति के लिए परीक्षाएँ आयोजित की जाती हैं किन्तु इनका क्षेत्र कुछ संघीय विभागों तक सीमित है।

(ख) सेवा अभिलेख या कार्यकुशलता माप (Service Records or Efficiency Ratings)—पदोन्नति के लिए योग्यता जाँचने की यह दूसरी विधि है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक कर्मचारी की सेवा का अभिलेख रखा जाता है। इसके आधार पर वरिष्ठ अधिकारी कर्मचारी की कार्य सम्पन्नता की क्षमता का मूल्यांकन कर लेते हैं। इन सेवा अभिलेखों के आधार पर एक श्रेणी के विभिन्न कर्मचारियों की सापेक्षिक योग्यता का निर्धारण कर लिया जाता है और तब रिक्त स्थानों की पूर्ति की जाती है। सेवाअभिलेख पद्धति को विवरण प्रपत्र प्रणाली (System of Report Forms) भी कहा जाता है। इन विवरणों में कर्मचारियों की कार्यकुशलता मापक दरों (Efficiency Ratings) का उल्लेख रहता है।

संयुक्तराज्य अमेरिका में कार्यकुशलता मापों या मापकदरों का व्यापक प्रयोग किया जा रहा है और इस सम्बन्ध में अनेक व्यापक तथा सूक्ष्म प्रणालियाँ अपनाई जा रही हैं जैसे—उत्पादन अभिलेख (Production Records), बिन्दुरेखीय दर-मापन (Graphic Rating Scale) तथा व्यक्तित्व तालिका (Personality Inventory)। उत्पादन अभिलेख पद्धति में कर्मचारी की कार्यकुशलता उसके कार्य के उत्पादन द्वारा आँकी जाती है। यह पद्धति उन कर्मचारियों के सम्बन्ध में काम में ली जाती है जिन्हें यान्त्रिक प्रकृति का कार्य करना पड़ता है, जैसे—मशीन ऑपरेटर, टाइपिस्ट, स्टेनोग्राफर आदि। बिन्दुरेखीय दर मापन पद्धति में एक फार्म रहता है जिसमें लगभग 31 मावोचित गुणों की सूची रहती है तथा मापन अधिकारी इन गुणों में निशान लगाता है और इसके आधार पर प्रायः इन श्रेणियों में बाँट देता है—उत्कृष्ट (Outstanding), अति श्रेष्ठ (Very Good), सन्तोषजनक (Satisfactory), उदासीन (Indifferent) तथा निकृष्ट (Poor)। व्यक्तित्व तालिका पद्धति में मानव स्वभाव के तत्वों की एक व्यापक सूची बनाई जाती है जिसमें गुणों तथा अवगुणों, दोनों का उल्लेख रहता है। मापक अधिकारी इस सूची में से उन तत्वों को छाँट लेता है जिनसे किसी कर्मचारी के स्वभाव या व्यक्तित्व को जाना जा सके। इन गुणों तथा अवगुणों के आधार पर कर्मचारी की कार्य-क्षमता का मूल्यांकन किया जाता है।

पदोन्नति के लिए कर्मचारी की योग्यता मापने के इस तरीके की अनेक सीमाएँ हैं। प्रो विलोबी ने इस सम्बन्ध म तीन बातों का उल्लेख किया है—(i) सेवा अभिलेख एक कर्मचारी की वर्तमान पद पर कार्य करने की सापेक्षिक कुशलता का वर्णन करते हैं। इनके आधार पर उच्च पद के दायित्वों को निभाने की योग्यता का पता नहीं लगाया जा सकता। यह हो सकता है कि एक कर्मचारी अपने पद के दायित्वों एव कार्यों को सफलतापूर्वक सम्पन्न करे किन्तु उच्च पद के कार्यों तथा दायित्वों के बारे मे वह अकुशल साबित हो जाए। (ii) जब पदोन्नति के लिए पात्र विभिन्न सम्भागो म कार्य करने वाले अधिकारी होते हैं तब यह विधि उनकी योग्यता मापने म विशेष सहयोगी नही बन पाती। कारण यह है कि इन सभी का सेवा अभिलेख एक ही प्रकार से नहीं रखा जाता तथा इनकी सापेक्षिक योग्यताओं की तुलना भी सम्भव नहीं होती। ऐसे मामलों मे सबसे अच्छा तरीका प्रतियोगी परीक्षाओं का है। (iii) सेवा अभिलेख पदोन्नतिकर्त्ता अधिकारी के निर्णय पर बाध्यकारी शक्ति बन जाते है और इनके आधार पर पदोन्नत कर्मचारियों का अपने उच्च अधिकारियो के साथ वांछनीय सम्बन्ध नहीं रह पाता।

कार्यकुशलता मापन विधि की एक सीमा यह भी है कि यह व्यक्तिनिष्ठ (Subjective) होती है। एक मापक अधिकारी किसी कर्मचारी को उत्कृष्ट (Outstanding) की श्रेणी म रखता है तो दूसरा मापक अधिकारी उसी कर्मचारी को अति श्रेष्ठ (Very Good) की श्रेणी म रख देता है। इसके अतिरिक्त एक कार्यकुशल कर्मचारी के व्यक्तिगत गुणो के सम्बन्ध म भी विचारक एकमत नहीं हैं।

(ग) विभागाध्यक्ष द्वारा व्यक्तिगत निर्णय (Personal Judgement of Departmental Head)—पदोन्नति के लिए योग्यता को जाँचने की तीसरी विधि विभागाध्यक्ष अथवा पदोन्नति मण्डल के व्यक्तिगत निर्णय की है। एक कर्मचारी विभागाध्यक्ष के अधीन रहकर वर्षों तक कार्य करता है, अत उसके गुण तथा अवगुणों की वह पूरी जानकारी रखता है। विभागाध्यक्ष का निकट व्यक्तिगत सम्पर्क कर्मचारियों की कार्यकुशलता के मूल्यांकन का अधिक सही तथा प्रामाणिक आधार होता है।

पदोन्नति की इस पद्धति का गम्भीर दोष यह है कि विभागाध्यक्ष का निर्णय प्राय पक्षपातपूर्ण रहता है। कर्मचारियों द्वारा भी इस पद्धति का विरोध किया जाता है क्योंकि उन्हें पदोन्नति मे भ्रष्टाचार, मनमानी तथा बेईमानी का भय रहता है। चापलूस तथा चमचागिरी करने वाले कर्मचारी प्राय लाभ की स्थिति मे रहते हैं जबकि स्वतन्त्र विचारो वाले योग्य व्यक्तियों को हानि उठानी पड़ती है।

इस पद्धति के दोषों को दूर करने के लिए विभागीय पदोन्नति मण्डल (Departmental Promotion Board) स्थापित किए जाते हैं जिनमें विभागीय अध्यक्ष के अतिरिक्त कर्मचारियों के प्रतिनिधि भी रहते हैं। बाहर के भी कुछ सदस्य मण्डल में रखे जाते हैं। पदोन्नति मण्डल द्वारा सभी कर्मचारियों के काम की समीक्षा की जाती है, उनके सेवा अभिलेखों का मूल्यांकन किया जाता है और तब

पदोन्नति के बारे मे सिफारिश की जाती है। यदि किसी कर्मचारी को ऐसा लगे कि पदोन्नति के सम्बन्ध म कोई अनियमितता अथवा गलत बात हुई है तो वह कर्मचारियो के संगठन के माध्यम से पदोन्नति मण्डल से अपील कर सकता है। भारत म कुछ सेवाओ म उच्च पदो के लिए पदोन्नति मण्डलो की स्थापना की गई है। शिकायतो की अपीलें प्राय विभाग के बाहर स्वतन्त्र निकायों के पास भेजी जाती है। साधारणत यह काम लोकसेवा आयोगो को सौपा जाता है जो अपीलो पर आवश्यक विचार-विमर्श तथा जाँच पड़ताल करके अपना निर्णय देते हैं।

एक श्रेष्ठ पदोन्नति व्यवस्था न केवल न्यायोचित पक्षपात-रहित व्यक्ति-निरपेक्ष और ठोस होनी चाहिए वरन् यह सम्बन्धित कर्मचारियो को ऐसी प्रतीत भी होनी चाहिए। पदोन्नति की सफलता का मापदण्ड कर्मचारियो मे सामान्य सन्तोष, उच्च मनोबल, कर्त्तव्यनिष्ठा और सहयोग की भावना का प्रोत्साहन है। यहाँ हम सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि के आधार पर भारत, ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्तराज्य और फ्रांस मे पदोन्नति व्यवस्था के व्यावहारिक स्वरूप का विवेचन करेंगे।

भारत मे पदोन्नति व्यवस्था
(Promotion System in India)

भारत मे लोकसेवाओ मे होने वाले रिक्त स्थानो की पूर्ति कुछ बाहर से प्रत्यक्ष भर्ती द्वारा और कुछ भीतर से पदोन्नति द्वारा की जाती है। इन तरीको का अनुपात विभिन्न सेवाओ तथा श्रेणियो मे अलग-अलग रहता है।

पदोन्नति के अवसर या प्रतिशत
(Promotion Opportunities or Percentage of Promotion)

भारत मे, कुछ अपवादो को छोड़कर, विभिन्न सेवाओ मे रिक्त स्थानों की एक निश्चित संख्या उन कर्मचारियो की पदोन्नति द्वारा भरी जाती है जो निम्न पदक्रम (ग्रेड) मे पहले से ही काम कर रहे होते हैं। इस संख्या का अनुपात सेवाओ की विभिन्न श्रेणियो मे भिन्न-भिन्न होता है। नीचे सिविल सेवा की विभिन्न श्रेणियो से भरे जाने वाले पदो के अनुपात या प्रतिशत की मोटी रूपरेखा प्रस्तुत की गई है—

1 प्रथम श्रेणी के पदों मे लगभग 45% भर्तियाँ पदोन्नति द्वारा होती हैं तथा 55% पर सीधी भर्तियाँ की जाती हैं। इसका अनुपात विभिन्न सेवाओ म अलग अलग होता है। उदाहरण के लिए, भारतीय विदेश सेवा की शाखा 'अ' मे पदोन्नति द्वारा केवल 10% भर्तियाँ की जाती हैं जबकि केन्द्रीय सचिवालय तथा अन्य एक-दो सेवाओ की शत-प्रतिशत भर्तियाँ पदोन्नति द्वारा ही होती हैं। 25 से लेकर 33% पदो की अथवा एक सामान्य वर्ष मे उत्पन्न होने वाले रिक्त स्थानो की पूर्ति पदोन्नति द्वारा होना एक सामान्य बात है।

2 द्वितीय श्रेणियो के राजपत्रित अधिकारियो के 65% पद पदोन्नति द्वारा भरे जाते हैं। तृतीय श्रेणी के कर्मचारियो को ही पदोन्नत करके ये पद दिए

जाते हैं। प्रत्यक्ष भर्ती केवल वैज्ञानिक, मेडिकल तथा इंजीनियरिंग सेवाओं में ही होती है। द्वितीय श्रेणी की विभिन्न राजपत्रित सचिवालय सेवाओं (Gazetted Secretariat Services) के 50% रिक्त स्थानों की पूर्ति भी सीधी भर्ती द्वारा ही की जाती है। अन्य सेवाओं की अधिकांश भर्तियाँ पदोन्नति द्वारा ही होती हैं।

3 द्वितीय श्रेणी के अराजपत्रित कर्मचारियों की भर्ती पदोन्नति द्वारा होती है। लगभग 78% पदों पर सीधी भर्तियाँ की जाती हैं। ऐसे पद अधिकांशतः केन्द्रीय सचिवालय में सहायक तथा आशुलिपिक और वैज्ञानिक संस्थाओं में हैं।

4 तृतीय श्रेणी के पदों में प्रायः अन्तर्विभागीय पदोन्नतियाँ होती हैं। इतनी अन्तर्विभागीय पदोन्नतियाँ द्वितीय श्रेणी में नहीं होतीं। तृतीय श्रेणी में उच्च वेतन श्रृंखला वाले प्रायः सभी पद पदोन्नति द्वारा भरे जाते हैं।

5 चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों को पदोन्नत करके तृतीय श्रेणी में प्रायः कम लिया जाता है। यह पदोन्नति केवल रेलवे तथा डाक तार विभागों तक ही सीमित है। रेलवे में तृतीय श्रेणी के लगभग 10% पद चतुर्थ श्रेणी से पदोन्नत करके भरे जाते हैं। अनुमानतः डाक एवं तार विभाग में प्रत्येक श्रेणी के लगभग 40% पद पदोन्नति द्वारा भरे जाते हैं। रेलवे ने अनेक मामलों में पदोन्नति के निर्धारित अंश (Quota) में हाल ही में वृद्धि की है।

पदोन्नति के आधार
(The Basis of Promotion)

भारत में कर्मचारियों की पदोन्नति करते समय सामान्यतः वरिष्ठता और योग्यता के दो आधारों को सामने रखा जाता है। वरिष्ठता कर्मचारी के सेवाकाल से सम्बन्ध रखती है। इस आधार पर उस कर्मचारी को पदोन्नति के योग्य माना जाता है जिसको सेवा करते हुए अधिक समय हो गया है। इस मापदण्ड को अपनाने पर अनुचित पक्षपात या राजनीतिक हस्तक्षेप की सम्भावना नहीं रहती। कर्मचारी भी यह मान लेते हैं कि पदोन्नति न्यायपूर्ण तरीके से हुई है। उनकी सद्भावना बढ़ती है और नैतिक चरित्र ऊँचा उठता है। इस तरीके का दोष यह है कि इसमें श्रेष्ठ व्यक्ति के चयन का निश्चय नहीं रहता। कम समय तक सेवा करने वाला व्यक्ति बहुत वर्षों से सेवा कर रहे व्यक्ति से अधिक योग्य हो सकता है। वरिष्ठ व्यक्ति आवश्यक रूप से अधिक योग्य नहीं होता। प्रो फिफनर ने वरिष्ठता के सिद्धान्त पर कटु प्रहार करते हुए कहा है—"केवल मात्र वरिष्ठता को आधार बनाने पर उच्च पद अक्षम व्यक्तियों से भर जाएँगे। इससे महत्त्वाकांक्षियों को निराशा होगी तथा वह प्रेरणा लुप्त हो जाएगी जो व्यक्तित्व, साहस, आत्मविश्वास और प्रगतिशील दृष्टिकोण को विकसित करती है।"

पदोन्नति का दूसरा आधार योग्यता है। इसके अनुसार पदाधिकारियों को उनके सेवाकाल के आधार पर नहीं वरन् उनकी योग्यताओं तथा कुशलताओं के आधार पर पदोन्नत किया जाता है। योग्यता में शैक्षणिक उपलब्धियों के साथ साथ

व्यक्तित्व, नेतृत्व की क्षमता, चरित्र की गरिमा आदि को शामिल किया जाता है। आजकल एक तीसरा आधार भी पदोन्नति के लिए अपनाया जाने लगा है। यह वरिष्ठता एवं योग्यता का मिला हुआ रूप है। निम्नस्तर की सेवाओं के लिए वरिष्ठता और उच्चस्तरीय सेवाओं के लिए योग्यता को पदोन्नति का आधार बनाया जाता है।

भारत मे पदोन्नति की रीतियां और सिद्धान्त
(Methods & Principles of Promotions in India)

संविधान मे व्यवस्था है कि एक सेवा से दूसरी सेवा म पदोन्नतियां करने और ऐसी पदोन्नतियो के लिए प्रत्याशियो की उपयुक्तता (Suitability) के सम्बन्ध मे अपनाए जाने वाले सिद्धान्तो के बारे मे सरकार संघीय लोकसेवा आयोग से परामर्श करेगी। किन्तु व्यवहार मे, जब तक कि सम्बन्धित भर्ती-नियमो के विपरीत कोई विशेष उपबन्ध न हो, संविधान के अनुच्छेद 320 (3) के अन्तर्गत बनाए गए विनियमो के द्वारा तृतीय और चतुर्थ श्रेणी मे और इनमें से ऊपर की ओर जाने वाली पदोन्नतियो को आयोग के अधिकार-क्षेत्र से विमुक्त कर दिया गया है। विभिन्न विभागो ने पदोन्नति के अपने नियम बना लिए हैं अथवा अपनी अधीनस्थ सेवाओं के लिए आदेश जारी कर दिए हैं। पदोन्नति के सम्बन्ध में इन विभागीय नियमो म काफी अन्तर पाया जाता है। पदोन्नति की जो रीतियाँ अपनाई गई हैं, मोटे तौर पर वे निम्नानुसार हैं—

(अ) योग्यता के आधार पर पदोन्नति,
(ब) योग्यता और ज्येष्ठता (Merit-cum-Seniority) या ज्येष्ठता और योग्यता (Seniority cum-Merit) के आधार पर पदोन्नति,
(स) ज्येष्ठता के आधार पर पदोन्नति (बशर्ते कि ज्येष्ठ अधिकारी को सेवा के लिए अयोग्य घोषित न कर दिया गया हो)।

सिविल सेवा के लिए, पदोन्नतियाँ करने में अपनाए जाने वाले सिद्धान्तो के सम्बन्ध म प्रधानत: वे ही आदेश लागू होते हैं जो स्वराष्ट्र मन्त्रालय मे मई, 1957 मे जारी किए गए थे। ये आदेश केवल 'चयन पदो' (Selection Posts) के ही सम्बन्ध मे हैं। 'चयन पद' उन्हे ही माना जाता है जिन्हे एक मन्त्रालय ऐसा घोषित करता है। अभिप्राय यह हुआ कि मन्त्रालय अपने अधीन पदो को 'चयन पदो' तथा अन्य पदो मे वर्गीकृत कर सकता है। चयन पदों के सम्बन्ध में जो आदेश हैं उनकी मुख्य बातें इस प्रकार हैं—

(i) चयन पदो और चयन पदक्रमो (Selection Posts & Selection Authority) के लिए नियुक्तियाँ योग्यता के आधार पर की जाएँ और इसमे ज्येष्ठता का स्थान केवल निम्न सीमा तक ही रखा जाए।

(ii) विभागीय पदोन्नति समिति अथवा चयन सत्ता (Selecting Authority) सर्वप्रथम चयन-क्षेत्र का निश्चय करे अर्थात् पदोन्नति की प्रतीक्षा

करने वाले ऐसे पात्र अधिकारियों (Eligible Officers) की संख्या निश्चित करे जिन्हें कि 'चयन सूची' (Select List) में सम्मिलित किया जाना सम्भव हो। असाधारण योग्यता वाले अधिकारी को, इस नियम का उल्लंघन करके भी, पात्र अधिकारी की सूची में सम्मिलित किया जा सकता है।

(iii) जो अधिकारी पदोन्नति के लिए अनुपयुक्त हों, उन्हें छोड़ दिया जाए। शेष अधिकारियों की उन योग्यता के आधार पर जो कि उनके अपने अपने सेवा-अभिलेखों (Service Records) द्वारा निश्चित की जाएँ, 'उत्कृष्ट' (Outstanding), 'बहुत श्रेष्ठ' (Very Good) एवं श्रेष्ठ' (Good) के रूप में वर्गीकृत कर लिया जाए और फिर इन वर्गों के आधार पर अधिकारियों की 'चयन सूची' तैयार की जाए। प्रत्येक वर्ग की चयन सूची में जो भी अधिकारी आते हों उनमें परस्पर ज्येष्ठता का ध्यान रखा जाए।

(iv) पदोन्नतियाँ 'चयन सूची' के क्रम के अनुसार की जाएँ, किसी अपवाद की बात अलग है।

(v) निश्चित अवधियों के बाद चयन सूची का पुनरावलोकन किया जाए और उन अधिकारियों के नाम उस सूची से हटा दिए जाएँ जो पहले ही पदोन्नत किए जा चुके हों और उस पद पर अब भी कार्य कर रहे हों। शेष नामों को ही चयन सूची में अन्तिम रूप से विचारार्थ रखा जाए।

यद्यपि पदोन्नतियों के सम्बन्ध में (चयन पदों के अतिरिक्त) विभिन्न विभागों के अपने-अपने नियम हैं तथा मोटे तौर पर इन नियमों में उच्चतर तथा मध्यम स्तर के पदों के लिए तो 'योग्यता' (Merit) पर बल दिया गया है और निम्न स्तर के पदों के लिए 'ज्येष्ठता तथा उपयुक्ता' (Seniority-cum-fitness) पर। कुछ स्थितियों में उच्चतर और मध्यम स्तर के पदों के लिए भी 'ज्येष्ठता और योग्यता' तथा 'योग्यता एवं ज्येष्ठता' के सिद्धान्त को अपनाया जाता है। इन सिद्धान्तों के वास्तविक अनुसरण के बारे में विभिन्न विभागों और सेवाओं में कोई एकरूपता नहीं पाई जाती।

भारत में पदोन्नति की प्रक्रिया
(The Process of Promotion in India)

भारत में पदोन्नति के लिए अपनाई गई प्रक्रिया निम्न प्रकार है—

1. कुछ विभागों में पदोन्नति के लिए अलग से एक बोर्ड अथवा समिति नियुक्त कर दी जाती है। उदाहरण के लिए, केन्द्रीय सचिवालय की पदोन्नति समिति का नामोल्लेख किया जा सकता है। इस समिति में लोकसभा का एक सदस्य भी रहता है।

2. विभागों की पदोन्नति समिति का निर्णय अन्तिम नहीं होता, वह केवल सिफारिश मात्र होता है जो लोकसेवा आयोग को भेज दिया जाता है। यह व्यवस्था भारतीय संविधान के अनुरूप है जिसमें कहा गया है कि एक सेवा से दूसरी में

पदोन्नत करने तथा प्रत्याशियों की उपयुक्तता के सम्बन्ध में अपनाए जाने वाले सिद्धान्तों के विषय में सघीय लोकसेवा आयोग से परामर्श लिया जाना चाहिए ।

3 प्रत्येक राज्य में इसके लिए एक कार्य समिति (Working Committee) रखी जाती है । इसमें सघीय लोकसेवा आयोग के अध्यक्ष या एक सदस्य और उसके वरिष्ठ कर्मचारी रखे जाते हैं । यह समिति राज्य लोकसेवा के ऐसे कर्मचारियों की सूची तैयार करती है जिनको पद-वृद्धि के लिए उपयुक्त समझा जाए । इसके लिए योग्यता एव वरिष्ठता दोनों को ही आधार बनाया जाता है । वरिष्ठ कर्मचारी के अयोग्य होने पर उसके कनिष्ठ कर्मचारी को पदोन्नति के योग्य मान लिया जाता है । समिति राज्य सरकार के माध्यम से अपनी सिफारिशें केन्द्र सरकार को भेजती है । कोई स्थान रिक्त होने पर इस सूची के क्रमानुसार भर्ती की जाती है । इसे केन्द्रीय पूल व्यवस्था (Central Pool System) कहा जाता है ।

पदोन्नति के लिए मुख्य अभिकरण
(The Important Agencies for Promotion)

कर्मचारियों के प्रति न्याय की भावना बरतने के लिए पदोन्नति का उपयुक्त, निष्पक्ष एव कार्यकुशल तरीका अपनाने का प्रयास किया जाता है । अन्याय को रोकने के लिए भी उपयुक्त व्यवस्था की जाती है । पदोन्नति की उपर्युक्त प्रक्रिया को सचालित करने वाले मुख्य अभिकरण निम्नलिखित हैं—

1 **लोकसेवा आयोग (The Public Service Commission)**—भारतीय सविधान की धारा 320(3) के तहत सघीय तथा राज्य लोकसेवा आयोगों को पदोन्नति के सिद्धान्त निर्धारित करने एव कर्मचारियों का चयन करने की दृष्टि से व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गई हैं । व्यवहार में तृतीय एव चतुर्थ श्रेणी की पदोन्नति को आयोग के क्षेत्राधिकार से बाहर रखा गया है । इसके लिए विभाग स्वय के नियमों का पालन करते हैं । इन नियमों में पर्याप्त भिन्नता रहती है । कहीं कहीं वित्त मन्त्रालय की स्वीकृति भी आवश्यक बन जाती है ।

2 **विभागीय पदोन्नति समितियाँ (Departmental Promotion Committees)**—कुछ विभागों में पदोन्नति बोर्ड या समितियाँ स्थापित कर दी जाती हैं । सघीय लोकसेवा आयोग के प्रथम प्रतिवेदन (1951) में विभागीय समिति का उल्लेख किया गया था । इसमें सघीय लोकसेवा आयोग का सदस्य सभापति होता है तथा मन्त्रालय या विभाग के वरिष्ठ अधिकारी होते हैं जो कर्मचारियों के कार्यों से परिचित होते हैं । इस विभागीय समिति की सिफारिशें को सघीय लोकसेवा आयोग के सम्मुख रखा जाता है ।

3 **पूल व्यवस्था (Pool System)**—उच्चतम प्रशासनिक पदों के लिए पदोन्नति का कार्य एक पूल बनाकर किया जाता है । इसके उम्मीदवारों का चयन सघीय लोकसेवा आयोग के परामर्श पर सरकार द्वारा किया जाता है । मन्त्रियों द्वारा शीर्ष के पदों पर नियुक्तियाँ की जा सकती हैं किन्तु इनकी स्वीकृति के लिए

गृह सचिव या वित्त सचिव का परामर्श लिया जाता है तथा राज्य का मुख्य सचिव राज्य में होने वाली पदोन्नतियों को प्रमाणित करता है।

4. भारतीय प्रशासनिक सेवा के लिए पदोन्नति (Promotion for the I A S)—भारत एक संघ राज्य है और इसीलिए यहाँ राज्य के लोकसेवकों को भारतीय प्रशासनिक सेवा में पदोन्नत किया जा सकता है। इसका निर्णय राज्य के लिए निर्मित एक समिति द्वारा किया जाता है। इसके संगठन तथा कार्यों का उल्लेख पहले किया जा चुका है। इस समिति द्वारा पदोन्नति के लिए जो सूची बनाई जाती है उसमें वरिष्ठता एवं योग्यता दोनों का ध्यान रखा जाता है। चयन के लिए कम से कम आठ वर्ष की सेवा अनिवार्य है किन्तु असाधारण योग्यता के आगे वरिष्ठता के सिद्धान्त को भी छोड़ा जा सकता है। उच्चतम पदों के लिए पदोन्नतियाँ केबिनेट की समिति द्वारा की जाती है। इसमें प्रधानमन्त्री, गृहमन्त्री तथा सम्बन्धित विभाग का मन्त्री रहता है। मन्त्रि मण्डल का सचिव इस समिति के सचिव के रूप में कार्य करता है।

पदोन्नति के सम्बन्ध में वेतन आयोग की सिफारिशें
(Recommendations of the Pay Commission (1957-59) Concerning Promotions)

वेतन आयोग द्वारा पदोन्नति के सम्बन्ध में की गई सिफारिशें निम्नलिखित थी—

1 उच्च पदों पर पदोन्नति करते समय योग्यता को मापदण्ड बनाना चाहिए और निम्न स्तर के पदों पर वरिष्ठता एवं उपयुक्तता को अपनाना चाहिए।

2 पदोन्नति के लिए योग्यता परीक्षाएँ केवल उन्हीं पदों के सम्बन्ध में की जानी चाहिए जिनके लिए विशिष्ट ज्ञान की आवश्यकता होती है। इस अपवाद को छोड़ कर अन्य पदों पर पदोन्नति करते समय परीक्षा का तरीका नहीं अपनाया जाना चाहिए।

3 तृतीय श्रेणी तथा राजपत्रित द्वितीय श्रेणी कर्मचारियों की पदोन्नति करते समय सीमित प्रतियोगी परीक्षाओं की व्यवस्था की जानी चाहिए।

4 कर्मचारियों के गोपनीय प्रतिवेदन का रूप उन कर्मचारियों के वर्ग के कार्य की प्रकृति से सम्बन्धित होना चाहिए। इसके अतिरिक्त यह यथासम्भव एकरूप होना चाहिए। फार्म के विभिन्न शीर्षकों में कर्मचारियों की योग्यता का निरूपण किया जाना चाहिए।

5 गोपनीय विवरण का प्रत्येक उच्च स्तर पर सूक्ष्म परीक्षण करके यह पता लगाया जाना चाहिए कि क्या इसे सम्बन्धित अनुदेशों के अनुसार ही तैयार किया गया है। ऐसा न होने पर उसे संशोधन के लिए वापस लौटा दिया जाना चाहिए।

6 चयन सूची को समय-समय पर बदलते रहना चाहिए। पदोन्नत किए गए कर्मचारियों का नाम सूची में हटा दिया जाना चाहिए।

प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशें
(Recommendations of Administrative Reforms Commission)

प्रशासनिक सुधार आयोग का 11वाँ प्रतिवेदन सेवीवर्ग प्रशासन के सम्बन्ध मे (अप्रेल, 1969) था। इसकी मुख्य सिफारिशें निम्नलिखित थीं—

1 **विभागीय पदोन्नति समिति**—आयोग के मतानुसार जहाँ विभागीय पदोन्नति समिति नहीं है वहाँ इसका गठन किया जाना चाहिए। इस समिति का समापति पर्याप्त उच्च स्तर का होना चाहिए। इस समिति का एक सदस्य ऐसे विभाग से लिया जाना चाहिए जिसकी पदोन्नति के मामले विचाराधीन नहीं हैं।

2 **कार्य सम्पन्नता प्रतिवेदन**—वर्ष के अन्त मे जिस अधिकारी को ग्रपिस का प्रतिवेदन दिया जाए उसे प्रतिवेदन के साथ अधिक से अधिक 300 शब्दो का एक सार लेख देना चाहिए जिसमे कर्मचारी के कार्य एव विशेष उपलब्धि का उल्लेख किया जाना चाहिए। यह सारलेख गोपनीय प्रतिवेदन का भाग बना दिया जाए तथा मूल्यांकनकर्ता अधिकारी तक भेजा जाए। यह अधिकारी चाहे तो अपना मत भी उस पर अंकित कर सकता है।

गोपनीय प्रतिवेदन पर केवल तीन श्रेणीकरण किए जाने चाहिए—(क) असाधारण रूप से पदोन्नति के योग्य है, (ख) पदोन्नति योग्य है, तथा (ग) अभी पदोन्नति के योग्य नहीं है। ऐसी कोई श्रेणी बनाने की आवश्यकता नहीं है जिसमे पदोन्नति के अयोग्य लिखा जाए। प्रथम श्रेणी मे केवल 5 से 10% तक कर्मचारियों को ही लेना चाहिए। साथ ही उनके असाधारण कार्य का भी उल्लेख किया जाना चाहिए। वार्षिक प्रतिवेदन को गोपनीय रपट (Confidential Report) न कहकर कार्य सम्पन्नता प्रतिवेदन (Performance Report) कहा जाना चाहिए।

3 **द्वितीय श्रेणी से प्रथम मे पदोन्नति हेतु परीक्षाएँ**—आयोग ने यह मत व्यक्त किया कि द्वितीय श्रेणी के अधिकारियों को प्रथम श्रेणी मे पदोन्नत करने के लिए उपलब्ध आधे स्थानों को तो वर्तमान प्रक्रिया द्वारा ही भरा जाना चाहिए किन्तु शेष आधों के लिए परीक्षा ली जानी चाहिए। द्वितीय श्रेणी के जो अधिकारी एक निर्धारित समय (जैसे पाँच वर्ष) तक सेवा कर चुके है तथा अभी पदोन्नति के लिए अयोग्य नहीं ठहराए गए हैं वे इस परीक्षा मे शामिल हो सकते हैं। परीक्षा के आधार पर प्रत्याशियों की 'ए', 'बी' तथा 'सी' तीन श्रेणियाँ बनाई जानी चाहिए। 'सी' श्रेणी म वे प्रत्याशी रखे जाएँ जो अभी पदोन्नति के योग्य नहीं हैं, 'बी' मे वे जो वांछनीय स्तर के अनुकूल हैं तथा 'ए' मे असाधारण को रखा जाए। इन श्रेणियों के आधार पर एक सूची बनाई जाए। एक ही श्रेणी के प्रत्याशियों को सूचीबद्ध करते समय उनकी वरिष्ठता का ध्यान रखा जाए।

4. **तृतीय श्रेणी वालों को द्वितीय श्रेणी में पदोन्नति**—ऐसे कर्मचारियों की सख्या काफी होती है जो तृतीय श्रेणी से द्वितीय श्रेणी मे पदोन्नत किए जाते

हैं। ऐसे 50% पदों पर पदोन्नति के लिए परीक्षा प्रारम्भ की जानी चाहिए। शेष 50% की पदोन्नति के लिए वर्तमान तरीका ही अपनाया जाना चाहिए।

तृतीय वेतन आयोग की सिफारिशें
(Recommendations of the Third Pay Commission)

तृतीय वेतन आयोग ने विभिन्न श्रेणी के कर्मचारियों की पदोन्नति के लिए कुछ सिफारिशें प्रस्तुत की।[1] इनमें से कुछ मुख्य निम्नलिखित हैं—

(i) चतुर्थ एवं तृतीय श्रेणी के कर्मचारी वर्ग के लिए अध्ययन अवकाश देने की व्यवस्था की जाए ताकि वे अपनी शैक्षणिक एवं तकनीकी योग्यताएँ बढ़ा सकें। इस प्रकार योग्यता बढ़ाने वाले कर्मचारियों को आयु सम्बन्धी छूट देकर उच्च पदों के लिए बाहर वालों के साथ प्रतियोगिता का अवसर दिया जाए।

(ii) उच्च श्रेणियों के लिए पदोन्नतियाँ अनेक कारणों से धीमी गति से होती हैं। आयोग के मतानुसार यदि द्वितीय एवं तृतीय श्रेणी के कर्मचारियों को शीघ्र पदोन्नति का अवसर प्राप्त हो सके तो इसमें अधिक योग्य व्यक्ति आने लगेंगे। इस हेतु वर्तमान पदोन्नति का निर्धारांश (Quota) बढ़ा देना भी उपयोगी रहेगा।

(iii) सेवारत कर्मचारियों को पदोन्नति के मामले में केवल आयु सम्बन्धी छूट दी जाए, उनको शैक्षणिक एवं तकनीकी योग्यताओं में कोई छूट न दी जाए तथा व्यावसायिक परीक्षा का स्तर भी समान रखा जाए। नीचे के स्तर के कर्मचारियों को केवल तभी पदोन्नत किया जाए जबकि वे उच्च पद के दायित्वों एवं कार्यों को पूरा करने में सक्षम सिद्ध हो जाएँ।

भारत में पदोन्नति व्यवस्था के दोष
(Defects of the Promotion System in India)

भारत में लोकसेवकों की पदोन्नति के लिए कोई वैज्ञानिक तरीका नहीं अपनाया गया है। यही कारण है कि स्वयं लोकसेवक तथा सामान्य जनता द्वारा इसकी आलोचना की जाती है। पदोन्नति का आधार कभी तो विभागीय अध्यक्ष की इच्छा को बताया जाता है और कभी कर्मचारी के कार्यों को, फलतः पक्षपात के अवसर बढ़ते हैं और योग्य तथा क्षमतावान व्यक्ति पदोन्नत होने से वंचित रह जाते हैं। हमारी पदोन्नति व्यवस्था के प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं—

1 कर्मचारी की व्यक्तिगत फाइल की जिन बातों को पदोन्नति के समय देखा जाता है वह पूरी जाँच-पड़ताल तथा निष्पक्षता के साथ नहीं बनाई जाती।

2 योग्यता के सिद्धान्त को पदोन्नति के समय उपयुक्त स्थान नहीं मिल पाता। इसके अनुशीलन की अपेक्षा उल्लंघन अधिक किया जाता है।

3 बहुत से कर्मचारियों के पदोन्नति के प्रार्थना-पत्र विभागीय अध्यक्ष द्वारा विचारार्थ प्रेषित नहीं किए जाते। लोकसेवा आयोग उन पर विचार ही नहीं कर पाता और इसलिए ऐसे कर्मचारी पदोन्नति के लाभ से वंचित रह जाते हैं।

1 Report of the Third Central Pay Commission, op cit, p. 82.

4 विभागीय अध्यक्ष को इस सम्बन्ध मे प्राप्त शक्तियो का कई बार दुरुपयोग किया जाता है। इसके लिए या तो कोई स्वतन्त्र अभिकरण बनाया जाए अथवा कर्मचारियो के प्रतिनिधि इस कार्य मे भाग लें।

5 रिक्त स्थानो की सूचना को कर्मचारियो से गुप्त रखा जाता है और इस कारण कभी कभी तो वे अपने प्रति किए गए अन्याय से अपरिचित ही रह जाते हैं।

6 कई पदोन्नतियाँ स्वेच्छाचारी तथा असम्बद्ध रूप मे होती हैं। जिस गोपनीय प्रतिवेदन के आधार पर ये की जाती हैं उसका निष्पक्ष एव विश्वसनीय होना भी सन्देहजनक है। प्राय ये प्रतिवेदन खानापूर्ति एव औपचारिकता निर्वाह के लिए तैयार किए जाते हैं। सम्बन्धित अधिकारी से व्यक्तिगत सम्पर्क अथवा पूछताछ नही की जाती।

7 ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है जिसके द्वारा प्रभावित कर्मचारी अपनी पदोन्नति सम्बन्धी शिकायतो का निदान पा सकें। उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थ अधिकारी के प्रतिवेदन पर विरोध या आपत्ति प्रकट नही करते, उसे यथावत् स्वीकार कर लेते हैं।

8 पदोन्नति के अवसर कम और प्रत्याशी अधिक होते हैं। इस प्रकार प्रतियोगिता बढ जाती है। यह व्यक्तिगत सुरक्षा के लिए एक गम्भीर समस्या है। इससे योग्यता मे अविश्वास पैदा होता है तथा अयोग्य दूसरे तरीको को अपना कर सफलता प्राप्त कर लेते हैं।

उपरोक्त दोषो को ध्यान मे रखकर यदि सुधार किए जाएँ तो पदोन्नति व्यवस्था को पर्याप्त सशक्त बनाया जा सकता है। पदोन्नति के आधार, प्रक्रिया, प्रसार एव व्यवस्था मे वाँछित परिवर्तन होने पर सगठन अधिक सक्रिय, समर्थ और सन्तुष्ट बन सकता है। श्री एन सी राय के मतानुसार, "प्रत्यक्ष रूप से भर्ती किए गए अधिकारी ही एक सगठन की प्रकृति निर्धारित करते हैं, अत पदोन्नत कर्मचारियो की सख्या इतनी हो जो उच्च सेवा मे इस प्रकार समाहित हो जाए कि उसकी प्रकृति एव परम्पराओ को बदल न सके। पदोन्नति के लिए प्रत्यक्ष भर्ती का अनुपात इसी मापदण्ड के आधार पर तय किया जाना चाहिए।" सरकार ने प्रशासनिक सुधार की दिशा मे जो एक के बाद एक कदम उठाए हैं, उनसे कार्मिक प्रशासन और प्रबन्ध के क्षेत्र मे चहुँमुखी सुधार हुआ है।

ग्रेट ब्रिटेन मे पदोन्नति व्यवस्था
(Promotion System in Great Britain)

डॉ हरमन फाइनर ने लिखा है कि ग्रेट ब्रिटेन मे 1919 के सुधारो से पूर्व पदोन्नति की कोई औपचारिक प्रक्रिया नही अपनाई जाती थी, उपलब्धियो का कोई लिखित एव तुलना योग्य अभिलेख नही रहता था तथा उच्च श्रेणियो म पदोन्नति अवसर निम्न श्रेणियो की सख्या की अपेक्षा अधिक थे। 1920 के पुनर्गठन प्रतिवेदन

के बाद यहां पदोन्नति के अवसर बढ़ गए हैं किन्तु फिर भी लिपिक वर्ग अवसरों की कमी की शिकायत करता रहता है।[1] ग्रेट ब्रिटेन में सगठन की Personal Rank Scheme को अपनाया गया है जिसके अन्तर्गत पदसोपान के विभिन्न स्तरों को समान उत्तरदायित्वों किन्तु भिन्न तनख्वाहों वाले कर्त्तव्य सौंप दिए गए हैं। इस व्यवस्था में पदोन्नति की प्रक्रिया निश्चय ही अत्यन्त जटिल और कठिन बन जाती है। इसमें भिन्न वर्गीकृत योजना में कर्मचारियों के कार्यों एवं उत्तरदायित्वों में पदों के अनुसार भिन्नरूपता होती है। इसलिए वहाँ पदोन्नति करना अधिक सुविधाजनक होता है।

पदोन्नति के सिद्धान्त (Principles of Promotion)

ब्रिटिश लोकसेवा के प्रारम्भिक इतिहास में पदोन्नति का मुख्य आधार वरिष्ठता था। इसके फलस्वरूप उच्च पदों पर अक्षम अधिकारी आ गए तथा लोकसेवाओं की सामान्य कार्यकुशलता को हानि पहुँची। ट्रेवेलियन-नार्थकोट प्रतिवेदन (1853-54) में इसकी भारी आलोचना की गई तथा योग्यता व्यवस्था का समर्थन किया गया। बाद में आने वाले आयोगों एवं जाँच समितियों ने इस मत का समर्थन किया। प्लेफेयर आयोग (Playfair Commission 1875) के शब्दों में "एक व्यक्ति की पदोन्नति का आधार यह नहीं होना चाहिए कि उससे ऊपर वाले लोग इसके लिए अनुपयुक्त थे वरन् यह होना चाहिए कि वह व्यक्ति ही उस स्थान विशेष के लिए सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति है। इस दृष्टि से कोई भी व्यक्ति अनुपयुक्त नहीं है तथा वरिष्ठता के बावजूद भी योग्यता के आधार पर उसे पदोन्नत किया जा सकता है।'

असल में वरिष्ठता एवं योग्यता दोनों एक दूसरे की सहायक तथा अनुपूरक हैं। इनमें से किसी की अवहेलना करने वाली व्यवस्था दोषपूर्ण बन जाएगी। प्र. ई. एन ग्लेडन ने लिखा है कि एक प्रभावशाली पदोन्नति व्यवस्था मुख्यत तीन उद्देश्यों की प्राप्ति का प्रयास करती है—(i) उच्च पदों के लिए सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों का चयन, (ii) सम्बन्धित लोगों को यह सन्तोष कि यह उचित और न्यायपूर्ण है तथा (iii) समग्र कर्मचारी संरचना पर रचनात्मक प्रभाव।

पदोन्नति के सम्बन्ध में ब्रिटिश लोकसेवा की प्रक्रिया के सामान्य सिद्धान्त राष्ट्रीय ह्विटले परिषद् की पदोन्नति समिति के दो प्रतिवेदनों (1922 तथा 1938) पर आधारित हैं। मार्च, 1954 में इसमें परिवर्तन भी किया गया है।

पदोन्नतिकर्त्ता यन्त्र (The Promotion Machinery)

नागरिक सेवाओं में पदोन्नति मुख्य रूप से एक विभागीय विषय है, यह सामान्य सेवा का विषय नहीं है। कर्मचारी वर्ग के चयन का दायित्व विभागाध्यक्ष, मन्त्री तथा व्यवहार में स्थायी सचिव पर है। उच्च स्तरों पर पदोन्नति करते समय राजकोष के संयुक्त स्थायी सचिव से परामर्श लिया जाता है जो कि नागरिक सेवा के अध्यक्ष की हैसियत से कार्य करता है। स्थायी सचिव, उपसचिव, प्रमुख वित्त अधिकारी तथा प्रमुख स्थापना अधिकारी आदि के विभागीय पदों को भरते समय

1 *Herman Finer*, The Theory and Practice of Modern Govt, 1963, p 847

विषयगत ही हो सकता है। इसके अतिरिक्त प्रतिवेदनकर्त्ता के इस कार्य में प्रधान मन्त्री की राय ली जाती है। आजकल एक से अधिक विभागों में नियुक्ति होने वाले विशेषज्ञ व्यावसायिक एवं तकनीकी वर्ग के कर्मचारियों की पदोन्नतियाँ अधिकतर अन्तर्विभागीय रूप से होने लगी हैं।

ग्रेट ब्रिटेन के वर्तमान पदोन्नति यन्त्र के दो अंग हैं--(i) प्रत्येक विभाग में समुचित रूप से संगठित पदोन्नति मण्डल तथा (ii) पदोन्नति के क्षेत्र में आने वाले अधिकारियों के लिए मानक प्रतिवेदनों की व्यवस्था। ब्रिटिश लोकसेवाओं में पदोन्नति व्यवस्था को प्रो. मैकेन्जी तथा ग्रोव ने संक्षेप में निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया है[1]-

(1) स्टॉफ प्रतिवेदन (Staff Reporting)—केवल वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति न करके जब योग्यता को महत्त्व देने की चेष्टा की जाती है तो व्यक्तिगत कर्मचारियों के कार्य सम्बन्धी प्रतिवेदनों को मानक बनाया जाता है। ऐसा होने पर निष्पक्ष तुलना तथा निष्पक्ष चयन हो पाता है। ये मानक प्रतिवेदन सर्वप्रथम 1922 में प्रारम्भ हुए। इस प्रकार के प्रतिवेदन सामयिक रूप में, प्रायः प्रतिवर्ष एक अधिकारी द्वारा अपने अधीनस्थ सभी कार्यकर्त्ताओं के बारे में उच्च अधिकारी को प्रस्तुत किए जाते हैं। इनमें कुछ सीमित शीर्षक होते हैं, जैसे—ज्ञान, व्यक्तित्व, चारित्रिक शक्ति, निर्णय लेने की शक्ति इत्यादि। प्रत्येक शीर्षक के अधीन अनेक ग्रेड्स होते हैं, जैसे—उत्कृष्ट, अतिश्रेष्ठ, सन्तोषजनक उदासीन, निकृष्ट आदि। यदि किसी व्यक्ति का मूल्यांकन निम्नतर ग्रेड में किया जा रहा है तो प्रायः उसे यह बता दिया जाता है ताकि वह या तो विरोध प्रकट कर सके अथवा स्वयं को सुधार सके। इन प्रतिवेदनों पर प्रस्तुतकर्त्ता से एक ग्रेड वरिष्ठ अधिकारी के प्रतिहस्ताक्षर कराए जाते हैं और उसके बाद यह सम्बन्धित स्थापना मण्डल (Establishment Division) को भेज दिए जाते हैं। यहाँ इसे कर्मचारी की व्यक्तिगत पत्रावली (Personal File) में जोड़ दिया जाता है ताकि आवश्यकता के समय पदोन्नतिकर्त्ता अधिकारी इसे देख सकें।

वरिष्ठ कर्मचारी वर्ग इस प्रक्रिया से मुक्त है। इस मुक्ति के लिए उपयुक्त वेतन स्तर का निश्चय प्रत्येक विभाग द्वारा कर्मचारी वर्ग से विचार-विमर्श करके किया जाता है। ये पदोन्नति प्रतिवेदन प्रायः उन ग्रेड्स के लिए अधिक महत्त्व के होते हैं जिनमें कर्मचारियों की बड़ी संख्या होती है। छोटे पदों पर पदोन्नतियाँ बहुत कुछ वरिष्ठता के आधार पर कर दी जाती हैं तथा उच्चतर पदों के अधिकारियों की संख्या कम होती है तथा वे निर्णायकों से व्यक्तिगत रूप से परिचित होते हैं इसलिए उनके सम्बन्ध में भी पदोन्नति प्रतिवेदन का विशेष महत्त्व नहीं होता।

प्रतिवेदन का रूप विभिन्न विभागों तथा श्रेणियों में अलग-अलग होता है किन्तु एक विभाग की एक ही श्रेणी के सभी अधिकारियों के लिए यह एक जैसा होता है। यह तरीका पदोन्नति प्रक्रिया को मानक बनाने की समस्या को नहीं

1 Mackenzi and Grove : op cit., pp 121-24

सुनभाता क्योंकि आखिर प्रतिवेदनों की तुलना करके लिया जाने वाला निर्णय भी औपचारिकतावश ही करते हैं तथा कर्मचारियों के व्यक्तिगत गुणों पर विशेष ध्यान ही फार्म के रिक्त स्थानों की पूर्ति मात्र करते हैं।

(2) विदेश कार्यालय के अतिरिक्त सभी सर्वोच्च प्रशासनिक पदों पर रिक्त स्थानों की पूर्ति सम्बन्धित मन्त्री द्वारा प्रधान मन्त्री की सहमति से की जाती है। प्रधान मन्त्री गृह नागरिक सेवा अध्यक्ष के परामर्श पर काय करता है। इस पदोन्नति के लिए बहुत कुछ उत्तरदायित्व गृह नागरिक सेवा अध्यक्ष (Head of the Home Civil Service) का ही रहता है। नियुक्तियों पर अभिसमयों की सीमा भी लगी रहती है। उस समय उच्च पदों पर सेवा के बाहर से किसी की नियुक्ति करना बहुत ही कठिन है। नियुक्ति के समय वरिष्ठता को प्रभार दिया जाता है। अन्य बातें समान होने पर वरिष्ठ कर्मचारी को पदोन्नत किया जाता है। मैकेन्जी तथा ग्रोव के कथनानुसार, "गृह नागरिक सेवा के अध्यक्ष को लोकसेवकों के भविष्य पर महान् शक्तियाँ प्राप्त हैं किन्तु उसे सदैव लोकसेवा की आलोचनापूर्ण निगाहों के नीचे काम करना होता है।"

(3) सहायक सचिव तथा उससे ऊपर की सभी श्रेणियों में पदोन्नतियाँ स्थाई सचिव के परामर्श पर विभागीय मन्त्री द्वारा की जाती हैं। यहाँ स्थाई सचिव अनौपचारिक रूप में इसलिए कार्य करता है ताकि उसके विभाग का प्रबन्ध सुचारु रूप से चलता रहे। वह अपने प्रमुख स्थापना अधिकारी से सम्पर्क स्थापित करता है तथा विशेषज्ञों की नियुक्ति के समय अपने विभाग की उसी विशेष श्रेणी के वरिष्ठ सदस्य से परामर्श लेता है। उदाहरण के लिए शिक्षा निरीक्षालय में वरिष्ठ पदों पर पदोन्नति के समय शिक्षा मन्त्रालय का स्थायी सचिव प्रमुख शिक्षा निरीक्षक के कहे अनुसार कार्य करता है। कुछ प्रभार सापेक्षिक वरिष्ठता को भी दिया जाता है किन्तु अन्तिम निर्णय नियुक्तिकर्ता अधिकारी के स्वविवेक द्वारा ही लिया जाता है।

(4) पदोन्नति मण्डल (Promotion Boards)—निम्नस्तरीय पदों पर पदोन्नति का दायित्व किसी व्यक्ति विशेष पर नहीं रहता तथा भारी संख्या में पदोन्नति के मामलों पर विभागीय पदोन्नति मण्डल द्वारा विचार किया जाता है। इस मण्डल (Board) की रचना इस बात पर निर्भर करती है कि की जाने वाली पदोन्नति की वरिष्ठता कितनी है। प्रायः स्थापना अधिकारी (Establishment Officer) अथवा उसकी ओर से अन्य कोई व्यक्ति इसका सभापतित्व करता है। इसकी सहायता के लिए स्टाफ के दो अन्य वरिष्ठ सदस्य होते हैं। इनमें से एक उसी विचाराधीन ग्रेड का व्यक्ति होता है। कर्मचारी वर्ग के पक्ष का मण्डल में प्रतिनिधित्व नहीं होता क्योंकि कर्मचारी वर्ग के प्रतिनिधि पदोन्नति के व्यक्तिगत दावों के बारे में वाद-विवाद नहीं करना चाहते। इतने पर भी कर्मचारी वर्ग के प्रतिनिधि बोर्ड के सम्मुख उपस्थित अवश्य हो सकते हैं ताकि यह पता लग सके कि सहमत सामान्य नियमों का पालन किया जा रहा है अथवा नहीं। इस विषय को ये काफी महत्त्वपूर्ण मानते हैं।

पदोन्नति मण्डल के द्वारा प्रत्येक मामले पर विचार करते समय सभी उपलब्ध प्रमाण तथा गवाहियाँ ध्यान में रखी जाती हैं। यह सम्बन्धित प्रत्याशियों का साक्षात्कार भी ले सकता है। साक्षात्कार करने के लिए बनाई गई पेनल में वरिष्ठ अधिकारी रखे जाते हैं।

पदोन्नति मण्डल द्वारा प्रत्येक मामले पर विचार करते समय सभी उपलब्ध प्रमाणों एवं गवाहियों को ध्यान में रखा जाता है। पदोन्नत करने से पहले प्रत्याशी की योग्यता मापने के लिए उसका साक्षात्कार किया जा सकता है। ऐसे साक्षात्कार के समय जो पेनल बनाई जाती है उसमें वरिष्ठ अधिकारी रखे जाते हैं। पदोन्नति मण्डल को विभिन्न प्रत्याशियों के सम्बन्ध में प्राप्त होने वाली सूचनाओं के स्रोत अनेक हैं जैसे—कर्मचारी की सेवा का व्यक्तिगत अभिलेख, उच्च अधिकारियों की विशेष सिफारिशें, विशेष प्रतिवेदन, व्यक्तिगत परिचय, कर्मचारियों के वार्षिक प्रतिवेदन आदि। इन सभी स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं एवं तथ्यों के आधार पर ही पदोन्नति मण्डल पदोन्नति की पात्रता रखने वाले प्रत्याशियों की योग्यताओं का तुलनात्मक विवेचन करता है।

पदोन्नति की प्रक्रिया (The Process of Promotion)

विभिन्न विभागों तथा श्रेणियों के कर्मचारियों की पदोन्नति की प्रक्रियाओं में थोड़े बहुत अन्तर रहते हैं किन्तु सामान्य रूप प्रायः एक जैसा ही होता है। पदोन्नति के लिए सबसे पहले रिक्त स्थानों का होना आवश्यक है। रिक्त स्थान होने पर पात्रता रखने वाले प्रत्याशियों को वरिष्ठता के आधार पर प्रतियोगिता में शामिल किया जाता है। पदोन्नति का अन्तिम निर्णय या तो केवल प्रतिवेदनों और सेवा अभिलेखों के आधार पर किया जा सकता है अथवा इस हेतु साक्षात्कार का तरीका भी अपनाया जा सकता है। कुछ विभागों में यह नियम है कि यदि पात्रता रखने वाले प्रत्याशियों को पदोन्नति मण्डल द्वारा तीन बार अस्वीकार कर दिया जाए तो उसके बाद वह पदोन्नति के अयोग्य बन जाता है। यदि किसी अधिकारी की पदोन्नति नहीं की जाती अथवा की गई पदोन्नति के सम्बन्ध में कोई शिकायत है तो ऐसा प्रभावित व्यक्ति अपील करने का अधिकारी है। यदि कर्मचारी यह अनुभव करे कि पदोन्नति के किसी सिद्धान्त का उल्लंघन हुआ है तो वह ह्विटले कौंसिल के स्टॉफ पक्ष से इस मामले को सुलझवा सकता है।

पदोन्नति सम्बन्धी अपीलों का रूप विभिन्न विभागों में एक जैसा नहीं होता है। छोटे विभागों में स्वयं विभागाध्यक्ष द्वारा ये अपीलें सुनी जाती हैं। बड़े विभागों में अपील सुनवाई के लिए अलग से व्यवस्था की जाती है। प्रभावित पक्ष की शिकायतें लिखित रूप में कागज पर ले ली जाती हैं। अपील की यह प्रक्रिया विशेष सन्तोष-जनक नहीं मानी जाती तथा जब तक फैसला कर्मचारी के पक्ष में नहीं होता, उसे यह विश्वास नहीं हो पाता कि उसकी शिकायतों पर पुनर्विचार किया भी गया है। अपील का अन्तिम निर्णय विभागाध्यक्ष द्वारा दिया जाता है जो कि पदोन्नति का निर्णय लेने वाला अधिकारी है। स्नेडन के मतानुसार यह कोई सच्ची अपील

व्यवस्था नहीं है। कहावत के अनुसार यह सीजर के विरुद्ध सीजर से अपील करने जैसी स्थिति है। ब्रिटेन में फ्रांस की भाँति प्रशासकीय न्यायालय की व्यवस्था नहीं की गई है। यदि कोई लोकसेवक अपनी पदोन्नति सम्बन्धी शिकायत अपने सांसद को लिख कर भेजता है तो वह एक प्रकार से सेवामुक्त होने का जोखिम उठाता है। इस दृष्टि से ब्रिटिश लोकसेवक द्वितीय श्रेणी का नागरिक है।

पदोन्नति के अवसर एक विभाग में होने वाले रिक्त स्थानों से प्रभावित होते हैं। पदोन्नति को अधिक वस्तुनिष्ठ बनाने के लिए प्रतियोगी परीक्षाएँ प्रारम्भ की गई हैं। जब एक पदाधिकारी को निष्पादक वर्ग से प्रशासनिक वर्ग में पदोन्नत किया जाता है तो Method II से सीमित प्रतियोगी परीक्षाएँ उन प्रत्याशियों की ली जाती हैं जो 20 से 28 वर्ष की आयु के हों तथा कम से कम दो वर्ष तक स्थायी पेंशनयुक्त पद पर कार्य कर चुके हों। 1966 तक की स्थिति के अनुसार प्रशासनिक वर्ग के 20% रिक्त स्थानों की पूर्ति इसी प्रकार की जाती थी। यह अनुपात समय-समय पर बदलता रहता है। ब्रिटिश लोकसेवाओं में पदोन्नति के लिए ली जाने वाली प्रतियोगी परीक्षाओं का एक अन्य उदाहरण चुंगी तथा आबकारी विभाग में है। यहाँ सर्वेक्षक का महत्त्वपूर्ण पद तुरन्त नीचे के ग्रेड के ऐसे अधिकारियों की परीक्षा लेकर भरा जाता है जो कम से कम 15 वर्ष की अपनी सेवा पूरी कर चुके हों। परीक्षा पद्धति को इसलिए अपनाया गया क्योंकि प्रत्याशी बड़ी संख्या में पूरे देश में फैले हुए हैं तथा भरे जाने वाले उच्च पदों की संख्या सदैव कम रहती है।

ब्रिटिश पदोन्नति व्यवस्था की एक उल्लेखनीय बात यह है कि इसका आधार स्थल विभाग है, यह कोई सेवा व्यवस्था नहीं है। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि यहाँ सेवा एक नहीं है, अनेक हैं। पदोन्नति के अवसर न केवल ग्रेड्स के बीच ही भिन्न भिन्न होते हैं वरन् विभिन्न विभागों में एक ही ग्रेड में भिन्न-भिन्न होते हैं।

संयुक्तराज्य में पदोन्नति व्यवस्था
(Promotion System in U S A)

संयुक्तराज्य अमेरिका के सार्वजनिक प्रशासन में पदोन्नति के महत्त्व एवं प्रभाव को समझते हुए सुनियोजित एवं वैज्ञानिक प्रक्रियाएँ अपनाने की चेष्टा की गई है। प्रशासनिक कर्मचारी को कार्य की प्रेरणा के रूप में प्रगति के कितने अवसर दिए जाएँ, किन पदों पर योग्य तथा अनुभवी कर्मचारियों को पदोन्नत करके भर्तियाँ की जाएँ, कर्मचारी की पूरी क्षमता का विकास करके उनकी योग्यताओं का कैसे समुचित प्रयोग किया जाए, अन्दर से तथा बाहर से की जाने वाली भर्ती के बीच कैसे उपयुक्त सन्तुलन रखा जाए, आदि महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर यहाँ पर्याप्त विचार किया गया है। इतने पर भी पदोन्नति सम्बन्धी अनेक प्रश्न अभी तक मतभिन्नता का विषय बने हुए हैं। पदोन्नति कार्यक्रम की व्यापकता के सम्बन्ध में भी सभी एकमत नहीं हैं। कुछ सेवीवर्ग तथा कर्मचारी समूहों की राय है कि सभी कर्मचारियों को समय समय पर पदोन्नति का अवसर मिलना रहना चाहिए। दूसरे लोग इनसे कई कदम आगे बढ़ कर कहते हैं कि सीधी भर्ती केवल कुछ निम्नतर पदों को छोड़ कर सभी के लिए

पूरी तरह समाप्त कर दी जानी चाहिए। कुछ की मान्यता है कि 'पदोन्नति' योग्य व्यक्तियों को पद पर लेने की सामान्य स्टॉक नीति का एक भाग मात्र है तथा बाहर से की जाने वाली भर्ती भी इसी का एक भाग है।

अमरिका म पदोन्नतियो के आधार के रूप में वरिष्ठता को अधिक महत्व दिया जाता है। एक समय ऑफिस बॉय के रूप में काम करने वाला व्यक्ति ऑफिस का प्रमुख बन जाता है। कभी-कभी ऐसे लोग असाधारण रूप से प्रतिभाशाली सिद्ध होते हैं किन्तु प्राय ये उच्च पदों के लिए अनुपयुक्त होते है। 'वर्षों के अनुभव' पर जोर देना अवैज्ञानिक है। प्रो स्टॉल के मतानुसार "20 वर्ष का अनुभव केवल एक वर्ष का अनुभव है जिसे बीस बार दोहराया गया है। निष्पादक (Executive) पदो पर कार्य करने वाले अनेक लिपिक ऐसे हैं जो अभी भी लिपिकीय तरीकों से ही काम करते हैं।[1] पदोन्नति व्यवस्था के वास्तविक व्यावहारिक स्वरूप की इन आलोचनाओं का अर्थ यह कदापि नहीं है कि पदोन्नति की व्यवस्था को छोड़ दिया जाए। इसका अर्थ केवल यही है कि इसके कार्यरूप में जहाँ-तहाँ आवश्यक परिवर्तन किए जाएँ ताकि इसे दोषमुक्त किया जा सके।

पदोन्नति के अवसरो की व्यापकता
(Scope of the Promotion Opportunities)

पदोन्नति के सम्बन्ध मे सबसे पहला प्रश्न यह उठता है कि कितने उच्च पदो को प्रत्यक्ष भर्ती द्वारा तथा कितनो को पदोन्नति द्वारा भरा जाना उचित होगा। इस प्रश्न का उत्तर अनेक बातो से प्रभावित होता है, जैसे—सगठन की कार्यकुशलता, कर्मचारियो का मोरेल, भर्ती और चयन की स्थापित प्रक्रिया की प्रकृति पदोन्नति का क्षेत्र, प्रशिक्षण कार्यक्रम आदि। पदोन्नति द्वारा भर्ती के कारण लोकसेवाओ की ओर अधिक योग्य व्यक्ति आकर्षित होते हैं। यदि किसी सगठन मे अधिक योग्य व्यक्तियों को आकर्षित करने की आवश्यकता एव सम्भावना हो तो पदोन्नति के अवसर अधिक रखे जाते हैं। इसके विपरीत यदि ऐसी कोई सम्भावना नहीं हो तो केवल पुराने जग लगे लोगों को उच्च पदों पर बैठाने का औचित्य नहीं है।

अमेरिका मे अधिकांश उच्च पदों पर राजनीतिक नियुक्तियाँ की जाती हैं तथा ग्रेट ब्रिटेन की भाँति यहाँ योग्यता सिद्धान्त का इतना प्रभाव नहीं है। ग्रेट ब्रिटेन मे राजनीतिक नियुक्तियाँ केवल स्थायी अवर सचिवो से ऊपर के पदो पर होती हैं, किन्तु अमेरिका म सहायक सचिव, व्यक्तिगत सहायक, अवर सचिव, उप-प्रशासक, आदि अपने राजनीतिक सम्पर्कों के आधार पर नियुक्त किए जाते हैं। ऐसी नियुक्तियों द्वारा अनेक बार योग्य एव प्रतिभाशाली व्यक्ति भी आ जाते हैं। द्वितीय हूवर आयोग के टास्कफोर्स ने 1955 मे इस नीति को जारी रखते हुए विभागाध्यक्षो को उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति मे व्यापक स्वतन्त्रता देने की बात कही थी।

1 "Twenty years of experience is merely one year of experience 20 times Many are the clerks in executive jobs who are still operating them as clerical posts" —*O G Stahl* op cit, pp 109-10

आजकल यह प्रवृत्ति बढ़ रही है, मुख्य रूप से बड़े अधिकार क्षेत्रों के विषय में। सघीय सेवा में प्रशिक्षण ग्रेड की मान्यता, इन्टर्न कार्यक्रम तथा पदोन्नति पक्तियों का स्पष्टीकरण आदि बातें इस बदलती हुई प्रवृत्ति की परिचायक हैं। किसी कर्मचारी के पदोन्नति के अवसर सगठन में पदोन्नति की सम्भावनाओं की कुल सख्या पर ही निर्भर नहीं करते वरन् इस बात पर भी निर्भर करते हैं कि अपनाए जाने वाले सेवीवर्ग व्यवहार एव तरीकों की प्रकृति क्या है।

मोरेल निर्माता के रूप में पदोन्नति का व्यापक महत्त्व होते हुए भी हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि सेवा के बाहर से योग्य प्रत्याशियों की तलाश का भी अपना महत्त्व है, अन्यथा सगठन के कर्मचारी एकाधिकार की भावना में जकड़ जाएँगे तथा सगठन को विभिन्न स्रोतों से अनुभवी व्यक्ति प्राप्त नहीं हो सकेंगे। स्टॉल का कहना है कि "अधिकतर सगठनों के बहुत से पद पूर्णत अन्दर से भर्ती के लिए अलग रखे जाते हैं किन्तु अन्य के लिए बाहर से भर्ती करने हेतु पात्रता के रजिस्टरों की खोज भी चलती रहे।"[1]

चयन एवं पदोन्नति का क्षेत्र
(Area of Selection and Promotion)

पदोन्नति के लिए जहाँ से प्रत्याशियों को ढूँढा जा सकता है उस क्षेत्र का प्रसार अनेक बातों पर आधारित है, जैसे उस सेवा या व्यवसाय का आकार, पदोन्नति के लिए आवश्यक योग्यताएँ, किसी श्रेणी अथवा ग्रेड की आवश्यकता, विशेष विभाग अथवा संस्थान की आवश्यकता, पदोन्नति के लिए अपनाए जाने वाले तरीके तथा स्थानान्तरण नीति आदि। पदोन्नति का कार्य बुद्धिपूर्वक सचालित करने के लिए यह आवश्यक है कि कार्यों का सही वर्गीकरण किया जाए तथा सगठन के विभिन्न पदों को तार्किक सम्बन्ध के रूप में गठित किया जाए। वर्गीकरण योजना के कारण एक व्यवस्था स्थापित होती है तथा एक ही निगाह में सभी पदों एव उनके आपसी सम्बन्धों को देखना सरल हो जाता है।

वर्गीकरण योजना की प्रकृति उस क्षेत्र पर सीधा प्रभाव डालती है जहाँ से पदोन्नति के लिए पात्रों को प्राप्त किया जा सकता है। पदोन्नति में सम्बन्ध में एक अन्य प्रतिबन्ध यह है कि जिस पद पर पदोन्नति की जाती है केवल उससे तुरन्त नीचे के ग्रेड वाले कर्मचारी ही उसके प्रत्याशी बन सकते हैं। इस प्रतिबन्ध के विरोध में ये बातें कही जाती हैं—(i) प्रत्याशियों की सख्या सीमित करने पर प्रतियोगिता कम हो जाती है तथा इसके फलस्वरूप चयन श्रेष्ठ नहीं हो पाता। (ii) इस नीति के कारण प्रशासन की विभिन्न शाखाओं में पदोन्नति के अवसरों की गम्भीर असमानता पैदा हो जाती है। (iii) इस नीति के कारण जिन कर्मचारियों को पदोन्नति का अवसर प्राप्त नहीं हो पाता उनमें निराशा की भावना भर जाती है।

सयुक्तराज्य अमेरिका में पदोन्नति के क्षेत्र की दृष्टि से परम्परागत व्यवहार यह है कि इसे कम से कम प्रतिबन्धित करने की चेष्टा की जाती है। प्रत्येक कर्मचारी

1 O G Stahl · op cit., p 112

अपनी इकाई में होने वाले रिक्त स्थान पर पदोन्नत होना अपना निहित अधिकार मानता है तथा विभिन्न इकाइयों का कार्य इतनी भिन्न प्रकृति का होता है कि एक ही वर्ग के कर्मचारी अन्य विभागों के कार्यों से अपरिचित रह जाते हैं।

पदोन्नतिकर्त्ता अभिकरण
(The Promotion Making Agency)

पदोन्नति नीति पर विचार करते समय मुख्य प्रश्न यह उपस्थित होता है कि इसका नियन्त्रण केन्द्रीय सेवीवर्ग अभिकरण के हाथ में रहना चाहिए अथवा भिन्न-भिन्न नियुक्तिकर्त्ता अधिकारियों के हाथ में। लेविस मेयर्स (Lewis Mayers) ने ठीक ही लिखा है कि 'पदोन्नति के लिए चयन का ऐसा औपचारिक तरीका ढूंढना, जिसमें सर्वश्रेष्ठ योग्यता प्राप्त को तुरन्त चुना जा सके, सेवीवर्ग प्रशासन के समस्त क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्याओं में से एक है।"[1] इस सम्बन्ध में अमरिकी सन्दर्भ में अलग-अलग मत प्रकट किए जाते रहे हैं। एक ओर विचारकों का विश्वास है कि प्रशासनिक अधिकारियों को पदोन्नति के बारे में पूर्ण स्वविवेक की शक्तियाँ रहनी चाहिए दूसरी ओर अन्य विचारक प्रत्येक पदोन्नति पर केन्द्रीय अभिकरण का नियन्त्रण चाहते हैं। इन दोनों अतियों के मध्य भी कई प्रकार के सुझाव दिए जाते हैं।

पदोन्नति के आधार
(The Bases of Promotion)

किसी प्रत्याशी की पदोन्नति के लिए उपयुक्तता को जाँचने का कोई भी एक तरीका स्वयं में अपर्याप्त है। इसके लिए अनेक तत्वों को आधार बनाया जाता है, जैसे—शिक्षा एवं अनुभव, सेवा की लम्बाई, कार्य सम्पन्नता, लिखित एवं मौखिक परीक्षाओं के परिणाम तथा नेतृत्व, व्यक्तित्व एवं सहयोगिता आदि व्यक्तिगत गुण। संयुक्तराज्य अमेरिका में प्रभावी पदोन्नति के आधारों का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों में किया जा सकता है—

1. तुलनात्मक कार्य-सम्पन्नता (Comparative Performance)-पदोन्नति के लिए उपयुक्त पात्रों में से उनकी तुलनात्मक कार्य-सम्पन्नता के आधार पर चयन का निर्णय लिया जाता है। इसके लिए दो बातें जरूरी हैं—(i) सभी कर्मचारियों के कार्यों एवं योग्यताओं का अद्यतन अभिलेख रखा जाए, तथा (ii) विचाराधीन रिक्त पद के लिए सुपात्रों को पाने का कार्यकुशल तरीका ढूंढा जाए।

कर्मचारी की व्यक्तिगत उपलब्धियों के अभिलेखों में परीक्षा सम्बन्धी अभिलेख, कार्य-सम्पन्नता-प्रतिवेदन, विशेष योग्यताएँ, शिक्षा एवं प्रशिक्षण, अनुभव, हॉबीज, रुचियाँ आदि बातें शामिल की जाती हैं। इनसे सम्बन्धित आवश्यक प्रमाण पत्रों को भी तुरन्त अभिलेख में शामिल किया जाता है क्योंकि ये निर्णायक तत्त्व होते हैं।

1 *Lewis Mayers* The Federal Service - A Study of the System of Personnel Administration of the U S Govt., 1922, p 317

कर्मचारी की उपलब्धियों का अद्यतन अभिलेख रखने का दायित्व एकमात्र कर्मचारी के कन्धों पर ही नहीं रखा जाता वरन् सेवीवर्ग प्रशासन भी इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

योग्य प्रत्याशियों का सूचकांक तैयार किया जाता है। सभी अभिलेखों को अद्यतन रखने की उपयोगिता तब तक कुछ भी नहीं है जब तक कि उनके आधार पर पात्रों को ढूंढने का सरल तरीका नहीं खोज लिया जाए। बड़े संगठनों में इसके लिए पंच कार्ड अथवा अन्य इलेक्ट्रोनिक तरीकों की सहायता ली जाती है। छोटे संगठनों में अन्य तरीके अपनाए जा सकते हैं।

2 वरिष्ठता (Seniority)—अमेरिका में कर्मचारियों की पदोन्नति के लिए वरिष्ठता अथवा सेवाकाल की लम्बाई को पर्याप्त महत्त्व दिया जाता है। अनेक उद्योगों में तथा सरकारी अभिकरणों में इसका व्यापक प्रभाव है। अधिकांश मामलों में वरिष्ठता को दूसरे आधारों का सहयोगी बनाया जाता है। वरिष्ठता के समर्थकों की मान्यता है कि लम्बे समय तक एक पद पर कार्य करना इस बात का प्रमाण है कि कर्मचारी इससे उच्च पद पर भी कार्य कर सकेगा। यह एक असत्य मान्यता है क्योंकि उच्च पद के कार्य एवं दायित्व भिन्न होते हैं। सेवा की लम्बाई को महत्त्व दिया जाना चाहिए अथवा नहीं, यह वर्तमान सेवा तथा भावी सेवा के कार्यों की प्रकृति एवं पारस्परिक अन्तरों पर निर्भर करता है। सामान्य रूप से वरिष्ठता निर्णय लेने में एक सहायक तत्त्व होना चाहिए।

3. परीक्षा (Examination)—संयुक्तराज्य अमरिका में जिन पदों पर पदोन्नति के लिए योग्यता व्यवस्था को अपनाया जाता है वहाँ प्रतियोगी अथवा गैर-प्रतियोगी प्रकार की पदोन्नति परीक्षाएँ आयोजित की जाती हैं। गैर प्रतियोगी परीक्षाओं में नियुक्तिकर्त्ता अधिकारी की चयन की स्वतन्त्रता पर उतना गम्भीर प्रतिबन्ध नहीं लगता।

पदोन्नति परीक्षा द्वारा कर्मचारी के उच्च पद के लिए वांछनीय ज्ञान तथा गुणों की जाँच की जाती है तथा उसके मानसिक गुणों और क्षमताओं का पता लगाया जाता है। पदोन्नति के लिए चयन हेतु प्रतियोगी परीक्षाओं का भारी उपयोग किया जाता है। ये परीक्षाएँ औपचारिक लिखित प्रतियोगिता पर विशेष जोर नहीं देतीं वरन् प्रत्याशी के संगठन में प्राप्त अनुभवों, प्राप्तियों, रुचियों एवं लक्ष्यों को महत्त्व दिया जाता है। औपचारिक लिखित परीक्षाएँ प्रायः उन पदों के लिए उपयोगी रहती हैं जहाँ बड़ी संख्या में नियुक्तियाँ की जानी हों तथा प्रत्याशी भी भारी संख्या में हों।

4. कार्य पर परीक्षा (Trial on the Job)—अमेरिका में पदोन्नति के लिए एक अन्य तरीका कार्य पर परीक्षा है। जिस पद पर पदोन्नति की जानी है, सम्बन्धित प्रत्याशी को उस पद पर अस्थायी रूप से कार्य करने का अवसर दिया जाता है तथा उसके व्यवहार, कार्य-सम्पन्नता, रुचि, दृष्टिकोण आदि पर निगाह रखी जाती है। उल्लेखनीय है कि इस प्रकार की अस्थायी नियुक्तियाँ उच्च अधिकारी

के छुट्टी पर जाने के समय अथवा अन्य अवसरों पर इस प्रकार की जाती हैं ताकि कर्मचारी यह न जान पाए कि पदोन्नति के लिए उसकी जाँच की जा रही है। पता लगने पर यदि उसे पदोन्नत नहीं किया गया तो उसका मोरेल गिर जाएगा। इस विधि की सीमा यह है कि इसे केवल कुछ उच्च पदों के बारे में ही अपनाया जाता है तथा वहीं अपनाया जाता है जहाँ प्रत्याशियों की संख्या कम होती है।

आदर्श पदोन्नति व्यवस्था
(Ideal Promotion System)

आदर्श पदोन्नति व्यवस्था के दो पहलू हैं—(i) यह प्रबन्ध को विश्वास दिलाती है कि संगठन को विभिन्न उच्च पदों पर श्रेष्ठ प्रतिभाशाली व्यक्तियों की सेवा का लाभ मिलेगा। (ii) यह कर्मचारियों को विश्वास दिलाती है कि पदोन्नतियाँ योग्यता के आधार पर की गई हैं तथा पदोन्नति के अवसर व्यापक हैं। इन दोनों बातों को ध्यान में रखते हुए स्टॉल महोदय ने मुख्यतः निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए हैं जिन्हें अपनाकर आदर्श पदोन्नति व्यवस्था को लागू किया जा सकता है—

(i) यदि ऊँची योग्यता वाले प्रत्याशी संगठन में मौजूद हों तो ऊँचे पदों को उन्हीं की नियुक्ति द्वारा भरा जाना चाहिए किन्तु बाहर से प्रवेश को पूरी तरह अवरुद्ध नहीं करना चाहिए।

(ii) उच्च पदों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा कार्य पर प्रशिक्षण का विकास किया जाना चाहिए।

(iii) सम्पूर्ण सेवा के हित के लिए ही पदोन्नति का क्षेत्र प्रतिबन्धित किया जाना चाहिए। जहाँ सम्भव हो सके वहाँ अन्तर्विभागीय एवं अन्तर्मण्डलीय पदोन्नतियाँ होनी चाहिए।

(iv) नई भर्ती की भाँति पदोन्नति के समय भी अवसर की समानता का ध्यान रखा जाना चाहिए। सभी योग्यता प्राप्त कर्मचारियों के बारे में पदोन्नति के लिए विचार किया जाना चाहिए।

(v) पदोन्नति के लिए कोई भी एक मापदण्ड पर्याप्त नहीं है तथा एक उपयुक्त पदोन्नति व्यवस्था में प्रणाली की दृष्टि से लोचशीलता रहनी चाहिए।

(vi) पर्यवेक्षक का योगदान महत्त्वपूर्ण है। सेवीवर्ग अधिकारियों द्वारा अभिलेख प्रणाली तथा अन्य प्रक्रियाओं द्वारा पदोन्नति के पात्रों का निर्धारण करके पर्यवेक्षक को बताना चाहिए तथा अन्त में उनकी तुलनात्मक योग्यताओं के आधार पर पदोन्नति का निर्णय किया जाना चाहिए।

फ्रांस में पदोन्नति व्यवस्था
(Promotion System in France)

फ्रांस में लोकसेवकों की वर्तमान पदोन्नति व्यवस्था एक ऐतिहासिक विकास का परिणाम है। तृतीय गणराज्य के समय व्याप्त वरिष्ठता के सिद्धान्त के प्रति धीरे-धीरे सन्देह का भाव उभरने लगा था। वर्षों तक परिवर्तन लाने के लिए वहाँ

प्रयास चलते रहे। योग्यता के आधार पर तथा वरिष्ठता के आधार पर की जाने वाली पदोन्नतियों के बीच अनुपात निश्चित करने के प्रयास चलते रहे। इन प्रयासों की केवल यही उपलब्धि हो सकी कि मामला एक संसदीय आयोग को सौंप दिया गया। इसके अतिरिक्त पदोन्नति निर्धारित करने के लिए विभागीय परिषदें स्थापित की गईं। इन परिषदों में विचाराधीन ग्रेड के कर्मचारी वर्ग को अल्पमतक प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया।

वर्तमान समय तक पदोन्नतियाँ विभागों को नियमित करने के लिए प्रसारित डिक्रीज के अनुरूप होती रही हैं। फ्रांस के लोग जब प्रगति (Advancement) शब्द का प्रयोग करते हैं तो उनका मतलब उसी श्रेणी में ऊपर की ओर तथा उच्चतर ग्रेड्स की ओर गति से रहता है। इनमें प्रथम पर द्वितीय की अपेक्षा वरिष्ठता का प्रभाव अधिक था तथा इसमें लोकसेवक को अपेक्षाकृत अधिक वेतन दिया जाता था। सच्ची पदोन्नति—अर्थात् उच्चतर ग्रेड पर पदोन्नति मुख्यतः विभाग अध्यक्ष के स्वविवेक पर निर्भर थी जिसका अर्थ व्यवहार में उच्च अधिकारियों का प्रयास था। 1912 के अधिनियम द्वारा पदोन्नति सूची की व्यवस्था करके पक्षपात पर रोक लगाने की व्यवस्था की गई। पदोन्नति सूची सामान्यतः विभागाध्यक्ष द्वारा अपने कुछ अधीनस्थों की सलाह से प्रतिवर्ष तैयार की जाती थी। कर्मचारियों के वार्षिक प्रतिवेदन में उनकी शिक्षा, चरित्र, आचरण, उच्च अधिकारियों से सम्बन्ध, जनता से सम्बन्ध, विशेष गुण आदि बातों का उल्लेख किया जाता था और इनका 'खराब' अथवा 'असाधारण' के रूप में मूल्यांकन किया जाता था। इस व्यवस्था द्वारा राजनीतिक पक्षपात को कम करने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं किया जा सका।

चतुर्थ गणराज्य में फ्रांस में लोकसेवकों को Status General des Functionnaires द्वारा एक व्यवस्थित स्तर प्राप्त हो गया। इसके द्वारा पदोन्नति को भी नियमित किया गया। तदनुसार लोकसेवकों के चार मुख्य ग्रेड स्थापित किए गए—A, B, C D इनकी भर्तियाँ पृथक् रूप से होने लगी। पदसोपान में निम्न-स्तरीय ग्रेड C तथा D के लिए B तथा A ग्रेड तक पहुँचने की परीक्षाओं के अवसर दिए गए। A तथा B में केवल 10% पद ही पदोन्नति के लिए रखे गए।

वार्षिक प्रतिवेदन तथा मूल्यांकन
(Annual Report and Rating)

फ्रांस में विभिन्न श्रेणियों (Cadres) के बीच पदोन्नतियाँ कर्मचारियों के वार्षिक प्रतिवेदन के आधार पर होती हैं। यह वार्षिक प्रतिवेदन महानिदेशक (Director General) से नीचे के सभी पदों के बारे में प्रस्तुत किया जाता है। विभिन्न श्रेणियों के अधिकारियों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रतिवेदन फार्म होते हैं। 'ए' केडर के अधिकारियों से सम्बन्धित जिन प्रश्नों के जवाब उच्च अधिकारियों को देने होते हैं, वे मुख्यतः कार्य का ज्ञान, कार्य सम्बन्धी सामान्य शिक्षा, कुशलता, लोकसेवा के सम्मान आदि से सम्बन्धित होते हैं। डी' केडर के अधिकारियों के लिए इन प्रश्नों का सम्बन्ध उनकी उपयुक्तता, सजगता, नियमितता, कार्य पर आचरण

भ्रादि से रहता है। सभी श्रेणियों के अधिकारियों का जनता के साथ व्यवहार करने म कैसी योग्यता एव क्षमता रही है, यह भी जहाँ सम्भव हो वहाँ उल्लेख कर दिया जाता है। प्रत्येक विषय के लिए 0-5 तक अक दिए जाते हैं तथा अन्तिम मूल्यांकन 20 म से होता है। वार्षिक रिपोर्ट का कर्त्ता उपयुक्त अधिकारी सेवा का अध्यक्ष है किन्तु तथ्यगत रूप से निकटवर्ती उच्च अधिकारी रिपोर्ट का प्रथम प्रारूप तैयार करता है और उस सेवा के अध्यक्ष के सामने प्रस्तुत कर देता है, जो उसे स्वीकार कर लेता है। कर्मचारी के कार्य का एक सामान्य मूल्यांकन भी किया जाता है जो मूलत गुणात्मक होता है। इसे अको मे प्रस्तुत नहीं किया जाता। कर्मचारी की वार्षिक रिपोर्ट Commission Administrative Paritaire' को प्रस्तुत की जाती है। यह मूल्यांकन के अक तथा सामान्य मूल्यांकन दोनों की जाँच करता है। इसके द्वारा सेवा के अध्यक्ष से किसी विशेष अधिकारी के मूल्यांकन की पुनरीक्षा करने को कहा जा सकता है। सेवा अध्यक्ष को इसका उत्तर देना होगा। वह मूल रिपोर्ट म कोई परिवर्तन करने से मना कर सकता है किन्तु ऐसा करने पर उसे कारण स्पष्ट करने होंगे।

फ्रांस की रिपोर्ट तथा मूल्यांकन व्यवस्था ग्रेट ब्रिटेन तथा अमेरिका की व्यवस्था मे पर्याप्त मिलती है। डॉ. हरमन फाइनर ने इसका कारण यह बताया है कि जर्मन आधिपत्य के समय कौंसिल डी एटा के कुछ अधिकारी अमेरिका और ब्रिटन म फ्रांस की सेनाओं के साथ रहे थे।[1] इस प्रभाव का एक अन्य उदाहरण फ्रांस मे सयुक्त समितियों की स्थापना है जिनमे प्रत्येक विभाग के उच्च अधिकारी तथा निम्न कार्यकर्त्ताओं के प्रतिनिधि रहते हैं। ये समितियाँ ब्रिटिश ह्विटले परिषदों के समकक्ष हैं। इन सयुक्त समितियों द्वारा पदोन्नति सूची की पुनरीक्षा की जाती है तथा ये किसी लोकसेवक की प्रार्थना पर उसके हित में सूची के परिवर्तन पर भी विचार कर सकती हैं।

पदोन्नति सूची
(Promotion List)

पदोन्नति सूची (Tableau d' Advancement) द्वारा प्रशासन की मनमानी शक्ति पर रोक लगाई जाती है। इस सूची मे अधिकारियों का नामांकन उनकी व्यावसायिक योग्यता के आधार पर किया जाता है। यह सूची प्रतिवर्ष बनाई जाती है तथा एक परामर्शदाता समिति को प्रस्तुत की जाती है जिसमें कर्मचारी वर्ग तथा अधिकारी पक्ष के बराबर बराबर प्रतिनिधि होते हैं। अन्तिम शब्द सदैव प्रशासन का ही रहता है। यह पर्याप्त महत्वपूर्ण होती है। इसके आधार पर यह भी जाना जा सकता है कि एक विशेष कॉर्प्स मे एकेलान्स (Echelons) प्रमुख हैं अथवा श्रेणियाँ (Classes)। यदि किसी विशेष ग्रेड मे एकेलन्स नहीं हैं तथा केवल श्रेणियाँ हैं तो समिति की सदस्यता से प्रशासन का मजबूत आधिपत्य रहेगा। दूसरी

1 *Dr Herman Finer*, op cit, p 851

और यदि उसमें कुछ श्रेणियाँ किन्तु अधिक एकेलन्स हैं तो प्रशासन की शक्ति कम हो जाती है। उदाहरण के लिए 1964 के दौरान न्यायपालिका में श्रेणियों की संख्या घटी और उसी अनुपात में एकेलन्स की संख्या बढ़ी तो पदोन्नति की दृष्टि से न्याय मन्त्रालय का प्रभाव घट गया तथा उतनी ही न्यायाधीशों की स्वतन्त्रता अधिक सुरक्षित हो गई।

पदोन्नति सूची बना देने के तीन दिन बाद यह सभी अधिकारियों को दिखाई जानी चाहिए ताकि सम्बन्धित पक्षों द्वारा इसे चुनौती दी जा सके। नीचे की ग्रेड के किसी अधिकारी को उच्च ग्रेड के अधिकारी पर पाँव रखकर पदोन्नति नहीं दी जा सकती है।

पदोन्नति के रूप

(Kinds of Promotion)

ए, बी, सी तथा डी चारों प्रकार की श्रेणियों के अन्तर्गत दो प्रकार की पदोन्नतियाँ की जा सकती हैं—एकेलन द्वारा तथा ग्रेड द्वारा। एकेलन द्वारा की गई पदोन्नति ग्रेड के अन्तर्गत होती है। यह वरिष्ठता एवं कार्यकुशलता अभिलेख के आधार पर होती है तथा पदोन्नत हुए व्यक्ति को वेतन वृद्धि दिलाती है। प्रत्येक एकेलन में एक औसत योग्यता वाले अधिकारी द्वारा बिताया गया औसत समय उसकी कार्यकुशलता के आधार पर तय होता है। यदि कार्यकुशलता अभिलेख द्वारा यह प्रकट किया जाए कि वह औसत से अधिक है तो एकेलन में व्यतीत किए जाने वाले उसके वर्ष घट जाते हैं तथा उसे तुरन्त पदोन्नति मिल जाती है। यदि वह औसत से कम रहता है तो उसे पदोन्नति प्राप्त नहीं होती, वह जहाँ का तहाँ बना रहता है अथवा उसकी पदावनति भी हो सकती है। जब एक अधिकारी अपनी एकेलन के शीर्ष पर होता है तो उसे उच्चतर ग्रेड में पदोन्नति प्रदान कर दी जाती है। यहाँ वरिष्ठता को महत्त्व नहीं दिया जाता तथा उच्च अधिकारी को योग्यता के आधार पर चुनने की स्वेच्छा होती है।

लोकसेवा की केन्द्रीय स्थिति

(The Central Position of the Civil Service)

फ्रांस में लोकसेवाएँ व्यावसायिक जीवन के चौराहे का मध्य बिन्दु हैं जहाँ से विभिन्न दिशाओं में गमन किया जा सकता है। अधिकांश लोकसेवक अपनी कॉर्प्स में सेवा करते हैं। अपनी कॉर्प्स में बने रहने तथा लोकसेवा से त्यागपत्र देने के बीच में लोकसेवकों को विभिन्न स्थितियों में रखा जा सकता है जैसे—उन्हें अस्थायी रूप से अन्य कॉर्प्स में रखा जा सकता है अथवा सरकारी निगम, स्थानीय संस्था अथवा अन्तर्राष्ट्रीय संगठन में रखा जा सकता है। ऐसा होने पर वह Detache अथवा Hors Cadre बन जाता है। रोजगार के ये सभी परिवर्तन प्रशासन की प्रार्थना पर होते हैं इसलिए लोकसेवक अपने अधिकारों, विशेषतः सेवानिवृत्ति अधिकारों से वंचित नहीं होता। अनेक बार ऐसे स्थानान्तरण स्वयं लोकसेवक के निवेदन पर भी होते हैं। यह Grand Corps के सदस्यों की अन्य सरकारी अभिकरणों का

उपनिवेशीकरण करने की प्रवृत्ति का प्रतीक है। लोकसेवक निजी रोजगार मे जाने के लिए भी अपनी कॉर्प्स को छोड सकता है, ऐसा होने पर भी अपने कॉर्प्स से उसके सम्बन्धो के सूत्र पूरी तरह नही टूट जाते, उसे अवैतनिक अवकाश प्रदान किया जा सकता है। सेवा त्यागने के समय उसके सेवानिवृत्ति अधिकार समाप्त हो जाते हैं किन्तु उसकी वरिष्ठता बनी रहती है तथा भविष्य मे वह कभी भी अपनी कॉर्प्स मे शामिल हो सकता है।

लोकसेवक की ये विभिन्न स्थितियाँ व्यवहार मे काफी महत्त्वपूर्ण बन जाती हैं। इनके माध्यम से लोकसेवा की सभी शाखाओ मे तथा लोकसेवा और निजी *रोजगार के बीच निरन्तर प्रवाह बना रहता है। इस दृष्टि से फ्रांस का व्यवहार* अमेरिकी व्यवहार से ठीक विपरीत है। अमेरिका मे शीर्ष के व्यावसायिक निष्पादको को अस्थायी रूप से लोकसेवा का पद ग्रहण करने को कहा जाता है जबकि फ्रांस म शीर्ष के लोकसेवक व्यवसाय मे जाते हैं। ये यहाँ राजनीति मे भी जा सकते हैं। पचम गणतन्त्र मे अनेक लोकसेवको को मन्त्री बनाया जाता था। ये ससद् के रूप मे राजनीति मे शामिल होते हैं तथा बाद मे मन्त्री बन जाते हैं। स्पष्ट है कि फ्रांस मे लोकसेवा एक केन्द्रीय तत्त्व है तथा अनेक उच्चस्तरीय लोकसेवक धन या शक्ति के लिए सेवा को छोड देते हैं किन्तु अपनी कॉर्प्स से सम्बन्ध की कडी बनाए रखते हैं।

9 प्रशिक्षण : भारत, ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त-राज्य अमेरिका तथा फ्रांस

(Training : India, U. K., U.S.A. and France)

लोकसेवकों की भर्ती लोकसेवा आयोग द्वारा की जाती है किन्तु उनके प्रशिक्षण का दायित्व सरकार का होता है। भर्ती के समय प्रत्याशी की प्राय सम्भावनाओं एवं क्षमताओं का अनुमान लगाया जाता है। इस अनुमान को साकार रूप देने तथा अधिकारी को उसके कार्य के अनुरूप ढालने के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

प्रशिक्षण : अर्थ
(Training Its Meaning)

प्रशिक्षण सेवीवर्ग की समस्या से सम्बन्धित एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण तत्त्व है जिस पर बड़ी हद तक प्रशासकीय कार्यकुशलता निर्भर करती है। प्रारम्भ में सरकारी कार्य अधिक विशेषीकृत और तकनीकी प्रकृति के नहीं थे अतः सरकारी अधिकारियों के प्रशिक्षण की आवश्यकता अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं थी। लेकिन आज स्थिति दूसरी है, अतः प्रशासन का संचालन करने वालों के समुचित प्रशिक्षण की आवश्यकता की उपेक्षा नहीं की जा सकती। उल्लेखनीय है कि प्रशिक्षण (Training) और शिक्षा (Education) दो अलग-अलग बातें हैं। दोनों का उद्देश्य एक है तथापि मुख्य अन्तर यह है कि प्रशिक्षण का क्षेत्र अपेक्षाकृत संकुचित होता है और उद्देश्य सीमित, जबकि शिक्षा का क्षेत्र विस्तृत रहता है और उद्देश्य अत्यन्त व्यापक है। शिक्षा व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य एवं मूल्य निर्धारित करती है जबकि प्रशिक्षण उसे व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करता है। टिकनर (Tickner) के मतानुसार, "शिक्षा व्यक्ति के बचपन से प्रारम्भ होकर उसके चरित्र, आदत एवं तरीकों का संयोजन करती है। इसके द्वारा मानसिक तथा शारीरिक क्षमता का निर्माण किया जाता है।"[1]

1 *E. J. Tickner* : Modern Staff Training, p. 9

'प्रशिक्षण' प्रबन्ध का सर्वप्रथम एवं महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व है। प्रबन्ध का प्रमुख लक्ष्य है अभिकरण के कार्यों को सम्पन्न कराना। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए वह संगठन के अधीनस्थ अधिकारियों के आवश्यक प्रशिक्षण की व्यवस्था करता है। स्टाल (Stahl) के अनुसार, 'कर्मचारी वर्ग के विकास में प्रशिक्षण मानवीय प्रयास व निर्देशन का मूल तत्त्व है और इस रूप में यह उस समय अधिक प्रभावशाली रहता है जबकि इसे नियोजित व्यवस्थित एवं मूल्यांकित किया जाता है।'[1] 'प्रशिक्षण' का शाब्दिक अर्थ किसी विशेष कला, कार्य या व्यवसाय में निर्देशन एवं अनुशासन है। जब तक अधिकारी की कुशलता, शक्ति, बुद्धि एवं दृष्टिकोण को एक निश्चित दिशा में सशक्त करने का प्रयास किया जाता है तो वह 'प्रशिक्षण' कहलाता है। टोरपे (Torpey) के अनुसार 'प्रशिक्षण का अर्थ एक ऐसी प्रक्रिया से है जो कर्मचारियों की कुशलता, आदत, ज्ञान और दृष्टिकोण को विकसित कर सके ताकि वर्तमान सरकारी स्थिति में उनकी प्रभावशीलता को बढ़ाया जा सके और कर्मचारियों को भावी सरकारी स्थितियों के लिए तैयार किया जा सके।"[2] अनौपचारिक रूप से जो प्रशिक्षण कर्मचारी प्राप्त करते हैं उसके लिए कोई योजना नहीं बनाई जाती।

प्रशिक्षण को श्रेणी अभिकरण (Line Agency) का कार्य माना जाता है। प्रशिक्षण के माध्यम से कर्मचारी अपने कार्यों को अधिक प्रभावी रूप से सम्पन्न करने में समर्थ होता है। व्यक्ति में जो कुशलता, आदत, ज्ञान अथवा दृष्टिकोण पहले से ही विद्यमान हैं उन्हें वह प्रशिक्षण के माध्यम से विकसित कर लेता है। प्रशिक्षण द्वारा कर्मचारियों में वे कुशलताएँ, आदतें, ज्ञान और दृष्टिकोण भी विकसित किए जाते हैं जिनके माध्यम से वे अपने से ऊँचे पद के उत्तरदायित्वों को सम्भालने में समर्थ बन सकें। किसी भी कर्मचारी को प्रशिक्षण व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों ही रूपों में प्रदान किया जा सकता है। प्रशिक्षण किसी अभिकरण के कक्षा-कक्ष में भी हो सकता है और कार्य स्थल पर भी दिया जा सकता है। प्रशिक्षण देने का कार्य स्वयं केन्द्रीय अभिकरण भी कर सकता है और क्षेत्रीय अभिकरण भी। वास्तव में प्रशिक्षण सम्बन्धित अभिकरण द्वारा ही दिया जाना चाहिए। मैगोरे (Maguire) के मतानुसार, "सामान्य रूप से प्रशिक्षण उसी का कार्य है जो कार्य लेता है न कि केन्द्रीय कर्मचारी सेवीवर्ग अभिकरण का।" यह एक निरन्तर प्रक्रिया है।

प्रशिक्षण के उद्देश्य
(The Objects of Training)

प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य प्रशासन में कार्यकुशलता लाना है, तभी कार्य का स्तर ऊँचा हो सकता है। प्रशिक्षण के माध्यम से कर्मचारियों में उच्च स्तर के कार्यों का उत्तरदायित्व वहन करने की क्षमता विकसित की जा सकती है और उनकी तकनीकी योग्यताओं के विकास द्वारा प्रत्यक्ष रूप से कार्यकुशलता को बढ़ाया जाता है

1 O G Stahl, Public Administration, p 279
2 William G Torpey Public Personnel Management, p 154

जबकि उनके नैतिक चरित्र का विकास अप्रत्यक्ष रूप से संगठन की कार्यकुशलता पर प्रभाव डालता है। प्रशासन में प्रशिक्षण इन दोनों ही तत्वों में विकास करता है अर्थात् एक विशेष कार्य में अधिकारी की तकनीकी कुशलता और संगठन के सदस्यों में सामूहिक उत्साह एवं दृष्टिकोण।

सैनिक प्रशासन में दिया जाने वाला प्रशिक्षण कार्य में एकरूपता लाता है। प्रशिक्षित सैनिक अधिकारी, जिन्हें एक ही कॉलेज में प्रशिक्षण दिया गया है, आसानी से यह अनुमान लगा सकते हैं कि एक विशेष परिस्थिति में उनका साथी अधिकारी किस प्रकार का व्यवहार करेगा। प्रशासनिक अधिकारियों के प्रशिक्षण द्वारा जो विभिन्न लाभ प्राप्त किए जा सकते हैं उनका वर्णन करते हुए टोरपे (Torpey) ने बताया है कि "औपचारिक प्रशिक्षण द्वारा सम्पन्न कार्य में व्यक्तिगत अक्षमता के कारण उत्पन्न होने वाली दुर्घटनाओं, व्यर्थ के कार्यों अकुशलता, गलतियाँ बढ़ती हुई उदासीनता, शिकायत और असन्तोष को रोका जा सकता है।"[1]

नागरिक सेवकों के प्रशिक्षण से सम्बन्धित एशनट समिति के अनुसार लोक-प्रशासन में प्रशिक्षण के मुख्यतः पाँच लक्ष्य होते हैं—

(1) प्रशिक्षण द्वारा ऐसे नागरिक सेवक उत्पन्न किए जाते हैं जो कार्य व्यापार में स्पष्टता ला सकें।

(2) परिवर्तन विश्व में नवीन उत्तरदायित्वों को पूरा करने की क्षमता नागरिक सेवकों में प्रशिक्षण द्वारा विकसित की जाती है।

(3) प्रशिक्षण द्वारा नागरिक सेवक को नौकरशाही की मशीन में यन्त्रीकृत होने से बचाया जाता है और उसमें समाज सेवा के भाव जाग्रत किए जाते हैं।

(4) प्रशिक्षण द्वारा व्यक्ति को न केवल वर्तमान कार्य में कुशल बनाया जाता है वरन् बड़े उत्तरदायित्व एवं उच्चतर कार्यों का भार सम्भालने के लिए भी तैयार किया जाता है।

(5) सफल प्रशिक्षण योजनाएँ कर्मचारी वर्ग के नैतिक चरित्र को ऊँचा उठाने का कार्य करती हैं। इस प्रकार प्रशिक्षण द्वारा नागरिक सेवकों को प्रशासनिक संगठन, उसके कार्य, जनहित और स्वयं कर्मचारियों के हित आदि की दृष्टि से उपयोगी बनाया जाता है।

यह कहा जाता है कि प्रशिक्षण द्वारा व्यक्ति को पद ग्रहण करने से पूर्व ही अपने कार्यों एवं उत्तरदायित्वों का ज्ञान प्रदान कर दिया जाता है। जब पहली बार अधिकारी अपने पद के कार्यों को सम्पन्न करने लगता है तो उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। वह यह अनुभव करता है कि उसमें अनेक कमियाँ हैं। प्रशिक्षण द्वारा अधिकारी में आवश्यक योग्यताएँ विकसित करके उसे प्रशासन की वांछनीय आवश्यकताओं के अनुरूप बनाया जाता है। प्रत्येक सरकारी

1 William G Torpey op cit., p 144

पद के कार्यों का एक निश्चित तरीका है जिसे कोई भी व्यक्ति जन्म से ही सीखकर नही आता। उमे ये सब प्रशिक्षण द्वारा मिखाए जाते है। प्रशिक्षण के अभाव मे वह इन तरीको को 'भूल और सुधार' (Trial and Error) की एक लम्बी प्रक्रिया द्वारा ही सीख पाएगा प्रशिक्षण द्वारा अधिकारी को परिवर्तित परस्थितियों के अनुरूप बनाया जाता है। नए वातावरण के अनुकूल बनकर वह आधुनिकतम बन जाता है। 'प्रशिक्षण' प्रशासनिक अधिकारियो एव जनता के बीच परस्पर सहयोग एव सम्मानपूर्ण सम्बन्धों का विकास करता है। एशटन समिति के अनुसार अधिकारी मे जनता एव उसके व्यापार के प्रति सही दृष्टिकोण का विकास करना नागरिक सेवा-प्रशिक्षण का प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए।[1]

प्रशिक्षण द्वारा प्रशासनिक अधिकारियो के दृष्टिकोण को व्यापक बनाया जाता है। नाइग्रो (Nigro) का कहना है कि "प्रशिक्षण का कार्य कर्मचारियों को न केवल तान्त्रिक दृष्टि से कुशल बनाना है वरन् उसके दृष्टिकोण को इतना व्यापक बनाना है जितना कि एक लोकसेवक के लिए आवश्यक होता है।"[2] पदाधिकारी की मानसिक एव बौद्धिक क्षमता मे वृद्धि प्रशिक्षण का महत्त्वपूर्ण कार्य है। प्रशिक्षण प्रशासनिक कार्यों मे एकरूपता लाता है। उनका व्यवहार, विचार एव दृष्टिकोण बहुत कुछ एक जैसे होते हैं। इस प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप समस्याओं का समाधान करने मे संयुक्त प्रयास किया जा सकता है।

निष्कर्ष रूप मे, प्रशिक्षण कार्यक्रम निम्नलिखित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सचालित किया जाता है—

(1) विभागीय लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए व्यावसायिक कुशलता की प्राप्ति,
(2) नवीन लक्ष्य एव वातावरण के साथ समायोजन स्थापित करना,
(3) प्रशिक्षण प्राप्तकर्त्ता को वांछनीय भर्ती के लिए योग्य बनाना,
(4) प्रशिक्षणार्थी को आधुनिकतम बनाना,
(5) दृष्टिकोण एव भविष्य को व्यापक बनाना,
(6) पदोन्नति एव उच्च स्थिति के योग्य बनाना,
(7) आजीवन सेवाओं मे क्षमताओं का विकास,
(8) सगठन के स्तर को ऊँचा उठाना,
(9) लोकसेवाओं मे ईमानदारी तथा मनोबल को ऊँचा उठाना, एव
(10) दृष्टिकोण मे एकरसता लाना।

प्रशिक्षण की प्रणालियाँ
(The Methods of Training)

प्रशिक्षण किस प्रकार दिया जाए—यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। नागरिक सेवा सभा के अनुसार एक अभिकरण अपने कर्मचारियो को किस प्रकार प्रशिक्षण

1 The Report, p 11
2 *Felix A Nigro* Public Administration, Reading and Documents, pp 253-54

प्रदान करेगा, यह सरकारी एवं प्रशासकीय नीति पर निर्भर करता है। यह बहुत कुछ उन परिस्थितियों पर निर्भर करता है जो प्रत्येक अधिकार क्षेत्र में भिन्न-भिन्न होती हैं।

प्रशिक्षण का कार्य एक ऐसा कार्य है जिसे श्रेणी अभिकरण एवं स्टॉफ अभिकरण दोनों में ही समाहित किया जा सकता है। इसे श्रेणी का कार्य इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसका संचालन बहुत कुछ श्रेणी अधिकारियों द्वारा किया जाता है। एक अभिकरण में जिस अधिकारी को प्रशासन का उत्तरदायित्व सौंपा जाता है उसको या तो केवल स्टॉफ का ही उत्तरदायित्व सौंपा जाता है अथवा स्टॉफ और श्रेणी (Staff and Line) दोनों का। ऐसा नहीं हो सकता कि वह प्रशिक्षण की प्रक्रिया द्वारा-केवल श्रेणी पर्यवेक्षक के कार्य तक ही सीमित रहे।

अभिकरण की प्रशिक्षण शाखा द्वारा जो स्टॉफ के कार्य किए जाते हैं, वे हैं—(i) आवश्यकता, सुविधा एवं प्रक्रिया आदि के सम्बन्ध में अध्ययन करना, (ii) अभिकरण के बाहर के अन्य प्रशिक्षण कार्यक्रमों के सम्बन्ध में पाठ्यक्रम तथ्य, पद्धतियों आदि की सूचना देना, (iii) पर्यवेक्षकों एवं प्रशासकों को विश्लेषण नियोजन, पद्धति आदि के सम्बन्ध में सलाह देना, (iv) प्रशिक्षण-कार्यक्रमों के मूल्यांकन के तरीकों का निश्चय करना, (v) कर्मचारियों को उनकी व्यक्तिगत योग्यताओं एवं आवश्यकताओं के बारे में परामर्श देना, (vi) प्रशिक्षण सम्बन्धी सूचना में समन्वय स्थापित करना आदि। प्रशिक्षण शाखा द्वारा श्रेणी अभिकरण के कार्य किए जाते हैं—(i) सुविधाओं एवं निर्देशों के लिए संगठनों के साथ समझौते करना, (ii) निर्देशकों का चयन करना, (iii) व्यक्तिगत अभिलेखों में कर्मचारी के स्तर को अंकित करना, आदि। आवश्यक नहीं है कि इन सभी कार्यों को एक ही अभिकरण द्वारा सम्पन्न किया ही जाएगा। उसकी प्रशिक्षण शाखा केवल कुछ कार्य सम्पन्न कर सकती है।

प्रशिक्षण की विधियों का 'आवश्यकताओं' के साथ सम्बन्ध रहना चाहिए। प्रशिक्षण की प्रक्रिया प्रशिक्षण के रूपों एवं उसमें उत्पन्न क्रियाओं से प्रभावित होती है। टोरपे (Torpey) के मतानुसार प्रशिक्षण के उचित तरीके चुनने का मापदण्ड स्वस्थ शिक्षा-सिद्धान्तों के आधार पर तय किया जाना चाहिए। लोक-प्रशासन में प्रशिक्षण की क्रिया सम्पन्न करने के लिए जिन अनेक तरीकों का प्रयोग किया जाता है वे इस निर्णय के साथ-साथ परिवर्तित होते रहते हैं कि प्रशिक्षण व्यक्तिगत रूप में दिया जाना है अथवा सामूहिक रूप में। यदि कर्मचारी को व्यक्तिगत रूप से प्रशिक्षण प्रदान करना हो तो उसके लिए विचार-विमर्श, कार्य परिवर्तन, औपचारिक पाठ्यक्रम, पत्राचार पाठ्यक्रम, सामुदायिक शिक्षा व्यवस्था, पर्यवेक्षणाधीन अध्ययन विषय आदि। यदि प्रशिक्षण समूह को प्रदान करना हो तो अन्य प्रकार के तरीके अपनाए जा सकते हैं, जैसे-सेमिनार, सम्मेलन, सामूहिक विचार विमर्श, क्षेत्रीय दौरे, भाषण, निरीक्षणात्मक दौरे, आदि। प्रशिक्षण की प्रक्रिया में संचार-साधनों का अधिकाधिक प्रयोग भी उपयोगी रहता है। इस दृष्टि से रेडियो, टेलीविजन, समाचार-पत्र, प्रेस

आदि का पर्याप्त उपयोग किया जा सकता है। किसी भी प्रशिक्षण-कार्यक्रम की प्रभावशीलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसमे किन तरीको को अपनाया गया है।

लोक-प्रशासको के प्रशिक्षण मे जिन विभिन्न विधियो को अपनाया जा सकता है उनका वर्णन विभिन्न विचारको ने किया है। उदाहरण के लिए स्टाल (Stahl) इन तरीको को निम्नलिखित भागो मे बाँटते हैं—

1 सामूहिक प्रशिक्षण (Group Training)—प्रशिक्षण की इस विधि मे कुछ लोगो को एक साथ मिलकर प्रशिक्षण दिया जाता है। यह एक ऐसा प्रशिक्षण है जिसे देखा और मापा जा सकता है। प्रशिक्षण के इस रूप मे औपचारिक पाठ्यक्रम, कक्षा के विचार-विमर्श औपचारिक भाषण, सामयिक वार्ता, प्रदर्शन, प्रयोगशाला कार्य आदि की गणना की जा सकती है। समय-समय पर होने वाली स्टॉफ की मीटिंग और कर्मचारियो की सभाएँ भी इस प्रकार के प्रशिक्षण मे सम्मिलित हैं।

2 कार्य पर निर्देश (On the Job Instruction)—कार्य पर व्यक्तिगत निर्देश प्रशिक्षण का एक प्रसिद्ध प्रकार है। इस रूप मे एक नए कर्मचारी को पर्यवेक्षक द्वारा पूर्ण सहायता दी जाती है। जब समूह बडा होता है तब निर्देशन के लिए एक अलग व्यक्ति को नियुक्त कर दिया जाता है, किन्तु अधिकतर पर्यवेक्षक सुयोग्य व्यक्ति होता है और वह अपने अधीनस्थों को निर्देश देता है।

3 लिखित परिपत्र (Manuals and Bulletins)—सगठन के अधिकारियो को विभिन्न निर्देश समय समय पर लिखित रूप मे प्रसारित किए जाने चाहिए। लिखित रूप मे भेजे गए इन परिपत्रों का आकर्षक होना अत्यन्त आवश्यक है अन्यथा वे अधिक प्रभावशाली नही होगे। इस दृष्टि से कर्मचारियों को पुस्तकालय मे जाने के लिए भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

4 पत्राचार पाठ्यक्रम (Correspondence Courses)—सगठन के अधिकांश कर्मचारी व्यापक क्षेत्र म रहते हैं। उनको काम मे बाधा पहुँचाए बिना ही प्रशिक्षण देने के लिए पत्राचार विधि काम म लाई जाती है। प्रशिक्षण का यह प्रकार अधिक सन्तोषजनक नही होता क्योकि इसे सचालित करने मे बहुत व्यय करना पडता है और व्यक्तिगत विचार-विमर्श तथा विचारो का आदान-प्रदान नहीं हो पाता। अत. इन्हे केवल वही अपनाया जाता है जहाँ दूसरे तरीके काम मे नही आ सकते।

5 श्रव्य-दृश्य साधनों का उपयोग (Use of Audio-Visual Aids)—जब कर्मचारी कार्य के रेखाचित्रो को देखकर तथा श्रव्य रूप मे प्रस्तुत करने मे रुचि लेते हैं तो उनके प्रशिक्षण का यह तरीका उपयोगी होता है। इसमे उनको चित्र, नक्शे एव चलचित्र आदि के द्वारा प्रशिक्षण दिया जाता है। रेडियो, टेलीविजन, रिकार्ड एव चलचित्रो के द्वारा कर्मचारियों मे भावनात्मक उत्साह जाग्रत किया जाता है।

6 अन्य विधियाँ (Other Methods)—प्रशासनिक सगठनो मे अधिकारियो को प्रशिक्षित करने की एक मुख्य विधि यह होती है कि उनके लिए प्रशिक्षित होने

का अनुकूल वातावरण तैयार किया जाता है--एक ऐसा वातावरण जिसमे डर के स्थान पर आशा का संचार हो। कर्मचारियो के बीच मानवीय सम्बन्धो की वृद्धि पर जोर दिया जाना चाहिए। अधिकारियो को अच्छी प्रकार निर्देश लिखने, व्यापक एव सरल संचार व्यवस्था रखने, सूचनाओं का आदान-प्रदान करने, प्रतिवेदनों को लिखित करने आदि के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। स्टाल (Stahl) के शब्दो म "यह अतिशयोक्ति नही होगी कि एक स्टॉफ केवल प्रत्यक्ष प्रशिक्षण तकनीकी द्वारा ही विकास एव प्रगति कर सकता है किन्तु इसके लिए उसे प्रबन्ध की दृष्टि म रहना होता है और उन सभी कार्यों को करना होता है जो इस प्रकार की प्रगति एव विकास को आकर्षक, स्वाभाविक और सन्तोषजनक बनाए।"[1]

प्रशिक्षण के प्रकार
(The Types of Training)

सरकारी अधिकारियो को दिए जाने वाले प्रशिक्षण को मोटे रूप म दो भागो म विभाजित किया जा सकता है--

(1) अनौपचारिक प्रशिक्षण (Informal Training)

(2) औपचारिक प्रशिक्षण (Formal Training)

अनौपचारिक प्रशिक्षण (Informal Training)

यह प्रशिक्षण अनुभव पर आधारित होता है। इसम व्यक्ति जब कार्य करता है तो वह क्रमश अपने आप सीखता चलता है। प्रशिक्षण की यह प्रक्रिया परम्परागत है और आज भी इसका प्रयोग किया जाता है। ग्लैडन (Gladden) के मतानुसार 'यह मुख्य रूप से लिपिक-शाखाओ म किया जाता है कि नवागन्तुक को थोडा प्रारम्भिक परामर्श देकर कार्य पर भेज दिया है और उसे अपने साथियों की दया पर छोड दिया जाता है जिन पर पहले से ही बहुत काम है।'[2] अनौपचारिक प्रशिक्षण की कुछ अपनी कमजोरियाँ होती हैं। इस प्रकार सीखना बडा कठिन तथा अधिक समय लेने वाला होता है। केवल योग्य शिक्षार्थी ही उसका लाभ उठा सकते है। साधारण कर्मचारी तो कुछ सीखने की अपेक्षा बुरी आदतें विकसित कर लेता है। उसे निराशा एव निरुत्साह ही प्राप्त होता है। यदि उसे कुछ प्रशिक्षण प्राप्त भी होता है तो वह बहुत धीमी गति से प्राप्त होता है। अनौपचारिक प्रशिक्षण का एक दूसरा रूप वैयक्तिक सम्पर्क के रूप मे होता है। इसम नवनियुक्त अधिकारी को प्रोत्साहित किया जाता है कि वह अपने वरिष्ठ अधिकारियो से व्यक्तिगत सम्पर्क रखे, उनके निवास स्थान पर जाए, उनको कार्य-व्यवहार करता हुआ देखे और उनसे कुछ अनुभव एव प्रशिक्षण प्राप्त करे।

प्रारम्भ मे नवीन कर्मचारी पर किसी प्रकार के पूर्वाग्रह का प्रभाव नही रहता, इसलिए वह प्रत्येक अच्छी बात को सीखने के लिए उत्सुक रहता है। यह उत्सुकता कभी-कभी विरोध म भी परिवर्तित हो जाती है और अधीनस्थ अधिकारी को कुछ

1 O G Stahl: op cit, p 305

2 E N Gladden, Civil Service, Its Problems and Future, p 99

सिखाने की अपेक्षा उसके सीखने की सामर्थ्य को सीमित कर देती है। मंण्डल का यह कहना सही है कि "चूँकि इस प्रशिक्षण का सम्बन्ध कर्मचारी के नियमित कार्यों से होता है, अत वह अपने स्वय के अनुभव के साथ सर्वोत्तम ढग से लाभ उठा सकता है। इस सम्बन्ध मे उस पर कोई दवाव नही होता इसलिए उसकी प्रेरणा सकारात्मक होती है। इसका प्रभाव चाहे अच्छा हो या बुरा, गहरा होता है।" अनौपचारिक प्रशिक्षण के इस रूप की सफलता मुख्य रूप से तीन बातो पर निर्भर करती है। प्रथम, वरिष्ठ अधिकारी योग्य होना चाहिए, दूसरे, वरिष्ठ अधिकारी अनुभवी होना चाहिए और तीसरे, नवनियुक्त अधिकारी के प्रति उसम रुचि होनी चाहिए। जब उच्च अधिकारियों पर कार्यभार बहुत रहता है तो वे अधीनस्थो के प्रशिक्षण पर पर्याप्त ध्यान नही दे पाते और अन्ततोगत्वा अधीनस्थ को 'प्रयत्न और भूल' द्वारा ही सीखना होता है। इस सम्बन्ध म ए डी गोरवाला का यह सुझाव सराहनीय है कि कुछ वरिष्ठ अधिकारी केवल अधीनस्थ अधिकारियो के प्रशिक्षण हेतु ही नियुक्त किए जाने चाहिए।

औपचारिक प्रशिक्षण (Formal Training)

औपचारिक प्रशिक्षण एक व्यवस्थित तथा निर्धारित रूप मे अधीनस्थ अधिकारियो को उनके कार्य म कुशलता प्रदान करता है। अनौपचारिक प्रशिक्षण की कमियो को औपचारिक प्रशिक्षण द्वारा दूर किया जाता है। यद्यपि प्रशिक्षण के इन दोनो रूपो के बीच कोई स्पष्ट विभाजक रेखा नही खींची जा सकती, फिर भी जागरूकता, सोद्देश्य प्रयास आदि कुछ बातो के आधार पर दोनो के बीच भेद प्रदर्शित किया जा सकता है। औपचारिक प्रशिक्षण समय की दृष्टि से, प्रक्रिया की दृष्टि से एव विषय की दृष्टि से अनेक प्रकारो मे विभाजित किया जा सकता है। अवधि के अनुसार प्रशिक्षण की कुछ योजनाएँ अल्पकालीन होती हैं जबकि अन्य प्रशिक्षण योजनाएँ दीर्घकालीन होती हैं। उद्देश्य की दृष्टि से भी यह देखा जा सकता है कि प्रशिक्षण प्रशासकीय है अथवा तकनीकी या व्यावसायिक या लिपिक वर्ग का है या अधिकारी वर्ग का है अथवा पर्यवेक्षको के लिए है। औपचारिक प्रशिक्षण के विभिन्न रूपो को मोटे तौर से निम्नलिखित वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है—

(A) प्रवेशपूर्व प्रशिक्षण (Pre-entry Training),

(B) सेवाकालीन प्रशिक्षण (In service Training) और

(C) प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण (Post entry Training)।

प्रशिक्षण के ये रूप अत्यन्त व्यापक हैं। इनके अन्तर्गत हम प्रशिक्षण के अन्य अनेक रूपो का अध्ययन कर सकते हैं।

प्रशिक्षण की समस्याएँ
(The Problems of Training)

लोक प्रशासन मे अधिकारियों एवं कर्मचारियो के प्रशिक्षण से सम्बन्धित अनेक समस्याएँ हैं जिनकी अवहेलना करने पर कोई भी प्रशासन अधिक समय तक सफल रूप से कार्य नही कर सकता। एक मूल समस्या यह है कि योग्य एव क्षमतावान

प्रशिक्षक नहीं मिल पाते जो संगठन के कार्यकर्त्ताओं को नवीन ज्ञान प्रदान करने के साथ-साथ उनकी व्यवहार-सम्बन्धी समस्याओं में रुचि लें। प्रशिक्षणार्थियों को क्या विषय पढ़ाया जाना चाहिए, यह भी एक प्रमुख समस्या है। पाठ्यक्रम निर्धारित करना बड़ा जटिल कार्य है क्योंकि कुछ विषय ऐसे होते हैं जिनको कुछ दृष्टियों से पढ़ाया जाना आवश्यक होता है किन्तु अन्य दृष्टियों से वे पूर्णत अनुपयोगी और कभी-कभी हानिकारक बन जाते हैं। प्राथमिकताओं के आधार पर पाठ्यक्रम का निश्चय एक महत्त्वपूर्ण किन्तु कठिन कार्य है। यह कार्य भी यदि हो जाए तो अन्य समस्या यह उठती है कि इस पाठ्यक्रम को किस प्रकार प्रशिक्षणार्थियों के विचार एवं व्यवहार में लाया जाए कि वे संगठन के लिए उपयोगी बन सकें। प्रशिक्षण की तकनीकें एवं तरीके, उनकी उपयोगिता एवं सार्थकता का निश्चय करने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं। प्रशिक्षण व्यक्तिगत आधार पर दिया जाए अथवा सामूहिक आधार पर, यह भी ऐसा प्रश्न है जिस पर विचार किया जाना जरूरी होता है।

व्यक्तिगत प्रशिक्षण में अनेक बातें स्वयं प्रशिक्षक स्पष्ट नहीं कर पाता और कुछ को प्रशिक्षणार्थी नहीं समझ पाता। दूसरी ओर जब प्रशिक्षण सामूहिक रूप में दिया जाता है तो प्रशिक्षण प्राप्तकर्त्ताओं के बीच अनौपचारिक सम्बन्ध नहीं रह पाते और ऐसा होने पर प्रशिक्षक एवं प्रशिक्षणार्थी दोनों को कठिनाई होती है। सामूहिक प्रशिक्षण में समूह के समायोजन की समस्या (Problem of Group Adjustment) भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। प्रशिक्षण में कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ भी आती हैं। यह तय करना कभी-कभी मुश्किल होता है कि दिया जाने वाला प्रशिक्षण उपयुक्त है या नहीं। साथ ही प्रशिक्षण का समय कितना होना चाहिए, यह भी एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। प्रशिक्षण के लम्बे समय को संगठन बर्दाश्त नहीं कर सकता और कम समय में दिया जाने वाला प्रशिक्षण प्रभावहीन हो सकता है।

कम समय के प्रशिक्षणों में यह समस्या रहती है कि जब तक प्रशिक्षणार्थी अपने प्रशिक्षण का लक्ष्य, विषय, प्रक्रिया, लाभ आदि की जानकारी भी पूरी तरह प्राप्त नहीं कर पाता तब तक उसके प्रशिक्षण का समय समाप्त हो जाता है। ऐसी स्थिति में संगठन एवं प्रशिक्षणार्थी दोनों की दृष्टि से प्रशिक्षण अनुपयोगी एवं निरर्थक बन जाता है और उसे देने वाले तथा लेने वाले दोनों ही उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगते हैं। प्रशिक्षण से सम्बन्धित एक अन्य समस्या वातावरण की है। क्या एक बन्द कमरे में दिया गया प्रशिक्षण उपयोगी रहेगा अथवा ऊँचे-ऊँचे सिद्धान्तों का अध्यापन व्यावहारिक जीवन में कुछ सफल होगा अथवा सफल प्रशिक्षण को सार्थक बनाने के लिए केवल 'कार्य' पर ही बल दिया जाना चाहिए? ये प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं और ये समान रूप से प्रशिक्षक, प्रशिक्षणार्थी और संगठन तीनों के ही मस्तिष्क को सक्रिय रखते हैं।

टोरपे का मत

प्रशिक्षण से सम्बन्धित अनेक प्रशासनिक समस्याएँ भी उत्पन्न होती हैं।

प्रशिक्षण कार्य से सलग्न कुछ महत्त्वपूर्ण समस्याओं का अध्ययन टोरपे (Torpey) न निम्नलिखित प्रकार से किया है।[1]

1. प्रशिक्षण कार्यक्रमो का अनुचित मूल्यांकन (Improper Evaluation of Training Programmes)—प्रशिक्षण की प्रभावशीलता एव सफलता का निश्चय इसमे होता है कि प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद प्राप्तिकर्ता को क्या लाभ हुआ। यदि प्रशिक्षित होने के बाद उसे कोई आर्थिक लाभ नहीं होता या सम्मान प्राप्त नही होता तो वह उसमे उदासीन दृष्टिकोण अपनाएगा। इसी प्रकार यदि प्रशिक्षण कार्य के स्तर को ऊँचा नही उठाता, उसे मात्रा एव गुण की दृष्टि से आगे नही बढाता, तो सगठन उसमे किसी प्रकार की रुचि नही लेगा। प्रशिक्षण प्रदान करने के बाद प्रशिक्षक एव प्रशिक्षणार्थी दोना इस बात को भुला देते हैं। परिणाम यह होता है कि प्रशिक्षण कार्यक्रमो पर किया गया समय व्यर्थ चला जाता है। जहाँ सेवीवर्ग अधिकारियो का यह विश्वास होता है कि प्रशिक्षण प्रशिक्षण के लिए होना चाहिए वहाँ प्रशिक्षण द्वारा किन्ही आवश्यकताओं की पूर्ति का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

किसी भी सगठन मे प्रशिक्षित सदस्यों की अधिक सख्या, उनको सिखाए गए विषयो की मात्रा, प्रमाण-पत्रो की सख्या आदि का स्वय मे कोई महत्त्व नही होता और वे आवश्यक रूप से एक सफल प्रशिक्षण कार्यक्रम के प्रतीक नहीं हैं। प्रशिक्षण कार्यक्रमो का उचित मूल्यांकन करत समय प्रशिक्षक को कार्यक्रम के लक्ष्यो की दृष्टि से विश्लेषण करना चाहिए। स्टाल (Stahl) ने भी लिखा है कि प्रशिक्षण कार्यक्रम का मूल्यांकन उसके लक्ष्यो की दृष्टि से किया जाना चाहिए। उनके मतानुसार यह लक्ष्य तुरन्त (Immediate) का तथा दूरगामी दोनो ही प्रकार का हो सकता है। इस प्रकार वस्तुगत दृष्टि से किया गया मूल्यांकन भावी प्रशिक्षण कार्यक्रमों को प्रोत्साहन देता है।

मूल्यांकन करते समय प्रशिक्षण कार्यक्रम के परिणामो को देखना चाहिए। पर केवल परिणामो पर आधारित मूल्यांकन भी वैज्ञानिक नही कहा जा सकता क्याकि कई बार अनेक अप्रत्यक्ष अवरोध प्रशिक्षण के एक श्रेष्ठ कार्यक्रम को भी परिणामो की दृष्टि से शून्य बना देते हैं। कई बार यह सुझाव दिया जाता है कि यह मूल्यांकन यदि प्रशिक्षण समिति द्वारा किया जाए तो उपयुक्त होगा। मूल्यांकन की प्रक्रिया को अनेक ऐसी घटनाओ द्वारा भ्रमित किया जा सकता है जिन पर नियन्त्रण नही रखा जा सकता। उदाहरण के लिए, नई कार्यपालिका का बनना, बजट मे कमी होना, समाचार-पत्रों की आलोचना, अन्य राजनीतिक क्रियाएँ आदि। फिर भी स्टाल की मान्यता के अनुसार प्रशिक्षण का निश्चित एव न्यायिक मूल्यांकन करने के लिए लक्ष्यो एव उनके परिणामों पर केन्द्रित रहना कई बार अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है।[2]

1 *William G Torpey* op cit, pp 170-180
2 *O G Stahl* op cit, p 106

2 विभिन्न उच्च स्तर के प्रशासकों में प्रशिक्षण वृत्ति का अभाव (**Lack of Training mindedness among Various Top-level Administrators**)—कुछ प्रशासक इस प्रवृत्ति के होते हैं कि प्रशिक्षण कार्य को फालतू समझते हैं। वे प्रशिक्षण-कार्यक्रमों को केवल इसीलिए समर्थन देते हैं क्योंकि ये लोकप्रिय हो चुके हैं, किन्तु अन्य आवश्यक सहयोग से वे हाथ खींच लेते हैं। यदि किसी अभिकरण में कोई नया उच्चाधिकारी ऐसा आ जाए जो प्रशिक्षण कार्यक्रमों की उपयोगिता में विश्वास नहीं रखता तो वह अब तक चली आ रही प्रशिक्षण योजनाओं को छिन्न-भिन्न कर देगा। प्रशिक्षण कार्यक्रम के प्रति अरुचि का कारण कुछ भी हो सकता है। प्रायः ऐसा अधिकारी जो अपने परिश्रम और मेहनत से उच्च पद पर आया है और जिसने प्रशिक्षण योजनाओं का कोई लाभ नहीं उठाया, वह दिल से इनका समर्थन नहीं करेगा। टोरप का कहना है कि किसी अभिकरण में प्रशिक्षण कार्यक्रम की सफलता के लिए उच्च प्रबन्ध को उसकी मूलभूत आवश्यकता पहचाननी चाहिए और उसे अपना हार्दिक समर्थन देना चाहिए।[1]

3 प्रशिक्षण कार्य को रूप देने में विधान सभाओं की धीमी गति (**Slowness of Legislatures to Formalize the Training Function**)—प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिए कानूनी प्रारूप प्राय व्यवस्थापिकाओं द्वारा तैयार किया जाता है किन्तु वे अपने कार्य में कई बार असफल रहती हैं। यही कारण है कि कई बार प्रशिक्षण की वैधता को इस आधार पर चुनौती दी जाती है कि प्रशिक्षण कार्यक्रम को सचालित करने के लिए कार्यपालिका के पास पर्याप्त व्यवस्थापिका शक्ति नहीं थी।

4 कर्मचारी के कार्यों और प्रशिक्षण कार्यों के बीच ढीला सम-वय (**Loose Co-ordination Between Employment and Training Functions**)—सेवीवर्ग की भर्ती तथा उनके प्रशिक्षण की समस्याएँ परस्पर घनिष्ठ रूप में सम्बन्धित हैं। यदि अयोग्य व्यक्तियों की भर्ती कर ली गई तो अच्छे से अच्छा प्रशिक्षण कार्यक्रम भी उनको योग्य नहीं बना सकता। इसी प्रकार यदि प्रशिक्षण कार्यक्रम निकम्मा है तो भर्ती किए गए व्यक्ति की उत्कृष्ट योग्यताएँ भी कुण्ठित हो जाएँगी अत यह जरूरी है कि भर्तीकर्त्ता एव प्रशिक्षणकर्त्ता दोनों के बीच उचित समन्वय हो। इस समन्वय का अभाव प्रशासन की एक महत्त्वपूर्ण समस्या है। इस समस्या का सम्बन्ध मानव शक्ति के उपयोग से है। एक दृष्टि से भर्ती एव प्रशिक्षण दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। एक की कमी को दूसरे द्वारा पूरा किए जाने की चेष्टा की जाती है। उदाहरण के लिए, जहाँ योग्य कर्मचारी प्राप्त करना कठिन होता है वहाँ प्रशिक्षण कार्यक्रमों पर अधिक जोर दिया जाता है। कुल मिलाकर टोरप का यह कहना सत्य है कि सेवीवर्ग प्रशासकों को भर्ती एव प्रशिक्षण के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध को समझना चाहिए और इन क्रियाओं के बीच लगातार प्रभावशील समन्वय स्थापित रखना चाहिए।

1 *William G Torpey* : op cit , p 177.

5. सामान्य सेवीवर्ग कार्यों से प्रशिक्षण का प्रशासकीय पार्थक्य (Administrative Separation of Training from General Personnel Functions)—अनेक बार प्रशिक्षण कार्य को सेवीवर्ग कार्यों से प्रशासकीय रूप से पृथक् कर दिया जाता है अर्थात् सेवीवर्ग के कार्यों का प्रशासन एक प्रकार से होता है और प्रशिक्षण कार्यों का प्रशासन दूसरे प्रकार से। इस प्रकार के पार्थक्य से प्रशिक्षण को एक ऐसे अधिकारी के हाथो मे सौंप दिया जाता है जो सेवीवर्ग अधिकारी से स्वतन्त्र रहता है। प्रशिक्षण सेवीवर्ग से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित कार्य है, अत इसे अलग करके अनेक सगठनात्मक सघर्ष एव अनावश्यक समस्याओ को जन्म दिया जाता है और सगठन के एक रूप व्यवहार मे बाधाएँ उत्पन्न की जाती हैं।

6 सेवाकालीन प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों की प्रामाणिकता (Accreditation of In-service Training Courses)—जब तक प्रशिक्षण का कोई व्यावहारिक उपयोग नहीं होता, तब तक प्रशिक्षणार्थी उसमे अपना पूरा ध्यान एव शक्ति नहीं लगा पाता। यदि सेवाकालीन प्रशिक्षणों को पदोन्नति आदि की दृष्टि से महत्त्व नहीं दिया जाता तो प्रशिक्षित व्यक्ति को घोर निराशा होती है। अनेक प्रशासकीय सगठनो मे यह सामान्य प्रवृत्ति है कि पदोन्नति करते समय केवल प्रशिक्षण को योग्यता का आधार नहीं बनाया जाता। यदि एक प्रशिक्षित व्यक्ति को पदोन्नति का अवसर दिया जाता है तो इसके दूसरे कई कारण होते हैं न कि यह उसने प्रशिक्षण प्राप्त किया है।

इस समस्या का समाधान करने के लिए प्राय यह सुझाया जाता है कि प्रशिक्षण अधिकारियो तथा सेवीवर्ग अधिकारियो के बीच इस प्रकार का समझौता होना चाहिए कि अमुक प्रशिक्षण प्राप्त कर लेने के बाद एक व्यक्ति को पदोन्नति तथा अन्य लाभ का पात्र मान लिया जाएगा। प्रशिक्षण कार्य को पदोन्नति कार्यक्रम अभिकरण का एक अभिन्न अग बना देना चाहिए।

7 कार्यभार (Work-load)—कुछ अभिकरणो मे कार्यभार इतना अधिक होता है कि पर्यवेक्षक एव कर्मचारी दोनो ही यह अनुभव करते हैं कि प्रशिक्षण कार्यक्रमो मे भाग लेने के लिए उनके पास समय नहीं है। प्रशिक्षण अपने वर्तमान कार्य को रोक कर ही प्राप्त किया जा सकता है और इसके लिए सगठन के उच्चाधिकारी एव स्वय प्रशिक्षणकर्त्ता भी कई बार तैयार नहीं होते किन्तु व्यावहारिक वास्तविकताएँ इससे भिन्न हैं। अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ है कि जब पर्यवेक्षकों एव कर्मचारियो को प्रशिक्षित कर दिया जाता है तो वर्तमान एवं भविष्य मे कार्य का गुण एव मात्रा बढ जाती है।

8 मदों का अभाव (Lack of Funds)—अनेक बार धन का अभाव प्रशिक्षण कार्यक्रमो की सफलता को मन्द कर देता है। जब इन कार्यक्रमो को कार्यान्वित करने के लिए पर्याप्त स्टॉफ नहीं दिया जाता या प्रशिक्षणार्थियो के कार्य को सम्पन्न करने के लिए अन्य व्यक्तियो को नियुक्त नहीं किया जाता या प्रशिक्षण के लिए आवश्यक साधन एव सामान नहीं जुटाए जाते तो इन कार्यक्रमो की सफलता

संदिग्ध बन जाती है। जब प्रतिदिन के कार्य को सम्पादित करने के लिए संगठन में पर्याप्त कर्मचारी उपलब्ध नहीं होते तो इन प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में शामिल होने के लिए नियमित रूप से सदस्य नहीं मिल पाते। इसी प्रकार आवश्यक वस्तुओं का अभाव प्रशिक्षकों को वह प्रशिक्षण देने से रोक सकता है जो प्रभिकरण के लिए अत्यन्त आवश्यक है। टोरपे का यह कथन यथार्थ है कि बिना पर्याप्त प्रशिक्षण के स्टॉफ, नियोजन, श्रेणी के लिए सहयोग, समन्वय एवं मूल्यांकन प्रक्रियाओं में बाधा उत्पन्न होती है।[1]

प्रशिक्षण की प्रक्रिया में पर्याप्त व्यय की आवश्यकता होती है। इसमें व्यय किया गया धन उसी समय कोई लाभ प्रदान नहीं करता। तत्काल की दृष्टि से तो वह अत्यन्त हानिकारक प्रतीत होता है किन्तु भविष्य की दृष्टि से हम इसे उपयोगी मान सकते हैं। प्रशिक्षण कार्यक्रमों को सचालित करने के लिए एक माली के जैसा धैर्य चाहिए, क्योंकि फल का वृक्ष आरोपित करने में माली को पर्याप्त परिश्रम करना पड़ता है और एक लम्बे समय तक उसे कोई फल प्राप्त नहीं होता। वह सारा श्रम भविष्य की आशाओं के पीछे ही करता है। कुछ अभिकरणों में प्रशिक्षण कार्यक्रमों का भविष्य भी ऐसा नहीं होता कि जो आर्थिक दृष्टि से उपयोगी माना जा सके। कारण चाहे सही हो या गलत, बुद्धिपूर्ण हो अथवा बुद्धिहीन, किन्तु यह एक तथ्य है कि जब तक पर्याप्त धन प्रदान नहीं किया जाएगा, तब तक प्रशिक्षण के सफल, सार्थक एवं प्रभावशील होने की सम्भावना नहीं रहती।

भारत में लोकसेवकों के लिए प्रशिक्षण व्यवस्था
(Training of Public Personnel in India)

परीक्षाओं द्वारा उच्च लोकसेवा के लिए जो स्नातक चुने जाते हैं उन्हें प्रशिक्षण के लिए भेज दिया जाता है। भारत में केन्द्रीय संस्थागत प्रशिक्षण (Central Institutional Training) और साथ ही काम पर प्रशिक्षण (On the Job Training) की पद्धति अपनाई गई है। इस कार्य के लिए एक राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी (National Academy of Administration) है, जहाँ पर सभी चुने हुए प्रत्याशियों को एक निश्चित अवधि के लिए भेजा जाता है। फिर भिन्न सेवाओं के लिए पृथक्-पृथक् प्रशिक्षण स्कूल हैं जिनमें उन सेवाओं के लिए चुने गए प्रत्याशी व्याख्याता के रूप में औपचारिक अनुदेश (Formal Instructions) प्राप्त करते हैं। इतना प्रशिक्षण पा चुकने के बाद उन्हें कार्यालयों में भेजा जाता है जहाँ वे व्यावहारिक रूप में कार्य करते हैं। इस प्रकार काम पर प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। प्रशिक्षण में पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों (Refresher Courses) के उपयोग द्वारा लोकसेवकों के ज्ञान और कुशलता को अद्यतन बनाए रखने का प्रयत्न किया जाता है।

सर्वप्रथम 1954 के प्रारम्भ में राज्य सरकारों को ऐसे आदेश दिए गए थे जिनमें अखिल भारतीय सेवाओं और केन्द्रीय सेवाओं (वर्ग प्रथम) के पदाधिकारियों

1 W. G. Torpey, op. cit., p. 179

के अभिनव पाठ्यक्रमो (Refresher Courses) के प्रबन्ध सम्बन्धी एक योजना प्रस्तावित की गई थी। 1957 में इस दिशा में प्रारम्भिक कदम उठाया गया और उन आई ए एस पदाधिकारियों के लिए जो छः से दस वर्ष तक की नौकरी कर चुके हो शिमला मे आई ए एस स्टाफ कॉलेज (I A S Staff College) में अभिनव पाठ्यक्रम आरम्भ किए गए। इसके बाद ही अप्रेल, 1958 में गृह मन्त्री ने यह निर्णय घोषित किया कि शीघ्र ही एक 'राष्ट्रीय प्रशिक्षण संस्थान' (National Academy of Training) की स्थापना की जाएगी। तत्पश्चात् विभिन्न मन्त्रालयों को आमन्त्रित किया गया कि वे विभिन्न सेवाओं के पदाधिकारियों के प्रशिक्षण संस्था की स्थापना पर सहमत हो गए और तब जुलाई, 1959 में दिल्ली में आई ए. एस प्रशिक्षण स्कूल में एक संयुक्त पाठ्यक्रम आरम्भ कर दिया गया, जिसमें निम्नलिखित प्रवर्गों के पदाधिकारी भाग लेने लगे—

(1) भारतीय प्रशासकीय सेवा (Indian Administrative Service)
(2) भारतीय विदेश सेवा (Indian Foreign Service)
(3) भारतीय लेखा-परीक्षण तथा लेखा सेवा (Indian Audit & Accounts Service)
(4) भारतीय सुरक्षा लेखा सेवा (Indian Defence Accounts Service)
(5) भारतीय डाक सेवा (Indian Postal Service)
(6) भारतीय आयकर सेवा (Indian Income-Tax Service)
(7) भारतीय आयात कर तथा आबकारी सेवा (Indian Customs & Excise Service)

मौलिक पाठ्यक्रमों के प्रारम्भ होने के तुरन्त बाद गृह प्रशासन ने यह निर्णय लिया कि दिल्ली के आई ए एस प्रशिक्षण स्कूल और शिमला के आई ए एस स्टाफ कॉलेज को आपस में संयुक्त कर दिया जाए और मसूरी में राष्ट्रीय प्रशिक्षण अकादमी की स्थापना की जाए। इसके पश्चात् ही एक सितम्बर, 1959 से मसूरी में यह अकादमी कार्य करने लगी।

इस पृष्ठभूमि के उपरान्त उपयुक्त होगा कि हम भारत में प्रशिक्षण के प्रकार और विभिन्न लोकसेवाओं के लिए प्रशिक्षण व्यवस्था पर दृष्टिपात करें।

प्रशिक्षण के प्रकार

भारत में प्रशिक्षण के प्रकारों पर डॉ. अवस्थी एवं माहेश्वरी ने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि सहित जो प्रकाश डाला है उसका सारांश इस प्रकार है—

प्रशिक्षण औपचारिक या अनौपचारिक दोनों ही प्रकार का हो सकता है। अनौपचारिक प्रशिक्षण वह प्रशिक्षण है जिसमें कार्य करके त्रुटियों से सीखकर एवं अभ्यास के माध्यम से प्रशासकीय कुशलता प्राप्त की जाती है। चूँकि अनौपचारिक प्रशिक्षण अप्रत्यक्ष रूप से दिया जाता है, अतः यह प्रशिक्षणार्थी के मन पर गहरा

प्रभाव छोड़ता है। कर्मचारी तथा उनके वरिष्ठ अधिकारियों के बीच दैनन्दिन सम्बन्धों, सभाओं तथा कर्मचारी वर्ग की बैठकों, कर्मचारियों के संगठन के समाचार-पत्रों तथा प्रकाशनों, व्यावसायिक संघों का बैठकों तथा उस साहित्य के पढ़ने और अध्ययन करने से, जो कर्मचारी स्वयं अपने सम्बन्ध में या अपने पर्यवेक्षक के सुझाव पर प्रयोग में लाते हैं, प्रशिक्षण प्राप्त हो जाता है। चूँकि ऐसे प्रशिक्षण का सम्बन्ध कर्मचारी के नियमित कृत्यों से होता है, अतः वह उसे अपने निजी अनुभव से संयुक्त करके उसका सर्वोत्तम लाभ उठा सकता है। चूँकि इसके बारे में कोई बाध्यता नहीं है, अतः इसकी प्रवृत्ति सकारात्मक होती है। इसका प्रभाव गहरा होता है, चाहे वह अच्छा हो या बुरा। इसी प्रकार के प्रशिक्षण की रीति अंग्रेजों ने भारत में अपनाई थी। नवनियुक्त लोकसेवक को इसके लिए प्रोत्साहित किया जाता था कि वह प्रायः जिलाधीश के निवास स्थान पर जाया करे और उससे वैयक्तिक सम्पर्क बढ़ाए। प्रायः नवीन अधिकारी जिलाधीश के पास जाता था और अपनी सेवा के प्रारम्भ में कुछ दिनों तक जिलाधीश के साथ रहता था। दौरे के समय वह किसी वरिष्ठ अधिकारी के साथ हो लेता था तथा किसी वरिष्ठ बन्दोबस्त अधिकारी के मार्गदर्शन में लगान बन्दोबस्त के मामलों सम्बन्धी विवादों को निपटाता था। इस प्रकार शासन-कला का वस्तुतः प्रयोग करके और साथ ही उसका प्रयोग देखकर उसे समझने का अवसर मिलता था। प्रायः वह अनजाने में ही कुछ आदर्श तथा मापदण्ड अपना लेता था। प्रशिक्षण की ऐसी प्रणाली की प्रशंसा करते हुए ट्रेवेलियन (Trevelyan) ने, जिसका नाम भारतीय लोकसेवा विकास तथा उत्थान के साथ अमिट रूप से संयुक्त है, कहा था कि (भारत में) लोकसेवक की वास्तविक शिक्षा उस उत्तरदायित्व में निहित है जो उस पर उस छोटी-सी आयु में आ पड़ता है। फलस्वरूप, उसके अन्तर्निहित गुण प्रकट हुए बिना नहीं रहते; साथ ही लोकसेवाओं को कमजोर न करने का दायित्व उसके कर्त्तव्यों की विभिन्न तथा आकर्षक प्रकृति और उसके उन वरिष्ठों के उदाहरणों तथा उपदेशों में भी निहित होता है जो उसे एक अधीनस्थ अधिकारी की अपेक्षा एक छोटे भाई के रूप में अधिक मानते हैं।

फिर भी अनौपचारिक प्रशिक्षण की अन्तिम सफलता उच्च पदाधिकारी की वरिष्ठता तथा अनुभव और नवनियुक्त अधिकारी के प्रति उसकी रुचि पर निर्भर करती है। सरकारी कार्यों में असाधारण वृद्धि होने के फलस्वरूप वरिष्ठ अधिकारी अब इतने व्यस्त रहते हैं कि व्यावहारिक प्रशिक्षण हेतु उनके पास भेजे गए युवक अधिकारियों पर वे पर्याप्त ध्यान तथा समय नहीं दे पाते। फलस्वरूप, नए अधिकारी अपने वरिष्ठ साथियों के अनुभव का लाभ नहीं उठा पाते हैं, अतः विवश होकर उन्हें प्रयोग तथा उदाहरण की रीति द्वारा ही सीखना पड़ता है। यह स्थिति उत्साहवर्द्धक नहीं है। हम गोरवाला के इस सुझाव से सहमत हैं कि कुछ उपयुक्त वरिष्ठ अधिकारियों को (उनकी वरिष्ठता के होते हुए भी) कुछ जिलों में इसलिए भेजना चाहिए कि इन जिलों को युवकों के लिए प्रशिक्षण क्षेत्र बनाया जा सके।

औपचारिक प्रशिक्षण का उद्देश्य कर्मचारी के सेवाकाल मे विभिन्न चरणो पर सुनिश्चित पाठ्यक्रमो द्वारा प्रकासकीय कुशलता का सचार करना है। इस पर अब अधिकाधिक ध्यान दिया जा रहा है, क्योंकि अब प्रशासको की सख्या बढाने तथा उन्हे उन्नत करने की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। परिणामत अनौपचारिक प्रशिक्षण की पूर्ति अनिवार्यत औपचारिक प्रशिक्षण द्वारा पूर्ण की जानी चाहिए। यह आवश्यक है कि प्रशिक्षण योजनाएँ औपचारिक अनुदेश जारी करके बढाई जाएँ। यह प्रशिक्षण अनुदेश व्याख्यान तथा समूह चर्चा, सेवीवर्ग प्रशासन के लिए विशिष्ट पाठ्यक्रम वित्तीय प्रबन्ध, सम्मेलन, निर्माणशाला तथा गोष्ठियो का आयोजन करके दिया जा सकता है।

(1) प्रवेश-पूर्व प्रशिक्षण (Pre entry Training)—लोकसेवको के लिए प्रवेश-पूर्व प्रशिक्षण का महत्त्व दिन-प्रतिदिन बढता जा रहा है। सेवा मे प्रवेश करने स पूर्व ही उसके सम्बन्ध म उम्मीदवार द्वारा विश्वविद्यालय, समाज, प्रशिक्षण सस्था, पुस्तकालय आदि स्थानो पर जो प्रशिक्षण प्राप्त किया जाता है वह सब इस श्रेणी मे आता है। शब्द 'प्रवेश पूर्व प्रशिक्षण' किसी धन्धे या व्यवसाय को सकेत नहीं करता। *भारत मे शायद ही कोई 'प्रवेश पूर्व प्रशिक्षण' योजना हो परन्तु* राजस्थान सरकार ने प्रवेश-पूर्व प्रशिक्षण का एक आश्चर्यजनक उदाहरण प्रस्तुत किया है। इस प्रकार सरकार द्वारा 1960 मे तय किया गया था कि जो उम्मीदवार सचिवालय तथा व्यवसाय प्रशिक्षण के जूनियर डिप्लोमा कोर्स मे 65 प्रतिशत या इससे अधिक अक प्राप्त करेगा, उच्च श्रेणी के लिपिको के पदो पर नियुक्त किया जाएगा। यह परीक्षा जुलाई, 1959 म राजस्थान विश्वविद्यालय के सहयोग से प्रारम्भ की गई थी।

(2) पुनरावलोकन प्रशिक्षण (Orientation Training)—पुनरावलोकन प्रशिक्षण का उद्देश्य नव-नियुक्त कमचारी को कार्य सम्बन्धी बुनियादी अवधारणाओ, उसके नवीन पर्यावरण, सगठन तथा उसके लक्ष्य से परिचित कराना होता है। भारत मे 'पुनरावलोकन प्रशिक्षण' महत्त्वपूर्ण बनता जा रहा है ताकि नौकरशाही, विशेषकर ग्राम्य नौकरशाही, नवीन उत्तरदायित्वो से ताल-मेल मिलाकर चल सके। मसूरी मे सामुदायिक विकास अध्ययन तथा अनुसन्धान का केन्द्रीय विद्यालय विशेष रूप से इसी समस्या के समाधान मे व्यस्त है।

(3) सेवाकालीन प्रशिक्षण (In-Service Training)—सेवाकालीन प्रशिक्षण के साथ दो लक्ष्य होते हैं— पहला, कर्मचारी को अच्छे अच्छे प्रयत्नों के लिए प्रोत्साहित करना; और दूसरा, उसके कार्यपालन को सुधारने मे उसकी सहायता करना। भारतीय भर्ती प्रणाली मे, जिसके अन्तर्गत सामान्य योग्यताएँ रखने वाले युवको को लोकसेवको के लिए चुना जाता है, उच्चतर सेवाओ के लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण की एक व्यापक योजना की व्यवस्था की गई है, और कुछ ही वर्षों मे उच्चतर सेवाओ के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमो का एक जाल-सा बिछ गया है।

(4) प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण (Post entry Training)—प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण तथा सेवाकालीन प्रशिक्षण के मध्य स्पष्ट भेद परीन नहीं होता, और मिल्टन एम मेण्डले ने इस भेद का वर्णन करते हुए कहा है कि 'प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण यद्यपि बहुत अंशों में कर्मचारी के कार्य से प्रत्यक्षतः सम्बन्धित नहीं है किन्तु सगठन के लिए यह अवश्य ही सहायक सिद्ध होता है। लोक निर्माण या राजमार्ग विभाग में किसी विशेषज्ञ कर्मचारी के लिए अभियान्त्रिकी में प्रशिक्षण इस प्रकार के प्रशिक्षण का एक उदाहरण है। इस दृष्टान्त में कर्मचारियों से सम्बन्धित कार्य या लोक-प्रशासन में दिए गए प्रशिक्षण को सेवाकालीन प्रशिक्षण समझा जा सकता है; फिर भी हमारे इस उदाहरण में अभियान्त्रिकी प्रशिक्षण में सेवीवर्ग प्रशासन के निकट रूप में सम्बन्धित कर्मचारी के प्रशिक्षण से अधिक मूल्यवान है।' यद्यपि प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण का एकदम सीधा सम्बन्ध कर्मचारियों के कार्य से नहीं होता है फिर भी यह सगठन वडे काम की वस्तु है। भारत में प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण की आवश्यकता को अधिकाधिक अनुभव किया जा रहा है। इसका संकेत इस बात से मिलता है कि केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों के अध्ययन हेतु छुट्टी सम्बन्धी व्यवस्था को अधिक उदार बना दिया गया है। 1961 में केन्द्रीय सरकार ने निश्चय किया था कि अध्ययन के लिए छुट्टी केवल ऐसे अध्ययनों के लिए ही दी जा सकती है जो भले ही कर्मचारी के कार्य से निकट या सीधा सम्बन्ध न रखते हों किन्तु लोकसेवक के रूप में उसकी योग्यताओं में सुधार हेतु सहायक हों और उसे इस योग्य बनाते हों कि वह लोकसेवा की अन्य शाखाओं में कार्य करने वाले कर्मचारियों को सहयोग दे सकें।

कार्मिक एवं प्रशासनिक सुधार विभाग (गृह मन्त्रालय) का प्रशिक्षण विभाग

इस विभाग का प्रशिक्षण प्रभाग मुख्यतः लोक-प्रशासन तथा सामान्य प्रबन्ध के क्षेत्र में प्रशिक्षण नीतियाँ तैयार करने और प्रशिक्षण कार्यक्रमों का समन्वय करने के लिए उत्तरदायी है, जिसका उद्देश्य प्रशासनिक कार्यकुशलता में सुधार लाना तथा उसे अधिक कारगर बनाना है ताकि विकास कार्यक्रमों के द्वारा तीव्रगति से जनता की आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए भारतीय प्रशासन को चुस्त बनाया जा सके।

प्रशिक्षण प्रभाग की जिम्मेदारी—केन्द्रीय सरकार की सामान्य प्रशिक्षण नीतियाँ तैयार करना, राज्य सरकारों को अपनी प्रशिक्षण नीतियों तथा कार्यक्रमों के प्रतिपादन में सहायता करना, प्रशिक्षण की आवश्यकताओं का पता लगाना, विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार करना तथा उनका सचालन करना और प्रशिक्षण कार्यक्रमों के लिए संस्थाओं तथा सगठनों को सहायता उपलब्ध कराना है। यह लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी और सचिवालय प्रशिक्षण तथा प्रबन्ध संस्थान, नई दिल्ली के प्रशासन के लिए भी उत्तरदायी है। वर्ष 1981 में भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली भी इस विभाग के नियन्त्रणाधीन था गया है। प्रशिक्षण प्रभाग, आपसी सहयोग के लिए अन्तर्राष्ट्रीय अभिकरणों के

साथ समन्वय करने के लिए केन्द्रीय सरकार के एक मॉडल एजेन्सी के रूप में भी कार्य करता है।

प्रशिक्षण नीतियों का निरूपण—प्रशिक्षण प्रभाग केन्द्रीय मन्त्रालयों, विभागों और सवर्ग प्राधिकरणों के परामर्श से एक विस्तृत प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार करता है।

इस योजना की मुख्य विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

(1) कार्यात्मक प्रशिक्षण—केन्द्रीय सरकार के मन्त्रालय / विभाग अपने-अपने विभिन्न कार्यात्मक क्षेत्रों में प्रशिक्षण की आवश्यकताओं का पता लगाने तथा प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार करने और उन्हें सचालित करने के लिए उत्तरदायी हैं। *प्रशिक्षण प्रभाग प्रशिक्षण की आवश्यकता का पता लगाने, प्रशिक्षण नीतियाँ तैयार करने* और प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों की रूपरेखा तैयार करने में यथावश्यक सहायता तथा सलाह देता है।

(2) सामान्य प्रबन्ध प्रशिक्षण—प्रशिक्षण प्रभाग सामान्य प्रबन्ध के क्षेत्र में (विभिन्न स्थापित सेवाओं के ग्रुप 'क' तथा 'ख' अधिकारियों के लिए) प्रशिक्षण कार्यक्रमों की योजना बनाता है और उन्हें सचालित करता है। इस प्रशिक्षण का उद्देश्य जटिल प्रबन्ध कार्य की चुनौतियों का सामना करने के लिए मध्यस्तरीय अधिकारियों को तैयार करना होता है।

(3) समूह 'ग' तथा 'घ' के प्रशिक्षकों के लिए प्रशिक्षण—प्रशिक्षण प्रभाग सचिवालय प्रशिक्षण तथा प्रबन्ध संस्थान के माध्यम से विभिन्न विभागों के समूह 'ग' तथा 'घ' कर्मचारियों को प्रशिक्षणहेतु प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए कार्यक्रमों की व्यवस्था करता है ताकि समूह 'ग' तथा 'घ' के अधिक संख्या में कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने के लिए मत्रालयों / विभागों में विकेन्द्रीकरण के आधार पर उपयुक्त प्रशिक्षण कार्यक्रम सचालित किए जा सकें।

(4) विदेशों में प्रशिक्षण—कोलम्बो योजना के अधीन भारतीय लोकसेवा के अधिकारी विभिन्न ब्रिटिश संस्थानों तथा विश्वविद्यालयों में भिन्न-भिन्न विषयों पर जन शक्ति विकास परियोजना में प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं।

(5) विदेशी प्रशासकों के लिए प्रशिक्षण—यह विभाग विकासशील देशों के बीच तकनीकी सहयोग बढ़ाने के अपने प्रयास के एक अंश के रूप में विकासशील देशों के प्रशासकों को प्रशिक्षण देने में सक्रिय रूप से लगा हुआ है। यह कार्य विकास प्रशासन प्रशिक्षण के क्षेत्र में विकासशील देशों के बीच तकनीकी सहयोग बढ़ाने के प्रयासों की नियमित विशेषता है। 1982-83 तक लगभग 50 विकासशील देशों से 350 से अधिक विकास प्रशासकों ने विभिन्न कार्यक्रमों में भाग लिया था।

(6) प्लान (योजना) के अधीन कार्मिकों का प्रशिक्षण—योजना के कार्यान्वयन के लिए किए जाने वाले कार्यों के सम्बन्ध में प्रशिक्षण की आवश्यकताओं का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने के बाद 'विकास प्रशासन के लिए कार्मिकों का

प्रशिक्षण' के लिए योजना वर्ष 1976–77 से पांचवी पंचवर्षीय योजना में एक योजना शामिल कर ली गई थी। इस योजना का विस्तार छठी पंचवर्षीय योजना में भी कर दिया गया है। केन्द्रीय और राज्य सरकारों तथा सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में वरिष्ठ तथा मध्य-स्तरीय अधिकारियों के भीतर योजना के कार्यान्वयन की क्षमता बढ़ाए जाने के विचार से विभिन्न स्थान परियोजनाओं की, योजना, निर्माण, मूल्यांकन, कार्यान्वयन, अनुश्रवण और मूल्यांकन के कार्यों में लगे हुए कार्मिकों के लिए इस योजना के अधीन बहुत से प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जा रहे हैं। इस योजना के अधीन शामिल किए गए अन्य कार्यक्रमों के क्षेत्र इस प्रकार हैं– प्रशिक्षकों का प्रशिक्षण, वित्तीय प्रबन्ध, निर्गमित योजना, कार्यक्रम मूल्यांकन, प्रबन्ध सूचना प्रणाली जिला तथा खण्ड स्तर की योजना, लोकोपयोगिताओं का प्रबन्ध परिवर्तन प्रबन्ध तथा आदिवासी विकास प्रशासन आदि। कमजोर वर्गों को ऋण सहायता, शहरी बस्तियों में परिवहन व्यवस्था, पूंजीनिवेश के प्रस्तावों का मूल्यांकन और चयन ऊर्जा मितव्ययता, भावी प्रबन्ध और प्रणाली विश्लेषण पशुधन विकास संगठन के पहलुओं, जिला उद्योग केन्द्रों के मुद्दे, ग्राम्य विकास की विशेष योजनाओं आदि जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर अनुभव पर आधारित अनेक अल्पकालीन संगोष्ठियों का भी आयोजन किया जा रहा है। इन कार्यक्रमों को एक संयुक्त समिति द्वारा अन्तिम रूप दिया जाता है जिसमें कार्मिक और प्रशासनिक विभाग के प्रशिक्षण प्रभाग, योजना आयोग तथा वित्त मन्त्रालय के योजना वित्त प्रभाग के प्रतिनिधि शामिल होते हैं। यह समिति संयुक्त सचिव (प्रशिक्षण) की अध्यक्षता में कार्य करती है।

(7) स्वायत्त संस्थाओं के सहयोग से कार्यकारी तथा प्रबन्ध विकास कार्यक्रम—केन्द्रीय सचिवालय सेवा के समूह 'क' अधिकारियों के लिए अनिवार्य सेवाकालीन पुनश्चर्या पाठ्यक्रम से सम्बन्धित प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिश के अनुसरण में प्रशिक्षण प्रभाग कार्यकारी तथा प्रबन्ध विकास कार्यक्रम का आयोजन करता है।

(8) प्रबन्ध फिल्में—केन्द्रीय विभागों, राज्यों तथा सरकारी उपक्रमों की प्रशिक्षण संस्थाओं को फिल्में उधार देने के लिए प्रबन्ध फिल्म पुस्तकालय बनाए जाने से सम्बन्धित काम समय-सारणी के अनुसार आगे बढ़ रहा है। विदेशों में बनाई गई प्रबन्ध फिल्में भारतीय परिस्थितियों के लिए अधिक अनुकूल नहीं होती। इस कमी को दूर करने के लिए इस विभाग ने देश की प्रतिष्ठित संस्थाओं के सहयोग से प्रबन्ध फिल्म बनाने का काम हाथ में लिया है। 1982-83 के दौरान प्रशिक्षण विभाग ने 'भारतीय प्रबन्ध संस्थान' मद्रास के सहयोग से सरकारी तन्त्र में लक्ष्यपरक प्रबन्ध' (मैनेजमेन्ट बाई ऑब्जेक्टिव्स इन गवर्नमेंट सेट अप) नामक एक फिल्म बनाई। सरकार में पर्ट / सी पी एम. का प्रयोग (यूज ऑफ पी ई आर टी / सी पी एम इन गवर्नमेन्ट), के नाम से एक दूसरी फिल्म बनाने का कार्य शुरू कर दिया गया है। इस विभाग ने प्रबन्ध विकास संस्थान, गुड़गांव द्वारा निर्मित

योजना (कारपोरेट प्लानिंग) विषय पर फिल्म बनाने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है। भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, दिल्ली ने एकीकृत परियोजना प्रबन्ध (इन्टीग्रेटड प्राजेक्ट मैनेजमेन्ट) पर एक फिल्म बनाने का प्रस्ताव भेजा है जो इस विभाग के विचाराधीन है।

(9) अनुसन्धान एवं मूल्यांकन—कार्मिक प्रशासन के बड़े क्षेत्रों जैसे भर्ती, पदोन्नति, निष्पादन मूल्यांकन, संवर्ग प्रबन्ध आदि में निरन्तर अनुसन्धान करने के लिए स्थायी व्यवस्थाएँ विद्यमान हैं। जिन क्षेत्रों की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है उनका पता लगाने तथा उनमें सुधार करने के लिए आवश्यक उपायों के सुझाव देने हेतु विद्यमान नीतियों तथा पद्धतियों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करने के प्रयास किए जाते हैं। मूल्यांकन किसी भी प्रशिक्षण प्रयत्न का महत्त्वपूर्ण अंश है। विभिन्न प्रशिक्षण संस्थाओं द्वारा अपने प्रशिक्षण कार्यक्रमों का मूल्यांकन करने के लिए अपनाई गई विभिन्न तकनीकों तथा पद्धतियों का पता लगाने के लिए सर्वेक्षण किया जाता है। इस प्रयोजन के लिए 1982-83 में एक प्रश्नावली तैयार की गई थी और 70 प्रशिक्षण संस्थाओं को भेजी गई थी जिनमें से 43 संस्थाओं ने उत्तर भेजे। इन संस्थाओं से प्राप्त उत्तरों का अब विश्लेषण कर लिया गया है और इस विषय पर एक रिपोर्ट शीघ्र प्राप्त हो जाएगी।

(10) प्रकाशन—यह विभाग समय समय पर प्रकाशन निकालता रहता है। संस्थान मुख्य रूप से अपने प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भाग लेने वालों के लिए विभिन्न विषयों पर कई प्रकाशन तथा मोनोग्राफ समय-समय पर प्रकाशित करता रहा है।

प्रमुख प्रशिक्षण संस्थान

भारत में लोक सेवकों के लिए जो प्रशिक्षण संस्थान हैं उनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—(1) लाल बहादुर शास्त्री प्रशासन अकादमी, मसूरी, (2) भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली, (3) सचिवालय प्रशिक्षण तथा प्रबन्ध संस्थान, नई दिल्ली, (4) एडमिनिस्ट्रेटिव स्टाफ कॉलेज, हैदराबाद, (5) नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ कम्युनिटी डवलपमेन्ट, हैदराबाद, (6) पुलिस प्रशिक्षण महाविद्यालय, आबू।

(1) मसूरी की राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी को ही 2 अक्तूबर, 1972 से लाल बहादुर शास्त्री प्रशासन अकादमी कहा जाने लगा है। इसमें प्रशिक्षण के लिए शिक्षकों की एक स्थाई मण्डली है। उनके अतिरिक्त, यहाँ लोक प्रशासन के भारतीय संस्थान के सम्मानित अधिकारियों और अन्य वरिष्ठ आगन्तुकों से भी व्याख्यान दिलवाए जाते हैं। भिन्न-भिन्न विषयों का एक-एक दल बनाकर सामूहिक अध्ययन होता है और पुस्तक समीक्षा विधि का भी प्रयोग किया जाता है। प्रशिक्षार्थियों में शारीरिक और मानसिक गुणों के विकास के लिए शारीरिक प्रशिक्षण, खेलकूद, निशानेबाजी, घुड़सवारी, तैराकी, मोटर-चालन आदि की व्यवस्था है। भारतीय प्रशासन सेवा के परिवीक्षाधीन अधिकारियों के लिए 1960 से 'सैण्डविच प्रशिक्षण

कार्यक्रम' भी लागू किया गया है जो इस प्रकार होता है—(i) परिवीक्षाधीन अधिकारी छः माह तक अकादमी में रहता है, (ii) सम्बन्धित राज्य में एक वर्ष तक प्रयोगात्मक प्रशिक्षण प्राप्त करता है, (iii) फिर छः माह के प्रशिक्षण के लिए अकादमी में पुनः लौट आता है। अकादमी में तीन प्रकार के पाठ्यक्रमों का विधान है-(अ) भारतीय प्रशासन सेवा के अधिकारियों के लिए एकवर्षीय पाठ्यक्रम, (आ) जो दस या पन्द्रह साल की भारतीय प्रशासनिक सेवा कर चुके हैं उन वरिष्ठ अधिकारियों के लिए छः सप्ताह का अभिनव प्रशिक्षण पाठ्यक्रम, (इ) अखिल भारतीय सेवाओं और केन्द्रीय सेवाओं (प्रथम वर्गीय) के सभी अधिकारियों के लिए पाँच महीने का संयुक्त पाठ्यक्रम। इन सभी पाठ्यक्रमों का उद्देश्य प्रशिक्षणार्थियों के दृष्टिकोण को व्यापक बनाना है। प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों की प्रवृत्ति समन्वयवादी है।

(2) भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली द्वारा अल्पकालीन पाठ्यक्रमों को शासकीय सेवा में कार्यरत कर्मचारियों अथवा विश्वविद्यालय में शिक्षण कार्य में लगे व्यक्तियों के लिए संचालित किया जाता है। साधारणतया केन्द्र और राज्य सरकारों के उप-सचिव और अवर-सचिवों की श्रेणी के कर्मचारी इन पाठ्यक्रमों में भाग लेते हैं। मध्यम श्रेणी के अधिकारियों के लिए इस संस्थान के अभिनव पाठ्यक्रम बड़े लाभदायक सिद्ध हुए हैं। ये पाठ्यक्रम एक ओर तो पदाधिकारियों के साथ अपनी समस्याओं के विषय में विचार विनिमय का अवसर प्रदान करते हैं और दूसरी ओर समस्याओं के सम्बन्ध में कर्मचारियों को आधुनिकतम विचारों के सम्पर्क में रखते हैं। सामान्यतः भारत सरकार के वरिष्ठ अधिकारी अथवा विषय विशेषज्ञ अपने व्याख्यानों से कर्मचारियों को प्रशिक्षित करते हैं। प्रशिक्षणार्थियों के लिए यह व्यवस्था भी है कि वे भारत सरकार के कार्यालयों को देखें और वहाँ की कार्य पद्धति देखकर अपने ज्ञान तथा अनुभव में वृद्धि करें। यह संस्थान माध्यमिक स्तर के प्रशासकों के लिए प्रशिक्षण प्रभाग द्वारा प्रायोजित कार्यकारी विकास कार्यक्रमों का केन्द्रबिन्दु है। भारतीय लोक प्रशासन संस्थान में आयोजित कार्यक्रम, विभिन्न केन्द्रीय मन्त्रालयों/विभागों, राज्य सरकारों सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों और केन्द्रीय तथा राज्य प्रशिक्षण संस्थाओं में कार्य कर रहे अधिकारियों के लिए तैयार किए जाते हैं। इन कार्यक्रमों की एक रूपरेखा इस प्रकार है—

(1) सक्रिया अनुसंधान तथा निर्णय लेने सम्बन्धी कार्यक्रम, (2) प्रशासनिक नेतृत्व तथा व्यवहार सम्बन्धी पाठ्यक्रम, (3) संगणक परिचय पर पाठ्यक्रम, (4) अभिनव प्रबन्ध सम्बन्धी पाठ्यक्रम, (5) जनजातीय विकास प्रशासन सम्बन्धी पाठ्यक्रम, (6) प्रशासनिक नेतृत्व तथा व्यवहार सम्बन्धी पाठ्यक्रम, (7) सक्रिया अनुसंधान परिचय सम्बन्धी पाठ्यक्रम, (8) प्रशिक्षण पद्धतियों तथा तकनीकों पर कार्यशाला, (9) कार्मिक नीतियों तथा व्यवहार सम्बन्धी पाठ्यक्रम (10) विषय अध्ययन तथा अन्य प्रशिक्षण सम्बन्धी कार्यशाला, (11) परियोजना निर्माण तथा मूल्यांकन सम्बन्धी पाठ्यक्रम, (12) प्रशासन विकास सम्बन्धी

पाठ्यक्रम, (13) बजट तथा वित्तीय नियन्त्रण सम्बन्धी पाठ्यक्रम, (14) सामग्री आयोजना सम्बन्धी पाठ्यक्रम, (15) सक्रिय अनुसंधान परिचय सम्बन्धी पाठ्यक्रम, (16) जिला आयोजन सम्बन्धी पाठ्यक्रम, (17) कार्मिक प्रशासन सम्बन्धी पाठ्यक्रम, (18) विधि और व्यवस्था प्रशासन में सगणकों के प्रयोग सम्बन्धी पाठ्यक्रम, (19) प्रशासन में मानव-व्यवहार का पता लगाने सम्बन्धी पाठ्यक्रम, (20) प्रशासनिक नेतृत्व तथा व्यवहार सम्बन्धी पाठ्यक्रम, (21) जनजातीय विकास प्रशासन सम्बन्धी पाठ्यक्रम, (22) नीति-निर्माण तथा कार्यान्वयन सम्बन्धी पाठ्यक्रम, एव (23) सगणक पद्धति, विश्लेषण तथा डिजाइन सम्बन्धी पाठ्यक्रम।

(3) सचिवालय प्रशिक्षण तथा प्रबन्ध संस्थान, नई दिल्ली द्वारा शाखा-अधिकारियों सहायकों और निम्न वर्गीय लिपिकों के लिए चुने गए कर्मचारियों को प्रशिक्षण दिया जाता है। इसका पुराना नाम केन्द्रीय सचिवालय प्रशिक्षण स्कूल था जिसकी स्थापना मई, 1948 में हुई थी। इस संस्थान में सगठन और रीतियों, कार्यालयों की कार्य प्रणाली, वित्तीय नियम, विनियम आदि का भी प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रशिक्षण पूरा कर लेने के बाद प्रशिक्षणार्थियों को व्यावहारिक प्रशिक्षण के लिए विभिन्न मन्त्रालयों में विभिन्न पदों पर नियुक्त किया जाता है। उच्च श्रेणियों में लगे कर्मचारियों के लिए यह संस्थान अभिनव पाठ्यक्रमों का भी आयोजन करता है।

(4) एडमिनिस्ट्रेटिव स्टॉफ कॉलेज, हैदराबाद की स्थापना प्राविधिक शिक्षा सम्बन्धी अखिल भारतीय परिषद् की सिफारिश पर 1957 में की गई थी। यह इग्लैण्ड में हेनले के एडमिनिस्ट्रेटिव स्टॉफ कॉलेज के नमूने पर गठित है। प्रविवरण (Prospectus) के अनुसार "यह कॉलेज ऐसे अध्ययन की व्यवस्था करता है, जिससे सार्वजनिक जीवन में सगठन और प्रशासन की प्रविधियों तथा सिद्धान्तों का अनुसंधान किया जा सके। कॉलेज प्रशासकीय क्षमता के अनुभवी निष्पादकों को निकट लाने का प्रयत्न करता है और उन्हें विभिन्न प्रशासकीय कार्य-प्रणालियों में परीक्षण का अवसर प्रदान करता है ताकि वे भविष्य में और उच्च दायित्वों के लिए अपने को तैयार कर सकें और इस कालेज की मान्यता है कि स्त्री-पुरुषों को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से—जैसे, निजी उद्योग, वाणिज्य तथा लोकसेवा एक स्थान पर लाकर उनके अनुभवों तथा विचारों के आदान-प्रदान में अधिकतम सुविधा प्रदान करने की व्यवस्था की जानी चाहिए और इस प्रकार भाग लेने वाले व्यक्तियों के व्यक्तित्व को समृद्ध बनाया जा सकता है, तथा इससे विभिन्न उद्यमों में प्रशासकीय कुशलता अधिक बढ़ जाएगी और राष्ट्रीय स्तर पर उनकी उत्पादन क्षमता भी बढ़ जाएगी।" इस कॉलेज में नवागन्तुक प्रवेश नहीं पाते, यह अनुभवी पदाधिकारियों और प्रशासकों को ही विचार-विनिमय का अवसर देता है। प्रशासक गण केवल राजकीय क्षेत्रों के ही नहीं वरन् व्यापार, उद्योग तथा अन्य क्षेत्रों के भी हो सकते हैं। कॉलेज में यद्यपि अर्थशास्त्र, योजना, प्रबन्ध, हिसाब-किताब, सविधान और सरकारी प्रशासन पर अधिकारी विद्वानों से व्याख्यान दिलाए

जाते हैं तथापि कोई नियमित अध्यापन-क्रम नहीं चलता। पाठ्यक्रम के मुख्य भाग संगठनों की संरचना, आन्तरिक और बाह्य सम्बन्ध अर्थात् श्रम और प्रशासन तथा जीवन शक्ति से सम्बन्धित होते हैं।[1] प्रशिक्षण पद्धति सामूहिक विचार-विनिमय द्वारा अध्ययन करने की है। स्टॉफ कॉलिज, हैदराबाद के प्रशिक्षण-कार्यक्रम का स्वरूप और विषय-वस्तु पाँच मुख्य बातों पर आधारित है—प्रथम, कुछ सामान्य समस्याएँ होती हैं। वे सभी प्रशासकों के समक्ष चाहे वे किसी क्षेत्र में काम करते हैं अनिवार्यतः आती हैं। द्वितीय, प्रशासकों के कर्त्तव्य सार्वजनिक तथा निजी दोनों ही क्षेत्रों में दिन-प्रतिदिन जटिल तथा वैभिन्यपूर्ण होते जा रहे हैं। तृतीय प्रत्येक प्रकार के प्रशासक को उन लोगों की तुलना में जो निजी क्षेत्र में तथा अन्य क्षेत्रों में संलग्न हैं, तथा लोकहित की तुलना में, जो यथार्थ भूमिका अदा करनी पड़ती है, उसकी निरन्तर समीक्षा की आवश्यकता है। चतुर्थ, आज के अत्यन्त वैविध्ययुक्त प्रजातान्त्रिक समाज में उद्देश्यों तथा संगठनों की जटिलता में वृद्धि होने के कारण उसके अध्ययन के लिए रूढ़िवादी प्रणाली की अपेक्षा विचारोत्तेजक एवं लोचदार प्रणाली की आवश्यकता है। पंचम, अध्ययन की प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जो उन गुणों तथा कुशलताओं को प्रकट कर सके, जो ऐसे स्त्रियों या पुरुषों के लिए वांछनीय हों और जो अपने अनुभव तथा योग्यता के कारण अपनी व्यापारिक संस्थाओं के भावी विकास में एक प्रभावशाली भूमिका अदा करने के लिए आमन्त्रित किए जा सकें।[2]

(5) सामुदायिक विकास तथा पंचायती कार्यक्रमों से सम्बद्ध मूल धारणाओं और उद्देश्यों की समुचित जानकारी बढ़ाने के लिए राज्य सरकारों की देखरेख में समन्वित प्रशिक्षण केन्द्र खोले गए हैं। वहाँ इन कार्यक्रमों से सम्बन्धित सरकारी तथा गैर-सरकारी कार्यकर्त्ताओं को विभिन्न राज्य सरकारों की देख-रेख में प्रशिक्षण दिया जाता है।

इन प्रशिक्षण संस्थानों में सबसे ऊपर हैदराबाद का स्वायत्तशासी सामुदायिक विकास राष्ट्रीय संस्थान है जिसकी स्थापना जून, 1958 में मसूरी में की गई थी। 1964 में इसे हैदराबाद ले जाया गया और 1965 में इसे एक रजिस्टर्ड सोसायटी में बदल दिया गया।

यह सामुदायिक विकास संस्थान अपने चौहरे उद्देश्यों के व्यापक ढाँचे के भीतर कार्य करता है। इसके चौहरे उद्देश्य हैं[3]—

(1) महत्त्वपूर्ण सरकारी कार्यकर्त्ताओं तथा गैर-सरकारी कार्यकर्त्ताओं को सामुदायिक विकास और पंचायती राज के सिद्धान्तों तथा उद्देश्यों के बारे में अनुस्थापन तथा प्रशिक्षण देने के लिए एक शीर्ष संस्था के रूप में कार्य करना,

1-2 अवस्थी एवं माहेश्वरी : वही, पृष्ठ 403
3 Govt. of India, Rural Development Deptt Report, 1975 76.

(2) सामुदायिक विकास के माध्यम से सुनियोजित सामाजिक परिवर्तन पर विशेष बल देते हुए सामाजिक विज्ञान मे अध्ययन तथा अनुसधान के कार्यक्रम हाथ मे लेना,

(3) देश के विभिन्न भागो मे प्रशिक्षण केन्द्रो को शैक्षणिक मार्ग प्रदर्शन करना और उनके शिक्षक-वर्ग को प्रशिक्षण देना, और

(4) सामुदायिक विकास और पचायती राज सम्बन्धी सूचना के लिए शोधन गृह के रूप मे कार्य करना।

इस सस्थान मे सरकारी और गैर-सरकारी दोनो क्षेत्रो के प्रमुख सदस्यो को प्रशिक्षण दिया जाता है। यहाँ राज्य सरकारो को सलाह-सेवा देने का कार्य भी किया जाता है। अध्ययन क्षेत्र मे सस्थान का बुनियादी उद्देश्य 25-25 दिन के पुनरावलोकन पाठ्यक्रमो (Orientation Courses) को आयोजित करना है। इन पाठ्यक्रमो का मुख्य उद्देश्य न केवल सामुदायिक विकास और पचायती राज की विचारधारा को समझना है बल्कि कर्मचारियो मे विचारोत्तेजना उत्पन्न करना तथा विचार और अनुभवो का आदान प्रदान करना भी है। ये पाठ्यक्रम प्रशिक्षणार्थियो को प्रशासन के साधारण कार्यों के प्रति नया दृष्टिकोण प्रदान करते हैं।

(6) **पुलिस प्रशिक्षण महाविद्यालय, आबू की स्थापना सितम्बर, 1948 मे** *हुई और इसका उद्देश्य है भारतीय पुलिस सेवा मे प्रविष्ट नवागन्तुक का प्रशिक्षण।* इसका प्रधान एक सेनाध्यक्ष (Commandant) होता है जिसकी सहायता के लिए उचित योग्यता प्राप्त अन्य प्रशिक्षक होते हैं। प्रशिक्षण विधि वही है जो मसूरी के राष्ट्रीय प्रशिक्षण सस्थान की है, पर यहाँ अर्थशास्त्र और लोक प्रशासन विषयो की शिक्षा नही दी जाती। विशेष बल फौजदारी कानून और उसके व्यवहार की विधि, अपराध विज्ञान, शारीरिक व्यायाम, निशानेबाजी तथा घुडसवारी पर दिया जाता है। प्रशिक्षणार्थियो को कुछ समय के लिए सैनिक दलो के साथ लगाया जाता है। प्रशिक्षण की समाप्ति के उपरान्त उन्हे चार से छ महीने तक जिला पुलिस विभाग मे काम देकर प्रशिक्षित किया जाता है। थोडे-थोडे समय के लिए उन्हें थाने के मुख्य कॉंस्टेबुल, नायब थानेदार, थानेदार तथा निरीक्षक के पदो पर नियुक्त किया जाता है ताकि पुलिस सेवा का व्यापक अनुभव उन्हे प्राप्त हो सके। तत्पश्चात् उन्हें *उपाधीक्षक (Dy S P.) के पद पर नियुक्त किया जाता है।*

(ख) प्रमुख सेवाओं का प्रशिक्षण

देश के प्रमुख प्रशिक्षण सस्थानो का उल्लेख करने के उपरान्त हम अब कुछ प्रमुख सेवाओ के प्रशिक्षण को लेंगे—

(1) भारतीय प्रशासन सेवा के प्रशिक्षण (Training for I A S)— मसूरी की राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी में एक वर्ष के प्रशिक्षण के पश्चात् आई.ए.एस. के सभी परिवीक्षाधीन अधिकारी एक परीक्षा मे भाग लेते हैं जिनका संचालन सघीय लोकसेवा आयोग करता है। इस परीक्षा मे सफल होने और एक वर्ष या अट्ठारह माह (राज्यो मे वास्तविक काल भिन्न-भिन्न है) की सेवा पूर्ण कर लेने के

बाद उन्हें सेवा में स्थाई किया जाता है। उल्लेखनीय है कि अकादमी में आई ए एस के सदस्यों को जो प्रशिक्षण दिया जाता है उसे वे काम करते हुए प्राप्त करते हैं। पहले वर्ष प्रशिक्षण का एक नियमित कार्यक्रम होता है, तत्पश्चात् उन्हें एक अनुविभाग सौंप दिया जाता है। प्रायः दो वर्ष काम करने के बाद उनका स्थानान्तरण एक जिले से दूसरे जिले में कर दिया जाता है। लगभग अट्ठारह महीने के लिए उन्हें अवर-सचिव (Under Secretary) के रूप में सचिवालय में कार्य करना पड़ता है और तब अन्त में उन्हें जिलाधीश बनाया जाता है। भारतीय प्रशासनिक सेवा (आई ए एस) का कोई भी पदाधिकारी प्रायः सेवा के छठे वर्ष में जिलाधीश के पद का कार्य भार सम्भालने के योग्य हो जाता है। इस समय तक वह प्रायः ऐसी योग्यता प्राप्त कर लेता है कि किसी सरकारी विभाग में कोई भी उत्तरदायित्व का पद सम्भाल सके।

(2) भारतीय विदेश सेवा का प्रशिक्षण (Training for I. F. S.)—भारतीय विदेश सेवा नवागन्तुकों को एक त्रि वर्षीय प्रशिक्षण कार्यक्रम से होकर गुजरना पड़ता है। प्रशिक्षण का वर्तमान मुख्य कार्यक्रम, जैसा कि डॉ भाम्भरी ने लिखा है, इस प्रकार है—राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी में चार माह के आधारभूत पाठ्यक्रम का प्रशिक्षण अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन के भारतीय स्कूल नई दिल्ली में चार माह का प्रशिक्षण, विदेश मन्त्रालय में छः माह कार्य करना, और सैनिक इकाई तथा भारत दर्शन यात्रा, विदेश के मिशन पर जाना ताकि विदेशी भाषा का अध्ययन एवं अन्य सामान्य प्रशिक्षण प्राप्त किया जा सके किन्तु इसकी अवधि एक वर्ष से अधिक नहीं होगी। पिल्लई समिति द्वारा भारत विदेश सेवा पर जो रिपोर्ट पेश की गई उसमें इस सेवा के सदस्यों के लिए प्रशिक्षण-कार्यक्रम की मोटी रूपरेखा इस प्रकार है[1]—

(1) राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी में ऐसे पाठ्यक्रम का अध्ययन जिसमें सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, राजनीतिक सिद्धान्त, भारत का संविधान और प्रशासन, कानून, अर्थशास्त्र और हिन्दी भी सम्मिलित हो।	4 माह
(2) जिला प्रशिक्षण।	6 माह
(3) अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन स्कूल, अन्तर्राष्ट्रीय विधि एवं राजनय स्कूल तथा दिल्ली विश्वविद्यालय आदि में ऐसे पाठ्यक्रम का अध्ययन जिससे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध और सगठन, अन्तर्राष्ट्रीय विधि और राजनय (Diplomacy), अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र व वाणिज्य हो।	6 माह
(4) विदेश मन्त्रालय में कार्य का प्रशिक्षण तथा सामान्य परिचय प्राप्त करना।	8 माह
(5) अपने भाषायी क्षेत्र के मिशन में तृतीय सचिव के रूप में परिवीक्षा पर।	12 माह
योग—	36 माह या 3 वर्ष

[1] भाम्भरी : वही, पृष्ठ 460.

(3) भारतीय पुलिस सेवा के लिए प्रशिक्षण (Training for I P S)—भारतीय पुलिस सेवा मे प्रवेश पाने वालो के प्रशिक्षण के लिए 1948 मे माउण्ट आबू मे एक केन्द्रीय पुलिस प्रशिक्षण कॉलेज (Central Police Training College) की स्थापना की गई जिसमे अध्ययन के मुख्य विषय ये हैं—दण्ड-विधि दण्ड प्रक्रिया, भारतीय संविधान, भारतीय साक्ष्य अधिनियम आदि। विशेष बल कवायद (ड्रिल) तथा हथियारो के प्रयोग पर दिया जाता है। अस्त्र-शस्त्र चलाने का प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए उन्हे 'सैनिक इकाइयों' मे भेजा जाता है। एक वर्ष प्रशिक्षण के उपरान्त उन्हे जिलो मे भेजा जाता है जहाँ वे 'काम पर प्रशिक्षण' प्राप्त करते हैं। प्रशिक्षणार्थी वरिष्ठ जिला पुलिस अधिकारियों के मार्ग-दर्शन मे अनेक अधीनस्थ अधिकारियो का कार्य करके अपने काम की शिक्षा प्राप्त करते हैं। लगभग एक वर्ष के इस प्रकार के प्रशिक्षण के उपरान्त ही एक भारतीय प्रशासन सेवा अधिकारी को सहायक पुलिस अधीक्षक के रूप मे नियुक्त कर दिया जाता है।

भारत सरकार ने भारतीय पुलिस सेवा के परिवीक्षाधीनो के संस्थागत प्रशिक्षण-पाठ्यक्रमो मे जो संशोधन किया है उसके अनुसार सिण्डीकेट कार्य तथा वर्गीय-वादविवादो (Group Discussions) पर अधिक बल दिया जाता है। साथ ही अपराध मनोविज्ञान, अपराध-अन्वेषण मे सहायक वैज्ञानिक उपकरणों, भ्रष्टाचार का मुकाबला करने की रीतियो, अग्नि और संकट से रक्षा आदि का अध्ययन भी सम्मिलित किया गया है।

(4) भारतीय लेखा परीक्षण तथा लेखा सेवा के लिए प्रशिक्षण (Training for Indian Audit & Accounts Service)—भारतीय लेखा-परीक्षण तथा लोक सेवा मे भर्ती होने वाले अधिकारियो को विभागीय प्रशिक्षण स्कूल, शिमला मे एक वर्ष का प्रशिक्षण दिया जाता है। यह प्रशिक्षण उन्ही विषयो मे दिया जाता है जिनका परिवीक्षाधीनो के काम से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। पाठ्यक्रम के मुख्य विषय हैं . लेखक-परीक्षण, लेखांकन (Accounts), भारतीय संविधान, संसद् का वित्तीय नियन्त्रण, दण्ड तथा स्थानीय विधियाँ, वाणिज्यिक बही-खाता, लेखा-संहिताएँ (Account Codes), आधारभूत नियम, प्रादेशिक भाषा आदि। प्रशिक्षणार्थियो को कार्य का व्यावहारिक अथवा प्रयोगात्मक प्रशिक्षण देने के लिए विभिन्न लेखा-कार्यालयो और जिला राजकोषो से सम्बन्ध कर दिया गया है।

(5) आयकर सेवा के परिवीक्षाधीनों को प्रशिक्षण (Training for Income-Tax Probationers)—आयकर सेवा के परिवीक्षाधीनो को नागपुर के प्रशिक्षण स्कूल मे लगभग 18 मास का प्रशिक्षण दिया जाता है। यह प्रशिक्षण भारतीय लेखा-परीक्षण तथा लेखा-सेवा (I S & A S) के प्रशिक्षण के समान ही होता है।

(6) यातायात, परिवहन तथा वाणिज्य विभाग और रेलवे लेखा-सेवा के नवनियुक्त कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिए बड़ौदा मे एक स्टॉफ कॉलेज (Staff College) है। इसके अतिरिक्त यह कॉलेज सेवा करने वाले पदाधिकारियो के लिए

विशेष और अभिनव पाठ्यक्रम का आयोजन भी करता है। प्रशिक्षणार्थियों को ऐसे भावी तकनीकी और प्रवीण कार्यों का प्रशिक्षण दिया जाता है जो उनके लिए नवीन होते हैं और जिनका उनके कार्यों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। स्टॉफ कॉलेज में यातायात, परिवहन तथा वाणिज्य विभाग के नवनियुक्त कर्मचारी साढे तीन महीने का प्रशिक्षण (दो माह प्रारम्भ में और डेढ माह प्रशिक्षण के द्विवर्षीय कार्यक्रम के मध्य) प्राप्त करते हैं।

भारतीय प्रशिक्षण व्यवस्था की समस्याएँ व दोष और सुधार के सुझाव
(Problems and Defects of Training System in India & Suggestions for Improvement)

लोक सेवकों के प्रशिक्षण के लिए अपनाई गई व्यवस्था की अनेक प्रशासनिक समस्याएँ हैं। इन समस्याओं का निराकरण करके ही कुशल एवं सफल प्रशिक्षण व्यवस्था प्राप्त की जा सकती है। ये समस्याएँ भारतीय सन्दर्भ में अनेक कारणों से यथावत् रह कर विभिन्न दोष उत्पन्न करती हैं। इन समस्याओं तथा तद्जनित दोषों में से कुछ निम्नलिखित हैं—

1 योग्य तथा क्षमतावान प्रशिक्षक नहीं मिल पाते जो संगठन के कार्यकर्त्ताओं को ज्ञान देने के साथ-साथ उनकी व्यावहारिक समस्याओं में भी रुचि ले सकें।

2 दूसरी समस्या पाठ्यक्रम निर्धारित करने की है। विषयों का चुनाव एक जटिल कार्य है क्योंकि एक दृष्टि से जो विषय उपयोगी है वह अन्य दृष्टि से अनुपयोगी तथा हानिकारक सिद्ध होता है।

3 प्रशिक्षण का तरीका एवं तकनीकें किस प्रकार की अपनायी जाएँ, यह तय करना भी समस्याप्रद है। विषय-सामग्री उपयुक्त होते हुए भी यदि उसे गलत तरीके से पढ़ाया गया हो तो वह अनुपयोगी साबित हो सकती है। प्रशिक्षण के व्यक्तिगत एवं सामूहिक दो मुख्य तरीके हैं। इन दोनों की अपनी अपनी सीमाएँ तथा समस्याएँ हैं। व्यक्तिगत तरीके में अनेक बातों को प्रशिक्षक स्पष्ट नहीं कर पाता और अनेक को प्रशिक्षणार्थी समझ नहीं पाता। सामूहिक प्रशिक्षण में प्रशिक्षणार्थियों के बीच अनौपचारिक सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाते। यहाँ समूह में समायोजन की समस्या भी उठ खड़ी होती है।

4 प्रशिक्षण के समय की समस्या भी उल्लेखनीय है। अधिक लम्बे समय तक दिए जाने वाले प्रशिक्षण का भार संगठन वहन नहीं कर सकता। कम समय में दिया गया प्रशिक्षण प्राय प्रभावहीन रहता है जब तक प्रशिक्षणार्थी अपने प्रशिक्षण का लक्ष्य, विषय, प्रक्रिया एवं लाभ आदि के बारे में भी जानकारी प्राप्त नहीं कर पाते कि प्रशिक्षण का समय ही समाप्त हो जाता है। ऐसे प्रशिक्षण कार्यक्रम का महत्त्व केवल औपचारिक खानापूर्ति तक ही सीमित रह जाता है।

5 प्रशिक्षण का वातावरण किस प्रकार का होना चाहिए यह भी एक मुख्य प्रश्न है। बन्द कमरे की चाहरदीवारी में बनाए गए ऊँचे-ऊँचे सिद्धान्त

व्यावहारिक जीवन में उपयोगी सिद्ध हो सकेंगे यह सन्देहास्पद है। इसी प्रकार आधारभूत सामान्य सिद्धान्तों के बिना कार्य पर दिया गया प्रशिक्षण कितना ग्राह्य बन सकेगा, यह भी एक प्रश्न है।

6 टोर्ये ने प्रशिक्षण कार्यक्रम से संलग्न जिन समस्याओं का उल्लेख किया है, वे ये हैं—(क) प्रशिक्षण कार्यक्रमों का अनुचित मूल्यांकन, (ख) विभिन्न उच्च स्तर के प्रशासकों में प्रशिक्षण का अभाव, (ग) प्रशिक्षण-योजना को रूप देने में व्यवस्थापिकाओं की धीमी गति, (घ) कर्मचारी के कार्यों तथा प्रशिक्षण कार्यों के बीच ढीला समन्वय, (च) सामान्य सेवीवर्ग कार्यों में प्रशिक्षण विभाजन, (छ) सेवाकालीन प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों की अप्रामाणिकता, (ज) अभिकरणों का कार्यभार तथा (झ) धन का अभाव। ये सभी समस्याएँ भारतीय प्रशिक्षण व्यवस्था में उपलब्ध हैं।

7 भारतीय प्रशिक्षण व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण दोष यह है कि यहाँ प्रशासनिक विषयों का ज्ञान उच्च स्तर पर कराया जाता है। दूसरी श्रेणी के अधिकारियों को भर्ती के समय यह प्रशिक्षण देने की आवश्यकता नहीं समझी जाती।

8 केन्द्रीय संस्थाओं में दिया जाने वाला प्रशिक्षण अधिकतर औपचारिक तथा अपर्याप्त होता है। कार्य पर व्यावहारिक प्रशिक्षण बहुत कम दिया जाता है। इसे अधिक गम्भीरता से नहीं देखा जाता।

9 प्रशिक्षणार्थी की व्यक्तिगत कमियों को पूरा करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया जाता। यदि अध्ययनकाल में उसने किसी विषय का ज्ञान प्राप्त नहीं किया तो प्रशिक्षणकाल में उसे विशेष रूप से पढ़ने का प्रबन्ध नहीं किया जाता।

10 रिफ्रेशर पाठ्यक्रमों की संख्या एवं क्रम इतना कम तथा सीमित होता है कि नागरिक सेवक प्रशासन एवं नियोजन की आधुनिक तकनीकों से अपरिचित रह जाते हैं।

11 भारतीय सन्दर्भ में एक समस्या यह है कि प्रशिक्षक अपने कार्य की गम्भीरता को समझकर उसे रुचि एवं कर्त्तव्य-भावना से सम्पन्न नहीं करते। शीघ्र पदोन्नति और स्थाना-तरणों के कारण कार्य पर प्रशिक्षण की योजना निरर्थक बन जाती है। आजकल प्रत्येक पदाधिकारी के दायित्वों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता है। उनमें से किस को प्रशिक्षण के लिए चुना जाए, यह समस्याप्रद बन जाता है। सहानुभूतिपूर्ण परामर्श तथा निर्देशन के अभाव में नवागन्तुक अधिकारी स्वयं ही अपने प्रशिक्षण का क्षेत्र और तरीका निर्धारित करते हैं।

12 भारतीय प्रशिक्षण व्यवस्था में लिपिक-वर्ग तथा कार्यालय अधीक्षकों के प्रशिक्षण पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता जबकि वास्तविक व्यवहार में प्रशासनिक नीतियों की रचना एवं क्रियान्विति में उनका विशेष हाथ रहता है।

सुधार के लिए सुझाव
(Suggestions for Improvement)

भारत में प्रशासनिक अधिकारियों के प्रशिक्षण के दोषों को दूर करने के लिए विचारकों द्वारा अग्रलिखित सुझाव प्रस्तुत किए जाते हैं—

1 जिन पदाधिकारियों की सीधी भर्ती की जा रही है उनके लिए कम से कम एक वर्ष के संयुक्त प्रशिक्षण का कार्यक्रम बनाया जाए। इस दृष्टि से उच्च या निम्न पदों के बीच कोई भेदभाव नहीं किया जाए। इस प्रक्रिया से कर्मचारियों में भावनात्मक एकता विकसित होती है।

2 प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम में परिवर्तन किया जाना चाहिए। प्रशिक्षण के लिए ऐसे विषय रखने चाहिए जिनके अध्ययन से प्रशिक्षणार्थी में नेतृत्व के गुण, सामाजिकता एवं परस्पर सहयोग की भावना विकसित हो सके।

3 सरकार को अधीनस्थ कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिए विशेष व्यवस्था करनी चाहिए। प्रशासन के संचालन का भार बहुत कुछ इन्हीं के कन्धों पर रहता है। केवल उच्च अधिकारियों के प्रशिक्षण से प्रशासन कार्यकुशल नहीं बन सकता।

4 प्रशिक्षणार्थियों को देश के विभिन्न भागों तथा विदेशों की प्रशासनिक व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन करके वे अपने देश के लिए उपयुक्त व्यवस्था का निर्णय ले पाते हैं। इस प्रकार भारतीय प्रशासन विदेशों के व्यवहार, अनुभव तथा परम्पराओं से लाभान्वित हो सकेगा।

उक्त सुझावों को ध्यान में रखते हुए परिस्थिति एवं आवश्यकता के अनुरूप निर्णय लिए जाने चाहिए। एक निर्दोष प्रशिक्षण व्यवस्था कुशल प्रशासन की महती आवश्यकता है। प्रशिक्षण का सही रूप ऐसी खाद और पानी है जो प्रशासन के पौधे के विकास के लिए परम आवश्यक है। इसके बिना यह पौधा मुरझा कर नष्ट हो जाएगा।

ग्रेट ब्रिटेन में प्रशिक्षण
(Training in Great Britain)

ग्रेट ब्रिटेन में लोकसेवकों के प्रशिक्षण का संरचनात्मक ढाँचा एशेटन समिति (Assheton Committee) की सिफारिशों पर आधारित था। इस समिति ने अपने प्रतिवेदन में प्रशिक्षण के पाँच मुख्य उद्देश्यों का उल्लेख किया, ये थे—(i) कार्य संचालन में निश्चितता एवं स्पष्टता प्राप्त करना, (ii) परिवर्तित समय की नई आवश्यकताओं के साथ दृष्टिकोण एवं प्रणालियों का निरन्तर समायोजन, (iii) व्यापक दृष्टिकोण का समावेश, (iv) व्यक्तिगत लोकसेवक की क्षमता का विकास ताकि वह अपने वर्तमान कार्य में कार्यकुशलता बढ़ा सके तथा उच्चतर कार्य एवं बड़े दायित्वों के लिए स्वयं को तैयार कर सके, तथा (v) कर्मचारी वर्ग के मोरेल को सुधारना, मुख्यतः उनका जो दस्तूरी कार्य में संलग्न रहते हैं। इन लक्ष्यों को प्राप्त करने की दृष्टि से समिति ने सुझाव दिया कि राजकोष को सेवा में प्रशिक्षण पर नियन्त्रण करना चाहिए, प्रत्येक विभाग में प्रशिक्षण के कार्यक्रमों को व्यवस्थित करना चाहिए तथा राष्ट्रीय एवं विभागीय ह्विटले परिषदों की भागीदारी होनी चाहिए।

ब्रिटिश सरकार ने एशेटन समिति की सिफारिशें स्वीकार कर लीं तथा इसके बाद राजकोष के अन्तर्गत प्रशिक्षण एवं शिक्षा संभाग की स्थापना की,

विभागो मे प्रशिक्षण अधिकारियो की नियुक्ति की एव प्रशिक्षण पर लोकसेवा राष्ट्रीय ह्विटले परिषद् की संयुक्त समिति की स्थापना की। इसके साथ ही विभागीय प्रशिक्षण कार्यक्रमो के क्षेत्र को पर्याप्त व्यापक बनाया गया। जिस विभाग मे प्रशिक्षणार्थियो की संख्या कम थी और पृथक् विभागीय प्रबन्ध करना उपयुक्त नहीं था वहाँ केन्द्रीय तथा बाहर प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई।

ऐतिहासिक विकास
(Historical Development)

1960वीं दशाब्दी मे प्रशिक्षण की इन प्रवृत्तियो का व्यापक विस्तार हुआ तथा सुधार भी हुआ। व्यावसायिक एव वैज्ञानिक लोकसेवको की आवश्यकताएँ पूरी करने के प्रयास किए गए। एशेटन समिति तो मुख्य रूप से प्रशासनिक, निष्पादकीय एव लिपिक वर्गों से सम्बन्धित थी। अब प्रबन्ध तकनीकों के गोरख धन्ध की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। 1963 मे प्रशासनिक अध्ययन के लिए केन्द्र (CAS) की स्थापना की गई। यह कुछ लोकसेवको द्वारा निर्देशित था, इसमे पढाने वाले विभिन्न विश्वविद्यालयों, सरकारी विभागो, व्यापारिक फर्मों, व्यावसायिक संघो के आगन्तुक लोग थे। यह केन्द्र अर्थशास्त्र एवं प्रशासनिक विषयो मे पाठ्यक्रम संचालित करता था। 1965 के करीब CAS द्वारा अर्थशास्त्र के सिद्धान्तो के लिए अल्पकालीन पाठ्यक्रम प्रारम्भ किए गए। अधिक वरिष्ठ लोकसेवको के लिए पाठ्यक्रम तथा विचार गोष्ठियाँ विकसित की गई। कर्मचारी वर्ग ने प्रशासनिक स्टॉफ महाविद्यालय, हेनले (Henley) तथा नए व्यावसायिक स्नातक विद्यालयो मे प्रशिक्षण पाया। इसके साथ ही प्रबन्धकीय सेवाओ म प्रशिक्षण का प्रसार हो रहा था। इसमे व्यवस्था विश्लेषण (Systems Analysis) तथा अन्य कम्प्यूटर प्रशिक्षण तथा प्रणाली तकनीकों को शामिल किया जाने लगा। ग्रेट ब्रिटेन के प्रशिक्षण कार्यक्रमो की व्यापकता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि वर्ष 1968-69 मे 1,82,000 से भी अधिक लोकसेवको ने विभागीय अथवा केन्द्रीय रूप से संगठित प्रशिक्षण कार्यक्रमो मे भाग लिया। इसका अर्थ यह हुआ कि औसतन करीब एक मिलियन प्रशिक्षणार्थी प्रतिदिन आए।

जब 1968 म नागरिक सेवा विभाग गठित हुआ तो राजकोष का प्रशिक्षण एव शिक्षा सम्भाग इसको स्थानान्तरित कर दिया गया तथा अतिरिक्त कर्मचारी वर्ग की नियुक्ति की गई। जुलाई, 1969 के अन्त तक लगभग 100 नागरिक सेवक केन्द्रीय नागरिक सेवा प्रशिक्षण कार्यों मे संलग्न थे। जून, 1970 मे सभी केन्द्रीय नागरिक सेवा प्रशिक्षण के पाठ्यक्रमो का दायित्व लोकसेवा कॉलेज (Civil Service College) ने सम्भाल लिया। नागरिक सेवा विभाग में प्रशिक्षण तथा शिक्षा सम्भाग स सम्बन्धित कर्मचारी अब कॉलेज स्टॉफ के सदस्य बन गए। इस विभाग मे एक 'Training Requirements Division' स्थापित किया गया तथा इसे प्रशिक्षण एव शिक्षा सम्भाग के बाकी के दायित्व सौंप दिए गए। इस नए सम्भाग का कार्य कॉलेज के साथ मिलकर प्रशिक्षण की आवश्यकताओ का विश्लेषण एव

निर्धारण करना तथा विभागीय प्रशिक्षण के क्षेत्र में परामर्शदाता एवं समन्वयकारी दायित्व निभाना है।

लोकसेवा महाविद्यालय
(The Civil Service College)

इस महाविद्यालय में एक मुख्यालय तथा प्रबन्ध, प्रशिक्षण और शोध के लिए दो क्षेत्रीय केन्द्र हैं। इसका मुख्यालय बर्कशायर (Berkshire) में एस्कोट के नजदीक सनिंगडेल पार्क में तथा प्रादेशिक केन्द्र लन्दन और एडिनबर्ग में हैं। जनवरी, 1971 तक इन संस्थानों की क्षमता एक समय में लगभग 530 विद्यार्थियों को व्यवस्थित करने की थी। अब यह संख्या 1100 के लगभग है।

महाविद्यालय का पाठ्यक्रम विभिन्न प्रकार की पृष्ठभूमि शैक्षणिक योग्यता, कुशलता एवं कार्य वाले प्रशिक्षणार्थियों के लिए संचालित किया जाता है। यह छः श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है—युवा निष्पादक अधिकारियों के लिए, स्नातक प्रशासनिक प्रशिक्षार्थी के लिए, मध्य प्रबन्ध, उच्च प्रबन्धक विभागीय प्रशिक्षकों तथा अन्य विशेषज्ञों के लिए तथा प्रबन्ध सेवाओं के कर्मचारी वर्ग के लिए। संक्षेप में इन छः श्रेणियों का परिचय निम्न प्रकार है—

(i) युवा निष्पादक अधिकारी (Young Executive Officers)— युवा निष्पादक अधिकारियों के लिए प्रबन्ध पाठ्यक्रम का प्रशिक्षण चार सप्ताह के लिए दिया जाता है। इनमें से अधिकांश स्कूल से निकलते ही नागरिक सेवा में प्रवेश कर लेते हैं। पाठ्यक्रम में अन्य विषयों के साथ-साथ मात्रात्मक तकनीकों का प्रयोग तथा कार्यालय प्रबन्ध की समस्याएँ भी शामिल रहती हैं।

(ii) स्नातक प्रशासनिक प्रशिक्षणार्थियों के लिए (Graduate Administration Trainees)—प्रशासक प्रशिक्षणार्थी के प्रथम पाँच वर्षों में तीन सोपानों में 44 सप्ताह का प्रशिक्षण इस कॉलेज द्वारा दिया जाता है। इसमें चार सप्ताह का मात्रात्मक विश्लेषण तथा सरकार की संरचना के बारे में परिचयात्मक पाठ्यक्रम होता है। इसके बाद बारह सप्ताह का सरकार और संगठन सम्बन्धी पाठ्यक्रम है। इसमें संगठन एवं स्टाफ प्रबन्ध तथा सरकारी वित्त में प्रशिक्षण को शामिल किया जाता है। इसके बाद 28 सप्ताह का पाठ्यक्रम है जिसके दो भाग होते हैं—बाईस सप्ताह का आर्थिक एवं सामाजिक प्रशासन में अध्ययन और छः सप्ताह का अध्ययन के अधिक विशेषीकृत क्षेत्रों में पाठ्यक्रम।

(iii) मध्य प्रबन्ध (Middle Management)—वैज्ञानिक इन्जीनियरिंग तथा अन्य व्यावसायिक और विशेषज्ञ वर्गों में मध्य श्रेणी के अधिकारियों, प्रशासकों तथा निष्पादकों के लिए अन्तःसम्बन्धित प्रबन्ध पाठ्यक्रमों की एक शृंखला प्रस्तुत की जाती है। इस शृंखला में अर्थशास्त्र, सामाजिक प्रशासन सांख्यिकी तथा निर्णय रचना, संगठन और स्टॉफ प्रबन्ध में व्यावहारिक शोध के उपयोग आदि को शामिल किया जाता है।

(iv) वरिष्ठ प्रबन्धक (Senior Managers)—सहायक सचिव स्तर के प्रशासकों, वैज्ञानिकों, इन्जीनियरों तथा अन्य व्यावसायिक एवं विशेषज्ञ श्रेणियों के

लोकसेवकों के लिए महाविद्यालय द्वारा दो प्रकार के पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं। इनमें पहला चार सप्ताह का पाठ्यक्रम है जिसमें अन्य विषयों के साथ-साथ प्रबन्ध अर्थशास्त्र, व्यवस्था इन्जीनियरिंग, प्रबन्ध सूचना व्यवस्था, साधन आवंटन तथा सरकार और उद्योग के बीच मानव सम्बन्धों के अन्य पहलू भी शामिल होते हैं। दूसरे पाठ्यक्रम में लगभग 20 विभिन्न विषयों पर चलाई गई अल्पकालीन विचार गोष्ठियाँ हैं जैसे—पूंजी निवेश मूल्यांकन, प्रबन्ध सूचना व्यवस्थाएँ, आर्थिक मूल्यांकन की तकनीकें वित्तीय प्रबन्ध एवं नियन्त्रण तथा संचार के विभिन्न पहलू।

(v) प्रशिक्षक एवं अन्य विशेषीकृत पाठ्यक्रम (Instructor and Other Specialised Courses)—विभागीय प्रशिक्षकों, नवनियुक्त सूचना अधिकारियों, सेवीवर्ग कार्यों में रत स्त्री पुरुषों तथा कल्याण अधिकारियों के लिए पाठ्यक्रमों की एक शृंखला संचालित की जाती है।

(vi) प्रबन्ध सेवाएँ पाठ्यक्रम (Management Services Courses)—प्रबन्ध सेवाओं के विषय में लगभग 20 पाठ्यक्रमों से भी अधिक का कार्यक्रम संचालित किया जाता है। इसमें फार्म्स डिजाइन, माइक्रोफोटोग्राफी, संदेशवाहक सेवाएँ, लिपिकीय कार्य माप आदि पर संक्षिप्त विचार गोष्ठियाँ, संगठन एवं विधि विशेषज्ञों के लिए चार सप्ताह का पाठ्यक्रम तथा व्यवस्था विश्लेषण पर छः सप्ताह का कार्यक्रम आदि शामिल रहते हैं।

निष्पादक एवं लिपिकीय कर्मचारी वर्ग
(Executive and Clerical Staff)

इस वर्ग के कर्मचारियों को दिया गया प्रशिक्षण मुख्य रूप से विभागों द्वारा संचालित किया जाता है। इसमें छोटे-बड़े विभागों के बीच अन्तर्विभागीय सहयोग रहता है तथा CSD सामान्य पथ-प्रदर्शन एवं परामर्श देता है। इस प्रशिक्षण का अधिकतर भाग कार्य पर (On the Job) सम्पन्न होता है। विभागीय प्रशिक्षण अधिकारियों द्वारा भी कुछ पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं जो विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रायः व्यावसायिक एवं तकनीकी प्रकार के होते हैं।

टंकणकर्त्ता ग्रेड (Typing Grade)

23 अन्तर्विभागीय टाइपराइटिंग प्रशिक्षण केन्द्रों में टाइपिंग, शॉर्ट हैण्ड तथा आडियो टाइपिंग के प्रशिक्षण तथा जाँच की व्यवस्था की जाती है। प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम तथा परीक्षाओं के संचालन के लिए CSD उत्तरदायी है।

विशेषज्ञों के लिए प्रशिक्षण (Training for Specialists)

व्यावसायिक, वैज्ञानिक तथा तकनीकी स्टॉफ के लिए कुछ प्रशिक्षण गैर-लोकसेवा संस्थानों द्वारा प्रदान किया जाता है तथा शेष की व्यवस्था CSD द्वारा निर्मित सामान्य नीति के अन्तर्गत विभागों द्वारा की जाती है। अंशकालीन अध्ययन में लगे कर्मचारियों के लिए अवकाश देना, वित्तीय सहायता देना, सेण्डविच पाठ्यक्रम चलाना, विश्वविद्यालयों में पूर्णकालीन पाठ्यक्रम चलाना, आदि का प्रबन्ध किया जाता है। कुछ विभाग स्वयं भी अपनी विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न प्रकार के तकनीकी एवं वैज्ञानिक प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करते हैं।

बाहरी प्रशिक्षण (External Training)

प्रशासनिक स्टॉफ कॉलेज, हेनले, व्यावसायिक स्कूलों तथा ऐसे ही अन्य संस्थानों में सभी प्रकार के चुने हुए नागरिक सेवकों को अभी भी प्रोत्साहित किया जाता है। 1968–69 में मध्य एवं उच्च प्रबन्ध स्तर के 29 लोकसेवकों ने लन्दन, मैनचेस्टर ऑक्सफोर्ड, बर्मिंघम तथा ग्रेनफील्ड आदि के व्यावसायिक स्कूलों में प्रशिक्षण लिया, 21 ने प्रशासनिक स्टॉफ कॉलेज में लिया, 4 ने संयुक्त सेवा स्टॉफ कॉलेज लेटीमर में लिया तथा 10 ने लन्दन स्थित रॉयल कॉलेज ऑफ डिफेन्स स्टडीज में लिया। इनके अतिरिक्त एक बड़ी संख्या में कर्मचारी बाहरी प्रशिक्षण संगठनों द्वारा चलाए जा रहे अल्पकालीन पाठ्यक्रमों में शामिल हुए। 20 ने प्रबन्ध अध्ययनों में डिप्लोमा प्राप्त करने के लिए लन्दन के रीजेन्ट स्ट्रीट पॉलीटेक्नीक में एक वर्ष का पाठ्यक्रम अपनाया।

सिटी युनिवर्सिटी ग्रेजुएट बिजनेस सेन्टर, लन्दन में व्यवस्था-विश्लेषण (Systems Analysis) में प्रशिक्षण दिया जाता है। इस प्रकार बाहरी संस्थाओं द्वारा भी पर्याप्त प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाती है।

शिक्षा की सुविधाएँ (Educational Facilities)

विशेषज्ञों के अलावा अन्य नागरिक सेवक यदि गैर-व्यावसायिक कारणों से अपनी आगे की शिक्षा प्राप्त करना चाहें तो सामान्य परिस्थितियों में उनको अपने विभाग से वित्तीय सहायता प्राप्त होती है। साधारणतः यह आशा की जाती है कि वे ऐसा अध्ययन कार्य अपने समय में ही करेंगे। आगे की शिक्षा के लिए लोकसेवा परिषद् द्वारा कुछ अतिरिक्त प्रबन्ध भी किए गए हैं। 18 वर्ष से कम उम्र वाले को शाम, सवेरे या दिन में अपनी आगे की शिक्षा प्राप्त करने के लिए विभाग द्वारा अवकाश दिया जाता है। यह परिषद् प्रौढ़ शिक्षा के सम्बन्ध में भी परामर्श देती है।

उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर कार्य करने वाले लोकसेवकों के अनुभव को व्यापक बनाने के लिए तथा उनका वातावरण परिवर्तित करने के लिए, व्यक्ति के कहने पर पूरे वेतन के साथ छुट्टी दी जाती है। यह छुट्टी तीन माह से लेकर एक वर्ष तक की हो सकती है। इसमें विश्वविद्यालय की फैलोशिप भी मिल सकती है तथा दूसरे देशों की सरकार तथा प्रशासन का अध्ययन करने के लिए यात्रा व्यय भी मिल सकता है। लोकसेवकों को विशेष योग्य बनाने के लिए सरकारी खर्च तथा अवकाश पर विश्वविद्यालय एवं कॉलेज में पढ़ने भेजा जाता है।

राजनयिक सेवा (The Diplomatic Service)

राजनयिक सेवा में प्रवेश पाने वाले नए कर्मचारियों को विदेश विभाग अथवा राष्ट्रमण्डल कार्यालय में कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व अल्पकालीन प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। एक वर्ष के बाद प्रशासनिक श्रेणी में भर्ती किए गए अधिकारियों को साधारणतः विदेशों में नियुक्त कर दिया जाता है अथवा किसी विदेशी भाषा का प्रशिक्षण दिया जाता है। पाँच या छः वर्ष की सेवा के बाद तथा प्रथम सचिव के रूप में पदोन्नत होने से पूर्व प्रशिक्षु अधिकारी सिविल सर्विस कॉलेज में उपयुक्त

पाठ्यक्रम का प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। निष्पादकीय एवं लिपिक-वर्गीय कर्मचारियों को दो या तीन वर्ष लन्दन में रहने के बाद विदेशों में नियुक्त किया जाता है। भाषा के प्रशिक्षण के बाद सभी ग्रेड्स के प्रत्याशियों को किसी दूतावास या उच्चायोग में भेज दिया जाता है जहाँ वे अपनी सीखी भाषा का प्रयोग कर सकें। दो या तीन वर्ष बाद उनको लन्दन में किसी विभाग में या विदेशों में कहीं और भेज दिया जाता है।

राजनयिक सेवाओं के लिए भी इसके कार्यों के विशेषज्ञतापूर्ण पहलुओं में व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाता है। इनमें व्यावसायिक पाठ्यक्रम, कम्प्यूटर पाठ्यक्रम प्रशासन, लेखा, पुरातत्त्व पाठ्यक्रम, सूचना पाठ्यक्रम आदि शामिल होते हैं। राजनयिक अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण देने वाले संस्थानों में कुछ प्रमुख ये हैं—Royal College of Defence Studies, The Joint Services Staff College, The Administrative Staff College, The NATO Defence College, Canadian National Defence College आदि। विदेश एवं राष्ट्रमण्डलीय कार्यालय भी प्रान कर्मचारी-वर्ग के लिए कुछ विशेष समस्याओं पर पृष्ठभूमि पाठ्यक्रम आयोजित करता है।

संयुक्तराज्य अमेरिका में प्रशिक्षण

(Training in U. S. A.)

ऐतिहासिक विकास (Historical Development)

1906 में नगरपालिका शोध के न्यूयॉर्क ब्यूरो की स्थापना तथा इसका प्रशिक्षण ब्यूरो संयुक्तराज्य में लोकसेवकों के प्रशिक्षण के इतिहास में महत्त्वपूर्ण मोड़ है। इससे पूर्व का प्रशिक्षण मूलतः थल सेना, जल-सेना एवं शैक्षणिक संस्थाओं तक ही सीमित था। 1906 के बाद इसका नागरिक जीवन में प्रवेश हुआ। धीरे-धीरे लोकसेवा सुधारकों के प्रयासों के फलस्वरूप यह विचार पनपने लगा कि भर्ती के समय परीक्षा द्वारा जिस प्रकार योग्यता की परीक्षा ली जाती है उसी प्रकार पदोन्नति के समय भी ली जानी चाहिए। यह प्रवृत्ति रामभरोसे सिद्धान्त के स्थान पर सरकारी सेवाओं के प्रसार, सरकारी नियमन की वृद्धि एवं सरकार में तकनीकी और वैज्ञानिक विशेषज्ञों की बढ़ती माँग की भी अभिव्यक्ति थी। इस परिवर्तित वातावरण में लोकसेवाओं के प्रशिक्षण में प्रभावशाली रुचि जाग्रत हुई।

1930 से 1940 के मध्य प्रशिक्षण सम्बन्धी विकास निजी एवं सरकारी रोजगार के लिए आर्थिक मन्दी जनित प्रतिस्पर्द्धा से प्रभावित था। इस काल में विभिन्न विश्वविद्यालयों में लोक-प्रशासन में प्रवेश पूर्व प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई। 1937 में न्यूयॉर्क राज्य के शिक्षा विभाग में लोकसेवा प्रशिक्षण ब्यूरो स्थापित किया गया ताकि राज्य एवं स्थानीय सरकार के प्रशिक्षण कार्यक्रमों का विकास एवं समन्वय किया जा सके। TVA के लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रारम्भ हुए तथा समाज कल्याण बोर्ड एवं कुछ अन्य न्यूडील अभिकरणों में सेवाकालीन प्रशिक्षण

शुरू हुआ। 1938 के कार्यपालिका आदेश द्वारा संघीय लोकसेवा आयोग को यह अधिकार प्रदान किया गया कि यह विभागों एवं संस्थानों, शिक्षा कार्यालय निजी एवं सरकारी शिक्षण संस्थाओं के सहयोग से लोक-कर्मचारियों के लिए व्यावहारिक प्रशिक्षण कार्यक्रम स्थापित करे। प्रत्येक विभाग में तथा कुछ प्रशासनिक अभिकरणों में एक सेवीवर्ग निदेशक की नियुक्ति का अधिकार दिया गया।

शिक्षा मंत्रालय के व्यावसायिक शिक्षा सम्भाग के तत्वावधान में राज्य एवं स्थानीय अधिकारियों के प्रशिक्षण के लिए धन की व्यवस्था करने का प्रावधान रखा गया। युद्धकालीन सरकारी कार्यों के परिणामस्वरूप सेवाकालीन प्रशिक्षण पर विशेष जोर दिया गया ताकि कर्मचारियों की कार्यकुशलता सुधारी जा सके और उनसे अधिक काम लिया जा सके। प्रथम और द्वितीय हूवर आयोग ने अपने प्रतिवेदनों में प्रशिक्षण कार्यक्रमों पर विशेष जोर दिया। 1955 में व्हाइट हाउस में कर्मचारियों के प्रशिक्षण को संघीय सेवा के कुशल संचालन के लिए एक मूलभूत सहयोगी स्वीकार किया गया। 1958 में कांग्रेस द्वारा सरकारी कर्मचारी प्रशिक्षण अधिनियम पारित किया गया। इसमें अन्य बातों के अतिरिक्त बाहरी संस्थाओं का प्रयोग प्रशिक्षण के लिए करने की बात कही गई। इसके बाद क्रमशः ऐसे कार्यों में निरन्तर रुचि बढ़ती गई जो निष्पादकों एवं पर्यवेक्षकों से सम्बन्धित थे। सैनिक शिक्षण संस्थाओं के समकक्ष प्रशासनिक स्टॉफ कॉलेज का भी सुझाव आने लगा।

राज्य तथा स्थानीय क्षेत्राधिकारों का निरन्तर प्रसार होता गया। इसके परिणामस्वरूप कार्यकुशल एवं दक्ष कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण भी महत्त्वपूर्ण बनता चला गया। बड़े-बड़े शहरों में विश्वविद्यालयों द्वारा अपने अध्यापन काल के अतिरिक्त समय में संघ, राज्य तथा स्थानीय कर्मचारियों के लिए प्रबन्धकीय एवं तकनीकी विषयों पर पाठ्यक्रम चलाए गए। इसके लिए कभी-कभी सरकारी अभिकरणों द्वारा विशेष प्रबन्ध किया जाता था अथवा निजी संस्थाना द्वारा सहायता अनुदान दिया जाता था। फलतः प्रशिक्षणार्थियों का शुल्क कम हो जाता था।

प्रवेश-पूर्व प्रशिक्षण (Pre-entry Training)

यह प्रत्याशी को सरकारी सेवा में प्रवेश के उपयुक्त बनाता है तथा उसके मस्तिष्क की योग्यताओं एवं ज्ञान का विकास करता है। प्रवेश पूर्व प्रशिक्षण इस बात की गारण्टी नहीं होती कि व्यक्ति को सरकारी सेवा में ले ही लिया जाएगा। ऐसा प्रशिक्षण देने वाली संस्थाएँ प्रायः कॉलेज, तकनीकी स्कूल एवं विश्वविद्यालय होते हैं। प्रवेश-पूर्व परीक्षा के स्वरूप में काफी भिन्नताएँ पाई जाती हैं, अतः उसमें प्रवेश के लिए प्रशिक्षण भी अलग-अलग प्रकार का दिया जाता है। कुछ सेवाएँ व्यावसायिक प्रकृति की होती हैं। उनमें प्रशिक्षण का पाठ्यक्रम निर्धारित करते समय सरकार की अपेक्षाओं का ध्यान रखा जाता है। अमेरिका में जगनाल, सार्वजनिक समाज सेवा आदि कुछ ऐसी ही सेवाएँ हैं। कुछ सरकारी पदों के लिए विशेष शैक्षणिक तैयारी की कोई आवश्यकता नहीं होती। परीक्षाएँ सामान्य बुद्धि की जाँच करती हैं तथा कोई पाठ्यक्रम निर्धारित नहीं होता। यह प्रवृत्ति आजकल

बढ़ती जा रही है तथा स्कूलों और कॉलेजों पर विशेष व्यावसायिक तैयारी का भार नहीं आता। कुछ पदों के लिए वैज्ञानिक तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण की आवश्यकता रहती है।

गैर-विशेषज्ञ (General) तथा विशेषज्ञ (Specialist) शिक्षा की माँग को पूरा करने के लिए अमेरिका में व्यावसायिक स्कूल (Professional Schools), स्नातक स्कूल (Graduate Schools) तथा उदार कला महाविद्यालय (Liberal Arts Colleges) हैं।

संयुक्तराज्य लोकसेवा आयोग के क्षेत्र में आने वाले विभिन्न कॉलेजों में कुछ सामान्य विषयों के बारे में पर्याप्त घनिष्ठता रहती है जैसे—पाठ्यक्रम का निर्धारण, परीक्षा का समय, परिवार दर्शन में समन्वय, विज्ञानों की विशेष समस्याएँ आदि। 1934 से संघीय सेवा में विभिन्न विभागों में नियुक्ति के लिए किसी न किसी प्रकार की परीक्षा लेने की परम्परा है। कॉलेज, विश्वविद्यालय एवं सरकार अनेक महत्त्वपूर्ण बातों पर साथ मिलकर विचार करते हैं तथा अध्ययन की विषय-वस्तु और तरीके का निर्धारण करते समय लोकसेवाओं की अपेक्षा का पर्याप्त ध्यान रखा जाता है। स्टॉल के शब्दों में, "स्पष्ट प्रवेश-पूर्व प्रशिक्षण देश की शैक्षणिक संस्थाओं में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।"

सेवाकालीन प्रशिक्षण (In-service Training)

प्रवेश पूर्व प्रशिक्षण प्रायः उन पदों तक ही सीमित रहता है जिनमें निरन्तर तथा बड़ी मात्रा में माँग रहती है तथा जिनके लिए व्यापक ज्ञान की आवश्यकता होती है। यह प्रशिक्षण सेवा में प्रवेश के बाद एक पृष्ठभूमि के रूप में महत्त्वपूर्ण है किन्तु किसी पद विशेष के दायित्वों को पूरा करने में यह विशेष सहयोग नहीं दे पाती। इस हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण अलग से दिया जाना आवश्यक है। सेवाकालीन प्रशिक्षण कर्मचारी को वर्तमान कार्य सम्पन्न करने के लिए ऐसा ज्ञान प्रदान करता है जो उसे पहले प्राप्त नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त सेवाकालीन प्रशिक्षण पुराने कर्मचारियों को वर्तमान कार्य सम्पन्न करने में अधिक कार्यकुशल बनाने तथा पदोन्नति के लिए तैयार करने का कार्य भी करता है। इस प्रकार सेवाकालीन प्रशिक्षण कभी समाप्त नहीं होता, यह सदैव चलता रहता है।

सेवाकालीन प्रशिक्षण की दृष्टि से चार बातें उल्लेखनीय हैं—(i) प्रशिक्षण अथवा कर्मचारी का विकास एक निरन्तर प्रक्रिया है (ii) स्वयं कार्य भी प्रशिक्षण का महत्त्वपूर्ण साधन है, (iii) प्रशिक्षण का एक अन्य साधन प्रशिक्षण की प्रक्रिया में उपलब्ध होता है तथा (iv) एक संगठन में ताजा, नए और यहाँ तक कि विवादपूर्ण विचारों का प्रवेश काफी लाभदायक है।

प्रशिक्षण के रूप एवं तरीके

(Forms and Methods of Training)

संयुक्तराज्य अमेरिका में लोकसेवकों के प्रशिक्षण हेतु विभिन्न तरीकों का प्रयोग किया जाता है। ये तरीके यहाँ के श्रमिक अनुभव तथा व्यावहारिक अनुसंधान के परिणाम हैं। इनमें से कुछ उल्लेखनीय अग्र लिखित हैं—

1 सामूहिक प्रशिक्षण (Group Training)—प्रशिक्षण के इस तरीके में लोगों को समूह के रूप में एकत्रित किया जाता है। अमेरिकी प्रशासन में सामूहिक प्रशिक्षण के अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं। इस प्रणाली में औपचारिक भाषण, बाहर का अध्ययन, कक्षा में विचार-विमर्श, औपचारिक पाठ्यक्रम, विचार गोष्ठी जैसे सम्मेलन, प्रदर्शन प्रयोगशाला व्यवहार आदि शामिल रहते हैं। समूह प्रशिक्षण के दो अन्य रूप ये हैं कि नियमित रूप से स्टॉफ की मीटिंग की जाती है तथा एक संगठन के सभी कर्मचारियों की सामयिक सभाएँ की जाती हैं। किसी संगठन के प्रमुख तथा उसके अधीनस्थों के बीच होने वाली बैठकें सदैव प्रशिक्षण की उपयोगिता नहीं रखती किन्तु इनको बुद्धिमत्तापूर्वक चलाया जाए तो ये पर्यवेक्षक तथा कर्मचारी दोनों के लिए हितकारी होती हैं। अमरीकी सरकारी अभिकरणों में ये कभी कभी सम्पन्न होती हैं किन्तु प्रजातान्त्रिक आधार पर इनका संचालन नहीं हो पाता क्योंकि इनमें इकाई के कार्यों के बारे में स्वतन्त्र विचार-विनिमय नहीं होता वरन् पर्यवेक्षक द्वारा आदेश दिए जाते हैं। यहाँ प्रशिक्षण अधिकारी का यह दायित्व हो जाता है कि इन मीटिंग्स को सही रूप में संचालित कराए। इस प्रणाली की कठिनाई यह है कि पूरी इकाई के सभी कर्मचारियों के बैठने के योग्य उपयुक्त स्थान नहीं मिल पाता।

2 कार्य पर प्रशिक्षण (On the Job Instruction)—कार्य पर व्यक्तिगत प्रशिक्षण का प्रयोग व्यापक रूप से किया जाता है। नए प्रवेशकर्त्ताओं के लिए कुछ सीमा तक पर्यवेक्षक की मदद प्राप्त होना वांछनीय है। यह मदद नियोजित तरीके से दी जाए तथा संगठित और व्यवस्थित रूप में हो। संगठन का आकार बड़ा होने पर पर्यवेक्षक अपना यह कार्य दूसरे वरिष्ठ कर्मचारियों को भी सौंप सकता है किन्तु इस कार्य के लिए सर्वाधिक उपयुक्त व्यक्ति पर्यवेक्षक ही होता है।

3. मैन्युअल तथा बुलेटिन (Manuals and Bulletins)—संगठन के कर्मचारियों में लिखित सामग्री का वितरण किया जाता है जिसका उपयोग करके वे अपने कार्य को अधिक कुशलता, योग्यता और सही रूप में करने की ओर प्रेरित होते हैं। इसके लिए हैण्डबुक मैन्युअल्स, सामयिक बुलेटिन आदि वितरित किए जाते हैं जो यथासम्भव आकर्षक बनाए जाते हैं। कर्मचारियों को पुस्तकालय-सामग्री का प्रयोग करने के लिए पथ-प्रदर्शन किया जाता है। सम्बन्धित व्यवसाय की पुस्तकों तथा सामयिक प्रकाशनों का कर्मचारियों के बीच वितरण किया जाता है।

4. पत्राचार पाठ्यक्रम (Correspondence Courses)—अधिकांश संगठनों के अनेक कर्मचारी क्षेत्रीय स्तर पर कार्य करते हैं अतः इनको प्रशिक्षित करने के लिए पत्राचार पाठ्यक्रम प्रारम्भ किए जाते हैं। अमरीका में संघीय स्तर पर विभिन्न सेवाओं के लिए यह तरीका अपनाया जाता है। सिटी मैनेजर्स तथा नगरपालिका के प्रशासनिक अधिकारियों के लिए पत्राचार कार्यक्रम चलता है। इस तरीके के विरुद्ध यह कहा जाता है कि एक प्रशिक्षण विधि के रूप में यह अधिक सन्तोषजनक नहीं है क्योंकि एक तो यह खर्चीली अधिक है तथा दूसरे इसमें व्यक्तिगत विचार-विमर्श एवं विचारों का आदान-प्रदान नहीं हो पाता। इसीलिए यह केवल वहीं अपनाई जाती है जहाँ दूसरा तरीका उपलब्ध नहीं होता।

5 दृश्य श्रव्य साधनों का प्रयोग (Use of Audiovisual Aids)—कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने की दृष्टि से फिल्मों तथा प्रदर्शन योग्य सामग्री का महत्त्व होता है। किसी प्रशिक्षण विधि को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए भी ये तरीके अपना लिए जाते हैं। प्रशिक्षण के लिए सहायक ऐसी सामग्री में चित्र, मॉडल, नमून, पोस्टर, नक्शे, चार्ट्स, फिल्म, स्लाइड्स तथा चलचित्र, फोनोग्राफ रिकार्ड, रेडियो आदि उल्लेखनीय हैं। चलचित्रों के द्वारा एक साथ बहुत से लोगों को प्रशिक्षण दिया जा सकता है। ये भावनात्मक निश्चय और उत्साह बढ़ाने, रुचि जाग्रत करने, मौलिकता एवं भागीदारी विकसित करने, विचार-विमर्श को प्रोत्साहित करने तथा विषय को संक्षिप्त करने में उपयोगी साबित होती हैं।

सेवाकालीन प्रशिक्षण के कुछ उदाहरण
(Some Illustrations of In-service Training)

संयुक्तराज्य अमेरिका में व्यवस्थित सेवाकालीन प्रशिक्षण प्रथम विश्वयुद्ध के बाद प्रारम्भ हुआ है। इसके मुख्य उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए इस प्रशिक्षण का रूप मुख्यतः व्यावहारिक तथा निश्चित रखा गया है। इसके लिए ट्यूटोरियल व्यवस्था, वेस्टिबुल अथवा ओरियन्टेशन व्यवस्था, सर्कुलर व्यवस्था आदि का उपयोग किया जाता है। इन तरीकों से कनिष्ठ सेवीवर्ग को प्रशिक्षित किया जाता है। प्रशिक्षण संस्थाओं में उल्लेखनीय अमेरिकी कृषि विभाग का ग्रेजुएट स्कूल है। इसका लक्ष्य प्रशिक्षण की औपचारिक सुविधाओं द्वारा विभाग की कार्यकुशलता को बढ़ाना है। संयुक्तराज्य लोकसेवा आयोग सामान्यतः विभागीय सेवा के लिए जूनियर निष्पादक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम संचालित करता है। यह छः मास का पाठ्यक्रम होता है। इसके लिए मनोनयन विभागों एवं अभिकरणों द्वारा किए जाते हैं। मनोनयन का आधार कुछ लिखित परीक्षाएँ तथा मौखिक साक्षात्कार होता है। प्रत्याशियों की बुद्धि, व्यक्तित्व, कार्य की आदतें, अभिलेख, प्रतिष्ठा, महत्त्वाकांक्षा आदि के आधार पर उनका चयन किया जाता है। प्रत्याशी की आयु 25-30 वर्ष होती है। यह कार्यक्रम 1945 में प्रारम्भ किया गया था।

ऐसे ही कुछ क्षेत्रीय सेवा के कार्यक्रम भी हैं। उदाहरण के लिए, लोकसेवा आयोग के न्यूयॉर्क क्षेत्रीय कार्यालय द्वारा संचालित जूनियर प्रबन्ध विकास कार्यक्रम का नाम लिया जा सकता है। यह 6 माह का पाठ्यक्रम 1952 में प्रारम्भ किया गया। इसमें अध्ययन, विचारगोष्ठी, विचार-विनिमय आदि शामिल किए जाते हैं। इसके विद्यार्थी Gs-5 तथा Gs-7 ग्रेड की स्थायी सेवाओं से लिए जाते हैं।

विभिन्न संघीय अभिकरण अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप प्रशिक्षण कार्यक्रम अपनाते हैं, जैसे, नौसेना विभाग द्वारा संचालित Civilian Management Training Programme का नाम लिया जा सकता है। छः माह का यह काम जनवरी में सेवारत स्त्री-पुरुषों के लिए तथा जुलाई में कॉलेजों, विश्वविद्यालयों के स्नातकों के लिए होता है।

राज्य स्तरों पर सेवाकालीन प्रशिक्षण मुख्य रूप से न्यूयॉर्क तथा केलीफोर्निया में दिया जाता है। न्यूयॉर्क राज्य में इसका दायित्व लोकसेवा प्रशिक्षण सम्भाग द्वारा निभाया जाता है। लोकसेवकों के लिए पर्यवेक्षण प्रशिक्षण, पुलिस प्रशिक्षण, टेलीफोन योग्यता, प्रारम्भिक सांख्यिकी, IBM तकनीक आदि के पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं। केलीफोर्निया में राज्य लोकसेवा आयोग प्रशिक्षण की दृष्टि से एक प्रोत्साहक तथा सुविधा देने वाले अभिकरण के रूप में कार्य करता है। अधिकांश प्रशिक्षण सम्बन्धी अभिकरण में तथा उसी के द्वारा दिया जाता है तथा सम्पन्न किए जाने वाले कार्यों से प्रत्यक्षतः सम्बन्ध रखता है। हाइवे पेट्रोल अकादमी में हाइवे पुलिस को प्रशिक्षण दिया जाता है, औद्योगिक सम्बन्ध विभाग समझौता प्रक्रिया के बारे में प्रशिक्षण देता है, प्राकृतिक साधन विभाग अग्नि नियन्त्रण कार्यों का तथा पी डब्ल्यू डी दुर्घटना रोकने का प्रशिक्षण देता है।

स्थानीय स्तर पर कर्मचारियों के प्रशिक्षण की दिशा में नगरपालिकाओं की अर्ध-सरकारी लीग द्वारा महत्त्वपूर्ण कार्य किया गया है। मिनेसोटा कन्सास, वर्जीनिया, न्यूयॉर्क आदि में इसका योगदान उल्लेखनीय है।

व्यावहारिक दृष्टि से सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम आवश्यक रूप से निम्न ग्रेड के कार्यों से सम्बन्ध रखते हैं। इन ग्रेड्स में प्रशिक्षण का एक लाभदायक परिणाम यह होता है कि उच्च श्रेणी के पदाधिकारी सदैव अपने कार्य तथा दायित्वों के प्रति सजग रहते हैं ताकि उन्हें अपने अधीनस्थों के सामने किसी प्रकार शर्मिन्दा न होना पड़े।

फ्रांस में प्रशिक्षण
(Training in France)

फ्रांस में अधिशासी तथा लिपिक वर्गीय नवागन्तुक कर्मचारियों को इंग्लैण्ड की भाँति कार्य पर प्रशिक्षण दिया जाता है। यहाँ उच्च नागरिक सेवा के अधिकांश दो पदों पर विद्यार्थियों की भर्ती के बाद या तीन वर्ष के लिए व्यापक प्रशिक्षण दिया जाता है। यह व्यवस्था 19वीं तथा 20वीं शताब्दियों में धीरे-धीरे विकसित हुई है। इस काल में आवश्यकतानुसार तकनीकी एवं गैर-तकनीकी सेवाओं के लिए स्कूल स्थापित किए गए हैं। इस व्यवस्था का जन्मदाता होने का श्रेय नेपोलियन को दिया जा सकता है क्योंकि उसने यह निर्णय लिया था कि 1975 में स्थापित Ecole Polytechnique को प्रथम सैनिक स्कूल के रूप में रखा जाए तथा प्रथम लोक-सेवकों के प्रशिक्षण के लिए तकनीकी स्कूल के रूप में रखा जाए। बाद में यह अनेक संस्थाओं के लिए एक मॉडल बन गया। गैर-तकनीकी क्षेत्र में प्रशिक्षण शालाओं का विकास पर्याप्त धीमी गति से हुआ है। द्वितीय विश्वयुद्ध से कुछ समय पूर्व उपनिवेशों के लोकसेवकों के लिए एक स्कूल खोला गया किन्तु प्रशासनिक श्रेणी के दूसरे पदों पर नियुक्तियाँ अभी भी प्रत्यक्ष रूप से होती रहीं। 1945 में प्रशासनिक स्कूल की स्थापना के साथ इस दीर्घकालीन रिक्त स्थान की पूर्ति की जा सकी।

1945 के बाद कुछ विशिष्टीकृत स्कूल भी इनके साथ जोड़ दिए गए हैं, जैसे—Ecole Nationale des Imposts राजस्व विभाग के वरिष्ठ पदों के लिए लोकसेवक तैयार करता है। उच्च सेवा के प्रायः सभी पदों के सम्बन्ध में प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण का सिद्धान्त अपना लिया गया है। रिडले तथा ब्लोण्डेल (Ridley and Blondel) का कहना है कि "प्रशिक्षण फ्रांस की लोकसेवाओं की भर्ती में अधिकांश अन्य देशों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण भाग अदा करता है।"[1]

फ्रांस में लोकसेवकों के लिए प्रशिक्षण संस्थाओं का एक जाल सा बिछा हुआ है। ये संस्थाएँ सामान्य तथा विशेषज्ञ विषयों में प्रशिक्षण प्रदान करती हैं। ये किसी विश्वविद्यालय से सलग्न नहीं होतीं और न ही शिक्षा मन्त्रालय से सलग्न होती हैं वरन् उन मन्त्रालयों से सलग्न होती हैं जिनमें सेवा करने के लिए विद्यार्थियों को ये प्रशिक्षित करती हैं। Ecole Polytechnique समस्त सेनाओं के मन्त्रालय द्वारा नियन्त्रित है, Ecole National d' Administration प्रधानमन्त्री के कार्यालय द्वारा, Ecole Nationale des Impots वित्त मन्त्रालय द्वारा, Ecole Nationale des Ponts et Chaussees जन-कार्य एवं यातायात मन्त्रालय द्वारा नियन्त्रित होती है। इन प्रशिक्षण संस्थानों में से कुछ एक प्रकार से स्नातकोत्तर स्कूल होते हैं, उदाहरण के लिए, Ecole Nationale d' Administration किन्तु अधिकतर स्कूल ऐसे पाठ्यक्रम चलाते हैं जो कि विश्वविद्यालयों के समानान्तर होते हैं। फ्रांस के अधिकांश विश्वविद्यालयों में इन्जीनियर एवं प्रबन्धक तैयार करने की अपेक्षा वकील, डॉक्टर एवं अध्यापक तैयार किए जाते हैं। यहाँ हम फ्रांस की कतिपय महत्त्वपूर्ण प्रशिक्षण संस्थाओं का संक्षेप में विवेचन करेंगे।

राष्ट्रीय प्रशासन विद्यालय
(The Ecole Nationale d' Administration)

इतिहास (History)—1945 तक उच्च सेवा की गैर-तकनीकी शाखाओं में नियुक्तियाँ व्यक्तिगत विभागों द्वारा प्रतियोगी परीक्षाओं के आधार पर की जाती थी। परीक्षाओं के बाद कोई औपचारिक प्रशिक्षण प्रदान नहीं किया जाता था। फलतः गैर-तकनीकी सेवाएँ कठोर रूप से विभाजित हो गईं। भर्ती के समय सामाजिक स्तर पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। वरिष्ठ लोकसेवक विभिन्न विभागों में अपने मित्रों और सम्बन्धियों को भरने के लिए दोषी ठहराए गए। यह आलोचना इस कारण भी सारभूत थी क्योंकि भर्ती की परीक्षाओं के लिए तैयारी केवल एक ही विद्यालय में होती थी। यह विद्यालय (Ecole libre des Sciences Politiques) गैर-सरकारी संस्थान था तथा इसका शुल्क अपेक्षाकृत भारी था। इसलिए केवल उच्च वर्ग के धनीमानी लोग ही लोकसेवाओं में प्रवेश कर पाते थे। विश्वयुद्ध के बाद सरकार ने मूल समस्या की जड़ों पर ही कुठाराघात करने का निर्णय लिया। मुख्यतः पाँच प्रकार के सुधार किए गए। प्रथम, Grands Corps

1 "Training plays a much greater part in the recruitment of the French Civil Service than it does in most other countries"

—*Ridley and Blondel* : op cit., p 36.

के लिए होने वाली पृथक् परीक्षाएँ समाप्त कर दी गई और विभिन्न मन्त्रालयों द्वारा प्रशासनिक श्रेणी की विभागीय शाखाओं के लिए ली जाने वाली पृथक् परीक्षाएँ समाप्त करके एक सामान्य परीक्षा प्रारम्भ की गई। दूसरे, सभी सफल प्रत्याशियों को प्रशिक्षित करने के लिए एक प्रशासन का स्नातकोत्तर विद्यालय स्थापित किया गया। इस विद्यालय में प्रशिक्षित लोकसेवकों को ही पद दिए जाने लगे। तीसरे, Ecole libre का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया तथा इसे पेरिस विश्वविद्यालय के साथ जोड़ दिया गया। शुल्क घटा दिए गए और वजीफा दिया जाने लगा। चौथे, पेरिस के अतिरिक्त, आठ अन्य स्थानों पर ऐसी ही संस्थाएँ खोली गईं। पाँचवें राष्ट्रीय प्रशासन विद्यालय के लिए वैकल्पिक प्रवेश परीक्षाएँ आयोजित की जाने लगीं।

इन सुधारों का सामाजिक पहलू की दृष्टि में विशेष प्रभाव नहीं हुआ। राज विज्ञान के प्रान्तीय संस्थानों में केवल आंशिक सफलता प्राप्त हो सकी क्योंकि इनमें पेरिस जैसा स्टॉफ नहीं था तथा वे Grands Corps में अंशकालीन प्रवक्ता को आकर्षित करने में असफल रहे। सुधारों के बाद भी लोकसेवाओं में मध्य एवं उच्च मध्य वर्ग के लोग छाए रहे। राष्ट्रीय प्रशासन विद्यालय की स्थापना का एक महत्त्वपूर्ण लाभ यह हुआ कि गैर-तकनीकी लोकसेवकों की भर्ती और प्रशिक्षण में काफी मात्रा में एकरूपता आ गई।

इतिहास की दृष्टि से राष्ट्रीय प्रशासन विद्यालय (E N A) कोई नया प्रयोग नहीं है वरन् इससे पूर्व जो तकनीकी प्रशिक्षण विद्यालय कार्य कर रहे थे उनके अनुभव से इसने पर्याप्त लाभ उठाया। E N A द्वारा एक नया काम यह किया गया कि इसने विद्यार्थियों को प्रान्तों में वरिष्ठ प्रशासकों के अधीन रखे जाने की व्यवस्था की जिसे Stage कहा गया।

राष्ट्रीय प्रशासन विद्यालय का प्रशिक्षण काल (The Period of Training in Ecole Nationale d' Administration)—इस विद्यालय का प्रशिक्षण कार्यक्रम तीन वर्ष तक चलता है। प्रशिक्षणार्थी का प्रथम वर्ष पेरिस से पूर्णतः Stage के रूप में व्यतीत होता है जिसके अन्तर्गत प्रशिक्षणार्थी को विभागों में प्रीफेक्ट या प्रशासकों या मल्जीरिया, मोरक्को और ट्यूनिशिया के नागरिक नियन्त्रणों के संरक्षण में रखा जाता है। इस व्यवस्था द्वारा प्रशिक्षणार्थियों के चरित्र का विकास किया जाता है तथा सभी प्रशासनिक समस्याओं में गहरा अन्तर्ज्ञान प्रदान किया जाता है। तकनीकी रूप से उन्हें बताया जाता है कि समस्याओं को कैसे सुलझाया जाए, स्थानीय आवश्यकताओं को समझकर उन्हें सुलझाया जाए तथा प्रशासन के तरीके एवं प्रक्रियाओं को ढूँढा जाए। अन्त में स्टेज के अध्यक्ष द्वारा प्रशिक्षणार्थी के सम्बन्ध में विद्यालय को लिखित अभिमत दिया जाता है जो उसके व्यक्तित्व का मुख्य तत्त्व बन जाता है। इस अभिमत एवं स्वयं के निर्णय के आधार पर Directeur des Stages द्वारा प्रत्येक सम्बन्धित प्रशिक्षणार्थी को अंक

प्रदान किए जाते हैं। Stage के अन्त मे प्रशिक्षणार्थी से किसी प्रशासनिक समस्या के बारे म 25-30 पृष्ठ का लेख लिखने को कहा जाता है जिसमे वह सम्बन्धित समस्या का समाधान भी सुझाता है। एक विशेष जूरी द्वारा इस लेख की जाँच की जाती है तथा आवश्यकता हो तो आगे भी स्पष्टीकरण मांगा जा सकता है। ENA के तीन निदेशक हैं, इनमे से एक प्रशिक्षणार्थियो के कार्यों पर पर्यवेक्षण रखने के लिए उत्तरदायी है इसके लिए वह वर्ष पर्यन्त घूमता रहता है तथा विद्यार्थियो और अधिकारियो से सम्पर्क करता रहता है।

द्वितीय वर्ष मे प्रशिक्षण स्वय ENA म पेरिस मे ही दिया जाता है। प्रत्येक विद्यार्थी को सामान्य प्रशासन सम्भाग, वित्तीय एव आर्थिक सम्भाग, सामाजिक प्रशासन सम्भाग तथा विदेश मामले सम्भाग मे से किसी एक सम्भाग म रखा जाता है प्रत्येक सम्भाग विद्यार्थियो को विशेष मन्त्रालयो म सेवा क लिए तैयार करता है। इस द्वितीय वर्ष का प्रशिक्षण दो भागो म विभाजित रहता है—(i) सामान्य प्रशिक्षण का पाठ्यक्रम जो कि सभी अथवा कुछ सम्भागो के लिए सामान्य रहता है और (ii) व्यक्तिगत सम्भागो की आवश्यकता के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम। इस प्रकार ENA उच्च प्रशासनिक शिक्षा एव संस्कृति और व्यावसायिक निकाय दोनों ही होने का प्रयास करती है। प्रथम भाग के पाठ्यक्रम अनेक प्रकार के होते हैं, जैसे—(क) विशेष महत्त्व के राष्ट्रीय प्रश्नो पर सामान्य पाठ्यक्रम, (ख) उत्तरी अफ्रीका की समस्याओं सम्बन्धी पाठ्यक्रम, जैसे—मुस्लिम इतिहास तथा समाजशास्त्र, फ्रांको ट्यूनिशियन कन्वेंशन, 1955 तथा अल्जीरिया, ट्यूनिशिया और मोरक्को म भर्ती की समस्याएँ आदि, (ग) विद्वान् विशेषज्ञो द्वारा दिए सामान्य भाषण, (घ) विद्यार्थियो को क्षेत्रीय स्तर पर अपने साथियो की समस्या समझने की क्षमता दी जाती है। जिस सम्भाग की समस्याओं को बताया जा रहा है उसके अतिरिक्त तीनो सम्भागों के विद्यार्थी इसम भाग लेते हैं। दूसरे भाग के पाठ्यक्रम व्यक्तिगत सम्भागो की आवश्यकताओ के अनुरूप विशेषीकृत होते हैं, उदाहरण के लिए आर्थिक मामलात के सम्भाग म वर्ष मे तीन पाठ्यक्रम होते हैं—सार्वजनिक वित्त एव लेखे, आर्थिक कार्यक्रम तथा अन्तर्राष्ट्रीय वित्त एव भुगतान सन्तुलन की समस्याएँ। इसके अतिरिक्त आर्थिक एव वित्तीय मामलो मे तथा औद्योगिक प्रशासन मे विचारगोष्ठियों का कार्यक्रम भी रखा जाता है। द्वितीय वर्ष के अन्त मे जबकि विभिन्न पाठ्यक्रम, भाषण, विचारगोष्ठियाँ, लेखन कार्य आदि पूरा हो जाता है तो अन्तिम श्रेणीबद्ध परीक्षा आयोजित की जाती है। यह एक आयोग द्वारा सचालित की जाती है। इस आयोग का कोई सदस्य ENA मे अध्यापन कार्य नहीं करता। यह व्यवस्था यथासम्भव निष्पक्षता बनाए रखने के लिए की जाती है। परीक्षा लिखित एव मौखिक दोनो प्रकार की ली जाती है। इसके बाद सभी विद्यार्थियो की एक विदेशी भाषा मे मौखिक परीक्षा ली जाती है। विदेशी मामलात के सम्भाग वाले विद्यार्थी तथा विदेश म नियुक्ति की अपेक्षा रखने वाले वित्तीय तथा आर्थिक सम्भाग के विद्यार्थी दो विदेशी भाषाओं की परीक्षा देते हैं। इन

परीक्षाओं मे विद्यार्थी के चरित्र की अपेक्षा उसकी बौद्धिक क्षमताओं को महत्त्व दिया जाता है। परीक्षाओं को वस्तुनिष्ठ बनाने की पूरी चेष्टा की जाती है। इनमें प्राप्त अकों को लिखित कार्य तथा प्रथम वर्ष के अकों के साथ जोड दिया जाता है। इन सभी अकों का योग अन्तिम सूची में विद्यार्थी के स्थान को निर्धारित करता है।

अन्तिम परीक्षा प्रारम्भ होने से पूर्व सरकारी आदेश द्वारा प्रत्येक मन्त्रालय तथा प्रशासन मे रिक्त स्थानों की सख्या निश्चित की जाती है। इस सूची मे से विद्यार्थी अपनी योग्यता के क्रम मे पदो का चयन कर लेते हैं। चयन के समय दो बातो की सीमा रहती है–(i) वह पद उन मन्त्रालयों के समूह में होना चाहिए जो उनके अध्ययन के अन्तर्गत हैं (ii) कुछ पद जैसे कौंसिल डी एटा के सभी पद तथा उत्तरी अफ्रीका के नागरिक प्रशासन के पद, सभी सम्भागो के विद्यार्थियो के लिए खुले रहते हैं जबकि कुछ पदो पर सीमाएँ भी रहती हैं।

तृतीय वर्ष के प्रारम्भ मे विद्यार्थी को पुन एक बार en Stage भेज दिया जाता है। इस समय तक प्रत्येक विद्यार्थी यह जान जाता है कि उसका भावी पद क्या होगा। यह तीसरा वर्ष मुख्य रूप से उसके दृष्टिकोण को व्यापक बनाने तथा भावी कैरियर के कार्यों को समझने से सम्बन्धित रहता है। यह द्वितीय Stage दो या तीन महीनो तक चलती है। इसमें विद्यार्थी बड़े औद्योगिक, व्यापारिक तथा कृषि उद्यमों से कार्य करता है। लक्ष्य यह रहता है कि विद्यार्थी यह जान ले कि ये सगठन यथार्थ में कैसे कार्य करते हैं, उद्यम के विभिन्न क्षेत्रों में पारस्परिक सम्बन्ध कैसा रहता है, प्रशासनिक नियमों का क्या प्रभाव है? इसके अतिरिक्त उसे व्यावसायिक सघो तथा मजदूरो की दुनिया में प्रवेश का यथेष्ट अवसर प्रदान किया जाता है। Stage की प्रकृति एव प्रकार विद्यार्थी के भावी पद के अनुसार बदलता रहता है। उत्तरी अफ्रीका के नागरिक प्रशासन में प्रवेश करने वाले विद्यार्थी कृषि एव देहाती इजीनियरिंग स्कूल भेजे जाते हैं तथा भावी वाणिज्यिक दूत आयात-निर्यात अभिकरणों व्यावसायिक बैंको तथा व्यावसायिक गृहो को भेजे जाते हैं।

अपनी अपनी Stages खत्म करने के बाद विद्यार्थी ENA में लौट आते हैं तथा यहाँ अपने भावी कार्य से सम्बन्धित शिक्षा प्राप्त करते हैं। वरिष्ठ प्रशासकों के भाषणों द्वारा उनका कार्य मे प्रवेश कराया जाता है तथा वे विभागीय एव अन्तर्विभागीय समितियो मे भाग लेते हैं। विद्यार्थी से यह आशा की जाती है कि वह जटिल कार्यों को सम्पन्न करेगा। वह अपने सम्बन्धित मन्त्रालय या प्रशासन के सभी सम्भागो के कार्य की गहराई से परीक्षा करता है।

प्रशिक्षण के बाद विद्यार्थी को कुछ समय का अवकाश दिया जाता है और उसके बाद वह अपना पद ग्रहण कर लेता है।

मूल्यांकन (The Evaluation)—ENA नागरिक सेवकों के प्रशिक्षण का सर्वाधिक प्रसिद्ध प्रयोग है। एक लम्बे अनुभव तथा प्रयोग के बाद यह फ्रांस के लोक जीवन का आवश्यक अग बन गया है। इसमें प्रशिक्षण प्राप्त अधिकारियों ने जो बुद्धिमत्ता, क्षमता, योग्यता, प्रशासनिक एव मानवीय आकृति प्रदर्शित की है वह

अन्य देशों के इस उम्र के लोकसेवकों में कदाचित् ही प्राप्त होती है। ENA द्वारा भावी लोकसेवकों में जो मूल्य स्थापित किए जाते हैं वे जीवनभर उनके कार्यों एवं विचारों को प्रभावित करते रहते हैं। Stage की व्यवस्था का भी पर्याप्त सकारात्मक लाभ है।

वस्तुस्थिति का दूसरा पहलू भी है। आलोचकों का कहना है कि प्रशिक्षण की सारी व्यवस्था पर पेरिस का आधिपत्य छाया रहता है। ENA में प्रवेश के लिए मानक काफी ऊँचा रखा जाता है। इसमें प्रवेश के लिए आवश्यक लम्बी तैयारी तथा उसके भी अनिश्चित परिणाम के कारण अनेक सम्भावित लोग भयत्रस्त हो जाते हैं। ENA समाज के दक्ष श्रमिक वर्ग में से लोगों की भर्ती करने में असफल रही है। इसी कारण सम्भवतः फ्रांस की उच्च सेवा के प्रजातन्त्रीकरण के लिए किए गए प्रयास पूर्णतः सफल नहीं हो सके। प्रशिक्षण काल की लम्बाई तथा प्रवेश परीक्षा का अत्यन्त उच्चस्तरीय मानक किसी भी प्रत्याशी को स्वयं के साधनों पर निर्भर रहने से रोकता है।

आलोचकों के मतानुसार ENA का कोई भी प्रत्याशी इस बात के लिए निश्चित नहीं होता कि उसे वह पद प्राप्त हो ही जाएगा जिसकी वह अभिलाषा कर रहा है। वह कौंसिल डी एटा में ऑडिटर होने का स्वप्न लेकर सेवा में प्रवेश करेगा तथा फ्रांसीसी रेडियो में प्रशासक के रूप में सेवा समाप्त कर लेगा। अनेक बार यह शिकायत की जाती है कि क्षेत्रीय सेवाओं में नियुक्त ENA से प्रशिक्षित कर्मचारी गुणों में अपने पूर्ववर्तियों से कमजोर हैं। ENA के विद्यार्थियों के लिए क्षेत्रीय सेवाएँ सबसे कम आकर्षक होती हैं, अधिकांश प्रतिभाशाली लोग पेरिस में ही रहना पसन्द करते हैं। केवल वे ही विद्यार्थी क्षेत्रीय सेवाओं में जाते हैं जो कमजोर होते हैं तथा जिनके सामने कोई विकल्प नहीं रहता।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि ENA ने उन पदों का स्तर गिराया है जो अपेक्षाकृत कम आकर्षक हैं तथा इसने केन्द्रीय प्रशासन की उच्चतर नागरिक सेवा के कर्मचारियों का स्तर ऊँचा उठाया है।

तकनीकी प्रशिक्षण
(Technical Training)

राज्य सेवा के लिए प्रशिक्षित इंजीनियर तैयार करने की दृष्टि से फ्रांस का इतिहास काफी लम्बा है। इस कार्य के लिए यहाँ तीन प्रमुख संस्थान हैं—

(i) Ecole Nationale des Ponts et Chaussess (1747)

(ii) The Ecole Nationale Superieure des Mines (1747)

(iii) Ecole Polytechnique (1794)

The Ecole Polytechnique

प्रथम दो विद्यालयों में अधिकांश विद्यार्थी तृतीय संस्था Ecole Polytechnique से आते हैं। इस संस्थान की पद्धति में कुछ सैनिक तत्वों की गन्ध है। इसका संचालन एक सेनापति द्वारा किया जाता है तथा इसके विद्यार्थियों को सेना

या केडेट माना जाता है। ये औपचारिक अवसरों पर 18वीं शताब्दी का पहनावा पहनते हैं तथा सर्वोत्तम सैनिक अनुशासन में रहकर कार्य करते हैं। एडवान्स्ड सैकण्डरी स्कूल पास करने वाले 18 से 20 वर्ष की आयु वाले प्रत्याशी इसमें प्रवेश के लिए स्पर्द्धा करते हैं। प्रशिक्षण के लिए प्रवेश से पूर्व विद्यार्थी को यह शर्त स्वीकार करनी पड़ती है कि वह कम से कम दस वर्ष तक राज्य सेवा में रहेगा। शिक्षा एवं भोजन का प्रबन्ध निःशुल्क रूप से किया जाता है साथ में कुछ भत्ता भी मिलता है।

इस विद्यालय में अध्ययन के पाठ्यक्रम मुख्यतः वैज्ञानिक, गणित, रसायनशास्त्र एवं भौतिकशास्त्र हैं तथा इसका मुख्य उद्देश्य वैज्ञानिक तथा इंजीनियरिंग विषयों में अग्रिम विशेषज्ञता के लिए बौद्धिक नींव तैयार करना है। यहाँ का पाठ्यक्रम दो वर्ष का है। इसके अन्त में परीक्षाएँ होती हैं तथा विद्यार्थियों को योग्यता के आधार पर वर्गीकृत कर दिया जाता है। योग्यता-क्रम के अनुसार ही विद्यार्थी अपना भावी व्यवसाय चुनते हैं। वे या तो असैनिक तकनीकी कार्प्स में अथवा सैनिक तकनीकी कॉर्प्स में जाते हैं।

जो विद्यार्थी असैनिक तकनीकी कॉर्प्स में जाने का निर्णय लेते हैं वे अन्य दो तकनीकी विद्यालयों में से किसी एक में प्रवेश लेते हैं। प्रवेश पाते ही उनको सरकारी स्तर प्राप्त हो जाता है तथा तदनुसार ही उनको वेतन भी मिलता है। वे स्कूल में तथा क्षेत्र में तीन वर्ष तक प्रशिक्षण पाते हैं तथा अन्त में वे अपने सम्बन्धित कॉर्प्स में चले जाते हैं। इन विद्यालयों द्वारा केवल योग्य इंजीनियर ही तैयार नहीं किए जाते वरन् सक्षम प्रशासक भी बनाए जाते हैं। उनकी भावी जीवन-वृत्ति भी विशेषीकरण और प्रशासन के बीच बदलती रहती है तथा जो लोग अपने व्यावसाय के शीर्ष पर पहुँच जाते हैं वे एक विलक्षण कॉर्प्स की रचना करते हैं, वह है—तकनीकी प्रशासन (Technocratic Administrator) की कॉर्प्स।

Ecole des Mines and Ecole des Ponts et Chaussees

ये दोनों विद्यालय विभिन्न स्रोतों से अपने विद्यार्थी प्राप्त करते हैं तथा उन्हें सरकारी एवं गैर-सरकारी दोनों प्रकार की सेवाओं के लिए प्रशिक्षित करते हैं। वैसे योग्यतर विद्यार्थी सरकारी सेवा में जाना अधिक पसन्द करते हैं। ये विद्यार्थी Ecole Polytechnique में पहले से ही दो वर्ष प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके होते हैं, इन्हें सरकारी अधिकारी का स्तर प्राप्त होता है, ये पूर्णकालीन वेतन-भोगी तथा 10 वर्ष तक राज्य सेवा करने के लिए वचनबद्ध होते हैं।

इन विद्यालयों में अपनाया जाने वाला पाठ्यक्रम निश्चय ही उल्लेखनीय होता है। इनका पाठ्यक्रम तीन वर्ष का है। इनमें से प्रथम वर्ष में ये क्षेत्रों में अपनी व्यावसायिक तकनीकों को किसी वरिष्ठ सदस्य के सामान्य पर्यवेक्षण में कार्यरूप प्रदान करते हैं। दूसरी बात यह है कि इन्हें जानबूझ कर ऐसा प्रशिक्षण दिया जाता है जो इनको बाद में उच्चस्तर प्रबन्ध एवं प्रशासन के पदों के उपयुक्त बना सके। उदाहरण के लिए, Ecole des Mines में प्रथम वर्ष में प्रशिक्षणार्थी

को सामान्य धातु शोधन विद्या (Metallurgy), भूगर्भशास्त्र (Geology), धातुओं का प्रतिशोध, खनिज तकनीक, औद्योगिक ताप, खनिज विद्या आदि का अध्ययन कराया जाता है। इस प्रथम वर्ष में ही उनको अंग्रेजी तथा जर्मन भी पढ़ाई जाती है तथा सामान्य अर्थशास्त्र का भी ज्ञान कराया जाता है।

द्वितीय वर्ष में प्रशिक्षणार्थी को सरकारी नियन्त्रण के अधीन किसी प्रमुख उद्यम में रखा जाता है। इस बात का ध्यान रखा जाता है कि भविष्य में प्रशिक्षणार्थी को किस क्षेत्र में विशेषीकरण प्राप्त करना है। विभिन्न प्रकार की खानों के बीच चयन किया जाता है। इस वर्ष प्रशिक्षणार्थी को सगठन में विशेष दायित्व सौंपे जाते हैं। उसके उच्च अधिकारी द्वारा उसकी क्षमताओं के बारे में वर्ष के अन्त में विद्यालय को प्रतिवेदन दिया जाता है। यह प्रतिवेदन बाद में उसकी भावी पदोन्नति में महत्त्वपूर्ण बन जाता है।

तृतीय वर्ष में प्रशिक्षणार्थी के लिए ये पाठ्यक्रम रखे जाते हैं-उन्नत तकनीकी, विद्युत इंजीनियरिंग, औद्योगिक रसायन, व्यावहारिक भूगर्भशास्त्र, धातु शोधन विद्या एवं खनिज विद्या तथा नक्शा रचना। इनके अतिरिक्त कानून, अर्थशास्त्र, सामाजिक और वित्तीय प्रशासन तथा सांख्यिकी आदि का विशेष पाठ्यक्रम चलाया जाता है। यह विशेष पाठ्यक्रम प्रशिक्षणार्थियों को भावी व्यवसाय के लिए तैयार करने के लिए चलाया जाता है जबकि उन्हें व्यापक प्रशासनिक दायित्वों के लिए बुलाया जाएगा। प्रशिक्षणार्थियों के लिए तकनीकी अध्ययन के साथ-साथ वैज्ञानिक अध्ययन पर भी जोर दिया जाता है तथा उनके अतिशय वैज्ञानिक दृष्टिकोण को मानविकी बनाने की चेष्टा की जाती है। मुख्य आदर्श यह है कि उसे एक तकनीकी प्रशासक बना दिया जाए। वह अपने विषय का पूर्ण विशेषज्ञ हो किन्तु स्वयं को मर्यादित न करे। एक इंजीनियर को एक प्रशासक के रूप में सोचने तथा सगठन करने का प्रशिक्षण दिया जाता है। यह एक ऐसा प्रशासक बन जाता है जो पूर्ण अधिकार के साथ वैज्ञानिकों एवं इंजीनियरों के कार्यों को निर्देशित कर सकता है। सामान्य प्रशासकों तथा विशेषज्ञ अधिकारियों के गुणों का यह संगम फ्रांस के लोक प्रशासन तथा प्रशिक्षण व्यवस्था की विलक्षणता है।

10 आचरण के नियम-तथा अनुशासनात्मक कार्यवाही, पदमुक्ति एवं अपीलें, सेवा निवृत्ति लाभ

(Conduct Rules and Disciplinary Action, Removal and Appeals, Retirement Benefits)

प्रत्येक देश के संविधान तथा सेवा-नियमों द्वारा लोकसेवाओं के आचरण सम्बन्धी कुछ नियम निर्धारित कर दिए जाते हैं ताकि वे अपने कार्यों एवं दायित्वों का समुचित निर्वाह कर सकें। ये नियम लोकसेवाओं की सार्थकता, ईमानदारी कार्य-कुशलता, सजगता आदि की दृष्टि से उपयोगी होते हैं। लोकसेवाओं की सुरक्षापूर्ण स्थिति को देखते हुए आचरण के इन नियमों का महत्त्व विशेष रूप से बढ़ जाता है। निजी प्रशासन में यदि किसी कर्मचारी के अकुशल कार्य सचालन से सगठन को वित्तीय हानि होती है अथवा समाज में उसकी प्रतिष्ठा गिर जाती है तो सम्बन्धित कर्मचारी के विरुद्ध तुरन्त अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाती है तथा उसके लिए यथोचित दण्ड की व्यवस्था की जाती है। इससे भिन्न लोकसेवाएँ प्राय गैर-प्रतियोगी तथा सुरक्षित प्रकृति की होती हैं, अत यह ज्ञात नहीं हो पाता कि किस कर्मचारी के किस आचरण से सगठन को कितनी हानि उठानी पड़ी है। अत. यहाँ आचरण के नियमों का व्यावहारिक महत्त्व है। एक अन्य दृष्टि से भी इन नियमों की उपयोगिता एव सार्थकता है। व्यवहार में लोकसेवाएँ ही राज्य का मूर्त रूप होती हैं, अत अपने सेवित व्यक्तियों एव साथियों के साथ दैनिक व्यवहार में उनको छोटी सरकारों की भाँति व्यवहार नहीं करना चाहिए।

आचरण के नियम
(The Conduct Rules)

किसी देश की लोकसेवा के आचरण के नियम वहाँ की परम्पराओं, आदर्शों, आकांक्षाओं, जनजीवन की मान्यताओं आदि के आधार पर तय किए जाते हैं। यही कारण है कि उनका कलेवर एव प्रकृति परस्पर भिन्नरूपी बन जाती है, किन्तु लोकसेवकों के आचरण के लिए कुछ नियम ऐसे भी होते हैं जो देश और काल की परिधियों से अप्रभावित रहते हैं। इन्हें हम आचरण के सामान्य नियम कह सकते हैं।

आचरण के इन सामान्य एव विशेष नियमो का सम्बन्ध मुख्यत इन विषयों से होता है—(क) सरकार के प्रति दृढ अनुरक्ति और अपने उच्च अधिकारियों के प्रति सद्व्यवहार, (ख) कर्मचारियो के निजी व्यापार और व्यवसाय पर प्रतिबन्ध जिससे वे ईमानदार बने रहे, (ग) कर्मचारियो के कर्ज लेने तथा सम्पत्ति के क्रय-विक्रय पर प्रतिबन्ध, (घ) राज्य कार्यों मे और घरेलू तथा निजी जीवन मे आचार-व्यवहार का उच्च स्तर और (च) कर्मचारियो के राजनीतिक कार्यकलाप, सार्वजनिक भाषण, समाचार पत्रो मे लेख आदि के प्रकाशन पर प्रतिबन्ध।

स्पष्ट है कि लोकसेवको के आचरण के ये नियम देश के सामान्य नियमो और कानूनो के ऊपर होते हैं तथा राज्य कर्मचारियो के आचरण को नियन्त्रित करते हैं। ये नियम एक सीमा तक कर्मचारियो के नागरिक अधिकारो पर प्रतिबन्ध लगाते है किन्तु इनका औचित्य दो कारणो से है। पहला कारण यह है कि इन कर्मचारियो को कुछ ऐसे लाभ और सुविधाएँ प्राप्त होते हैं जो सामान्य नागरिको को नही होते। दूसरे, राज्य कर्मचारियो के पद के अनुरूप उन्हें कुछ कर्त्तव्य भार सौंपना उपयुक्त भी है। यहाँ हम ग्रेट ब्रिटेन, भारत, सयुक्तराज्य और फ्रांस मे राज्य कर्मचारियो के आचरण के लिए निर्धारित नियमो का सक्षेप मे उल्लेख करेंगे—

1. सविधान और कानूनों के अनुरूप आचरण और अधिकारियो के आदेश का पालन (To Behave in Accordance with the Constitution and Laws and to Obey the Orders of Superiors)—राज्य कर्मचारी से यह आशा की जाती है कि वह अपने कर्त्तव्यो का पालन करते समय देश के सविधान एव कानून के अनुरूप आचरण करे और अपने उच्च अधिकारियो के आदेशो का पालन करे, यदि वे सविधान के विरुद्ध न हो। कर्मचारियो को सदैव अपने कार्यालयो के सम्मान के अनुरूप ही आचरण करना चाहिए। अधीनस्थ कर्मचारी का कार्य यह नही है कि वह अपने उच्च अधिकारियो के आदेश पर नीति सम्बन्धी एव भौतिक लाभ-हानि सम्बन्धी दृष्टियो से विचार करे। यदि उच्च अधिकारियो के आदेश मे चार बातें उपलब्ध हो तो वह पालनीय है। प्रथम, यह उच्च अधिकारी के अधिकार एव क्षमता के अन्तर्गत हो, द्वितीय, इसका पालन अधीनस्थ अधिकारी के दायित्व म शामिल हो, तृतीय, यह सविधान तथा कानूनो के विपरीत न हो और चतुर्थ, इसका स्वरूप नियमानुकूल हो। इन पूर्वशर्तों के होने पर भी यदि कोई कर्मचारी अपने उच्च अधिकारी के आदेश का उल्लघन करता है तो उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की जा सकती है।

राज्य कर्मचारियो के आचरण का यह नियम काफी महत्त्वपूर्ण है। नीति-निर्माता निकायो के सदस्य स्वतन्त्र विचार एव मत की स्थापना के लिए इस नियम क पालन से उन्मुक्त रखे जाते हैं। अन्य सगठनो मे भी तात्कालिक आज्ञाकारिता एव स्वतन्त्रता के बीच एक विभाजक रेखा खींची जानी चाहिए। अति-आवश्यक सेवाओ मे आज्ञा का पालन तुरन्त किया जाना चाहिए। इनमे काम पहले और बातें बाद मे करने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

2 गम्भीरता, ईमानदारी, निष्पक्षता एवं परिश्रम से कार्य करना (To Work with Greatest Sincerity, Probity, Impartiality and Industriousness)—राज्य कर्मचारियों को अपने कार्यालय का काम निजी स्वार्थों को महत्त्व दिए बिना पूरी गम्भीरता एवं ईमानदारी से करना चाहिए। कर्मचारी के निष्पक्ष व्यवहार के लिए अनेक नियम निर्धारित किए जाते हैं जैसे—जिन कार्यों में कर्मचारी के निजी स्वार्थों पर प्रभाव पड़ता हो उनसे वह स्वयं को अलग रखें, यदि सरकारी कार्यों से दूसरे को लाभ होता हो तो उनके बदले वह कोई धन स्वीकार नहीं करे, कर्मचारी को अपना काम पूरी मेहनत से करना चाहिए आदि। आचरण के नियमों के अनुसार अज्ञान शारीरिक असमर्थता तथा मानसिक असन्तुलन की स्थिति में राज्य कर्मचारी को सेवामुक्त कर दिया जाएगा किन्तु यदि वह काम के समय शराब पी ले या अपने साथी कर्मचारी से गप्पें लड़ाकर अपना तथा उसका समय खराब करे तो उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाएगी।

ग्रेट ब्रिटेन में यह व्यवस्था है कि लोकसेवक अपने सेवा सम्बन्धी दावों की माँग करते समय बाहरी अथवा राजनैतिक दबाव न डलाए वह अपने पद से कोई अनुचित लाभ न उठाए, बाहरी व्यावसायिक गतिविधियों में केवल नियमानुसार ही शामिल हो और सरकारी क्षेत्रों से निजी लाभ न कमाए तथा सरकारी जानकारी के आधार पर निजी व्यवसाय न चलाए।

भारत में गरीबी तथा कम वेतन के कारण रिश्वत, गबन आदि वित्तीय अपराधों की सम्भावना अनेक अवसरों पर यथार्थ बन जाती है। यहाँ नैतिकता की स्थापना के लिए व्यापक नियमन किया जाता है। राज्य कर्मचारियों के दुराचरण को फौजदारी अपराध माना जाता है। वे किसी से भेंट स्वीकार नहीं कर सकते अपने क्षेत्राधिकार के भू स्वामियों से न कर्ज ले सकते हैं और न उन्हें कर्ज दे सकते हैं उन्ह अपनी तथा अन्य पारिवारिक सदस्यों की अचल सम्पत्ति की घोषणा करनी होगी, कोई राज्य कर्मचारी अथवा उसके परिवार का कोई सदस्य ऐसा विनियोग नहीं करेगा जिससे उसके नियमित कार्य-सम्पादन में बाधा उत्पन्न हो। कोई राज्य कर्मचारी पूर्व अनुमति के बिना किसी व्यापार अथवा रोजगार में शामिल नहीं हो सकता। प्रथम श्रेणी की केन्द्रीय सेवाओं के राज्य कर्मचारियों की सन्तानें यदि सरकारी सहायता-प्राप्त उद्यम में रोजगार करना चाहती हैं तो इसके लिए पूर्व अनुमति आवश्यक है। राज्य कर्मचारियों के आचरण के नैतिकता सम्बन्धी इन नियमों को लागू करने के लिए भारत सरकार ने एक भ्रष्टाचार निरोधक दल तथा प्रशासनिक सतर्क सम्भाग की स्थापना की है। ये अभिकरण राज्य कर्मचारियों के आचरण की वित्तीय अनियमितताओं की रोकथाम करते हैं।

फ्रांस में राज्य कर्मचारियों के आचरण के सम्बन्ध में यह व्यवस्था है कि कोई भी कर्मचारी राज्य सेवा के बाहर वैतनिक गतिविधियों में भाग नहीं ले सकता। सक्रिय सेवा में रहते हुए वह सेवा के बाहर किए गए कार्यों के लिए कोई भुगतान स्वीकार नहीं कर सकता।

3 समय की पाबन्दी (Punctuality of Time)—राज्य कर्मचारियों को अपने कार्यालय आते समय तथा छोड़ते समय सही समय का पाबन्द होना चाहिए। वह समय के बाद में न आए और समय से पूर्व ही उठकर न चला जाए।

4. वर्तमान कार्य का प्रसार अथवा परिवर्तन (An Extension and Alteration of Existing Functions)—राज्य कर्मचारी के प्रशिक्षण और क्षमता के अनुरूप उसके वर्तमान कार्य में प्रसार तथा परिवर्तन किया जा सकता है। इसके लिए वह अतिरिक्त वेतन का दावा नहीं कर सकता। यदि हड़ताल के कारण अतिरिक्त कार्य को पूरा करने के लिए उच्च अधिकारियों द्वारा उसे आदेश दिए जाएँ तो उनका अनुशीलन किया जाना चाहिए। हड़ताल के समय उच्च अधिकारियों को भी शारीरिक परिश्रम के लिए तैयार रहना चाहिए।

5 गैर-सरकारी आचरण पर परिसीमाएँ (Limitations on Non-Governmental Behaviour)—राज्य कर्मचारी की आचरण संहिता में उसका केवल कार्यालय सम्बन्धी जीवन ही नहीं आता वरन् कार्यालय के बाहर का जीवन भी आता है। प्रत्येक कर्मचारी को कार्यालय के बाहर इस प्रकार व्यवहार करना चाहिए ताकि कार्यालय के गौरव विश्वास तथा सम्मान पर विपरीत प्रभाव न पड़े। इस दृष्टि से उसका अनियमित जीवन, जुआखोरी, कर्जदारी और नीचतापूर्ण आचरण आदि प्रतिबन्धित हैं। वित्त विभागों से सम्बन्धित कर्मचारी सट्टेबाजी और शराबखोरी के लिए पदमुक्त किए जा सकते हैं। यौन सम्बन्धों तथा विवाह सम्बन्धों की दृष्टि से भी लोकसेवकों का आचरण सन्तुलित एवं सामाजिक दृष्टि से स्वीकार्य होना चाहिए। कर्मचारियों के निजी आचरण पर इस प्रकार के प्रतिबन्ध लगाने का मुख्य उद्देश्य यह है कि उनके आचरण पर बाहर के लोगों का अनुचित दबाव न पड़े तथा वे धन, शराब और नव-यौवनाओं के आकर्षण में भटक कर गलत एवं पक्षपातपूर्ण कार्य न कर बैठें।

ग्रेट ब्रिटेन में प्रत्येक राज्य कर्मचारी का प्रथम तथा महत्त्वपूर्ण दायित्व हर समय और प्रत्येक अवसर पर राज्य के प्रति अविभाजित स्वामीभक्ति रखना है। भारत में यह व्यवस्था है कि जिनकी एक से अधिक पत्नियाँ जीवित हैं उनको राज्य-सेवा में नहीं लिया जा सकता। पहली पत्नी के जीवित होते कोई कर्मचारी दूसरा विवाह नहीं कर सकता। विवाहित महिलाएँ भारतीय प्रशासन सेवा में नहीं ली जा सकतीं। यदि नियुक्ति के बाद वे विवाह कर लें तो सरकार उनसे त्यागपत्र माँग सकती है। जहाँ तक उपहार ग्रहण करने का सम्बन्ध है भारत में यह व्यवस्था है कि यदि विवाहोत्सव, जन्मदिवस, अन्त्येष्टि अथवा धार्मिक उत्सव में अधिकारी को 20 रु से अधिक मूल्य की कोई भेंट मिले तो उसका विवरण तुरन्त सरकार को देना चाहिए। सरकार स्वयं यह आदेश दे सकती है कि उस भेंट का क्या किया जाए।

6. गोपनीयता (Secrecy)—कार्यालय के कार्य सम्पन्न करते समय प्रत्येक कर्मचारी को ईमानदारीपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। ऐसा न हो कि कार्यालय के लिए महत्त्वपूर्ण तथ्य बाहर प्रकाशित कर दिए जाएँ। गोपनीय बातें कार्यालय के

बाहर अथवा अन्दर के असम्बन्धित कर्मचारियों में चर्चा का विषय नहीं होना चाहिए। ग्रेट-ब्रिटेन में यह व्यवस्था है कि कोई राज्य कर्मचारी बिना विभागीय पूर्वानुमति के अपने कार्यालय के अनुभव या सूचनाओं के आधार पर कोई पुस्तक या लेख प्रकाशित नहीं कर सकता और न ही रेडियो अथवा टेलीविजन पर प्रसारण कर सकता है। कार्यालय में कार्य करते हुए यदि राज्य कर्मचारी कोई आविष्कार करता है तो उस पेटेण्ट कराना होगा और हो सकता है कि उसके नियन्त्रण का अधिकार क्राउन को देना पड़े।

भारत में भी इसी प्रकार के प्रतिबन्ध हैं। यहाँ राज्य कर्मचारी अपने स्वतन्त्र विचारों को आकाशवाणी या समाचार-पत्रों द्वारा प्रसारित नहीं कर सकता। सरकार को उलझन में डालने वाले या अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को प्रभावित करने वाले लेख प्रकाशित करने पर प्रतिबन्ध है।

7 **उच्च अधिकारियों का आदर (Respect for Superiors)**—कार्यालय के बाहर तथा भीतर के उच्च अधिकारियों का प्रत्येक राज्य कर्मचारी का सम्मान करना चाहिए। यदि उनके कार्य एवं चरित्र आपत्तिजनक हों तो भी वे सम्मानजनक समझे जाने चाहिए। कुछ राज्यों में इस आदर भाव को प्रकट करने के लिए विशेष नियमों की व्यवस्था की गई है, जैसे—उच्च अधिकारियों का प्रतिदिन नमस्कार किया जाए, कमरे में उनके प्रवेश करने पर खड़े होकर आदर किया जाए, बातचीत करते समय आदरसूचक शब्दों का प्रयोग किया जाए आदि।

8 **किसी के द्वारा अपमान सहन न करें (Must not Allow Insults to Pass Unnoticed)**—राज्य कर्मचारियों को चाहिए कि अपने पद एवं कार्यालय की प्रतिष्ठा के लिए वे किसी का अपमान सहन न करें। यदि कोई अपमान करता है तो उसके विरुद्ध या तो स्वयं कार्यवाही करें अथवा अपने उच्च अधिकारी से कहें। अपमानित व्यक्ति महत्त्वपूर्ण नहीं है किन्तु उसके पद और कार्यालय की प्रतिष्ठा महत्त्वपूर्ण है। फ्रांस के Statut des Fonctionnaries द्वारा सरकारी अधिकारियों को धमकी, हमला, अपमान और मानहानि के विरुद्ध रक्षा का अधिकार दिया गया है। प्रशासन का यह कर्त्तव्य है कि उनकी रक्षा करें।

9. **अतिरिक्त रोजगार स्वीकार न करना (Not to Accept Additional Offices or Employments)**—राज्य कर्मचारियों को अपने उच्च अधिकारी की पूर्वस्वीकृति के बिना अपने पद सम्बन्धी कार्यों के अतिरिक्त कार्य अथवा रोजगार स्वीकार नहीं करने चाहिए। एक सामान्य मान्यता के अनुसार उसे अपना सारा समय एवं शक्ति अपने पद के दायित्व पूरे करने में ही लगानी चाहिए। कर्मचारी की पत्नी, बच्चे और नौकरों को केवल वह कार्य करने की अनुमति दी जाती है जो लोकसेवाओं के गौरव के विपरीत न हो।

10 **सुरक्षा सम्बन्धी दायित्व (Security Responsibilities)**—राज्य की सुरक्षा की दृष्टि से लोकसेवकों के आचरण पर कुछ प्रतिबन्ध लगाए जाते हैं। ग्रेट-ब्रिटेन में साम्यवादी दल तथा फासीवादी संगठनों के सक्रिय सदस्यों तथा उनसे

सहानुभूति रखने वालों को 'गोपनीयता' के पदों पर नियुक्त नहीं किया जाता। यदि विभागाध्यक्ष यह अनुभव करे कि किसी कर्मचारी के विरुद्ध स्पष्टतः सुरक्षा सम्बन्धी मामला बनता है तो वह उसे इस बात की सूचना प्रदान करेगा तथा स्पष्टीकरण माँगेगा। यदि कर्मचारी उन आपत्तियों से मना कर दे तथा उच्च अधिकारी अपने पूर्व निर्णय को न बदले तो यह मामला प्रशासनिक न्यायाधिकरण के सामने रखा जाएगा। ग्रेट ब्रिटेन में इस प्रशासनिक न्यायाधिकरण की स्थापना 1948 में सुरक्षा सम्बन्धी आधारों पर कर्मचारियों की पदमुक्ति अथवा स्थानान्तरण के विरुद्ध अपीलें सुनने के लिए की गई थी। यह न्यायाधिकरण प्रमाणों पर विचार करने के बाद मन्त्री को अपना परामर्श भेज देता है। मन्त्री ही अन्तिम निर्णय लेने के लिए उत्तरदायी है। ग्रेट ब्रिटेन में प्रत्येक सरकारी विभाग में एक सुरक्षा संगठन होता है जो सेवीवर्ग सुरक्षा एवं अभिलेख नियन्त्रण के लिए उत्तरदायी है। राष्ट्रीय सुरक्षा का कार्य सुरक्षा सेवा द्वारा सम्पन्न किया जाता है। यह गृह सचिव के प्रति उत्तरदायी महानिदेशक के अधीन स्वतन्त्र रूप से कार्य करती है। इसके अतिरिक्त यहाँ एक सुरक्षा आयोग भी है। यदि विरोधी दल के नेता से राय लेकर प्रधान मन्त्री कहे तो यह आयोग लोकसेवकों द्वारा सुरक्षा के उल्लंघन की जाँच कर सकता है तथा सुरक्षा व्यवस्था में आवश्यक परिवर्तन एवं सुधार भी सुझा सकता है।

भारत में भी लोकसेवकों के सुरक्षा सम्बन्धी दायित्वों को पर्याप्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है। गुप्त एवं विश्वसनीय सूचनाओं सम्बन्धी पदों पर नियुक्तियाँ करने से पूर्व सम्बन्धित प्रत्याशी की पुलिस द्वारा पूरी जाँच की जाती है। राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए 1953 में केन्द्रीय लोकसेवा नियम बनाए गए। इनके तहत राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि विनाशकारी गतिविधियों में संलग्न कर्मचारियों को वह अनिवार्य सेवानिवृत्ति प्रदान कर सकता है। आन्तरिक सुरक्षा कानून (MISA) के अन्तर्गत भी ऐसे कर्मचारियों के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही की जा सकती है।

11 नागरिक तथा राजनीतिक स्थिति (Civil and Political Status)—भारत में राज्य कर्मचारियों के लिए राजनीति में भाग लेने और सरकार की नीतियों तथा कार्यों की आलोचना करने पर प्रतिबन्ध है। इस दृष्टि से कोई कर्मचारी खुले आम भाषण देने, समाचार पत्रों में वक्तव्य देने या पुस्तकें लिखने आदि से रोका गया है। कोई कर्मचारी किसी राजनीतिक दल अथवा संगठन का सदस्य नहीं हो सकता और न उसे आर्थिक सहायता प्रदान कर सकता है। वह व्यवस्थापिका एवं स्थानीय संस्थाओं के चुनावों में किसी के पक्ष अथवा विपक्ष में विचार नहीं कर सकता। उसे केवल मत देने का अधिकार है। अपनी सेवा की शर्तें सुधारने के लिए किए जाने वाले प्रदर्शनों एवं हड़तालों पर भी विशेष प्रतिबन्ध है। कोई कर्मचारी ऐसे कर्मचारी संघ का सदस्य नहीं हो सकता जिसे सरकारी मान्यता नहीं है अथवा सरकार ने जिसकी मान्यता समाप्त कर दी है। राज्य कर्मचारियों की नागरिक स्वतन्त्रताएँ भी सीमित हो जाती हैं। वे साधारण नागरिकों की भाँति पत्र-पत्रिकाओं में स्वतन्त्रतापूर्वक अपने विचार प्रकट नहीं कर सकते, वे अनाम रूप

से या किसी अन्य के नाम से कोई लेख नहीं लिख सकते। आकाशवाणी पर उनका वक्तव्य प्रसारित नहीं हो सकता। कर्मचारी का ऐसा कोई भी लेख या भाषण या प्रसारण सर्वथा निषिद्ध है जिसका अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर प्रभाव पड़े तथा जिससे सरकार किसी धर्म संकट में पड़ जाए। यदि कर्मचारी के लेख विशुद्ध रूप से साहित्यिक और कलात्मक हैं तो उनके प्रकाशन पर कोई रोक नहीं है।

फ्रांस में राज्य कर्मचारियों का राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने का अधिकार वहाँ की कौंसिल डी एटा द्वारा समय-समय पर परिभाषित होता रहता है। इस दृष्टि से यहाँ के कर्मचारी दो भागों में वर्गीकृत किए जा सकते हैं। कर्मचारियों की भारी संख्या को राजनीतिक दलों का सदस्य बनने और उनकी गतिविधियों में भाग लेने की पूरी स्वतन्त्रता रहती है। उत्तरदायी पदों पर कार्य करने वाले कर्मचारी इस दृष्टि से कुछ रिजर्व रखते हैं फिर भी उनकी राजनीतिक गतिविधियाँ पूर्णरूप से प्रतिबन्धित नहीं होतीं। मुख्य बात यह है कि जब ये कर्मचारी राजनीतिक गतिविधियों में भाग लें तो जनता के सम्मुख अपनी पद स्थिति की घोषणा न करें तथा कार्यालय में प्राप्त सूचनाओं का अपने राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयोग न करें। इन सीमाओं का सही अर्थों में पालन करने पर उच्च पदाधिकारी खुली राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने से स्वतः ही वंचित रह जाते हैं। फ्रांस में चुनावों में प्रत्याशी बनने का अधिकार अत्यन्त उदार है। एक सरकारी कर्मचारी उस परिषद् के लिए चुनाव लड़ सकता है तथा जीतने के बाद उसकी गतिविधियों में भाग ले सकता है जो उसके पद पर नियन्त्रण नहीं रखती। प्रारम्भ में लोकसेवक संसद् के सदस्य भी बन सकते थे किन्तु लुई फिलिप (Louis Philippe) के शासनकाल में इस सुविधा का दुरुपयोग हुआ। इसलिए 1948 से इस पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। फ्रांस की एक उल्लेखनीय व्यवस्था यह है कि संसदीय चुनाव लड़ने के लिए राज्य कर्मचारी को अपने पद से त्याग पत्र नहीं देना पड़ता और चुनाव जीत जाने पर भी वह Detaches बन जाता है या बाद में वापस सेवा में लिया जा सकता है।

स्पष्ट है कि प्रत्येक राज्य में कर्मचारियों के आचरण के लिए व्यापक नियम बनाए जाते हैं और उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे इनका आदर करेंगे। इनका उल्लंघन अथवा अवमानना करने पर पद-मुक्ति तक के विभिन्न दण्डों की व्यवस्था की जाती है। इन नियमों का मुख्य उद्देश्य सरकारी पद का गौरव व प्रतिष्ठा बढ़ाने के साथ-साथ उनकी कार्यकुशलता में वृद्धि करना होता है। प्रत्येक राज्य में उनका कलेवर तथा स्वरूप भिन्न हो सकता है किन्तु ये होते अवश्य हैं। ग्रेट ब्रिटेन में ये राजकोष के सर्कूलर तथा मिनिट्स एवं विभागीय नियमों के रूप में उपलब्ध होते हैं। संयुक्तराज्य अमरिका में विभागीय नियमों तथा कुछ अधिनियमों के कुछ भागों में इनकी व्यवस्था है। भारत में भ्रष्टाचार विरोधी अधिनियम 1947 और 1954-56 के बीच केन्द्रीय लोक सेवाओं, रेलवे सेवाओं, अखिल भारतीय सेवाओं तथा अन्य सेवाओं के लिए भी आचरण के नियम बनाए गए।

फ्रांस मे 1946 की सविधि तक अनेक सिद्धान्त अपनाए गए थे जिनका आधार यह धारणा थी कि लोकसेवक को राज्य की सेवा करनी चाहिए। ये सिद्धान्त समय-समय पर कौसिल डी एटा द्वारा अभिव्यक्त होते रहे हैं।

हडतालो एव प्रदर्शनो की समस्या
(The Problem of Strikes and Demonstrations)

सरकारी कर्मचारियो के आचरण तथा अनुशासन पर हडतालो एव प्रदर्शनो का भारी प्रभाव पडता है। यही कारण है कि उनके आचरण के नियम, तय करते समय इस सम्बन्ध मे भी उचित व्यवस्था की जाती है। हडतालो तथा प्रदर्शनो से सम्बन्धित व्यवस्था कर्मचारियो और नियुक्तिकर्त्ता के आपसी सम्बन्धो पर प्रभाव डालती है। हडताल का मुख्य कारण कार्य की शर्तों के प्रति कर्मचारियो का असतोष होता है। यह असतोष इन कर्मचारियो के वेतन और भत्ते कार्य के घण्टे, छुट्टियाँ आदि से सम्बन्धित होता है। इसे दूर करके हडतालो की सम्भावना को मिटाया जा सकता है।

हडतालें हमेशा विध्वसकारी, उपद्रवी, अशान्तिपूर्ण, जन-जीवन तथा देश के लिए अहितकर होती हैं। उनका तात्कालिक प्रभाव सदैव ही सोचनीय होता है। सरकारी कर्मचारियो की हडतालें तो और भी अधिक दुर्भाग्यपूर्ण होती हैं। समाज मे सरकारी कर्मचारी का एक विशेष स्थान होता है। वह प्रशासन का एक महत्त्वपूर्ण भाग है। उसके कुशल तथा निर्बाध कार्य-सचालन पर न केवल समाज की सुख सुविधाएँ वरन् समाज का अस्तित्व भी अवलम्बित है। वह चाहे किसी भी पद पर रह कर कोई भी कार्य सम्पन्न करे किन्तु उसके कार्यों का जनता पर प्रत्यक्ष प्रभाव पडता है। यही स्थिति उसकी शक्ति और सम्मान का स्रोत है। समाज उससे यह आशा करता है कि वह अपने किसी कार्य द्वारा समाज-कल्याण को खतरे मे न डाले। आजकल सरकार के कार्यों का क्षेत्र जीवन के प्रत्येक पहलू तक व्याप्त है और इसलिए हडताल द्वारा सरकारी कार्य को कुछ समय के लिए रोक देना भी अत्यन्त दु खदायी बन जाएगा। अत यह आवश्यक है कि सरकारी कर्मचारी अपने प्रत्येक कष्ट के निवारण के लिए बातचीत और समझौतेपूर्ण तरीके अपनाएँ तथा प्रशासन के कुशल सचालन मे किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न करें। कामेश्वर प्रसाद बनाम बिहार राज्य (A I R 1962) (S C R 1166) के मामले मे सर्वोच्च न्यायालय ने औद्योगिक विवाद अधिनियम द्वारा प्रशासनिक न होने वाले सभी सरकारी कर्मचारियो के हडताल करने पर प्रतिबन्ध का समर्थन किया था।

प्रशासनिक सुधार आयोग ने सरकारी विभागो मे हडतालो को कोई स्थान नहीं दिया।[1] आयोग के मतानुसार सरकारी सेवा मे प्रवेश पाने वाले व्यक्ति को यह स्पष्टत समझ लेना चाहिए कि वह हडताल के माध्यम से किसी लक्ष्य को प्राप्त

1 "We wish to record as our considered view that strikes are out of place in Government Departments"

—A R C Report on Personnel Administration, p 91

करने का अधिकार नहीं रखता। सेवा में प्रवेश के समय कर्मचारी से यह प्रतिज्ञा-पत्र लिखवा लेना चाहिए कि वह कभी हड़ताल में शामिल नहीं होगा। इस लिखित घोषणा का मनोवैज्ञानिक प्रभाव मूल्यवान रहेगा।

आचरण के नियमों द्वारा हड़ताल का निषेध किए जाने पर यह स्वाभाविक है कि जो कर्मचारी हड़ताल में भाग लेंगे उनके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही की जाएगी। सरकारी विभाग में होने वाली हड़ताल की गम्भीरता को देखकर यह उचित प्रतीत होता है कि उसे कानून के अनुसार दण्डनीय घोषित कर दिया जाए। इस दृष्टि से आयोग ने आवश्यक सेवा अधिनियम, 1968 (Essential Services Maintenance Act, 1968) को सराहनीय माना है। तदनुसार सरकार आवश्यक सेवाओं में हड़ताल पर प्रतिबन्ध लगा सकती है और प्रतिबन्धित हड़ताल में भाग लेने वाले प्रेरित करने वाले तथा धन देने वाले व्यक्तियों को दण्डित कर सकती है।

उचित शिकायतों का निराकरण
(Redressing the Legitimate Grievances)

हड़तालों और प्रदर्शनों को कानूनी रूप से दण्डनीय बना देना मात्र ही समस्या का निदान नहीं है। इसके मूल कारणों पर प्रहार करना होगा। कर्मचारियों की न्यायोचित माँगों को उपद्रवकारी तत्त्वों का खिलवाड़ बनने से पहले ही स्वीकार किया जाना चाहिए। समझौतापूर्ण दृष्टिकोण अपनाकर कर्मचारियों को सन्तुष्ट रखना चाहिए। सेवा की शर्तों से सम्बन्धित विवादों के निराकरण के लिए संयुक्त विचार-विमर्श के यन्त्र की व्यवस्था की जानी चाहिए। जो विवाद इस यन्त्र द्वारा तय नहीं किए जा सकें उनके सम्बन्ध में न्यायाधिकरण का बोर्ड बनाया जाना चाहिए। इसका निर्णय केवल संसद द्वारा ही बदला जा सके जो कि अन्तिम मध्यस्थ है। प्रशासनिक सुधार आयोग के मतानुसार राज्यों में भी सरकारी कर्मचारियों के कष्टों तथा शिकायतों के निराकरण के लिए एक संयुक्त विचार-विमर्शकर्त्ता यन्त्र (Joint Consultative Machinery) स्थापित किया जाना चाहिए तथा इसे कानूनी आधार प्रदान किया जाना चाहिए।

इन संयुक्त निकायों में कर्मचारियों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिए। वर्तमान स्थिति यह है कि मान्य संघों द्वारा इन निकायों में कर्मचारियों के प्रतिनिधि मनोनीत किए जाते हैं। यह परम्परा दोषपूर्ण है, क्योंकि संघ के सदस्य केवल कुछ ही कर्मचारी होते हैं और वह इन्हीं का प्रतिनिधित्व करता है। इन संघों में स्टाफ के कार्यकर्त्ताओं का स्थान नहीं होता। फलतः इनके द्वारा किए गए समझौता पर सामान्य स्वीकृति प्राप्त नहीं हो पाती। विवादपूर्ण प्रश्नों को फिर दूसरे साधनों से सुलझाने का प्रयास किया जाता है जिससे सारा प्रशासनतन्त्र कलुषित हो जाता है। इस स्थिति को सुधारने के लिए प्रशासनिक सुधार आयोग ने सुझाव दिया है कि कर्मचारियों का इन निकायों में प्रतिनिधित्व निर्वाचन द्वारा तय किया जाना चाहिए। क्षेत्रीय अथवा विभागीय कार्यालयों के निम्न स्तर के कर्मचारियों का प्रतिनिधित्व प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा और उच्चतर के कर्मचारियों का प्रतिनिधित्व अप्रत्यक्ष

का स्वरूप तैयार किया जाता है। इसी समय कर्मचारी को निलम्बित किया जा सकता है। कर्मचारी के विरुद्ध आरोपों तथा उसके बचाव के तर्कों की सुनवाई की जाती है। दोनों पक्षों को जानने के बाद उच्च अधिकारी अपनी राय कायम करता है और प्रतिवेदन के रूप में अपने उच्च अधिकारियों को भेजता है। यहाँ अभियोग के विरुद्ध दण्ड की व्यवस्था की जाती है और यदि आवश्यक हो तो दण्ड के विरुद्ध अपीलों की सुनवाई की जाती है। स्पष्ट है कि आचरण के नियम, अनुशासन, सेवा-मुक्ति अपीलें आदि एक ही प्रक्रिया के परस्पर सम्बन्धित सोपान हैं।

एक अच्छी अनुशासन व्यवस्था के लिए यह आवश्यक है कि यह नकारात्मक की अपेक्षा कुछ सकारात्मक कदम उठाए, उच्च अधिकारी नेतृत्व के गुणों से युक्त हो तथा विवेक और सन्तुलन से काम ले, अनुशासन का प्रयोग केवल अवांछनीय तत्त्वों को दबाने के लिए किया जाए। इसका लक्ष्य कर्मचारी के भावी व्यवहार को सुधारना हो यह समय पर तथा तुरन्त किया जाए इस दृष्टि से कर्मचारियों के बीच भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए, अभियुक्त को अपनी सफाई में तर्क देने का पूरा अवसर मिलना चाहिए और अनुशासनात्मक कार्यवाही का रूप गुप्त रहना चाहिए।

भारत में अनुशासन सेवा मुक्ति एवं अपीलें
(Disciplinary Action, Removal and Appeals in India)

भारत में गलत आचरण करने वाले अथवा अपने दायित्वों को पूरा न करने वाले राज्य कर्मचारियों के विरुद्ध अनेक प्रकार की अनुशासनात्मक कार्यवाहियाँ की जाती हैं। इनकी प्रकृति सुधारात्मक की अपेक्षा प्रतिरोधात्मक अधिक है। दण्ड का निश्चय अपराध की प्रकृति के आधार पर किया जाता है। बिना किसी कारण अथवा केवल शंका मात्र से किसी को दण्ड नहीं दिया जा सकता। दण्ड की सूची का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। यह ध्यान रखा जाता है कि दोषी कर्मचारियों को सदैव उपयुक्त दण्ड ही दिया जाए। छोटे अपराध के लिए गम्भीर दण्ड देना अन्याय का प्रतीक है तथा यह दण्ड की गम्भीरता को कम करता है। इसी प्रकार गम्भीर अपराध के लिए हल्का दण्ड देने से अपराधी का हौसला बढ़ जाता है।

अनुशासन अधिकारी (The Disciplinary Authority)—नियुक्ति एवं पदोन्नति की भाँति अनुशासनीय कार्यवाही करने का अधिकार भी विभागीय अध्यक्ष को दिया जाता है किन्तु अधीनस्थों की बड़ी संख्या के कारण व्यवहार में यह अधिकार अन्य अधीनस्थों को प्रदत्त कर दिया जाता है। अतः किसी विशेष शाखा या कार्यालय के कर्मचारी के विरुद्ध अनुशासन की कार्यवाही वहाँ के मुख्य अधिकारी द्वारा ही की जाती है। यदि दण्डित व्यक्ति इस कार्यवाही को अन्यायपूर्ण मानता है तो उच्चतर अधिकारी के यहाँ अपील कर सकता है। कुछ विचारकों की मान्यता है कि दण्ड देने और अपील सुनने का कार्य किसी बाहरी स्वतन्त्र सत्ता द्वारा किया जाना चाहिए, जैसे—लोकसेवा आयोग आदि। संयुक्तराज्य अमेरिका आदि कुछ देशों में यह व्यवस्था है। इसके पक्ष में यह दलील दी जाती है कि आरोप लगाने वाले अधिकारी को

निर्णायक न्यायाधिकारी नहीं होना चाहिए। निष्पक्षता और न्याय के लिए यह आवश्यक है कि ये दोनों शक्तियाँ अलग-अलग हाथों में रहें।

बाहरी स्वतन्त्र सत्ता के विरुद्ध आपत्ति यह की जाती है कि इससे लोकसेवाओं की कार्यकुशलता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इससे विभागाध्यक्ष निर्बल हो जाता है। बाहरी सत्ता संगठन की आन्तरिक कार्यकुशलता से अपरिचित रहती है, अतः पूर्ण न्याय न देकर केवल दया और सिद्धान्त के आधार पर निर्णय देती है। यदि बाहरी निर्णय के आधार पर कोई कर्मचारी अपने पद पर पुन आसीन हो जाए तो उसके कारण विभागीय सम्बन्ध बिगड़ जाते हैं तथा कानूनी लड़ाई के कारण तनाव का वातावरण बन जाता है। ग्रेट ब्रिटेन के टामलिन आयोग (TomlinCommission) तथा भारत में वेतन आयोग का यह मत था कि अनुशासनात्मक कार्यवाही के मामले में विभागीय अधिकारियों की शक्तियाँ अक्षुण्ण बनी रहनी चाहिए।

भारतीय संविधान की धारा-311 के अनुसार अखिल भारतीय, केन्द्रीय अथवा राज्य सेवाओं के किसी अधिकारी को उसके नियुक्तिकर्त्ता से हीनतर श्रेणी के अधिकारी द्वारा पदच्युत नहीं किया जा सकता। तदनुसार अखिल भारतीय सेवाओं के तथा सेना के आयुक्त अधिकारी केवल राष्ट्रपति द्वारा ही पदमुक्त किए जा सकते हैं। अन्य वर्गों के सम्बन्ध में अनुशासनात्मक कार्यवाही का अधिकार भारत सरकार तथा राज्य सरकारों को है। छोटी मोटी अनुशासनात्मक कार्यवाही अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा भी की जा सकती है। राज्यों में कार्य करने वाले अखिल भारतीय सेवाओं के सदस्यों को राज्य द्वारा दण्डित किया जा सकता है किन्तु कठोर दण्ड के लिए केन्द्रीय अनुज्ञा अपेक्षित है।

अनुशासनात्मक कार्यों की प्रक्रिया (The Procedure of Disciplinary Actions)—लोकसेवाओं के सभी कर्मचारी चाहे वे किसी भी पद पर कार्य करते हों जनता के सेवक होते हैं। कोई भी उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थ को मनमाना दण्ड नहीं दे सकता और न ही उसके साथ अपने नौकर जैसा व्यवहार करेगा। अनुशासनात्मक कार्यवाही के समय उसे एक निर्धारित प्रक्रिया का अनुशीलन करना होता है। इस प्रक्रिया के उत्तरोत्तर चरण इस प्रकार हैं—

1 जिस कर्मचारी के विरुद्ध कार्यवाही की जाती है उससे पहले जवाब तलब किया जाता है कि उसे अपनी गलती के बारे में क्या कहना है। किसी राज्य कर्मचारी को कोई भी दण्ड देने का आदेश तब तक जारी नहीं किया जाता जब तक कि उसे उन कारणों की लिखित सूचना न दे दी जाए जिनके आधार पर दण्ड दिया जा रहा है। उसे अपने बचाव का पर्याप्त अवसर दिया जाता है।

2. यदि कर्मचारी का जवाब नहीं मिलता अथवा असन्तोषजनक मिलता है तो उसके दोषों की तालिका तैयार की जाती है। इन लिखित अभियोगों की सूचना सम्बन्धित कर्मचारी को भी दे दी जाती है।

3 सम्बन्धित कर्मचारी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने बचाव के सम्बन्ध में एक लिखित वक्तव्य दे अथवा स्वयं सुनवाई के लिए उपस्थित होने की

इच्छा जाहिर करे। ऐसी स्थिति में वह सरकार से यह प्रार्थना कर सकता है कि उसे आवश्यक सरकारी कागजात एवं अभिलेख देखने की अनुमति प्रदान की जाए। सरकार को अधिकार है कि वह ऐसी अनुमति दे अथवा न दे।

4 यदि कर्मचारी के पद पर बने रहने से जाँच-पड़ताल में बाधा उत्पन्न होने की आशंका रहती है तो उसे सेवा से निलम्बित किया जा सकता है।

5 कर्मचारी का लिखित उत्तर प्राप्त होने अथवा न होने पर सरकार यदि आवश्यक समझे तो आरोपों की जाँच के लिए एक जाँच अधिकारी अथवा जाँच मण्डल नियुक्त कर सकती है अथवा अन्य प्रकार से जाँच करा सकती है।

6 यदि जांच मण्डल की नियुक्ति की जाती है तो उसमें कम से कम दो वरिष्ठ अधिकारी तथा एक सम्बन्धित कर्मचारी की सेवा का पदाधिकारी लिया जाएगा। जाँच के समय कर्मचारी अपने पक्ष में मौखिक गवाही दे सकता है, जिरह कर सकता है तथा इच्छानुसार गवाहों को बुला सकता है।

7 जो निर्णय दिया जाता है उसका पूरा विवरण प्रस्तुत किया जाता है। इस निर्णय में यदि प्रस्तावित दण्ड पदच्युति (Dismissal), पदमुक्ति (Removal), अनिवार्य निवृत्ति (Compulsory Retirement) या पंक्तिच्युति (Reduction in Rank) से सम्बन्धित है तो जाँच के प्रतिवेदन की एक प्रतिलिपि सम्बन्धित कर्मचारी को दी जाएगी तथा उसे कारण बताने का एक अवसर और दिया जाएगा। कर्मचारी का उत्तर आने के बाद प्रस्तावित दण्ड को परामर्श के लिए लोकसेवा आयोग के पास भेज दिया जाता है। आयोग स्वयं सारी स्थिति का मूल्यांकन करता है। यदि वह प्रस्तावित दण्ड से सहमत है अथवा उसे कम करने का परामर्श देता तो अनुशासन अधिकारी तदनुसार कार्यवाही सम्पन्न करता है। यदि आयोग के मतानुसार विचाराधीन मामले में सम्बन्धित कर्मचारी के आरोप अधिक गम्भीर प्रकृति के हैं तथा उन पर अधिक गम्भीर दण्ड दिया जाना चाहिए तो इस स्थिति में कुछ अतिरिक्त प्रक्रियात्मक औपचारिकताएँ भी सम्पन्न की जाती हैं। इसके लिए कर्मचारी को पुन 'कारण बताओ नोटिस' दिया जाएगा।

राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए गए कर्मचारियों को दिए गए दण्ड के बारे में लोकसेवा आयोग से परामर्श लेने की आवश्यकता शेष नहीं रह जाती। यहाँ स्वयं राष्ट्रपति ही दण्ड की आवश्यकता एवं रूप के सम्बन्ध में निर्णय लेता है तथा तदनुसार आदेश प्रसारित कर देता है। इस स्थिति में भी यदि कर्मचारी को गम्भीर दण्ड दिया जा रहा है तो उसे 'कारण बताओ नोटिस' दिया जाता है।

निर्णय आवश्यक रूप से दण्ड के रूप में ही नहीं होता वरन् तथ्यों का अवलोकन करने के बाद कर्मचारी को आरोपों से बरी भी किया जा सकता है।

8 अपील की आवश्यकता होने पर अपील की जाती है।

भारत में राज्य कर्मचारियों को अनुशासनात्मक कार्यवाही द्वारा दण्ड देने पर दो मुख्य परम्पराओं का अनुशीलन किया जाता है—(i) दण्ड देने वाला अधिकारी नियुक्ति करने वाले अधिकारी के समान स्तर का होना चाहिए, उससे नीचा नहीं, तथा (ii) दण्ड देने से पूर्व नियोक्ता अधिकारी से राय ली जानी चाहिए।

अपीलें तथा पुनर्विचार (Appeals and Review)–यदि प्रभावित कर्मचारी यह अनुभव करे कि उसे दण्ड देकर अन्याय किया गया है तो वह अपील कर सकता है। प्रत्येक सरकारी कर्मचारी को यह अधिकार प्राप्त होगा कि वह सरकार द्वारा निकाले गए दण्डादेश के विरुद्ध केन्द्र सरकार से अपील कर सके। उल्लेखनीय है कि राष्ट्रपति द्वारा की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही के विरुद्ध अपील नहीं की जा सकती। नियमानुसार केवल अधीनस्थ अनुशासन अधिकारी के निर्णय के विरुद्ध उससे उच्चतर अधिकारी के सम्मुख अपील की जाती है। चतुर्थ एवं तृतीय श्रेणी के कर्मचारियों द्वारा इस सुविधा का पूरा लाभ उठाया जाता है। प्रथम श्रेणी की सेवाओं के सदस्य राष्ट्रपति से नीचे के अधिकारियों द्वारा दण्ड होने पर राष्ट्रपति से अपील कर सकते हैं। सभी प्रकार की अपीलें, दण्डादेश प्राप्त होने के बाद तीन माह के अन्दर-अन्दर प्रस्तुत की जानी चाहिए। इस अपील के साथ प्रस्तावित कार्यवाही की एक प्रतिलिपि, सभी आवश्यक वक्तव्य एवं आधारभूत तर्क प्रस्तुत किए जाते हैं।

अपीलीय अधिकार की कुछ परिसीमाएँ भी हैं। राज्य कर्मचारी केन्द्र सरकार द्वारा पारित आदेश के सम्बन्ध में अपील नहीं कर सकता। अपील पर प्रतिबन्ध लगाने वाले सक्षम प्राधिकारी के आदेश के विरुद्ध भी अपील नहीं की जा सकती।

अपील सामूहिक रूप से नहीं की जाती वरन् अपील करने वाला प्रत्येक कर्मचारी स्वयं अपने नाम से तथा पृथक् रूप में ऐसा करता है। प्रत्येक अपील स्वराष्ट्र मन्त्रालय में भारत सरकार के सचिव को सम्बोधित की जाती है। प्रत्येक अपील में यह ध्यान रखा जाता है कि इसमें सम्पूर्ण सामग्री, विवरण-पत्र एवं दलीलें शामिल हों जिन्हें अपीलकर्ता अपने पक्ष में प्रस्तुत करना चाहता है इसमें अपमान-जनक तथा अनुचित भाषा का प्रयोग न किया जाए तथा यह प्रत्येक पहलू से पूर्ण हो। प्रत्येक अपील सम्बन्धित कर्मचारी के कार्यालय प्रमुख तथा दण्डादेश जारी करने वाले अधिकारी के द्वारा प्रस्तुत की जाती है।

अपील सुनने वाली सत्ता द्वारा मुख्य रूप से इन बातों की जानकारी की जाती है कि जिन तथ्यों के आधार पर दण्डादेश दिया गया है क्या वे वास्तविक हैं, क्या इन तथ्यों के आधार पर अनुशासनात्मक कार्यवाही की जानी चाहिए थी, क्या दिया गया दण्ड अत्यधिक है, पर्याप्त है अथवा अपर्याप्त है। इन सभी बातों पर विचार करने के बाद अपीलीय सत्ता उस मामले की सारी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अपनी दृष्टि से उचित एवं न्यायसंगत आदेश प्रसारित करेगी। इस सम्बन्ध में केन्द्र सरकार द्वारा दिया गया आदेश अन्तिम होता है तथा सम्बन्धित राज्य सरकार द्वारा उस आदेश को तुरन्त कार्यान्वित किया जाता है।

केन्द्र सरकार अथवा राज्य सरकारों को अपने दण्डादेशों पर पुनः विचार एवं परिवर्तन का अधिकार है। इस अधिकार का प्रयोग निश्चित काल-अवधि में किया जा सकता है जो आदेश जारी करने की तिथि से अपील दायर होने की स्थिति में छः माह के अन्तर्गत और अपील न होने पर एक वर्ष की होती है। यदि पूर्व-

आदेश मे परिवर्तन करते हुए दण्ड मे वृद्धि की जाती है तो सम्बन्धित कर्मचारी को उसके विरुद्ध कारण बताने का अवसर दिया जाता है। एक अन्य उल्लेखनीय बात यह है कि यदि राज्य या केन्द्रीय सरकार ने पूर्व-आदेश लोकसेवा आयोग के परामर्श के बाद जारी किया हो तो उसमे सशोधन के लिए भी आयोग का परामर्श आवश्यक है।

यदि अपील करने के बाद सम्बन्धित कर्मचारी का सन्तोषजनक परिणाम प्राप्त न हो तो वह अन्तिम अपील के रूप मे राष्ट्रपति के पास अभ्यावेदन भेज सकता है। यह अभ्यावेदन उचित प्रणाली द्वारा दण्डादेश जारी होने की तिथि स 3 वर्ष के अन्दर भेजा जाना चाहिए। इस पर सम्बन्धित विभाग और राज्य सरकार द्वारा अपना अभिमत प्रस्तुत किया जाता है। इस सम्बन्ध मे राष्ट्रपति का निर्णय अन्तिम होता है। अपील के ये सभी क्रमिक सोपान कार्यपालिका क्षेत्र के हैं।

यदि कार्यपालिका क्षेत्र मे की गई अपीलो से कर्मचारी को सन्तोष न हो तो वह अपना मामला न्यायालय मे ले जा सकता है। न्यायिक पुनरावलोकन की इस व्यवस्था से कर्मचारियो मे सुरक्षा की भावना विकसित होती है, किन्तु अधिकारी वर्ग इसे प्रशासनिक असुविधा का आधार मानता है। उनका तर्क यह है कि जो कर्मचारी न्यायालय के आदेश द्वारा पुन स्थापित किए जाते हैं वे सगठन के मानव सम्बन्धो को कटु बना देते हैं। वे खुलेआम विभागीय आदेशों और नियमो की अवहेलना करके अनुचित वातावरण उत्पन्न करते हैं।

सविधान की धारा 311 (Article-311 of the Indian Constitution)- विभिन्न विभागीय और सेवा नियमो सम्बन्धी प्रावधानो के अतिरिक्त भारतीय सविधान द्वारा भी सघ तथा राज्य सरकारो के कर्मचारियो को कुछ महत्वपूर्ण सुरक्षाएँ प्रदान की जाती हैं। इस दृष्टि से भारतीय सविधान की धारा 311 उल्लेखनीय है। इस धारा की उल्लेखनीय व्यवस्थाएँ ये हैं—

(i) राज्य अथवा सघीय असैनिक सेवा के सदस्यो को उन्हे नियुक्त करने वाले प्राधिकारी स नीचे के किसी प्राधिकारी द्वारा पदच्युत नही किया जाएगा।

(ii) सघीय अथवा राज्य स्तरीय असैनिक सेवा के किसी सदस्य को हटाने से पूर्व उसे उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपो से अवगत कराया जाएगा, उसे दोषारोपों के बारे मे सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर दिया जाएगा, यदि उस पर कोई दण्ड आरोपित किया गया है तो उसके बारे मे उसे अपील करने का अवसर दिया जाएगा।

(iii) एक व्यक्ति पदमुक्त अथवा पक्तिच्युत किए जाने के बाद भी वर्तमान सेवा नियमों के तहत गवर्नर अथवा राष्ट्रपति से अपील करने का अधिकार रखता है।

अन्तिम दो प्रावधान उस समय लागू नही होंगे जबकि—(क) एक कर्मचारी को ऐसे आचरण के आधार पर पदमुक्त या पक्तिच्युत किया गया है जिसके कारण *फौजदारी आरोप मे उस पर मुकदमा चल रहा है। (ख) यदि उसे पदमुक्त अथवा* पक्तिच्युत करने वाली सत्ता कुछ कारणो से, जिनका वह लिखित रूप मे उल्लेख करे, यह समझे कि उस व्यक्ति को कारण बताने का अवसर देना तर्कसगत रूप से

व्यावहारिक नहीं है। (ग) यदि राष्ट्रपति अथवा गवर्नर के मतानुसार उस व्यक्ति को ऐसा अवसर देना राज्य की सुरक्षा के हित मे उपयुक्त नहीं है।

(iv) जिस मामले मे यह कार्यवाही की जा रही है उसे सम्बन्धित अधिकारी द्वारा लिखित रूप मे अभिलेखित किया जाना चाहिए।

धारा 311 की व्याख्या (The Interpretation of Article 311)—संविधान की इस धारा का मूल उद्देश्य राज्य कर्मचारियो को अपेक्षित सुविधा प्रदान करना है क्योकि यह व्यवस्था की गई है कि वे राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल के प्रसाद-पर्यन्त ही अपने पद पर बने रहेगे। इस सम्बन्ध मे इस धारा की कुछ अधिक व्याख्या वांछनीय है जिसके आधार पर निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं—

1 कर्मचारी की पदच्युति एव पदमुक्ति नियोक्ता अधिकारी से निम्नतर अधिकारी द्वारा नही की जा सकती।

2. यह धारा केवल असैनिक पदो पर लागू होती है।

3 यह धारा केवल तभी लागू होगी जबकि किसी कर्मचारी को उसका नियमित कार्यकाल समाप्त होने से पहले ही पदमुक्त अथवा पदच्युत किया जाएगा।

4 प्रत्येक प्रभावित कर्मचारी को अपने पक्ष मे सफाई का युक्तियुक्त अवसर दिया जाएगा। न्यायपालिका को यह तय करने का अधिकार होगा कि किसी मामले मे युक्तियुक्त अवसर दिया गया था अथवा नहीं। यदि किसी मामले म ऐसा अवसर नहीं दिया गया है तो इसे धारा 311 का उल्लघन समझा जाएगा।

5 सर्वोच्च न्यायालय के मतानुसार यदि 25 वर्ष की सेवा पूरी करने के बाद किसी कर्मचारी को दुराचार, अकार्यकुशलता आदि कारणों से सेवामुक्त किया जाता है तो इसे धारा 311 के विरुद्ध नही माना जाएगा।

6 समझौते की शर्तों या सेवा की शर्तों के अनुरूप सेवा मुक्ति के मामलो मे यह धारा लागू नहीं होगी।

7 पद की समाप्ति पर अस्थायी अधिकारियों को हटाना भी असंविधानिक नहीं है क्योंकि ऐसे अधिकारी की नियुक्ति स पहले ही तत्सम्बन्धी समझौता कर लिया गया था।

8 परिवीक्षाधीन को परिवीक्षा काल मे हटाना या पदच्युत करना असंविधानिक नहीं है।

9 विभागीय जाँच के समय किसी अधिकारी को निलम्बित करना एक अस्थायी कार्य है जिसे दण्ड नहीं कहा जा सकता और इसलिए यहाँ 'कारण बताओ' का अवसर देने की आवश्यकता नहीं होती।

लोकसेवाओं के आचरण और अनुशासन पर प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशें
(A R C Recommendations on Public Service Conduct and Discipline)

इस सम्बन्ध मे प्रशासनिक सुधार आयोग की मुख्य सिफारिशें अग्र-लिखित हैं—

1 प्रत्येक सरकारी कर्मचारी को पद ग्रहण करने से पूर्व एक शपथ-पत्र पर हस्ताक्षर करने चाहिए कि वह किसी भी परिस्थिति में हड़ताल नहीं करेगा। आवश्यक सेवा सम्बन्धी अधिनियम, 1968 द्वारा केन्द्र सरकार को यह शक्ति दी गई है कि आवश्यक सेवाओं में हड़ताल पर प्रतिबन्ध लगा दे और प्रतिबन्धित हड़तालों में भाग लेने वालों को दण्डित करे।

2 एक कानून पारित करके सरकारी कार्यालयों में ऐसे प्रदर्शनों को अपराध घोषित किया जाना चाहिए जो व्यवस्थित और शान्तिपूर्ण कार्य में बाधा पहुँचाते हैं तथा इसके लिए दण्ड भी निर्धारित किया जाना चाहिए।

3 यदि विभागीय जाँच का काम अधिक हो तो एक विभाग में इसके लिए एक अलग अधिकारी की नियुक्ति की जानी चाहिए जो अनुशासनात्मक कार्यवाहियों के सचालन में पूरी तरह प्रशिक्षित हों।

4 अनुशासनात्मक जाँचकर्त्ता अधिकारी को गवाहों को उपस्थित होने के लिए बाध्य करने, अभिलेख उपस्थित कराने आदि की शक्तियाँ होनी चाहिए।

5 पदोन्नति रोकने को दण्ड सूची से निकाल दिया जाए।

6 न्यायालय में विचाराधीन मामलों से सम्बन्धित कर्मचारियों के अलावा अन्य किसी कर्मचारी को तीन माह से अधिक निलम्बित न किया जाए।

7 विभिन्न प्रकार के अनुशासन सम्बन्धी मामलों के शीघ्र निबटाने के लिए नियम बनाए जाएँ।

8 सभी परिवीक्षा अधिकारियों को कर्त्तव्यों की अवहेलना करने पर अपने अधीनस्थों को निलम्बित करने की शक्ति दी जानी चाहिए। इस शक्ति की पुनरीक्षा अगले उच्च अधिकारी द्वारा की जा सकती है।

9 पदच्युति, पद से हटाना और पदविच्युत करना जैसे गम्भीर दण्ड के आदेशों के सम्बन्ध में अन्तिम अपीलीय अधिकारी के रूप में कार्य करने के लिए लोकसेवा न्यायाधिकरणों की स्थापना की जानी चाहिए।

10 केन्द्रीय तथा राज्य स्तरों पर अलग-अलग न्यायाधिकरण की स्थापना की जानी चाहिए। प्रत्येक न्यायाधिकरण की अध्यक्षता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश या उतने ही योग्य अन्य व्यक्ति द्वारा की जानी चाहिए। इसमें एक वरिष्ठ सरकारी अधिकारी प्रशासनिक अनुभव में युक्त जनता का व्यक्ति भी होना चाहिए। केन्द्रीय तथा राज्यस्तरीय न्यायाधिकरण के अध्यक्ष और सदस्य सर्वोच्च न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श पर नियुक्त किए जाने चाहिए।

11 गम्भीर दण्ड पाने वाले व्यक्ति को पहले विभागीय प्राधिकारी से अपील का अधिकार हो तथा न्यायाधिकरण का दोषारोपण तथा दण्डों के सम्बन्ध में अपीलें सुनने का अधिकार हो। न्यायाधिकरणों की स्थापना के बाद दण्ड निर्धारण के बारे में लोकसेवा आयोग के परामर्श की आवश्यकता नहीं रहे।

संयुक्तराज्य में अनुशासन, पदमुक्ति एवं अपीलें
(Discipline Removal and Appeals in U. S. A)

संयुक्तराज्य अमेरिका में यदि राज्य कर्मचारियों द्वारा उनके कर्तव्यों की अवहेलना की जाए तो मुख्य निम्नलिखित दण्ड देने की व्यवस्था की गई है—

1. झिड़की देना या चेतावनी देना—यह सम्भवत सबसे कम गम्भीर दण्ड है। जो मामले अत्यन्त गम्भीर हो सकते थे उनको चेतावनी या झिडकियाँ देकर पहले ही सम्भाल लिया जाता है। अनौपचारिक मौखिक झिड़की के समय अधिकारी का व्यक्तिगत सम्पर्क एक रचनात्मक एव सकारात्मक प्रभाव छोड़ता है।

2 कम वांछित कर्तव्य सौंपना—यह भी अपेक्षाकृत हल्का ही दण्ड है। पुलिस वाले क्षेत्रीय कार्यकर्त्ता एव विभिन्न स्थानों पर काम करने वालों को इस प्रकार दण्डित किया जाता है। इसे एक ही व्यक्ति पर बार-बार लागू करने से लाभ की अपेक्षा हानियाँ अधिक होती हैं।

3. कार्य का कम मूल्यांकन करना—यह कुछ अधिक गम्भीर दण्ड है क्योंकि यह भावी पदोन्नति म बाधा डालता है। कर्त्तव्य की अवहेलना का तथ्य कर्मचारी की सेवा पुस्तिका मे लिख दिया जाता है तथा सम्भावित पदोन्नति के समय उसका ध्यान रखा जाता है।

4 आर्थिक दण्ड—यह व्यवस्था पुलिस के अतिरिक्त अन्य विभागों से समाप्त प्राय हो गई है। कारण यह है कि आर्थिक दण्ड कर्मचारी के आश्रितों एव परिवारजनों को दु खी करता है तथा यह लोकसेवाओं के सम्मान के भी विरुद्ध है।

5 वेतनहीन निलम्बन—यह दण्ड का एक सामान्य तरीका है जिसम कर्मचारी को बिना वेतन के निलम्बित कर दिया जाता है। निलम्बन का काल निर्धारित किया जाता है। अमेरिका मे राज्य एव स्थानीय स्तर के अनेक पदों पर यह समय प्राय तीस दिन का होता है।

6 पदावनति एव वेतन मे कटौती—इसमे कर्मचारी की मासिक आय घट जाती है और इसलिए यह दण्ड उसके पूरे कार्यकाल तक जारी रहता है। इसके अतिरिक्त पदावनति क बाद सौंपे गए कार्य, हो सकता है उसे अधिक पसन्द न हो। पदावनति कर्मचारी के मनोबल तथा उत्साह को तोड देती है इसलिए सावधानी के साथ इसका प्रयोग किया जाना चाहिए।

7 पदमुक्ति या सेवा से हटाना सर्वाधिक कठोर दण्ड है जिसके परिणाम-स्वरूप वेतन आय तथा स्तर की हानि होती है वरन् पेन्शन के अधिकार भी समाप्त हो जाते हैं। इस दण्ड को अधिक गम्भीर बनाते हुए सम्बन्धित कर्मचारी को एक निश्चित समय तक अथवा हमेशा के लिए पुनर्नियुक्ति के अयोग्य ठहरा दिया जाता है।

पदमुक्ति का अर्थ एव महत्त्व (Meaning and Significance of Removal)—पदमुक्ति के विरुद्ध अनेक सुरक्षाओं से युक्त अमेरिकी लोकसेवाएँ आजीवन सेवाएँ हैं। फिर भी असन्तोष एव दुराचरण शराबखोरी, चोरी आदि के लिए किसी भी राजकर्मचारी को सेवा से बाहर किया जा सकता है। योग्यता

व्यवस्था का प्रभाव बढने के साथ ही यहाँ अयोग्य तथा अक्षम कर्मचारियों को हटाने की परम्पराएँ काफी प्रभावशाली बन गई।

पदमुक्ति एक अत्यन्त अरुचिपूर्ण कर्त्तव्य है। प्रत्येक सगठन यह चाहता है कि उसके कर्मचारी यथासम्भव बने रहें। मानवता एव मानवीय सम्बन्धों को ध्यान मे रखते हुए यह कदम पर्याप्त सोच समझ कर उठाया जाता है।

पदमुक्ति का निर्णय कार्यपालिका द्वारा लिया जाता है। इस शक्ति का प्रयोग परिस्थिति के अनुसार नियोक्ता अधिकारी, विभागीय सेवीवर्ग अधिकारी, विभागीय सेवीवर्ग मण्डल, विशेष अनुशासन न्यायाधिकरण अथवा केन्द्रीय सेवीवर्ग अभिकरण द्वारा किया जाता है। व्यवहार मे दृढता एव तुरन्त कार्यवाही के लिए अनुशासन की सत्ता एक ही व्यक्ति के हाथो मे सौंपी जाती है। सयुक्तराज्य अमेरिका मे अनुशासन सम्बन्धी मामलो की मौलिक सत्ता विभागाध्यक्षो मे निवास करती है।

पदमुक्ति की प्रक्रिया यह है कि सरकार द्वारा अग्रिम रूप से कर्मचारी को सूचना दी जाती है तथा लिखित रूप मे उसे वे कारण बता दिए जाते हैं जिनके आधार पर उसे हटाया जा रहा है। कर्मचारी को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाता है। पदमुक्ति का निर्णय धार्मिक, जातीय एव राजनीतिक भेदभाव के कारण नही लिया जाना चाहिए। 1912 के अधिनियम (Liyod Lafollette Act of 1912) के अनुसार सगठन मे कार्यकुशलता बढाने की दृष्टि से पदमुक्ति के सम्बन्ध मे असमानताएँ बरती जा सकती है। भूतपूर्व सैनिक कर्मचारियो को हटाने के लिए 30 दिन पूर्व नोटिस दिया जाना चाहिए और हटाने के कारणो का उल्लेख स्पष्टत तथा विस्तार से करना चाहिए।

अपील करने की व्यवस्था (The System of Appeals)—सयुक्तराज्य अमेरिका के अधिकांश कर्मचारियों को प्रबन्ध द्वारा उठाए गए सेवामुक्ति जैसे कठोर कदमो के विरुद्ध अपील करने का अधिकार दिया गया है। अपील सुनने वाली सस्था बहु-सदस्यीय होती है। इसमे प्राय तीन सदस्य होते है जो कानून द्वारा स्थायी रूप मे अथवा विभागाध्यक्ष द्वारा तदर्थ रूप से नियुक्त किए जाते हैं। इसका एक सदस्य कर्मचारियो द्वारा निर्वाचित किया जाता है। कुछ सेवाओ मे एक स्थायी सामान्य अपील समिति नियुक्त की जाती है। कभी-कभी अपील मण्डलो मे जनता का प्रतिनिधित्व भी किया जाता है। इनका सगठन चाहे कुछ भी रहा हो किन्तु इनकी कार्य प्रक्रिया हमेशा न्यायालय जैसी औपचारिक न होकर अनौपचारिक होती है। इनके परामर्श विभागाध्यक्ष के लिए बाध्यकारी न होकर परामर्शदाता प्रकृति के होते हैं।

सगठन जितना बडा होता है उसमे अपील व्यवस्था की उतनी ही अधिक आवश्यकता होती है। विभिन्न विभागो के लिए पृथक् अपील व्यवस्थाएँ होने के साथ-साथ अमेरिका मे लोकसेवा आयोग को भी कुछ अपील सम्बन्धी अधिकार दिए गए हैं।

ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस की लोकसेवाओं में अनुशासन

(Discipline in British and French Public Services)

प्रत्येक ब्रिटिश राज कर्मचारी का वार्षिक प्रतिवेदन उसके विभागाध्यक्ष द्वारा तैयार किया जाता है। इस प्रतिवेदन में कर्मचारी के कार्यों का मूल्यांकन होता है। कार्य की अवहेलना करने वाले अथवा दुराचरण के दोषी कर्मचारियों को चेतावनी भी जाती है तथा झिड़कियाँ दी जाती हैं। इसके अतिरिक्त दूसरे दण्ड प्रदान करके अनुशासन की स्थापना की जाती है। ब्रिटिश लोकसेवकों को दिए जाने वाले कुछ प्रमुख दण्ड ये हैं—वार्षिक वेतन वृद्धि रोक देना, कार्य से निलम्बित कर देना और सेवा निवृत्ति लाभों से वंचित करके पद से हटा देना आदि।

अनुशासन अधिकारी का निश्चय सम्बन्धित अपराध की गम्भीरता के आधार पर किया जाता है। छोटे-मोटे अपराधों के लिए कर्मचारी के निकटवर्ती उच्च अधिकारी द्वारा अनुशासनात्मक कार्यवाही की जा सकती है। यह चेतावनी एवं निन्दा जैसे छोटे-मोटे दण्ड भी प्रदान कर सकता है। प्रभावित कर्मचारियों को अनुशासनात्मक कार्यवाही के विरुद्ध अपील करने का भी अधिकार है। ब्रिटिश अनुशासन व्यवस्था के सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि यहाँ पक्षपात या भेदभावपूर्ण व्यवहार के विरुद्ध औपचारिक तथा स्पष्टतः परिभाषित समुचित सुरक्षाएँ नहीं हैं।

फ्रांस में राज्य कर्मचारी द्वारा कार्य की अवहेलना अथवा अनुचित सम्पादन के लिए उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की जा सकती है। कभी-कभी यह कार्यवाही कर्मचारी के निजी जीवन से भी सम्बन्ध रखती है—कार्य करते समय निर्धारित सीमाओं का ध्यान न रखना अथवा अपने व्यवहार से लोकसेवाओं को बदनाम करना। फ्रांस में लोकसेवाओं के सम्भावित अपराधों के अनुकूल ही सम्भावित दण्डों की व्यवस्था की गई है। इनमें कुछ उल्लेखनीय दण्ड ये हैं—चेतावनी, निन्दा, पदोन्नति की सूची में से नाम हटा देना, अनाकर्षक और अरुचिपूर्ण स्थान पर नियुक्ति, वरिष्ठता की समाप्ति, पदावनति, सेवानिवृत्ति अधिकारों सहित अथवा रहित पद मुक्ति।

दोषी कर्मचारी के विरुद्ध आरोप की तैयारी निकटवर्ती उच्च अधिकारी द्वारा की जाती है। अनुशासन सम्बन्धी सभी मामलों की सुनवाई विशेष रूप से निर्मित संयुक्त कर्मचारी संगठनों के मध्य में की जाती है। यदि अनुशासनात्मक कार्यवाही के समय किसी अधिकारी द्वारा शक्ति का दुरुपयोग किया गया है अथवा किसी प्रक्रिया को तोड़ा गया है तो प्रभावित कर्मचारी सर्वोच्च प्रशासनिक न्यायालयों में अपील कर सकता है।

सेवा निवृत्ति लाभ

(The Retirement Benefits)

राज्य-कर्मचारियों द्वारा अपने जीवन की कार्यशील उम्र में पूरी क्षमता और शक्ति के साथ दायित्वों का निर्वाह किया जाता है। इसके बदले सरकार द्वारा उनके

भरण-पोषण के लिए समुचित वेतन की व्यवस्था की जाती है। प्रश्न यह है कि वृद्धावस्था में जब लोकसेवक कार्य करने में अक्षम होगा अथवा किसी दुर्घटना या लम्बी बीमारी के कारण वह अपनी सेवाएँ प्रदान नहीं कर सकेगा तो उसके भरण-पोषण की क्या व्यवस्था की जाएगी ? इस प्रश्न के समाधान के लिए विभिन्न देशों में कर्मचारियों के लिए सेवा-निवृत्ति लाभों की व्यवस्था की जाती है। उनकी मात्रा, समय और स्वरूप विभिन्न देशों में विभिन्न पदों के लिए अलग-अलग होता है। सेवा निवृत्ति की व्यवस्था योग्यता प्रणाली के प्रभाव का प्रतीक है तदनुसार शारीरिक व बौद्धिक क्षमता घटने के साथ ही वृद्ध राज्य-कर्मचारियों को सेवा से पृथक् किया जाना चाहिए। यह कार्य कर्मचारी को नौकरी से निकालना नहीं है वरन् यह नियमित सेवा से नियमित अवकाश-प्राप्ति है।

निवृत्ति के उद्देश्य
(Aims and Objects of Retirement System)

निवृत्ति एक निश्चित आयु सीमा के बाद आवश्यक बन जाती है, क्योंकि उम्र ढलने के साथ ही कर्मचारी की कार्यक्षमता और नवीनता के प्रति उसकी अभिरुचि घटने लगती है, उसका जीवन बहुत कुछ उदासीन, एकान्तप्रिय और चिन्ताशील बन जाता है। ऐसी स्थिति में कर्मचारी को निवृत्त करना एक साथ अनेक उद्देश्यों की पूर्ति का आधार बन जाता है। प्रो एल डी व्हाइट के कथनानुसार, असैनिक कर्मचारियों के लिए निवृत्ति व्यवस्था मुख्य रूप से उन स्त्री-पुरुषों के रोजगार को निलम्बित करने की सुविधा प्रदान करती है जिनकी शक्तियाँ उम्र के कारण घट गई हैं या जो अन्य कारणों से कार्य नहीं कर पाते। इन्हें अतीत की सेवाओं के लिए भत्ता दिया जाता है। यदि कर्मचारी की मृत्यु हो जाए तो उसके आश्रितों को लाभ दिया जाता है तथा आर्थिक सुरक्षा की भावना पैदा करके सेवाओं का मनोबल बढ़ाया जाता है।

निवृत्ति के कुछ प्रमुख उद्देश्य ये हैं—

1 निवृत्ति के द्वारा वृद्धावस्था या शारीरिक अथवा मानसिक कमजोरी के कारण अपने कार्यों का समुचित रूप से सम्पन्न करने में अक्षम कर्मचारियों को सेवा से बाहर किया जाता है और इस प्रकार लोकसेवाओं की कार्यकुशलता में वृद्धि की जाती है। जले हुए कोयले इञ्जिन से निकाल दिए जाते हैं क्योंकि उनकी गर्मी अब इञ्जिन को गति नहीं दे पाती।

2 सेवा-निवृत्ति की व्यवस्था पदोन्नति के लिए आवश्यक है। वृद्ध जनों को सेवा-निवृत्त किए जाने पर होने वाले रिक्त स्थानों पर सगठन के योग्य व्यक्तियों की पदोन्नति की जा सकती है। पदोन्नति के पर्याप्त अवसरों के कारण सगठन के कर्मचारियों में एक नया उत्साह व लगन जाग्रत होती है।

3 प्रत्येक सगठन नई समस्याओं और चुनौतियों का सामना करने के लिए नए दृष्टिकोण तथा तरीके अपनाए जाने की अपेक्षा रखता है। इसके लिए नवीनता

विरोधी और रूढ़िवादी दृष्टिकोण मे प्रभावित वृद्ध जनो को निवृत्त कर देना उपयोगी तथा आवश्यक है।

4 वृद्ध कर्मचारियो को निवृत्त करके लोकसेवाओ म युवा और सक्षम व्यक्तियो के लिए जगह बनाई जा सकती है। इसके कारण लोकसेवाओ मे नया रक्त और नवीन विचारो का प्रवेश हो पाता है।

5 सेवा-निवृत्ति के बाद पेंशन की व्यवस्था से कर्मचारी सन्तुष्ट रहते हैं और इस प्रकार लोकसेवाओ म अनुभवी तथा सक्षम कर्मचारियो का बने रहना सम्भव होता है। कर्मचारियो को पेंशन व्यवस्था के कारण अपने भविष्य की अधिक चिन्ता नही होती इसलिए भ्रष्टाचार और रिश्वत पर रोक लगती है।

6 पेंशन व्यवस्था के कारण प्रतिभाशाली लोग लोकसेवाओ की ओर आकर्षित होते हैं और इस प्रकार देश की विलक्षण प्रतिभाओ से लोकसेवाएँ लाभान्वित हो पाती हैं।

7 राज्य एक आदर्श नियोक्ता है और इसलिए यह न्यायपूर्ण नही होगा कि जिन लोगो ने अपनी युवावस्था मे पूरी स्वामिभक्ति और क्षमता से राज्य की सेवा की है उन्हे वृद्धावस्था म राज्य उन्ही के भाग्य पर छोड दे। न्याय की माँग यह है कि वृद्धावस्था म राज्य को उनकी देखभाल करनी चाहिए।

8 सेवा निवृत्ति व्यवस्था लोकधन के अपव्यय को रोकने का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। वृद्धजनों के वतन के रूप म जितना धन व्यय किया जाता है बदले म उतना कार्य वे नहीं कर पाते। दो वृद्ध कर्मचारियो द्वारा मुश्किल से इतना कार्य किया जाता है जितना कि एक स्वस्थ व्यक्ति अकेला कर सकता है।

स्पष्ट है कि मानवता की दृष्टि से सगठन की भलाई और कार्यकुशलता के लिए तथा स्वय व्यक्ति के आराम और कल्याण के लिए प्रत्येक प्रशासनिक सगठन मे सेवा-निवृत्ति लाभ की व्यवस्था आवश्यक और उपयोगी है।

निवृत्ति की आयु
(The Age of Retirement)

निवृत्ति अथवा अवकाश ग्रहण करने की आयु अलग-अलग देशों म भिन्न-भिन्न है। इस आयु के निश्चय पर देश की जलवायु तथा जनता की औसत आयु, इन दो बातो का प्रभाव पडता है। सयुक्तराज्य अमरिका मे यह आयु 65 से 70 के बीच, ब्रिटेन मे 60 से 65 के बीच तथा भारत मे 55 से 60 के बीच है। ग्रेट ब्रिटेन मे राज्यकर्मचारी 60 वर्ष का होने पर स्वेच्छा से अवकाश ग्रहण कर सकता है किन्तु 65 वर्ष की आयु पूरी होने पर अवकाश अनिवार्य है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद यह व्यवस्था की गई है कि किसी प्रकार की अयोग्यता होने पर 50 वर्ष में भी अवकाश ग्रहण किया जा सकता है।

भारत म सेवा-निवृत्ति के लिए आयु अपेक्षाकृत कम रखी गई है। कारण यह है कि यहाँ की उच्च सेवाओ मे पहले यूरोपवासियों की सख्या अधिक थी तथा

वे वहाँ की जलवायु में शीघ्र ही थक जाते थे। इसी कारण वहाँ कर्मचारियों एवं अधिकारियों के लिए 58 वर्ष तथा अन्य कर्मचारियों के लिए 60 वर्ष की आयु सेवा निवृत्ति के लिए निर्धारित की गई।

अवकाश-प्राप्ति की आयु सीमा के सम्बन्ध में दो विरोधी मत हैं। एक ओर जनता एवं कर्मचारियों की दृष्टि से अनुभवी और प्रशिक्षित सेवीवर्ग की सेवाओं का लाभ उठाने के लिए यह आयु सीमा अधिकाधिक ऊँची रखी जानी चाहिए। इसके विपरीत नवागन्तुक कर्मचारियों के अनुसार ऐसा करने से पदोन्नति के अवसर घट जाएँगे तथा नए लोगों को सेवा में प्रवेश प्राप्त नहीं हो सकेगा।

सेवा निवृत्ति लाभ का औचित्य एवं उपयोगिता
(Justification and Significance of Retirement Benefits)

प्रायः सभी देशों में वृद्धावस्था के कारण सेवा-निवृत्त हुए लोगों के भरण-पोषण के लिए व्यवस्था की जाती है। उनको या तो मासिक पेंशन दी जाती है अथवा एक ही बार में भविष्य निधि (Provident Fund) का भुगतान किया जाता है। अवकाश प्राप्ति के समय यदि व्यवस्था न की जाए तो इसके दो परिणाम हो सकते हैं—(क) कर्मचारियों को आजीवन कार्य पर रखना होगा जिसके कारण वृद्ध तथा अक्षम कार्यकर्त्ताओं की भरमार हो जाएगी, अथवा (ख) अनेक भूतपूर्व कर्मचारी कटीपतंग की भाँति निरावलम्ब होकर कष्ट का जीवन व्यतीत करेंगे। दोनों स्थितियाँ प्रशासनिक कार्यकुशलता एवं मानवीय दृष्टि से गलत हैं अतः सेवा-निवृत्ति काल में सरकार की ओर से आर्थिक सहयोग का प्रावधान औचित्यपूर्ण है।

इस औचित्य के सम्बन्ध में मुख्यतः चार सिद्धान्त प्रचलित हैं—(i) यह वृद्ध कर्मचारियों के प्रति सरकार की उदारता का प्रतीक है, (ii) यह कर्मचारी के अच्छे कार्य का पुरस्कार है, (iii) यह सामाजिक सुरक्षा की एक योजना है, (iv) यह कर्मचारियों का रुका हुआ वेतन है जिसके वे अधिकारी हैं। ये चारों सिद्धान्त अलग-अलग समय की राजनीतिक विचारधारा के परिणाम हैं। इनमें से किसी को पूर्ण सत्य अथवा पूर्ण असत्य नहीं कहा जा सकता। विभिन्न देशों में वहाँ के संविधान तथा कानून द्वारा अलग-अलग व्यवस्थाएँ की गई हैं। सभी के पेंशन सम्बन्धी नियम भी अलग अलग हैं। कुछ देशों में पेंशन सम्बन्धी नियम कानूनबद्ध हैं तथा न्यायपालिका द्वारा उनको लागू किया जाता है।

निवृत्ति लाभ के दो रूप—पेंशन एवं भविष्य निधि
(Two forms of Retirement Benefits—Pension and Provident Fund)

एक निर्धारित उम्र पर निवृत्त होने वाले कर्मचारी को मोटे रूप से दो प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं—पेंशन तथा भविष्य निधि। पेंशन निवृत्त कर्मचारी को मासिक या वार्षिक रूप से आजीवन दी जाती है। कभी-कभी यह कर्मचारी के मरणोपरान्त भी उसके आश्रितों को प्रदान की जाती है। भविष्य निधि का भुगतान

एक ही बार में किया जाता है। इस राशि में कर्मचारी के वेतन से काटी गई राशि भी शामिल होती है।

निवृत्ति लाभ के इन दोनों रूपों की तुलनात्मक उपयोगिता का विवेचन किया जा सकता है। पेंशन की व्यवस्था का लाभ यह है कि इसका भुगतान जीवनपर्यन्त मिलता रहता है। सरकार की दृष्टि से भी यह व्यवस्था उपयोगी है क्योंकि उसे थोड़ी-थोड़ी राशि प्रतिमाह देनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त पेंशन व्यवस्था से सरकार कर्मचारी पर समुचित नियन्त्रण रख पाती है। पेंशन कर्मचारी के लिए अपेक्षाकृत अधिक आर्थिक सुरक्षा का प्रतीक है क्योंकि उसकी न्यूनतम आवश्यकताएँ नियमित रूप से जीवनपर्यन्त पूरी होती रहेंगी। इसमें किसी प्रकार की हानि या कठिनाई की आशंका नहीं रहती। भविष्य निधि के रूप में प्राप्त होने वाली एक बड़ी रकम को सुरक्षित रखने तथा लाभ पर लगाने की गम्भीर चिन्ता बनी रहती है। असावधानी या फिजूलखर्ची के कारण कभी-कभी यह राशि शीघ्र समाप्त हो जाती है तथा कर्मचारी और उसके परिवार का शेष जीवन परेशानी में व्यतीत होता है, अतः पेंशन व्यवस्था अधिक उपयोगी मानी जाती है।

भविष्य निधि का लाभ यह है कि इसके रूप में एक बड़ी राशि एक ही बार में प्राप्त हो जाती है जिसकी सहायता से निवृत्त कर्मचारी कोई नया उद्यम या व्यवसाय प्रारम्भ कर सकता है जो उसके तथा उसके परिवार की खुशहाली का प्रतीक बन जाए। भविष्य निधि का प्राप्त होना निश्चित प्रायः होता है जबकि पेंशन सशर्त होती है तथा किसी भी शर्त के पूरा न होने पर उसका भुगतान खटाई में पड़ जाता है। पेंशन के अनेक उलझे हुए मामले कर्मचारी की मृत्यु तक भी नहीं सुलझ पाते और अनेक उलझनों और अभिलाषाओं की गठरी को मन में बाँध ही परलोक सिधारना पड़ जाता है। पेंशन की व्यवस्था उस कर्मचारी के स्वजनों के लिए हानिकारक होती है जिसकी निवृत्ति के कुछ समय पहले अथवा तुरन्त बाद मृत्यु हो जाए। ऐसी स्थिति में भविष्य निधि का परिवारजनों को भुगतान किया जाता है। भविष्य निधि की व्यवस्था में कर्मचारी आवश्यकता के समय जब चाहे तभी निवृत्ति पा सकता है, किन्तु पेंशन व्यवस्था में लाभ का मूल उसे अधिक समय तक सेवा में बनाए रखना है। पेंशन लम्बी तथा अच्छी सेवा का पुरस्कार है इसलिए विवश होकर कर्मचारी अधिकतम काल तक सेवा में बने रहना चाहता है। भविष्य निधि की व्यवस्था में कर्मचारी स्वतन्त्रता और आत्मसम्मान के साथ कार्य करता है तथा उसे उच्च अधिकारियों के अनावश्यक दबाव में नहीं रहना पड़ता।

स्पष्ट है कि पेंशन एवं भविष्य निधि दोनों व्यवस्थाओं के अपने अपने लाभ तथा हानियाँ हैं। अतः आजकल निवृत्ति-लाभ के रूप में मिश्रित विधि का विधान किया जाता है, तदनुसार पेंशन का एक भाग भविष्य निधि में जमा करा दिया जाता है तथा उसका भुगतान मृत्यु अथवा निवृत्ति के समय एकमुश्त कर दिया जाता है। इसी प्रकार भविष्य निधि की राशि वार्षिक दान के रूप में परिवर्तित कर दी जाती है तथा कर्मचारी को थोड़ी-थोड़ी राशि का भुगतान नियमित रूप से होता रहता है।

निवृत्ति लाभ के दोनों रूपों की उपयोगिता का तुलनात्मक विवेचन करने के बाद हम इन दोनों के स्वरूप के बारे में कुछ अधिक विस्तार से विवेचन करेंगे।

1 पेंशन व्यवस्था (The Pension System)—पेंशन अंशदायी (Contributory) तथा गैर-अंशदायी दोनों प्रकार की होती है। अंशदायी पेंशन में सरकार तथा कर्मचारी दोनों का अंशदान होता है तथा इस प्रकार संचित राशि में से पेंशन दी जाती है। यह व्यवस्था कर्मचारी के आत्मसम्मान के अनुकूल है तथा उसमें अपनेपन तथा अधिकार की भावना भी जागृत करती है। इस व्यवस्था में कर्मचारी कुछ कहने का अधिकारी भी बन जाता है।

पेंशन प्रदान करने की परिस्थितियों के अनुसार इसे सामान्य तथा असामान्य दो रूपों में विभाजित किया जाता है। सामान्य पेंशन को पुनः पाँच भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है—(i) वृद्धावस्था पेंशन—यह उस कर्मचारी को दी जाती है जो एक निश्चित आयु प्राप्त करने के बाद (जैसे 58 या 60 वर्ष) सेवा-निवृत्त किया गया हो, (ii) अवकाश पेंशन—यह उस कर्मचारी को दी जाती है जो एक निश्चित समय तक काम करने के बाद स्वयं ही निवृत्त होने की इच्छा प्रकट करता है। इस समय की सीमा 30 वर्ष या 25 वर्ष या अन्य कुछ हो सकती है (iii) अशक्तता पेंशन—यह उस कर्मचारी को दी जाती है जो शारीरिक या मानसिक असमर्थता के कारण काम करने में अयोग्य हो जाता है, (iv) क्षतिपूर्ति पेन्शन—यह उस कर्मचारी को प्रदान की जाती है जिसका पद समाप्त किया जा चुका है किन्तु उसके बराबर का पद दिया नहीं जा सका है, (v) सदस्यता पेन्शन—यह उस कर्मचारी को दी जाती है जो दुराचार या अकार्यकुशलता के कारण सेवा-निवृत्त किया गया है किन्तु महानुभूतिवश जिसे पोषणवृत्ति प्रदान की जाती है।

असामान्य पेन्शन ऐसे कर्मचारी को दी जाती है जो अचानक ही मृत्यु का ग्रास बन गया हो। इसका लक्ष्य कर्मचारी की विधवा पत्नी एवं बच्चों का पालन-पोषण करना होता है। यदि मृत कर्मचारी के माता-पिता बे-सहारा रह जाएँ तो उन्हें भी इस प्रकार की पेन्शन उपलब्ध कराई जाती है।

वैधानिक रूप से कर्मचारियों को पेन्शन का अधिकार प्राप्त नहीं होता। सरकार द्वारा पेन्शन को कभी भी रोका जा सकता है। जब भी सरकार यह अनुभव करे कि सम्बन्धित कर्मचारी राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने लगा है या उसने विदेशी नागरिकता प्राप्त कर ली है या वह सरकार के सम्मान तथा हितों को हानि पहुँचा रहा है या कर्मचारी अपराध एवं दुराचार का दोषी पाया गया है तो सरकार द्वारा उसकी पेन्शन रोकी जा सकती है। ग्रेट ब्रिटेन में ऐसे विवादों का अन्तिम निर्णय करने की शक्ति वहाँ के राजकोष को प्राप्त है।

स्पष्ट है कि पेन्शन की माँग कर्मचारी द्वारा अधिकार रूप में नहीं की जाती वरन् यह राज्य द्वारा सशर्त रूप में प्रदान की जाती है। इसकी मुख्य शर्तें ये हैं—

(i) यह तभी प्रदान की जाती है जबकि सम्बन्धित कर्मचारी का कार्य पूर्णतः सन्तोषजनक रहा हो;

(ii) असन्तोषजनक कार्य होने पर पेन्शन की राशि में सरकार द्वारा इच्छानुकूल कमी की जा सकती है,
(iii) सम्बन्धित कर्मचारी की नियुक्ति नियमानुसार की गई हो तथा वह नियमित कर्मचारी रहा हो;
(iv) कर्मचारी राज्य का पूर्णकालीन (Full time) कार्यकर्ता रहा हो,
(v) कर्मचारी का वेतन पूर्णरूप से सरकारी कोष से मिलता रहा हो,
(vi) कर्मचारी ने कुछ न्यूनतम वर्षों तक राज्य-सेवा की हो,
(vii) कर्मचारी पेन्शन की उम्र तक पहुँच चुका हो अथवा उतनी उम्र तक न पहुँचा हो तो मानसिक या शारीरिक दृष्टि से कार्य करने में असमर्थ हो।

पेन्शन के सम्बन्ध में कुछ मूलभूत प्रश्न उत्पन्न होते हैं जिनका समाधान विभिन्न देशों में अलग अलग प्रकार से किया जाता है। ये निम्नलिखित हैं—

(क) पेन्शन अधिकार के लिए न्यूनतम सेवाकाल भारत में 58 वर्ष तथा 60 वर्ष है। इस उम्र वाले कर्मचारी भी तभी पेन्शन पाने के अधिकारी होंगे जबकि वे दस वर्ष तक राज्य सेवा में रह चुके हों। इससे कम अवधि में निवृत्त होने के बाद कर्मचारी को सहायता राशि दी जाती है जो प्रत्येक वर्ष के एक माह के वेतन के बराबर होती है। यदि 58 या 60 वर्ष की उम्र पूरी होने से पहले ही कर्मचारी की 30 वर्ष की सेवा हो जाए तो वह पेन्शन के साथ अवकाश ग्रहण कर सकता है। 25 वर्ष की सेवा पूरी हो जाने पर भी उसे आर्थिक या प्रशासनिक आवश्यकता के कारण निवृत्त किया जा सकता है। अकार्यकुशल कर्मचारी भी अनिवार्य रूप से निवृत्त किए जा सकते हैं।

(ख) क्या अस्थाई सेवाकाल की गणना की जाए? सामान्यत वही पदाधिकारी पेन्शन पाने का अधिकारी होता है जो स्थाई पद पर स्थाई रह कर सरकार से वेतन प्राप्त करते हुए निश्चित कार्यकाल तक सेवा कर चुका हो। विशेष नियमों के अनुसार यदि अस्थायी कर्मचारी बाद में स्थाई हो जाए तो उसका अस्थाई सेवाकाल का आधा समय विहित काल में गिन लिया जाता है।

(ग) वेतन क्रम (Pay Scale) तथा पेन्शन का अनुपात क्या रखा जाए? इस सम्बन्ध में केन्द्रीय वेतन आयोग की सिफारिशों पर 1 अप्रेल, 1950 से यह व्यवस्था की गई है कि सेवाकाल के प्रत्येक वर्ष के औसत वेतन का 80वाँ भाग जोड़ा जाता है। 30 वर्ष या 25 वर्ष की सेवा कर चुकने वालों को औसत वेतन का अर्द्धांश-वेतन पेन्शन के रूप में प्रतिमाह आजीवन मिलता रहता है। अब राज्य कर्मचारियों को मृत्यु एवं निवृत्ति सहायता तथा परिवार पेन्शन देने की भी व्यवस्था की गई है।

(घ) यदि सेवाकाल में कर्मचारी का देहावसान हो जाए तो उसे सहायता के रूप में कुछ राशि प्रदान की जाती है जो उसके उस समय के वेतन का अधिक से अधिक 12 गुना भाग हो सकती है। यदि निवृत्त कर्मचारी की कुछ समय बाद मृत्यु हो जाए तो जो राशि वह पेन्शन के रूप में ले चुका है, यदि वह अन्तिम वर्ष के वेतन के बारह गुने से कम है तो शेष राशि उसके परिवार वालों को दे दी जाएगी।

परिवार पेन्शन का नियम यह है कि यदि 25 वर्ष की सेवा के बाद किन्तु नियमित निवृत्ति से पूर्व कर्मचारी की मृत्यु हो जाए तो उसके परिवार को पांच वर्ष तक उसे दी जाने वाली पेन्शन का अर्द्धांश प्राप्त होता रहता है। पारिवारिक पेन्शन किसी स्थिति म 150 रुपए मासिक से अधिक नहीं होती।

2 भविष्यनिधि योजनाएँ (Provident Fund Schemes)—निवृत्त राज्य कर्मचारियों के लिए पेन्शन के अतिरिक्त बीमा अथवा भविष्य निधि जैसे लाभ भी प्रदान किए जाते हैं। ये पेन्शन योजना से दो बातो मे भिन्न हैं—(i) ये प्राय: अशदायी होते हैं। सरकार तथा कर्मचारी दोनो ही प्रतिमाह आधा-आधा जमा कराते रहते हैं। बीमा योजनाएँ ता पूर्णत अशदायी होती हैं। इनका पूरा धन कर्मचारी की ओर से ही कटता है तथा सरकार द्वारा केवल इसकी व्यवस्था हेतु ही व्यय किया जाता है। (ii) ये लाभ निवृत्ति के बाद प्रतिमाह अदा नहीं किए जाते वरन् इनको एक ही बार मे अदा कर दिया जाता है।

भारत मे अप्रैल 1950 से राज्य कर्मचारियो के लिए बीमा योजना एवं भविष्य निधि योजनाएँ प्रारम्भ की गई। इस दिन तक जिन कर्मचारियो की सेवा 10 वर्ष की हो चुकी थी उनको इस योजना के अन्तर्गत आने का विकल्प दिया गया किन्तु बाद मे सेवा मे आने वालो को आवश्यक रूप से इसे अपनाने को कहा गया। यहाँ तीन वर्ग के कर्मचारी मुख्य रूप से इस योजना के अन्तर्गत आते हैं—(क) रेल्वे कर्मचारी जिनके लिए पेन्शन की व्यवस्था नहीं की गई है, (ख) विशेषज्ञ जिन्हे अनुबन्धीय रूप से पांच अथवा अधिक वर्षों के लिए नियुक्त किया जाता है, (ग) किसी किसी विभाग के अस्थाई कर्मचारी, जैसे केन्द्रीय सार्वजनिक निर्माण विभाग, टकसाल घर, डाक-तार के कारखाने, युद्ध सामग्री बनाने वाले कारखानो के कर्मचारी आदि।

जहाँ तक रेल्वे कर्मचारियो का प्रश्न है उनमे सभी स्थायी कर्मचारियो के लिए भविष्य निधि योजना म शामिल होना जरूरी है। तीन वर्ष की सेवा पूर्ण हो जाने वाले कर्मचारियों के लिए तथा चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों के लिए भविष्य निधि योजना वैकल्पिक है। इस योजना के अन्तर्गत प्रत्येक कर्मचारी के वेतन का बारहवाँ भाग अशदान के रूप मे कटता है, सरकार भी उतनी ही रकम इसके साथ जोड देती है जिन कर्मचारियो का सेवाकाल 15 वर्ष से अधिक हो जाता है उनको प्रत्येक वर्ष के लिए आधा वेतन के हिसाब से सहायता धन प्रदान किया जाता है। इसकी सीमा यह है कि इस प्रकार दी जाने वाली राशि या तो कुल 15 महीने के वेतन के योग के बराबर हो या 25 हजार रुपए की अधिकतम राशि हो। इन दोनों मे जो राशि कम होती है वही देय मानी जाती है।

अनुबन्धीय विशेषज्ञो की सेवा के लिए भविष्य निधि योजना मे वेतन का न्यूनतम 5% तथा अधिकतम 10% अशदान के रूप मे कटता है। सरकार द्वारा भी उतना ही अंश जोडा जाता है तथा सार्वजनिक ऋणों पर दिए जाने वाले ब्याज की दर से उस रकम पर ब्याज भी जोडा जाता है।

अस्थाई कर्मचारियो के लिए भविष्य निधि की योजना के अन्तर्गत अशदान की राशि एव सरकारी अनुदान भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है।

11 कर्मचारी संगठन एवं प्रतिनिधित्व, स्टाफ परिषदें, सेवा विवाद, इंग्लैण्ड में व्हिटलेवाद, हड़ताल का अधिकार तथा नागरिक सेवकों के राजनीतिक अधिकार

(Employees Organisation and Representation, Staff Councils, Service Disputes, Whitlayism in England, Right to Strike and Political Rights of Civil Servants)

कार्ल मार्क्स के अनुसार कर्मचारी एवं नियुक्तिकर्त्ता के हित परस्पर भिन्न एवं एक-दूसरे के विरोधी होते हैं। सगठन चाहे व्यक्तिगत हो अथवा सार्वजनिक, दोनों में नियुक्तिकर्त्ता मुख्यत यह चाहता है कि वह कर्मचारियों के वेतन, मनोरंजन, कल्याण, निवास-स्थान बालकों की शिक्षा आदि की बातों पर कम से कम व्यय करके अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करे। सगठन के प्रत्येक सुधार और प्रक्रिया से सम्बन्धित प्रत्येक नवीन प्रयोग एव कार्य-सचालन के नियमों के पीछे मूल उद्देश्य यह रहता है कि सगठन से अधिक लाभ किस तरह प्राप्त किए जा सकें और प्रशासन को कैसे सफल बनाया जा सके। नियुक्तिकर्त्ता अपने इन लक्ष्यों को प्राप्त करने में प्रभावशील और अधिक सफल होता है क्योंकि उसके हाथ में आर्थिक शक्तियाँ होती हैं तथा वह (लोक प्रशासन में तो) राजनीतिक शक्ति का भी प्रयोग कर सकता है। दूसरी ओर कर्मचारी अपेक्षाकृत कमजोर स्थिति में होता है। यद्यपि उसके हित और लक्ष्य नियुक्तिकर्त्ता से भिन्न एव विपरीत होते हैं, तथापि वह इन्हें प्राप्त करने के लिए उतनी शक्ति एव बाध्यता का प्रयोग करने में असमर्थ रहता है। कर्मचारी वर्ग का मुख्य आकर्षण वेतन की मात्रा और सेवा से मिलने वाला सामाजिक सम्मान, आत्म गौरव एव अन्य कल्याणकारी उपादान हैं। वह इन सबको अधिक से अधिक मात्रा में प्राप्त करना चाहता है। नियुक्तिकर्त्ता और कर्मचारी वर्ग के इन विरोधी हितों के बीच सन्तुलन स्थापित करने के लिए कर्मचारियों को सघ और सस्थानों का निर्माण करना होता है।

'संगठन म शक्ति है' यदि सभी कर्मचारी मिलकर सघ अथवा सस्था के रूप मे सगठित हो जाएँ तो नियुक्तकर्त्ता उनकी माँगो को ठुकराने तथा उनके हितो की अवहेलना करने का साहस नही कर सकता। कार्ल मार्क्स ने बताया था कि मजदूर उस समय तक पर्याप्त एव सन्तोषजनक मजदूरी नहीं पा सकते जब तक कि वे सगठित होकर अपनी माँगे प्रस्तुत न करें और पूँजीपति नियुक्तिकर्त्ता को चुनौती देकर उन्हे स्वीकार करने के लिए बाध्य न करें। यही बात न्यूनतम रूप मे सरकारी क्षेत्रो म पाई जाती है। वाल्टर शार्प (Walter Sharp) के अनुसार "हर जगह सरकारी कर्मचारियो का यह अनुभव रहा है कि उनके भौतिक स्तर की उन्नति के लिए प्रारम्भिक शक्ति के रूप मे सगठित दबाव होना चाहिए।"[1] सगठन के मूल मे प्राय अधिक वेतन प्राप्ति की इच्छा निहित रहती है। पिगोर्स तथा मेयर्स (Pigors and Mayers) के अनुसार 'एक कर्मचारी सघ का सदस्य इसलिए बनना चाहता है क्योकि वह यह समझता है कि उसकी महत्त्वाकांक्षाओ को अकेले चलने की अपेक्षा सघ का सदस्य बनने से अधिक सन्तोष मिलेगा।"[2] सगठन के प्रबन्धको को सघ की रचना को अपनी असफलता एव अप्रतिष्ठा का प्रतीक नहीं समझना चाहिए बल्कि उसे रचनात्मक सम्बन्धो के विकास के लिए पहल करनी चाहिए। वर्तमान समय मे कर्मचारियो के बढते हुए सघो एव सस्थाओ की पृष्ठभूमि मे यह अत्यन्त आवश्यक हो गया है कि सेवीवर्ग अधिकारी इनको सहन करें, सकारात्मक रूप से प्रोत्साहन प्रदान करें तथा सरकार एव सेवाओ के बीच अच्छे सम्बन्ध कायम करने के लिए उनका सदुपयोग करें। कर्मचारियो के सघ एव सस्थाएँ यद्यपि सेवीवर्ग प्रबन्ध का एक आवश्यक अग नहीं हैं, किन्तु इनका कर्मचारियो के दृष्टिकोण एव मनोवृत्त पर गहरा प्रभाव पडता है जिसका उल्लघन कर कोई भी योग्य सेवीवर्ग अधिकारी सगठन को क्षति पहुँचाने की गलती नही करना चाहेगा।

कर्मचारी सगठनो का लक्ष्य
(The Purpose of Employees Organisations)

प्रशासन को निष्पक्ष रखने के लिए सरकारी सेवको को यह अधिकार नही दिया जाता कि वे कोई राजनीतिक दल बना सकें या किसी राजनीतिक दल म सक्रिय रूप मे भाग ले सकें। यद्यपि प्रशासन की ईमानदारी, एकरूपता, न्यायप्रियता *आदि की दृष्टि से यह सीमा अत्यन्त आवश्यक है, फिर भी एक नागरिक के रूप मे* उनकी स्वतन्त्रताओ के विरुद्ध है। प्रजातन्त्रात्मक राज्यो मे सरकारी कर्मचारियो की विचार अभिव्यक्ति एव सस्था बनाने की स्वतन्त्रता को व्यावहारिक बनाने के लिए उन्हें यह अधिकार दिया जाता है कि व्यावसायिक, सांस्कृतिक, आर्थिक आदि लक्ष्यो के लिए वे संघ तथा सस्थाएँ स्थापित कर सकते हैं। ये सस्थाएँ सामान्यत

1 *Walter R Sharp*: The French Civil Services—Bureaucracy in Transition, p 493

2 *Pigors and Mayers*: op cit, pp. 42-43.

व्यापारिक सघ व्यवस्थापन (Trade Union Legislation) के अन्तर्गत स्थापित होती है। ज्योही किसी विभाग अथवा सेवा मे सघ का निर्माण किया जाता है त्योही उसका लक्ष्य एव विधान विभागाध्यक्ष के सम्मुख प्रस्तुत करना होता है। प्रत्येक ऐसे सघ को सरकारी मान्यता प्राप्त होना आवश्यक है। भारतवर्ष मे प्राय सभी सरकारी विभागो एव निगमो के कर्मचारियो को सघ बनाने का अधिकार दिया जाता है किन्तु पुलिस सेवा के कर्मचारियो को नियमानुसार सघ बनाने के लिए अनुमति नही है। सरकारी कर्मचारी सघो का निर्माण तथा उनकी सदस्यता ग्रहण करते समय एक उपयोगितावादी एव व्यावहारिक दृष्टिकोण अपना कर चलते हैं। स्टाल का कहना है कि "कभी-कभी कर्मचारी सघ म इसलिए सम्मिलित होते हैं कि वे अनुभव करते हैं कि अनुचित प्रबन्ध क विरुद्ध उनके हितो की रक्षा के लिए इस प्रकार की सुरक्षा अत्यन्त आवश्यक है।"[1] सरकारी सगठनो के कर्मचारी जब सघो एव सस्थाओ क सदस्य बनते हैं तो इनके द्वारा उनके कई लक्ष्य पूरे हो जाते हैं। एक सघ द्वारा उसके सदस्यो को जो सेवाएँ प्रदान की जाती हैं वे मुख्यत निम्न हैं—

1 सघो एव सस्थाओ के माध्यम स सरकारी कर्मचारी व्यवस्थापिका शाखा एव प्रबन्ध के सम्मुख अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत कर सकते हैं। अनेक ऐसे विषय होते हैं जो केवल पर्यवेक्षको एव विभागाध्यक्षो की शक्ति के बाहर होते हैं। उनको सुलझाने के लिए उन्हें कर्मचारियो और उनके प्रतिनिधियो के साथ सहयोग करके चलना होता।

2 सघ अथवा सस्था एक प्रकार से कर्मचारी का ही व्यापक व्यक्तित्व है। सघ जो कुछ करता है अथवा करने की चेष्टा करता है वह सब कर्मचारी से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। वास्तव म कर्मचारी और सस्था के बीच एकरूपता (Identification) स्थापित हो जाती है और सस्था के माध्यम से कर्मचारी अपने अनेक व्यक्तिगत हितो की साधना कर लेता है।

3 जब कभी सेवीवर्ग प्रबन्ध को एक विषय विशेष पर कर्मचारियो का मत जानने की आवश्यकता होती है तो वह उनके सघ या सस्थाओ से सम्पर्क स्थापित करके ऐसा करता है। सघ अथवा सस्थाओ के अभाव मे पर्यवेक्षको एव उच्च अधिकारियो द्वारा स्पष्ट किया गया मत वस्तुत मजदूरो का मत नही होता।

4 स्वेच्छा पर आधारित कर्मचारी-सस्थाओ द्वारा सदस्यों को स्वाभाविक एव सामाजिक महत्त्वाकाक्षाओ के पनपन क अवसर प्रदान किए जाते हैं। ये अवसर कर्मचारी को अपना एक जैसा कार्य करते रहने पर प्राप्त नही हो पाते। कोई भी कर्मचारी अपने पद के दायित्वो को पूरा करने मात्र से ही सन्तुष्ट नही हो जाता, उसके व्यक्तित्व के कुछ अन्य पहलू भी होते हैं जिन्हे सन्तुष्ट करना उसका कर्त्तव्य है। सघो एव सस्थाओ का सदस्य बनने क बाद कर्मचारी म स्वाभिमान विकसित होता है तथा उसम अपने कार्य के प्रति सन्तोष की भावना जाग्रत होती है।

1 O G Stahl, op cit, p 224

5. ये संगठन अपने सदस्यों में एकता और सहयोग की भावना प्रोत्साहित करते हैं।

6 इन संगठनों द्वारा विभिन्न प्रकार से योग्यता व्यवस्था की रक्षा और प्रसार की चेष्टा की जाती है।

7 ये संगठन कर्मचारियों की कार्य की दशाएँ, स्तर और भौतिक कल्याण की रक्षा और सुधार के लिए प्रयत्न करते हैं।

8 इनका उद्देश्य लोक प्रशासन के गुण में सुधार करना है।

उक्त लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्राय सभी कर्मचारी संगठन प्रयत्नशील रहते हैं—एक संगठन किसी लक्ष्य को प्राथमिकता देता है और दूसरा किसी अन्य को। प्रत्येक संगठन अपने उद्देश्य और लक्ष्यों का उल्लेख अपने संविधान में स्पष्ट कर देता है। अपने लक्ष्यों की पूर्ति के लिए कर्मचारी संगठनों द्वारा अनेक प्रकार की गतिविधियाँ आयोजित की जाती हैं।

कर्मचारी संघों या संगठनों के प्रकार
(The Types of Employees Organisations)

कर्मचारी संस्थाओं को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम प्रकार की संस्थाएँ वे हैं जिनके सदस्य किसी कार्य के विशेषज्ञ होते हैं। इन संस्थाओं को व्यावसायिक संस्थाएँ (Professional Associations) कहा जाता है। दूसरी प्रकार की संस्थाओं को व्यापार-संघ (Trade Unions) कहा जाता है जो सामान्य व्यापार-संघ आन्दोलन का एक भाग है जिनका जन्म 19वीं शताब्दी के समाजवाद तथा औद्योगिक क्रान्ति के प्रारम्भ में हुआ था। ये दोनों प्रकार की संस्थाएँ उद्देश्य एवं लक्ष्यों की दृष्टि से कुछ भिन्नता रखती हैं और इनके द्वारा सेवीवर्ग प्रशासन में भिन्न प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न की जाती हैं।

व्यावसायिक संघ (Professional Assocations)

ये संघ सरकारी कर्मचारियों के वे संगठन हैं जिनके उद्देश्य एक ही व्यवसाय से सम्बन्धित होते हैं और अपने व्यवसाय की प्रगति के लिए सूचनाओं तथा अनुभवों के आदान-प्रदान की दृष्टि से परस्पर मिलते हैं। ऐसे संघ प्राय वैज्ञानिक एवं तकनीकी कर्मचारियों द्वारा स्थापित किए जाते हैं—जैसे डॉक्टर, इन्जीनियर, अध्यापक, वकील आदि। इसके अतिरिक्त यह बात भी है कि सरकारी सेवा आज अपने-आप में एक व्यवसाय बन गई है। लोक प्रशासन के कार्यकलापों के विस्तार के साथ-साथ विशेषीकरण का रूप घनिष्ठ होता जा रहा है और प्रशासकीय अधिकारी भी स्वयं को व्यावसायिक संस्थाओं में संगठित करने लगे हैं। जिलाधीशों के सम्मेलन, सचिवों के सम्मेलन आदि इसके उदाहरण हैं। डॉ. ह्वाइट ने व्यावसायिक संगठनों को स्वाभाविक मानते हुए कहा है कि "इन संगठनों द्वारा प्रत्येक कर्मचारी अपने ही समुदाय का सदस्य बन जाता है। अपने अधिक विस्तृत एवं विशाल समुदाय के साथ तादात्म्य (Identification) हो जाने से उसे असन्तोष

मिलता है। उसकी जड़ें समाज मे गहरी जम जाती हैं और वह अकेला या एक पृथक् इकाई नहीं रहता।"

व्यावसायिक तकनीकी सघो के सदस्य समय-समय पर मिलते रहते हैं और अपने व्यवसाय से सम्बन्धित बातो पर विचार विनिमय करते हैं। व्यक्तिगत शोधों से सामूहिक लाभ उठाया जाता है और विभागीय ज्ञान-भण्डार मे वृद्धि होती है। ये सघ प्राय राजनीति मे भाग नहीं लेते और सवैधानिक उपायो मे विश्वास करते है। ये अपने उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए आक्रामक हथकण्डे भी नहीं अपनाते जो ट्रेड यूनियनों द्वारा अपनाए जाते हैं। ये सघ तो एक प्रकार से विशेषज्ञ निकाय होते हैं जो आवश्यकता के समय सरकार को उचित मन्त्रणा और सुझाव दे सकते हैं।

इन व्यावसायिक सगठनो के लक्ष्य प्राय ये हैं—कर्मचारियो मे सामूहिक चेतना और सहयोग जाग्रत करना, कर्मचारियो का मनोबल ऊँचा उठाना, कर्मचारियों के लिए आचार-सहिता बनाना, सेवा दशाओ मे सुधार के सुझाव देना, पारस्परिक अनुभवो और विचारो के आदान-प्रदान के लिए मच प्रस्तुत करना, व्यवसाय से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण समस्याओ पर विचार करना, व्यावसायिक अनुसन्धान करना, सेवा को निष्पक्ष और वस्तुनिष्ठ बनाकर उसकी प्रतिष्ठा मे अभिवृद्धि करना आदि। डॉ ह्वाइट की मान्यता है कि 'व्यावसायिक सगठनो के विकास से सरकारी सेवाओ की क्षमता पर अनुकूल प्रभाव पड़ा है।'

ट्रेड यूनियन (Trade Unions)

श्रम सघ अथवा ट्रेड यूनियन अपेक्षाकृत आधुनिक विकास है जिसको कुछ देशो में मान्यता प्राप्त है और कुछ मे नहीं। सरकार द्वारा ट्रेड यूनियनों को शक्ति प्रदान की जाती है। वे प्राय व्यक्तिगत सस्थाओ से सम्बन्धित ट्रेड यूनियनो की शक्तियो से बहुत कम होती हैं। ट्रेड यूनियन अपनी माँगें मनवाने के लिए हड़ताल को अन्तिम अस्त्र के रूप म प्रयोग म लाती हैं।

ट्रेड यूनियनो की माँगें प्राय इस प्रकार की होती हैं—भर्ती का आधार केवल योग्यता हो, पदो का वर्गीकरण उनम सम्बन्धित कार्यो की प्रकृति के अनुसार हो, कर्मचारियो को उचित वेतन और भत्ता प्राप्त हो, न्यूनतम भृति कानून पारित किया जाए, सेवा अभिलेख (Service Record) विधिवत् तैयार किया जाए, सेवा निवृत्ति की योजनाएँ बनाई जाएँ, कार्य की दशाओ मे सुधार किए जाएँ, आदि। स्टॉल का मत है कि 'अवश्य ही कुछ कर्मचारी यूनियनो के सदस्य इसलिए बनते हैं क्योकि वे यह महसूस करते हैं कि अप्रबुद्ध प्रबन्ध (Unenlightened Management) के विरुद्ध स्वय के हितो की रक्षा के लिए किसी प्रकार की ठोस एकता (Solidarity) अत्यावश्यक है।"

कर्मचारी सगठनों की गतिविधियाँ
(The Activities of Employee's Organisations)

विभिन्न कर्मचारी सगठन अपनी सार्थकता और उपयोगिता साबित करने के लिए जो अनेक प्रकार की गतिविधियाँ सम्पन्न करते हैं, वे मुख्यत निम्नलिखित हैं—

1 सामाजिक और मनोरंजनात्मक गतिविधियाँ।
2 सेवा और सहानुभूतिपूर्ण गतिविधियाँ।
3 शैक्षणिक एवं प्रचारात्मक गतिविधियाँ।
4 प्रशासनिक अधिकारियों के सम्मुख कर्मचारियों का प्रतिनिधित्व।
5 व्यवस्थापिका के सम्मुख कर्मचारियों का प्रतिनिधित्व।
6 सामयिक रूप से समाचार-पत्र या पत्रिकाएँ प्रकाशित करना जिनमें विभिन्न प्रकार की सूचनाएँ हों, जैसे कर्मचारियों के लिए रुचिपूर्ण सरकारी विकासों का उल्लेख, कार्य की प्रणालियों और तरीकों से सम्बन्धित सूचनात्मक लेख, संगठन की स्थिति और सदस्यों में संगठनों की भावना के विकास के लिए सम्पादकीय लेख, सदस्यों से सम्बन्धित गतिविधियाँ और सामाजिक समाचार आदि।

भारत में कर्मचारी संघ
(Employees' Organisations in India)

सबसे पहले 1897 में भारत और बर्मा के रेल कर्मचारियों ने एक संघ की स्थापना की थी, लेकिन वास्तविक रूप में भारत में कर्मचारी संघों की स्थापना का इतिहास प्रथम महायुद्ध के बाद से माना जाना चाहिए। 1922 में रेल कर्मचारियों और डाक-विभाग के कर्मचारियों ने अपने संघों की विधिवत् स्थापना की, जिन्हें क्रमशः रेल-बोर्ड और डाक-तार विभाग महानिदेशक ने मान्यता प्रदान कर दी। 1926 में भारतीय व्यापार संघ कानून पारित हुआ जिसके द्वारा व्यापार संघों को कानूनी मान्यता मिली तथा उनके कार्य वैध समझे जाने लगे। इसके पश्चात् धीरे-धीरे व्यावसायिक संघों की संख्या बढ़ती चली गई और 1946 तक कर्मचारी संघ इतने अधिक हो गए तथा उनके कार्य कलापों को इतना महत्त्व दिया जाने लगा कि केन्द्रीय वेतन आयोग के प्रतिवेदन में बारह पृष्ठ कर्मचारी संघों के ही सम्बन्ध में थे। यद्यपि विभिन्न विभागों में कर्मचारी संघ संगठित हुए किन्तु अधिकांश संगठन पूर्ण और सुसम्बन्धित नहीं थे। उनके आधार समान नहीं थे और उनका प्रभाव क्षेत्र भी अलग-अलग था। संख्या की दृष्टि से स्वतन्त्रता से पूर्व भारतीय कर्मचारी संगठन काफी प्रचुर मात्रा में थे किन्तु सुसंगठन, स्थिरता एवं क्रिया व्यापार की दृष्टि से केवल कुछ ही संगठन सन्तोषप्रद थे। सभी संगठनों को राज्य की समान मान्यता प्राप्त नहीं थी और सभी को सरकार से सीधी वार्ता का अधिकार नहीं था। स्वतन्त्र भारत के संविधान में धारा 19 द्वारा कर्मचारियों के संघों का कानूनी स्तर निर्धारित किया गया। धारा 13 के क्लाज (1) में कहा गया है कि सभी नागरिकों को बोलने, अभिव्यक्ति, संस्था बनाने आदि का मौलिक अधिकार है। इस धारा के क्लाज (2) में यह उल्लेख है कि राज्य की सुरक्षा के हित में राज्य इन अधिकारों के प्रयोग पर बुद्धिसंगत प्रतिबन्ध लगा सकता है। संविधान की धारा 309 व्यवस्थापिका को यह अधिकार देती है कि वह लोक सेवाओं में नियुक्त हुए लोगों की भर्ती और सेवा की शर्तों को नियमित कर सकती है। वास्तविक व्यवहार में

राज्य के हित म यह जरूरी है कि कर्मचारी ईमानदार, निष्पक्ष, कार्यकुशल, अनुशासन-युक्त और ऐसे ही अन्य गुणो मे पूर्ण हो। इसलिए राज्य द्वारा लोकसेवको के मौलिक अधिकारो पर उचित प्रतिबन्ध लगाए जाते हैं। ये उपयुक्त प्रतिबन्ध क्या होगे, इनका निर्णय भी स्वय सरकार ही करती है।

स्वतन्त्र भारत मे केन्द्रीय और राज्यीय स्तरो पर बडी सख्या मे कर्मचारी सघ और महासघ अस्तित्व मे आ गए हैं। वर्तमान मे केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियो के महत्वपूर्ण सगठन ये हैं—

(1) अखिल भारतीय रेल कर्मचारी सघ

(2) अखिल भारतीय प्रतिरक्षा कर्मचारी सघ

(3) डाक व तार कर्मचारियो का राष्ट्रीय सघ

(4) केन्द्रीय सचिवालय तथा सम्बद्ध कार्यालयो के कर्मचारियो का सघ

केन्द्रीय सरकार के कर्मचारी कुछ छोटे-मोटे अपवादो को छोडकर, तीन मुख्य वर्गों मे विभाजित हैं—

(क) गैर-औद्योगिक (Non-Industrial) कर्मचारी वर्ग, जिसमे डाक व तार तथा नागरिक उड्डयन विभागो मे कार्य करने वाले कर्मचारी और औद्योगिक सस्थाना मे 500/- रुपए या इससे अधिक वेतनभोगी राजपत्रित या अन्य कर्मचारी सम्मिलित हैं।

(ख) औद्योगिक (Industrial) कर्मचारी वर्ग, जिसमे रेल्वे के अन्तर्गत आने वाले कर्मचारियो को छोडकर अन्य औद्योगिक कर्मचारी सम्मिलित हैं।

(ग) औद्योगिक तथा गैर-औद्योगिक रेल्वे कर्मचारी वर्ग।

सगठन अथवा सघ निर्माण तथा सेवा-शर्तों से सम्बन्धित मामलो के बारे मे हडताल आदि का सहारा लेने के कर्मचारियो के अधिकार के सम्बन्ध मे भारत सरकार ने उपर्युक्त तीन वर्गों के लिए निम्नानुसार नियम बनाए हैं—

(I) गैर औद्योगिक कर्मचारी वर्ग के लिए नियम—इस कर्मचारी वर्ग पर केन्द्रीय असैनिक सेवा (आचार) नियम 1955 (Central Civil Service Conduct Rules. 1955) के उपबन्ध लागू होते हैं, जो निम्नानुसार हैं—

1 -कोई भी कर्मचारी सेवा-शर्तों से सम्बन्धित किसी भी मामले म न तो हडताल करेगा और न ही ऐसे मामले के बारे मे आयोजित किसी प्रदर्शन मे भाग लेगा।

2 कोई भी कर्मचारी ऐसे सघ का सदस्य नहीं बनेगा, जो

(अ) स्थापना के छः माह के भीतर शासन की मान्यता प्राप्त नही कर लेता है।

(ब) शासन द्वारा अमान्य घोषित कर दिया गया है अथवा जिसकी मान्यता शासन ने वापस ले ली है।

3 कोई भी कर्मचारी अपने नाम अथवा किसी अन्य के नाम से ऐसा विचार प्रकट नहीं करेगा जिससे केन्द्रीय या किसी राज्यीय शासन की प्रचलित नीति अथवा कार्यवाही की अवहेलना होती हो।

4 कोई भी कर्मचारी, सरकार की अथवा अन्य किसी ऐसी सत्ता की पूर्वानुमति के बिना, जिसे सरकार ने अपने उत्तरदायित्व पर यह अधिकार दे रखा हो, किसी भी प्रकार का चन्दा नहीं माँगेगा और न ही स्वीकार करेगा, अथवा किसी भी उद्देश्य की पूर्ति के लिए धन एकत्र करने के कार्य से स्वयं को किसी रूप में सम्बद्ध नहीं रखेगा।

5 कोई भी कर्मचारी अपनी सेवा-स्थितियों से सम्बन्धित किसी मामले में अपने हितों की पूर्ति के लिए अपने वरिष्ठ अधिकारी पर किसी प्रकार का राजनीतिक दबाव या अन्य बाह्य प्रभाव नहीं डालेगा।

(II) **औद्योगिक कर्मचारी वर्ग के लिए नियम**—इस वर्ग के कर्मचारियों पर अभी हाल की व्यवस्था के अनुसार उपर्युक्त उपबन्ध और 1955 के उपर्युक्त नियमों के कुछ अन्य उपबन्ध लागू नहीं होते और नियम 6 (I) भी केवल इस प्रबन्धात्मक प्रावधान के साथ लागू होता है कि इस धारा की कोई भी बात कर्मचारी की ऐसी किसी विश्वसनीय अभिव्यक्ति पर लागू नहीं होगी जो सम्बन्धित श्रमिक संघ के कर्मचारियों की सेवा-शर्तों में सुधार लाने के उद्देश्य से प्रगट की गई हो।

(III) **औद्योगिक तथा गैर-औद्योगिक रेल्वे कर्मचारी वर्ग के लिए नियम**—इस कर्मचारी वर्ग का नियमन रेल्वे सेवा (आचार) नियम 1956 (Railway Service Conduct Rules, 1956) द्वारा किया गया है। रेल्वे कर्मचारी जहाँ अमान्य संघों की सदस्यता, प्रदर्शनों, हड़तालों आदि का आश्रय लेने के मामलों में औद्योगिक कर्मचारी वर्ग जैसी स्थिति में हैं वहाँ श्रमिक संघों की कार्यवाहियों के सम्बन्ध में उन पर कुछ प्रतिबन्ध लगे हैं।

भारत में कर्मचारी संघों को सरकारी मान्यता प्राप्त होने के लिए जो शर्तें हैं, उनका उल्लेख आगे 'कर्मचारी संघ की प्रमुख समस्या' शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है। कर्मचारी संघों को मान्यता प्रदान करना या न करना सरकार के विवेक (Discretion) पर निर्भर है।

ब्रिटेन, संयुक्तराज्य अमेरिका तथा फ्रांस में कर्मचारी संगठनों का विकास
(Evolution of Employees' Organisations in Britain, U S A and France)

कर्मचारी संगठनों का विकास मुख्यतः औद्योगीकरण की परिस्थितियों का परिणाम है। प्रारम्भ में इन संगठनों और संघों की ओर नियोक्ता सरकार द्वारा सन्देह की दृष्टि से देखा गया और इसीलिए इन्हें भारी विरोध का सामना करना पड़ा। वर्तमान में यह विरोध समाप्त हो चुका है तथा सरकार द्वारा न केवल उन्हें स्वीकार किया जाता है वरन् अनेक प्रकार से उन्हें प्रोत्साहित भी किया जाता है। विभिन्न देशों में इन कर्मचारी संगठनों का विकास एक उतार-चढ़ाव की कहानी है।

ग्रेट ब्रिटेन मे सबसे पहले 1971 के व्यापारिक सघ अधिनियम (Trade Union Act, 1971) द्वारा कर्मचारी सगठनो को मान्यता प्राप्त हुई किन्तु फिर भी बहुत समय तक इन सघो द्वारा कोई विशेष कार्य सम्पादित नहीं किया गया। 19वीं शताब्दी के अन्त तक बहुत कम कर्मचारी सगठन बन पाए। केवल डाक तथा नाविक विभागो म कुछ सगठन थे किन्तु प्रशासकीय और लिपिक विभागो मे इनका अभाव था। इस काल के कर्मचारी सगठन प्राय विशेष उद्देश्यो के लिए बनाए जाते थे जैसा, 1846 मे पेन्शन व्यवस्था मे सुधार के लिए एक सघ बनाया गया। जब इस समस्या पर विचार हेतु एक चयन समिति की नियुक्ति हो गई तो यह सघ समाप्त हो गया। 1906 मे डाक सघो की सफलता से प्रभावित होकर दूसरे लोक सेवको द्वारा भी कर्मचारी सहयोग की दिशा म महत्त्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ हुए। 1906 म सिडनी बक्सटन ने यह घोषणा की कि सरकार कर्मचारी सगठनो को मान्यता देने की नीति अपना रही है इसके फलस्वरूप कर्मचारियो मे काफी उत्साह की लहर दौड गई। अनेक नए सगठन बने और 1924 तक सामूहिक मोलतोल का तरीका सिद्धान्त रूप मे सामान्यत स्वीकार कर लिया गया। अब प्रत्येक कर्मचारी द्वारा अपनी समस्या अधिकारियो से कहने के स्थान पर सघ की ओर से यह कार्य किया जाने लगा। इस प्रक्रिया ने आगे चल कर ह्विटलेवाद को प्रोत्साहित किया।

सयुक्तराज्य अमेरिका मे सामान्य जनता और शासन दोनो ने सघवाद का विरोध किया। यहाँ 1880 से पूर्व राष्ट्रीय शिक्षक सघ के अलावा कोई अन्य व्यावसायिक सस्था सगठित नहीं हो सकी। अगले 20 वर्षों मे व्यावसायिक एव सघ प्रकार के विभिन्न सगठन अस्तित्व मे आए। व्यावसायिक सघो की रचना दूसरे सगठनो की भाँति तीव्रता से होने लगी और इनके द्वारा प्रशासनिक व्यवहार के स्तर को सुधारने मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई जाने लगी। अमेरिका म सर्वप्रथम सरकारी सेवा सघ डाक सेवा मे प्रारम्भ हुई। इन्होने कार्य की असहनीय दशाओ के विरुद्ध विरोध किया। अगले वर्षों मे ये सरकारी सगठन डाक सेवाओ के साथ-साथ रेल सेवा और अन्य सेवाओ मे भी सगठित होने लगे। प्रथम विश्वयुद्ध और 1930 की आर्थिक मन्दी के परिणामस्वरूप कर्मचारी सगठनो की आवश्यकता अधिक हो गई और सघीय स्तर पर National Federation of Federal Employees, American Federation of Govt Employees, National Customs Service Association आदि सगठित हो गए।

फ्राँस मे व्यावसायिक सघो का बहुत समय तक प्रतिबन्धित रखा गया। वहाँ 19वी शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश मे प्रशासनिक व्यवस्था अनेक दोषो के चक्रव्यूह मे उलझी हुई थी। अनिश्चित कार्यकाल, भर्ती और पदोन्नति में राजनीतिक पक्षपात, अपमान कार्य की शर्तों तथा वेतन वाला पद-वर्गीकरण लोक सेवको के व्यक्तिगत, राजनीतिक और धार्मिक कार्यों पर जासूसी आदि से लोक सेवाएँ पीडित थीं। 21 मार्च, 1884 को एक सम्बन्धी कानून (The Law of Association) पारित हुआ जो श्रमिको एव व्यावसायिक कार्यकर्त्ताओ के लम्बे सघर्ष का परिणाम था।

इस कानून द्वारा कुछ सेवाओं को सघ बनाने की छूट मिल गई, फलतः अनेक सिण्डीकेट स्थापित हुए। इनके मुकदमों को देखकर उच्च अधिकारियों ने भी अपने सघ स्थापित करना प्रारम्भ किया किन्तु प्रशासन ने इन पर रोक लगा दी। 1887 में स्वयं शिक्षा मन्त्री ने प्रीफेक्ट को सम्बोधित अपने पत्र में इन सघों को स्पष्टतः सार्वजनिक कार्यों के विरुद्ध बताया। सड़क साफ करने वालो तथा नगरपालिका कर्मचारियो ने अपने सघ बनाए किन्तु प्रीफेक्ट द्वारा उन्हें रोक दिया गया। रेल *कर्मचारियों और तम्बाकू तथा माचिस फैक्ट्रियों के कर्मचारियों को सघ बनाने का* अधिकार दिया गया। 1894 में कर्मचारी सघों पर लगे सरकारी प्रतिबन्ध में थोड़ी ढील दी गई अतः डाक-तार और टेलीफोन सेवाओं में अनेक सघ गठित हुए। अध्यापकों तथा दूसरे कर्मचारियों ने भी अपने सघ बनाए। 1901 में सघ कानून दुबारा पारित किया गया। अब सघ बनाने का अधिकार कुछ अपवादों के साथ सभी नागरिकों को दिया गया।

1906 और 1909 में फ्रांस के डाक कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी, फलतः कर्मचारियों के सघ के प्रति सरकार का दृष्टिकोण कड़ा हो गया और द्वितीय महायुद्ध तक यही स्थिति बनी रही। चतुर्थ गणराज्य द्वारा राज्य के सभी अधिकारियों और कर्मचारियों को सघ स्थापित करने का अधिकार मिल गया, इसके साथ कुछ सीमा तक उन्हें हड़ताल करने की अनुमति भी प्राप्त हो गई। 1946 में कानून द्वारा नागरिकों के व्यावसायिक सगठनों के रूप में बिना किसी सीमा के सगठित होने के अधिकार को मान्यता प्रदान की गई। यह अधिकार पुनः *1959 में मान्य किया गया। कर्मचारी सगठन बनाने के लिए एकमात्र अपेक्षा* केवल यह की जाती है कि सघ के नियमों और इसके अधिकारियों के नाम सम्बन्धित विभाग को प्रस्तुत किए जाएँ।

फ्रांस में यद्यपि व्यावसायिक सघ आन्दोलन में अनेक विभाजन हैं फिर भी नागरिक सेवकों के सघ काफी शक्तिशाली हैं। वहाँ साम्यवादी दल, कैथोलिक और समाजवादी दल द्वारा प्रभावित राष्ट्रीय व्यापार सघ क्रमशः C G T, C F T C तथा C G T, F O कायम हैं। इनके अन्तर्गत पृथक नागरिक सेवक सघ स्थापित हुए हैं। ये नागरिक सेवक सघ मन्त्रालयों तथा भौगोलिक क्षेत्रों दोनों आधारों पर सगठित किए गए हैं। एक बहुत ही प्रभावशाली कर्मचारी सगठन प्राथमिक विद्यालय के अध्यापकों का सघ है जिसके अनेक सदस्य साम्यवादी हैं, फिर भी इस सघ का स्वतन्त्र अस्तित्व है।

कर्मचारी संघों की प्रमुख समस्याएँ
(Main Problems of Employees' Associations)

प्रायः प्रत्येक देश में आज कर्मचारी सघ काफी लोकप्रिय हो चुके हैं। फिर भी ऐसी अनेक समस्याएँ हैं जो इनके सफल कार्य सचालन में बाधा डालती हैं। इनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण ये हैं—

क्या कर्मचारियो को सगठन बनाने का अधिकार देना उचित है ? क्या सरकारी कर्मचारियो के सघ पर राजनीतिक हस्तक्षेप स्वीकार किया जाए ? इन सघों का जीवन पर कितना प्रभाव है ? नियुक्तिकर्त्ता और कर्मचारी के बीच विवादो को कैसे सुलझाया जाए ? कर्मचारियो को हडताल का अधिकार दिया जाए अथवा नही दिया जाए ? ये सभी समस्याएँ कर्मचारी सघो के बारे मे पैदा होती हैं। इनके सम्बन्ध मे विभिन्न देशो मे विभिन्न नियम और व्यवस्थाएँ की गई हैं।

(1) सगठित होने का अधिकार
(Right to Organise)

अप्रजातान्त्रिक शासन प्रणालियो मे सरकारी कर्मचारियो को सगठन बनाने का कोई अधिकार नही दिया जाता था किन्तु प्रजातान्त्रिक परम्पराओ के प्रसार के साथ ही कर्मचारियो के सगठित होने के अधिकार को सामान्यत स्वीकार किया जाने लगा है। इस सम्बन्ध मे मुख्य समस्या यह उठती है कि सरकारी कर्मचारियो पर सेवा मे प्रवेश के बाद विशेष स्वामिभक्ति के दायित्व आ जाते हैं इसलिए अन्य मजदूरो द्वारा अपनाए जाने वाले तरीको की अनुमति उन्हें नही दी जा सकती। इसके अतिरिक्त कानूनी रूप से राज्य पूर्ण सम्प्रभु है और इसलिए उसके कार्य-व्यापार पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध या हस्तक्षेप सम्प्रभुता के विरुद्ध और क्रान्तिकारी है। स्टाल के मतानुसार कर्मचारी सगठन की क्रियाओ पर विशेष सीमाएँ स्थापित कर दी गई हैं और उन पर प्राय सभी जगह कुछ विशेष प्रतिबन्ध लगाए गए हैं।

ग्रेटब्रिटेन मे लोकसेवाओ को सघ बनाने की पूर्ण स्वतन्त्रता है किन्तु सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त करने के लिए सघो को कुछ शर्तें पूरी करनी चाहिए। वर्तमान स्थिति के अनुसार ब्रिटिश कर्मचारी सगठन बाहर की ट्रेड यूनियनो और राजनीतिक दलों मे सम्बन्धित हो सकते हैं किन्तु व्यवहार मे प्राय ये राजनीतिक दलो मे स्वय को अलग रखते हैं। फिर भी एक विभाग के कर्मचारियो का सघ मजदूर दल स घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। कर्मचारी सगठनो पर यह प्रतिबन्ध है कि वे अपनी सामान्य निधि मे से राजनीतिक प्रयोजन के लिए धन खर्च नही कर सकते।

सयुक्तराज्य अमेरिका मे सघ कर्मचारियो को सघ बनाने का अधिकार है। इन पर यह प्रतिबन्ध लगाया गया है कि वे कर्मचारियो को सघ के विरुद्ध हडताल के लिए बाध्य न करें।

भारत मे लोकसेवकों को सगठन बनाने और किसी भी सगठन का सदस्य बनने का अधिकार है किन्तु वह सघ-राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त होना चाहिए। यदि किसी सगठन को अस्तित्व मे आने के छ महीने के भीतर राज्य द्वारा मान्यता न दी जाए अथवा राज्य मान्यता देने से मना कर दे अथवा उसकी मान्यताएँ वापस ले ली जाएँ तो लोकसेवक ऐसे सगठन के सदस्य नहीं बन सकते। सरकार द्वारा किसी सगठन को मान्यता तभी दी जाती है जबकि वह ये शर्तें पूरी करता हो—(क) कोई

गैर-सरकारी कर्मचारी उस संघ से सम्बन्धित न हो, (ख) संघ की कार्यकारिणी उसके सदस्यों में से ही नियुक्त की जाए, (ग) संघ केवल कुछ सदस्यों के लाभार्थ ही संचालित न किया जाए और (घ) संघ किसी राजनीतिक दल का प्रचार न करे और उसके पास कोई राजनीतिक निधि न हो। संघ की मान्यता के बारे में सरकार के नियम निश्चय ही कठोर हैं। किसी अमान्य संघ की सदस्यता को अनुशासनात्मक अपराध माना जाता है।

(2) सम्बद्धता का प्रश्न

(The Question of Affiliation)

कर्मचारी संगठनों की एक महत्त्वपूर्ण समस्या यह है कि इन्हें गैर-सरकारी व्यक्तियों एवं संस्थाओं से सम्बन्धित रहना चाहिए अथवा नहीं। इसके विरोधियों का तर्क यह है कि ऐसी सम्बद्धता से प्रशासन में विरोध फैलने की आशंका रहेगी और गैर सरकारी व्यक्ति अथवा संस्थाओं द्वारा सरकारी सत्ता का अपने पक्ष में प्रयोग करने की सम्भावना बढ़ जाएगी। विरोधी दल के नेताओं का प्रभाव बढ़ने से सरकार के प्रति कर्मचारियों की निष्ठा घट जाएगी और राजनीति के दलदल में लोक प्रशासन की एकरूपता और जनहित की छिन्न-भिन्न भावना हो जाएगी। यही सोच कर कर्मचारी संगठनों और संस्थाओं को राजनीतिक दलों के हस्तक्षेप से अलग रखने का समर्थन किया जाता है। दूसरी ओर इस हस्तक्षेप के समर्थकों का कहना है कि गैर-सरकारी संस्थाओं और राजनीतिक दलों के प्रभाव से ही कर्मचारियों के संगठन दबाव समूह के रूप में सरकारी कार्यों और नीतियों को प्रभावित कर पाते हैं और अपने लक्ष्य प्राप्ति में सफल होते हैं। कर्मचारी संगठनों का प्रभाव तभी हो पाता है जबकि इनके पीछे राजनीतिक शक्ति हो और वे विरोधी अथवा सत्ताधारी दल से सम्बद्ध हों।

संयुक्तराज्य अमेरिका में लायड ला पालेट अधिनियम (Loyd La Pallet Act) द्वारा कर्मचारी संगठनों की सम्बद्धता का अधिकार व्यापक बना दिया गया है किन्तु आलोचकों द्वारा इस अनुचित बता कर रोकने की बात कही जाती है। ग्रेट ब्रिटेन में 1927 के ट्रेड यूनियन कानून द्वारा सम्बद्धता पर रोक लगाई गई फिर भी 1946 में वहाँ अनेक कर्मचारी संगठन ट्रेड यूनियन कांग्रेस से सम्बद्ध हो गए।

भारत में सरकारी कर्मचारियों और कर्मचारी संगठनों की राजनीतिक गतिविधियों पर प्रतिबन्ध न होने के कारण सम्बद्धता को राज्य की मान्यता नहीं है किन्तु फिर भी कानूनी सीमाओं से परे वास्तविक व्यवहार में विभिन्न संगठन सत्ताधारी अथवा विरोधी राजनीतिक दलों से सम्बद्ध रहे हैं।

(3) प्रतिनिधित्व की समस्या

(The Problem of Representation)

कर्मचारी संगठनों की एक महत्त्वपूर्ण समस्या यह है कि विभिन्न उल्लेखनीय प्रश्नों पर विचार-विमर्श के लिए किसे कर्मचारी के मत का सच्चा प्रतिनिधि माना जाए। इस सम्बन्ध में स्पेरो (Sparo) का मत है कि प्रशासन को कर्मचारियों के

बहुमत का प्रतिनिधित्व करने वाले एक ही अभिकरण से विचार-विमर्श करना चाहिए। जब कर्मचारियो का प्रतिनिधित्व करने वाला एक ही समूह होता है तो प्रशासन को सौदेबाजी करने मे सुविधा रहती है। एक ही समूह का होना स्वय कर्मचारियो के लिए भी उपयोगी है क्योंकि इससे उनमे एकता की भावना और लक्ष्य के प्रति चेतना उत्पन्न होती है। प्रो. स्टाल ने इसका समर्थन किया है। उनके मतानुसार यह व्यवस्था सरल है। इसमे प्रबन्ध और कर्मचारीगण एक दूसरे को समझने तथा समझौते के लिए तैयार होने मे सुविधा अनुभव करते हैं। जब एक ही सघ कर्मचारियो के लिए सौदेबाजी करने वाला एकमात्र अभिकरण होता है तो मत भिन्नता, विरोध और भ्रान्त धारणा का निराकरण हो जाता है।

(4) हड़ताल करने का अधिकार

(Right to Strike)

कर्मचारी एव कर्मचारी सगठनो को सरकार के विरुद्ध हड़ताल करनी चाहिए अथवा नही, यह एक अन्य विवादपूर्ण प्रश्न है। यह सच है कि हड़ताल के कारण प्रशासनिक गतिरोध, अव्यवस्था, आर्थिक हानि और जनता की तकलीफें बढ़ती हैं, किन्तु दूसरी ओर कर्मचारियो की वाजिब माँगो को स्वीकार कराने के लिए इसे प्रभावशाली शस्त्र के रूप मे स्वीकार भी किया जाता है। इस विवादपूर्ण प्रश्न पर थोड़ा अधिक विस्तार से आगे विवेचन किया जाएगा।

सेवा विवाद एव ह्विटले परिषदें

(Service Disputes and Whitley Councils)

सरकारी कर्मचारियो के सेवा की शर्तों से सम्बन्धित अनेक प्रकार के विवाद होते हैं। इन विवादो का समाधान प्रशासनिक कार्यकुशलता और कर्मचारियो के सन्तोष की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक है। उचित है कि सरकार तथा कर्मचारियो के बीच विवादों का समाधान बातचीत द्वारा ही कर लिया जाए। वार्ता के लिए उपयुक्त यन्त्र की व्यवस्था की जाए जिसमे दोनो पक्ष एक दूसरे के प्रति सद्भाव तथा सहयोग से काम लें। इस हेतु सामूहिक सौदेबाजी (Collective Bargaining), पंचनिर्णय (Arbitration) तथा ह्विटले परिषदो को अपनाया जाता है। ह्विटले परिषदो की प्रणाली मे प्रबन्ध और कर्मचारियो के प्रतिनिधियो की एक परिषद् बना ली जाती है जो दोनो पक्षों के मध्य स्थित विवादो को दूर करने मे सहायता देती है।

ह्विटले परिषदो का प्रारम्भ

(The Origin of Whitley Councils)

1916 मे ब्रिटिश सरकार ने गैर-सरकारी उद्यमो के श्रमिको और मालिको के बीच सम्बन्धों मे स्थायी सुधार लाने के लिए सुझाव देने हेतु तत्कालीन सांसद जे एच ह्विटले (J H Whitley) की अध्यक्षता मे एक समिति नियुक्त की। इस समिति ने ऐसी परिषदो के गठन का सुझाव दिया जिनमे विवादो का निपटारा करने के लिए कर्मचारियो तथा मालिको, दोनो के प्रतिनिधि हों। नागरिक सेवकों के विभिन्न सगठनों ने इस सुझाव का समर्थन किया और ह्विटले द्वारा प्रस्तावित

परिषदों की स्थापना की माँग की। सरकार ने यह माँग 8 अप्रेल, 1919 को स्वीकार कर ली और उसके बाद ग्रेट ब्रिटेन के सरकारी विभागों में ह्विटले परिषदों की स्थापना की गई।

ह्विटले परिषदों का अर्थ एवं उद्देश्य
(Meaning and Objects of Whitley Councils)

डॉ. एल डी ह्वाइट के मतानुसार ह्विटले परिषदें स्वतन्त्र, सभापतिविहीन तथा अनिश्चित कार्यक्षेत्र युक्त संयुक्त चर्चा मण्डल हैं।[1] उन्होंने अन्य स्थान पर लिखा है कि "वर्तमान पीढ़ी में ब्रिटिश नागरिक सेवा में जो सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन है वह सम्भवतः ह्विटले परिषदों की स्थापना ही है। इन निकायों में सरकारी पक्ष और कर्मचारी पक्ष के प्रतिनिधि समान संख्या में होते हैं तथा ये निकाय अनेक विवादपूर्ण समस्याओं के समाधान तथा सुलह की बातचीत के लिए कर्मचारियों के विचारों और आलोचनाओं को प्रस्तुत करने वाले मूल्यवान अभिकरण सिद्ध हुए हैं।"[2]

ह्विटले परिषदें मुख्यतः तीन स्तरों पर होती हैं—राष्ट्रीय, विभागीय और जिला एवं कार्यालय स्तर। प्रो स्टाल के मतानुसार इन सभी स्तरों की परिषदों की एक सामान्य विशेषता यह है कि इनमें सरकार और नागरिक सेवकों का समान प्रतिनिधित्व होता है।[3] स्नाइडर (Schneider) की मान्यता है कि ये परिषदें ब्रिटिश लोकसेवा की सुस्थापित और मूलभूत विशेषताएँ बन गई हैं। ये परिषदें ऐसा पत्र प्रस्तुत करती हैं जिसके द्वारा सरकारी सेवीवर्ग नीति के प्रायः सभी पहलुओं पर विचार किया जाता है और विरोधी हितों के बीच संघर्ष मैत्रीपूर्ण बन जाता है।[4]

ह्विटले परिषदों की स्थापना मुख्यतः इन उद्देश्यों के लिए की जाती है—नियोक्ता राज्य एवं लोकसेवकों के बीच अधिकाधिक सहयोग स्थापित करना ताकि कार्यकुशलता लाई जा सके और कर्मचारियों के हितों की रक्षा की जा सके, कर्मचारियों की शिकायतों को दूर करने के लिए एक यन्त्र की व्यवस्था करना तथा विभिन्न लोकसेवकों के अनुभवों और विचारों को एक स्थान पर जुटाना।

ह्विटले परिषदें केवल दो हजार पौण्ड तक वार्षिक वेतन पाने वाले गैर-औद्योगिक कर्मचारियों की समस्याओं से सम्बन्धित हैं। अपने लक्ष्य और उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ये ह्विटले परिषदें अनेक कार्य सम्पन्न करती हैं। इनके कुछ प्रमुख कार्य ये हैं—

1 *L D White* Whitley Councils in the British Civil Service, 1933, p 10
2 *L D White* The Civil Services of the Modern State, A Collection of Documents, p 23
3 *O G Stahl* op cit, p 236
4 *Carl J Schneider* "The Removal of Whitleyism in British Local Government," Public Administration Review Spring, 1953, pp 97-1 5

(1) ये कर्मचारियों के विचारों और अनुभवों का उपयोग करने के लिए सर्वोत्तम उपायों की व्यवस्था करती हैं।
(2) परिषदों द्वारा कर्मचारी वर्ग को उनकी सेवा की शर्तों के निर्धारण और निरीक्षण में अधिक भाग लेने का अवसर मिलता है।
(3) ये परिषदें कर्मचारियों की सेवा की शर्तों का नियमन करने वाले सामान्य सिद्धान्तों का निर्धारण करती हैं।
(4) ये लोक सेवकों को आगे शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करती हैं तथा उन्हें उच्चतर प्रशासन और संगठन का प्रशिक्षण देती हैं।
(5) ये कार्यालय में संगठनात्मक सुधार सुझाती हैं और इस सम्बन्ध में कर्मचारियों के सुझावों पर विचार का अवसर देती हैं।
(6) ये लोकसेवकों सम्बन्धी विधि निर्माण के सम्बन्ध में सुझाव प्रस्तुत करती हैं।

ह्विटले परिषदों का संगठन
(The Organisation of Whitley Councils)

ह्विटले परिषदों का संगठन पूर्वोक्त तीन स्तरों में होता है। ये राष्ट्रीय परिषद्, विभागीय परिषद् और जिला या क्षेत्रीय समितियों के रूप में संगठित होती हैं। यद्यपि इन स्तरों के बीच पद सोपान का सम्बन्ध नहीं है फिर भी यह व्यवस्था की जाती है कि राष्ट्रीय परिषद् विभागीय परिषदों के संविधान को स्वीकार करे। विभागीय परिषद् उन विषयों को राष्ट्रीय परिषद् के पास भेज देती है जो या तो राष्ट्रीय हितों के विरुद्ध दिखाई देते हैं अथवा जो सम्बन्धित अधिकार क्षेत्र से बाहर हैं। विभागीय परिषदों के नीचे जिला तथा प्रादेशिक समितियाँ होती हैं जो देश के सभी कर्मचारियों की स्थानीय समस्याओं से सम्बन्ध रखती हैं।

राष्ट्रीय परिषद में 54 सदस्य होते हैं, इनमें आधे सरकारी पक्ष के होते हैं जिनकी नियुक्ति सरकार द्वारा लोकसेवकों अथवा अन्य उच्च अधिकारियों में से की जाती है। इसमें राजकोष तथा श्रम मन्त्रालय का कम से कम एक प्रतिनिधि अवश्य होता है। परिषद् के शेष सदस्य कर्मचारी संगठनों द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। यह राष्ट्रीय परिषद् अपनी सुविधा के लिए स्थायी समितियाँ, विशेष समितियाँ, पदक्रम समितियाँ आदि नियुक्त करती है तथा उन्हें शक्ति हस्तान्तरित करती है। राष्ट्रीय परिषद् के सदस्यों का कार्यकाल निश्चित नहीं होता। वे तब तक अपने पदों पर बने रहते हैं जब तक कि स्वयं त्यागपत्र न दें अथवा सेवानिवृत्त न हो जाएँ। इसमें एक सभापति और एक उपसभापति होता है। सभापति प्रायः सरकारी पक्ष का और उपसभापति कर्मचारी पक्ष का होता है। परिषद् इन दोनों पक्षों में से सचिव नियुक्त करती है।

विभागीय मामलों के लिए विभागीय परिषदें नियुक्त की जाती हैं जिनमें सरकारी तथा कर्मचारी पक्ष के आधे आधे सदस्य होते हैं। सामान्यतः एक विभाग में एक ही विभागीय परिषद् स्थापित की जाती है, किन्तु बड़े विभाग में एक से

प्रवित्र परिषदें भी स्थापित की जा सकती हैं। सरकारी पक्ष के सदस्यों की नियुक्ति विभागाध्यक्ष अथवा मन्त्री द्वारा होती है और कर्मचारी पक्ष के प्रतिनिधि उस विभाग सम्बन्धी कर्मचारी सगठन द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। स्थापन सम्भाग का कोई सदस्य इस परिषद् का सचिव होता है। विभागाध्यक्ष को इसका अध्यक्ष बनाया जाता है। एक से अधिक विभागों की परिधि मे आने वाले मामलों की रिपोर्ट विभागीय परिषद् द्वारा राष्ट्रीय परिषद् को दी जाती है। विभागीय ह्विटले परिषदों की सख्या 80 है।

जिला अथवा क्षेत्रीय समितियाँ विशुद्ध रूप से कर्मचारियों की स्थानीय समस्याओं को सुलझाती हैं। इनका सगठन भी विभागीय परिषदों की भाँति किया जाता है।

परिषदों की कार्य-प्रणाली

(Procedure and Work of the Councils)

राष्ट्रीय परिषद् की बैठकें तीन माह मे एक बार होना अनिवार्य है। वैसे आवश्यकतानुसार इसकी अतिरिक्त बैठकें कभी भी बुलाई जा सकती हैं। परिषद् के महत्त्वपूर्ण कार्यों के सम्पादन हेतु समितियाँ होती हैं। इन समितियों तथा परिषदों की बैठकों की अध्यक्षता प्राय सरकारी पक्ष के प्रतिनिधि द्वारा की जाती है। उपाध्यक्ष कर्मचारी वर्ग का होता है। परिषद् के निर्णय मतदान के आधार पर नहीं होते वरन् सरकारी पक्ष और कर्मचारी पक्ष दोनों विभाजनहीन रूप से मत प्रकट करते हैं। दोनों ही पक्षों को स्वीकृत होने के बाद ही कोई निर्णय मान्य बनता है। परिषद् के समस्त निर्णयों पर अध्यक्ष और उपाध्यक्ष की स्वीकृति ली जाती है इसके बाद वे कार्यरूप मे परिणत किए जाते हैं। विभागीय परिषदों की कार्य-प्रणाली भी राष्ट्रीय परिषद् की कार्य-प्रणाली के समवत् होती है।

परिषदों का मूल्यांकन (Evaluation of the Councils)

ह्विटले परिषदों की उपयोगिता एव उपलब्धियों के बारे मे अलग-अलग मत प्रकट किए गए हैं। उग्र समाजवादी एव श्रम सगठनवादियों ने इनकी कटु आलोचना की है क्योंकि उनकी राय से ये परिषदें श्रमिकों की वर्ग चेतना को धूमिल बनाती हैं और उनकी सैनिक प्रवृत्ति पर कुठाराघात करती हैं। उच्चवर्गीय लोक सेवाएँ भी ह्विटले परिषदों को सहानुभूति एव समर्थन की नजर से नहीं देखती। कारण यह है कि इस वर्ग के कर्मचारियों का उच्चतम अधिकारियों से सीधा सम्पर्क रहता है। इसलिए अनुकूल सेवा की शर्तें निर्धारित कराने के लिए उन्हें इन परिषदों की आवश्यकता नहीं होती। इसके अतिरिक्त उन्हें ऐसा लगता है कि ह्विटले परिषदें अधीनस्थ कर्मचारियों की दशाओं के बारे मे निर्णय लेने के उनके अधिकार को क्षति पहुँचाएँगी। फलत टॉमलिन आयोग के सम्मुख साक्षी देते समय कुछ विभागों के अध्यक्षों द्वारा ह्विटले परिषदों को समाप्त करने का जोरदार समर्थन किया गया।

ह्विटले परिषदों की सफलता और असफलता बहुत कुछ इनके प्रति अधिकारियों और कर्मचारियों के दृष्टिकोण पर निर्भर रही है। जहाँ कर्मचारियों तथा अधिकारियों ने सहकारिता की भावना से कार्य किया वहाँ इन परिषदों को सफलता प्राप्त हुई किन्तु जहाँ उच्च अधिकारियों ने उन्हें अपने निहित विशेषाधिकारों पर अतिक्रमण माना तथा कर्मचारियों ने बिना समर्पण के केवल प्राप्त करने का स्वार्थपूर्ण मार्ग ग्रहण किया वहाँ ये वांछनीय सफलता प्राप्त नहीं कर सकीं।

परिषदों की अनेक व्यावहारिक कमजोरियाँ होते हुए भी ये अधिकारियों और कर्मचारियों के बीच मैत्री भाव विकसित करने का आधार बनी हैं। परिषदों के मंच पर इन दोनों पक्षों के बीच अनौपचारिक विचारों के आदान प्रदान से दोनों ने एक दूसरे को समझा है और इस प्रकार समस्याओं के निराकरण का मार्ग सुगम बना है। इन परिषदों की अधिक सफलता के लिए चार बातें आवश्यक हैं—(क) राज्य कर्मचारी विभिन्न संघों और संस्थाओं में संगठित हों, (ख) दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों का चयन सावधानीपूर्वक किया जाए (ग) कर्मचारियों के प्रतिनिधियों को सुचारु कार्य संचालन के लिए आवश्यक सुविधाएँ दी जाएँ और उन्हें किसी भी विरोधी कार्यवाही के भय से मुक्त किया जाए, (घ) अधिकारी एवं कर्मचारी दोनों पक्ष विवेक, नम्रता, अहंकारहीनता, स्वार्थहीनता, सहकारिता और सहयोग की भावना से ओत-प्रोत हों।

परिषदों की सत्ता पर सीमाएँ
(Limitations on the Authority of Councils)

ह्विटले परिषदों की कार्य-प्रणाली और सफलता पर उन सीमाओं का उल्लेखनीय प्रभाव रहता है जो परिषदों की सत्ता पर रखी गई हैं। सीमाएँ ये हैं—

1. ह्विटले परिषदें केवल परामर्शदाता निकाय हैं। इनके सभी निर्णय मन्त्रिमण्डल के सम्मुख रखे जाते हैं जो इन्हें स्वीकार अथवा अस्वीकार करने की अन्तिम शक्ति रखता है।

2. ये परिषदें केवल दो हजार पौण्ड प्रतिवर्ष वेतन पाने वाले पदाधिकारियों के वेतन आदि के बारे में ही विचार कर सकती हैं। इन्हें उच्च पदाधिकारियों के वेतन के सम्बन्ध में विचार करने की शक्ति नहीं होती।

3. परिषदों के होते हुए भी व्यवहार में कर्मचारियों की अनेक समस्याएँ परिषदों का सहारा लिए बिना प्रत्यक्ष वार्ता द्वारा सुलझाई जाती हैं।

4. इन परिषदों द्वारा प्रायः गम्भीर और महत्त्वपूर्ण मामलों पर विचार नहीं किया जाता वरन् ये छोटी-मोटी समस्याओं का समाधान ढूंढने में ही लगी रहती हैं।

5. ये केवल सामान्य हितों पर विचार करती हैं। व्यक्तिगत मामलों पर विचार नहीं करतीं। किसी श्रेणी अथवा सेवा विशेष के व्यक्तिगत प्रश्न प्रायः प्रत्यक्ष वार्ता द्वारा ही निबटाए जाते हैं।

उक्त सीमाओं के होते हुए भी ह्विटले परिषदें राज्य कर्मचारियों के विवादों के सुलझाने का महत्त्वपूर्ण साधन हैं। अनौपचारिक कार्य-प्रणाली का विकास इन परिषदों की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। डगलस ह्वाटन (Douglas Houghton) के शब्दों में, "ह्विटले परिषद् के प्रतिदिन के कार्यों से अनेक औपचारिक बैठकों में क्या होने जा रहा है इस बात का पहले से ही पता लग जाता है और तर्क-वितर्कों के पक्षों द्वारा कल्पना लोक में उड़ने की अपेक्षा पहले से ही एक तथ्यपूर्ण दृष्टिकोण अपना लिया जाता है।" असल में ह्विटले परिषद् व्यवस्था मानव सम्बन्धों का एक ऐसा रूप है जिसमें प्रत्येक पक्ष को कुछ देना पड़ता है और प्रत्येक पक्ष कुछ प्राप्त करता है।

सेवा विवाद सुलझाने के अन्य तरीके
(Other Techniques of Solving Service Disputes)

यद्यपि ह्विटले परिषदें सेवा विवादों को सुलझाने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं किन्तु यह पर्याप्त नहीं है। जब परिषदों में होने वाला विचार-विनिमय किसी निष्कर्ष तक नहीं पहुँच पाता तो कर्मचारी और अधिकारी दोनों को अपने विवाद तय करने के लिए अन्य तरीकों की खोज करनी पड़ती है। अन्य तरीके मुख्यतः चार प्रकार के हैं—(क) मिलाजुला विनिमय, यह विवाद से सम्बन्धित दोनों पक्षों के बीच होता है और किसी बाहरी व्यक्ति को बीच में लाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। (ख) मध्यस्थता के अन्तर्गत किसी ऐसे व्यक्ति या संस्था का सहयोग लिया जाता है जो दोनों पक्षों का विश्वसनीय हो। मध्यस्थ का निर्णय दोनों पक्षों को स्वीकार होता है। (ग) समझौता एवं पंच निर्णय समझौता भी किसी बाहरी व्यक्ति द्वारा कराया जाता है। पंच निर्णय का फैसला बहुत कुछ दोनों पक्षों पर बाध्यकारी होता है। कुछ पंच निर्णय वैकल्पिक भी हो सकते हैं। (घ) विधिसम्मत न्याय का सहारा तब लिया जाता है जब अन्य तरीके कारगर सिद्ध नहीं होते। पंच निर्णय के प्रतिकूल होने पर प्रभावित पक्ष उच्चतर अदालत में अपील कर सकता है। न्यायालय का निर्णय बाध्यकारी प्रकृति का होता है। ये सभी तरीके परिस्थिति और आवश्यकता के अनुसार सेवा विवादों को सुलझाने के लिए अपनाए जाते हैं।

फ्रांस में परिवेदना निवारण प्रक्रिया
(Grievances Redress Procedure in France)

फ्रांस में चतुर्थ गणराज्य के अधीन केन्द्र सरकार के स्तर पर ह्विटले व्यवस्था को अपनाया गया। यहाँ लोकसेवाओं की एक सर्वोच्च परिषद् है जिसमें मन्त्रिमण्डल द्वारा नियुक्त 24 सदस्य होते हैं। इनमें से 12 सदस्यों की नियुक्ति लोकसेवा संघों की सिफारिश पर की जाती है। इस परिषद् की अध्यक्षता प्रधान मन्त्री अथवा उप-प्रधान मन्त्री करते हैं। इसका मुख्य कार्य सेवीवर्ग सम्बन्धी नीति, सेवा की शर्तें तथा विभागीय परिषदों के दृष्टिकोण और कार्य में समन्वय स्थापित करना होता है। ग्रेट ब्रिटेन की भाँति फ्रांस में भी प्रायः प्रत्येक विभाग में ऐसी प्रतिनिधि परिषदें हैं जिनमें अधिकारी एवं कर्मचारी दोनों के प्रतिनिधि होते हैं। ये विभागीय परिषदें

भर्ती की प्रक्रिया, कार्यकुशलता अभिलेख, पदोन्नति, अनुशासन एवं अन्य सेवीवर्ग सम्बन्धी प्रश्नों पर देखरेख रखती हैं।

संयुक्तराज्य अमेरिका में परिवेदना समितियाँ
(Grievance Committees in U S A.)

अमेरिका में संघीय स्तर पर विभागीय अपील समितियाँ हैं, इन समितियों में विभागीय अध्यक्ष और लोकसेवा आयोग के एक अथवा अधिक प्रतिनिधि होते हैं। ये वर्गीकरण, पदोन्नति, वेतन आदि विषयों पर विचार-विमर्श करते रहते हैं।

स्टाफ परिषदें
(Staff Councils)

अथवा

भारत में सुलह-वार्ता और विवादों के निपटारे की व्यवस्था
(Machinery for Negotiations and Settlement of Disputes in India)

अथवा

भारतीय नागरिक-सेवा में ह्विटले परिषदें
(Whitley Councils in Indian Civil Services)

भारत में ह्विटले परिषदें जैसी कोई चीज नहीं है, तथापि यहाँ ह्विटलेवाद को सैद्धान्तिक रूप में पूरा-पूरा समर्थन प्राप्त हुआ है औद्योगिक क्षेत्रों में इस दिशा में कुछ उल्लेखनीय कार्य किए गए हैं। अनेक व्यक्तिगत उद्योगों में प्रबन्ध एवं कर्मचारियों के सहयोग के लिए प्रथम स्तर की व्यवस्था की गई है। प्रशासकीय क्षेत्र में ह्विटले परिषदों की आवश्यकता को कर्मचारी-वर्ग की समितियों अथवा परिषदों के द्वारा पूरा करने का प्रयास किया गया है। यद्यपि ये परिषदें बहुत कुछ ब्रिटिश ह्विटले प्रणाली पर ही आधारित हैं, तथापि इनमें ह्विटलेवाद की आत्मा तथा मूल तत्त्व का अभाव है। भारत में ब्रिटिश राष्ट्रीय ह्विटले परिषदों की भाँति कोई अखिल भारतीय संगठन नहीं है। इस सम्बन्ध में ध्यान रखने योग्य बात यह है कि कर्मचारियों के संघों को इन परिषदों में प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया है।

भारत में कर्मचारी-वर्ग की समितियों की स्थापना के लिए 1954 में गृह मन्त्रालय द्वारा प्रयास किया गया। गृह मन्त्रालय ने विभिन्न मन्त्रालयों को इस सम्बन्ध में जो निर्देश दिए, उनके साथ ही प्रस्तावित समिति का विधान भी भेज दिया गया, और मन्त्रालयों को यह स्वतन्त्रता दी गई कि वे इसमें आवश्यकतानुसार संशोधन कर सकते थे। प्रत्येक मन्त्रालय में एक कल्याण-अधिकारी होता है जो कर्मचारियों एवं अधिकारियों के चहुँमुखी विकास और कल्याण की योजनाओं का निर्माण और क्रियान्वयन करता है। 1957 में गृह कर्मचारी-वर्ग समितियों का नाम बदलकर कर्मचारी-वर्ग परिषदें रख दिया गया। वर्तमान भारत में प्रत्येक मन्त्रालय के अन्तर्गत दो कर्मचारी-वर्ग परिषदें हैं—प्रथम वरिष्ट कर्मचारी वर्ग परिषदें (*Senior Staff Councils*) और द्वितीय, कनिष्ठ कर्मचारी वर्ग परिषदें (Junior Staff Councils)।

वरिष्ठ कर्मचारी-वर्ग परिषदें (Senior Staff Councils) ये परिषदें द्वितीय एवं तृतीय श्रेणी के कर्मचारियों के लिए होती हैं। इनमें ये सदस्य होते हैं–सरकार द्वारा मनोनीत व्यक्ति, शाखा के अधिकारियों के प्रतिनिधि सहायक, आशुलिपिक लिपिक आदि भी होते हैं। सरकारी प्रतिनिधियों को तत्सम्बन्धी मन्त्रालय द्वारा उस विभाग के अधिकारियों में से ही नामजद किया जाता है। नामजद किए गए अधिकारी का स्तर अवर-सचिव (Under-Secretary) से नीचा नहीं होना चाहिए। ये सरकारी पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं। कर्मचारी-वर्ग के प्रतिनिधियों को ग्रेट ब्रिटेन की भाँति कर्मचारी संघों द्वारा मनोनीत नहीं किया जाता है। इसमें निम्न ये प्रतिनिधि प्रत्यक्ष रूप से कर्मचारियों द्वारा चुने जाते हैं। दूसरी तथा तीसरी श्रेणी के विभिन्न कर्मचारी बीस के ऊपर एक के अनुपात से अपने प्रतिनिधियों का निर्वाचन करते हैं। 1957 से पूर्व इन प्रतिनिधियों का चुनाव एक वर्ष के लिए किया जाता था किन्तु बाद में इसकी अवधि दो वर्ष कर दी गई। इस चुनाव-व्यवस्था में यह खतरा रहता है कि किसी शाखा अथवा सेवा-विशेष को बहुत अधिक प्रतिनिधित्व मिल जाए दूसरी को कम और अन्य को बिल्कुल भी नहीं। सम्बन्धित मन्त्रालय का सचिव अथवा सहायक सचिव मन्त्री द्वारा इस परिषद् का सभापति चुना जाता है।

कनिष्ठ कर्मचारी वर्ग परिषदें (Junior Staff Councils)—ये परिषदें चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों से सम्बन्ध रखती है। इनका सगठन वरिष्ठ कर्मचारियों के सगठन से भिन्न होता है। इन परिषदों में सरकार का प्रतिनिधित्व उन पदाधिकारियों द्वारा किया जाता है जो सहायक श्रेणी के नीचे दर्जे के नहीं होते हैं। इनकी नियुक्ति सरकार द्वारा की जाती है। सम्बन्धित मन्त्रालय का उप-सचिव इस परिषद् का सभापति होता है। कर्मचारी वर्ग के प्रतिनिधियों का चुनाव चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी प्रत्यक्ष रूप से करते हैं। प्रत्येक दस सदस्यों में से एक प्रतिनिधि चुना जाता है। चुनाव कर्मचारियों के दो समूहों में से किया जाता है। प्रथम समूह में दफ्तरी और अभिलेख पुनवकार आदि होते हैं और दूसरे समूह में चपरासी, फर्राश जमादार, झाड़ू लगाने वाले आदि होते हैं। इन दोनों समूहों में से प्रत्येक को एक ऐसा अतिरिक्त प्रतिनिधि चुनने की अनुमति दी जाती है जो उच्च वर्ग का सरकारी कर्मचारी होता है किन्तु यह शाखा अधिकारी (Section Officer) से ऊँचा नहीं होता। परिषद् के सचिव को सभापति द्वारा कर्मचारी-वर्ग के प्रतिनिधियों की राय से मनोनीत किया जाता है। स्टॉफ के प्रतिनिधि अपने पद पर एक वर्ष तक रहते हैं किन्तु उनको पुन चुने जाने का अधिकार भी होता है। यदि किसी कर्मचारी को दूसरे मन्त्रालय में अन्य स्तर पर पदोन्नत या स्थानान्तरित कर दिया जाता है तो वह इस परिषद् का सदस्य होने से रुक जाता है और उसके स्थान पर दूसरे प्रतिनिधि का चुनाव होता है।

कर्मचारी वर्ग परिषदों के कार्य
(The Functions of Councils)

जब इन परिषदों की स्थापना के लिए गृह मन्त्रालय द्वारा सिफारिश की गई

थी तो इनकी स्थापना के लिए विधान भी तैयार किया गया था। उस विधान के अनुसार इन परिषदों के जो कार्य एवं उद्देश्य निर्धारित किए गए, वे मुख्यतः निम्न प्रकार के हैं—

(1) कार्य के स्तरों को सुधारने के लिए दिए जाने वाले सुझावों पर विचार करना।

(2) कर्मचारी-वर्ग के सदस्यों को कोई ऐसा साधन प्रदान करना जिसके द्वारा वे उन विषयों पर अपने दृष्टिकोण से सरकार को अवगत करा सकें जो उनकी सेवा की शर्तों पर प्रभाव डालते हैं।

(3) कर्मचारी वर्ग और अधिकारियों के बीच व्यक्तिगत सम्पर्क के साधन प्रस्तुत करना ताकि उनके बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का विकास हो सके, और कर्मचारी-वर्ग अपने कार्य में अधिक रुचि लेने के लिए प्रोत्साहित हों।

ये परिषदें परामर्शदात्री निकाय (Advisory Bodies) हैं जो अग्रलिखित मामलों पर विचार कर सकती हैं—कर्मचारियों के कार्य करने की दशाएँ एवं शर्तें, सेवा शर्तों का विनियमन करने वाले सामान्य सिद्धान्त, कर्मचारी-वर्ग का कल्याण, कार्य-कुशलता एवं कार्य-स्तर में सुधार सम्बन्धी मामले आदि।

भारत में कुछ राज्य सरकारों ने भी इस प्रकार की परिषदों का विकास कर लिया है और वहाँ ये इसी प्रकार का कार्य कर रही हैं। इस सम्बन्ध में ध्यान रखने योग्य बात यह है कि प्रथम श्रेणी के कर्मचारियों को इस प्रकार की परिषद् बनाने का अधिकार नहीं दिया गया है। इन परिषदों के लिए तीन महीने में कम से कम एक बार अपनी बैठक बुलाना जरूरी है। इस बीच यदि कर्मचारी-वर्ग के प्रतिनिधियों का पाँचवाँ भाग चाहे तो सभापति को विशेष अधिवेशन में भी बुलाना पड़ता है। बैठकों का कार्यक्रम सचिव द्वारा तैयार किया जाता है और सभापति द्वारा उसे स्वीकार किया जाता है। बैठक से तीन दिन पूर्व यह कार्यक्रम प्रत्येक सदस्य के पास भेज दिया जाता है। यदि कोई प्रतिनिधि कार्यक्रम में कोई नई बात जोड़ना चाहे तो सचिव को तत्सम्बन्धी सूचना दे देता है। गणपूर्ति के लिए कर्मचारी-वर्ग के एक-तिहाई प्रतिनिधियों का होना जरूरी है। किसी भी बात पर निर्णय तब लिया जाता है जबकि दोनों पक्षों का बहुमत उसका समर्थन करे। परिषद् सम्बन्धित मन्त्रालय को अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करती है जो उसके अनुसार की जाने वाली कार्यवाही पर विचार करता है।

परिषदों का मूल्यांकन
(Evaluation of the Councils)

कर्मचारी-वर्ग की परिषदों के अधिवेशनों की सख्या, की गई सिफारिशों की संख्या तथा *क्रियान्वित सिफारिशों की सख्या को देखने के बाद निरीक्षकों ने सारी* असन्तोष व्यक्त किया है। कर्मचारी-वर्ग परिषदें प्रशासन पर कोई महत्त्वपूर्ण प्रभाव

डालने मे प्राय असमर्थ रही हैं। कर्मचारी-वर्ग की इन परिषदो के अब तक के कार्यों मे अनेक दोष रहे हैं—

प्रथम, परिषदो ने जिन विषयो पर विचार किया, वे विभिन्न प्रकार के थे। इन विषयों पर परिषदों ने अपनी सिफारिशें प्रस्तुत की जिनमे केवल वे ही स्वीकार की गई जिनका सम्बन्ध अपेक्षाकृत गौण विषयो से था। इस प्रकार ये परिषदें कार्यालय के अन्दर कार्य की दशाओ को सुधारने मे बहुत असफल रही हैं। सगठन के पद-वर्गीकरण, पदोन्नति, वरिष्ठता की सूची तैयार करने आदि विषयों पर ये परिषदें कोई प्रभाव नहीं डाल पाई हैं। सगठन के इन महत्त्वपूर्ण विषयो पर कर्मचारियो को कोई निर्णायक अधिकार नही हैं वे इन पर केवल विचार मात्र कर सकते हैं। दूसरे, परिषदो मे अधिकारी वर्ग ने जो रुख अपनाया है वह ह्विटलेवाद की भावनाओ के अनुरूप नही है। उच्च अधिकारी यहाँ भी उच्चता की भावना से पीड़ित हैं और अधीनस्थ कर्मचारी हीनता की भावना से प्रभावित रहा है। ऐसी स्थिति मे दोनो के बीच स्वतन्त्र विचार-विमर्श का कोई प्रश्न ही नही उठता। तीसरे इन परिषदो की बैठक नियमित रूप से नही की गई है। चौथे, परिषदो द्वारा जो सिफारिशें प्रस्तुत की गईं उन पर अविलम्ब ध्यान नही दिया गया। इस प्रकार कुल मिलाकर ये परिषदें उन आशाओ को पूरा करने मे असमर्थ रही हैं जो इनके रचनाकारो ने इनसे की थी। भारतीय प्रशासन आज भी प्रबन्ध एव कर्मचारी वर्ग के निकट घनिष्ठ एव मैत्रीपूर्ण सम्बन्धो के अभाव मे दूषित है। दोनो पक्षो मे एक दूसरे के प्रति अनेक गलत फहमियाँ पाई जाती हैं और ये तब तक पाई जाएँगी जब तक कि दोनो पक्षो के स्वतन्त्र, सहयोगपूर्ण, निर्भय तथा मित्रतापूर्ण वार्तालाप के लिए कोई समुचित साधन न होगा।

समन्वय समिति (Co-ordination Committee)

हाल ही मे स्थापित की गई इस समिति मे गृह-निर्माण एव पूर्ति मन्त्रालयों के तीन वरिष्ठ अधिकारी रहते हैं। इस समिति को ऐसे विवाद सौंपे जाते हैं जिनका समाधान कर्मचारी वर्ग परिषदो (Staff Councils) मे नही हो पाता।

भारत में संयुक्त परामर्श तन्त्र (जे. सी. एम.) तथा अनिवार्य विवाचन (आरबिट्रेशन)

इस सम्बन्ध मे कार्मिक एव प्राथमिक सुधार विभाग की रिपोर्ट 1983–84 का विवरण इस प्रकार है—

केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियो के लिए सयुक्त परामर्श तन्त्र तथा अनिवार्य विवाचन योजना मे सयुक्त परिषद् स्थापित किए जाने की व्यवस्था है। इनमे कर्मचारियो को प्रभावित करने वाले मामलो पर विचार करने के लिए सरकारी पक्ष और कर्मचारी पक्ष के प्रतिनिधि शामिल किए जाते हैं। परिषदो के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत कर्मचारियों के कल्याण, उनकी सेवा तथा कार्य की शर्तों तथा कार्य-कुशलता एव उसके स्तर म सुधार से सम्बन्धित सभी मामले आते हैं, किन्तु शर्त यह है कि—

1 भर्ती, पदोन्नति तथा अनुशासन के बारे में परामर्श, सामान्य सिद्धान्तों से सम्बन्धित मामलों तक ही सीमित रहेगा, और

2 व्यक्तिगत मामलों पर विचार नहीं किया जाएगा।

जब कोई मामला संयुक्त परिषदों में बातचीत द्वारा तय नहीं किया जा सकता तो योजना में किसी श्रेणी अथवा ग्रेड के कर्मचारियों के निम्नलिखित विषयों के बारे में अनिवार्य विवाचन की व्यवस्था है—

(क) वेतन तथा भत्ते,

(ख) साप्ताह में कार्य के घण्टे, और

(ग) छुट्टी।

अन्य मदों के लिए असहमति के मामले में कर्मचारी पक्ष द्वारा अनुरोध किए जाने पर मन्त्रियों की समिति के साथ पत्राचार किया जा सकता है।

राष्ट्रीय परिषद्—राष्ट्रीय परिषद् जो संयुक्त परामर्श तन्त्र की योजना के अन्तर्गत शीर्षस्थ निकाय है, की स्थापना अक्तूबर 1966 में हुई थी और तब से अब तक इसकी 26 साधारण और दो विशेष बैठकें आयोजित की जा चुकी हैं। राष्ट्रीय परिषद् की अन्तिम बैठक मई, 1982 में हुई थी। राष्ट्रीय परिषद् की औपचारिक बैठक के अतिरिक्त, इस परिषद् की समितियों की कई बैठकें भी आयोजित की जा चुकी हैं। इन समितियों को भेजे गए मामले विचार के विभिन्न चरणों में हैं। इसके अतिरिक्त कर्मचारी पक्ष के प्रतिनिधियों के साथ कई औपचारिक/अनौपचारिक विचार-विमर्श के परिणामस्वरूप, निम्नलिखित विषयों के सम्बन्ध में कई महत्त्वपूर्ण मदों पर समझौता किया गया है—

(i) 1 जून, 1983 से 1599 रुपए वेतन पाने वाले सभी केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों को नीचे दर्शाए गए ढंग से अन्तरिम राहत का भुगतान—जिसे केवल सेवा निवृत्ति के लाभों के प्रयोजन से परिलब्धियों के रूप में समझा जाएगा—

वेतन सीमा	अन्तरिम राहत
(i) रुपए 299/– तक	रु० 50/– प्रति मास
(ii) रुपए 300–699/– तक	रु० 60/– प्रति मास
(iii) रुपए 700–1599/– तक	रु० 70/– प्रति मास

(ii) रु० 1200/– तक वेतन पाने वाले ऐसे केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों को जो किसी ग्रेड में 2 वर्ष या उससे अधिक अवधि से उस ग्रेड की अधिकतम सीमा पर प्रगतिरोध पर पड़े हुए हैं प्राप्त की गई अन्तिम वेतन वृद्धि के बराबर एक प्रतिरोध वेतनवृद्धि का भुगतान किया जाना।

(iii) राष्ट्रीय परिषद् में लम्बित कुछ ऐसी मदें जिन्हें चौथे केन्द्रीय वेतन आयोग को भेजा गया।

(iv) केन्द्रीय वेतन आयोग को भेजे जाने के लिए विभिन्न विभागीय परिषदों में लम्बित मदों का पता लगाने की कार्य प्रणाली।

विभागीय/कार्यालय परिषद्—संयुक्त परामर्श तन्त्र योजना के अधीन परिकल्पित कुल 22 विभागीय परिषदों में से, विभिन्न मन्त्रालयों/विभागों में 21 विभागीय परिषदों की स्थापना की जा चुकी है। बाकी एक विभागीय परिषद् की स्थापना किए जाने के बारे में सम्बन्धित मन्त्रालय/विभाग द्वारा कदम उठाए जा रहे हैं। मन्त्रालयों/विभागों द्वारा विभिन्न कार्यालयों में निम्नस्तरीय (कार्यालय) परिषदों की स्थापना करने के लिए भी कदम उठाए जा रहे हैं। विभिन्न कार्यालयों में अब तक लगभग 1000 से अधिक कार्यालय परिषदों की स्थापना की जा चुकी है। भारत के महालेखापरीक्षक के मुख्यालय में भी एक अतिरिक्त कार्यालय परिषद् की स्थापना की जा चुकी है।

विवाचन (आर्बिट्रेशन)—31 दिसम्बर, 1983 तक विवाचन बोर्ड को 157 मामले भेजे जा चुके हैं जिसमें राष्ट्रीय परिषद् के 10 मामले भी शामिल हैं। बोर्ड द्वारा 128 मामलों में अधिनिर्णय दे दिया गया है, इनमें से 100 मामलों में कर्मचारी पक्ष की माँग पूर्णतः/अंशतः स्वीकार कर ली गई है और 28 मामलों को नामंजूर कर दिया गया है। दोनों पक्षों के बीच, अर्थात् कर्मचारी पक्ष और सरकारी पक्ष में सहमति हो जाने के कारण 9 मामलों को वापिस लेने की अनुमति दे दी गई है। अब 20 मामले विवाचन बोर्ड के समक्ष लम्बित पड़े हैं।

मन्त्रियों की समिति को मामले भेजा जाना—कर्मचारी पक्ष के अनुरोध पर गैर-विवाचनीय मदों से सम्बन्धित 4 ऐसे मामले जिनमें उनकी माँगों पर सहमति देना सम्भव नहीं हो पाया था, मन्त्रियों की समिति को भेज दिए गए।

संयुक्तराज्य अमेरिका में ह्विटलेवाद
(Whitleyism in U S A)

संयुक्तराज्य अमेरिका में ह्विटले परिषद् जैसी कोई संस्था नहीं है किन्तु सरकार तथा राज्य कर्मचारियों के बीच मधुर सम्बन्ध बनाए रखने के लिए कुछ अन्य तरीके अपनाए जाते हैं। यहाँ कर्मचारी संघों के मत सेवा नीतियों के बारे में अपने विचार तथा सुझाव सरकार के सामने रखते हैं। कर्मचारी संघों द्वारा सेवा-नीतियों एवं सेवा शर्तों के बारे में कांग्रेस से याचना करके परिवर्तन कराया जाता है। ये संघ राष्ट्रपति से सीधी अपील कर सकते हैं और पत्र-पत्रिकाओं द्वारा अपने हितों के अनुकूल लोकमत जाग्रत कर सकते हैं। लोकसेवा आयोग द्वारा विभिन्न कर्मचारी संघों से सेवीवर्ग के बारे में उदारतापूर्वक परामर्श लिया जाता है।

हड़ताल का अधिकार एवं नागरिक सेवकों के राजनीतिक अधिकार
(Right to Strike and Political Rights of Civil Servants)

राज्य कर्मचारियों द्वारा सम्पन्न किए जाने वाले महत्त्वपूर्ण कार्यों की पृष्ठभूमि में यह उपयुक्त माना जाता है कि उनकी कतिपय नागरिक स्वतन्त्रताओं पर सीमाएँ लगाई जाएँ। इस दृष्टि से भाषण या लेखन द्वारा उनकी अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, संघ बनाने की स्वतन्त्रता और सक्रिय राजनीति में भाग लेने की स्वतन्त्रता आदि पर सीमाएँ और प्रतिबन्ध लगाए जाते हैं। राज्य कर्मचारियों को यथासम्भव

राजनीतिक दृष्टि से तटस्थ बनाए रखने की व्यवस्था की जाती है। इसी दृष्टिकोण से प्रभावित होकर उन्हें विभिन्न राजनीतिक अधिकार सौंपे जाते हैं। इन अधिकारों का विवेचन करने से पूर्व हम राज्य कर्मचारियों के हड़ताल के अधिकार के औचित्य एवं विभिन्न देशों में तत्सम्बन्धी स्थिति का अवलोकन करेंगे।

हड़ताल करने का अधिकार
(Right to Strike)

असैनिक कर्मचारियों का सरकार के विरुद्ध हड़ताल करने का अधिकार बहुत अधिक विवादास्पद और बहुचर्चित प्रश्न है। हड़ताल से प्रशासनिक गतिरोध तथा अव्यवस्था, आर्थिक हानि और जनता के कष्ट उत्पन्न होते हैं। इनके कुपरिणामों से उदासीन नहीं रहा जा सकता। हमारे देश के केन्द्रीय और राज्य कर्मचारियों की हड़तालें सरकार और जनता के प्रत्येक वर्ग के लिए भारी परेशानी का कारण रही हैं। राज्य कर्मचारियों को अपनी सेवा शर्तों के सम्बन्ध में प्रदर्शन तथा हड़ताल करने और अपनी कुछ समस्याओं एवं शिकायतों के लिए काम बन्द करने की अनुमति के बारे में विभिन्न देशों में अलग-अलग नीतियाँ अपनाई गई हैं।

ब्रिटेन में ऐसा कोई कानून नहीं है जो असैनिक कर्मचारियों की हड़तालों को निषिद्ध ठहराता हो। फिर भी सरकार हड़तालों को प्रोत्साहित नहीं करती और हड़ताल करने वाले लोक-कर्मचारियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करती है जिसमें भर्त्सना, पदच्युति, पेंशन की समाप्ति आदि दण्ड शामिल हैं।

संयुक्तराज्य अमेरिका में हड़ताल गैर-कानूनी है। यद्यपि संघीय कर्मचारियों को संघ बनाने का अधिकार दिया गया है किन्तु उन्हें हड़ताल करने अथवा राज्य-विरोधी हड़तालों का आयोजन करने वाले संगठनों से सम्बन्ध रखने का अधिकार नहीं दिया गया है। एक समय था जबकि वहाँ राज्य कर्मचारियों के हड़ताल करने पर कानूनी प्रतिबन्ध नहीं था, किन्तु धीरे-धीरे अनेक सरकारी विभागों में कर्मचारी के हड़ताल करने और बाहरी संगठन के साथ सम्बद्धता रखने पर रोक लगाई गई। इन कानूनी प्रतिबन्धों से पूर्व न्यायपालिका का दृष्टिकोण भी राज्य कर्मचारियों के हड़ताल के विरुद्ध नहीं था। जब विभिन्न कर्मचारी संगठनों द्वारा अनेक गम्भीर हड़तालें की गईं तो कार्यपालिका का दृष्टिकोण इनके विरुद्ध हो गया। सरकार ने इन्हें रोकने के लिए कानून बनाए और स्थानीय कानूनों द्वारा भी इन्हें प्रतिबन्धित करने की चेष्टा की गई। डाक व्यवस्था को रोकना एक अपराध था और सरकार-विरोधी षड्यन्त्र एक दण्डनीय कृत्य था जिसके नाम पर 1915 में 25 डाक कर्मचारियों द्वारा दिए गए त्याग पत्र से सरकार सफलतापूर्वक निपट सकी। अमरिका के वर्तमान कानूनों ने लगभग सभी राज्य कर्मचारी संघों को हड़ताल का प्रयोग करने से मना कर दिया है। 'श्रम-प्रबन्धकर्त्ता सम्बन्ध' (टफ्ट हार्टल) अधिनियम, 1947 (Labour Management Relations (Taft Hartley) Act, 1947) के अन्तर्गत सरकार के विरुद्ध हड़ताल करना अवैध घोषित किया गया है। अधिनियम का उल्लंघन करने वाले को पदच्युत किया अथवा तीन वर्ष के लिए सेवा के लिए

अयोग्य ठहराया जा सकता है। 1955 में पारित एक कानून (Public Law 330–48 the Congress) द्वारा संयुक्तराज्य अमेरिका में हड़ताल सम्बन्धी नियम और भी कठोर बना दिए गए हैं जिनके अन्तर्गत सरकार-विरोधी हड़तालों में भाग लेने वाले व्यक्ति को सरकारी पद के अयोग्य माना जाता है। सरकारी कर्मचारी किसी ऐसे संघ का सदस्य नहीं बन सकता जो हड़ताल करने के अधिकार का समर्थक हो। अधिनियम का उल्लंघन करने पर जुर्माने अथवा कैद दोनों की सजा दी जा सकती है। डाकघर लिपिकों के संयुक्त (United Federation of Post Office Clerks) ने स्वीकार किया है कि व्यवस्थाओं के निवारण के लिए मुख्य साधन हड़ताल नहीं है वरन् व्यवस्था है। इसी प्रकार संघीय कर्मचारियों के राष्ट्रीय संघ (National Federation of Government Employees) की मान्यता है कि यह संस्था संयुक्तराज्य की सरकार के विरुद्ध न कभी हड़ताल करेगी और न हड़तालों का समर्थन करेगी। इस प्रकार की घोषणाएँ सरकारी कर्मचारियों के अमेरिकी संघ (American Federation of Government Employees), अग्नि शामकों की अन्तर्राष्ट्रीय संस्था (International Association of Fire Fighters) आदि अन्य कर्मचारी संघों द्वारा की गई है। इन आत्म-नियन्त्रित घोषणाओं के फलस्वरूप सरकारी कानूनी व्यवस्था काफी प्रभावशाली बन गई है। अनेक राज्यों द्वारा भी हड़ताल विरोधी अधिनियम पारित किए गए हैं।

भारत में हड़ताल करना निषिद्ध तो नहीं है (आपातकालीन स्थिति एक अपवाद है) किन्तु इसे 'अनुशासन भंग' माना जाता है और इसीलिए सरकार हड़ताली कर्मचारियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही कर सकती है। अनिवार्य सेवाओं (Essential Services) में हड़ताल पर प्रतिबन्ध है। दूसरे शब्दों में यह कहना चाहिए कि केन्द्रीय सरकार के लगभग 30 प्रतिशत कर्मचारी हड़ताल नहीं कर सकते और शेष कर सकते हैं लेकिन अनुशासनात्मक कार्यवाही का खतरा उठा कर।

कर्मचारियों की हड़ताल और सरकारी प्रतिबन्ध आदि के बारे में मुख्य रूप से तीन विचारधाराएं प्रस्तुत की जाती हैं—(1) असैनिक कर्मचारियों को व्यापार संघों (Trade Unions) के सभी अधिकार दिए जाएं और हड़ताल करने की अनुमति मिले। यदि सरकारी कर्मचारियों को असहनीय परिस्थितियों में भी हड़ताल करने का अधिकार नहीं दिया जाता तो उनकी स्थिति गुलामों जैसी रहती है। साथ ही यह अलोकतान्त्रिक भी है। (2) सरकारी कर्मचारियों को ऐसा कोई अधिकार नहीं दिया जाना चाहिए जिससे वे हड़ताल कर सकें अथवा हड़ताल में भाग ले सकें। हड़ताल एक राजनीतिक हथियार है जिसके सफल होने का अर्थ है प्रशासन का पतन और कोई भी सरकार इसकी अनुमति नहीं दे सकती। जिन सरकारी अधिकारियों और कर्मचारियों को प्रशासनिक नीतियों तथा कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने का अधिकार सौंपा गया है, यदि उन्हीं को सरकार के हाथ काटने का अधिकार सौंप दिया गया तो स्थिति खतरनाक हो जाएगी। (3) सरकारी कर्मचारियों को केवल

कुछ ही स्थितियों मे हड़ताल करने का अधिकार दिया जाना चाहिए और शेष स्थितियों मे उनकी हड़ताली प्रक्रियाओं पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए, जो सरकारी कर्मचारी सार्वजनिक महत्व के कार्यों मे लगे हुए हैं, उन्हें हड़ताल का अधिकार नहीं दिया जाना चाहिए, पर जो श्रमिक सरकारी औद्योगिक संस्थानों मे हैं उन्हें हड़ताल का अधिकार देना निरापद भी है और आवश्यक भी।

भारत मे द्वितीय वेतन आयोग, प्रशासकीय सुधार आयोग तथा अन्य अनेक क्षेत्रों द्वारा सरकारी कर्मचारियों के हड़ताल के अधिकार का नैतिक, व्यावहारिक एवं प्रशासनिक कारणों से विरोध किया गया है। द्वितीय वेतन आयोग (Second Pay Commission) की राय इस प्रकार थी— 'हमारा यह निश्चित विचार है कि लोकसेवकों द्वारा हड़ताल का आश्रय लेना या उसकी धमकी देना सर्वथा गलत है। यह और भी गलत है कि उन्हें समुदाय के जीवन के लिए आवश्यक सेवाओं के प्रवर्तन का उत्तरदायित्व सौंपा गया है, वे स्वयं अपने हित-साधन के लिए उन सेवाओं मे विघ्न उपस्थित करें तथा उनका विघटन करने का प्रयत्न करें। इस नैतिक पक्ष के अतिरिक्त भारत मे जहाँ समाज के किसी न किसी वर्ग मे अनुशासनहीनता के भीषण विस्फोट की सम्भावना प्राय बनी ही रहती है, सरकारी सेवकों की हड़ताल या प्रदर्शनों से सामान्य रूप मे अनुशासनहीनता के लिए निश्चित ही मार्ग प्रस्तुत होता है।" प्रशासकीय सुधार आयोग (Administrative Reforms Commission) ने अपने प्रतिवेदन मे कहा था —"हमारा यह सुनिश्चित मत है कि शासकीय विभागों मे हड़तालों का कोई स्थान नहीं है। शासकीय अधिकारी को, प्रशासन का अंग होने के कारण समाज मे विशेष स्थिति प्राप्त है। उसके स्पष्ट एव सक्षम कार्य-सचालन पर समाज का ही कल्याण नहीं, अपितु जीवन भी निर्भर होता है। वह किसी भी स्थिति मे कार्य क्यों न करे उसके कार्य एव आचरण का जनता पर सीधा प्रभाव पड़ता है। इससे उसे विशिष्ट स्थिति प्राप्त हो जाती है। फलस्वरूप, वह सत्ता एव सम्मान का अधिकारी होता है अत समाज उससे एक आदर्श नागरिक की भाँति आचरण करने की सहज रूप म अपेक्षा करता है जिससे उसके किसी कार्य से समाज का अहित न हो। वर्तमान म जब शासकीय कार्यों का प्रभाव सर्वव्यापक है, किसी एक अधिकारी की अकर्मण्यता भले ही वह अल्पकालीन हो, समाज को अपार हानि पहुँचा सकती है, अत शासकीय अधिकारियों को अपनी वैयक्तिक या सामूहिक शिकायतों को दूर करने के लिए अनिवार्यत विचार-विमर्श के उपयुक्त माध्यम के ही प्रयोग का प्रयत्न करना चाहिए। उन्हें किसी भी अवस्था मे प्रशासन के शान्तिपूर्वक कार्य-सचालन को अव्यवस्थित करने वाले विध्वसक तरीके नहीं अपनाने चाहिए, अत शासकीय पद ग्रहण करने वाले व्यक्ति को यह सभी प्रकार स्पष्ट होना चाहिए कि अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हड़ताल का मार्ग उसके लिए खुला हुआ नहीं है। इस विचार को भली प्रकार स्वीकार करने हेतु यह आवश्यक है कि शासन मे पद ग्रहण करते समय पदाधिकारी को हड़ताल न करने के सम्बन्ध मे शपथपूर्वक घोषणा करनी चाहिए।"

सरकारी कर्मचारियों को जनहित साधन के लिए कुछ कार्य सौंपे जाते हैं और यह सर्वथा अनुचित है कि वे इन कार्यों को पूर्ण करने की अपेक्षा अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए समाज विरोधी साधन अपनाकर देश और समाज में प्रशासनिक तथा आर्थिक संकट उपस्थित करें और विकास की गति में बाधा पहुँचाएँ। विश्व का अधिकांश जनमत सरकारी कर्मचारियों की हडतालों का विरोधी है, अतः उपयुक्त मार्ग यही है कि सरकार और कर्मचारियों के बीच विवादों का समाधान बातचीत द्वारा किया जाए। वार्ता के लिए समुचित साधन (For Machinery for Negotiation) अपनाए जाएँ और दोनों पक्ष एक दूसरे के प्रति सद्भाव तथा सहयोग से काम लें। एक उपाय पंच-निर्णय (Arbitration) का है। प्रारम्भ में यह विचार प्रबल था कि राज्य सम्प्रभु है, अतः वह पंच-निर्णय के माध्यम से कर्मचारियों के साथ अपने विवाद नहीं सुलझा सकता। इसलिए सामूहिक सौदेबाजी की व्यवस्था को उपयुक्त समझा गया। वर्तमान समय में पंच निर्णय (Arbitration) व्यवस्था काफी लोकप्रिय होती जा रही है। भारत में सार्वजनिक क्षेत्र में कर्मचारियों के साथ उठने वाले विवादों में इस उपाय को विशेष सुविधाजनक और लाभकारी पाया जा रहा है। एक तरीका यह भी है कि प्रबन्ध और कर्मचारियों के प्रतिनिधियों की परिषद् बना दी जाए और वह दोनों के बीच विवादों को निपटाने में सहायता दे। ह्विटले परिषदें इसका सुन्दर उदाहरण हैं।

हडताल-विरोधी नीति का औचित्य
(Justification of Anti-strike Policy)

अनेक बार यह प्रश्न किया जाता है जब सरकार द्वारा गैर-सरकारी उद्योगों में श्रमिकों के हडताल करने के अधिकार को मान्यता प्रदान की जाती है तो फिर सरकारी कर्मचारियों के हडताल के अधिकार को मान्यता क्यों नहीं दी जाती।[1] इस प्रश्न के उत्तर में विचारकों द्वारा हडताल-विरोधी नीति का औचित्य सिद्ध करने के लिए कुछ तर्क विकसित किए गए हैं, इनमें मुख्य निम्नलिखित हैं—

1 राज्य सम्प्रभु है और उसके आदेशों की अवहेलना अथवा उनके विरुद्ध हडताल करना राज्य के प्रति विद्रोह माना जाएगा। इसी तर्क के आधार पर 1946 में अमेरिकी कांग्रेस ने यह घोषणा की थी कि जो व्यक्ति संयुक्तराज्य की सरकार के विरुद्ध किसी हडताल में शामिल होता है या सरकार विरोधी हडताल के अधिकार पर जोर देने वाले किसी सरकारी कर्मचारी संगठन का सदस्य होता है वह एक गम्भीर अपराध करने का दोषी होगा।

2 सरकारी गतिविधियाँ एकाधिकारी प्रकृति की होती हैं, इनके द्वारा देश की सामान्य व्यवस्था और सुरक्षा तथा जन-कल्याण गम्भीर रूप से प्रभावित होता है। फलस्वरूप ऐसे कार्यों के विरुद्ध हडताल करने से जनता को असुरक्षा और दारुण

1 *Robert E Cath*, Should Public Employees Have the Right to Strike? Public Personnel Review (U S A) Jan 1968, Volume 29, No 1, pp 26

हुए प्राप्त होंगे तथा यह एक जन-अपराध समझा जाएगा। सरकार द्वारा ऐसे कार्य सम्पन्न किए जाते हैं जो समाज के अस्तित्व एव कल्याण के लिए अति आवश्यक होते हैं। यातायात के साधन, खाद्य पदार्थों का उत्पादन और वितरण, सचार के साधनों की व्यवस्था आदि कुछ ऐसी गतिविधियाँ हैं जिनमे हडताल का अर्थ पूरे सामाजिक जीवन मे पक्षाघात की स्थिति है। राज्य द्वारा प्रदत्त मूलभूत सेवाओ म हडताल से देश का सम्पूर्ण आर्थिक जीवन चरमरा कर गिर जाएगा।

3 राज्य कर्मचारियो का कर्त्तव्य जनता की सेवा करना है। ये एक प्रकार से सरकार द्वारा जन कल्याण के दायित्व को पूरा करने के लिए भाडे पर रखे गए अभिकर्त्ता होते हैं। ऐसी स्थिति मे हडताल द्वारा विभिन्न सेवाओ को ठप्प करने वाले राज्य कर्मचारी जनहित-विरोधी बन जाएँगे। अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने 1937 म सघीय कर्मचारियो के राष्ट्रीय सघ (National Federation on Federal Employees) के अध्यक्ष को लिखे गए अपने पत्र म इसी तर्क का समर्थन किया था तथा राष्ट्रीय सघ के सविधान के इस प्रावधान के प्रति सन्तोष प्रकट किया था कि किन्हीं भी परिस्थितियो म यह सस्था सयुक्तराज्य की सरकार के विरुद्ध हडताल नहीं करेगी और न उसका समर्थन ही करेगी।

4. जब राज्य द्वारा अपने कर्मचारियों को साधारण नागरिकों की अपेक्षा विशेषाधिकार की स्थिति मे रखा जाता है तथा उनकी सेवा की शर्तें व्यवस्थापन द्वारा सुरक्षित की जाती हैं तो इन कर्मचारियो से भी यह उम्मीद की जाती है कि वे बदले मे सुचारु रूप से सेवाएँ सचालित करें।

5 सरकारी कर्मचारी इतने विश्वसनीय और उत्तरदायी पदों पर होते हैं कि वे चाहें तो पूरे देश को खतरे मे डाल सकते हैं। ऐसी स्थिति मे उन्हे हडताल का अधिकार नहीं दिया जाता चाहिए।

हडताल के अधिकार का औचित्य
(Justification of Right to Strike)

यद्यपि उपरोक्त कारणो म विभिन्न देशों म हडताल विरोधी नीतियाँ अपना कर व्यवस्थापन किए गए हैं किन्तु इनके फलस्वरूप हडताल होने को रोका नहीं जा सका है। असल मे हडताल देश की सामाजिक और आर्थिक दशाओं का परिणाम होती है। कर्मचारियो द्वारा हडताल का सहारा अकारण ही नहीं लिया जाता वरन् अपनी असहनीय कार्य की दशाओं तथा आर्थिक स्थिति के कारण कर्मचारी सगठनों द्वारा हडताल करने का निर्णय लिया जाता है। हडताल विरोधी कानूनों के होते हुए भी विभिन्न देशों मे राज्य कर्मचारियो द्वारा गम्भीर हडतालें की जाती हैं। भारत मे रेल्वे सेवा, डाक कर्मचारी, अध्यापक, पुलिस सेवा आदि मे समय-समय पर देशव्यापी हडतालें होती रही हैं। इन हडतालों मे मूक हडताल, काम बन्द, तोडफोड, हिसात्मक वारदातें, सामाजिक जीवन को अस्त-व्यस्त करना आदि तरीके अपनाए गए हैं। अगस्त, 1957 मे कुछ केन्द्रीय सेवाओं ने जो आम हडताल की धमकी दी तो सरकार को सरकारी सेवाओ मे हडताल को गैर कानूनी सिद्ध करना पडा। केन्द्रीय

नागरिक सेवा नियमों में यह शामिल किया गया कि कोई सरकारी कर्मचारी अपनी सेवा की शर्तों के सम्बन्ध में किसी प्रदर्शन अथवा किसी प्रकार की हड़ताल में भाग नहीं लेगा। इसके बाद भी तथ्य यह बताते हैं कि विभिन्न सेवाओं के कर्मचारियों ने गैर-कानूनी हड़तालें की और सरकार के हड़ताल-विरोधी दण्डों की परवाह न करके जन-जीवन को अस्त-व्यस्त किया। न केवल भारत में वरन् ब्रिटेन, अमेरिका और फ्रांस में भी राज्य कर्मचारियों की हड़तालें होती रही हैं। इंग्लैण्ड में 1926 में आम हड़ताल हुई। प्रधानमन्त्री विल्सन के कार्यकाल में खान मजदूरों ने गम्भीर हड़ताल की। इसी प्रकार संयुक्तराज्य अमेरिका में भी हड़तालों का दौर चलता रहा। 1940 में डेविड जिस्काइण्ड (David Ziskind) ने सरकारी कर्मचारियों की 1116 हड़तालों की सूची बनाई।

स्पष्ट है कि कानूनी प्रतिबन्ध हड़तालों को रोकने का अपर्याप्त साधन है। यदि कर्मचारियों की कार्य की दशाएँ खराब हैं तो कानूनी मान्यता न होते हुए भी हड़तालें होकर रहेंगी। इन हड़तालों का होना तर्कसंगत और सकारण है। इनके पीछे यह औचित्य है कि—(1) इनके माध्यम से कर्मचारी प्रभावशाली तरीके से अपनी माँगें प्रस्तुत करते हैं। (2) हड़तालों के द्वारा राज कर्मचारी अपनी सेवा की शर्तों के सम्बन्ध में सौदेबाजी की उपयुक्त स्थिति में रहते हैं। (3) हड़तालें श्रमिक वर्ग की एकता और चेतना का प्रतीक समझी जाती हैं। (4) हड़तालों द्वारा प्रबन्ध की मनमानी और एकाधिकार पर रोक लगाई जाती है। (5) हड़तालों द्वारा कर्मचारियों के मन के प्रबन्ध-विरोधी विचारों और भावों को अभिव्यक्त होने का अवसर दिया जाता है।

स्पष्ट है कि अभी तक हड़ताल का अधिकार एक विवादपूर्ण विषय है। कुछ का विचार है कि इस विषय में पर्याप्त कानून होते हुए भी हड़तालों को जन-कल्याण विरोधी बनने से रोकने के लिए पुलिस और सेना की सहायता लेना आवश्यक होगा। यदि हड़ताल विरोधी कानून न हों तो स्थिति और भी अधिक खराब हो सकती है, अतः कानून द्वारा हड़तालों को प्रतिबन्धित करके राज कर्मचारियों को जनसेवा के लक्ष्य के प्रति सदैव सजग बनाए रखना चाहिए। दूसरी ओर हड़ताल-विरोधी व्यवस्थापन के आलोचकों का कहना है कि ऐसे कानून प्रभावहीन होते हैं। साथ ही वे अनावश्यक भी हैं। प्रो. स्टॉल के शब्दों में "हड़ताल के अधिकार को अस्वीकार किए बिना ही हड़तालें रोकी जा सकती हैं। असल में वे इस प्रकार हड़ताल के अधिकार को अस्वीकार करने की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली तरीके से रोकी जा सकती हैं।"[1] डॉ. एल. डी. व्हाइट की मान्यता है कि "हड़तालों को रोकने के लिए हड़ताल विरोधी कानून बनाने की अपेक्षा ऐसी रचनात्मक नीति अपनानी चाहिए जो हड़ताल के कारणों को समाप्त करके इस पर रोक लगा सके। इनके मतानुसार ऐसी नीति की कुछ उल्लेखनीय बातें ये हो सकती हैं—

1 It is probable that strikes can be prevented without denying the right to strike. In fact they may even be prevented more effectively than by denial of the Right." —*O. G. Stahl*: op cit., p 254.

1. राज कर्मचारियों को कार्य की न्यायपूर्ण दशाएँ उपलब्ध कराना जो गैर-सरकारी उद्योगों के समकक्ष हों।

2 लोकसेवाओं में रोजगार की शर्तों, दशाओं एवं दायित्वों को प्रबन्ध द्वारा स्पष्टतः घोषित किया जाए।

3 कर्मचारियों के संगठित होने और अपनी कार्य की दशाओं के सम्बन्ध में सामूहिक प्रतिनिधित्व एवं बातचीत करने के लिए उपयुक्त सरकारी अधिकारियों से मिलने के अधिकार को मान्यता दी जाए।

4 ऐसे समुचित यन्त्र की व्यवस्था की जाए जिसमें कर्मचारी और प्रबन्ध दोनों का विश्वास हो तथा जो कर्मचारियों की व्यथाओं को सामूहिक या व्यक्तिगत रूप में सुलझाने का प्रयास कर सकें।

स्पष्ट है कि राज कर्मचारियों को हड़ताल के मार्ग पर अग्रसर होने से रोकने के लिए केवल नकारात्मक नीतियाँ, कानूनी प्रतिबन्ध और सैनिक कार्यवाहियाँ पर्याप्त नहीं हैं वरन् सकारात्मक नीतियाँ अपनाते हुए कर्मचारियों की व्यथाएँ सुनने के लिए उपयुक्त संविधानिक अवसर प्रदान किए जाने चाहिएँ। कर्मचारियों को यह अधिकार दिया जाना चाहिए कि वे अपनी व्यथाएँ उपयुक्त अधिकारियों के सम्मुख प्रस्तुत कर सकें। सरकार के साथ विवाद की स्थिति में पंच-निर्णय की व्यवस्था की जानी चाहिए। यदि कर्मचारियों को यह भरोसा रहा कि उनकी बातें समुचित रूप से सुनी जाएँगी तो हड़तालें नहीं होंगी। डॉ हरमन फाइनर ने हड़ताल सम्बन्धी विश्लेषण का संक्षेप तीन प्रस्तावों के रूप में किया है। उनके अनुसार—

(क) यदि राज्य द्वारा अपने कानून और परम्पराओं के माध्यम से लोकसेवाओं को कुछ अधिकार प्रदान किए जाएँ तो बदले में कर्मचारियों से यह आशा की जा सकती है कि वे सरकार के सम्मुख हड़ताल की असुविधा उत्पन्न नहीं करेंगे।

(ख) राज्य द्वारा सचालित सेवाओं का सम्बन्ध अति आवश्यक और जीवन मरण की प्रकृति के हितों से रहता है। इनके मार्ग में कोई अवरोध नहीं आना चाहिए अन्यथा गम्भीर कठिनाई पैदा हो जाएगी।

(ग) यदि लोकसेवाओं की माँग प्रस्तुत करने के लिए ऐसे अनेक संविधानिक मार्गों की व्यवस्था की जाए जिनके द्वारा इनकी माँगों पर विचार किया जा सके और यदि वे न्यायपूर्ण हैं तो उन्हें सन्तुष्ट भी किया जा सके तो ऐसी स्थिति में हड़ताल अनावश्यक हो जाएगी।

नागरिक सेवकों के राजनीतिक अधिकार
(Political Rights of Civil Servants)

राज्य कर्मचारियों के राजनीतिक अधिकार सम्बन्धी प्रश्न दो विरोधी मूल्यों से प्रभावित हैं। एक ओर प्रजातान्त्रिक सिद्धान्त लोकसेवकों को समान राजनीतिक अधिकार और स्वतन्त्रताएँ प्रदान करने का पक्ष लेते हैं, दूसरी ओर लोकसेवाओं में कार्यकुशलता की माँग इनके राजनीतिक आचरण पर कुछ प्रतिबन्ध लगाने का

समर्थन करती है। एक ओर प्रशासनिक दक्षता यह माँग करती है कि राज्य कर्मचारी निर्दलीय और निरपेक्ष रह कर कार्य करें किन्तु दूसरी ओर उनकी बढ़ती हुई सख्या के कारण यह नीति समाज के एक बहुत बड़े अंश को राजनीतिक दृष्टि से पगु तथा निष्क्रिय बना देगी। इस प्रकार यह एक गम्भीर समस्या है कि राज्य कर्मचारियो की व्यावहारिक निष्पक्षता बनाए रखते हुए उन्हें किस प्रकार सामान्य नागरिक अधिकार सौंपे जाएँ। भारत मे राज्य कर्मचारियों के लिए सरकार की नीति एव कार्यक्रम की आलोचना करना तथा राजनीति मे भाग लेना मना है। उन्हे खुलेआम भाषण देने और समाचार पत्रो मे वक्तव्य देने या पुस्तकें लिखने आदि से प्रतिबंधित किया गया है। कर्मचारियो को राजनीतिक आन्दोलन मे भाग लेने से रोका गया है, यहाँ तक कि कर्मचारी के आश्रित भी ऐसी कार्यवाहियों मे भाग नहीं ले सकते। ससद् तथा विधान सभा के लिए निर्वाचनो मे राज्य कर्मचारी किसी पक्ष का समर्थन या विरोध नही कर सकता और न स्वय चुनाव लड सकता है। उसे केवल मतदान का अधिकार है। जहाँ तक नागरिक स्वतन्त्रताओ को सीमित करने का प्रश्न है उनकी दृष्टि से राज्य कर्मचारी भाषण, लेखन आदि द्वारा अपने विचार प्रगट नहीं कर सकते जब तक कि सरकार से पूर्व स्वीकृति प्राप्त न कर ली जाए।

राज्य कर्मचारियो के राजनीतिक अधिकारो मे मोटे रूप से दो बातें शामिल है—मताधिकार एव राजनीतिक गतिविधियाँ और विधान सभाओं के लिए प्रत्याशी बनना। आजकल प्राय किसी भी देश मे लोकसेवको को मताधिकार से वचित नहीं किया जाता। इसके विपरीत आम जनता से पहले ही उन्हे यह अधिकार प्राप्त हो गया था क्योकि प्रजातान्त्रिक शक्ति प्राप्ति के सघर्ष मे विभिन्न राजनीतिक दलो ने यह आशा की कि लोकसेवको का मत उन्हे प्राप्त हो सकेगा। इस प्रकार लोकसेवकों के मताधिकार को राजनीतिज्ञो द्वारा अपने उद्देश्यो की पूर्ति के लिए प्रोत्साहित किया गया किन्तु लोकसेवको की सख्या बढने पर सामूहिक आर्थिक हितों के प्रति उनके अधिक सजग होने से अब वे राजनीतिज्ञो के मोहरे मात्र नहीं रह गए। फिर भी वर्तमान स्थिति मे यह सम्भव नही था कि लोकसेवकों को दिए गए मताधिकार उनसे वापस लिए जाते। वर्तमान मे लोकसेवको को मताधिकार का प्रयोग करते समय बाहरी हस्तक्षेप और धमकियो के विरुद्ध सुरक्षा दी जाती है। स्वय अधिकारी-वर्ग भी अपनी सत्ता का दुरुपयोग करते हुए अन्य नागरिकों के मताधिकार के निर्णय को प्रभावित नही कर सकता।

फ्राँस मे राजनीतिक गतिविधियाँ
(Political Activities in France)

फ्रांस मे राज्य कर्मचारियो को राजनीतिक गतिविधियो की अधिकतम स्वतन्त्रता प्राप्त है। यहाँ राजनीतिक गतिविधियो को न मना किया जाता है और न प्रतिबन्ध लगाए जाते हैं। केवल एक ही शर्त है कि इनका संचालन तत्कालीन सरकार के समर्थन मे हो तथा इसे देशभक्ति विरोधी, सेना विरोधी, सिण्डीकलवादी तथा धर्म से प्रभावित न माना जा सके। अतीतकाल मे लोकसेवको के राजनीतिक

व्यवहार के सम्बन्ध मे व्यक्तिगत फाइलें बनाई जाती थीं किन्तु अब कौंसिल डी. एटा के क्षेत्राधिकार मे राजनीतिक आधार पर अनुशासनात्मक कार्यवाही करने की शक्ति शामिल नहीं है। इतने पर भी किसी अधिकारी को इतनी स्वतन्त्रता नही दी गई है कि वह सामान्य हित की अवहेलना करते हुए अपनी सीमाओं से बाहर राजनीतिक, दार्शनिक या धार्मिक दृष्टिकोण से व्यवहार करे।

ब्रिटेन मे नागरिक सेवको की राजनीतिक गतिविधिया
(Political Activities of Civil Servants in Great Britain)

ग्रेट ब्रिटेन म 1910 के मपरिषद् आदेश द्वारा लोकसेवा के परम्परागत रिवाजो को स्वीकार करते हुए कहा गया कि असैनिक सेवा के कर्मचारियो को राजनीतिक मामलो मे स्पष्टत भाग नही लेना चाहिए। अनेक विभागीय नियमो द्वारा कर्मचारियो से राजनीतिक सस्थाओ का सदस्य बनने राजनीतिक प्रचार करने या अन्य राजनीतिक प्रदर्शनो मे भाग लेने स मना किया गया। 1925 मे लोक-सेवकों के ससद् और नगरपालिका के लिए प्रत्याशी बनने के प्रश्न पर विचार करने के लिए एक राजकोषीय समिति बनाई गई। समिति के मतानुसार लोकसेवाओ को निष्पक्ष बनाए रखने के लिए इन्हे राजनीति मे दूर रखना आवश्यक है। लोकसेवकों के लिए राजनीतिज्ञो के व्यवसाय को खुला रखना समिति की राय मे खतरे से खाली नहीं था क्योकि ऐसी स्थिति म लोकसेवक अपने कार्यालय की क्षमता का प्रयोग राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए करेगा तथा राजनीतिक शक्ति का प्रयोग कार्यालयी स्वार्थों की पूर्ति के लिए करेगा। 1927 मे कर्मचारियो का ससदीय प्रत्याशी नियम पास हुआ। इसके द्वारा औद्योगिक सस्थाओ के कर्मचारियो को ससदीय प्रत्याशी बनने की शक्तियाँ दी गई। 1948-49 मे नियुक्त मास्टरमैन समिति (Masterman Committee) ने लोकसेवाओं को दो श्रेणियों मे वर्गीकृत किया। प्रथम श्रेणी मे वे राज्य कर्मचारी रखे गए जिनके कार्य में ससद् की सदस्यता से हानि तथा रुकावट आ सकती थी। दूसरी श्रेणी म वे कर्मचारी रखे गए जो सांसद बनने के बाद भी अपने कार्य निर्बाध रूप से कर सकते थे। द्वितीय श्रेणी म तकनीकी एव औद्योगिक कार्य सम्पन्न करने वाले कर्मचारियों को रखा गया। समिति का सुझाव था कि ऐसे कर्मचारियो को चुनाव के लिए एक मास का अवकाश दिया जाए, यदि उनकी सेवा दस वर्ष या उससे अधिक हो चुकी है तो उनको पाँच वर्ष का अवैतनिक अवकाश दिया जाए तथा उसके बाद पुन पद पर ले लिया जाए। समिति के सुझावो के अनुकूल ही ब्रिटेन मे यह व्यवस्था है कि सांसद बनने क बाद औपचारिक तथा कानूनी आवश्यकता के रूप मे कर्मचारी से त्यागपत्र ले लिया जाता है किन्तु इसके कारण उसकी पुनर्नियुक्ति मे किसी प्रकार की बाधा नही आती। अन्य राजनीतिक गतिविधियो की दृष्टि से भी औद्योगिक तथा हाथ से काम करने वाले कर्मचारियों को यह सुविधा दी गई है कि वे किसी राजनीतिक दल के सदस्य हो सकते है, ग्राम सभा मे भाषण कर सकते हैं, लेख लिख सकते हैं दल में पद ग्रहण कर सकते है, उसके हित मे कार्य कर सकते हैं, किन्तु उन पर प्रतिबन्ध यह है

कि वे कार्यालय के गुप्त कानून का पालन करें तथा कार्यालय के प्रांगण या भवन में, सरकारी कार्य करते समय राजकीय पोशाक पहने हुए राजनीतिक कार्यवाहियों अथवा वार्ताओं में भाग न लें। जहाँ तक दूसरी श्रेणी के कर्मचारियों का प्रश्न है उनकी उक्त राजनीतिक गतिविधियों पर प्रतिबन्ध लगाए गए हैं।

ब्रिटिश राज्य कर्मचारियों को स्थानीय स्वशासन के कार्यों में भाग लेने की स्वतन्त्रता दी गई है। 1909 में वहाँ यह नियम है कि विभागीय अधिकारी से आज्ञा प्राप्त करने के बाद राज्य कर्मचारी स्थानीय स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छता, प्रकाश-व्यवस्था आदि स्थानीय समस्याओं के समाधान में सक्रिय सहयोग प्रदान कर सकता है। वर्तमान काल में स्थानीय स्वशासन के कार्यों पर राजनीति का प्रभाव होने के कारण राज्य कर्मचारियों को दी गई इस सुविधा को सदेह की नजर से देखा जाने लगा है।

भारत में नागरिक सेवकों की राजनीतिक गतिविधियाँ
(Political Activities of Civil Servants in India)

भारत में सभी प्रकार के राज्य कर्मचारियों पर केन्द्रीय अथवा राज्य व्यवस्थापिकाओं के लिए प्रत्याशी बनने पर प्रतिबन्ध लगाया गया है। कोई राज्य कर्मचारी अपने पद से त्यागपत्र दिए बिना किसी चुनाव के लिए खड़ा नहीं हो सकता। जहाँ तक अन्य राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने का प्रश्न है, यहाँ प्रत्येक कर्मचारी से आशा की जाती है कि वह राजनीतिक मामलों में मौन रहेगा तथा किसी पक्ष के साथ अपनी सलग्नता प्रदर्शित नहीं करेगा। वह राजनीतिक दल का सदस्य नहीं हो सकता, उसकी कार्यवाहियों में भाग नहीं ले सकता, दल में कोई पद ग्रहण नहीं कर सकता, आम सभा में भाषण नहीं दे सकता, लेख नहीं लिख सकता, चुनाव में किसी प्रत्याशी के पक्ष या विपक्ष में प्रचार नहीं कर सकता। जहाँ तक स्थानीय संस्थाओं के कार्यों में भाग लेने का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में 1919 में नगरपालिका एवं स्थानीय स्वायत्त शासन कानून पारित हुआ है। तदनुसार राज-कर्मचारियों को इन संस्थाओं की सदस्यता से वंचित कर दिया गया है।

संयुक्तराज्य में नागरिक सेवकों की राजनीतिक गतिविधियाँ
(Political Activities of Civil Servants in U S A)

संयुक्तराज्य अमेरिका में संघ सरकार के अधिकारियों एवं कर्मचारियों को जनसेवक माना जाता है। इसलिए उनके आचरण का स्तर अधिक प्रतिबन्धित और गैर-सरकारी रोजगार की अपेक्षा उच्चतर होना चाहिए। यद्यपि सरकार कर्मचारियों के निजी जीवन में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करना चाहती किन्तु उनसे यह आशा अवश्य करती है कि वे ईमानदार, विश्वसनीय, भरोसेमन्द, सच्चरित्र शीलवान और प्रतिष्ठापूर्ण बने रहेंगे। इसी लक्ष्य की दृष्टि से राज्य-कर्मचारियों की राजनीतिक गतिविधियों को प्रतिबन्धित और नियमित किया जाता है। इस दृष्टि से कुछ उल्लेखनीय बातें निम्नलिखित हैं—

(1) मताधिकार एवं निजी मत की स्वतन्त्रता—अन्य नागरिकों की भाँति

राज्य कर्मचारियों को भी मताधिकार की स्वतन्त्रता प्रदान की जाती है। उन्हें ऊपर या बाहर के दबाव या आतंक के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान की जाती है। कोई अधिकारी अपनी शक्ति या स्थिति का दबाव अन्य नागरिकों पर नहीं डाल सकता। भ्रष्टाचार-विरोधी व्यवस्थापन में इस प्रकार के अनेक प्रतिबन्ध लगाए जाते हैं।

प्रत्येक नागरिक सेवक अपनी नौकरी के अतिरिक्त समय में अपना मत प्रकट करने की स्वतन्त्रता रखता है किन्तु उसे रेडियो अथवा समाचार-पत्र में किसी एक पक्ष के प्रति झुककर बात नहीं करनी चाहिए, उसे जनविवाद अथवा प्रचार के कार्यों में नहीं उलझना चाहिए।

(ii) अन्य संस्थाओं में गतिविधियाँ—नागरिक सेवक गैर-राजनीतिक प्रकृति की धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाओं में भाग ले सकते हैं। उन्हें अपनी व्यावसायिक संस्थाओं में भाग लेने के लिए विशेष रूप से प्रोत्साहित किया जाता है। सरकार को यह जाँच करने का पूरा अधिकार है ताकि नागरिक सेवक जिन संस्थाओं में सक्रिय हैं वे प्रतिबन्धित या राज्य-विरोधी तो नहीं हैं। कर्मचारियों द्वारा अपनी *व्यावसायिक संस्थाओं* के माध्यम से अपनी सेवा की शर्तों के हित में व्यवस्थापिका, राजनीतिक दल तथा जनमत को प्रभावित किया जाता है। इनका यह कार्य बहुत कुछ राजनीतिक प्रकृति का बन जाता है।

(iii) राजनीतिक प्रतिबन्ध—*नागरिक सेवकों की राजनीतिक गतिविधियों* पर रोक लगाई जाती है। न्यायमूर्ति होम्स (Justice Holmes) के एक प्रसिद्ध वचन के अनुसार 'एक याचिका करने वाला राजनीतिक चर्चा का संवैधानिक *अधिकार रख सकता है किन्तु उसे एक सिपाही बनने का संवैधानिक अधिकार नहीं* है। कर्मचारी ने निर्धारित शर्तों पर रोजगार स्वीकार किया है इसलिए वह शिकायत नहीं कर सकता।'[1] संघीय व्यवस्थापन द्वारा इस बात को स्पष्ट रूप से *कार्यान्वित किया गया है। हैच अधिनियम (Hatch Act) में मुख्यत इन प्रावधानों* को शामिल किया गया तथा संघीय सेवीवर्ग नियमावली (Federal Personnel Manual) के अध्याय में इन नीतियों एवं नियमों को स्थापित किया गया। *राज्य कर्मचारियों की राजनीतिक गतिविधियों पर लगाए गए प्रतिबन्धों को मुख्यत* चार प्रकारों के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

A) कोई भी राज्यकर्मचारी दलीय प्रचार के लिए तथा दल के कोष के लिए *न स्वयं योगदान करेगा और न अन्य को ऐसा करने के लिए दबाव डालेगा।* यह प्रावधान लोकसेवकों की निष्पक्षता एवं छोटे कर्मचारियों को उच्च अधिकारियों तथा दलीय नेताओं के शोषण से बचाने का प्रयास करता है। नगरपालिका स्तर पर *इस नियम का उल्लंघन किया जाता है, जो एक गम्भीर बात है।*

(B) राज्यकर्मचारी चुनाव प्रचार में भाग न लें। संघीय लोकसेवकों के बारे में यह व्यवस्था की गई है कि कोई भी संघीय कर्मचारी अपने पद की सत्ता या

1 Mc Auliffe V. New Bedford, 155, 216, 1892, 29, NE 517 In Ex parte Curtis 106, U S 371, 1882

प्रभाव का प्रयोग चुनावों या उसके परिणामों को प्रभावित करने के लिए नहीं करेगा। वह किसी राजनीतिक प्रबन्ध या प्रचार में सक्रिय भाग नहीं लेगा। उसे मतदान करने तथा सभी राजनीतिक विषयों एवं प्रत्याशियों पर विचार प्रकट करने का अधिकार होगा।[1]

1939 तथा 1940 में पारित हेच अधिनियमों (Hatch Acts) ने क्रमश सभी संघीय कर्मचारियों तथा संघीय कोष से सहायता प्राप्त लाखों राज्य एवं नगर-पालिका कर्मचारियों को राजनीतिक गतिविधियों से अलग रखने की व्यवस्था की। इन अधिनियमों म गिनाई गई प्रतिबन्धित राजनीतिक गतिविधियाँ मुख्य रूप से ये थी—(i) किसी राजनीतिक सम्मेलन में प्रतिनिधि बनाना, (ii) दलीय अधिकारी या दल की समिति के सदस्य के रूप में कार्य करना, (iii) राजनीतिक रैलियों का सगठन एवं आयोजन, (iv) राजनीतिक भाषणबाजियाँ, (v) दल के लिए चन्दा एकत्रित करना अथवा मत माँगना, (vi) किसी प्रत्याशी, दल या गुट के पक्ष या विरोध में कोई वक्तव्य प्रकाशित करना, (vii) राजनीतिक परेड का संगठन अथवा सक्रिय भागीदारी, (viii) राजनीतिक प्रचार साहित्य का वितरण, (ix) सार्वजनिक कार्यालय के लिए दलीय प्रत्याशा के रूप म प्रयास करना।

(C) राज कर्मचारी राजनीतिक पद के लिए प्रत्याशी नहीं बन सकता। अमेरिका म राजनीतिक प्रत्याशी होना नागरिक सेवक के पद-सम्मान के विपरीत माना जाता है। यही कारण है कि इसके विरुद्ध कठोर कानून बनाए गए हैं। यह सम्भवत लूट प्रणाली की अति के प्रति प्रतिक्रिया का प्रतीक है।

राज्य कर्मचारी का राजनीतिक निर्वाचित पद पर न होना कई कारणों से उपयोगी है। यह लोकसेवाओं की निष्पक्षता की रक्षा करता है। राजनीतिक पद से लौटने पर राज्य कर्मचारी न तो जनता की निगाह म निष्पक्ष रह पाता है और न वास्तव में निष्पक्ष व्यवहार कर पाता है। राजनीति से लौटे कर्मचारी के पद का स्तर तय करना भी कठिन बन जाता है। इसके विपरीत लोकसेवक के राजनीति में भाग लेने के पक्ष म यह कहा जाता है कि नागरिक सेवक मूलत एक नागरिक है तथा बाद में वह एक राज्य कर्मचारी है, अत उसे अन्य नागरिकों की भाँति राजनीति में भाग लेने का पूरा अधिकार होना चाहिए।

(D) राज्य कर्मचारी कोई राजनीतिक सगठन नहीं बना सकते और न ही ऐसे सगठन की सदस्यता बढ़ाने का प्रयास कर सकते हैं। संयुक्तराज्य अमेरिका में सामान्य नियम यह है कि व्यक्तिगत रूप से यदि राज्य कर्मचारी जो कार्य नहीं कर सकते, वह वे संस्था का सदस्य बन कर सामूहिक रूप से भी नहीं कर सकते। कर्मचारी संघों को राजनीतिक कार्यों से अलग रखा गया है किन्तु व्यवहार में कर्मचारी संगठनों के कार्यों को राजनीतिक बनने से रोकना कठिन साबित हुआ है। ये संगठन अपने हितों की पूर्ति के लिए राजनीतिक दाँव-पेंचों में पड़ने से नहीं हिचकते।

---

1 Civil Service Rule, Sec 04, 1

Appendix–1

कार्मिक एवं प्रशासनिक सुधार विभाग

(भारत सरकार गृह मन्त्रालय)

वर्ष 1970 में कार्मिक और प्रशासनिक सुधार विभाग, प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों के आधार पर एक स्वतन्त्र विभाग के रूप में अस्तित्व में आया। यह विभाग गृह मन्त्री के नियन्त्रणाधीन कार्य करता है। इस विभाग के दो पृथक् स्कंध अर्थात् कार्मिक स्कंध और प्रशासनिक सुधार स्कंध हैं। कार्मिक स्कंध कार्मिक प्रशासन के सभी पहलुओं, जिनमें भर्ती, सेवाओं में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण, पदोन्नति, कैरियर प्रबन्ध, देश के भीतर और विदेश में प्रशिक्षण, अनुशासन, मनोबल तथा अन्य सेवा की शर्तों से सम्बन्धित मामलों पर कार्रवाई करता है। यह विभाग इस बात पर भी विशेष ध्यान देता है कि सेवाओं में भ्रष्टाचार के फैलने पर रोक लगाई जाए। प्रशासनिक सुधार स्कंध भारत सरकार के प्रशासनिक ढाँचे में सुधार लाने से सम्बन्धित स्कंध है जो प्रबन्ध सम्बन्धी परामर्शी सेवाएँ तथा आधुनिक प्रबन्ध पद्धतियों के विकास की भी व्यवस्था करता है। इसके अतिरिक्त यह विभाग अखिल भारतीय सेवाओं तथा केन्द्रीय सिविल सेवाओं जैसे भारतीय अर्थ सेवा, भारतीय सांख्यिकीय सेवा तथा केन्द्रीय सचिवालय सेवाओं का नियन्त्रण तथा विनियमन करता है।

यह विभाग संघ लोक सेवा आयोग, केन्द्रीय सतर्कता आयोग, कर्मचारी चयन आयोग, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो, भारतीय लोक प्रशासन संस्थान से सम्बन्धित प्रशासनिक विषयों पर भी कार्रवाई करता है।

यह सुनिश्चित करने की दृष्टि से कि केन्द्रीय सरकारी सेवाओं में शामिल किए गए कार्मिक उचित रूप से कार्य करें तथा सरकार द्वारा निर्धारित नीतियों के अनुसार कार्य करें, प्रगामी तथा कारगर कार्मिक प्रशासन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिए समुचित व्यवस्था की गई है तथा विभाग ने इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी और सचिवालय प्रशिक्षण तथा प्रबन्ध संस्थान, नई दिल्ली जैसे दो प्रशिक्षण संस्थान खोले हुए हैं।

संगठनात्मक दृष्टि से इस विभाग का प्रशासनिक नियन्त्रण सचिव के हाथ में है जिनकी सहायता के लिए अन्य सहयोगी अधिकारियों तथा कर्मचारियों के अलावा दो अवर सचिव तथा छः संयुक्त सचिव हैं। इस विभाग का कार्य निम्नलिखित आठ प्रभागों में बाँटा गया है—

—प्रशासनिक सुधार
—प्रशासन और प्रशासनिक सतर्कता
—स्थापन
—केन्द्रीय सचिवालय सेवा सहित नीति योजना
—सेवाएँ
—स्थापना अधिकारी का कार्यालय
—कर्मचारी कल्याण तथा
—प्रशिक्षण।

इस विभाग के विभिन्न कार्यकलाप संक्षेप में निम्नानुसार हैं—

कार्मिक प्रबन्ध

सम्पूर्ण कार्मिक प्रबन्ध, कार्मिक और प्रशासनिक सुधार के प्रमुख कार्यों में से एक है। इस कार्य में मध्यम और वरिष्ठ स्तर पर समुचित व्यावसायिक और प्रशासनिक पृष्ठभूमि वाले अधिकारियों का स्थान शामिल है जिसमें कार्य की अपेक्षाओं के अनुरूप उनकी दक्षता में तालमेल बिठाया जाता है और देश के बाहर और भीतर कैरियर प्रबन्ध योजना और प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से उनके विकास पर भी ध्यान दिया जाता है।

हमारे कार्यकारी अधिकारियों के लिए इस बात की सदैव आवश्यकता होती है कि उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सम्बन्धित विषयों के व्यावसायिकों के साथ समुचित सम्पर्क स्थापित करके अपने ज्ञान को विकसित करने और समय-समय पर उसे अद्यतन करने के अवसर मिलें, अतः यह विभाग बाहर के विभिन्न विदेशी और अन्तर्राष्ट्रीय अभिकरणों के फैलोशिप के प्रस्तावों और प्रशिक्षण सुविधाओं का उपयोग करके अपने कार्यकारी विकास कार्यक्रमों की कमी को पूरा करता है। इससे हमारे अधिकारियों को अपनी वर्तमान और भावी नियुक्तियों को अधिक प्रभावकारी ढंग से निष्पादित करने में काफी मदद मिलती है।

इस विभाग का एक अन्य कार्य है विदेश नियुक्तियों के लिए भिन्न-भिन्न विशेषज्ञताएँ रखने वाले भारतीय विशेषज्ञों का स्थायी रोस्टर रखना। इस विभाग में जिन विदेश नियुक्तियों पर कार्रवाई की जाती है वे मोटे तौर पर तीन तरह की होती हैं। विभिन्न विषयों के भारतीय विशेषज्ञ (क) अन्य विकासशील देशों की द्विपक्षीय नियुक्तियों के आधार पर, (ख) संयुक्त राष्ट्र और उसके सहबद्ध अभिकरणों की अन्तर्राष्ट्रीय नियुक्तियों के आधार पर और (ग) मित्र देशों को भारतीय सहायता कार्यक्रम के अधीन प्रायोजित किए जाते हैं।

संवर्ग प्रबन्ध

कार्मिक और प्रशासनिक सुधार विभाग का एक मूल कार्य अखिल भारतीय सेवाओं, भारतीय अर्थ सेवा, भारतीय सांख्यिकीय सेवा और केन्द्रीय सचिवालय सेवाओं का नियन्त्रण और विनियमन करना है। सभी राज्यों को मिलाकर भारतीय प्रशासनिक सेवा की संवर्ग पद संख्या तथा पहली जनवरी, 1984 को कार्यरत अधिकारियों की संख्या क्रमशः 5043 तथा 4353 थी। पहली जनवरी, 1983 की स्थिति के अनुसार तत्सम्बन्धी आँकड़े क्रमशः 4859 और 4245 थे।

भारतीय वन सेवा से सम्बन्धित कार्य, जो 31-5-1983 तक इस विभाग में किया जाता था, दिनांक 1 जून, 1983 से कृषि मन्त्रालय, कृषि तथा सहकारिता विभाग को अन्तरित कर दिया गया है।

जहाँ तक कार्मिक और प्रशासनिक सुधार विभाग का सम्बन्ध है, प्राक्कलन समिति ने 'अखिल भारतीय सेवाओं' के विषय का अध्ययन करने का प्रस्ताव किया है। तदनुसार आयोग ने अखिल भारतीय सेवाओं से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं जैसे अखिल भारतीय सेवा अधिनियम, 1951 के अधीन अखिल भारतीय सेवाओं के गठन, समय-समय पर उसमें किए गए संशोधन, यान्त्रिकी, इंजीनियरी, चिकित्सा और स्वास्थ्य जैसे क्षेत्रों में अन्य अखिल भारतीय सेवाओं के गठन के सम्बन्ध में की गई कार्रवाई, प्रत्येक अखिल भारतीय सेवा में प्रत्येक वर्ष रिक्तियों की संख्या निर्धारित करने का तरीका, भर्ती, प्रशिक्षण, कैरियर विकास, परीक्षा का तरीका, पाठ्यक्रम इत्यादि, अखिल भारतीय सेवाओं के सदस्यों की केन्द्रीय सरकार/राज्य सरकारों/संघ राज्य क्षेत्रों/सार्वजनिक क्षेत्रों के उपक्रमों इत्यादि में प्रतिनियुक्ति करने के सम्बन्ध में नीति और पिछले 10 वर्षों के दौरान अखिल भारतीय सेवाओं के कार्यकलापों की जाँच करने के लिए गठित की गई किसी समिति/आयोग की रिपोर्ट पर प्रारम्भिक सामग्री मँगाई गई थी यह अपेक्षित सूचना लोकसभा सचिवालय को भेज दी गई थी। बाद में प्राक्कलन समिति के अध्यक्ष की इच्छानुसार, कार्मिक और प्रशासनिक सुधार विभाग के सचिव ने 16 और 23 फरवरी, 1984 को समिति के समक्ष मौखिक साक्ष्य दिया था।

अर्थशास्त्र और सांख्यिकी के क्षेत्र में विशिष्ट ज्ञान रखने वाले कार्मिकों की सरकार की माँग को पूरा करने के लिए 1961 में भारतीय अर्थ सेवा और भारतीय सांख्यिकी सेवा का गठन किया गया था। यह विभाग मन्त्रिमण्डल सचिव की अध्यक्षता में भारतीय अर्थ सेवा बोर्ड/भारतीय सांख्यिकी सेवा बोर्ड की सलाह से इन सेवाओं पर नियन्त्रण रखता है। विभिन्न मन्त्रालयों/विभागों से अनुरोध किया गया था कि वे ऐसे पदों की समीक्षा करें जिनके कार्य आर्थिक और सांख्यिकी विषयक हैं और जो अभी तक भारतीय अर्थ सेवा/भारतीय सांख्यिकी सेवा से बाहर है। इस कार्रवाई का कुछ लाभ हुआ है और भारतीय अर्थ सेवा/भारतीय सांख्यिकी सेवा के विभिन्न ग्रेडों में असंवर्गित पदों को संवर्ग में शामिल करने के लिए कार्रवाई की जा रही है। इनमें से अधिकांश पदों को समुचित ग्रेडों में संवर्गीकृत कर लिया

गया है और बाकी पदों को सवर्गीकृत किए जाने की कार्रवाई की जा रही है। भारतीय अर्थ सेवा/भारतीय सांख्यिकी सेवा के सन्दर्भ में आर्थिक और सांख्यिकीय कार्यों वाले संवर्ग—बाह्य पदों की स्थिति की लगातार समीक्षा की जाती है।

केन्द्रीय सचिवालय सेवा का अनुभाग अधिकारी ग्रेड तथा सचिवालय ग्रेड और केन्द्रीय आशुलिपिक सेवा के सभी ग्रेड विकेन्द्रीकृत हैं अर्थात् नियुक्तियाँ, पदोन्नति तथा स्थायीकरण सवर्गवार किए जाते हैं। प्रत्येक सवर्ग में एक अथवा एक से अधिक मन्त्रालय, विभाग तथा सहभागी सम्बद्ध कार्यालयों के पद शामिल होते हैं। केन्द्रीय सचिवालय सेवा का चयन ग्रेड तथा ग्रेड—I केन्द्रीकृत हैं अर्थात् नियुक्तियाँ, पदोन्नतियाँ तथा स्थायीकरण पूरे सचिवालय के आधार पर किए जाते हैं। विकेन्द्रीकृत सवर्गों के सम्बन्ध में कार्मिक और प्रशासनिक सुधार विभाग पदोन्नति के क्षेत्र नियत करने के लिए और प्रतियोगिता तथा विभागीय परीक्षाओं के माध्यम से रिक्तियाँ भरने के लिए विभिन्न सवर्गों की आवश्यकताओं का मूल्यांकन करता है और लगातार मानीटर करता रहता है।

नीति और योजना

इसके अन्तर्गत केन्द्रीय सेवाओं के कार्मिक प्रबन्ध एवं प्रशासन और सवर्ग पुनरीक्षा के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित अनुसंधान विषयक कार्यकलापों और उनसे जुड़े हुए अन्य कार्यचालन सम्बन्धी मामले आते हैं।

अनुसन्धान—वर्ष 1970 में कार्मिक और प्रशासनिक सुधार विभाग का गठन करते समय, कार्मिक प्रबन्ध तथा प्रशासन के विभिन्न पहलुओं पर अनुसंधान से सम्बन्धित कार्य को भी इसके मुख्य कार्यों में शामिल किया गया था। यह कार्य विभाग के नीति तथा योजना प्रभाग को सौंपा गया था। तदनुसार नीति तथा योजना प्रभाग जनशक्ति नियोजन, भर्ती, पदोन्नति नीति, कार्य-निष्पादन मूल्यांकन, कॅरियर विकास तथा सवर्ग प्रबन्ध के क्षेत्रों में अनुसन्धान पुनरीक्षा तथा मूल्यांकन के कार्यों में लगा हुआ है। विद्यमान नीतियों तथा प्रक्रियाओं का विवेचनात्मक मूल्यांकन करने और जिन क्षेत्रों की ओर ध्यान दिया जाना आवश्यक है उनका पता लगाने के अलावा, जहाँ अपेक्षित हो सुधार के लिए आवश्यक उपायों का सुझाव देने के प्रयत्न किए जाते हैं।

केन्द्रीय सेवाओं की सवर्ग पुनरीक्षा—नीति और योजना प्रभाग का एक महत्त्वपूर्ण कार्य सगठित केन्द्रीय सेवाओं की सवर्ग संरचना की आवधिक पुनरीक्षा करने से सम्बन्धित है। यह प्रभाग सवर्ग नियन्त्रक प्राधिकारियों को इस विषय पर सलाह दिया करता है। यह सवर्ग पुनरीक्षा के प्रस्तावों पर कार्रवाई करता है और समूह 'क' के केन्द्रीय सेवाओं के सवर्गों की पुनरीक्षा करने के लिए गठित सवर्ग पुनरीक्षा समितियों के लिए सचिवालय के रूप में कार्य करता है। सवर्ग नियन्त्रण प्राधिकारियों को समय-समय पर मार्गदर्शी सिद्धान्त भेजे जाते हैं ताकि सवर्ग पुनरीक्षा प्रस्ताव तैयार करने में उनकी मदद हो सके। पिछले कुछ समय से यह प्रभाग समूह

'ख', 'ग' और 'घ' सवर्गों की सवर्ग पुनरीक्षा के कार्य मे भी अधिकाधिक व्यस्त रहा है।

कार्मिक नीतियाँ

भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति और सेवा शर्तों से सम्बन्धित कार्मिक नीतियाँ तैयार करना कार्मिक और प्रशासनिक सुधार विभाग का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। कार्मिक नीतियाँ निर्धारित करने तथा इनकी व्याख्या करने सम्बन्धी अपने काय म अलग अलग मामलो पर कार्रवाई करने तथा सेवा नियमो और आदेशो की रचना के सम्बन्ध मे सलाह देने के कार्य मे सन्तुलित न्यायपूर्ण तथा लोकोपकारक दृष्टिकोण की आवश्यकता का पूरी तरह ध्यान रखा गया था।

प्रशासनिक सुधार

प्रशासनिक सुधार के क्षेत्र मे इस विभाग के मुख्य कार्य ये हैं—

—प्रशासनिक सुधारो से सम्बन्धित नीतियाँ तैयार करना,

—केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारो, सरकारी क्षेत्र के उपक्रमो तथा स्थानीय निकायो के संगठनो के लिए प्रबन्ध परामर्शात्मक सेवाएँ जुटाना,

—सरकार मे प्रबन्ध सम्बन्धी प्रयासो को बढावा देना तथा उनका विकास करना,

—प्रबन्ध शिक्षा की व्यवस्था करना और प्रशासनिक परिपाटियो तथा आधुनिक प्रबन्ध तकनीकों से सम्बन्धित जानकारी का प्रसार करना।

इन कार्यों को पूरा करने के लिए केन्द्र के विभिन्न मन्त्रालयो तथा राज्य प्रशासनो से लगातार सम्पर्क बनाए रखा जाता है ताकि सुधार के लिए नए क्षेत्रों का पता लगाया जा सके और इस दिशा मे पहले से ही आरम्भ किए गए उपायो के सम्बन्ध से अनुवर्ती कार्रवाई की जा सके। प्रशासनिक सुधार स्कध केन्द्र तथा राज्यों—दोनो स्तरो पर सुधार सम्बन्धी उपायों के बारे मे सूचना-विनिमय कार्यालय का काम भी करता है।

प्रशासनिक सुधारो के क्षेत्र के विशिष्ट क्रियाकलापो को निम्नलिखित शीर्षकों के अधीन रखा जा सकता है—

—प्रबन्ध अध्ययन

—प्रशासनिक सुधार लाने के उपाय

—प्रबन्ध सेवाएँ

—प्रबन्ध शिक्षा

—प्रबन्ध विज्ञान सम्बन्धी प्रकाशन

—नियमो और आदेशो का युक्तिकरण और सरलीकरण

प्रशिक्षण

कार्यक्षमता तथा समग्र प्रशासनिक कार्यकुशलता मे सुधार लाने के लिए प्रशिक्षण के महत्त्व को व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है। यह भी माना गया

है कि विकास योजनाओं तथा कार्यक्रमों की यथासमय अभिपूर्ति के लिए 'प्रशासनिक कार्यक्षमता' को बढाने मे प्रशिक्षण लाभकर हो सकता है। इस सन्दर्भ तथा पृष्ठभूमि मे, प्रशिक्षण प्रभाग, लोक प्रशासन तथा सामान्य प्रबन्ध के क्षेत्र मे प्रशिक्षण नीतियों के प्रतिपादन तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमो के समन्वय मे, निरन्तर लगा रहा है। प्रभाग के उत्तरदायित्वों मे राज्य सरकारो की प्रशिक्षण नीतियो के प्रतिपादन तथा क्रियाकलापो मे प्रशिक्षण की आवश्यकताओं का पता लगाने मे विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार करने तथा आयोजित करने मे उनकी सहायता करना और प्रशिक्षण गतिविधियो, संस्थानो तथा संगठनो को सहायता प्रदान करना शामिल है। लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी तथा सचिवालय प्रशिक्षण प्रबन्ध संस्थान, नई दिल्ली की प्रशासनिक जिम्मेदारी भी इसी प्रभाग पर है।

प्रशिक्षण प्रभाग प्रशिक्षण के क्षेत्र मे अन्तर्राष्ट्रीय अभिकरणों के साथ पारस्परिक सहयोग की दृष्टि से समन्वय रखने के लिए केन्द्रीय सरकार की एक शीर्षस्थ एजेन्सी भी है।

प्रशासनिक सतर्कता

(प्रशासनिक सतर्कता प्रभाग की भूमिका)

कार्मिक और प्रशासनिक सुधार विभाग एक प्रमुख संगठन है जो लोक सेवाओं में अनुशासन बनाए रखने और भ्रष्टाचार का उन्मूलन करने के सम्बन्ध मे सरकारी नीतियो का निर्धारण करता है। इस हैसियत मे यह विभाग विभिन्न मन्त्रालयों/विभागों के अध्यक्षों के कार्यकलापों मे समन्वय स्थापित करता है क्योंकि ये अध्यक्ष अपने-अपने मन्त्रालयों/विभागों मे अनुशासन बनाए रखने और भ्रष्टाचार का उन्मूलन करने के लिए जिम्मेदार होते हैं। यह विभाग केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो और केन्द्रीय सतर्कता विभाग से सम्बन्धित सभी प्रशासनिक और नीति विषयक मामलो पर भी कार्रवाई करता है।

कार्मिक और प्रशासनिक सुधार विभाग भारतीय प्रशासनिक सेवा और केन्द्रीय सचिवालय सेवा (सेवा के ग्रेड–I और उससे ऊपर) के सदस्यो के विरुद्ध सतर्कता सम्बन्धी मामलो की जाँच करने और उन पर निर्णय लेने के लिए भी जिम्मेदार है।

कर्मचारी कल्याण

भारत सरकार की कार्मिक प्रबन्ध नीति को इस प्रकार से निर्धारित किया जाता है कि उससे प्रशासन के सभी स्तरो पर कार्मिक, सुप्रेरित और सन्तुष्ट रह सकें और उसी पृष्ठभूमि मे एक प्रमुख अभिकरण के रूप मे कार्मिक और प्रशासनिक सुधार विभाग सम्पूर्ण देश मे सरकारी कर्मचारियों तथा उनके परिवारों के लिए अनेक कल्याणकारी कार्यकलापो को बढावा देता है। ये कार्यकलाप कर्मचारियो के कार्यालय के कार्य समय मे और कार्यालय समय के बाद उनकी आवासीय कालोनियों मे दोनों ही स्थानों पर उनके कल्याण की भावना से प्रेरित होते हैं।

अन्य विषय.

कार्मिक और प्रशासनिक सुधार विभाग का सम्बन्ध मुख्य, केन्द्रीय सरकार से सम्बन्धित सेवा विषयक मामलों के साथ रहता है। इस विभाग को कतिपय ऐसे मामलों पर भी कार्रवाई करनी होती है जो स्पष्टतः इस श्रेणी में नहीं आते जैसे कि—(i) 1956 में राज्यों के पुनर्गठन के परिणामस्वरूप सेवाओं का एकीकरण और (ii) सार्वजनिक शिकायतों का निवारण। कार्मिक और प्रशासनिक सुधार विभाग एक मॉडल प्राधिकरण है जो सार्वजनिक शिकायतों का निवारण करने के सम्बन्ध में विभिन्न मन्त्रालयों/विभागों का नीति निर्देशन करता है। कार्मिक और प्रशासनिक सुधार विभाग के सचिव सार्वजनिक शिकायतों के आयुक्त भी हैं। लोगों से उनकी शिकायतों के बारे में प्राप्त अभ्यावेदनों/शिकायतों पर सम्बन्धित मन्त्रालयों/विभागों के साथ सम्पर्क किया जाता है जिससे कि उनका निवारण किया जा सके।[1]

---

1 भारत सरकार, कार्मिक और प्रशासनिक सुधार विभाग, गृह मन्त्रालय, वार्षिक रिपोर्ट 1983-84, पृष्ठ 1 से 104.

Appendix—2

प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशें

भारतीय लोक प्रशासन के व्यापक एवं गहन अध्ययन के लिए एक उच्चस्तरीय समिति के गठन का सुझाव सर्वप्रथम स्वर्गीय श्री अशोक चन्द ने प्रधान मन्त्री श्री नेहरू को दिया था। 1958-59 में ऐसी ही मांग तत्कालीन वित्त मन्त्री श्री मोरारजी देसाई ने भी की थी। वर्ग की एक उच्चस्तरीय सुधार समिति की नियुक्ति के पक्ष का समर्थन भारतीय लोक प्रशासन संस्थान द्वारा आयोजित प्रशासनिक सुधारों पर किए गए एक सम्मेलन में किया गया। भ्रष्टाचार विरोध पर सन्थानम प्रतिवेदन के पश्चात् यह मांग जनता एवं संसद् में बलवती हुई। 1964 में जब केन्द्रीय सरकार ने गृह मन्त्रालय में पृथक् प्रशासनिक सुधार आयोग की स्थापना की तो प्रशासनिक सुधार के प्रश्न का राष्ट्रीय महत्व अधिक स्पष्ट होकर सामने आया। इन्हीं परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए भारत सरकार ने प्रशासनिक सुधार आयोग की स्थापना का निर्णय लिया तथा 5 जनवरी, 1966 को भारत सरकार द्वारा भारतीय प्रशासनिक सुधार आयोग की नियुक्ति का आदेश प्रसारित किया गया। प्रशासनिक सुधार आयोग ने अपने विभिन्न प्रतिवेदन जिन सिद्धान्तों को दृष्टिगत रखते हुए दिए हैं उनका उल्लेख गृह मन्त्रालय के 5 जनवरी, 1966 के प्रस्ताव में कर दिया गया था—

1 प्रशासनिक न्यूनता या उपयोगिता की मात्रा अथवा प्रसार को ध्यान में रखा जाए, अर्थात् आयोग सिफारिश करते समय यह विचार करें कि प्रशासन मन्त्री अपनी पूरी क्षमता का उपयोग करते हुए भी उन्हें प्राप्त कर सकेगा अथवा नहीं।

2 प्रशासनिक व्यवस्था तथा प्रक्रिया को विकास कार्यों की आवश्यकताओं अथवा मांगों के अनुरूप ढाला जाए।

3 प्रस्तावित सुधारों को प्रशासनिक, सामाजिक एवं राजनीतिक चुनौतियों के अनुरूप बनाया जाए।

4 कार्यकुशलता सुधारने, मितव्ययिता लाने तथा प्रशासनिक स्तर को ऊँचा उठाने की आवश्यकता को ध्यान में रखा जाए।

5 प्रशासनिक परिवर्तन एवं नवीनीकरण तथा प्रशासनिक स्थायित्व के बीच सन्तुलन बनाए रखा जाए।

6 प्रशासन के प्रति जनता की प्रतिक्रिया को सुधारने की आवश्यकता को स्वीकार किया जाए।

7 प्रशासन मे सुधारो की आवश्यकता की गम्भीरता को प्रशासको को समझाया जाए ।

इन सिद्धान्तों को दृष्टिगत रखते हुए आयोग ने अपने साढे चार साल के कार्यकाल के समय मे भारत सरकार को 20 प्रतिवेदन प्रस्तुत किए हैं जो इस प्रकार हैं—

1 जन-अभियोग निराकरण की समस्याएँ	1966
2 नियोजन-तन्त्र का अन्तरिम प्रतिवेदन	1967
3 लोक उद्यम	1967
4 वित्त, लेखा एव अंकेक्षण	1968
5 आर्थिक प्रशासन	1968
6 भारत सरकार का प्रशासन तन्त्र एव कार्य-प्रणाली	1968
7. जीवन बीमा निगम	1968
8 नियोजन तन्त्र (अन्तिम प्रतिवेदन)	1968
9 केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर प्रशासन	1969
10 केन्द्रशासित प्रदेशों तथा नेफा का प्रशासन	1969
11 कार्मिक प्रशासन	1969
12 वित्तीय तथा प्रशासनिक शक्तियों का प्रतिवेदन	1969
13 केन्द्र-राज्य सम्बन्ध	1969
14 राज्य-प्रशासन	1970
15 लघु स्तर प्रदेश	1970
16 रेल्वे	1970
17. राजकोष	1970
18. रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया	1970
19 डाकतार	1970
20 वैज्ञानिक विभाग	1970

इन सबके अतिरिक्त आयोग द्वारा नियुक्त विभिन्न अध्ययन दलो ने 33 प्रतिवेदन प्रस्तुत किए। आयोग द्वारा प्रस्तुत सेवीवर्ग प्रशासन सम्बन्धी तथा प्रशासन तन्त्र एव उसकी कार्य-प्रणाली सम्बन्धी मुख्य सिफारिशों को सर्वश्री पी डी शर्मा, बी एम. शर्मा एव नीलम ग्रोवर ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

(A) सेवीवर्ग प्रशासन से सम्बन्धित आयोग की सिफारिशें

प्रशासनिक सुधार आयोग ने सेवीवर्ग प्रशासन के विभिन्न पहलुओं पर समग्रता से विचार किया। केन्द्रीय एव अखिल भारतीय सेवाओं में कार्य, वर्गीकरण, भर्ती, नीति, प्रशिक्षण, पदोन्नति तथा सेवा एव अनुशासन सम्बन्धी शर्तों के बारे में आयोग की महत्त्वपूर्ण सिफारिशें इस प्रकार हैं—

1. आयोग ने कहा है कि भारत सरकार के कार्यों को विभिन्न भागो में

निश्चिता से बाँटा जाना आवश्यक है। एक ही प्रकार की प्रवृत्ति के कार्यों को एक ही क्षेत्र में वर्गीकृत कर सगठित कर दिया जाना चाहिए।

2 अधीन सचिव तथा उपसचिव के पदों के बारे में यह निर्धारित कर दिया जाए कि ये पद केवल भारतीय प्रशासनिक सेवा के कुछ विशिष्ट अधिकारियों द्वारा अथवा अन्य विशेष प्रकार के विशेषज्ञों द्वारा ही निर्देशित हो सकेंगे। अधीन सचिव के वे पद जो किसी विशेष शाखा के अन्तर्गत नहीं आते उन्हें केवल पदोन्नति द्वारा भरा जा सकेगा।

3 उपयुक्त व्यक्तियों के चुनाव के लिए एक समिति नियुक्त की जानी चाहिए, जिसका अध्यक्ष केन्द्रीय लोकसेवा आयोग का एक सदस्य हो। इस समिति में दो उपसचिव होंगे। चुनाव के लिए लिखित परीक्षा तथा साक्षात्कार प्रणालियाँ अपनाई जानी चाहिए तथा नियुक्ति से पूर्व सचिव तथा उसके समकक्ष पदों के अधिकारियों को प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

4 प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों की क्रियान्विति के लिए गृह मन्त्रालय के कार्मिक विभाग को जिम्मेदार ठहराया जाना चाहिए।

5 भर्ती नीति के सम्बन्ध में प्रशासनिक आयोग का कहना था कि प्रथम श्रेणी के सदस्य तथा भारतीय प्रशासनिक सेवाओं के सदस्य प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से चुने जाने चाहिए। परीक्षा के लिए निर्धारित आयु सीमा अधिक से अधिक 28 वर्ष हो तथा एक व्यक्ति को दो से अधिक अवसर प्रदान नहीं किए जाएँ। प्रतियोगियों की योग्यता परीक्षण के लिए एक बोर्ड गठित किया जाए, जो कि उनकी लिखित परीक्षा ले, किन्तु अन्तिम निर्णय केवल केन्द्रीय लोकसेवा आयोग का ही माना जाए। आयोग ने सुझाव दिया है कि इस पद्धति को पहले तीन वर्षों तक अपनाया जाए और यदि बाद में उचित जान पड़े तो इसमें पर्याप्त एवं समुचित संशोधन किए जाएँ।

6 सेवाओं में प्रथम श्रेणी के चालीस प्रतिशत पद अनिवार्य रूप से पदोन्नति द्वारा ही भरे जाने चाहिए। द्वितीय श्रेणी की सेवाओं में भी अधिक से अधिक पदोन्नति चयन शर्तों के रूप में स्वीकार की जाए।

7 भर्ती करने वाली समितियों के सम्बन्ध में आयोग का मत था कि लोकसेवा आयोग के सदस्यों के चुनाव के लिए लोकसेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सम्बन्धित राज्यपाल से परामर्श लिया जाना उपयोगी होगा। केन्द्रीय लोकसेवा आयोग के अध्यक्ष का चुनाव अधिकांशत राज्यों की लोकसेवा आयोग के सदस्यों में से ही किया जाना उचित होगा। प्रत्येक राज्य के लोकसेवा आयोग में एक सदस्य दूसरे राज्य से लिया जाना चाहिए तथा उसकी शैक्षणिक योग्यता भी कम से कम स्नातक स्तर की होनी चाहिए। जो सदस्य केवल चुना जाए वह सरकारी कार्यक्षेत्र में कम से कम दस वर्ष तक कार्य कर चुका हो तथा उसका स्तर विभागीय अध्यक्ष अथवा उसके समकक्षीय पद का हो। यदि गैर-सरकारी व्यक्ति लिया जाए तो उसे शिक्षण कार्य अथवा वकालत आदि का अपेक्षित अनुभव आवश्यक रूप से हो। केन्द्र में जो

शक्तियाँ केन्द्रीय लोकसेवा आयोग को प्रदान की गई हैं वे ही शक्तियाँ राज्यों के लोकसेवा आयोग को भी सौंपी जाएँ।

8 तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों की भर्ती सरकार के विभिन्न विभाग एक ही एजेन्सी के माध्यम से करें तथा तकनीकी पदों के लिए एक बोर्ड बनाया जाए।

9 सुधार आयोग ने सेवीवर्ग के प्रशिक्षण पर अत्यधिक बल दिया है। आयोग का मत था कि अनुभवी एवं प्रशिक्षण दल प्रशासकों द्वारा ही प्रशिक्षण नीतियाँ एवं लक्ष्य निर्धारित करवाए जाएँ। सभी मन्त्रालयों को प्रशिक्षण में स्थान दिया जाए और प्रशिक्षणकर्त्ता पूर्णकालीन सदस्य हों। प्रशासन की राष्ट्रीय अकादमी का आधारभूत कोर्स प्रथम श्रेणी की सभी सेवाओं के लिए अनिवार्य किया जाए तथा आवश्यकतानुसार उसके पाठ्यक्रम में परिवर्तन भी किए जाएँ। प्रत्येक प्रशिक्षणार्थी को 15 दिन ग्रामीण क्षेत्र में रहना चाहिए जिससे कि वह गाँव की परिस्थितियों से परिचित हो सके। सरकार को चाहिए कि वह गैर-सरकारी व्यक्तियों, अनुभवी प्रशासकों तथा विशेषज्ञों की एक विशिष्ट समिति गठित करे, जो आधारभूत पाठ्यक्रम में समय-समय पर संशोधन करती रहे। सभी भारतीय प्रशासनिक सेवाओं के सदस्यों के लिए फील्ड ट्रेनिंग की व्यवस्था होनी चाहिए तथा इसे परिस्थिति के अनुसार राज्यों में भी लागू किया जा सकता है। प्रशिक्षण अवधि में अधिकारियों को ऐसे वरिष्ठ अधिकारियों के साथ कार्य में लगाना चाहिए जिनके आचरण से वे कुछ सीख सकें और प्रेरणा ले सकें। केन्द्रीय सचिवालय सेवाओं के अधीन सचिवों के लिए बारह सप्ताह की अवधि का प्रशिक्षण कार्यक्रम होना चाहिए। सभी प्रकार की प्रशिक्षण व्यवस्थाओं में नीति तथा योजनाओं से सम्बन्धित जानकारी अवश्य दी जानी चाहिए।

तृतीय तथा चतुर्थ श्रेणी की वर्तमान प्रशिक्षण व्यवस्था को पुनर्गठित किया जाना चाहिए, चूँकि नवीन परिस्थितियों के अनुसार उसमें सुधार लाया जाना आवश्यक है। केन्द्रीय प्रशिक्षण डिवीजन के प्रशिक्षण के बारे में नए शोध किए जाएँ तथा प्रशिक्षण पद्धति में भी सुधार किया जाए।

10 प्रशासनिक सुधार आयोग ने पदोन्नति-नीति में भी सुधार लाने की सिफारिश की है। आयोग के मतानुसार जहाँ विभागीय पदोन्नति समितियाँ नहीं हैं, वहाँ उसका गठन किया जाना आवश्यक माना जाए। इस समिति का अध्यक्ष पर्याप्त उच्च स्तर का अधिकारी होना चाहिए। इस समिति में एक सदस्य ऐसे विभाग से लिया जाए जिसके अधीन पदोन्नति सम्बन्धी मामले न हों।

प्रत्येक वर्ष के अन्त में जब किसी अधिकारी के कार्य का मूल्यांकन किया जाए तो उस प्रतिवेदन के साथ एक 300 शब्दों का सार लेख सम्मिलित किया जाना चाहिए। इस सार लेख में कर्मचारी द्वारा अपने कार्यों एवं विशेष उपलब्धियों का विवरण दिया जाना चाहिए। यह सार लेख गोपनीय प्रतिवेदन का ही एक भाग माना जाना चाहिए तथा अन्तिम मूल्यांकनकर्त्ता वरिष्ठ अधिकारी के पास भिजवाना

चाहिए। प्रथम अधिकारी यदि चाहे तो इस सार लेख पर अपना मत भी अंकित कर सकता है। गोपनीय प्रतिवेदन में मूल्यांकन में केवल तीन श्रेणीकरण किए जाने चाहिएँ–(1) असाधारण रूप से पदोन्नति की योग्यता, (2) पदोन्नति की सामान्य योग्यता, तथा (3) वर्तमान में पदोन्नति के लिए अयोग्यता। ऐसी श्रेणी बनाने की आवश्यकता नहीं है जिसमें किसी अधिकारी को पदोन्नति के लिए स्थाई रूप से अयोग्य माना जाए। प्रथम श्रेणी में केवल 5 से 10 प्रतिशत तक की सीमा के कर्मचारियों को ही लिया जाए, साथ ही उनके असाधारण कार्य का उल्लेख भी किया जाए। वार्षिक प्रतिवेदन को गोपनीय रिपोर्ट (कॉनफीडेन्शल रिपोर्ट) न कह कर कार्य निष्पत्ति प्रतिवेदन (परफोर्मेन्स रिपोर्ट) कहना समुचित होगा।

आयोग ने यह मत व्यक्त किया है कि द्वितीय श्रेणी के अधिकारियों को प्रथम श्रेणी में पदोन्नत करने के लिए उपलब्ध आधे स्थानों को तो वर्तमान प्रक्रिया द्वारा ही भरा जाना चाहिए किन्तु शेष आधे स्थानों के लिए प्रतियोगी परीक्षाएँ ली जानी चाहिएँ। द्वितीय श्रेणी के जो अधिकारी एक निर्धारित समय तक सेवा कार्य कर चुके हैं तथा अभी पदोन्नति के लिए अयोग्य नहीं ठहराए गए हैं, उन्हें इन परीक्षाओं में शामिल होने का अवसर दिया जाए। परीक्षा के आधार पर प्रत्याशियों की 'ए', 'बी तथा सी' नाम से तीन श्रेणियाँ बनाई जा सकती हैं। 'सी' श्रेणी में केवल वे ही प्रत्याशी रखे जाएँ जो अभी पदोन्नति के योग्य नहीं हैं। 'बी' में वे अधिकारी आने चाहिए जो बौद्धिक स्तर के अनुकूल पाए गए हैं तथा 'ए' में असाधारण योग्यता के अधिकारी को सम्मिलित किया जाए। इन श्रेणियों के आधार पर एक सूची बनाई जा सकती है। एक ही श्रेणी के प्रत्याशियों को सूचीबद्ध करते समय उनकी वरिष्ठता का यथेष्ट ध्यान अवश्य रखा जाए। चूंकि ऐसे कर्मचारियों की संख्या काफी होती है, जो तृतीय श्रेणी से द्वितीय श्रेणी में पदोन्नत किए जाते हैं, अतः ऐसे 50 प्रतिशत पदों पर पदोन्नति के लिए प्रतियोगी परीक्षाएँ प्रारम्भ करना विवेकसंगत होगा। शेष 50 प्रतिशत पदों पर पदोन्नति के लिए वर्तमान प्रणाली को ही चालू रखा जाए।

11 प्रशासनिक सुधार आयोग ने सेवीवर्ग प्रशासन से सम्बन्धित अन्य सामान्य पहलुओं पर भी अपनी अनुशंसाएँ दी हैं। आयोग ने सुझाव दिया है कि 15 वर्ष की सेवा पूरी करने के उपरान्त एक सरकारी कर्मचारी को सेवा निवृत्त होने का विकल्प दिया जाना न्यायसंगत है और उसे तदनुसार पेन्शन दी जा सकती है। इसके साथ ही जो कर्मचारी पदोन्नति नीति से किसी कारणवश असन्तुष्ट हैं उनकी सेवा यदि दस वर्ष की अवधि की हो चुकी है तो उन्हें समान सेवा शर्तों पर सेवा निवृत्त हो जाने की वैकल्पिक सुविधा प्रदान की जानी चाहिए। जहाँ लोकसेवकों को उनकी किसी अक्षमता अथवा कार्यकुशलता के कारण 50 वर्ष की आयु पूरी करने पर अथवा 25 वर्ष की सेवा अवधि की समाप्ति पर सेवा निवृत्त करना हो वहाँ ऐसे अधिकारियों की एक सूची बनाने के लिए एक उच्च अधिकार प्राप्त समिति गठित की जानी चाहिए। यदि कोई अस्थाई कर्मचारी लगातार दस वर्ष या इससे

अधिक समय तक सरकारी सेवा करता रहा हो तो उसे स्थाई कर्मचारी की भांति पेन्शन का पात्र एवं अधिकारी माना जाना चाहिए। इस समय पेन्शन की मात्रा पिछले तीन वर्ष की सेवा में प्राप्त औसत वेतन का 3/8 भाग है, जिसे बढ़ाकर 3/6 किया जाना न्यायसंगत होगा। वर्तमान में यह भी प्रतिबन्ध है कि सेवा निवृत्त होने के बाद कोई भी कर्मचारी दो वर्ष तक किसी व्यावसायिक अथवा अन्य स्थान आदि में कार्य नहीं कर सकता। यह प्रतिबन्ध समाप्त किया जा सकता है।

आयोग ने सेवीवर्ग के आचरण तथा अनुशासन सम्बन्धी नियमों पर विचार व्यक्त करते हुए कहा कि अभी तक भर्ती एवं सेवा की अन्य शर्तें संवैधानिक आधार पर राष्ट्रपति द्वारा बनाई जाती रही है। यह व्यवस्था चालू रखी जा सकती है किन्तु इन्हें संसद के समक्ष प्रस्तुत करना भी अनिवार्य किया जाना चाहिए। राज्यों में भी इसी प्रकार की व्यवस्था अपनाई जा सकती है।

प्रत्येक सरकारी कर्मचारी सेवा में प्रवेश लेने से पहले यह वचन दे कि वह किसी भी स्थिति में हड़ताल पर नहीं जाएगा। आयोग के मतानुसार सरकारी सेवा में भर्ती होने वाले प्रत्येक व्यक्ति को स्पष्टतः समझ लेना चाहिए कि वह हड़ताल के माध्यम से किसी लक्ष्य को प्राप्त करने का अधिकारी नहीं है। सेवा में प्रवेश के समय कर्मचारी से यह प्रतिज्ञा-पत्र लिखवाया जाना चाहिए कि वह हड़ताल में शामिल नहीं होगा। इस घोषणा का मनोवैज्ञानिक प्रभाव उपयोगी होगा। एक प्रस्ताव द्वारा सरकारी सेवकों के सरकार-विरोधी प्रदर्शनों आदि पर भी रोक लगा दी जानी चाहिए। विरोध प्रदर्शनों को एक कानूनी अपराध घोषित किया जाना चाहिए और इस प्रकार की गतिविधियों के लिए दण्ड-व्यवस्था होनी चाहिए।

किसी भी सरकारी कर्मचारी को तीन माह से अधिक लम्बी अवधि के लिए निलम्बित नहीं किया जाना चाहिए। यदि उसका केस अदालत में हो तो यह अवधि लम्बी हो सकती है।

इस प्रकार प्रशासनिक सुधार आयोग ने कार्मिक प्रशासन वर्ग के भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति तथा आचरण और अनुशासन से सम्बन्धित विभिन्न स्थितियों पर विचार कर उनमें सुधार हेतु जो अनुशंसाएं प्रस्तुत की हैं, वे प्रशासन की कार्य-कुशलता एवं उद्देश्योन्मुखता की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं गम्भीर हैं।

(B) भारत सरकार का प्रशासन तन्त्र तथा उसकी कार्य प्रणाली

भारत सरकार की प्रशासनिक व्यवस्था एवं प्रशासन तन्त्र की कार्य प्रणाली पर भी प्रशासनिक सुधार आयोग ने कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए हैं, इनमें से कुछ निम्नलिखित हैं—

1. केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में प्रधान मन्त्री सहित मन्त्रियों की कुल संख्या 17 होनी चाहिए तथा मन्त्रि-परिषद् में यह संख्या अधिक से अधिक 45 तक हो सकती है। स्वयं सरकार ने भी यह स्वीकार किया है कि केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल का आकार छोटा हो किन्तु वह एक निश्चित संख्या निर्धारित करने के पक्ष में नहीं है।

2 संसदीय सचिव का पद समाप्त कर दिया जाना चाहिए। इस सिफारिश को भारत सरकार ने इसलिए नहीं माना कि संसदीय सचिव का पद उच्च उत्तरदायित्वों को वहन करने की क्षमता बढ़ाता है। इसी प्रकार इस पद को भावी उपमन्त्रियों, राज्य मन्त्रियों तथा मन्त्रियों के लिए अनुभव प्राप्त करने की एक महत्त्वपूर्ण सीढ़ी कहा जा सकता है।

3 सरकारी प्रशासन तन्त्र को सशक्त संगठनात्मक सम्बल प्रदान करने के लिए आयोग चाहता था कि उपप्रधान मन्त्री का पद औपचारिक रूप से स्वीकार कर लिया जाए। यह उपप्रधान मन्त्री ऐसे सभी विषय एवं कार्यों को सम्भाल सकता है जो प्रधान मन्त्री द्वारा समय समय पर उसे प्रत्यायोजित किए जाएँ। इस सम्बन्ध में सरकार का मत यह रहा है कि उपप्रधान मन्त्री का पद यदि स्थाई रूप से गठित किया जाता है तो आवश्यक जटिलता उत्पन्न हो सकती है। अत इस पद की रचना प्रधानमन्त्री की इच्छा पर छोड़ दी जानी चाहिए।

4 सामान्यत प्रधान मन्त्री प्रत्यक्ष रूप से किसी भी विभाग के लिए उत्तरदायी न होकर केवल निर्देशन समन्वय तथा पर्यवेक्षण का कार्य करे। सरकार के मत में यह प्रधान मन्त्री के स्वविवेक पर निर्भर रहना चाहिए कि वह भिन्न-भिन्न विभागों को अपने प्रत्यक्ष नियन्त्रण में रखना चाहता है।

5 सरकार द्वारा किए जाने वाले सभी महत्त्वपूर्ण निर्णय लिखित में अभिलेखित किए जाने चाहिए, विशेषतया ऐसी स्थिति में जबकि सरकार की नीति किसी ऐसे मामले में पूर्णत स्पष्ट न हो तथा किसी महत्त्वपूर्ण विषय पर मन्त्री तथा सचिव विभिन्न मत रखते हों। सरकार ने इस सिफारिश को सिद्धांतत स्वीकार कर लिया है।

6 यदि लोकसेवक मन्त्री द्वारा दिए गए निर्देशों का उल्लंघन करें, सरकार की स्वीकृत नीतियों के विरुद्ध आचरण करें अथवा बुरे इरादों से कार्य करें तो ऐसी स्थिति में मन्त्री अपने अधीन लोकसेवकों के कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जाना चाहिए। मन्त्रीय उत्तरदायित्व के सिद्धान्त में इस प्रकार आमूल-चूल परिवर्तन करने की सिफारिश को सरकार ने स्वीकार नहीं किया है तथा इस परम्परा में आस्था प्रकट की है जिसके अन्तर्गत मन्त्री अपने अधीन लोकसेवकों के हर कार्य के लिए उत्तरदायी ठहराया जाता है।

7 आयोग की मान्यता थी कि संविधान में उल्लिखित राज्य सूची के विषयों के सम्बन्ध में केन्द्रीय मन्त्रालय आवश्यक नेतृत्व प्रदान करे राष्ट्रीय नियोजन-निरूपण में सहायता प्रदान करे, राष्ट्रीय स्तर पर अनुसन्धान करे तथा आधारभूत ढग के प्रशिक्षण की व्यवस्था करे। उन्हें चाहिए कि वे कार्यक्रम के मूल्यांकन में पहल करें, राज्यों के बीच अधिक विचार-विनिमय सम्भव बनाएँ तथा आवश्यक समन्वय भी स्थापित करें। सरकार ने इस सिफारिश को सिद्धान्तत स्वीकार कर लिया है।

8 आयोग चाहता था कि भारत सरकार में एक पृथक् कार्मिक विभाग की

स्थापना की जाए जो एक सचिव के अधीन रहकर कार्य करे। यह विभाग केन्द्रीय तथा अखिल भारतीय सेवाओं के सम्बन्ध में कार्मिक नीतियों का निरूपण करे तथा समय-समय पर उनका मूल्यांकन भी करे। उसमें यह अपेक्षा की जाती है कि वह मानव-शक्ति का नियोजन करे कार्मिक प्रशासन पर शोध करे। सघीय लोकसेवा आयोग राज्य सरकारों तथा व्यावसायिक सगठनों आदि से सम्पर्क एव सम्बन्ध स्थापित करे। सरकार ने इस सिफारिश की उपयोगिता को स्वीकार कर पृथक् कार्मिक विभाग की स्थापना कर दी है। सरकारी निर्णय के अनुसार कार्मिक विभाग मन्त्रिमण्डल सचिव के सामान्य निर्देशन में कार्य कर रहा है तथा प्रधान मन्त्री स्वय इस विभाग का पर्यवेक्षण करता है।

इन सुझावों के अतिरिक्त प्रशासनिक सुधार आयोग ने केन्द्रीय विभागों तथा मन्त्रालयों में सामान्य परिवर्तनों के लिए अन्य अनुशसाएँ भी की हैं जिनमें से अनेक स्वीकार की जा चुकी हैं। उपर्युक्त विवेचना में प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा प्रस्तुत विभिन्न प्रतिवेदनों में से केवल मुख्य प्रतिवेदनों की कुछ महत्वपूर्ण सिफारिशों की व्याख्या मात्र की गई है। यदि प्रशासनिक सुधार आयोग के विभिन्न प्रतिवेदनों का विस्तार से विश्लेषण किया जाए तो यह स्पष्ट होगा कि जिन सिद्धान्तों पर आयोग ने बल दिया है उनमें से अधिकांश लोक-प्रशासन की परम्परावादी विचार-धाराओं से सम्बन्धित हैं। आयोग ने प्रशासनिक कुशलता, समन्वय, प्रशासकीय शक्तियों के प्रतिविधान, नवीन प्रशासनिक प्रक्रियाएँ, विकेन्द्रीकरण तथा विशेषीकरण आदि के महत्व पर पर्याप्त बल दिया है। प्रशासन के मानवीय पहलुओं को सुधारने की आवश्यकता पर भी आयोग ने अपने कार्मिक प्रशासन के प्रतिवेदन में विस्तार से चर्चा की है। *यद्यपि यह कहा जा सकता है कि इस पक्ष पर उतना बल नहीं दिया* गया जितना कि अपेक्षित था। आयोग ने अपने 20 प्रतिवेदनों में भारतीय प्रशासन के लगभग सभी कार्यक्षेत्रों की समीक्षा की है तथा इन सभी क्षेत्रों में सुधार हेतु रचनात्मक सुझाव भी दिए हैं। विश्लेषण की गहनता के बावजूद भी आयोग यह स्पष्ट नहीं कर सका कि विभिन्न स्तरों पर (जैसे जिला, राज्य तथा केन्द्र स्तरों पर) प्रशासनिक सुधार के कार्यक्रमों को किस प्रकार समन्वित किया जाएगा जिससे कि वे सहयोगात्मक ढग से कार्य कर सकें।

आयोग की सिफारिशों का कार्यान्वयन

प्रशासनिक सुधार आयोग ने अपनी 20 रिपोर्टों में 578 सिफारिशें की थी। इनमें से 51 सिफारिशें पूर्णत और 8 सिफारिशें अशत राज्य सरकारों से सम्बन्धित थी। शेष 527 (जिनमें 8 अधूरी सिफारिशें शामिल थी) सिफारिशें केन्द्रीय सरकार से सम्बन्धित थी। मार्च, 1977 तक सरकार ने 518 सिफारिशों पर पूरी तरह से और 3 सिफारिशों पर आंशिक तौर पर निर्णय ले लिए थे। बाद के वर्षों में शेष सिफारिशों में से अधिकांश पर पहले जनता सरकार ने और तत्पश्चात् पुन काँग्रेस सरकार ने निर्णय ले लिए।

प्रश्नावली

(University Questions)

अध्याय 1 (नौकरशाही इसकी प्रकृति और अवधारणाएँ, आधुनिक प्रवृत्तियाँ, मार्स्टिन मार्क्स के विशेष सन्दर्भ में नौकरशाही के रूप)

1 'नौकरशाही" से आप क्या समझते हैं ? इसके गुणों एवं दोषों की विवेचना कीजिए।

What do you understand by Bureaucracy ? What are its merits and demerits ?

2 नौकरशाही से आप क्या समझते हैं ? मार्स्टिन मार्क्स द्वारा दिए गए इसके वर्गीकरण की व्याख्या कीजिए। (1981)

What do you understand by Bureaucracy ? Discuss its classification as given by Morstein Marx

3 नौकरशाही की परिभाषा बताइए। मार्स्टिन द्वारा बताए गए नौकरशाही के गुण एवं दोषों की विवेचना कीजिए। (1981)

Define Bureaucracy Discuss its merits and demerits as outlined by Morstein Marx

4 "एक समाज कल्याण राज्य में जनतन्त्र एक धोखा है, वास्तव में शासन तो नौकरशाही का रहता है।" इस कथन की विस्तृत व्याख्या करते हुए आधुनिक प्रशासन में नौकरशाही के महत्त्व को समझाइए।

"In a social welfare state democracy is a misnomer It is the Bureaucracy that really rules" Elucidate the statement and show the importance of Bureaucracy in Modern Administration

5 नौकरशाही से आपका क्या तात्पर्य है ? क्या नौकरशाही प्रजातन्त्र के लिए खतरा उत्पन्न करती है ? (1982)

What is meant by Bureaucracy ? Do you think it poses a threat to democracy ?

6 नौकरशाही का अर्थ बताइए तथा इसकी प्रकृति व लक्षणों का भी वर्णन कीजिए।

Define Bureaucracy and analyse its nature and attributes.

7 आधुनिक नौकरशाही के लक्षणों का उल्लेख कीजिए। नौकरशाही के सिद्धान्त के विकास में मार्स्टिन मार्क्स के योगदान का परीक्षण कीजिए।

Give the characteristics of Modern Bureaucracy Examine the contribution of Morstein Marx to the development of the theory of Bureaucracy

8 मार्स्टिन मार्क्स के अनुसार नौकरशाही की विभिन्न किस्मों का विवेचन कीजिए। (1984)
Discuss the various types of Bureaucracy according to Morstein Marx

9 परम्परागत तथा कल्याणकारी प्रशासन मे नौकरशाही की भूमिका की तुलना कीजिए। (1984)
Compare the roles of Bureaucracy in a Traditional and Welfare Administration

10 विकासात्मक और कल्याणकारी राज्य मे अफसरशाही की भूमिका की चर्चा कीजिए। (1983)
Discuss the roles of Bureaucracy in a developing and welfare states

11 नौकरशाही की आधुनिक अवधारणाओ पर एक सक्षिप्त निबन्ध लिखिए।
Attempt a short essay on the modern concepts of Bureaucracy

12 नौकरशाही के बारे मे मैक्स वेबर के विचारो का आलोचनात्मक मूल्याकन कीजिए।
Discuss critically the ideas of Max Weber about Bureaucracy

13 नौकरशाही के विकास के स्रोत क्या हैं? नौकरशाही की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
What are the sources for the growth of Bureaucracy ? Describe the characteristics of Bureaucracy ?

14 नौकरशाही की आधुनिक प्रवृत्तियाँ क्या हैं?
What are the recent trends in Bureaucracy ?

15 नौकरशाही के दोषो को दूर करने के लिए आप क्या सुझाव देंगे?
What suggestions would you like to make to remove the effects of Bureaucracy

16 'प्रतिबद्ध प्रशासनतन्त्र' पर एक विस्तृत नोट लिखिए।
Write a detailed note on 'Committed Bureaucracy"

अध्याय 2 (लोकसेवाओं का विकास एव महत्व)

17 लोकसेवाओ के विकास एव महत्व पर एक सक्षिप्त निबन्ध लिखिए।
Write a short essay on the development and significance of Public Services

18 लोकसेवाओ के स्वरूप को बताइए। लोकसेवाओ की विशेषताएँ क्या हैं?
Describe the nature of Public Services What are the characteristics of Public Services ?

19 1945 के पश्चात् फ्रांस की लोकसेवाओ मे किए गए प्रमुख परिवर्तनो पर प्रकाश डालिए।
Bring out the main changes introduced in the civil service of France since 1945

20 सयुक्तराज्य अमेरिका मे लोकसेवाओ के विकास का वर्णन कीजिए।
Describe the development of Public Services in U S A

21 ग्रेट ब्रटेन में लोकसेवाओं के विकास का वर्णन कीजिए।
Describe the development of Public Services in Great Britain

22 फ्रांस मे लोकसेवाओ के विकास का वर्णन कीजिए।
Describe the development of Public Services in France.

23 भारत मे लोकसेवाओ के ढांचे के विकास का वर्णन कीजिए। इस दिशा मे भारतीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने जो परिवर्तन सुझाए हैं, उनकी समीक्षा कीजिए।
Trace the evolution of the structure of civil services in India Critically examine the changes suggested by the Administrative Reforms Commission in this respect

24 आधुनिक प्रशासन मे लोकसेवाओं के योगदान की विवेचना कीजिए।
Examine the role of Civil Service in Modern Administration.

अध्याय 3 (सेवीवर्गीय प्रशासन की प्रकृति)

25 कार्मिक प्रशासन की परिभाषा बताइए तथा इसकी हाल की प्रवृत्तियो की विवेचना कीजिए। (1982)
Define Personnel Administration and discuss recent trends in it

26 एक आधुनिक प्रजातन्त्रीय सरकार मे कार्मिक प्रशासन के प्रमुख उद्देश्य कौन से हैं? (1981)
What are the main objectives of Personnel Administration in a Modern Democratic Government?

27 कार्मिक प्रशासन की विषय-वस्तु की व्याख्या कीजिए एवं हाल के वर्षों मे इसके बढ़ते हुए महत्त्व के कारणो पर प्रकाश डालिए। (1981)
Discuss the subject matter of Personnel Administration and state the reasons for its growing importance in recent years

28 गणतन्त्रात्मक राज्य मे कर्मचारी प्रशासन के मुख्य लक्षणो का परीक्षण कीजिए। (1983)
Examine the main features of Personnel Administration in a democratic state

29 कार्मिक प्रशासन की परिभाषा कीजिए और इसके मुख्य उद्देश्यो और कार्यों का विवेचन कीजिए।
Define Personnel Administration and discuss its main objectives and functions

30 एक अच्छी कार्मिक प्रशासन व्यवस्था की प्रकृति तथा तत्त्वो का विवेचन कीजिए। (1979)
Discuss the nature and elements of a good Personnel Administration System

31 कार्मिक अथवा सेवीवर्ग प्रशासन का अर्थ समझाइए। इसके मूल तत्त्व क्या हैं?
Explain the meaning of Personnel Administration What are its basic elements?

32 सेवीवर्ग प्रशासन के उद्देश्यो की व्याख्या कीजिए।
Explain the objects of Personnel Administration

33 एक स्वस्थ सेवीवर्ग नीति के किन लक्षणों का आप पक्ष लेंगे ।
What characteristics would you advocate of a healthy personnel policy ?

34 सेवीवर्ग प्रशासन सम्बन्धी नीति की व्याख्या कीजिए ।
Describe the policy relating to Personnel Administration

35 सेवीवर्ग प्रशासन से सम्बन्धित समस्याएँ क्या हैं ? आप उन्हे दूर करने के लिए क्या सुझाव देंगे ?
What are the problems relating to Personnel Administration ? Suggest remedies

36 'विकसित देशो मे सेवीवर्ग प्रशासन' पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए ।
Write a short essay on Personnel Administration in Developed Countries'

37 विकासशील देशो मे सेवीवर्ग प्रशासन की सामान्य विशेषताओ को बताइए ।
Indicate the common characteristics of Personnel Administration in developing countries

अध्याय 4 (भारत ब्रिटेन, अमेरिका और फ्रांस मे सेवीवर्ग प्रशासन का तुलनात्मक अध्ययन)

38 भारत मे कार्मिक अथवा सेवीवर्ग प्रशासन की विशेषताओ का उल्लेख कीजिए ।
Describe the characteristics of Personnel Administration in India

39 भारत सरकार की कार्मिक प्रशासन व्यवस्था अथवा संयुक्तराज्य अमेरिका की कार्मिक प्रशासन व्यवस्था का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए । (1979)
Critically examine the system of Personnel Administration either in the Government of India or in the Government of United States of America

40 ब्रिटेन मे कार्मिक अथवा सेवीवर्ग प्रशासन की विशेषताओ का उल्लेख कीजिए ।
Describe the characteristics of Personnel Administration in Britain

41 संयुक्तराज्य अमेरिका मे सेवीवर्ग प्रशासन की विशेषताएँ बताइए ।
Describe the characteristics of Personnel Administration in U S A

42 फ्रांस मे सेवीवर्ग प्रशासन की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं ?
What are the main characteristics of Personnel Administration in France

अध्याय 5 (भारत ब्रिटेन, संयुक्तराज्य अमेरिका तथा फ्रांस मे सेवीवर्ग की भर्ती)

43 लोकसेवाओ मे भर्ती की विभिन्न पद्धतियो की विवेचना कीजिए । आप इनमे किन सुधारो का सुझाव देंगे ?
Describe the various methods of recruitment to civil services What improvement would you suggest ?

44 लोक कर्मचारियो की भर्ती कैसे होती है ? इन सेवाओ मे अधिकतम योग्य व्यक्तियो की आप किस प्रकार गारन्टी करेंगे ?
How Public Servants are recruited ? How will you guarantee the recruitment of ablest persons in these services ?

45 भर्ती का अर्थ एवं भर्ती की प्रक्रिया से आप क्या समझते हैं ? स्पष्ट रूप से व्याख्या कीजिए ।
What do you understand the meaning and procedure of recruitment ? Explain clearly

46 भर्ती के विभिन्न रूपों पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।
Write a short essay on different types of recruitment

47 'आन्तरिक भर्ती' व 'बाह्य भर्ती' से क्या अभिप्राय है? इनके गुण व दोषों की विवेचना कीजिए।
What is the meaning of 'recruitment from within' and 'recruitment from without'? Discuss their merits and demerits

48 आधुनिक राज्य मे उच्च प्रशासकीय सेवाओ मे भर्ती होने की प्रणालियों का परीक्षण कीजिए तथा इस सम्बन्ध मे जिन सुधारो को आप आवश्यक समझते है, उनका उल्लेख कीजिए।
Examine the systems of recruitment for higher civil services in a modern state and describe the improvements you suggest in this connection

49 भारत के लिए आप किस प्रणाली को अधिक पसन्द करते हैं—'लूट प्रणाली' या 'योग्यता प्रणाली'? कारण दीजिए। सरकारी कर्मचारियों के लिए आप सामान्य योग्यता या विशिष्ट ज्ञान किसकी जाँच अधिक पसन्द करेंगे?
Which system do you prefer for India, Spoils System or Merit System? Give reasons Will you prefer a test of general ability or specialized knowledge for public employees?

50 अखिल भारतीय एवं केन्द्रीय सेवाओ मे उच्चतर लोकसेवकों की भर्ती प्रणाली की व्याख्या करें। नई व्यवस्था पुरानी व्यवस्था की तुलना मे कहाँ तक अधिक उत्तम है? (1981)
Explain the system of recruitment of higher civil servants in All India and Central Services To what extent is the new system a reform over the old one?

51 'अखिल भारतीय सेवाएँ' क्या है? इनमे आजकल भर्ती कैसे की जाती है?
What are 'All India Services' and how is recruitment to these All India Services made now a-days? (1982)

52 भारत सरकार की अखिल भारतीय सेवाओ मे भर्ती प्रणाली की व्याख्या करें।
Explain the system of recruitment, to All India Services in the Government of India (1982)

53 भारत मे उच्च लोकसेवाओ की भर्ती की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए। इसमें सुधार के सुझाव दीजिए। (1983)
Describe the process of recruitment of the higher civil services in India Suggest reforms

54 भारत मे उच्च लोकसेवाओ मे भर्ती के लिए जो नवीन परिवर्तन किए गए हैं, उनका परिचय दें। भर्ती के तरीकों के दोषों, यदि कोई हैं, की चर्चा करते हुए उनको दूर करने के उपाय सुझाइए। (1983)
Discuss the recent innovations introduced in the recruitment of higher civil services in India Point out the defects, if any, in recruitment system and suggest remedies also

55 भारत में उच्चवर्गीय सरकारी सेवाओं में भर्ती किस प्रकार होती है ? भारतीय भर्ती प्रणाली की तुलना अमेरिकन प्रणाली से कीजिए। (1982)
How are the superior civil services recruited in India? Compare our recruitment pattern with that of U S A

56 भारत के संघीय लोकसेवा आयोग के गठन, शक्तियों एवं कार्यों का परीक्षण कीजिए। अपने प्रतिरूप इंग्लैण्ड की संस्था से इसकी तुलना कीजिए।
Examine the composition powers and functions of the Union Public Service Commission in India How does it compare with its counterpart in the U K ?

57 भारत में लोकसेवकों की भर्ती के सम्बन्ध में मुख्य समस्याओं की विवेचना कीजिए। (1980)
Discuss the major problems involved in the recruitment of Civil Servants in India

58 *संयुक्तराज्य अमेरिका में कार्मिक अथवा सेवीवर्ग की भर्ती पर एक संक्षिप्त* निबन्ध लिखिए।
Write a short essay on the recruitment of personnel administration in U S A

59 संयुक्तराज्य अमेरिका में 'लूट-प्रणाली' एवं 'योग्यता प्रणाली' का मूल्यांकन कीजिए।
Evaluate the 'Spoils System' and the 'Merit System' in U S A

60 ब्रिटेन में प्रशासनिक वर्ग के सदस्यों की भर्ती तथा प्रशिक्षण प्रणाली का वर्णन कीजिये।
Describe how the members of the Administration Group in Britain are recruited and trained

61 ब्रिटेन की भर्ती प्रणाली या व्यवस्था के प्रमुख लक्षणों का विश्लेषणात्मक विवेचन कीजिए।
Analyse the salient features of the recruitment system in U K

62 इंग्लैण्ड की फुल्टन कमेटी की प्रमुख सिफारिशों को संक्षेप में समझाइए।
Explain briefly the major recommendations of the Fulton Committee in the U K (1982)

63 इंग्लैण्ड में सरकारी कर्मचारियों की भर्ती किस प्रकार की जाती है ? (1981)
How are the civil servants recruited in England ?

64 फ्रांस में लोक कर्मचारियों की किस प्रकार भर्ती होती है ?
How are civil servants recruited in France ?

65 फ्रांस में उच्चवर्गीय सरकारी कर्मचारियों की भर्ती किस प्रकार होती है ?
How are superior civil servants recruited in France ? (1981)

66 संयुक्तराज्य अमेरिका में सिविल सेवा आयोग के गठन तथा कार्यों का वर्णन कीजिए।
Describe the organisation and functions of the Civil Service Commission in the U S A

67 संयुक्तराज्य अमेरिका के संघीय और भारत के केन्द्रीय लोकसेवा आयोगों की भूमिका और कार्यों की तुलना कीजिए।
Compare and contrast the role and functions of the Federal Civil Service Commission in the U S A and the Union Public Service Commission in India

अध्याय 6 (भारत ब्रिटेन, संयुक्तराज्य अमेरिका तथा फ्रांस में सेवा वर्गीकरण की व्यवस्था)

68 सार्वजनिक कर्मचारियों के वर्गीकरण का क्या आधार होना चाहिए ? सेवाओं के वर्गीकरण के गुण दोष क्या हैं ?
What should be the basis of classification of public servants ? What are the merits and demerits of service classification ?

69 आप 'वर्गीकरण' शब्द से क्या समझते हैं ? वर्गीकरण के लिए किन साधनों को अपनाया जाता है ?
What do you know about the term 'classificatron' ? What are the methods adopted for classification ?

70 स्थिति वर्गीकरण से आप क्या समझते हैं ? इसकी प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं ? इसका वर्तमान सेवाओं के प्रशासन में क्या सम्बन्ध है ?
What is meant by position classification ? What are its essential features and what is its importance in personnel administration ?

71 सेवा वर्गीकरण के मूल तत्त्व क्या हैं ? सेवा वर्गीकरण की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
What are the essentials of service classification ? Describe the characteristics of classification plan

72 सेवा वर्गीकरण के महत्त्व तथा आवश्यकता पर प्रकाश डालिए।
Describe the importance and necessity of service classification.

73 सेवा वर्गीकरण की प्रणालियाँ कौन-कौन सी हैं ?
What are the major systems of service classification ?

74 भारत में लोकसेवाओं के पदों के वर्गीकरण को निर्धारित करने वाले मुख्य सिद्धान्तों को समझाइये। वर्तमान पद-वर्गीकरण में क्या गुण एवं दोष हैं ? इसमें सुधार के सुझाव दीजिए। (1982)
Explain the principles governing the classification of Civil Services in India What are the merits and demerits of the present classification ? Suggest reforms

75 हमारे देश में सिविल सेवाओं का वर्गीकरण किस प्रकार किया गया है ? यह वर्गीकरण क्यों आवश्यक है ? (1982)
How are the civil services classified in our country ? Why this classification is necessary ?

76 अमेरिका में सिविल सर्विस के कर्मचारियों का वर्गीकरण किस प्रकार किया जाता है ? इंग्लैण्ड के वर्गीकरण की पद्धति में यह किस प्रकार भिन्न है ?
How are the civil servants classified in the U S A, ? How is it different from the British classification system ? (1981)

77 'कोटि' व 'पद' वर्गीकरण से आप क्या समझते हैं ? ब्रिटेन और संयुक्तराज्य अमेरिका की वर्गीकरण पद्धतियों की तुलना कीजिए। (1979)
What do you understand by 'Rank' and Position classification? Compare the classification systems for civil service in the U K. and U S A

78 अमेरिका में संघीय सरकार के स्थानों के वर्गीकरण की प्रणाली की व्याख्या कीजिए।
Discuss the method of classification of positions in the United States Federal Government ?

79 "फ्रांस की लोकसेवा अत्यन्त विशिष्टवादी है तथा वहाँ विशिष्ट वर्गों का विस्तृत पदसोपान है।" विवेचना कीजिए। (1982)
"The French civil service is extremely elitist and there is an elaborate hierarchy of elites' Comment

80 फ्रांस में पद-वर्गीकरण पर एक निबन्ध लिखिए।
Write an essay on Position-classification' in France

अध्याय 7 (वेतन प्रशासन : भारत, ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्तराज्य अमेरिका तथा फ्रांस)

81 सरकारी कर्मचारियों के वेतनमानों के निर्धारित करने के प्रमुख आधारों का परीक्षण कीजिए।
Examine the principal considerations in fixing the pay scales of Government servants

82 एक स्वस्थ वेतन-संरचना की क्या विशेषताएँ हैं ?
What are the characteristics of a sound pay structure ?

83 भारत में सहकारी सेवाओं के वेतनमान निर्धारित करने वाले सिद्धान्तों पर टिप्पणी कीजिए। (1981)
Comment on the principles governing the salary structure of the government employees in India

84 भारत में लोकसेवकों के वेतन निर्धारक तत्त्वों का परीक्षण कीजिए।
Examine the determinants of Compensation to Public Servants in India

85 अमेरिका में सरकारी कर्मचारियों के वेतनमान निर्धारित करने वाले सिद्धान्तों का परीक्षण कीजिए। (1981)
Examine the principles governing the salary structure of public services in U S A

86 ब्रिटेन में वेतन निर्धारण के सिद्धान्तों को संक्षेप में बताइए।
Describe briefly the principles of pay determination in Britain ?

87 फ्रांस में वेतन निर्धारण के आधार पर प्रकाश डालिए।
Throw light on the basis of pay determination in France

अध्याय 8 (पदोन्नति भारत, ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्तराज्य अमेरिका तथा फ्रांस)

88 लोकसेवाओं में पदोन्नति के क्या सिद्धान्त होने चाहिए तथा पदोन्नति के लिए कौन-सी प्रशासकीय व्यवस्था तथा कार्य-विधि का उपयोग किया जाना चाहिए ?
What should be the principles of promotion in public services and what administrative arrangement and system should be used for it ?

89 उचित पदोन्नति प्रणाली के महत्त्व पर प्रकाश डालिए और लोक कर्मचारियो की पदोन्नति के विभिन्न सिद्धान्तो की विवेचना कीजिए।
Bring out the importance of a proper promotion system and discuss the various principles of public employees

90 सरकारी कर्मचारियो की पदोन्नति के विभिन्न तरीको का वर्णन कीजिए। इनमे से किस प्रकार को आप उपयुक्त समझते हैं और क्यों ?
Describe the various methods in vogue for the promotion of public servants Which of these do you prefer and why ?

91 'पदोन्नति' शब्द से आप क्या समझते हैं ? लोकसेवाओ मे पदोन्नति के लिए किन सिद्धान्तो का पालन किया जाना चाहिए तथा पदोन्नति करने के लिए क्या इकाई हो और क्या प्रक्रिया हो ?
What do you understand by the term 'promotion' ? What principles should govern promotions in public services and should be the machinery and procedure for making promotions ?

92 भारत मे असैनिक सेवाओ की पदोन्नति कैसे की जाती है ? (1984)
How are the civil services in India promoted ?

93 भारत मे लोकसेवा मे विद्यमान पदोन्नति के सिद्धान्तो का वर्णन कीजिए। इनमे से आप किस सिद्धान्त को श्रेयस्कर समझते है तथा क्यो ? (1983)
Discuss the principles of promotion in vogue in the Civil Service in India Which of them do you prefer and why ?

94 प्रशासकीय पदाधिकारियो की पदोन्नति को निर्धारित करने वाले कारको को स्पष्ट कीजिए तथा भारतीय लोकसेवाओ की पदोन्नति मे व्यवहृत प्रणालियाँ बताइए।
Explain the factors which should determine the promotion of the administrative personnel and point out the methods followed in India for promotion of Public Services

95 भारत सरकार की कार्मिक व्यवस्था मे पदोन्नति के सिद्धान्तो व प्रणालियो का संक्षेप मे वर्णन कीजिए। (1980)
Describe briefly the principles and procedures of promotion in the personnel system of the Government of India

96 पदोन्नति के लिए उपयुक्तता के मूल्यांकन मे विभिन्न तरीको का आलोचनात्मक विवेचन कीजिए। ब्रिटेन व फ्रांस के असैनिक कर्मचारियो की पदोन्नति के तरीकों की तुलना कीजिए। (1979)
Critically examine the different methods of assessing suitability for promotion Compare the methods of promoting civil servants in the U K and France

97 ब्रिटेन मे लोकसेवाओ की पदोन्नति की प्रणाली का परीक्षण कीजिए। फ्रांस अथवा भारत से इसकी तुलना कीजिए। (1979)
Examine the system of promotion of civil services in Britain Compare it with either France or India

98 इंग्लैण्ड मे सिविल सर्विस के कर्मचारियो की पदोन्नति किस प्रकार की जाती है ?
How are civil servants promoted in the U K ?

99 ब्रिटेन मे पदोन्नति के सिद्धान्तो का वर्णन कीजिए ।
Describe the principles of promotion as evolved in U K

100 संयुक्तराज्य अमेरिका म पदोन्नति की प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं ? इसके गुण एव अवगुण स्पष्ट कीजिए ।
What are the main features of the promotion system in U S A ? What are its advantages and defects ?

101 फ्रांस मे पदोन्नति की प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं ? इसके गुण एव अवगुणो को स्पष्ट कीजिए ।
What are the main features of the promotion system in France ? What are its advantages and defects ?

अध्याय 9 (प्रशिक्षण भारत, ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्तराज्य अमेरिका तथा फ्रांस)

102 आधुनिक राज्य मे लोकसेवा कर्मचारियो के प्रशिक्षण, उद्देश्यो, प्रणालियो और प्रकारो पर एक आलोचनात्मक निबन्ध लिखिए ।
Write a critical essay on aims, systems and kinds of training of public servants in a Modern State

103 प्रशिक्षण क्या है ? यह शिक्षण से किस प्रकार भिन्न है ? लोकसेवको के प्रशिक्षण के उद्देश्यो की विवेचना कीजिए ।
What is training ? How does it differ from education ? Discuss the objectives of training in public services

104 "प्रशिक्षण का उद्देश्य मस्तिष्क को विस्तृत करना होना चाहिए ।" इस कथन की व्याख्या कीजिए ।
"Training must aim at broadening the mind" Comment on this statement

105 भारतीय प्रशासकीय सेवा में नव प्रवेशको के लिए प्रशिक्षण की विद्यमान व्यवस्था का वर्णन कीजिए । (1982)
Describe the existing system of training for the entrants to Indian Administrative Service

106 भारत मे उच्च सेवा कर्मचारियो के प्रशिक्षण, उद्देश्य एव विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण का समीक्षात्मक वर्णन कीजिए ।
Critically examine the object and various types of training for higher civil servants in India

107 भारतीय प्रशासकीय सेवा की प्रशिक्षण-प्रक्रिया समझाइए तथा इसमे सुधार के सुझाव दीजिए । (1982)
Explain the process of training of the Indian Administrative Service Suggest reforms

108 भारत में लोकसेवकों के प्रशिक्षण के उद्देश्यों एवं विधियों की विवेचना कीजिए। (1980)
Discuss the objectives and methods of training of Civil Servants in India

109 अखिल भारतीय सेवाओं में भर्ती किए गए लोगों का प्रशिक्षण आजकल किस प्रकार होता है ? (1982)
How are the recruits to All India Services trained these days

110 भारत में अखिल भारतीय स्तर की सेवाओं को प्रशिक्षण क्यों कर दिया जाता है ? क्या आपके मतानुसार यह प्रशिक्षण पर्याप्त है ? (1981)
How are the All India Services trained in India ? Do you think that this training is adequate ?

111 फ्रांस में उच्च लोकसेवाओं को क्योंकर प्रशिक्षण दिया जाता है ? (1983)
Explain how higher civil services are trained in France ?

112 भारत तथा फ्रांस की उच्च स्तरीय लोकसेवाओं की प्रशिक्षण प्रणाली की तुलना कीजिए। (1979)
Compare the system of training of Higher Civil Services in India and France

113 प्रवेश पूर्व में व सेवाकालीन प्रशिक्षण से आप क्या समझते हैं ? ब्रिटेन व फ्रांस में प्रशिक्षण के तरीकों का विवेचन कीजिए। (1979)
What do you understand by pre-entry and in service training ? Discuss the methods of training in the U K and France

114 फ्रांस में असैनिक सेवाओं का प्रशिक्षण कैसे किया जाता है ? (1984)
How is the French Civil Service trained ?

115 अमेरिका में लोक कर्मचारियों को दिए जाने वाले प्रशिक्षण की प्रकृति तथा विषय सामग्री की विवेचना कीजिए। (1981)
Analyse the nature and content of training being imparted to the civil servants in U S A

116 ब्रिटेन में लोकसेवकों के लिए प्रशिक्षण व्यवस्था को संक्षेप में बताइए।
Describe briefly the training system of civil servants in Britain

अध्याय 10 (आचरण के नियम तथा अनुशासनात्मक कार्यवाही, पदमुक्ति एवं अपीलें, सेवा निवृत्ति लाभ)

117 आचरण के नियमों से आप क्या समझते हैं ? ब्रिटेन, भारत, संयुक्तराज्य अमेरिका और फ्रांस में लोकसेवकों के आचरण के लिए निर्धारित नियमों का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।
What do you understand by the Conduct Rules ? Describe briefly the Conduct Rules for civil servants in Britain, India, U S A and France

118 एक प्रजातन्त्रीय राज्य में सिविल सेवा-आचार के क्या मापदण्ड होने चाहिए ? ये मापदण्ड कैसे विकसित होते हैं ?
What should be the standards of Civil Service Ethics in a democratic state ? How can these standards be improved ?

119 लोक कर्मचारियों के लिए आचरण संहिता की आवश्यकता बताइए। यह आचरण संहिता क्या क्या बातें विहित करती है ?

Examine the need for conduct rules for the Civil Service What do these rules generally prescribe ?

120 भारत में सरकारी कर्मचारी के आचार संहिता पर एक निबन्ध लिखिए।

Write an essay on the conduct rules for civil servants in India (1982)

121 भारतीय सिविल सेवाओं में अनुशासनात्मक कार्यवाही की प्रकृति एवं पद्धति की व्याख्या कीजिए। इस सम्बन्ध में संविधान की धारा 311 का क्या महत्त्व है ? (1981)

Discuss the nature and procedure of disciplinary actions against the civil servants in India What is the significance of Article 311 of the Constitution in this regard ?

122 भारत में सरकारी कर्मचारियों को दिए जा सकने वाले विभिन्न दण्डों का वर्णन कीजिए एवं इन कार्यवाहियों के करने की प्रक्रिया को समझाइए।

Describe the various penalties that may be imposed on government servants in India, and explain the procedure of taking such actions (1981)

123 भारत में लोकसेवकों के लिए बनी आचार संहिता का परीक्षण कीजिए तथा उसके उल्लघन पर दिए जाने वाले दण्ड की प्रक्रिया लिखिए। (1983)

Examine the conduct rules for civil servants in India and the procedure for disciplinary action for the violation of these rules

124 भारत में लोक-कर्मचारियों पर अनुशासन सम्बन्धी कार्यवाही की प्रक्रिया का परीक्षण कीजिए। (1981)

Examine the procedures for taking disciplinary action against Civil Servants in India

125 राजकीय सेवकों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही किस प्रकार प्रारम्भ की जाती है तथा विभिन्न प्रकार के दण्ड केन्द्र सरकार के कर्मचारियों पर किस प्रकार लागू किए जाते हैं ? (1980)

How disciplinary proceedings are initiated against Government servants and what are the procedures of imposing diffrent penalities on Central Government Employees ?

126 भारत में सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाहियों के विभिन्न प्रकारों का विवेचन कीजिए। (1980)

Discuss the various types of disciplinary actions against Government Servants in India

127 इंग्लैण्ड के सिविल सर्विस आचार संहिता के प्रमुख प्रावधानों का वर्णन कीजिए।

Describe the main provisions of the civil service conduct rules in U K (1981)

128 अनुशासनिक कार्यवाही से आप क्या समझते हैं ? ब्रिटेन में असैनिक कर्मचारियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही के तरीकों का आलोचनात्मक विवेचन कीजिए। (1979)

What do you understand by disciplinary action ? Critically examine the methods for disciplinary action against the civil servants in the U K.

129 सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही के सन्दर्भ मे भारत के सघीय लोकसेवा आयोग की भूमिका की तुलना अमेरिका मे सघीय लोकसेवा आयोग की भूमिका से कीजिए। (1979)

Compare the role of the Union Public Service Commission in India with that of the Federal Civil Service Commission in the U S A in relation to the disciplinary actions against Government employees

130 अमेरिका तथा फ्रांस मे लोक कर्मचारियों की आचार सहिता का तुलनात्मक विश्लेषण कीजिए।

Make a comparative analysis of conduct rules applicable to civil servants in U S A and France

131 'सयुक्तराज्य अमेरिका में अनुशासन, पदमुक्ति तथा अपील' पर एक सक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

Write a short essay on 'Disciplinary Action, Removal and Appeal in U S A'

132 अमेरिका मे सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाइयों की प्रक्रिया की व्याख्या कीजिए। (1982)

Discuss the system of disciplinary proceedings against the civil servants in U S A

133 असैनिक सेवाओ के कुछेक आचार नियमो की चर्चा कीजिए तथा उनका उल्लघन करने वालो के विरुद्ध अनुशासनीय कार्य की विधि भी बताइए।

Discuss some of the conduct rules of civil servants and the procedure of disciplinary action for their breach (1984)

134 इग्लैण्ड अथवा फ्रांस मे लोकसेवाओ की निवृत्ति प्रणाली तथा सेवा निवृत्ति लाभो की विवेचना कीजिए। (1979)

Discuss the system of retirement and the retirement benefits of the civil service in either U K or France

135 वर्तमान कार्मिक प्रशासन म निष्कासन तथा अपील की प्रणाली का विवेचन कीजिए।

Discuss the system of Removal and Appeals in Modern Personnel Administration

अध्याय 11 (कर्मचारी सगठन एव प्रतिनिधित्व, सेवा विवाद, इग्लैण्ड मे ह्विटलेवाद, हडताल का अधिकार तथा नागरिक सेवको के राजनीतिक अधिकार)

136 क्या लोकसेवको को सगठन बनाने और हडताल करने का अधिकार दिया जाना चाहिए? एक स्थिति स्वीकार कीजिए और तर्क दीजिए।

Should public servants be allowed to unionise and have a right to strike? Take a position and give reasons

137 "यह एक आधुनिक प्रवृत्ति हो गई है कि कर्मचारी उस सगठन मे हो जिससे वह सम्बद्ध हो।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।

"Recently there has been a tendency for the establishment of employees participation in the personnel system to which they belong "Comment and discuss this statement

138 लोकसेवा के सदस्यो द्वारा मजदूर सघ बनाने के पक्ष की समीक्षा कीजिए एव इसकी विवेचना कीजिए कि उन्हे हडताल करने का अधिकार होना चाहिए अथवा नही ?

Examine the case for the formation of Trade Unions by the members of Public Services and discuss whether they should have the right to strike

139 ह्विटले परिषदें क्या हैं ? क्या भारत मे ह्विटले परिषद् व्यवस्था है ? उसमे सुधार के लिए आप क्या सुझाव देते हैं ?

What are Whitley Councils ? Do we have Whitley Councils system in India ? What suggestions would you make for improving them ?

140 ह्विटलेवाद से आप क्या समझते है ? यू के मे इसके आरम्भ और विकास का इतिहास दीजिए। (1983)

What do you understand by Whitleyism ? Trace its origin and development in U K

141 लोकसेवक सगठन का भारत के उदाहरण देते हुए विस्तृत वर्णन कीजिए।

Write an essay on Employees Association in Government with particular reference to India

142 भारत मे सरकारी कर्मचारियो तथा केन्द्रीय शासन के बीच विवादो को निपटाने की क्या व्यवस्था है ? विवेचना कीजिए।

What is method of settlement of disputes between central government and employees of India ? Discuss

143 क्या सरकारी कर्मचारी को हडताल करने का अधिकार मिलना चाहिए ? सकारण उत्तर दीजिए। शासन और उसके कर्मचारियो के बीच विवादा का निपटारा करने के लिए आप अन्य कौन-कौन से उपायों का सुझाव देंगे ?

Should public servants be given the right to strike ? Give reasons for your answer What other methods would you suggest to settle disputes between the Government of India and its servants ?

144 क्या आप इस राय से सहमत हैं कि लोकसेवाओं को हडताल करने का अधिकार होना चाहिए ? अपने उत्तर के समर्थन मे तर्क दीजिए और इस सम्बन्ध मे इग्लण्ड, अमेरिका तथा फ्रांस मे जो नियम अपनाए गए है, उनका उदाहरण दीजिए। (1979)

Do you agree with the view that the Civil Services should have the right to strike ? *Give arguments in support of your answer illustrating it with rules* followed in this respect in U K , U S A and France

145 सिविल कर्मचारियो के हडताल के अधिकार के पक्ष और विपक्ष मे मतो का विवेचन कीजिए। ब्रिटेन और फ्रांस में हडताल के अधिकार की स्थिति का वर्णन कीजिए। (1979)

Examine the arguments for and against the right to strike by civil servants Point out the position regarding right to strike in U K and France

146 क्या लोकसेवकों को हडताल का अधिकार दिया जाना चाहिए ? यू एस ए तथा भारत मे लोक सेवको के हडताल के अधिकार की व्याख्या कीजिए।

Should the civil servants be given the right to strike ? Explain the right of strike of civil servants in U S A and India

147 क्या भारत मे असैनिक सेवाओ को हडताल करने का अधिकार प्राप्त है ? इस सम्बन्ध मे अमेरिका मे क्या स्थिति है ?
Have the civil servants in India the right to strike ? What is the situation in U S A ?

148 भारत, फ्रांस तथा अमेरिका मे सरकारी कर्मचारियो के हडताल करने के अधिकार का परीक्षण कीजिए। (1981)
Examine the civil servants' right to strike in India, France and U S A.

149 लोकसेवको की शिकायतो का निवारण क्योकर किया जा सकता है ? अपने उत्तर की भारतीय और बर्तानवी प्रशासिक प्रविधि के उदाहरणों द्वारा पुष्टि कीजिए। (1983)
How can the grievances of the civil servants be redressed ? Illustrate your answer with examples from British and Indian Administrative systems.

150 इग्लैण्ड मे ह्विटले परिषदो के गठन एव कार्य-प्रणाली की विवेचना कीजिए।
Discuss the organisation and working of the Whitley Councils in Britain (1982)

151 इग्लैण्ड तथा भारत मे सेवा सम्बन्धी झगडो का निपटारा कैसे किया जाता है ?
How are the service disputes settled in U K. and India ? (1984)

152 अमेरिका, इग्लैण्ड तथा भारत मे असैनिक सेवाओ के राजनीतिक अधिकारो की तुलना कीजिए। (1984)
Compare the political rights of civil servants in U S A, U K and India

153 ब्रिटेन मे शासन तथा उसके कर्मचारियो के बीच परामर्श, वार्ता तथा पच-फैसले की प्रणालियो की विवेचना कीजिए। (1981)
Discuss the system of consultation, negotiation and arbitration between the government and its employees in Britain

154 भारत मे कर्मचारियो से विचार-विमर्श एव पचफैसले की प्रक्रिया की विवेचना कीजिए। (1982)
Discuss the process of consultation with the employees and arbitration in India

155 अमेरिका मे सिविल सर्विस यूनियनो के उद्देश्यो एव कार्यों की विवेचना कीजिए। (1981)
Discuss the objectives and activities of the civil service unions in the U S A

156 अमेरिका, इग्लैण्ड एव भारत की समितियों के कार्यों पर एक आलोचनात्मक निबन्ध लिखिए। इग्लैण्ड की ह्विटले कौंसिल से यह किस प्रकार भिन्न है ?

157 ब्रिटेन मे सिविल कर्मचारियो के राजनीतिक अधिकारो का विवेचन कीजिए। फ्रांस मे प्राप्त अधिकारों से ये किस सीमा तक भिन्न हैं ?
Examine the political rights of the civil servants in the U.K. To what extent do these rights differ from those enjoyed in France ?

अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्न एव टिप्पणियां

158 इ ग्लैण्ड मे पदोन्नति की मशीनरी को समझाइए । (1981)
Explain the promotion making machinery in the U K

159 फ्रांस की सिविल सर्विस व्यवस्था के प्रमुख लक्षणो की व्याख्या कीजिए ।
Discuss the salient features of the French Civil Service System (1981)

160 अमेरिकन सिविल सर्विस मे हाल के वर्षो मे हुए सुधारो पर एक निबन्ध लिखिए । (1982)
Write an essay on the recent reforms in the U S Civil Service

161 अमेरिकन सिविल सर्विस व्यवस्था के प्रमुख लक्षणो को समझाइए एव इ ग्लैण्ड की सिविल व्यवस्था से इसकी तुलना कीजिए । (1982)
Explain the salient features of the American Civil Service and compare it with the British Civil Service

162 बर्तानिया और अमेरिका की लोकसेवाओ की मुख्य विशेषताओ की तुलना कीजिए । (1983)
Compare the salient features of British and American Civil Services

163 निम्नलिखित मे से किन्हीं दो पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—
(अ) भारत म स्टाफ कौंसिल
(ब) अमेरिका मे सेवानिवृत्ति लाभ
(स) इ ग्लैंड म सरकारी कर्मचारियो के राजनीतिक अधिकार
(द) फ्रांस की प्रशासकीय व्यवस्था मे सिविल सर्विस का स्थान (1981)
Write short notes on any two of the following
(a) Staff Councils in India
(b) Retirement benefits in U S A
(c) Political rights of the civil servants in the U K
(d) The position of the civil service in the French Administrative System

164 निम्नलिखित मे से किन्ही दो पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—
(i) भारत मे अनुसूचित जातियो एव अनुसूचित जनजातियो के लिए सरकारी सेवाओ मे आरक्षण
(ii) फ्रांस म सरकारी कर्मचारियों के राजनीतिक अधिकार
(iii) इ ग्लैण्ड मे मन्त्रियो एव सरकारी कर्मचारियो के सम्बन्ध
(iv) अमेरिका का सिविल सर्विस अधिनियम 1883 (1981)
Write short notes on any two of the following
(i) Reservation for the Scheduled Castes and the Scheduled Tribes in the Civil Service in India
(ii) Political rights of the Civil Servants in India
(iii) Minister-Civil Servants relationship in the U K
(iv) The Civil Service Act, 1883 of the U S A

165 निम्नलिखित मे से किन्हीं दो पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—

(i) भारत मे सेवानिवृत्ति लाभ

(ii) इग्लैण्ड मे सरकारी कर्मचारियो की राजनीतिक तटस्थता

(iii) फ्रांस मे सरकारी कर्मचारियो के राजनैतिक अधिकार

(iv) अमेरिका मे सरकारी कर्मचारियो का प्रशिक्षण (1982)

Write short notes on any two of the following

(i) Retirement benefits in India

(ii) Political neutrality of the civil servants in the U K

(iii) Political rights of the civil servants in France

(iv) Training of the civil servants in U S A

166 निम्नलिखित मे से किन्ही दो पर टिप्पणियाँ लिखिए—

(अ) बर्तानवी लोकसेवा की राजनीतिक निरपेक्षता

(ब) भारत अथवा यू एस ए मे उन्नति प्रणाली

(स) फ्रांस या यू के मे लोकसेवकों को अवकाश प्राप्ति पर मिलने वाले लाभ

(द) बर्तानवी लोकसेवाओ मे भर्ती (1983)

Write short notes on any two of the following

(a) Political neutrality of British Civil Service

(b) Promotion system in India or U S A

(c) Retirement Benefits of civil servants in France or U K

(d) Recruitment of British Civil Service

167 निम्न म से किन्ही दो पर टिप्पणी लिखिए—

(अ) ह्विटलेवाद

(ब) मैक्स वेबर की नौकरशाही की कल्पना

(स) असैनिक सेवाओ का वर्गीकरण

(द) सेवा अवकाश लाभ (1984)

Write notes on any two of the following -

(a) Whitleyism

(b) Max Weber s concept of the Bureaucracy.

(c) Classification of Civil Services

(d) Retirement Benefits